श्रीरामानन्ददर्शनशोधसंस्थानग्रन्थमाला का ९४ वां पुष्प

सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीहनुमते नमः

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकाराय नमो नमः

आनन्दभाष्यसिंहासनासीनजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

प्रणीत प्रकाश किरण सहिता

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यप्रणीता

वेदार्थचन्द्रिका

प्रकाशक

श्रीयुतखोजीदेवाचार्यपीठाधीश्वर काठियापरिवाराचार्य
श्रीवैष्णवभूषण श्रीनारायणदासजी महाराज
त्रिवेणीधाम-जयपुर

सम्पादक

आनन्दभाष्यसिंहासनासीनजी

तिथि

श्रीआनन्दभाष्यकार जी की ७०८ वीं जयन्ती ता.२९-०१-२००८ मंगलवार

टाइप सेटिंग- श्रीआनन्दभाष्यमुद्रणालय श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद-७

मुद्रणस्थल- श्रीरामानन्द ऑफसेट कांकरियारोड- अहमदाबाद-२२

श्री वैष्णवसिद्धान्तकल्पद्रूम

यस्माद्विश्वमुदेतियेनलभतेसंरक्षणंशाश्वतम् यस्मिन्नप्ययमेति योहि सततं कारुण्य वारां निधिः ।
यः कल्याणगुणाकरस्त्रिजगतः श्रेयः परम्प्रापकस्तं ब्रह्मार्चित पाद पद्म युगलं रामाख्यमीशंनुमः ॥
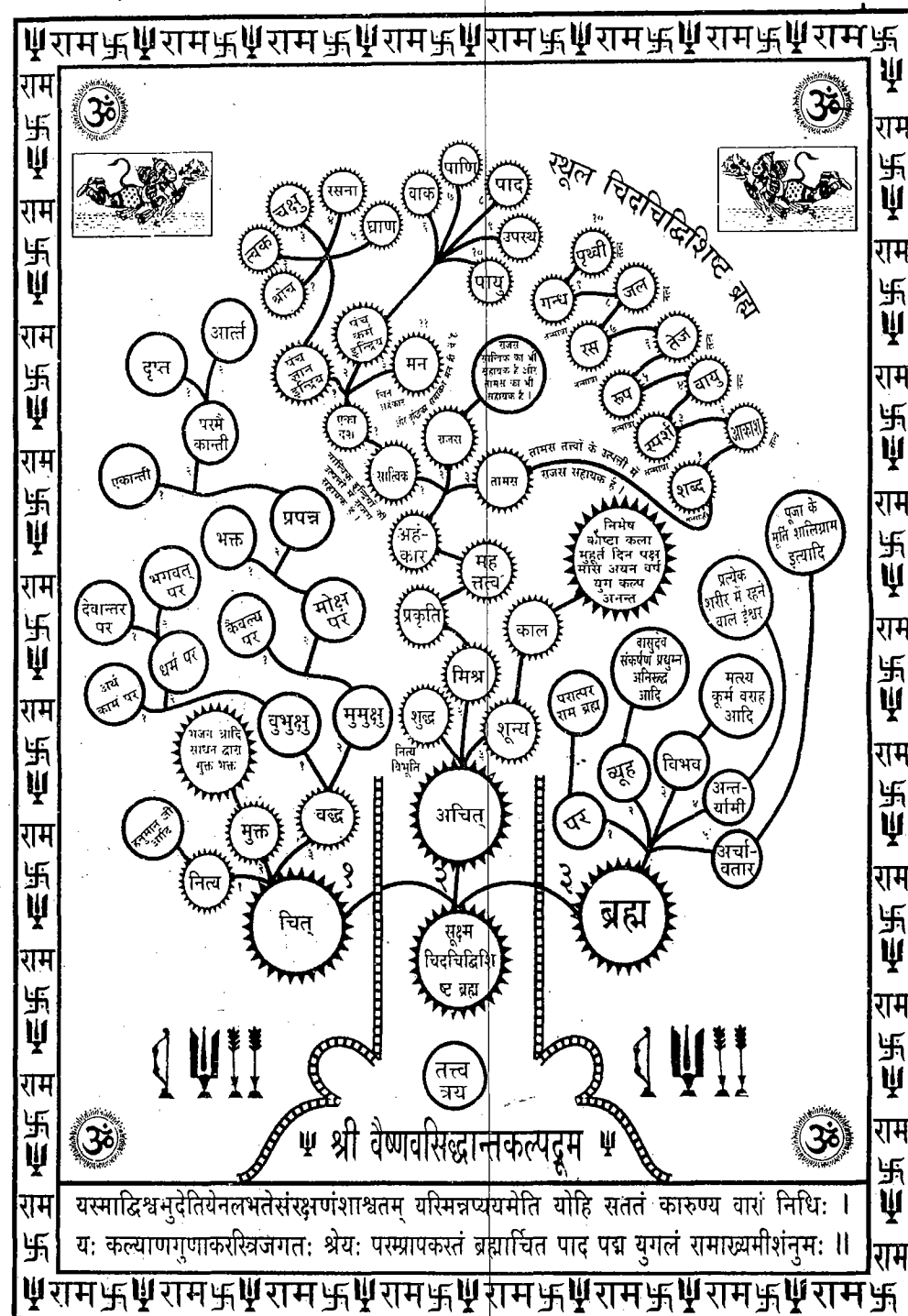
卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

卐 उपकृतिस्मृतिः 卐

परमार्थपरायण श्रीवैष्णव कुलभूषण श्रीयुत श्रीखोजीदेवाचार्य पीठाधीश्वर काठियापरिवाराचार्य श्रीब्रह्मपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित श्रीयुत श्रीनारायणदासजी महाराज के उदार सौजन्यता से यह श्रीरामानन्द वेदान्त दर्शन साहित्य खजाने का अमूल्य रत्न वेदार्थचन्द्रिका प्रकाशित होकर के आप सबों के समक्ष में उपस्थित है।

यह दर्शन जगत् का अमूल्य रत्न विक्रम संवत् २०४३ में प्रकाशित हुआ था तब '**शरीरंव्याधिमन्दिरम्** इस दार्शनिक उक्ति के अनुसार प्रोष्टेट सम्बन्धी व्याधी से ग्रस्त था चाहिये उस प्रकार संशोधन कर नहीं पाया अब २०६४ में इस का द्वितीय आवृत्ति का प्रसंग उपस्थित हुआ तब किड्नी सम्बन्धी व्याधीसे विशेष ग्रस्त हो गया अतः चाहते हुये भी इसका विशेष संशोधन या परिस्कार करना संभव नहीं हो सका "**होइ है सोई जो राम रचि राखा**" केवल स्थूल सूचीपत्र ही देपाये। प्रकाश एवं किरण सम्बन्धी सूचीपत्र की विशेष आवश्यकता थी वह इसवार भी नहीं दे पाये। मूल ग्रन्थ का विशेष स्पष्टीकरण यत्र तत्र किरण में हुआ है। पाठक वर्गो से यह आकांक्षा रखते हैं कि इन तीनों रत्नों का स्वाध्याय कर विभ्रमवशात् स्खलित विषयों को सप्रमाण सूचित करें ताकि दूसरी आवृत्ति में उधर ध्यान दिया जा सके। श्रीयुत काठियापरिवाराचार्यजी महाराज को अनेक धन्यवाद जिन्होने इन श्रीरामानन्द वेदान्त दर्शन साहित्य के अमूल्य रत्नों को आप सबों के समक्ष में प्रस्तुत कर हमारे भार को हलका कर दिये।

श्रीआनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचायश्रीरामश्वरानन्दाचार्यजी

卐 सर्वेश्वर श्रीसीतारामाभ्यां नमः 卐

पूजारि श्रीरामरिक्षपालदास विरचितम्

卐 अथ श्रीगुरुपरम्परा वन्दनम् 卐

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम्। अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥१॥

श्रीसीतापति प्रभु सर्वेश्वरश्रीरामजी से जो आरम्भ हुई है तथा जिसके मध्य में प्रस्थानत्रयों में आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचाय महाप्रभु हैं, ऐसी हमारी श्रीगुरु महाराज पर्यन्त प्राप्त आचार्य-परम्परा की मैं वन्दना करता हूं ॥१॥

ब्रह्म **परात्परं रामं बन्देऽहं करुणाकरम्। श्रीजगदीश्वरीं वन्दे, जानकीं रामवल्लभाम् ॥२॥**

परात्पर ब्रह्म जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं और अंश मात्र से सब में उसका विस्तार है जो करुणा के धाम हैं (उन सर्वेश्वर) श्रीरामजी की मैं वन्दना करता हूं तथा श्रीरामजी की परम प्रिया समस्त प्राणियों की आधार भूत ईश्वरी श्रीजानकी जी की (मैं) वन्दना करता हूं ॥२॥

हनुमन्तं कपीशञ्च नमानि चतुराननम्। वशिष्टञ्च सदावन्दे पराशरं परंधनम् ॥३॥

वानरराजजी श्रीहनुमानजी और चार मुख वाले श्रीब्रह्माजी तथा श्रीवशिष्टजी, परमधन श्रीपाराशरजी की (मैं) सर्वदा वन्दना करता हूं ॥३॥

वेदव्यासं तु वन्देऽहं शुकदेवं परं गुरुम्। आचार्यपरमं वन्दे वेदज्ञं पुरुषोत्तमम् ॥४॥

श्रीवेदव्यासजी एवं परम गुरु श्रीशुकदेवजी की मैं वन्दना करता हूं षड्दर्शन सूत्रों के वृत्तिकार वेदतत्वज्ञ महापुरुष श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी-बोधायन की (मैं) वन्दना करता हूं ॥४॥

गंगाधरं गुरुं वन्दे सदाचार्यञ्च सद्गुरुम्। रामेश्वरं वराचार्यं द्वारानन्दञ्च वन्दनम् ॥५॥

श्रीगुरुदेव श्रीगंगाधराचार्यजी और सद्गुरु श्रीसदाचार्यजी की (मैं) वन्दना करता हूं। श्रेष्ठ श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी तथा श्रीद्वारानन्दाचार्यजी की (मैं) वन्दना करता हूं। ॥५॥

देवाचार्यं तु वन्देऽहं श्यामानन्दं परं गुरुम्। श्रुतानन्दं गुरुंवन्दे चिदानन्दं हि सद्गुरुम् ॥६॥

श्रीदेवाचार्यजी और परमगुरु श्रीश्यामानन्दाचार्यजी की मैं वन्दना करता हूं। श्रीगुरुदेव श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी एवं श्रीचितानन्दाचार्यजी सद्गुरु की (मैं) वन्दना करता हूं ॥६॥

पूर्णानन्दं तु वन्देऽहं श्रियानन्दं गुरुंभजे। हर्यानन्दञ्च वन्देऽहं राघवं भव तारणम् ॥७॥

श्रीपूर्णानन्दाचार्यजी महाराज की (मैं) वन्दना करता हूं श्रीगुरुदेव श्रीश्रियानन्दाचार्यजी का (मैं) भजन करता हूं श्रीहर्यानन्दाचार्यजी और संसार सागर से उद्धार करने वाले श्रीराघवानन्दाचार्यजी की (मैं) वन्दना करता हूं ॥७॥

यतिराजेश्वरं वन्दे रामानन्दं जगद्गुरुम्। अनन्तानन्दं देवञ्च वन्देऽहं जैसगीं गुरुम् ॥८॥

यतियों के ईश्वर आनन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी की (मैं) वन्दना करता हूं श्रीअनन्तानन्ददेवाचार्यजी और गुरुश्री जैसगीं जी (स्वामीजी) की (मैं) वन्दना करता हूं ॥८॥

गयेशदास शिष्याय लक्ष्मीदासाय ते नमः। श्रीलक्ष्मीदासशिष्यं च माधवं सद्गुरुंभजे ॥९॥

श्रीगयेशदासजी के शिष्य श्रीलक्ष्मीदासजी को नमस्कार अर्थात् सादर प्रणाम करता हूं। एवं श्रीलक्ष्मीदासजी के शिष्य श्रीयुतमाधवदासजी सद्गुरुदेवजी को साद्र नमन करता हूं ॥९॥

नमामि चतुरानन्दं क्षेम दासं परं हितम्। रामदासं हि सिद्धानां रघुनाथं नमोऽस्तुते ॥१०॥

श्रीचतुरान्द (श्रीखोजीजी श्रीखोजीदेवाचार्यद्वारपीठाधीश्वर श्रीयुत राघवेन्द्राचार्यजी) एवं परम हितैषी श्रीक्षेमदासजी की (मैं) वन्दना करता हूं। सिद्धों में परम सिद्ध श्रीरामदासजी (एवं) श्रीरघुनाथदासजी को मैं नमस्कार करता हूं ॥१०॥

ब्रह्मदासं मुनीन्द्रंयो जगन्नाथं नमाम्यहम्। सिद्धं भरतदासञ्च, वन्देऽहं करुणार्णवम् ॥११॥

जो मुनियों के भी ईश्वर ऐसे श्रीब्रह्मदासजी महाराज और श्रीजगन्नाथदासजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूं। जो सिद्ध और दया के सागर हैं ऐसे श्रीभरतदासजी महाराज की (मैं) वन्दना करता हूं। ॥११॥

स्थापकं परमं दिव्यं, त्रिवेणीधामपीठकम्। गंगादासं परं सिद्धं वन्देऽहं करुणानिधिम् ॥१२॥

जो परम दिव्य धाम त्रिवेणी पीठ के संस्थापक परमसिद्ध (दीनों के लिये) दया समुद्र ऐसे श्रीगंगादासजी महाराज की (मैं) वन्दना करता हूं। ॥१२॥

योगिशं जानकीदासं वन्दे ध्यान परायणम्। रामादासं विद्वतराजं सिद्धञ्च सिद्धिदायकम् ॥१३॥

जो ध्यान में रत रहने वाले योगिराज श्रीजानकीदासजी महाराज और परम सिद्ध तथा सिद्धियों के देने वाले विद्वतराज श्रीरामदासजी महाराज की (मैं) वन्दना करता हूं। ॥१३॥

श्रीमद् भजनदासञ्च परंहंसं नमो नमः । महान्तं ब्रह्मनिष्ठं श्रीभगवंतं गुरोर्गुरुम् । ।।१४।।

परमहंस श्रीमद् भजनदासजी महाराज और गुरुओं के भी गुरु महात्मा (एवं महान् पुरुष) श्रीभगवानदास गुरुदेवाचार्यजी महाराज को बारम्बार प्रणाम तथा नस्कार करता हूं ।।१४।।

दासंनारायणं वन्दे गुरुं वैष्णावभूषणम् । रामरिक्षपालदासः कृत्वा गुरुपरम्पराम् । ।।१५।।

लब्धः परमसन्तोषं सद्गुरोश्चानुकम्पया । ये पठन्ति सदा भक्त्या ते यान्ति परमं पदम् ।।१६।।

जो श्रीवैष्णव कुल- भूषण उपाधि से विभूषित हैं, (उन) परम गुरुदेव श्रीखोजीदेवाचार्यपीठाधीश्वर काठिया परिवाराचार्य श्रीमहन्त श्रीनारायणदासजी महाराज की (मैं) वन्दना करता हूं। रामरिछपालदास पुजारी ने इस गुरु परम्परा की रचना करके सद् गुरुदेव भगवान् (श्रीनारायणदासजी महाराज की अनुकम्पा) महतीकृपा से परम सन्तोष प्राप्त किया है। जो भी (नर या नारि) इस गुरु परम्परा को सदा भक्ति पूर्वक पढते हैं अथवा पढ़ेंगे वे परमपद को प्राप्त करेंगे ।।१५-१६।।

॥ "त्रिवेणी धाम का संक्षिप्त परिचय" ॥

भारत वर्ष राजस्थान प्रान्त का प्रमुख स्थल सुशोभित सकल कलिकल्मषहारिणी माँ त्रिवेणी गंगा के पावन तट पर भारतीय संस्कृति के तपोमूर्ति ऋषिराज श्री श्री १००८ श्रीगंगादासजी महाराज के कर कमलों द्वारा स्थापित त्रिवेणी- धाम आश्रम है। जो जयपुर-दिल्ली रोड़ शाहपुरा से १० कि.मी. पश्चिम दिशा में पहाड़ियों के परकोटा के मुख्य द्वार पर अवस्थित है। वीतराग तपोधन श्रीगंगादासजी महाराज का आविर्भाव सन् १७१७ में ग्राम हथौरा-सीकर राजपूत परिवार में हुआ। आप अपने माता-पिता श्रीमती मगन कुंवर एवं श्रीमनोहरसिंह की इकलौती सन्तान होने के उपरान्त भी आप १० वर्ष की बाल्यावस्था में ही गृह त्याग कर साधु बन गये। आप अपने माता-पिता से शादी की चर्चा सुनकर घर से बिना कहे ही चले गये और पुष्कर तीर्थ में जाकर साधुओं की जमात में शामिल होकर अयोध्या गये । वहां पर श्री अयोध्या-वासुदेवघाट श्रीकाठिया मन्दिर के महन्त श्रीभरतदासजी महाराज से विरक्त दीक्षा पंचसंस्कारादि ग्रहण करके श्रीगुरुदेव की आज्ञा से भगवान् नृसिंह देव पूजा सन्त सेवा भजनादि करते रहे। दीर्घ समय के बाद जब माता-पिता को पत्ता लगा तब वे अयोध्या गये और उनसे मिले। माता-पिता ने उनके गुरुजी से प्रार्थना की हम अब वृद्ध हो गये है, हमारे ये ही एक सन्तान हैं। श्रीगंगादास जी ने इन्कार कर दिया अब गृहस्थ न बनकर आजीवन सन्त ही रहेंगे देश का कल्याण करेंगे। पुनः माता-पिता ने आग्रह किया अपनी जन्मभूमि में लौटकर चले हमें दर्शन देते रहें। श्रीगुदेव भरतदासजी की आज्ञा एवं माता-पिता के आग्रह से जन्मभूमि आ गये और त्रिवेणी-धाम से १या२ कि.मी. दूर पर पश्चिम की ओर पहाड़ी में जहां श्रीजगदीश भगवान् का मन्दिर हैं वहां पर रह कर तपस्या करने लगे। १२ वर्ष वहां तपस्या करके फिर यहां त्रिवेणी आये। उस समय यहां बीहड़ जंगल था। इस जगह (स्थान) का नाम गोसाईबाड़ा था। श्रीगंगादासजी महाराज ने यहां तपस्या करी और श्रीनृसिंह भगवान् का विग्रह एवं मन्दिर बनवाकर स्थापना करी। उनके समय में

यहां शेर चीता, जंगली जानवर ही रहते थे। मनुष्य का आना- जाना बहुत ही कम था श्रीगंगादास जी महाराज के यहां विराजने के बाद ही त्रिवेणी नाम विख्यात हुआ।

कहते है कि पहले त्रिवेणी गंगा की दो धार ही थी। एक धार श्रीगंगादासजी ने प्रकट करी। तब से त्रिवेणी नाम हुआ। उनके तपस्या के प्रमाण यहां कण कण में विद्यमान हैं। यहां की धूलि से आज भी रोगियों के रोग कटते हैं। श्रीगंगादासजी के बाद में उन्ही के शिष्य योगिराज श्रीजानकीदासजी पदासीन हुए। ये योगी थे। अपने योग बल से जल को दूध पानी को घृत घृत को पानी बना देते थे। आप कुछ ही क्षण में कहीं के कहीं चले जाते थे फिर उन के बाद में उन्ही के शिष्ट श्रीरामदासजी महाराज विराजमान हुये। आप इस क्षेत्र के अद्वितीय विद्वान् थे। आप ने गीता भागवत आदि ग्रन्थों की टीका भी लिखी हैं आपके निर्वाण के बाद में आपके ही शिष्य श्रीभजनदासजी महाराज विराजे। आप परमहंस थे। आपके लिये स्त्री-पुरुष में कोई भेद नहीं था आप अलवर शाहपुरा जयपुर आदि बड़े-बड़े राजघरानें में जाते और रानियों की गोद में जाकर छोटे बच्चे की तरह बैठ जाते थे। बच्चों की तरह ही उनका स्वभाव था। जैसे छोटे बच्चे को प्रेम से जैसे करावों वैसे ही वे करने लग जाते थे। उन परमहंस श्रीभजनदासजी के बाद में उन्हीं के शिष्य श्रीभगवानदासजी महाराज विराजमान हुये। श्रीभगवानदासजी महाराज की दिव्य दृष्टि थी। वह अपनी दिव्य दृष्टि के द्वारा भविष्य में क्या होगा ? वह सब जान लेते थे। शाहपुरा ठिकानें के श्रीराव प्रताप सिंहजी आदि उनके शिष्य थे। श्रीभगवानदासजी यहां गुफा में बैठे-बैठे ही सारे संसार की गति विधि बता देते थे। आपने बड़े-बड़े चमत्कार किये हैं। राजस्थान क्षेत्र में बोरिंग, कुवें बहुत से करवा दिये हैं। जिन में अथाह पानी है। वे आकाश-पाताल की गति विधि जानते थे। आपने इस क्षेत्र का बहुत सुधार किया। आप त्रिवेणी धाम की गद्दी पर १०० वर्ष से अधिक समय विराजमान रहे, आपके बाद में आपके शिष्य श्रीनारायणदासजी महाराज विराजमान हुए।

श्रीनारायणदासजी महाराज का जन्म विक्रम सम्वत् १९८४ में आश्विन (आसौज) बदी ७ (सप्तमी) को त्रिवेणी एवं शाहपुरा के बीच चिमनपुरा ग्राम में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। आपकी पूज्या श्रीमाताजी का नाम श्रीमती भूरी बाई एवं पिताजी का नाम श्रीरामदयालजी था। आप चार भाई और तीन बहिनें थी। आपके तीन भाई और एक बहिन क्षय रोग से खत्म हो गये। आपको भी बचपन में ही क्षय रोग लग गया था। बचने की कोई आशा नहीं थी। इस कारण आपकी माताजी ने बाबा श्रीभगवानदासजी के चरणों में समर्पित कर दिया। श्रीभगवानदासजी महाराज की शरण में आये बाद में श्रीनारायणदासजी महाराज स्वस्थ हो गये और स्थान का कार्य भार देखने लगे। श्रीनारायाणदासजी ने अपनी जन्मभूमि में पुराना मन्दिर था उसका जीर्णोद्धार कराकर श्रीसीतारामजी की मूर्ति विराजमान करी और अपनी छोटी बहिन अनोफ बाई को सेवा-पूजा का भार सौंप दिया। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार विक्रम सम्वत् २०१७ में हुआ था। श्रीनारायणदासजी महाराज श्रीबाबा भगवानदासजी के सान्निध्य में बहुत ही कठोर तपस्या व्रत आदि करते थे (१२) बारह वर्ष तक तो ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की धूप में १२ बजे से ३ बजे तक बालू (मिट्टी) में तपते थे। सर्दी में त्रिवेणी गंगा में रात्रि के

११ बजे से २ तक खड़े रह कर श्रीराम मन्त्र का जप करते थे। वर्षा ऋतु में श्रीजगदीश भगवान् के मन्दिर के पास पहाड़ पर बैठ कर श्रीराम मन्त्र का जाप करते थे। आप तपस्या काल में महिनो-महिनों भर बिना अन्न खाये ही रह जाते थे। और मौन रहते थे। श्रीभगवादासजी महाराज के साकेत वास के बाद में मार्गशीर्ष सुदी १५ गुरुवार विक्रम सम्वत् २०२८ सन् १९७१ को विशाल भण्डारा हुआ और उसी दिन श्रीनारायणदासजी महाराज का गद्दी-अभिषेक हुआ। यहां त्रिवेणी धाम में जितने भी निर्माण कार्य हुए सब श्रीनारायणदासजी महाराज के कर कमलों द्वारा ही हुए हैं। मन्दिर-भण्डार सन्त निवास सत्संग भवन रामलीला भवन गौशाला यज्ञशाला। यह यज्ञशाला तो विश्व में अपना पहला स्थान रखती है ऐसी और यज्ञशाला विश्व में दूसरी नहीं है। मन्दिर में और श्रीगंगादासजी महाराज की छतरी में श्रीभगवानदासजी की छतरी में संकीर्तन एवं श्रीरामचरितमानस पाठ हो रहा हैं। १५०० गायें और ५०० सन्त स्थान में स्थायी रहते हैं। फार्म में खेती करते है और खेत के चारों तरफ परकोटा है। श्री त्रिवेणी धाम की शाखायें बहुत हैं। सारे भारत में फैल रही हैं। श्रीनारायणदासजी महाराज ने बहुत से मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाया हैं। बहुत से विद्यालयों का निर्माण एवं बहुत सी चिकित्सालय - धर्मशालादि का निर्माण करवाया। आपका जीवन ही परोपकारमय हो गया है।

श्रीखोजीजीद्वाराचार्य श्रीब्रह्मपीठाधीश्वर काठियापरिवाराचार्य श्रीनारायणदेवाचार्य जी महाराज, डाकोर गुजरात एवं त्रिवेणी धाम शाहपुरा, जयपुर।

श्रीनारायणदासजी महाराज द्वारा यज्ञ सम्पन्न हुये उनकी नामावली इस प्रकार से है:-

१-श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक चैत्र सुदी १ बुधवार विक्रम सम्वत् २०३० सन् १९७३ चैत्र सुदी १० गुरुवार तक त्रिवेणी धाम में।

२-वेद माता श्रीगायत्री पुरश्चरण चतुष्टय एवं नवकुण्डात्मक महायज्ञ चैत्र सुदी १ शनिवार विक्रम सम्वत् २०३२ में चैत्र सुदी ९ रविवार विक्रम सम्वत् २०३२ तक सन् १९७५।

३- श्रीरामयज्ञ पंचदिवसीय ग्राम धोला में विक्रम सम्वत् २०३६।

४-श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक ग्राम छारसा में।

५- श्रीराममहायज्ञ नवकुण्डात्मक बाणगंगा (बंगला) में।

६-श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) चैत्र बुदी ५ शुक्रवार विक्रम सम्वत् २०४८ सन् १९९३ त्रिवेणीधाम में।

७- श्रीराम महायज्ञ नव (९) कुण्डात्मक वैशाख सुदी ७ गुरुवार विक्रम सम्वत् २०५० सन् १९९३ ग्राम अरजुनपुरा में।

८- श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक पौष सुदी १५ गुरुवार विक्रम सम्वत् २०५३ सन् १९९७ हीरानन्दानी गार्डन पवई- ४०००७६ में।

९-श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक चैत्र बदी ५ शनिवार विक्रम सम्वत् २०५३ सन् १९९७ त्रिवेणी धाम में।

१०- श्रीराम महायज्ञ नव (९) कुण्डात्मक मार्गशीर्ष सुदी १२ मंगलवार विक्रम सम्वत् २०५५

सन् १९९८ श्रीडाकोर धाम गुजरात में।

११- श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक पौष बदी ९ शनिवार विक्रम सम्वत् २०५५ सन् १९९८ पवई मुम्बई में।

१२- श्रीराम महायज्ञ नव (९) कुण्डात्मक वैशाख सुदी १ गुरुवार विक्रम सम्वत् २०५३ दिनांक सन् १।४।१९९६ श्रीजगदीश भगवान् के मन्दिर पहाड़ों में।

१३- श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक चैत्र बदी ५ रविवार विक्रम सम्वत् २०५५ सन् १९९९ में ए.बी. रोड़ सन्त नगर, इन्दौर में।

१४- श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक दि.१।२।२००५ से ९।३।२००५ तक नन्दीग्राम स्टेडियम इन्दोर मध्यप्रदेश में।

१५- श्रीराममहायज्ञ अष्टोत्तरशतात्मक पौष वदी ५ शनिवार संवत् २०६३ सन् २००२००६ धूलिया महाराष्ट्र में।

१६- श्रीराम महायज्ञ अष्टोत्तरशत (१०८) कुण्डात्मक वैशाख बदी १ मंगलवार विक्रम सम्वत् २०६४ सन् २००७ त्रिवेणीधाम शाहपुरा में।

१७- श्रीराम महायज्ञ इक्यावन (५१) कुण्डात्मक ज्येष्ठ सुदी ५ सोमवार विक्रम सम्वत् २०६४ सन् २००७ बाण गंगा बंगला घाटी घटवारी में।

१८-श्रीमद् भागवत् पाठ दिनांक २५।४।२००६ त्रिवेणी धाम, शाहपुरा में।

(श्रीजगदीश महायज्ञ)

१९- श्रीरामचरितमानस सामूहिक पाठ व महायज्ञ सन् १९८८ श्रीगोविन्द देवजी का मन्दिर जलेबी चौक, जयपुर में।

२०- श्रीरामचरितमानस पाठ व महायज्ञ त्रिवेणी धाम में सन् १९८६ में।

२१- श्रीरामचरितमानस पाठ व महायज्ञ श्रीगोविन्ददेवजी का मन्दिर जलेबी चौक, जयपुर में। यह दूसरा यज्ञ है जयपुर में।

श्रीत्रिवेणीधाम श्रीनायणदासजी महाराज द्वारा निर्माण एवं संचालित मन्दिर एवं आश्रम-

१-त्रिवेणी धाम।

२- काठिया मन्दिर, वासुदेव घाट अयोध्या।

३- काठिया खाक चौक ब्रह्मपीठ डाकोर धाम, गुजरात।

४- चिमनपुरा शाहपुरा श्रीसीतारामजी का मन्दिर।

५- श्रीअयोध्यानाथजी का मन्दिर, त्रिवेणी धाम।

६- श्रीहनुमानजी का मन्दिर. नवरंगपुरा।

७- श्रीलक्ष्मीनायण मन्दिर बंगला बाणगंगा घटवारी।

८- श्रीकौशल्यादासजी की बगीची रेल्वे स्टेशन, जयपुर।

त्रिवेणी द्वारा निर्मित धर्मधाम की स्मृति

९- श्रीसांवल दासजी की बगीची रेल्वे ऑफिस, जयपुर।
१०-श्रीजानकी वल्लभ लाल जू का मन्दिर सेठी कॉलोनी. जयपुर।
११- श्रीरामजी मन्दिर प्राचीन भूपतवाले हरिद्वार।
१२- श्रीनसिंह मन्दिर हथौरा, सीकर।
१३- श्रीरामजी मन्दिर शिव टेकरी, ओझर मध्यप्रदेश।
१४- श्रीरामजी मन्दिर शिव टेकरी ओझर मध्यप्रदेश।
१५- श्रीहनुमानजी मन्दिर किला मालेगांव, महाराष्ट्र।
१६- श्रीवंशी वाले मन्दिर जयपुर।
१७- श्रीकनक बिहारी जी का मन्दिर, गलता गेट, जयपुर।

निर्माण एवं जीर्णोद्धार

१८- श्रीकनक बिहारी जी का कनक भवन श्रीअयोध्या।
१९- श्रीहनुमानजी बाग नया घाट श्रीअयोध्या।
२०- श्रीसीताराम जी का मन्दिर लोरवाड़ा काँवट सीकर।
२१-श्रीसीतारामजी मन्दिर पीपलोद शाहपुरा, जयपुर।
२२- श्रीरामजी मन्दिर बिचपड़ी शाहपुरा जयपुर।
२३- श्रीसत्यनारायणजी मन्दिर, देवीपुरा, शाहपुरा जयपुर।
२४- श्रीलक्ष्मी नारायणजी मन्दिर, साईवाड़ शाहपुरा, जयपुर।
२५- श्रीनृसिंहजी मन्दिर, साईवाड शाहपुरा, जयपुर।
२६- श्रीरामजी मन्दिर, केली, मध्यप्रदेश।
२७- श्रीहनुमान मन्दिर जापान वालों की धर्मशाला गोर्वधन, उत्तरप्रदेश।
२८- श्रीराधाकान्त जी का मन्दिर जावनपुरा धामाई शाहपुरा।
२९- श्रीखाकी अखाड़ा अयोध्या, उत्तरप्रदेश।
३०- श्रीराम दरबार मन्दिर, शिव टेकरी ओझर मध्यप्रदेश।

श्रीनारायणदासजी महाराज द्वारा शिक्षा विद्या एवं चिकित्सालय, हॉस्पिटल:-

१- बाबा श्रीभगवानदास महाविद्यालय चिमनपुरा, शाहपुरा जयपुर।
२- सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र (रेफरल) हॉस्पिटल अजीतगढ़, सीकर।
३- बाबा श्रीगंगादास महिला महाविद्यालय, शाहपुरा जयपुर।
४- बाबा श्रीनारायणदास उच्च माद्यमिक विद्यालय साईवाड़ शाहपुरा।
५- वैष्णव कुलभूषण राजकीय माद्यमिक विद्यालय साईवाड़ शाहपुरा।
६- बाबा भगवानदास चिकित्सालय, बलेश्वर तहसील विराटनगर।

श्रीनारायणदासजी से निर्मित शिक्षा संस्थान

७- बाबा श्रीनारायणदास चिकित्सालय सेन्धवा, मध्यप्रदेश।
८- श्रीभूरी बाई चिकित्सालय, चिमनपुरा. शाहपुरा।
९- अनोफ बाई महाविद्यालय, चिमनपुरा शाहपुरा य
१०- केशव विद्यापीठ बाबा नारायणदास छात्रावास, जयपुर।
११- श्रीनारायणदास चिकित्सालय, काँवट सीकर।
१२- श्रीजगद्‌गुरुश्रीरामान्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय मदाउ, जयपुर।
१३- श्रीजगद्‌गुरुश्रीरामान्दाचार्य वैदिक छात्रावास, त्रिवेणी धाम, शाहपुरा।

शिविर आदि प्रथम राजस्थान भ्रमणशील शल्य चिकित्सा ईकाई शिविर, चैत्र बुदी ५ बुधवार स्मवत् २०३७ दिनांक २५।३।१९८१। दूसरा चैत्र बुदी १० गुरुवार विक्रम सम्वत् २०३९ दिनांक ७।४।१९८३ तीसरा भाद्रपद सुदी ३ मंगलवार विक्रम सम्वत् २०४२ दिनांक १७।६।१९८५ चौथा:- आश्विन सुदी १३ शुक्रवार विक्रम सम्वत् २०४५ दिनांक १३।१०।१९८६ नेत्र दान शिविर दिनांक १०।०४।१९९९ में।

ψ सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नम: ψ

बहुमुखी प्रतिभाके प्रतिक काठियापरिवाराचार्य स्वामीश्रीनारायणदासजी महाराज

कोई एक विशेष कार्य करने पर भी समाज में ख्याति प्राप्त होती है, यह बात अलग है कि वह सामाजिक ख्याति प्राप्त के लिये नहीं परन्तु अपना कर्तव्य या सेवा समझ कर कार्य कर रहा है। परन्तु सभ्य समाज व्यक्ति की कार्य निष्ठा का सम्मान करता ही है जैसे कोई संत सेवा करता है तो हम उसे संत सेवी कहकर सम्मानित करते हैं। कोई भजनानंदी कोई त्याग मूर्ती हो या ग्रन्थ सहित्य लेखक हो गौ सेवक हो या धर्म संस्थानों का निर्माण कर्ता हो तो उसे उसी के कार्य से उसकी ख्याती प्राप्त करा कर या बतला कर समाज उसे गौरवान्वित करता है। जिससे अन्यों को भी अच्छे कार्य करने कराने की प्रेरणामिलती है। यह तो एक शुभ कार्य की बात हुई। परन्तु यह सभी गुण जब एक ही किसी महापुरुष में विद्यमान हों तो गुण ग्राही समाज में वह विशेष रूप से पूजनींय होता है। और महापुरुष की कोटि में उनकी गणना होती हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रीरामानन्दसम्प्रदायागत ऐसे किसी महापुरष का नाम अगर आज लिया जाए तो नि: संदेह वह है पूज्यपाद वर्तमान श्रीखोजीदेवाचार्य काठिया परिवाराचार्य स्वसम्प्रदाय निष्ठ गौ संत सेवी अनेक विशाल यज्ञों के आयोजक राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम को जगद्‌गुरुश्रीरामानन्दाचार्य जी के साथ जोडने के सफल प्रयासक साहित्य प्रेमी श्रीस्वामीनारायणदासजी महाराज त्रिवेणीधाम जयपुर एवं डाकोर

निसंदेह श्रीमहन्त श्रीनारायणदासजी महाराज यथार्थ में बहुमुखी प्रतिभा के प्रतिक हैं, ऐसे महापुरुष सम्प्रदाय एवं समाज के भाग्य से कभी कभी भगवत् कृपा से विशेष प्रयोजन से प्रकट होते हैं,

ज्ञातव्य है, कभी कहीं कोई निर्माण कार्य विशेष रूप से करता है, या कोई संत सेवा में ध्यान देता है , या कोई दीन दुखियों की सेवा में अपना सर्वस्व मानता है अपना कोई साहित्य सेवा में प्रवीण होता है। परन्तु सभी कार्य एक साथ करना और सभी में एक जैसी सफलता प्राप्त करना संपूर्ण भगवत् कृपा के बिना असम्भव है ।

कहने की आवश्यकता नहीं श्रीमहन्त श्रीनारायणदासजी महाराज एक श्रेष्ठ जागरुक महापुरुष से भी श्रेष्ठ उन का कार्यहै वह तो पिछेले कितने ही वर्षो से सफलता पूर्वक कर रहे हैं। जैसे विशाल यज्ञों का आयोजन धर्म प्रचार गौ संत सेवा अनुष्ठान धार्मिक पत्र- पत्रिकाओं का प्रकाशन संत सम्मेलन विशाल कथाओं - प्रवचनों का आयोजनों द्वाराजनता को धर्म प्रेमी बनाना आदि इसके उपरान्त अभी आपने राजस्थान सरकार द्वारा निर्माणाधीन संस्कृत विश्वविद्यालय का नाम **जगद्गुरुश्रीरामान्दाचार्य संस्कृत विश्व विद्यालय** रखवाने में जो सफलता प्राप्त की है, वह आपकी सम्प्रदाय निष्ठा का अनुपम श्रेष्ठ उदाहरण है। और हम सभी के लिये प्रेरणा स्त्रोत है कि अगर निष्ठा से कोई भी संकल्प किया जाए तो वह अवश्य पूर्ण होता है ।

ज्ञातव्य है, सन् १९९७ पवई बम्बई में आपके द्वारा किये गये महायज्ञ में आनंदभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज का विशेष आमंत्रण पर पधारना हुआ । हमेशा सम्प्रदाय की चिन्ता में मग्न रहने वाले आचार्यश्री ने कर्णाति कर्ण सुना कि राजस्थान सरकार संस्कृत विश्व विद्यालय की स्थापना करना चाह रही है।'बस' आचार्यश्री के मन में विचार स्फुरित हुआ कि अगर इसका नाम श्रीजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी के नाम पर हो तो अति उत्तम होगा। आपने यह विचार उक्त यज्ञ में श्रीमहन्त श्रीनारायणदासजी महाराज के सॉमने प्रकट किया महाराज श्री ने उसे सहर्ष स्वीकार करते हुऐ यह नाम रखवाने का हर सम्भव प्रयत्न करने का वचन दिया । यद्यपि यह कार्य इतना सहज नहीं था परन्तु सत्य संकल्प निस्वार्थ भाव एवं संपूर्ण भगवत कृपा के आगे कुछ भी असंभव नहीं होता भक्तों में ही नहीं राजनेताओं पर भी अपना प्रभाव जमाना करोड़ो का खर्च करना तन मन धन से हमेशा इस कार्य के लिये तत्पर रहना कोई सामान्य कार्य नहीं है परन्तु स्व सम्प्रदाय निष्ठ भगवत्कृपा पात्र श्रीमहन्त श्रीनारायणदासजी महाराज ने यह सब कर के सफलता प्राप्त की इस के उपरान्त आप श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की मुख्य पीठ गलता गद्दी जो कुछ समय से विवाद ग्रस्थ है उसे भी- संपूर्ण श्रीरामानन्दसम्प्रदायागत करवाने का प्रयत्न कर रहे हैं, इतना ही नहीं कुछ हद तक उस में आपने सफलता भी प्राप्त कर ली है।

अगर कुछ व्यवधान है तो वह हमारी अपनी ही कमजोरी एवं सम्प्रदाय के संतों में मतैव्य की कमी के कारण ही है अन्यथा अन्य उक्त कार्यो की तरह इस में भी विजय श्रीआपको ही वरण कर रही थी ।

इतिहास साक्षी है जो सभी क्षेत्र में विजयी होता है उसे अपने ही परास्त करके मात्र अपने अहं को पोषने के लिये समाज सम्प्रदाय का तो अहित करते ही हैं अपने को जयचंदो का कतार में खड़ा कर जीवन भर कलंकित होते हैं ।

काश इस भगवान् श्रीराघवेन्द्र द्वारा संस्थापित उनकी इस प्रिय सम्प्रदाय में तथा कथित कुछ अनिष्ठ तत्व न होते तो कुछ सम्प्रदाय द्रोहियों कों जो आज कुछ न कुछ सम्प्रदाय पर दोष लगाने का जो मौका मिल जाता है वह न मिलता यद्यपि इस सम्प्रदाय को प्रथम से ही शुदृढ वनाने का योगदान जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यजी एवं पंडित सम्राट् स्वामीश्रीवैष्णवाचार्यजी, स्वामीश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र स्वामी श्रीरामवल्लभाशरणजी, स्वामीश्रीरामपदार्थदासजी, पंडित श्रीअखिलेश्वरदासजी, रामायणीश्रीरामकुमारदासजी मणीपर्वत, पण्डित श्रीअवधकिशोरदासजी, श्रीप्रेमनिधिजी ने प्रथम से ही किया उपरान्त वर्तमान में भी जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी महाराज, द्वाराचार्य स्वामीश्रीनारायणदासजी महाराज , रामायणी श्रीअवधेशदासजी, दर्शन केसरी समीक्षा सम्राट् श्रीवैदेहीकान्तशरणजी जैसे स्वसम्प्रदाय निष्ठ विद्वान महापुरुष सम्प्रदाय में लगे प्रत्येक कुर्तक का उत्तर देने में सक्षम हैं। और समीक्षा ग्रन्थ एवं आक्षेप निराकृति ग्रन्थों के द्वारा सभी आक्षेपों का सफलता पूर्वक उत्तर दिया है, और आगे भी देने को तत्पर हैं, इन सभी तथ्यों से सम्प्रदाय का वह कुछ विगाड तो नहीं सकते परन्तु समय एवं धन का दुरुपयोग तो होता ही है । अस्तु

मेरी राय में स्व सम्प्रदायनिष्ठ श्रीमहन्तस्वामीनारायणदासजी महाराज सही अर्थो में आचार्य हैं, जिन्होने अपनी अपने सम्प्रदाय की अपने पद की गरिमा को अपने उत्तरदायित्व को समझते एवं वढाते हुए उक्त लिखित अनुसार यज्ञ वैष्णवाराधन श्रीसम्प्रदायाचार्य के नाम पर विश्वविद्यालय का नामकरण के साथ साथ अब साहित्य सेवा में भी रुचि दिखाई है इसी श्रृंखला का यह श्रीरामानन्दवेदान्त दर्शन भण्डार का वेद-वेदान्त रहस्य तत्व बोधक एक ग्रन्थ आपके हाथों में है दूसरा ब्रह्मसूत्र रहस्य बोधक सद्ग्रन्थ का कार्य प्रगति पर है अतिशीघ्रहीं आप सवों के स्वाध्यायार्थ प्रस्तुत हो जायगा। यह हम सभी के लिये गौरव पूर्ण होने के साथ प्रसंसनीय एवं अनुकरणीय भी है। इति शुभम्-

ले . म. मं. श्रीरामावतारदासजी (रत्न ,
वेदान्त पीठ सारंगपुर अहमदाबाद

संक्षिप्तपरिचय

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी

ले.श्रीकृष्णचन्द्र वैष्णव

१- जन्मनाम : श्रीरामप्रसादजी
२- दीक्षानाम : श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी
३- अन्य नाम तथा उपाधियां : योगीराज, योगीन्द्र, यतिराज आदि
४- सम्प्रदाय : श्रीरामानन्दीय
५- सम्प्रदायाचार्य - द्वाराचार्य : चालीसवें सम्प्रदायाचार्य
६- पिताश्री का नाम : श्रीविश्वम्भर प्रसादजी "आनन्द वर्धन"
७- मातुश्री का नाम : सुश्रीगुलाबदेवीजी
८- सम्प्रदाय गुरु श्री का नाम जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यजी वेदान्तकेसरी
९- अन्य गुरुजनो के नाम । (१) देवप्रयाग स्थित एक महात्मा- योग गुरु
१०- प्रधान शिष्यों के नाम : ज.गु. स्वामीश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी
११- गोत्र-जाति- वर्ण : त्रिप्रवरान्वित, वशिष्ट गोत्रीय शुक्ल यजुर्वेदीय कान्यकुन्ज ब्राह्मण
१२- जन्मतिथि : चैत्र शुक्ल नवमी (श्रीरामनवमी) वि. सं. १९४४
१३- सम्प्रदाय दीक्षा तिथि : वि. सं. १९७८ (ई. सं. १९२९
१४- पाटोत्सव तिथिः वि. सं. २००९ (ता. २०-११-१९५२ ई.स.)
१५- साकेतवास भाद्रकृष्ण नवमी सम्वत् २०४६ ता.२५-८-१९८९
१६- जन्म स्थान वाराणसी (उ.प्र.)
१७- सम्प्रदाय पीठ स्थान : जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ विश्रामद्वारका श्रीशेषमठ (सौराष्ट्र) तथा श्रीकोसलेन्द्रमठ अहमदाबाद ।

१८- साम्प्रदायिक रचनाये : (१) नव्य न्याय जागदीशी व्याधिकरण में संस्कृत टीका । (२) वेदरहस्य में हिन्दी टीका । (३) सिद्धान्त दीपक में किरणावली (संस्कृत) (४) ब्रह्म सूत्र आनन्दभाष्य में टीका (५) श्रीरघुवरीयवृत्ति विवरण संस्कृत टीका (६) योग सूत्र विवरण (संस्कृत) (७) तत्त्व त्रयसिद्धि (संस्कृत) मूलवादग्रन्थ (८) नव्यन्याय खंडनोद्धार' की दीपिका नामक टीका । (९) वेदार्थचन्द्रिका मूल वाद ग्रन्थ (१०) अध्यायसध्वंस लेश में संस्कृत टीका । (११) श्वेताश्वतरोपनिष में रामानन्दभाष्य (१२) चिदात्मप्रकाशः प्रभृति ।

(१९) सन्दर्भ ग्रन्थ : (१) श्रीसम्प्रदाय दिग्दर्शन (२) देशिक परिचर्या (३) श्रीरघुवराचार्य स्मृति ग्रन्थ (४) श्रीवैष्णवमताब्जभाष्कार की गुजराती टीका की भूमिका । (५) जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य पीठ पत्रिका । (६) शताब्दि स्मारिका । (७) जीवन ज्योतिनी एक झांखी ।

(२०) संक्षिप्त जीवन परिचय : सहिष्णुतां परोपकारिता, दयालुता, सरलता, सहनशीलता आदि गुण सम्पन्न पिताश्री की उदारताने उन की आर्थिक स्थिति को पनपने नहीं दिया था फिर भी गृहस्थी की गाडी चल रही थी । कुछ चाटुकार लोग उन के इन गुणो का नाजायज फायदा उठाते हुये आनन्द कर रहे थे अतः उन का उपनाम "आनन्द वर्धन" था । पतिपरायणा और सुशील मातुश्री अपने पति के अनुकूल रह कर जीवनयात्रा में पति का साथ दे रही थी । ऐसे दैविक गुण सम्पन्न श्रीवैष्णव दम्पति को एक मुक्तात्मा भगवान् श्रीरामजी के प्रसाद स्वरूप पुत्र रत्न के रूप में प्राप्त हुआ । अतः 'राम' में निष्ठा रखने वाले पिताश्री ने शिशुका नामउसकी जन्मतिथि तथा राशि के अनुसार "रामप्रसाद" रक्खा । शैशव काल से ही शिशु रामप्रसाद विभिन्न योग मुद्राओं में ही सोते थे मानो कोई शिशुरूप योगभ्रष्ट योगीराज गहरी समाधि में लीन हो । बालक रामप्रसाद अपने बाल्यकाम में ही जगत् के प्रति उदासीन रहने लगे । यह उदासीनता मातुश्री को भयजनक लगी और उन्होने अपने वात्सल्य और स्नेह से उस विरक्ती को तोडना चाहा परन्तु वे सफल मनोरथ नहीं हो सकी ।

वि. सं. १९५२ में आठ वर्ष की आयु में बालक रामप्रसाद के यज्ञोपवीत संस्कार के साथ ही द्विज कर्म अधिकारी होने पर संस्कृत शिक्षण आरम्भ हुआ । घर के धार्मिक संस्कारों की छाप बालक पर पड रही थी । मातुश्री के साथ नित्य गंगास्नान तथा भगवान् विश्वनाथ के दर्शन होते थे । मातुश्री भगवान् श्रीराम जी के चरित्र की कथा कहानियों के रूप में सुनाती रहती थी । उन चरित्रों को सुनकर शुद्ध और सरल बुद्धी सम्पन्न बालक उन कहानियों में खो जाता था । बालक रामप्रसाद को श्रीहनुमानजी की भक्ति तथा सेवा पूजा से विशेष प्रेम था । धीरे-धीरे यह प्रेम उनके जीवन का एक अंग बन गया । भक्ति तथा सेवापूजा से प्रसन्न होकर वि.सं. १९५५ में बालक रामप्रसाद की ग्यारह वर्ष की आयु में श्रीहनुमानजी ने उनको साक्षात् दर्शन दिये । उस दिन बालक भगवान् विश्वनाथ के दर्शन करके घर लौट रहा था तो उस ने देखा कि एक जिस तरह सुरसा के सामने श्रीहनुमानजी ने अपना शरीर बढ़ाया था उसी तरह उस वानर का शरीर भी बढ रहा है और बढता ही जा रहा है । यह देखकर बालक इतना डर गया कि वह बेसुध होकर वहीं गिर पडा । कुछ राहगीरों ने बालक को घर पहुंचाया । उचित उपचार के बाद बालक में चेतना का संचार हुआ परन्तु वह अत्यधिक भयभीत था । मातुश्री ने बालक को आश्वासन दिया और समझाया कि यह तो तेरे ईष्टदेव श्रीहनुमानजी ने तुझे दर्शन दिये हैं । तू तो उनका भक्त है भला भक्त को अपने भगवान् से कैसा डर ? अत्यन्त कयालु श्रीहनुमानजी अपने भोले भक्तों को कभी नहीं सताते इस आश्वासन तथा मातृप्यार से बालक को विश्वास हो गया और वह आनन्द विभोर हो गया । श्रीरामभक्त श्रीहनुमानजी के दर्शन होते ही रामप्रसाद रामभक्ति का अधिकारी हो गया ।

वि.सं. १९६२ में मातुश्री का अचानक साकेतवास हो गया इस से किशोर रामप्रसाद दिग्मूढ हो गया क्योंकि उस ने सारे संसार को अपनी मा की मूर्ति के रूप में साकार से भी विरक्त कर दिया और वह पिताश्री श्रीविश्वम्भरप्रसादजी तथा अनुज श्रीलक्ष्मणप्रसाद को सोता छोड कर घर से निकल पडे । वाराणसी के ही दों मित्र श्रीकन्हैयालाल तथा श्रीकुबेर भी उन के सहयात्री बने । ये

तीनों नन्हे सुकुमार किशोर विशाल अनजान संसार में भटकने लगे । भटकते भटकते ये लोग गंगासागर पहुंचे । वहां पहुंचते पहुंचते तीनों धनाभाव यात्रा कष्ट और लोगोंके कपटजाल के कारण बहुत दुखी हो गये । इन कष्टो से घबराकर दोनों साथी अपना धैर्य खो दिया और वापस वाराणसी जाने के लिये बेचैन हो गये । यह देखकर रामप्रसादजी ने भूख से पीडित उन दोनों को पेडे खिलाये, टिकट खरीद दिये और हावडा स्टेशन से रेल में बिठाकर वाराणसी के लिये विदा किया । दृढ निश्चयी श्रीरामप्रसादजी वहां से जगन्नाथपुरी पहुंचे । धन के अभाव से पीडित उन को अपने वस्त्राभूषण बेच देने पडे । इस प्रकार जो धन प्राप्त हुआ उस से वे रामेश्वरम् पहुंचे । परन्तु रामेश्वरम् में धनाभाव अपरिचित भाषा किशोरावस्था के कारण अवज्ञा, भोजन प्राप्त में कठिनाई वहैरह समस्यायें श्रीरामप्रसादजी का हृदय भंग करने लगी इन परिस्थितियों से घबराकर एक बार तो उन्होने संकल्प कर लिया कि वापस घर चला जाय, परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हे मां की शिक्षा याद आ गई । मातुश्रीने कहा था कि साधु मत बनना और यदि एक बार साधु बन ही जाओ तो एक सम्पूर्ण और अच्छे साधु बनना । इस स्मृति में उन को अपने सही मार्ग से विचलित होने से बचा लिया । और उन में एक अलौकिक शक्ति भरदी इस से उन्होने समस्त कठिनायों को हंसते हुये झेलना शुरू कर दिया । फिर तो जहां चाह वहां राह के अनुसार सच्चे अर्थों में उनकी तीर्थयात्रा प्रारंभ हो गई । उन्होंने रामेश्वर धनुष्कोटि आदि तीर्थों सहितदक्षिण के समस्त तीर्थों के दर्शन किये । वि.सं. १९७८ के कुंभ पर्व पर वे उज्जैन पधारे जहां उनको ज.गु.श्रीरामान-न्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यजी "वेदान्त केशरीजी" के दर्शन हुये । वहीं पर श्रीरामप्रसादजी ने ज.गु. श्री से परम्परागत प्रथा से पंचसंस्कार युक्त विरक्त वैष्णवी दीक्षा प्राप्त की तथा विधिवत् विविध शास्त्रों का अध्ययन तथा योग साधन प्रारम्भ किया । थोडे दिनों बाद गुरु आज्ञा लेकर आप श्रीने उत्तरांचल की यात्रा के लिये प्रस्थान किया । शैशवकाल में ही योगमुद्रायें प्रदर्शित करने वाले व्यक्ति को यदि योग में अभिरुचि हो तो आश्चर्य ही क्या है ? आपश्री का इस अभिरुचि की पूर्ति हुई देवप्रयाग के एक उच्चशिखर पर । यहां के एक योगी महात्माने आपश्री को अनेको यौगिक क्रियाओं का ज्ञान करवाया तथा आगे और पढने का आदेश दिया । साथ ही भविष्य में योग और अध्ययन में उन्नति प्राप्त करने का वरदान भी दिया । इन्ही महात्माजी की आज्ञा से आपश्री ने हिमालय-प्रवास छोडकर चित्रकूट की और प्रयाण किया । एक दिन जैसे ही आपश्री श्रीहनुमान धारा के निकट पहुंचे कि आपश्री में तपस्या करने की लगन उत्पन्न हुई । फलस्वरूप कठोर तपस्या प्रारंभ हो गई । इसी काल में "यजदेव संस्कृत महा विद्यालय" में अध्ययन करने की अन्त: प्रेरणा का उदय हुई और विद्याध्ययन भी प्रारंभ होय गया । विद्याध्ययन से ज्ञाननेत्र उघडते ही आपश्री में अपने गुरुदेव के दर्शन करने की लालसा उत्पन्न हो गई । एक दिन भगवान् श्रीरामजी ने स्वप्नादेश दिया कि ऊंझा जाकर अपनी गुरुदर्शनाभिलाषा पूर्ण करो । वहां आचार्य चरण को भी तुम्हारी आवश्यकता है । तुम तो मुक्त जीव हो, अत: सरल स्वभाव जनसमुदाय को भक्ति का- विशेष कर मेरी भक्तिका - सरलतम उपाय बताकर उस को कल्याण मार्ग पर आरूढ करो । इस भगवदादेशानुसार आपश्री ने अविलम्ब चित्रकूट से प्रस्थान किया और ऊंझा पहुंचे । शिष्य गुरु का यह मिलन शक्ति और

शक्तिमान के मिलन के समान सिद्ध हुआ । अनेक सांसारिक कष्टों के भोग, महात्माओं के सत्संग ज्ञानियों के सदुपदेश, अपनी तपस्या तथा योगाभ्यास से आपश्री के जीवन कलुष, सांसारिक माया और शरीर मोह समाप्त हो गये थे । भगवान् श्रीरामजी को ही शरणागत, अपने इस शिष्य को गुरुदेव ने "रामप्रपन्नाचार्यजी" कह कर संबोधित किया । उसी समय से आप "श्रीरामप्रसादजी" से "श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी" बन गये ।

आपश्री ने अपने गुरुदेव विद्वानों से अनेक शास्त्रो में प्रवीणता प्राप्त की । गुरुदेव के अवध पधारने पर आप राणापुर में रहकर महन्त श्रीकेशवदासजी द्वारा संचालित विद्यालय में अध्ययन करने लगे । यहां पर पंडित सम्राट् स्वामीश्रीवैष्णवाचार्यजी से आप श्री का प्रथम परिचय हुआ । पाठशाला के छोटा उदयपुर चले जाने पर आपश्री भी वहां गये पर बाद में ब्रह्मचारीजी श्रीवासुदेवाचार्यजी तथा ज.गु.श्रीजानकीदासजी का भी समागम हुआ । एक बार गुरुदेव के साथ आपश्री मालसर भी पधारे थे । कालक्रम से आपश्री टाटम्बर धारण तथा दूध कन्द-मूल-फलाशन पर आश्रित रह कर प्रभु भक्ति और मुक्ति मार्ग पर अग्रसर हुये ।

वि.सं. २००९ (ता.२०-११-१९५२) में आपश्री को सम्प्रदायाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया गुरु परम्परा से प्राप्त आचार्यपीठ श्रीशेषमठ शींगडा का जब आपश्रीने आधिपत्य संभाला तब इस मठ की दशा अच्छी नहीं थी । स्वामीहीन वस्तु के समान इस संस्थान की दशा हो गई थी । जिस के जो कुछ हाथ लगा वही उसे उठा ले गया । "दाद में खाज" की तरह उसी समय जमीन्दारी उन्मूलन कानून आया और मठ की आय के सब स्त्रोत लगभग सूख गये । इस भयंकर परिवेश में आपश्री ने शांति से मठ की स्थिति को सम्भालते हुये स्वावलंबी बनने का प्रयत्न किया । इस प्रकार एक बीत राग पुरुष रघुवीर की सम्पति-रक्षार्थ संघर्ष को भी भगवद् भक्ति का एक रूप समझ कर पूर्ण तन्मयता के साथ इस भक्ति विशेष" में लग गया । आपश्री इस तपस्या में सफल हुये और कालान्तर में मठ की व्यवस्था सुचारू रूप से चलने लगी ।

मठ की व्यवस्था सुचारू रूपसे प्रतिष्ठित होतेही आपश्री को परम्परा (श्रीरामानन्दसम्प्रदाय को श्रीरामानुज सम्प्रदाय के अधीन मान कर रामानुजियों द्वारा श्रीरामानन्दीयों को हेय मानने के कारण श्रीरामानन्दीय विशुद्ध परम्परा की स्थापनार्थ) संघर्ष से जूझना पडा । उससे सफलता पूर्वक निपट कर आचार्यश्री ने श्रीआनन्दभाष्य विवाद (कुछ व्यक्तियों ने प्रचार किया था कि श्रीआनन्दभाष्य श्रीरामानन्दाचार्यजी की कृति नहीं है) की और ध्यान दिया । अल्प काल ही में आपश्री ने अत्यन्त दृढता के साथ इस विवाद का शमन कर दिया । सर्व पण्डित सम्राट् श्रीवैष्णवाचार्यजी दार्शनिकसार्वभौम श्रीवासुदेवाचार्यजी, श्रीत्रिभुवनदासजी, स्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यजी , श्रीरामनारायणदासजी, श्रीभगवद्दासजी, रामायणी प्रेमदासजी, श्रीअयोध्यादासजी, श्रीअवधेशदासजी रामायणी आदि के साथ आचार्यश्री के अथक प्रयत्नों से श्रीआनन्दभाष्यों और श्रीरामानन्द वेदान्त दर्शन ने इस सम्प्रदाय में अपना उचित स्थान ही नहीं प्राप्त कर लिया प्रत्युत वि.स. २०२२ (१९६६ई.) से वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी तथा बृहद्गुजरात संस्कृत परिषद् गुजरात आदि में इस वेदान्त की

अजस्र कक्षायें भी चल रही हैं। जिन संस्थाओं से हजारों छात्र शास्त्री तथा आचार्य की पदवी प्राप्त कर चुके हैं। आपश्री द्वारा स्थापित "अखिल भारतवर्षीय श्रीरामानन्द वेदान्त प्रचार समिति" इस समय भी श्रीरामानन्दीय दर्शन साहित्य प्रकाशन एवं सम्प्रदाय एवं सम्प्रदाय के प्रचारार्थ कार्यरत है।

श्रीआनन्दभाष्य संघर्ष से निवृत्त होकर आपश्री अन्य सर्जन कार्यों में लग गये। पोरबंर में श्रीजानकी मठ का जीर्णोद्धार करवाकर आपश्री ने वहां एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण करवाया तथा वि.स. २०१६ श्रीरामनवमी (ता.५-४-१९६०) को उस में श्रीअवधविहारीजी के विग्रह की प्रतिष्ठा की। इस विग्रह के दाहिने पार्श्व में श्रीगोपाल लालजी तथा वाम पार्श्व में श्रीहनुमानजी के विग्रहों को भी प्रतिष्ठा की गई। इस मठ में साधु संतो के निवास आदि की सुन्दर व्यवस्था है। तीर्थ यात्री यहां पर दर्शनार्थ आते ही रहते हैं इस कार्य को पूर्ण करके आपश्री ने अहमदाबाद के पालडी विस्तार में आचार्यपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ की स्थापना की और वि.सं. २०१७ (ता.२५-३१९६१) में वहां "श्रीसाकेत विहारीजी" के विग्रह की स्थापना की। वि.सं.२०१९ आश्विन शुक्ल दशमी (विजयादशमी तदानुसार ता.२८-१९६३) को इस आचार्यपीठ में आचार्य ने "श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय" को स्थापना की। चैत्र शुक्ला नवमीं (श्रीरामनवमी) वि.स. २०२७ (ता.४-४-१९७१) को आपश्री ने इसी मठ में भगवान् योगेश्वर महादेव, निकुम्भलामर्दन श्रीहनुमानजी, श्रीसिद्धेश्वर श्रीहनुमानजी श्रीअम्बामाताजी श्रीपार्वतीजी, श्रीगणपतीजी तथा आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करवाया। उस समय पालडी विस्तार एक वन प्रान्त के रूप में था अतः यह महर्षि जमदग्नि तथा भारद्वाज के आश्रमों के समान चित्ताकर्षक प्रतीत होता था। यह मठ एक स्वतंत्र संस्थान है हालाकि इन तीनों संस्थानों का प्रभन्ध संचालन आचार्यश्री के द्वारा ही होता है। वर्तमान में इन संस्थानों में प्रचलित प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

(अ) धार्मिक : (१) नित्य नवैमित्तिक पूजा पाठ, (२) विशिष्ट अवसरों पर जयन्तियां, पर्व, उत्सव पारायण आदि का (नित्य) कीर्तन, (४) शास्त्रनिष्णात तथा योग्य विद्वानों द्वारा धर्मोपदेश, (५) सनातन धर्म के प्रचारार्थ अनेक अन्य प्रवृतियां।

(आ) संस्कृत तथा साहित्यप्रचार : (१) श्रीरघुवर संस्कृत महाविद्यालय विश्रामद्वारका श्रीशेषमठ शींगडा तथा श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महा विद्यालय श्रीकोसलेन्द्र मठ , अहमदाबाद में वेद, उपनिषद्, व्याकरण, वेदान्त,साहित्य आदि विषयों के पठन पाठन की समुचित व्यवस्था है। इन विद्यालयों में उच्च कक्षा के विद्वानों द्वारा देश के अनेक प्रांतों के तथा नेपाल तक के छात्रों को शिक्षित करने की सुन्दर व्यवस्था है। (२) संस्कृत पढने वाले छात्रों के लिये भोजन, कक्षानुसार छात्रवृतियां भी उपलभ्द करवाई जाती है। (३) संस्कृत के साथ माध्यमिक (मैट्रिक) एफ.वाय. बी. ए. तथा एम. ए की कक्षाओं में पढने वाले छात्रों को संस्कृत गवेषणा के लिये मार्ग दर्शन किया जाता है (४) शिक्षा प्रणाली प्राचीन गुरुकुलों के समान है।

(इ) योग : अष्टांग योग की साधना के द्वारा स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आलसनाश, और परमपुरुषार्थ

प्राप्त करना सिखाया जाता है। योग सिखाने के लिये योग शिबरों के आयोजन किये जाते हैं।

(ई) सामाजिक : (१) अन्न क्षेत्र (२) शिक्षा (३० उपदेशक निर्माण।

(उ) जीवदया : गौशालाओं में पशुपालन तथा गोसंरक्षण

(ऊ) साहित्य : (१) संबंधित संस्थानों द्वारा दार्शनिक धार्मिक साम्प्रदायिक साहित्य का सर्जन तथा प्रकाशन।

वस्तुत : प्राणी सेवा तथा मानवा विकास में जिस प्रकार से सहयोग दिया जा सके वे सब विषय इन संस्थानों की प्रवृतियों के अन्तर्गत आ जाते हैं।

चैत्र शुक्ल एकादशी वि.सं.२०३० (ता.३-४-१९७४) में आर्चश्री ने अपने शिष्यों के साथ नेपाल आदि की तीर्थ यात्रा के लिये प्रस्थान किया। इस दौरान ता.१-४-१९७४ ई. को नेपाल राज्य के प्रतिनिधि श्री के. एस. प्रधानने मोतीहारी में आचार्यश्री का राजकीय सम्मान किया। इसी प्रकार "श्रीत्रिभुवन विश्वविद्यालय" में भी श्रीवाल्मीकि अध्ययन संस्थान के सभी पंडितों ने आपश्री का सन्मान किया। ता. २५।४।१९७४ ई. को वाराणसी स्थित श्रीसम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीबद्रीनारायण शुक्ल की अध्यक्षता में काशी के वरिष्ठ पंडितो तथा वाराणसी के ही कर्णघंटा स्थित श्रीरामानन्द पीठ संस्कृत महाविद्यालय के सब अध्यापकों तथा छात्रों द्वारा आपश्री को जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी के रूप में सन्मानित किया। वि.सं. २०३३ (ता.१२-१-१९७७) को आचार्यश्री ने वाराणसी के शंकुधारा नामक स्थान पर "आनन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य पीठ की स्थापना की। इसी दिन वाराणसी की विशिष्ट विद्वत् परिषद् ने आपश्री का जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी के रूप में सन्मान करते हुये अभिनन्दन पत्रभेट किया। इस सन्मान सभा में सर्वश्री पंडितराज राजेश्वरशास्त्रीजी, पण्डितराजश्रीकरुणापतिजी त्रिपाठी, श्रीरामपांडेय आदि महानुभाव उपस्थित थे। उसी दिन "श्रीरामानन्द युवक संघ" के मन्त्री महंत श्रीरामविलासदासजी, श्रीमहावीरदासजी आदि श्रीरामानन्दीय मदानुभावों ने भी आचार्यश्री को "सम्प्रदायपीठ" पर अभिषिक्त किया तथा अभिनन्दन पत्र भेंट करके सन्मानित किया।

व्यक्तिगत जीवन में आचार्यश्री योगसाधन में रत रह कर अपनी "योगीन्द्र" उपाधि को यथार्थ कर रहे हैं। कभी कभी आपश्री लम्बी समाधि में भी लीन हो जाते है। वि. सं. २०२९ को रामनवमी (ता.१२-४-७३) को आपश्री ने त्रिदण्ड ग्रहण करके श्रीरामानन्दसम्प्रदाय में वर्षों से लुप्त "दण्ड धारण व्यवस्था" का पुनरुद्धार किया।

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

(संक्षिप्त परिचय)

ले. कृष्णचन्द्र वैष्णव

१- जन्मनाम : श्री ..... उपाध्याय
२- दीक्षा नाम : श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी
३- अन्य नाम :
४- सम्प्रदाय : श्रीरामानन्दीय
५- सम्प्रदायाचार्य- द्वाराचार्य : वर्तमान ४१ वें सम्प्रदायाचार्य
६- पिता श्री का नाम :

७- मातु श्री का नाम :

८- सम्प्रदाय गुरुश्री नाम ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी, योगीन्द्र

९- गोत्र- जाति - वर्ण : शुक्ल यजुर्वेदीय वाजसनेयीमाध्यन्दिनी शाखाध्यायी त्रिप्रवरान्वित वशिष्ठगोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण

१०- जन्मतिथि : वैशाख शुक्ल तृतीया वि.सं. १९८८

११- सम्प्रदाय दीक्षा : वि.सं. २०१२ (दि.१०।५।१९५६)

१२- पाटेत्सव तिथि : श्रीरामनवमी वि.स. २०२९ (दि.११।४।१९७३)

१३- अस्तित्व काल : वि.सं. १९८८ से वर्तमान

१४- जन्मस्थान : पूर्वीय नेपाल

१५- सम्प्रदायपीठ स्थान : विश्रामद्वारकास्थ पश्चिमाम्नाय जगद्गुरुश्रीरामानन्दचार्यपीठ श्रीशेषमठ शींगडा सौराष्ट तथा श्रीकोसलेन्द्रमठ पालडी अहमदाबाद

१६- त्रिदण्डग्राहक सार्वभौम आचार्य पदाभिषेक वसन्त पञ्चमी सम्वत २०४६ श्रीरामानन्दाब्द ६९० बुधवार ता.३१-१-१९९०

१७- साम्प्रदायिक रचनाएं : संस्कृत हिन्दी नेपाली तथा गुजराती भाषाओं के लगभग २४१ ग्रंथ तथा एक मासिक पत्रिका का सम्पादन प्रकाशन

१८- सन्दर्भ ग्रन्थ : (१) श्रीसम्प्रदाय दिग्दर्शन (२) देशिक परिचर्या (३) श्रीवैष्णव मताब्जभास्कर की गुजराती टीका (४) जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ मासिक पत्रिका

१९- संक्षिप्त जीवन परिचय : आचार्यश्री के माता, पिता के नाम तथा स्वयं के मूल तथा अन्य नाम ज्ञात नहीं हो सके हैं। इतना ही ज्ञात हो सका है कि आपश्री की मातु श्री का साकेतवास आपश्री की डेढ वर्ष की आयु में ही हो गया था। परन्तु बडे भाई के सौहार्द पूर्ण संरक्षण ने उनकी कमी को कभी खटकने नहीं दिया। आपश्री का स्वभाव बचपन से ही घुमक्कड़ था अत: १२ वर्ष की आयु में ही वि.सं.२००० में पर्याप्त धन लेकर घर से निकल पडे और धन के समाप्त होने पर विराटनगर मनीआरी आदि क्षेत्रों की यात्रा करके घर लौट आये। इस प्रकार आपश्री ने अपने जीवन की प्रथम यात्रा स्वल्पवय में ही सम्पन्न कर ली। सर्व शास्त्र विष्णात और जमींदार होने के कारण आर्थिक रूप से सम्पन्न पिताश्री ने धन का अपव्यय न करके अध्ययन करने की आपको सलाह दी। आपश्री पर इस सलाह का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा और स्वभाव वश कुछ दिनों बाद एक बार फिर पर्याप्त धन लेकर घर से निकल पडे। इस यात्रा के दौरान नेपाल क्षेत्र में आप ने एक नवयुवक की लाश को एक नाले में बहते हुये देखा इस दृश्य में आप ने जीवन की क्षणभंगुर को प्रत्यक्ष रूप में देखा। इसी बीच अपने मध्यम बडे भाई की आकस्मीक साकेतवास ने आप के मन में विरक्ति भर दी परन्तु धन के समाप्त हो जाने पर इस बार भी आपश्री पुन: घर लौट आये। इस बार घर पर पिताश्री के काफी उपदेश सुनने को मिले। इन्हीं दिनों आप के यहां एक नेपाली श्रीवैष्णव महात्मा पधारे उन के व्यक्तित्व का आप पर प्रभाव पडा। कु छ दिनों वाद फिर से यात्रा के दौरान आप को कुछ दिनों के लिये मशान घाट के पास एक मन्दिर में रहना पडा। श्मशान में नित्य शवों को देखकर आप के मन में संसार के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो गई और धन के अभाव में भी आप बंगाल आसाम भूटन की ओर पैदल ही चल पडे। इसी बीच आपश्री को अपने बडे भाई की याद सताने लगी आप वापस घर पहुंच गये। इस बार पिताश्री की बहुत डांट फटकार पडी परन्तु वडे भाई का आप को पूर्ण सहृदय संरक्षण मिला। वि.सं. २००७ (१९५१ ई,स) में नेपाल

में राजकीय अशांति पैदा हो गइ। उस दौरान राजकीय तथान्यजनों द्वारा पीडित लोगों की सेवा करने में आचार्यश्री छ महिने तक अहर्निश लगे रहे।

मुक्तजीव माया के बन्धन में नहीं बन्धते इस न्याय से आपश्रीने वि.सं. २००८ की कार्तिक सुक्ल प्रतिपदा को आपने सर्वतो भावसे गृह त्याग कर दिया और आसाम के तेजपुर नगर में प्रारंभिक विद्याध्ययन शुरू किया। इन्हीं दिनों एक महात्मा ने आपश्री को खूब पढ लिख कर सुयोग्य बनने की सलाह दी। सलाह को उचित मानकर विशेष अध्ययन के लिये अपने पूर्व संस्कारों से प्रेरित होकर आपश्री एक तीर्थयात्री के साथ अवध वाराणसी मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, यमुरोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बद्रीनाथ आदि तीर्थों का भ्रमण करते हुये वि.सं. २००९-२०१०)ई.स.१९५३-५४) में ऋषिकेश पहुंचे। इसी बीच आपश्री ने ''प्रथमा'' परीक्षा पास की। ऋषिकेश से आपश्री वृन्दावन पहुंचे जहां आपश्री को ज.गु.श्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीशेषमठ स्थित श्रीरघुवर संस्कृत महाद्यिालय के विषय में ज्ञात हुआ और आपश्री भ्रमण करते हुये ता.१।७।१९५४ को श्रीशेषमठ शींगडा पहुंच गये। यहां ज.गु.श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी का पूर्व ऋणानुबंधानुसार नैसर्गिक स्नेह प्राप्त हुआ। योग्य अवसर जानकर आपश्री ने ज.गु.श्री से विरक्त वैष्णवी दीक्षा के लिये प्रार्थना की शिष्यत्व के लिये सर्वथा योग्य जानकर ज.गु. श्रीने आपश्री को पञ्चसंस्कार पूर्वक विरक्त वैशणवी दीक्षा प्रदान की। गुरुदेव की आज्ञानुसार आपश्री विद्याध्ययन में जुट गये। साथ साथ गुरु सेवा का लाभ भी लेते रहे। वि.सं.२०१५ (१९५९ ई.सं. तक आचार्यपीठ में ही अध्ययन करने के पश्चात् आपश्री अवध तथा वारणसी में विशिष्ट सिक्षा प्राप्त करके वापस आचार्यपीठ लौट आये और अपने गुरुदेव के साथ साथ श्रीसम्प्रदाय की सेवा में जुट गये। आपश्री ने (१) श्रीशेषमठ के प्रबन्ध (२) पोरबन्दर के जानकीमठ के जीर्णोद्धार उस के पुनरुत्थान तथा उस में ता.५.४.१९६०) को श्रीअवधविहारीजी की प्रतिष्ठा (३) अहमादाबद में जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ श्रीकोसलेन्द्रमठ स्थापना तथा ता.२५।३।१९६१) को उसमें श्रीसाकेतविहारीजी की प्रतिष्ठा २८-९-१९६३ को श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय की स्थापना ता.४-४-१९७१ को भगवान् श्रीयोगेश्वर महादेव श्रीनिकुम्भिलामर्दन श्रीहनुमानजी श्रीसिद्धेश्वर श्रीहनुमानजी श्रीअम्बामाताजी श्रीपार्वतीजी श्रीगणपतिजी तथा ज.गु.श्रीरामानन्दाचार्यजी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा आदि कार्यो में गुरुदेव को सम्पूर्ण सहयोग दिया।

ई.स. १९६४ में आपश्री ने व्याकरणाचार्य तथा साहित्यरत्न की परीक्षायें पास की और श्रीरघुवर रामानन्द वेदान्त महाविद्यालय के अध्यक्ष तथा प्राधानाचार्य बने। इसी काल में आप श्री की रुचि ''श्रीरामानन्ददर्शन'' में बढी और १९६७ ई.स. में ''श्रीरामानन्दवेदान्त'' से आचार्य की परीक्षा पास की। आप वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की परीक्षाओं से सम्बद्ध हैं। श्रीरामानन्दसम्पदाय के इतिहास के अन्वेषण तथा गवेषण और श्रीरामानन्द वेदान्त (विशिष्टद्वैत) के प्रचार हेतु निर्मित ''अखिल भारतवर्षीय श्रीरामानन्द वेदान्त प्रचारसमिति'' के आपश्री वर्तमान महामन्त्री हैं। श्रीगरीबदास धर्मादा ट्रस्ट, श्रीरामजी मन्दिर फतेहपुर आदि और भी कई संस्थाओं से आपश्री सम्बन्धित आचार्य या प्रबन्ध व्यवस्थापक है।

आपश्री सौम्यशरीर, व्यवहार कुशल व्याख्याता है तथा श्रीसम्प्रदाय की उन्नति विशेष कर साहित्य क्षेत्र में- के लिये अहर्निश तत्पर हैं। आप श्री को अपनी ख्याति के अपेक्षा अपने पूर्वाचार्यो की तथा स्वसम्प्रदाय की ख्याति अधिक प्रिय है। सम्प्रति आपश्री पूर्वाचार्यो द्वारा लिखित अनेक दिव्य प्रबन्धों को भाष्य टीका टिप्पणी आदि से सजाकरके उनका सम्पादन करके तथा उनको प्रकाशित करने के कार्य में दत्तचित्त हैं।

ज.गु. श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्यजी ने आचार्यश्री को सर्वथा योग्य समझ कर परम्परा से प्राप्त तथा स्वनिर्मित समस्त आचार्यपीठों संस्थाओं के हितों को आपश्री के हाथों में सुरक्षित समझकर स्वानुगामी आचार्य के रूप में ता.११।४।१९७३ को अपना अनुगामी सम्प्रदायाचार्य नियुक्त कर दिया है।

पूजारि श्रीरामरक्षिपालदास विरचितम्

वेदार्थचन्द्रिका की सूची

विषय सूची

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठों के आराध्य देव

वेदप्रतिपाद्य उभयविभूतिनायक

सर्वेश्वरश्रीसीतारामजी

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

विश्रामद्वारका
श्रीशेषमठ--शींगडा
पोरबन्दर-सौराष्ट्र फोन-२२७९५५८

श्रीकोसलेन्द्रमठ
पो. पालडी सरखेज रोड
अहमदाबाद-७ फोन-२६६०१००१

मनोकामनासिद्धश्रीहनुमानजी

राम राम राम राम राम राम

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

विश्रामद्वारका
श्रीशेषमठ–शींगडा
पोरबन्दर–सौराष्ट्र फोन–२२७९५५८

श्रीकोसलेन्द्रमठ
पो. पालडी सरखेज रोड
अहमदाबाद–७ फोन–२६६०१००१

यह दिव्यश्रीविग्रह श्रीनरेन्द्रभाई पण्ड्याजी परिवार के सौजन्य से छपा है

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकार जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यजी
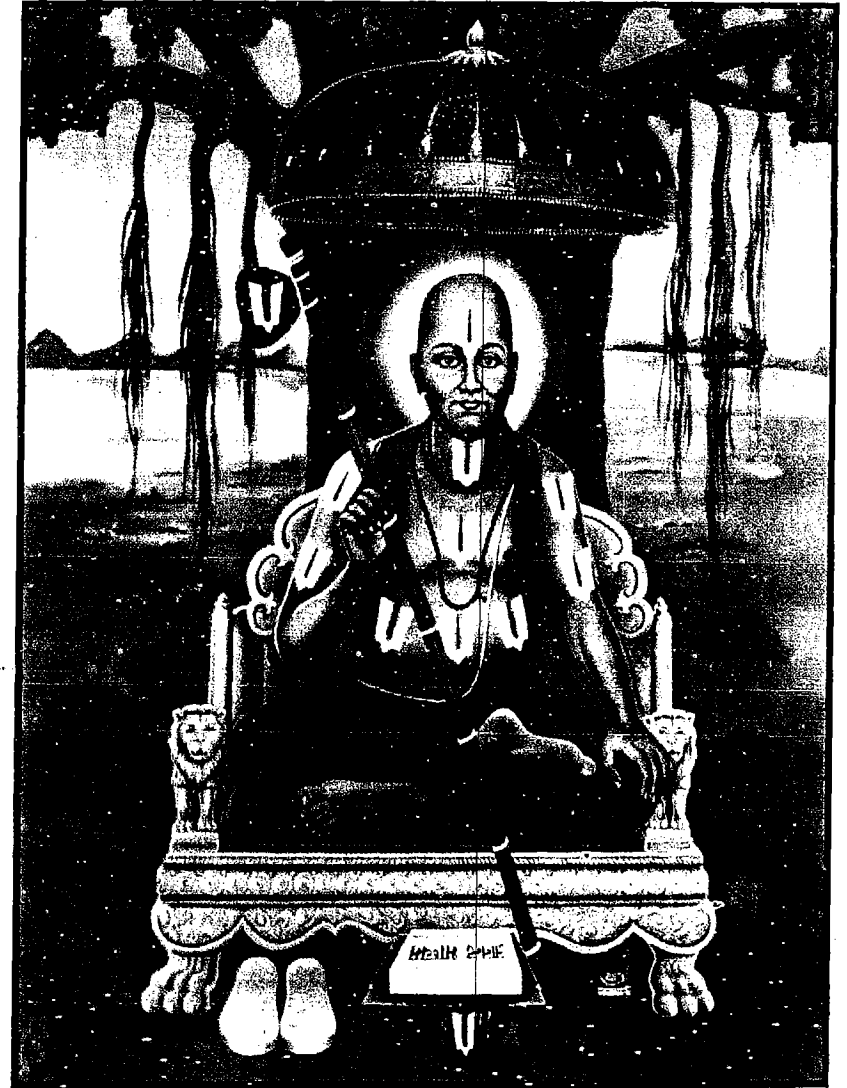
माघकृष्णसप्तमी १३५६–१५३२ चैत्रशुक्लनवमी

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

विश्रामद्वारका
श्रीशेषमठ–शींगडा
पोरबन्दर–सौराष्ट्र फोन–२२७९५५८

श्रीकोसलेन्द्रमठ
पो. पालडी सरखेज रोड
अहमदाबाद–७ फोन–२६६०१००१

यह आचार्यश्री का श्रीविग्रह शीयरकेमीकल इन्डस्ट्रीज अहमदाबाद के सौजन्य से छपा है

आनन्दभाष्यसिंहासनासीन

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामेश्वरानन्दाचार्यजी

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यपीठ

विश्रामद्वारका	श्रीकोसलेन्द्रमठ
श्रीशेषमठ-शींगडा	पो. पालडी सरखेज रोड
पोरबन्दर-सौराष्ट्र फोन-२२७९५५८	अहमदाबाद-७ फोन-२६६०१००१

यह आचार्यश्री का श्रीविग्रह शीयरकोम्युनीकेशन के सौजन्य से छपा है

❋ सर्वेश्वरश्रीसीतारामाभ्यां नमः ❋

प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारायनमो नमः

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रकृता

वेदार्थचन्द्रिका

श्रीरामाख्यं परं ब्रह्म वेदवेद्यं सनातनम् ।
नत्वा तत्वावबोधाय कुर्म वेदार्थचन्द्रिकाम् ॥१॥

❋ श्रीहनुमते नमः ❋

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रशिष्य
आनन्दभाष्यसिंहासनासीन जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य
प्रणीत

प्रकाशः

रामं स्मेरमुखं नत्वा सीताश्लिष्टतनुं मुदा ।
वेदार्थचन्द्रिकाव्याख्यां करोमि शास्त्रसम्मताम् ॥१॥
सीतानाथसमारम्भांरामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रामप्रपन्नगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥२॥

❋ श्रीसीतारामाभ्यां नमः ❋

जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्य
प्रणीत

किरण

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशम् मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥१॥'

श्रीमद्रामसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
रघुवरार्यगुर्वन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥२॥

समस्तजडचेतनात्मकसूक्ष्मस्थूलसाधारणस्यजनिमतोजगतोहितोपदेशाय प्रवर्त्तमानापौरुषेयवेदशिरोभागीयवचननिकरैरितिहासपुराणादिसमुपबृंहितैर्वक्ष्यमाणसूक्ष्मजडचेतनशरीरकसर्वशेषिहेयप्रत्यनीकालौकिक-

हितोपदेशायेत्यादि- **प्रवृत्तिनिवृत्तिप्रतिपादनपूर्वकसर्वहितप्रतिपादनकर्तृत्वमेवशास्त्रस्यशास्त्रत्वम् । तदुक्तम्-'प्रवृत्तिर्वानिवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा । पुंसामेनोपदिश्येतेतच्छास्त्रमभिधीदते' । इति। ततश्च सर्वमेवशास्त्रं वैदिकवाक्यं पुरुषस्य हितोपदेशपरकमेव । यथा 'अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम:' 'न कलञ्जं भक्षयेत्' । यथा वा लोकेऽपि 'ऋतौ भार्यामुपेयादित्यनुज्ञा' 'गुर्वङ्गनां नोपगच्छेदिति परिहा:' ततश्चेमानि वेदवाक्यानि तानि सर्वाण्यपि साक्षात्परंपरया समस्तस्यापि जगतो हितानुशासनायैव प्रवृत्तानीति सुष्ठूक्तं हितोपदेशायेति । यत्प्राणिनां परमहितन्न तत्प्रत्यक्षानुमानप्रमाणाभ्यामवगतं भवति-**

संपूर्ण जड़चेतन लक्षण सूक्ष्मस्थूल साधारण कल्प के आदि में समुत्पन्न जगत के हितोपदेश करने के लिये प्रवर्तमान तथा अपौरुषेय समस्त वेद का जो शिरोभाग '**तमेव विदित्वातिमृत्युमेतिनाऽन्य: पन्था विद्यतेऽयनाय तत्वमसीत्यादि** वचन समुदाय जो कि इतिहास पुराणादि से उपबृंहित सहकृत हो करके अर्थ का गमक हैं उन वचनों से आगे प्रतिपाद्यमान सूक्ष्म जड़चेतन शरीरवाले पदार्थमात्र का शेषी अंगी हेय प्राकृतिक गुणों का विरोधी अलौकिक अर्थात् लोकोत्तर अप्राकृतिक जो कल्याणगुण अनन्य साधारण जो गुण समुदाय हैं उससे युक्त अतएव लौकिक सागर की तरह निश्चल (अर्थात् जिस तरह लौकिक महासमुद्र अनन्त रत्नों का निधान होने पर भी अहङ्कारादि रहित होकर के अतिशान्त रहता है, इसी तरह भगवान् अनेक अलौकिक गुणों का निदान होने पर भी अति निश्चल हैं। यद्यपि लौकिक सागर में नक्र मकरादिक अनन्त दोष भी हैं, तथापि एक देश मात्र का सादृश्य यहां विपक्षित है। यदि सर्वांश का सादृश्य मानें तब तो किसी भी स्थल में दृष्टान्त दार्ष्टान्तिकभाव ही नहीं होगा, क्योंकि पर्वत महानसादिस्थल में भी पर्वतत्व महानसत्वादि रूपमें वैधर्म्य विद्यमान है। यथावा गोगवय स्थल में भी सादृश्य नहीं होगा, क्योंकि यहां भी गोत्व गवयत्वरूप से वैधर्म्य विद्यमान है) एतादृश भगवान् प्रपन्न-शरणागत जीवराशि को कृपापूर्वक दु:खमहोदधि संसाररूप महासागर से उद्धार करने की इच्छा से दशरथ के कुल में स्वेच्छया लीला विग्रह को धारण किये हैं। एतादृश सर्वेश्वर भगवान् श्रीजानकीनाथ श्रीरामचन्द्ररूप पदार्थ ही वेद के द्वारा साक्षात् अथवा परम्परया जाने जाते हैं। अभिप्राय यह है कि संपूर्ण वेदों से प्रतिपादित सर्वशेषी भगवान् श्रीरामजी ही होते हैं। जगत में '**समस्त**' यह

कल्याणगुणराशिलौकिकवारिधिरिव निश्चल: प्रपन्नजीवराशिकृपया संसारसागरादुद्धर्तुकामो धृतदशरथगृहे लीलाविग्रहो भगवान् सर्वेश्वरश्रीजानकीनाथ: श्रीरामलक्षण एवार्थ: साक्षात्परम्परया वा समधिगतो भवतीति ।

भवति-अलौकिकत्वात् । लौकिकंप्राकृतिकमेव वस्तुजातंप्राप्यस्ताभ्यां विनिवेदितं भवति नालौकिकं तस्यागममात्रवेद्यत्वादिति भाव: । तद्धितं द्विविधं प्राप्योपायभेदात् । एतादृशोपायोपेययोर्ज्ञापनाय सृष्ट्यादौवेद आविर्भूतोनतुकेनचित्कारितो नित्यत्वात् । स च वेदराशिस्तदधिकारिणां वैविध्यरुचिमतां स्वकीयपूर्ववासनानुवासितं हितं स्वकीयं स्वकीयमेवाववोधयतीति । एतावताशास्त्राणां नास्त्यारोपकता बोधका एव ते । स्वपूर्वपूर्वानेकजन्मार्जितकर्मफलज्ञापका वेदा इति हृदयम् । तदाहुराचार्यसार्वभौमा: श्रीश्रुतानन्दाचार्या: **'विकारश्चरामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्च नैति । प्रकारे विकारस्तथाचित्रसृष्टौ च हेतुर्यत: प्रणिनां प्राच्यकर्म ।' (श्रौतसिद्धान्तविन्दु: ८) इति ।**

विशेषण देने से यत् किंचित् जगत का हितोपदेशकों से भगवान् में व्यावृत्ति होती है। वेद में अपौरुषेयत्व विशेषण देने से नैयायिक मत का व्यवच्छेद होता है, क्योंकि ये नैयायिक लोग शब्द को अनित्य मानते हैं। उत्पत्तिमान् मानते हैं-तब शब्दराशि लक्षण वेद को भी उत्पादविनाशशाली मानते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं हैं, क्योंकि ऐसा यदि माना जाय तब तो पुरुष का जो भ्रम प्रमादादिक दोष हैं तादृश दोषवान् होने से लौकिक वाक्य की तरह वेद वाक्य में भी अप्रामाणिकत्व हो जायगा- अत: वेद अपौरुषेय हैं। इस पर विशेष विचार आगे करेंगे।

'**सूक्ष्मजडचेतनशरीरकेत्यादि**' मूल में जडचेतन पदार्थ मात्र प्रकार अर्थात् विशेषण है, तथा भगवान् सबका प्रकारी हैं, जिस तरह '**रूपवान् घट:**' इस प्रतीति में रूप विशेषण प्रकार है और घट प्रकारी विशेष्य है-तो इन दोनों में पृथक् सिद्ध्यनर्हत्व लक्षण अविष्वग्भाव संबन्ध होता है। इसी तरह जडचेतन रूपविशेषण तथा सर्वशेषी भगवान् में अविष्वग्भावरूप ही संबन्ध है, अतएव रूपादि विशेषण घटपटातिरिक्त में नहीं रहता है। इसी तरह प्रकृत में भी जानना चाहिये। भगवान् श्रीरामजी सर्वशेषी हैं तथा पृथिव्यादिक सकल पदार्थ शेष रूप हैं इसमें '**य: पृथिव्यां तिष्ठन्**' '**यो विज्ञाने तिष्ठन्**' इत्यादि अन्तर्यामि ब्राह्मण प्रमाण है। इसका विशेष विवेचन पुन: आगे किया जायगा।

अनादिकालिक पापपुण्यादिक शुभाशुभकर्म जाल से प्रतिबद्ध अर्थात् तादृश कर्मबंधन से बन्धा हुआ जो जीवरासि हैं, तादृश जीवों का समस्त जगत का अभिन्न निमित्तोपादान जो सर्वजगत का शेषी अंगी परेश है उनका यथार्थ ज्ञानपूर्वक नित्यसंध्यावन्दनादिक तथा नैमित्तिक उपरागादि स्नानादिलक्षण स्वकीय

कर्मप्रतिवद्धजीवस्य तथा सर्वशेषिणो भगवतः परेशस्य यथार्थाव-गमपूर्वकनित्यनैमित्तिकस्वकीयवर्णाश्रमकर्मकलापानुष्ठानसम्पादनेन जायमानपरेशध्यानार्चनपूजनादिभिः सम्पाद्यमानपरा भक्तिरेव मोक्षकारणतामासादयति । तदुक्तं- 'भक्त्यात्वनन्यया शक्य

यद्यपि जीवानां परमहितो मोक्ष एव निःशेषदुःख वीजविनाशकत्वान्नित्यत्वान्निरतिसयत्वाच्च, तदन्यस्य सातिशयत्वादनित्यत्वाच्च । तथापि पूर्वानादिकालिकलौकिकसुखा-दिजनकधर्मादिवासनया वासितान्तः करणाः प्रायोधर्मादिकमेवेच्छन्ति ततश्चतदर्थं प्रयतमाना यागाद्यनुष्ठान एव प्रवृत्ता भवन्ति । तादृशानां तानेवहितमितिकृत्वा तानेवधर्मानुपदिशति बोधयति च । एतावता न शास्त्रयातिभारोयतो बोधका एव वेदा इति तात्पर्यम् ।

ये खलु कामक्रोधादिबाह्याभ्यन्तरशत्रुभिर्वशीकृतान्तः करणास्त एव संसारान-र्थजनककर्माणि श्येनादिहिंसाकुले प्रवर्त्तन्ते तेषां कृते तदेवहितप्रायमितिमत्वा तान् प्रतितदेवोदिशति । ये तु वशीकृतकामक्रोधाद्यारातयस्ताथा पूर्वभवीयपुण्य-

वर्णाश्रमोचित कर्म समुदाय है उन कर्मों का नियमित अनुष्ठान करने से संजायमान भगवान् का ध्यानार्चन पूजनादिकों से संपाद्यमान जो परेश भगवान् श्रीरामजी की परा भक्ति होती है, वही पराभक्ति मोक्षकारणता को प्राप्त होती है। अर्थात् भगवान् की जो पराभक्ति है, वही मोक्ष का कारण है, तदितर केवल ज्ञान अथवा केवल कर्म मोक्ष का कारण नहीं है। इससे **'तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** इत्यादि श्रुतिसिद्ध केवलज्ञान कारणता का निराकरण किया गया है तथा केवल कर्म कारणता का भी प्रतिक्षेप किया गया **'मुक्तौ हेतुस्तु भक्त्यपरपर्यायंतैलधारावद्विच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव उक्तञ्च साधनदीपिकायामाचार्यवर्यैर्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यैः 'रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तककात्' इति । ऊचुश्च तथैव भवन्तः श्रीदेवानन्दार्यचरणा अपि 'त्वदीयास्मृतिस्तारिकामृत्युसिन्धोस्तथा विस्मृतिः पातिका तत्र चैव । परं योगिनांहार्दमालम्बनं त्वां श्रये राघवंसच्चिदानन्दरूपम्'** इति (गीतानन्दभाष्यम् २।१२) ऐसा आचार्यश्री का कथन है अतः इस मत में ज्ञान तथा कर्म के अंगी भक्ति ही मोक्ष का कारण है। जिस तरह घटका कारण जो कुलाल है उस कुलाल का जनक वृद्ध कुलाल पुत्र जनित घट के प्रति कारण नहीं है, किन्तु अन्यथा सिद्ध है। उसी तरह मोक्ष का कारण जो भक्ति है तादृश भक्ति में कारण जो केवल ज्ञान तथा केवल कर्म वह भी सुदूरवर्ती होने से कारण नहीं है किन्तु सुदूरवर्ती होने से कारक का कारण होने से अन्यथा सिद्धप्राय है। इसलिये मतान्तर का निराकरण होता है।

अहमेवंविधोऽर्जुन' (गीता ११।५४) भक्त्यामामभिजानाति यावान् यश्चास्मितत्त्वतः । ततोमां तत्त्वतोज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ' (गीता १८।५५) 'सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्योद-दाम्येतद्व्रतं मम' (श्रीमद्रामायणयुद्धकाण्डः) इत्यादि । 'नायमात्माप्रव-

संभारवशात्संसारासारतां दृष्ट्वा सांसारिकानित्या शुचिदुःखात्मकफलनिकरैर्विरक्तास्तेतु परेशस्यार्चनपूजनादिना भगवतः कृपामासादितवन्त स्तेषां कृते मोक्षप्राप्तिलक्षणं परमहितमेवोपदिशतिशास्त्रम् । यत्र च दुःखसंभिन्नमनित्यमपिफलं दर्शयति तत्रापि तादृशफलमपि भगवत्प्रसादानुरूपमेव भवतीति भगवद्विभूतिमेवदर्शयति । तदुक्तम् 'योयो यांयां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् । स तया श्रद्धया युक्त स्तस्याराधनमीहते लभते च ततः कामान्मयैवविहितान् हितान्' । इति । (गीता ७।२१-२२) इदमीयविशेषविचारस्तु प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारजगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्ययतिसम्राट् प्रसादितगीतानन्दभाष्यतस्तथा वेदार्थरक्षाकार जगद्विजयीमहामहोपाध्यायजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यकृतगीतार्थचन्द्रिकायाः सप्तमाध्यायस्यत्रयोविंशतितमश्लोकतोऽनुसन्धेयोविशषजिज्ञासुभिरितिदिक् । अपौरुषेय

भक्ति ही मोक्ष का कारण है इसमें प्रमाण बतलाने के लिये कहते हैं **'तदुक्तमिति'** हे अर्जुन ! मैं अनन्याभक्ति के द्वारा ही बद्ध होता हूं अर्थात् परमात्मा जो कि जीवों का प्राप्य है, तादृश प्राप्य भगवान् की प्राप्ति भक्ति प्रपत्ति के द्वारा ही होती है। सभी वाक्य अवधारणार्थक होते हैं ऐसा नियम है **'एतद्भक्तिसहकृतानामेव वेदानुवचनादीनां भगवद्दर्शनप्रयोजकत्वं तमेव वेदानुवचनेति श्रुत्याऽवगम्यते । ये तु केवलज्ञानेन सायुज्यमाहुस्तेषामयमसङ्गत एवेति ध्येयम्'** (अर्थचन्द्रिका ११।५४) ऐसा जगदाचार्य श्रीमहामहोपाध्यायजी ने कहा है। अतः भक्तिमात्र मोक्ष का कारण है। तदन्य में कारणता नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है। 'मैं जितना बड़ा हूं यादृश स्वरूपवाला हूं' इस बात को भक्त भक्ति के द्वारा जानता है। तब मुझको तत्वतः अर्थात् यथार्थरूप से मेरे स्वरूप एवं विभूतियों को जान करके मुझ परमात्मा के स्वरूप साक्षात्कारानन्तर यथा सुख अनुभव कर सकता है। अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर जाता है।

यद्यपि प्रकृत वाक्य में **'ज्ञात्वा विशते'** इस पद की स्वरूपता से ज्ञानोत्तर कालिकत्व का कथन होने से ज्ञान में ही साक्षात् मोक्षकारणत्व अवगत होता है, क्योंकि जिसके अव्यवहित उत्तरकाल में जो पदार्थ होता है उस कार्य के वह अव्यवहित पूर्ववर्ती ही पदार्थ कारण होता है, जिस तरह कपालादि के अव्यवहितोत्तर में जायमान घट के प्रति घटाव्यवहित पूर्ववर्ती कपालादिक ही कारण बनता है। इसी तरह प्रकृति में ज्ञान में ही

चनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँस्वाम्' (कठोपनिषद् २।२३) इति च । तथैवाहु: प्रस्थानत्रयानन्दभाष्यकारा:-'मुक्तौहेतुस्तु भक्त्यपरपर्यायं तैल धारावदविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तञ्चसाधनदीपिकायामाचा-

इति-यद्यपिविलक्षणानुपूर्वीविशिष्टवर्णसमुदायात्मको वेद: कण्ठताल्वाद्यभिघातजनित इवाभाति तथापि न स: पौरुषेय: किन्तु सर्वथाऽपा रुषेय एव यत: प्रभाणान्तरेणार्थमुप-लभ्यविरचितत्वस्यैव पौरुषयत्वप्रयोजकत्वान्महाभारतादिवत्कालीदासादिवाक्यवच्च । इहतु 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' इत्यादिश्रुत्या 'शिवादिऋषिपर्यन्ता: स्मर्तारो नच कारका:' इत्याद्यनेकस्मृत्याच्च वेदस्यनिन्यत्वावगमात् । नच वेदोऽनित्य: पौरुषेयश्च उत्पत्तिमत्वाद् घटादिवदिति वाच्यम् । वेदोनित्य: संप्रदायाविच्छेदेसति स्मर्यमाणकर्तृकत्वादि-त्याद्यगमसहकृतानुमानेन प्रकरणसमात् । तथा 'योऽयं वेदो देवदत्तेनाधीत: स एव मयाप्यधीत:' इतिप्रत्यभिज्ञाविरोधात् । नच 'सैवेयं गुर्जरीतिवत् प्रकृतप्रत्यभि-ज्ञाजातिविषयिणीति वाच्यम् । प्रत्यभिज्ञाया व्यक्तिविषयकत्वबाध एव जातिविषय-कत्वस्यस्वीकारात् '' तदेवौषधम्' इत्यादिवत् । यत्र तु बाधादिज्ञानं नास्ति तत्र

मोक्ष कारणत्व व्यवस्थित होता है। तथापि सभी वाक्यों की एक वाक्यता करने के वाद सिद्ध होता है कि अनन्याभक्ति प्रपत्ति ही मोक्ष का कारण है तदतिरिक्त में कारणता नहीं है यानी कारण कारणता होने से साक्षात् कारणता नहीं है। इसी बात का स्पष्टीकरण करने के लिये जगदाचार्यजी कहते हैं **'सकृदेव प्रपन्नायेत्यादि'** मैं आपकी शरण में अनन्यगतिक होकर के प्राप्त हुआ हूं, मेरा आप संसारानल से संरक्षण करें' इस तरह एक बार भी कहकर मेरी शरणागति में आता है तो उसको मैं सर्वभूतों से अभयदान देता हूं, ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है। ऐसा स्वयं भगवान् श्रीसीतानाथजी ने कहा है। इससे सिद्ध होता है कि पूर्वापर वेदेतिहासपुराणादिक ग्रन्थों का एक वाक्यता करने से पराभक्ति प्रपत्ति में ही मोक्षकारणत्व साक्षात् सिद्ध होता है। विशेष विवरण आनन्द भाष्य प्रथम सूत्र के मेरे तथा जगदाचार्यजी के विवेचन में देखें। इस विषय पर अन्यत्र भी स्वतन्त्र विचार करुँगा। तो यह एतादृश अनन्याभक्ति ही किसी किसी स्थल में ध्यान पद से तथा किसी स्थल में ध्रुवानुस्मृति पद से तथा किसी किसी स्थल में साक्षात्कार पद से छाग पशुन्याय से सामान्य विशेष से मोक्ष कारणतया व्यपदिश्यमान होती हैं।

(यहां छाग पशुन्याय का तात्पर्य यह है कि अग्निष्टोमीय प्रभृति यागों में पश्वालम्भन का विधान है। **'अग्निष्टोमीयं'** पशुमालभेद **'पशुना यजेत'** अग्निसोमदेवता के पशु का आलम्भन करना, पशु से याग करना ऐसा विधान है। तो यहां शंका होती है कि लोमवल्लांगूलावच्छिन्न को पशु कहते हैं। अर्थात् रोम से

र्यवर्यैर्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यै:-'रामस्य ब्रह्मणोऽनन्य भक्त्यैवमुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृति: सा च विवेकादिकसप्तकात् 'इति । ऊचुश्च तथैवभगवन्त: श्रीदेवानन्दाचार्यचरणाअपि- ' त्वदीयास्मृतिस्तारिका-मृत्युसिन्धोस्तथा विस्मृति: पातिकातत्र चैव । परं योगिनां हार्दमालम्बनं त्वां श्रये राघवं

व्यक्तिविषयकत्वमेवेतिसिद्धान्त: । प्रकृते तु प्रत्यत्रिज्ञाया व्यक्तिविषयकत्वमेव नतु जातिविषयकम् । तथासति 'धाता यथापूर्वमकल्पयत्' इत्यादिश्रुतिविरोधप्रसङ्गात् । नचाऽशरीरकपरमेश्वरस्य कथं कल्पादौ वेदोच्चारकत्वमिति वाच्यम् । भक्तानुग्रहबले-नविग्रहवैशिष्ट्यत्वमपि भगवतिसम्भवात् । नृसिंहवराहादिवदिति संक्षेप: । शिरोभागीयैरित्यादि-'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' 'ज्ञाज्ञावीशानीशौ' 'द्वासुपर्णा' सयुजासखाया' 'तस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तम:' 'योविज्ञानेतिष्ठन् योविज्ञानमन्तरो विज्ञानं यस्य शरीरम्' इत्यादिवचनसमुदायैरिति । नकेवलं वेदशिरोभागेनैवोक्तार्थ: समधिगतोभवति किन्तु वेदार्थपोषकेतिहासपुराणादिभिरपि सर्वशेषी सर्वजगदुपादानं परमात्मा श्रीराम एव समधिगतो भवतीति ।

सूक्ष्मजडचेतनेति पदार्थप्रकृततंत्रेत्रिविधो विविक्षित: । जडश्चेतनस्तदुभय योर्नियामक: सर्वशेषी च । तत्राद्यो द्विविधो सूक्ष्मस्थूलभेदात् । तत्र सूक्ष्मो जड: कारणम् स्थूलं च कार्यम् तदप्यनेकविधम् घटादिभेदात् । सूक्ष्मचेतनोव्यवहारानर्ह: स्थूलस्तु

विशिष्ट जो लांगूल पूँछ तादृश पुच्छवान् जो जीव उसके द्वारा याग करना। तब तो रोम विशिष्ट लांगूलवान् पशु पदवाच्य ऊँट गदहा आदि से भी याग करने पर फल सिद्धि होनी चाहिए-परन्तु ऊँट बगैरह पशु के द्वारा याग करने का तो निषेध है। इसके उत्तर में कहते हैं कि सामान्य रूप से-लोमवल्लांगूलावच्छिन्न ऊँट है किन्तु वह विशेष रूप से पशुपदवाच्य नहीं है। ऋग्वेद में कहा है कि-'बर्करश्छाग:' तो इस वाक्य से विशेष रूपसे छाग का विधान किया है-तो छाग पशु विषेष रूप से भी पशुपद वाच्य है। और पशु का जो सामान्य लक्षण है लोमवल्लाङ्गूलावच्छिन्न उससे भी वाच्य होता है। अत: सामान्य विशेष एतत् उभयरूप से पशु पद से छाग का ग्रहण होता है, और चागरूप पशु से याग करने से ही अभीष्ट की सिद्धि होती है तथा कर्ता को स्वर्ग प्राप्ति होती है। एवं तादृश छागबोधक वेदवाक्य भी सफल तथा प्रमाण कहलाता है और ऊंट वगैरह जो पशु है वह यद्यपि सामान्य रूपेण पशुपद वाच्य है तो परन्तु विशेषरूपेण पशुपदवाच्य नहीं है इस लिये गर्दभादि द्वारा संपाद्यमान याग सफल नहीं होता है। प्रत्युत अनर्थकारक ही होता है। यही छाग पशुन्याय का तात्पर्य है। प्रकृत में तो किसी स्थल में भक्ति शब्द से भक्ति में मोक्ष कारणता का विधान है और किसी किसी स्थल में तो ध्रवानुस्मृति पद से कहीं तो साक्षात्कारपद से

सच्चिदानन्दस्वरूपम्' इति । (गीतानन्दभाष्यम् २।१२) तथा च श्रीबोधायनपञ्चके श्रीसदानन्दाचार्यचरणाः- 'रामोब्रह्मपरात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैवनिश्रेयसम्' इत्यादि । सेयं भक्तिरेवक्वचिद्ध्यानपदेन क्वचिद्ध्रुवानुस्मृतिपदेन, क्वचिच्चसाक्षात्कारपदेन यागपशुन्यायेनसामान्यविशेष-

व्यवहारविषयः । तत्र सूक्ष्मजडचेतनविशिष्टः परमात्मा सर्वप्रकारभूतस्य जनकतया कार्यम् । स्थूलाभ्यां ताभ्यां जडचेतनाभ्यां विशिष्टः परमात्मैव कार्यं भवति । इति प्रतियोगिभेदात् अपेक्षया वा एकस्मिन्नपि कार्यत्वकारणत्वयोरवस्थाने न कश्चिद्विरोधो भवति । यथैकैवमनोरमा पतिपुत्रादिप्रतियोगिभेदेन पत्नीमातादिव्यवहारं भजते । न तत्र कोपि दोषो भवति । तथैव प्रकृते एकस्मिन्नपि परेशे तदुपभयमपि संनिविष्टं भवतीति । न च 'निर्गुणंनिष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्' 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' 'अस्थूलमनणु' इत्यादिवचनैः परेशस्य शरीरादिप्रतिषेधेन शरीरादिसाध्यकार्यकारणादिव्यवस्था कथमुपपादिता स्यादिति वाच्यम् सविशेषता प्रतिपादकश्रुत्यनुरोधेनोदाहृतवचनानां प्राकृतशरीरगुणनिषेधपरकत्वेनादोषात् । अर्थात् पूर्वोक्तवचनानि भगवति प्राकृतशरीरगुणादिनीषेधकानि न तु लोकोत्तरशरीरादिगुणानां निषेधकानि तदाहुरानन्दभाष्यकाराः-'नच

सामान्य रूप से उसी भक्ति का कथन किया गथा है अतः सर्वथा भक्ति ही मोक्ष का कारण है, ऐसा सिद्ध होता हे ।)

इसी बात को उपसंहार रूप से बतलाने के लिये आचार्यजी कहते हैं-**ततश्चहेयप्रत्यनीकेत्यादि**- इससे यह सिद्ध होता है कि हेय प्राकृतिक गुणदोष का अति विरोधी जो सकल कल्याणगुण, उन गुणों का सागर निधान सविशेष परमात्मा जगदुत्पादादिक का अभिन्ननिमित्तोपादान सामान्य विशेष रूप से सर्वपदवाच्य सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं तादृश परमात्माश्रीरामजी का जो उपासनध्यानादिक है, वही समस्त शास्त्र का प्रतिपाद्य है-ऐसा ज्ञान होता है।

समवाय संबन्ध से ज्ञान तथा सुखादि गुणोंका अधिकरण जो यह जीवात्मा है वह अनादिकालिक अत एव प्रवाह रूप से नित्यरूपेण प्रतिभासमान जो अविद्या तादृश अविद्या के बल से (उस अविद्या का लक्षण क्या है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में श्रीपाराशरऋषि ने कहा है-'**श्रूयतां चाप्यविद्यायाः स्वरूपं कुलनन्दन ! अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वे स्वमिति या मतिः**' हे कुलनन्दन ! तुम अविद्या के स्वरूप को समझो । आत्मव्यतिरिक्त शरीरेन्द्रिय मनबुद्धिप्रभृतिक प्रकृति जनित पदार्थों में जो आत्मबुद्धि होती है, अतत् में तद्बुद्धि जो है देहरूप हूँ इन्द्रिय रूप हूं इत्यादि बुद्धि को अविद्या कहते हैं। एवम् जो पदार्थ अपना नहीं है उसको अपना कहना उसे अविद्या कहते हैं। प्रथम को अंहाकार कहते हैं और द्वितीय को

रूपेण मोक्षकारणतया व्यवह्रियते । ततश्च हेयप्रत्यनीकसकलकल्याणगुणसागरः सविशेशपरमात्मासर्वेश्वर श्रीरामस्तदुपासनञ्च समस्तशास्त्रसमधिगतं भवतीति ।

अयं हि जीवोऽनादिकालिकाविद्याबलात्संचीयमानशुभा शुभकर्मस्ते-

वाच्यं निर्गुणं निष्क्रियंशान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्' (श्वे.६।१९) इत्यादिभिर्वेदवचनैर्ब्रह्मणो निर्गुणत्वे तस्यमानसव्यापररूपज्ञानसाध्यत्वादन्यविधया भक्तेरूपायत्वासम्भवादिति । निर्गतानिष्कृष्टाः सत्वादयः प्राकृता गुणा यस्मात्तन्निर्गुणमितिव्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेवनिर्गुणत्वम् । तथैव च-सत्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृतागुणाः । सशुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु । योऽसौ निर्गुणः प्रोक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः । प्राकृतैर्हेयसत्वाद्यैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते । (वि. पु.) इत्यादौ प्रतिपादितत्वात्प्राकृतसत्वादिगुणनिशिद्धे सति ब्रह्मणोदिव्यगुणाश्रयत्वसिद्धेः । तादृशदिव्यगुणानाञ्च 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच (श्वे. ६।८) इत्यादौस्वाभाविकत्वाभिधानात्प्राकृतहेयगुणरहितत्वेननिर्गुणत्वंदिव्यगुणाश्रयत्वेन च सगुणत्वमित्युभयथैकस्यैव ब्रह्मणोनिर्देश इति न किञ्चिदनुपपन्नम् (आनन्दभाष्यम् १।१।२) अन्यथा

ममकार कहते हैं) अर्थात् अतत् में अनात्मदेहादिक में आत्माज्ञान तथा अस्वकीय में स्वत्वज्ञानरूप अविद्या के शुभा-शुभ पुण्य पापरूप सुखदुःख का उत्पादक कर्म अतत्रित होता है। इस कर्म के बल से हिरण्यगर्भ से लेकर के स्थावर पर्यन्त भोगाधिष्ठान शरीर देव नारक मनुष्यतिर्यक् देहों में जीवों का प्रवेश होता है। अर्थात् यदि पुण्यकर्म अत्यधिक होता है तब साधारण देव से लेकर के हिरण्यगर्भ के शरीर तक को प्राप्त करता है। ऐसा कहा भी है-'**अविद्या संचितं कर्म**' अर्थात् यह जो शुभाशुभ कर्म है वह उपर्युक्त अविद्याँ के द्वारा संचित होनेवाला होता है और वह फलभोग शरीर प्राप्ति के बिना असंभवित है अतः पुण्यपाप के अनुकूल तादृश शरीरों का ग्रहण जीव करता है। उसमें यदि पुण्य की मात्रा अधिक है तब तो देव से लेकर के हिरण्यगर्भान्त शरीर में प्रवेश होता है और पापकी अत्यधिक मात्रा से नारक शरीर में प्रवेशहोता है। तथा न्यूनमात्रा हो तो तिर्यक् स्थावरान्त शरीरेंमें प्रवेश होता है और जब पुण्यपाप की समानता रहती है तब मनुष्य शरीरों में प्रवेश करता है तब देह प्रवेशमूलक तत् तत् देह में अनात्मा में आत्माभिमान तथा अस्वकीय बाह्य कलत्र पुत्र धनधान्यादिक में स्वकीयत्वाभिमान द्वारा प्राप्त जो संसार देवादिक देहों में प्रादुर्भाव, तादृश प्रादुर्भाव द्वारा प्राप्त जो तत् तत् योनियों में संप्राप्त अनेक प्रकारका दुःख परम्परा उससे अत्यन्त दुःखी होकर के पूर्वार्जित पुण्यबल से संसार विरक्तपुरुष उन दुःखों का विनाश करने के लिये शरीरातिरिक्त जीव का स्वरूपज्ञान जीव का स्वाभाविक स्वभाव और जीव का नियामक

जसाहिरण्यगर्भादिस्थावरान्तभोगधिष्ठानप्रवेशमूलकतच्छरीरेऽनात्मन्यात्माभिमानस्तथाऽस्वकीये कलत्रादौ स्वकीयत्वाभिमानमूलकसंप्राप्तसंसारमूलकदु:खोच्छेदाय शरीरातिरिक्तजीवात्मस्वरूपतदीयस्वा-

सविशेषता प्रतिपादकवचनानि सर्वथैव निरालंबनानि भवेयुरिति । तथा चापेक्षा भेदेनोभययोरपिवचनयो: सामञ्जस्यं व्यवस्थितं भवति । न चार्धजरतीयन्यायोयुक्त: । नचैकमपि वेदवचनमप्रामाणिकं भवितुमर्हतीति । धृतदशरथकुले इत्यादि 'वेदवेद्येपरेपुंसि जाते दशरथात्मजे' इत्यागमसाचिव्यात् तत्र स्वीकृतलीलामानुषविग्रह इत्यर्थ: । 'वेद: प्राचेसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना' इत्यागमप्रामाण्याच्चनिखिलवेदरहस्योपबृंहणीभूतश्रीमद्रारामाणेऽतिप्रसिद्धत्वान्नाधिकं वक्तव्यमवशिष्यते । अन्यदतिरोहितार्थकमेवेतिदिक् ।

अविद्याबलादिति अतस्मिंस्तद्बुद्धिरेवाविद्येति तत्लक्षणम् । सा च ज्ञानलक्षणा स्वभावत एव सा चेतनमाश्रयति । तत्र परमेश्वरे सर्वभ्रान्तिरहिते नित्ये सर्वज्ञेतदाश्रयत्वस्य बाधात् परिशेषात्साल्पज्ञजीवमेवाश्रयति । स चायमुभयो: संबन्धोऽनादिर्यतोऽनुयोगिप्रतियोगिनोरनादित्वात् । अनादिर्भवन्नपि परमेश्वरज्ञानान्निवर्तते । न चानादेराकाशादिवन्नित्यत्वेन विनाशासंभवात्कथं तन्निवृत्तिरितिवाच्यम् । अनादेरपिप्रागभावस्य-

जो परमात्मा उसका स्वरूप एवं स्वभाव तथा परमेश्वर की उपासना तथा तादृश उपासना का फल जीव स्वरूप का आविर्भाव, एवं नित्यनिरतिशय सुखरूप परमात्मा, तादृश परमात्मा के अनुभव को इतिहास पुराणादि से उपवृंहित वेदान्तवाक्य कराता है। इसलिये उपर्युक्त वस्तुओं का यथार्थज्ञान कराने के कारण से वेदान्त वाक्य प्रमाण कहलाता है, जिस तरह चाक्षुषज्ञान का उत्पादक होने से चक्षुरादिक का कारण तादृश चाक्षुषज्ञान में प्रामाण कहलाता हैं, यथा वा अनुमित्यादिक ज्ञान का उत्पादक होने से अनुमानादिक तादृश तादृश ज्ञान में प्रमाण कहलाते हैं। इसी तरह जडचेतन और सर्वनियामक परमात्मादिक पदार्थों का यथार्थज्ञान को उत्पन्न करानेवाले वेदान्तवाक्य भी प्रमाण कहलाते हैं। यादृश वेदान्तवाक्य उपर्युक्त पदार्थों का प्रतिपादन करते हैं, उन वाक्यों का जो स्वरूप है उसका प्रदर्शन करने के लिये कहते हैं-'**एतादृशंप्रमाणभूतं तत्रेत्यादि तत्वमसि**' परमात्मा के साथ जीवात्मा का शेषशेषीभाव का प्रतिपादन करते हुए उद्दालक ऋषि पुत्र श्वेतकेतु को कहने हैं-हे श्वेतकेतु पुत्र ! वह सर्व नियामक जो परमात्मा है, तुम भी उस परमात्भा का ही अंश स्वरूप हो। अर्थात् शेष हो क्यों कि विरुद्ध स्वभाववाले दो पदार्थों में सर्वथा तादात्म्य वाधित है, जिस तरह तम तथा प्रकाश में तादात्म्य नहीं होता है। यहां' असि पद यद्यपि तादात्म्य का कथन करता सा लगता है तथापि प्रत्यक्ष अनुमान आगमादि प्रमाणवाधिते होने से प्रकृत में '**असि**' पद शेषशेषीभाव का ही कथन करता हैं । '**तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य श्रवणानन्तरं ननु । जायतेऽनुभवश्चोक्त इति**

भाविकस्वभावतन्नियामकपरेशस्वरूपतदीयोपासनतदीयोपासनतदीयफललक्षणजीवस्वरूपाविर्भावपूर्वकनित्यनिरतिशयलक्षणपरमात्मानुभावने इतिहासपुनाणादिसमुपवृंहितं वेदान्तवाक्यजातमेव प्रमाणमिति ।

भावात्मकपरमाणुश्यामत्वादेर्निवृत्तिदर्शनेन तन्नियमस्याप्रयोजकत्वात् । महाभारतेपि अविद्याया इत्थमेव स्वरूपं प्रदर्शितवान् 'श्रूयतां च ह्यविद्याया: स्वरूपं कुलनन्दन ! अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वेस्वमितिया मति रिति । शुभाशुभकर्मेति वेदविहितस्वर्गादिफलजनकशिष्टसमाचरितं यत् तत् शुभकर्मेति व्यपदिश्यते । वेदनिषिद्धत्वे सति नरकादिप्रयोजकं कर्मैर्वाऽशुभं कर्मेति, अनयोरेव पुण्यपापनाम्नाऽन्यत्रव्यपदेश: । तत्र साधारणदेवादारभ्य हिरण्यगर्भदेहपर्यन्तदेवस्य प्राप्तिर्भवति शुभकर्मफलभोगाय । तथा नारकान्तशरीरप्राप्तिर्भवति तत्रतदनिष्टकर्मफलदु:खोपभोगाय । उभयो: साम्ये सति मनुष्यदेहप्राप्तिर्भवतीति, स एव संसार:, तन्मूलकमेव दु:खं चेतनमात्रस्य भवति । तत्र कश्चिज्जीव: प्राग्भवीयपुण्यकर्मोदयेनाविद्यकविषयेजातवैराग्यनित्यशुचिसुखात्मकब्रह्मानुभवाय जातस्पृह: सद्गुरुमवाप्यतदुपदिष्टोभगवद्भजनादौ संजातमतिर्भगवन्पूजनादिकं कुर्वाणस्तत्प्रसादमवाप्य गुणाष्टकप्रादुर्भावाद्भगवत्सायुज्यमवाप्यकृतकृत्यो

चेन्नैवमुच्यताम् । प्रकारिब्रह्मणोरैक्यं तद्वाक्यार्थोयतस्तत: । नस्यादनुभवस्तादृग् वाक्यस्य श्रवणादनु । ब्रह्मणोदेहरूपत्वाच्चिदचितो: प्रकारता'(श्रौतप्रमेयचन्द्रिका)'**तत्त्वपदार्थयोर्नैक्यं परान्तर्यामिणो: खलु । तत्त्वमसीतिवाक्येहि नैक्यं जीवेशयोर्मतम् । प्रभावत: प्रभातुल्योविशिष्टस्यविशेषवत् । ब्रह्मर्मोऽशोमतो जीवो जीवस्य ब्रह्मता नतत्**' (श्रीरामानन्दवेदान्तसार:) इत्यादि में आचार्यों ने भी वैसा ही कहा है अत: तत् पद जगत्कारणविशिष्ट परमात्मा का बोधक है, '**त्वम्**' पद परमात्माशरीरक जीवका वाचक है, और '**असि**' पद जीवेश के प्रकारप्रकारित्वेन सामानाधिकरण्य का प्रतिपादन करता है, एवम् **अहं ब्रह्मास्मि** इस वाक्य में '**अहं**' पद जीव वाचक है और '**ब्रह्म**' नियामक परमात्मा का बोधक है तथा '**अस्मि**' पद उभय के सामानाधिकरण्य को बतलाता है, '**अयमात्मेति**' यह आत्मा सुख दु:ख का अभिमानी जीव ब्रह्म शेष भावापन्न है,-'**य:**' पृथिव्यामिति जो पृथिवी में रहता हुआ पृथिवी से अन्तर है जिसको पृथीवी नहीं समझ पाती है जो पृथिवी का नियामक है।

'**एष सर्वभूतान्तरात्मेत्यादि**' यह परमात्मा सर्वभूतों का अन्तरात्मा है। यह अपहत पापवाले हैं। **तमेतमित्यादि** । उस सर्वनियामकशेषी परमात्मा को वेदानुवचन शास्त्रोपदेशतदध्ययन द्वारा ब्राह्मण लोग जो कि जन्म तथा कर्म द्वारा ब्राह्मण हैं, वे लोग जानने की इच्छा करते हैं, तथा शास्त्राध्ययन द्वारा जानते हैं। अर्थात् परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। एवं निष्काम यज्ञादि द्वारा उस परमात्मा का साक्षात्कार करते

यथोक्तेन वेदान्तप्रमाणेनैतत्सर्वं वोधितं भवतीति तदेव तत्र प्रमाणम्। एतादृशंप्रमाणभूतं तत्र 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' अयमात्मा ब्रह्म' 'यः पृथिव्यांतिष्ठन्' एष सर्वभूतान्तरात्माऽपहतपाप्मा' रमन्ते योगिनोऽन्तेस-त्यानन्देचिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते' एतेषु चैव सर्वेषु

भगवद्धामसाकेतमधिवसतीति।

स्थावरान्तभोगाधिष्ठानेति **यदाश्रित्य पुण्यपापफललक्षणसुखदुःखान्यतर** साक्षात्करोति चेतनस्तदेव शरीरं भोगाधिष्ठानमिति कथितं भवति। तच्छरीरं चतुर्विधं भवति। देवमनुष्यतिर्यग् नारकभेदात्। तत्र देवशरीरावच्छिन्नाद्धिरण्यगर्भादयोदेव-शरीरावच्छेदेनसुखादिकमनुभवति। मनुष्या मनुष्यशरीरावच्छेदेननारकाजीवाना-रकशरीरानच्छेदेन तिर्यंचः पशुपक्षिणः स्वकीयशरीरावच्छेदेन सुखादिकमनुभवति। तत्र सुखादिसाक्षात्कारेभोगलक्षणेसमवायिकारणं जीवः असमवायिकारणं मनःसंयोगो निमित्तकारणं धर्माधर्मौ शरिरादिकम्। तत्रापिसमवायेनधर्माधर्मयोः कारणता अवच्छेदकतालक्षणवृत्त्यनियामकसंबन्धेन शरीरस्य कारणता। यदा चात्माशरीरावच्छिन्नो

हैं। एवं हिरण्य रजत तिल पृथिवी के दान करके उसके द्वारा जानते हैं, इसी तरह शरीर के अनाशक जो चान्द्रायणादिक तप हैं उनके द्वारा भी परमात्मा को जानने की इच्छा करते हैं, हित अर्थात् शरीर के अनुकूल तथा परिमित एवं पवित्र अर्थात् शास्त्रप्रतिपादित अन्न का भोजन करनेवाले को ही ब्रह्मविविदिषा होती है, अपरिमित भोजन करने से अजीर्णादिरोग होने पर शरीर का ही विनाश हो जायगा, न वा सर्वथा अनशनशील को भी विविदिषा होगी क्योंकि भोजनाभाव होने पर शरीर का विनाश हो जायगा। नवा अपवित्र वस्तु का भक्षण करने पर विविदिषा होगी क्यों कि आहार के अनुकूल ही बुद्धि का परिणाम होता है। अतएव पतंजलि ने कहा है-**'आहारशुद्धौसत्वशुद्धिः सत्व शुद्धौ ध्रुवामतिरिति।**

'ब्रह्मविदांप्नोति' इत्यादि ब्रह्मज्ञानी लोग परमात्मा को प्राप्त करते हैं। अर्थात् ब्रह्मज्ञान रूप साधन द्वारा ब्राह्मण परमात्मा के साक्षात्कार को करते हैं। **तमेतमित्यादि** जो उपासक इस सर्व नियामक परमात्मा को जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं। अर्थात् परमात्मज्ञानरूप साधन के बल से परमात्मा को प्राप्त करके नित्यनिरतिशय सुखात्मक साकेत को प्राप्त कर जाते हैं।

'नान्यः पन्था' इत्यादि। उस परमात्मा को ज्ञानकर के उपासक लोग मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ज्ञान से अतिरिक्त और कोई भी साधन नहीं हैं, जिसके द्वारा मोक्ष को प्राप्त किया जा सके। यद्यपि प्रकृत में **'नान्यः पन्था विद्यते'** इससे ज्ञान व्यतिरिक्त साधन का निराकरण किया है और सिद्धान्त में तो अनन्य भक्ति प्रपत्ति को ही मोक्ष कारण रूप से प्रतिपादन किया गया है। तथापि प्रकृत में ज्ञान कारणतया का

तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्। राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्।' 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणाविविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' ब्रह्मविदाप्नोति परम्' 'तमेवं विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इत्यादि। अर्थात् केयमविद्या। कथं वा संसार

भवति। तदा तत्र अवच्छेदकता संबन्धेनकार्यंप्रति तादात्म्य संवन्धेनावच्छेदकस्य शरीरादेः कारणता भवति। यथा हिमालये वनौषधयो भवन्तीत्यादौ अवच्छेदकस्य हिमालयादेरवच्छेदकता संवन्धेन हेतुता तथैव प्रकृतेपि तत्तच्छरीरादेः कारणता यथोक्तसंबन्धैनैव भवतीति। शरीरभिन्नोहि तदवच्छिन्नो जीवोऽन्यथा शरीरविनाशानन्तरफ-लोत्पादके क्षणिके यागादिकार्ये बुद्धिमतां प्रवृत्तेरसंभव एव स्यात्। अन्यत् शरीरभेद इत्थं प्रतिपादितः। तथाहि शरीरंभोगाधिष्ठानं चेष्टाश्रयोवा तच्चतुर्विधं जरायुजाण्डज-स्वेदजोद्भिज्जभेदात्। तत्र मनुष्यादिकं जरायुजम्। जरानामगर्भवेष्टकचर्मपुटकः तादृशजरायुक्तोमातुरुदरात् विनिर्गच्छतीति जरायुजो मनुष्यादिः। अण्डाज्जातोजण्डजः पक्षिपन्नागदिः मातुरुदरादण्डस्यनिःसरणं भवति। ततश्च निर्भिन्नेऽण्डे जायमानोऽण्डज इति। स्वेदजाः कृमिदंशादयोऽयोनिजा इति कथ्यन्ते। आद्यौयोनिजौ, उद्भिज्जास्त-

कथन उपलक्षण है। अथवा तो अनन्याभक्ति को ज्ञानरूप मानते हैं, उनके मत से प्रकृत में एतादृश कथन है। वस्तुतः विचार करें तो-वर्णाश्रम विहित कर्मानुष्ठान तथा विवेकादि से उक्तपरमात्मोपासन से भक्ति प्रपत्ति होती है और भक्ति प्रपत्ति से साकेतलोक प्राप्तिरूप मोक्ष होता है **'सा च भक्तिः परमप्रेयो भगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वकपरमपुरुषानुरागरूपो ज्ञानविशेष एव। तदुद्भवश्चसंसारस्यानित्यतामा-कलय्याचार्योपयत्तिपुरस्सरवर्णाश्रमाचारसेवनजनितपुण्यक्षालितकषायस्यविवेकविमोकाभ्यासादिभिरेवेति'** (आनन्दभाष्यम्) इत्यादि श्रीआचार्यचरण के भाष्यपङ्क्तियों का यही तात्पर्य है विशेष विचार वहीं मेरे विवरण में देखें। वोधक बेदान्त वाक्य से किन किन वस्तुओं का बोध होता है इस बात को बतलाने के लिये बोध्य वस्तुओं के जिज्ञासा द्वारा प्रदर्शन करते हुए कहते हैं-**'अर्थादि त्यादि' 'केयमविद्येति'** यह अविद्या क्या है? यहाँ किं शब्द आक्षेपार्थक है। अर्थात् अविद्या का लक्षण क्या है तथा स्वरूप क्या है? जिस अविद्या के बल से जीव समुदाय संसार में ओतप्रोत हो रहे हैं। जिस अविद्याके परिधिमें देवादि समस्त जगत का चक्कर काट रहे हैं। उसका लक्षण तथा स्वरूप क्या है? अर्थात् विचार करने पर इस अविद्या का लक्षण तथा स्वरूप उपपन्न नहीं होता है, यह आक्षेप का अभिप्राय है। **कथं वेत्यादि**-किस प्रकार से चैतन्यादिगुणवान् जीव उस विलक्षण अविद्या से संगत अर्थात् संनद्ध होता है? अभिप्राय यह है कि जीव तथा अविद्या ये दोनों पदार्थ भिन्न भिन्न हैं तब इन दोनों का सम्बन्ध कब हुआ और किस कारण से हुआ? और किस कारण से किस प्रकार से यह परिदृश्यमान देव मनुष्यादि रूप संसार हुआ? तथा किस तरह प्राप्त संसार का निवृत्ति होती

कथं वा तया जीवः सङ्गतो भवति । कथं च संसारनिवृत्तिः । कथं वा निवृत्तसंसारस्य नित्यनिरतिशयसुखात्मकब्रह्मानुभवरूपोमोक्षः । किं वा जीवात्मपरमात्मस्वरूपम् । कथं वा मुक्तजीवस्य गुणाष्टकस्याविर्भावः । इत्यादिकं सर्वं बोधयति वाक्यम् ततश्च तदेव वेदान्तवाक्यं तत्र प्रमाणं न

रुगुल्मादिकाः । देवनारका अपि अयोनिजा एव । तरुगुल्मादिका अपि पापफलभोगोत्पादका देहा एव तदवच्छिन्नचेतनोपि तथैव । वृक्षादीनामपि पापभोगाधिष्ठानत्वं प्रतिपादितम् । 'गुरुं हुं कृत्य तुं कृत्य विप्रान्निर्जित्यवादतः । श्मशाने जायते वृक्षः कंकगृधोपसेवितः । नर्मदानीरसंजाताः सरलार्जुनपादपाः । नर्मदातोयसंस्पर्शात्तेपि यान्ति परां गतिम्' इत्यादि स्थले पापकर्मणो दुःखफलभोगायवृक्षादियोनिषु समुत्पत्तिं तन्निवारणाय पुण्याप्रदनदीप्रभृतिकस्थाने शरीरप्रध्वंसस्य देवादिप्रापकत्वदर्शनेन वृक्षादावपि तदवच्छिन्नजीवसद्भावस्य प्रदर्शनात् । ततश्चशरीरभिन्नोपि जीवोऽविद्यावशात् पुण्यापुण्ययोः फलभोगाय तत्तद्देह 'अहंत्व ममत्वमास्थाय सुखादिकं ममैवेत्यभिमन्यते, घटीयंत्रवत् संसारे परिभ्रमति चेति । शरीरातिरिक्तजीवात्मेत्यादि जीवो न

है। अर्थात् कौन प्रवल ऐसा कारण है-जिसके द्वारा अनादि परम्परा से प्राप्त यह संसार निवृत्त हो जाता है। निवर्तक इसका क्या है ? और जिस पुण्यशाली का यह अनादि परम्परा प्राप्त संसार निवृत्त हो गया है उस व्यक्ति विशेष को नित्यनितिशय सुख लक्षणब्रह्म का कैंकर्यानुभवरूपमोक्ष होता है। अर्थात् ब्रह्म के कैङ्कर्यानुभव लक्षण मोक्ष का कारण क्या है जिसके द्वारा एतादृश मोक्ष होता है तथा जीवात्मा तथा परमात्मा का स्वरूप क्या है ? अर्थात् लोक प्रसिद्ध ही जीवात्मा परमात्मा का रूप है अथवा एतत् व्यतिरिक्त इन दोनो का स्वरूप है। एवं किस तरह मोक्ष प्राप्त जीवों का गुणाष्टक का आविर्भाव होता है ? इत्यादि सकल वस्तुओं को वेदान्त शास्त्र समझाता है। इसलिये पूर्वोक्त ये ही वेदान्त वाक्य समुदाय जीवादि सकल पदार्थ के बोधन में प्रमाणरूप होते हैं। किन्तु वेदान्त से अतिरिक्त इस जीवादिक तत्त्वों में प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष अनुमानादिक जो प्रमाणान्तर हैं वे तो सभी प्रायः करके लौकिक पदार्थ के बोधन करने में ही समर्थ होते हैं और पूर्वोक्त जो जीवादिकतत्व हैं वे लौकिक नहीं है। किन्तु अलौकिक हैं। यदि ये भी लौकिक होते प्रत्यक्षानुमानादिक लौकिक प्रमाणों से जाने जाते। जिस तरह लौकिक घटादि वस्तु समुदाय लौकिक चक्षु श्रोत्र आदि प्रमाणों से जाने जाते हैं। अपितु जीवादि तत्व अलौकिक हैं। इसलिये एतादृश विलक्षण लोक प्रमाणाप्राप्त इन जीवादि वस्तुओं का वोधन करने के लिये वेदान्त वाक्य अपेक्षित होते हैं। इसलिये वेदान्त वाक्य ही जीवादिक वस्तुओं में प्रमाण हैं। भूल में जिन श्रुतियों का उद्धरण किया गया है उन सब श्रुतियों के अर्थ को आचार्यश्री स्वयमेव यथास्थान में बतलायेंगे।

यद्यपि 'यह देव है, यह मनुष्य है, यह पशु है, यह कीट पंतग है' इत्यादि प्रतीति होती है। इस प्रतिति के बल से प्रकृति का साक्षात् परंपरया परिणाम रूप जो देहेन्द्रियादिक तादृश देहादि तादात्म्य रूपसे प्रतिभासमान होने से देहादिस्वरूप ही

ततो व्यतिरिक्तं प्रमाणान्तरम् । प्रमाणान्तराणां प्रायोलौकिकार्थबोधकतयै-वोपक्षयात् । पूर्वोदितानि वस्तूनि न लौकिकानि । येन प्रमाणान्तरसंविदितानि भवेयुरपित्वलौकिकानि । तेन तादृशविलक्षणवस्तूनां बोधनाय वेदान्तवाक्यान्यपेक्षितानि भवन्तीति तान्येव तत्र प्रमाणमिति ।

देवमनुष्यशरीरादिरूपस्तथात्वे शरीरस्य प्रतिक्षणमवयवोपचयापचयैर्विनाशात् देहान्तरकृतकर्मणां देहान्तरेणोपभोगानुपपत्तेः । न च स्थूलोहं कृशोहमित्यादिप्र-तीत्याऽहमालंबनो देह इति वाच्यम् । तथात्वे बाल्ये त्रिलोकितस्य स्थाविरे योहं बाल्ये पितरावन्वभूवम् स एवस्थविरे प्रणप्तृननुभवामीति प्रतिसंधानानुपपत्तेः । न हि बालशरीरवृद्धशरीरयोर्मनागपि प्रत्यभिज्ञानगन्धोयेनैकत्वं निश्चीयेत । तस्मात् यो यत्र वसति स तस्माद् भिन्न एव भवति । यदा गृहे वसन् देवदत्तो गृहाद्भिन्न एव, तथा कर्मफलभोगाय देहे वसन् जीवो देवादिशरीराद्भिन्न एवेति ।

किं च स्वप्नसमये जीवो दिव्यशरीरं प्राप्यदिव्यशरीरोचितान् भोगाननुभवन् स्वप्नावसाने प्रबोधकालेदेवशरीरबाधे नाहं देवोऽपितु मनुष्य एवेति जानाति ।

जीव है, ऐसा सिद्ध होता है। तब शरीरादिसे पृथक् रूप से जीव स्वरूप का विचार करना यहां उचित प्रतीत नहीं होता है। क्योकि असिद्ध पदार्थ का विचार सफल होता है, सिद्ध बस्तुओं का विचार तो निरर्थक ही होता है।

तथापि जिस तरह स्वभाव से अति स्वच्छ भी स्फटिकमणि जपाकुसुम लालफुल के संयोग होने से परकीय आरुण्य से लाल जैसा प्रतिभासित होता हुआ भी रक्त रूपवान् नहीं होता है, किन्तु जपाकुसुम से अत्यन्त भिन्न ही है। अर्थात् लालस्फटिक नहीं कहलाता है, किन्तु स्वच्छता ही उस मणि का स्वाभाविक रूप है, आरुण्य नहीं है। उसी तरह प्रकृत में अनादि अविद्या के बल से प्राकृत प्रकृति परिणाम जनित जो देहादिक तादृश देहादिक के तादात्म्य अभिन्न रूप से प्रतीयमान भी जीव वस्तुतः शरीर स्वभाववाला नहीं है, किन्तु शरीरादि से भिन्न ही है (अन्यथा यदि जीव को देहरूप मान लिया जाय तव तो शरीर विनाशोत्तर काल में होनेवाला जो स्वर्गादिफल तादृश फल की इच्छा से क्रियमाण यागादिक क्रियाकलाप के संपादन करने में लोगों की प्रवृत्ति नहीं होगी, तथा यागादिक में प्रवर्तक जो '**स्वर्गकामोयजेत**' इत्यादि वेद वाक्य हैं वे सब निरर्थक होजायेंगे एवं '**योहं बाल्ये पितरावन्वभूवं स एवाहं वार्धक्ये प्रणप्तृननुभवामि**' इत्याकारक प्रत्यभिज्ञान भी नहीं होगी। क्योंकि अवयवों के उपचयापचय होने से शरीररूप आत्मा विनष्ट हो गया तथा देदान्तर उत्पन्न हुआ है। अन्य दृष्ट वस्तुका तदन्य व्यक्ति को स्मरण नहीं होता है। '**नान्यदृष्टं स्मरत्यन्यः**' यह नियम है। अर्थात् अनुभव स्वरण में सामानाधिकरण्येनैवकार्यकारणभाव का नियम है।

एवं शरीर रूपत्व ही जीव का वास्तविक स्वरूप हो तो अहं पदवाच्य देह को ही कहेंगे, तब तो स्वप्नावस्था में जीव अपने को देव रूप कदाचित् देखता है-तथा तादृश देहोचित आहार व्यवहारादिक क्रियाको करता हुआ जागता है तब जाग्रत्

समुदाहृतश्रुतिनामर्थाः समये प्रकाशिता भवेयुः ।

जीवात्मनः स्वरूपचिन्तनम्

यद्यपि 'अयंदेवोऽयंमनुष्योऽयंपशुरयंकीटपतङ्ग' इत्यादिप्रतीत्याप्राकृतदेहतादात्म्येन प्रतिभासमानत्वाद्देहादिस्वरूप एव जीव इतितत्पार्थक्येन

तत्राहमित्यनुवर्तते न तु देवादिशरीरानुवर्तनं भवति । तस्मादहं पदवाच्यो न देहोपितु देहादिभिन्न एवांह पदवाच्यो जीवः । न वा 'अहं काणोवधिरः' इत्यादिप्रतीत्या चक्षुरादीन्द्रियरूपोजीवः । तथा सति चक्षुराद्यनुभूतानां वस्तुनां चक्षुरादीन्द्रियविलोपेप्रतिसन्धानं न स्यात् । भवति च य एवाहं चक्षुरादीनाऽनुभूतः पदार्थः तदेव पदार्थान् संप्रति तदभावेपि स्मरामि, नचान्यानुभूतस्यान्येन स्माणं भवति नान्यं दृष्टं स्मरत्यन्योनान्यं भूतमपक्रमात् । वासना संक्रमोनास्ति नगत्यन्तरे' इति । किं चानुभवस्मरणयोः सामानाधिकरणनियमादपिनान्यदृष्टस्यान्येन स्मरणम् । न वा मनः स्वरूप आत्मा मनसोऽणुत्वात्तद्गतसुखादीनां प्रत्यक्षता न स्यात् । प्रत्यक्षेमहत्त्वस्य कारणत्वेन मनोगतपदार्थानामप्रत्यक्षत्वापातात् । तस्माज्जीवो न देहादिस्वरूपः किन्तु एभ्योविभिन्न एव । ततश्च ज्ञानानन्दादिगुणवान् नित्यः ।

काल में उसको ज्ञान होता है कि 'मैं मनुष्य हूं देवता नहीं हूं' यहां देव देह का बाध होजाता है परन्तु अहं प्रत्यय का जो विषय है वह तो बाधित नहीं होता हैं। यदि देह आत्मा का वास्तविक रूप हो तो यह बाध अबाध उपपन्न नहीं होगा। अतः देहरूपता आत्मा का स्वाभाविक नहीं है। किन्तु स्फटिक के आरुण्य के समान परोपाधिक ही है। विशेष विवेचन अन्यत्र देखें।

अत देहादिरूप से प्रतिभासमान होने पर प्राकृत देह आत्मा का स्वाभाविक नहीं है किन्तु परोपाधिक है। आत्मा का स्वभाविक स्वरूप तो प्रकृतिजनित जो समस्त भेद तादृश भेद रहित ज्ञान आनन्दमयत्व चैतन्य गुणकत्व ही है। उस जीवका अविद्या से जायमान जो सभी प्रकार का भेद है, उसका निराकरण हो जानेपर स्वकीय जो ज्ञानानन्दविशेष गुण है जो कि वाणी का अविषय है वह स्वरूप विशेष स्वानुभव मात्र सिद्ध नहीं है। तथा वह रूप जीवमात्र का समान है। ज्ञानरूप से जीव निर्दिष्यमान होता है। एतादृश जीवों का जो स्वरूप है वह सर्व जीव साधारण है। इसलिये एतादृश जीव स्वरूप का विचार करना अत्यावश्यक हैं। किन्तु जीव स्वरूप का विचार करना निरर्थक नहीं है।

ऐसा ही शास्त्र में कहा भी है-'**तथात्मा प्रकृतेः**' इत्यादि जिस तरह काष्ठारूढ अग्नि में काष्ठ के संबन्ध से ऋजुवक्रादिक देखने में आता है, किन्तु स्वतः अग्नि में ऋजुवक्रादिक नहीं है, उसी तरह आत्मा जीव प्राकृत पदार्थ जो देहादिक उनसे भिन्न है एवं निर्विकार रहता हुआ भी गुणत्रयात्मक प्रकृति का संसर्ग होने के कारण अहंकारादि दोषों से दुष्ट होकर के प्राकृतधर्मों को अपने में मान लेता है। अर्थात् देहादि धर्मों को स्वकीय धर्म मानता है। वे धर्म आत्मा के नहीं है किन्तु मेरा ही धर्म है ऐसा मोहवश मानता है । अग्नितादात्म्यापन्न लोह की तरह।

'**पुमान् न देवो न नर**' इत्यादि हे भूप ! हे राजन् ! यह पुरुष अर्थात् जीव देव नहीं है, नवा मनुष्य है

तदीयस्वरूपानुचिन्तनं निरर्थकमिवाभाति, तथापि यथा स्वभावस्वच्छोपि स्फटिकमणिर्जपाकुसुमसंपर्कादरुण इवावभासमानो न तत्स्वरूपवानपितु ततोऽतिविलक्षणस्तथा प्रकृते अनाद्यविद्यावशात्प्राकृतदेहतादात्म्येनावभासमानोपि न तत्स्वरूपोऽपितु प्राकृतसमस्तभेदरहितो ज्ञानानन्दम

एतादृशजीवज्ञानं प्रकृतेऽत्यावश्यकम् । एवं जीवशेषिणो जीवान्तर्यामिणश्चपरात्मनः स्वरूपतो गुणतश्च ज्ञानमावश्यकमेवात्रत्यो विशेषविचारस्तत्त्वत्रयसिद्धिविवरणेमत्कृतेतत्त्वदीपेऽनुसन्धेयः ।

तन्नियंत्रकपरेशस्वरूपेत्यादि ये इमे जडाश्चेतनाश्चपदार्थाः प्राकृतिका अप्राकृतिका वा सर्वेषां तेषां नियमनकर्ता भगवान् सर्वेश्वरश्रीराम एव । यतस्तस्य सर्वकारणत्वात् । कारणेन च कार्यनियंत्रितं भवतीतिमृद्धटादौ दर्शनात् 'यतों वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्तेऽभिसंविषन्ति' 'सर्वेशसर्वशक्तिश्च श्रीरामः सर्वकारणम्' (वशिष्ठसंहिता) 'सूक्ष्माचिच्चिद्विशिष्टः स राघवः सर्वकारणम्' स्थूलाचिच्चिद्विशिष्टस्तु

नवा मृग पशु है न वा वृक्षस्थावर रूप है। ये सब देवादि भेद शरीर लक्षण आकृति में रहनेवाले भेद हैं तथा ये सब देवादिक भेद तत्तत् शुभाशुभ कर्म से जायमान हैं । जिस तरह एक नट के तत्तत् भूमिका के प्राप्त करने पर तत्तद्रूप में देखने में आता है । उसी तरह, कर्मजन्य देवादि शरीर के साथ संबद्ध जीव भी तत्तत् रूप से प्रतिभासित होता है, वे धर्म जीव के नहीं किन्तु प्रकृति परिणामगत हैं।

'**नायं देवो न मर्त्यो वा इत्यादि** । यह जीवात्मा न देवता है, न वा मरणधर्मा मनुष्य है, न वा पशुपक्षीपन्नगादिक है, न वा स्थावर वृक्षादिक । ये सब भेद देहगत धर्म है, आत्मागतधर्म नहीं है । वस्तुतः आत्माजीव तो ज्ञान तथा आनन्दमय है, तथा सर्वशेषी परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का शेषरूप चित् पदार्थ है। इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि इस जीव में आगन्तुक दो प्रकार का भेद देखने में आता है। एक तो बाह्यभेद तथा दूसरा आन्तर भेद। जीव में जो मनुष्यादि भेद है वह बाह्य है तथा सुखित्व ज्ञानित्वमज्ञानित्वादिक जो है वह आन्तर भेद है, यह देनों प्रकार का भेद औपाधिक है। क्योंकि प्रकृति का परिणाम कार्यरूप जो देह तथा अन्तःकरण, तदात्मक उपाधियों का सम्बन्ध होने के कारण से आत्मा में उपर्युक्त भेद सब भासित होते हैं, और यह आकार जीव का स्वरूप नहीं हो सकता है क्योंकि उपाधि के हटने से अथवा विनष्ट हो जाने से तन्मूलकभेद भी नष्ट हो जायगा। देह अन्तःकरणादि उपाधि का कारण कर्म है, तो कर्म का अभाव वा विनाश होने से कार्यरूप भेद भी विनष्ट हो जायगा, तदन्तर आत्मास्वकीय स्वरूप ज्ञानानन्द रूप से प्रकाशित होता है। आत्माज्ञानानंदमय है। ज्ञानरूप होने से आत्मा स्वयं प्रकाशरूप हैं। स्वयं प्रकाशरूप यह आत्मा अपने लिए अनुकूल भासित होता है इसलिये प्रत्येक प्राणी को अपने में निरूपाधिक प्रेम देखने में आता है।

यस्चैतन्यगुणक एव 'तत्राणुचेतनो जीवः सच्चिदानन्दलक्षणः' इतिजगदाचार्यश्रीश्रियानन्दाचार्योक्तेः। तस्य जीवस्याविद्याकृतभेदापगमे स्वरूपभेदो वाचामविषयः स्वसंवेद एव। ज्ञानरूपेणैव निर्दिष्टो भवति तादृशं तदीयं स्वरूपं सर्वजीवानां समानम्। तस्माज्जीवस्व-

कार्यरूपः स एव हि' (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका) इत्यादौ तथोक्तेः। अयं भावः कारणस्योपादानस्य सद्भावे एव कार्यं ततो जायते तत्रैवावस्थितं पालितं च भवति। अवसाने तत्रैव स्वाकारं विहाय विलीयमानंभवत् कारणमव्यक्तमिति। नजनितपुण्यक्षातितकषायस्यविवेकविमोकाभ्यासादिभिरेवेति' (आनन्दभाष्यम्) इत्यादि श्रीआचायः तथा कारणस्यासद्भावे कार्यं स्वात्मानं न लभते। कारणेन नियंत्रितं सत् कारणं विहाय नान्यत्र गच्छतीति भवति कारणस्य नियन्तृत्वमिति। एवं श्रुतिरपि परेशस्य सर्वनियन्तृत्वं समर्थयति 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वेद' 'यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यस्य विज्ञानं शरीरं यं विज्ञानं न वेद' इत्याद्यन्तर्यामिब्राह्मणं भगवतः सर्वनियामकत्वं दर्शयति। श्रुतिश्च नोऽतीन्द्रियार्थप्रतिपादने प्रमाणं भवतीति।

अनेन प्रकारेण भगवतः स्वरूपप्रदर्शनं भवति। तथा 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता

इसलिये जीवात्मा ज्ञानानन्द स्वभावक हैं, व्यवहार में ज्ञानगुणवाले कहे जाते हैं। इस प्रकार से जीव स्वरूप का विवेचन किया जात है। ये जीवबद्ध मुक्त तथा नित्य भेद से अनेक प्रकारक होते हैं। इस विषय पर विशेष विवेचन श्रीरघुवरीयवृत्ति विवरण तथा सारबोधिनी में और श्रीबैष्णवमताब्जभास्कर की मेरी टीका प्रभा किरण आदि अन्य प्रबन्धोंमें देखें।

इसके पूर्व में जीवस्वरूप का निश्चय किया गया है और जीवादिघटित का कारण अन्तर्यामी हैं, ऐसा भी कहा है, तो उस अन्तर्यामी का क्या लक्षण है उसमें क्या प्रमाण है? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**प्रत्यक्षादिप्रमाणोपनीतेत्यादि।**'

प्रत्यक्षादिप्रमाण द्वारा समुपलभ्यमान जो संपूर्ण स्थूल सूक्ष्म साधारण जड प्राकृतिक तथा चेतनात्मक जगत है तादृश जगत के उत्पत्तिस्थिति तथा प्रलय का अभिन्न निमित्तोपादान कारण सर्वेश्वर श्रीसाकेतविहारी ही है। इसमें '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति**' (जिस सर्वज्ञ सर्वशक्ति समन्वित परमज्योति पुरुष श्रीरामजी से ये परिदृश्यमानस्थावर जंगमसाधारण आकाशादिप्रधानक समस्त जगत् उत्पन्न होते हैं और जिस परमात्मा में ये सब भूत वर्ग स्थित रहते हैं तथा जिस परमात्मा में अन्तकाल में प्रलीयमान हो जाते हैं वह ब्रह्म-परमात्मा है, हे शिष्य! एतादृश परम पुरुष भगवान् श्रीरामजी को जानने की ईच्छा करो और उसकी उपासना करो) इत्यादिश्रुति प्रमाण है, किसी भी कार्य के प्रति कारण होते हैं। एक तो उपादान कारण दूसरा निमित कारण यथा घटरूप कार्य के प्रति उपादान कारण है मृत्तिका

रूपानुचिन्तनमावश्यकमेव नो निरर्थकमिति। तदुक्तम् 'तथात्माप्रकृतेः सगादहंमानादि इषितः। भजते प्राकृतान् धर्मानन्यस्तेभ्योपि सोऽव्ययः। पुमान् न देवो न नरो न पशुर्न च पादपः। शरीराकृतिभेदास्तुभूयैतेकर्मयोनयः॥ (वि.पु.२।१३।९८) नायं देवो न मर्त्यो वा न तिर्यक् स्थावरोपि वा।

पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः' 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते' 'निष्कलंनिष्क्रियंशान्तंनिरवद्यं निरञ्जनम्' 'अस्थूलमनणु' 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्यादिश्रुतयो भगवतः स्वरूपं तथा हेयप्रत्यनीकान्ननन्तान् कल्याणगुणानपि दर्शयन्ति। ये तु 'अस्थूलमनणु' इत्यादिश्रुतिं पुरस्कृत्यनिर्गुणत्वं भगवति कथयन्ति तन्मत गुणवत्वप्रतिपादकश्रुतीनां सर्वथैव निरालंवनत्वं प्रसज्जेत। मम मतेतु सर्वश्रुतीनां सार्थक्यं प्रामाणिकत्वं च समर्थितं भवति। तथा हि अगुणवत्वप्रतिपादकाः प्राकृतिकान् हेयगुणान् निराकृत्यप्रामाण्यमासादयन्ति। गुणवत्वप्रतिपादिकास्तु प्राकृतिकान् गुणान् निराकृत्य स्वाभाविकान् तान् कल्याणगुणान् लोकोत्तरान् प्रतिपादयन्तीति भवति सर्वासामेव प्रामाण्यमिति एतत्सर्वं श्रुत्यैवावेदितं भवति। ताः काः श्रुतयो या इत्थं प्रतिपादयन्तीति जिज्ञासायामाह तादृशं वेदान्तवाक्यं तत्वमसीत्यादिकमिति। एतद्विशेषविवरणं स्वयमेव दर्शयति आर्थात् केयमविद्येत्यादि। अत्रत्यं यद्विशेषवक्तव्यं तत् स्वयमेवाग्रे विधास्यतीति संक्षेपः।

इसीको न्याय मत में कहते हैं समवायिकारण और दूसरा कारण होता है निमित्तकारण, यथा घटादिकार्य में निमित्त कारण होता है चेतन कुलालादिक परन्तु प्रकृत में जगत् रूप कार्य के प्रति उपादान कारण पुरुषोत्तम श्रीराम हैं तथा कर्ता कारण भी लूताकीट की तरह परमपुरुष श्रीराम ही होते हैं, अत एव दर्शनशास्त्र में भगवान् को अभिन्न निमित्तोपादान कहा जाता है। अर्थात् उपादान कारण तथा निमित्त कारण भगवान् ही हैं। जिस तरह लूताकीट शरीर प्रधानता से तंतुरूप कार्य के प्रति उपादान होता है तथा चेतनांशप्रधानतया निमित्तकर्ता कारण होता है। इसमें '**यथोर्णनाभिः सृजतेगृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति। तथाक्षराद्विविधाः सोम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ते।** (हे शिष्य! जिस तरह ऊर्णनाभिलूताकीट तंतु को अपने मुख से बनाता है और अन्त में उन तंतुओं को खा भी जाता है। अथवा पृथिवी से ओषधि वनस्पतियों की उत्पत्ति होती है ओर अन्त में वे सब पृथिवी में ही विलीयमान हो जाते हैं। उसी तरह सभी ये परिदृश्यान पदार्थ इस अक्षर महापुरुष से समुत्पन्न होते हैं तथा अन्त में उसी में प्रलीयमान हो जाते हैं, यहां जिस तरह लूता कीट स्वयं तंतुओं का उपादान होता है तथा कर्ता भी होता है, उसी तरह संपूर्ण जगत् कार्य के प्रति भगवान् श्रीरामजी उपादान भी हैं तथा कर्ता भी हैं। इसलिये भगवान् जगत् के प्रति अभिन्न निमित्तोपादान कहे जाते हैं। इससे भगवान् में जगत्काकणत्व प्रदर्शित होता है। तब जगत्कर्तृत्व अन्तर्यामी का लक्षण निष्पन्न होता है और भगवान् में जगत्कारणत्व श्रुति प्रणाण से सिद्ध होता है, तो अन्तर्यामी का स्वरूप तथा प्रमाण निश्चित होजाने

ज्ञानानन्दमयस्त्वात्माशेषो हि परमात्मनः । न देहो न च प्राणरूपो न बुद्धिर्नबुद्धीन्द्रियं नैव कर्मेन्द्रियं वा । न रक्तं न मांसं नचाप्यस्थिमज्जा परं रामचन्द्रस्यदासश्चिदात्मा ॥३॥ (चिदात्माप्रबोधः) इत्याद्युक्तेस्तस्मा-ज्ज्ञानानन्दस्वभावोव्यवहारे चैतन्यगुणक इति जीवस्वरूपम् । स च

ननु जीवो देहरूपो देहादिभिन्नो वा आद्ये देहादिनाशे जीवस्यापि विनाशेन जन्मान्तरीयशरीरावच्छेदेन कृतकर्मणां जन्मान्तरीयशरीरावच्छेदेन भोगानुपपत्तिप्रसङ्गेन स्वर्गादिजनकयागादौलोकानां प्रवृत्तिर्न स्यात् । ततः 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि वेदस्याप्रामाणिकत्वमापद्येत । न च द्वितीयः पक्षः । तथा सति केवलस्य निरवयवस्य शरीरादिरहितस्य वर्णाश्रमविभागसापेक्षयागदानादिकर्मणि अधिकाराभावेन स्वर्गाद्यर्थं मोक्षार्थं वा प्रवृत्तेरेवानुपपत्तेः । तस्मात्सकलक्रियाकर्तुर्जीवस्य स्वरूपं निश्चेतुं प्रक्रमते यद्यप्ययन्देव इत्यादि । अयंभावः । न जीवः सर्वथा देहादिरूपो नवा ततः सर्वथा ततो भिन्नः किन्तु यथा घटाकाशो न सर्वथा घटात्मा सावयवनिरवयवोरेकत्वानुपपत्तेः । न वा सर्वथा घटसंबन्धरहितः । घटसंबन्धितयैव व्यवह्रियमाणत्वात् घटाकाशः पटाकाशः

से 'किं प्रमाणकः किं स्वरूपकश्च ' इस प्रश्न का समाधान हुआ ।

'**संसारोच्छेदेनेति**' भगवान् श्रीपुरुषोत्तमराम अनादि अविद्या से संलग्न जो जीव का संसार तादृश संसार का उच्छेद विनाश करने में पटु अर्थात् समर्थ हैं। अर्थात् जन्म मरण प्रबन्ध का नाम है संसार। भगवान् उपासक की उपासना से संतुष्ट होकर के उसका विनाश कर देते हैं। '**अहं वृक्षस्यरेरिव**' इत्यादि श्रुति तथा '**तेषामहं समुद्धर्तामृत्युसंसारसागरात् । भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् । मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।**' इत्यादि श्रुति स्मृतियों से सिद्ध होता है कि भगवान् संसार का उच्छेदक हैं। अतएव आचार्यश्री ने वरावर कहा है '**संसारोच्छेदनपटुरिति** ।

सकल हेय प्राकृतिक गुणों का प्रत्यनीक विरोधी होने से तथा कल्याण का आकर होने से भगवान् स्वेतर समस्त पदार्थों से भिन्न हैं । एवं अनधिक अतिशय कल्याणगुण का आकर समुद्र है। समाभ्यधिक विवर्जित हैं। इससे स्वेतर समस्त पदार्थ विलक्षणत्व कल्याण गुणाकरत्व और समाभ्यधिक विवर्जितत्व भी अन्तर्यामी का लक्षण होता है। तथा यह भगवान् श्रीरामजी पुरुषोत्तम इत्यादि विशेष शब्द द्वारा सकल वेदान्त से बोधिक होते हैं। इस प्रकार से अन्तर्यामी का विवेचन किया जाता हैं। इस तरह सर्वनियमन कर्तृत्वादिक अन्तर्यामी का लक्षण होता है, इस में वेदान्त प्रमाण है।

'**द्वासुपर्णेत्यादि**' '**द्वासुपर्णसयुजासखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते**' '**ज्ञज्ञावीशानीशौ**' इत्यादि अनेक भेद प्रतिपादक श्रुति तथा इतिहास पुराणादि वाक्यों से चेतन अचेतन और परमेश्वर ये सब परस्पर

जीवोवद्धमुक्तनित्यभेदादनेकविधः । विशेषतो विवेचनमन्यत्रावधेयम् ।

॥ अन्तर्यामिस्वरूपनिरूपणम् ॥

प्रत्यक्षादिप्रमाणोपनीतसमस्तजड़चेतनकजगत उत्पत्तिस्थितिप्रल-यहेतुभूतः संसारोच्छेदनपटुः सकलहेयप्रत्यनीकतया कल्याणगुणाक-

रकाकाशोवेति व्यावहारिकव्यवहारदर्शनात् । तदुक्तम् 'घटसंवृतमाकाशं नीयमाने यथा घटे । घटो नीयेत नाकाशं तद्वज्जीवो नभोपमः' इति । तथा अप्राकृतिको ज्ञानानन्दस्वभावो जीवः कर्मबलात्प्राकृतशरीरादिभिस्सहितस्तदीयधर्मान् स्वस्मिन्नभिमन्यमानः स्वभावतो देवादिशरीरभिन्नोऽपि तत्र देहतादात्म्यमादाय तदुचितक्रियासुप्रवर्तमानः संसारसुखदुःखा-दिकमनुभवन् घटीयंत्रवत् संसारसागरे परिभ्रमति ।

यथा बालुकानिकरः स्वभावतोऽनुष्णाशीतस्वभावोपिरविकिरणगतान् धर्मान् स्वस्मिन्नभिमन्यमानोऽदाहकोपिपथिकपादान्तुदति । यथा वा कामिनी स्वयंसुगन्धिधर्मविर-हितापि अंगरागगतगुणान् अंगरागविलक्षणसंयोगात्स्वशरीरे परम्परया अभिव्यञ्जयति । तथा जीवोऽपि स्वयं ज्ञानानन्दमयस्वभावोऽप्राकृतिकोऽपि अविद्यया प्राकृतिकतत्तद्देह-

विभिन्न विभिन्न तत्व हैं। ऐसा प्रतिपादित होता है। तथा घटक जो श्रुति हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि जडचेतन सभी पदार्थ भगवान् का शरीररूप है और परमेश्वर चेतन तथा अचेतनत्व का आत्माशेषी है। इन दोनों में जड चेतन का आधार तथा स्वामी परमात्मा हैं। इस लिये ये दोनों जडचेतन परमेश्वर के नियमन में रहते हैं। अर्थात् ये दोनों नियम्य हैं। तथा परमेश्वर ईन दोनों जडचेतनों का नियामक हैं। ये दोनों जड चेतन परमेश्वर के लिये ही हैं। इसलिये समस्त जड चेतनों का आत्मा है। लोक में भी देखने में आता है कि शरीर वाचक देव मनुष्यादि शरीरावच्छिन्न आत्मा है उसका भी बोधक होता है। यथा वा जाति बोधक एवं गुणबोधक जो शब्द हैं वे जाति का बोध कराते हुए जाति का आश्रय जो गवादि व्यक्ति उनको भी समझाते हैं, क्योंकि जातिव्यक्ति के विना गुण गुणी के विना रह नहीं सकते हैं। नीलादिगुणबोधक पद नील गुण तथा नील गुण के आधार द्रव्य को भी समझाता है। उसी प्रकार देवादिशरीरवाचक जो देव मनुष्यादि पद हैं वे भी स्वकीय आधार तथा स्व के आत्मभूतजो परमात्मा उनको भी समझाता है। क्योंकि '**देवःसुखी**' देवता सुखी हैं, मनुष्य सुखी दुःखी है, ऐसी प्रतीति होती है, अर्थात् शरीरवाचकपद यदि शरीर मात्र का बोधक हो और शरीरीपर्यन्त का बोधक नहीं हो तब समवाय संबन्ध से सुखवत्ता की प्रपति नहीं होगी, शरीर रूप जड में समवाय संबन्ध से सुखाधिकरणत्व तो वाधित है। समवाय संबन्ध है। समवाय संबन्ध से सुख तो चेतन में ही रहता है। अतः शरीरवाचक देवादिपद तादृश शरीर स्थित स्वकीय आत्मा का भी बोधन कराकर के तादृश सुखवत्ता का उस आत्मा में बोध कराता है। इससे यह फलितार्थ निकलता है कि शरीरवाचक पद शरीरी में पर्यवसित होता है। अर्थात्

रस्तथाचस्वेतरसमस्तपदार्थविलक्षणोऽनवधिकातिशयकल्याणगुणसागरः सर्वात्मपरब्रह्मपरज्योतिः परत्वसदादिशब्दविशेषैः सकलवेदान्तबोध्यो भगवान् सर्वेश्वरश्रीराम एव मर्यादापुरुषोत्तमः परमात्मा 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासौ- परब्रह्माभिधीयते (श्रीरा.ता.उ.)

गतधर्मान् स्वस्मिन्नभिमत्यदेवो वा मनुष्यादिर्वा भवन् मनुष्यादि शरीरोचितधर्मेणधर्मवान् भवन् तदुचितानिकर्माणि कुर्वाणोपि स्वभावतो न देवो न वा मनुष्यो न वा पशुकीटपतंगादिर्भवति भवति च परधर्माध्यासात्तथाविधोपीति प्रकृतनये भवति सर्वापिलौकिकशास्त्रीयव्यवहार इति प्रकरणस्यमुकुलितोऽर्थः । अधिकं तत्वत्रयसिद्धिविवरणेमदीयतत्त्वदीपेऽनुसन्धेयः ।

अप्राकृतिकेजीवे प्रकृतिपरिणामदेहेन्द्रियादिसंपर्कादेवाहंममाभिमानदोषवत्वं भवति स्वभावतस्तु जीवः सर्वदोषविवर्जित इति कथनं न कपोलकल्पितं किन्तु श्रुत्यादिप्रमाणसिद्धत्वेन समूलकमेवेति दर्शयितुमितिहासपुराणादिवचनानि समुपस्थापयन्नाह तथात्मा प्रकृते रित्यादि । यथा काष्ठादौ वर्तमानो ऋजुत्ववक्रत्वादिको गुणः काष्ठसंयुक्तवह्नौ प्रतिभासते

शरीरी को भी समझाता है। इसी तरह शरीरवाचक जडचेतन बोधक पद श्वशरीरी स्वकीय आत्मा परमेश्वर श्रीराम को भी समझाता है।

एवं अभेदप्रतिपादक जो आगम हैं, वे भी अचेतन पदार्थ को परमात्मशरीरत्व तथा परमात्मा में शरीरित्व को समझाते हुए शरीरात्मभाव संबन्धों को ही समझाते हैं। इसलिये आगम चाहे वे भेद प्रतिपादक हों अथवा अभेदप्रतिपादक हों वे सब जड चेतन तथा परमेश्वर में शरीरात्मभाव को ही समझाते हैं। इस प्रकार से कोई-कोई आगम इस जगत् को परमेश्वर का अंश कहते हैं। कोई शरीर परमेश्वर का शरीर है ऐसा कहत हैं। कोई तनु शब्द से कोई रूप शब्द से प्रतिपादन करते हैं। तथा '**विष्णोरंशाद्द्विजोत्तम**' हे द्विजोत्तम ! यह सम्पूर्ण जड चेतन साधारण जगत् भगवान् विष्णु का अंश है इत्यादि रूप से।

द्वैत का अथवा अद्वैत का प्रतिपादन करनेवाली जो कोई श्रुति हैं वे सब परमेश्वर की जो विभूति महिमा है, तादृश विभूति का ही वर्णन करती हैं, ऐसा आचर्यजी ने इससे पूर्ण प्रकरण में कही है, परन्तु '**तत्त्वमसि**' '**अस्थूलमनणु**' '**अहं ब्रह्मास्मि**' इत्यादि अभेदप्रतिपादक जो श्रुति समुद्राय हैं उनका परमेश्वर के विभूति वर्णन करने में तात्पर्य नहीं है, किन्तु किसी अन्य विषय के वर्णन करने में ही तात्पर्य है ऐसा बहुत से पंडित लोग कहते हैं। अर्थात् तत्त्वमस्यादिक श्रुति समुदाय तत्पदवाच्य परमेश्वर तथा त्वं पदवात्यजीव के वास्तविक अभेद का ही प्रतिपादन करते हैं किन्तु भगवान् की विभूति का प्रतिपादन नहीं करते हैं। क्योंकि श्वेतकेतु तथा उद्दालक का जो संवाद प्रकरण हैं ? वह अभेद प्रतिपादन परक है स्तावक प्रकरण नहीं है।

'राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः । राम एव परंतत्त्व श्रीरामो ब्रह्मतारकम् (श्रीरामोपनिषद्) 'परान्नारायणाच्चापि कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः स्वराट् ।। यस्यानन्तावताराश्च कला अंशाविभूतयः । आवेशाविष्णुब्रह्मेशापरब्रह्मस्वरूपभाः ।। स एव सच्चिदानन्दो-

न वह्नेः स्वाभाविकः किन्तु काष्ठोपाधिकस्तथानेन प्रकारेण अयमात्मा जीवः स्वयं स्वभावतो विशुद्धोपि अहं ममादिकदोषयुक्तप्रकृतेर्गुणत्रयविशिष्टायाः सङ्गात् विलक्षणानादिपरंपराप्राप्तसङ्गात् संयोगात् अहं मानादिदोषैर्युक्तः संयुक्तो भवति । ततश्च प्राकृतान् प्रकृतिगतान् धर्मान् कामक्रोधादिकान् भजते स्वकीयानेवेत्यभिमन्यते स च स्वभावतः तेभ्योधर्मधर्मिभ्योभिन्न एव । अव्ययः स्वभावतः सर्वभावविकाररहितः । अर्थात् स्वरूपतो जीवोऽप्राकृतिकोपि दोषविशिष्टप्रकृतिसंपर्काद्दोषवानिव भवति, यथा निर्मलमपि नभः समलपृथिवीसंपर्कात् धूलीधूसरितमिवभवतीति प्रथमश्लोकार्थः ।

पुमान् न देवो न नरः इत्यादि-हेभूप ! राजन् ! अयं पुमान् पुरुषो जीवो देवो न,

'**तत्राद्वैतिनः**' इत्यादि। उसमें शंकाराचार्य के मतानुयायी जो विद्वान् हैं वे लोग तो तत्त्वमस्यादिवाक्यों का अर्थान्तर को ही स्वीकार करते हैं। अर्थात् उक्त तत्वमस्यादि वाक्य से भगवान् की विभूति का वर्णन नहीं किया जाता है किन्तु श्रुति प्रमाण से जीव परमेश्वर का पारमार्थिक तादात्म्य का प्रतिपादन किया है। यद्यपि '**तत्वमसि**' इस श्रुति घटक तत्पद सर्वज्ञत्व विशिष्टमायाशवलित परमेश्वर का वाचक है और त्वं पद अल्पज्ञत्वविशिष्ट अन्तःकरणाविच्छिन्न जीव चेतन का वाचक है तो परस्पर विरुद्ध धर्माश्रयीभूत ईश जीव का तादात्म्य बाधीत होने से तादृश तादात्म्य यथोक्त श्रुति से नहीं हो सकता है। तथापि यदि तादृशार्थ बोधकतामाने तब तो बाधितार्थ बोधजनक होने से '**अग्निरनुष्णः**' इत्यादि वाक्यवत् वेद वाक्य का भी अप्रामाणिकत्व हो जायगा यह तो इष्टनहीं है। तथापि वाच्यार्थ के तादात्म्य होने में बाध होने पर भी उभय पदों में लक्षणा करके विरुद्धांश को छोड करके अविरुद्ध शुद्धचेतन द्वयका तादात्म्य होने में कोई बाध नहीं होता है। यद्यपि लक्षणावृत्ति का आश्रयण करना यह तो जघन्य पक्ष है, तथापि श्रुतिप्रामाण्य के अनुरोध से '**सोऽयं देवदत्तः**' एतादृश स्थल के समान मानने में कोई दोष नहीं होता है।

इस मत का प्रतिपादन करने के लिये कहते है '**तथाहि**' इत्यादि '**निर्विशेष**' इत्यादि '**सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म**' '**विज्ञानं ब्रह्म**' इत्यादि श्रुति के अनुरोध से निर्विशेष अर्थात् सर्वप्रकारक विशेषण रहित ज्ञानमात्र स्वरूप ब्रह्म हैं। जिस घटादि धर्मी में घटत्वादिक घटभिन्न धर्म रहता है, उसी तरह उस ज्ञानरूप ब्रह्म धर्मों में कोई भी विशेषण नहीं रहता है। अर्थात् ज्ञानत्व ज्ञेयत्वादिक कोई भी नहीं रहता है। इसलिये ब्रह्मनिर्विशेष कहलाता है। एवं ज्ञानमात्र नित्यमुक्त तथा स्वप्रकाश रूप हैं। क्योंकि ज्ञानस्वप्रकाश है, ज्ञान से

विभूतिद्वयनायकः । वात्सल्याद्यद्भुतानन्तकल्याणगुणवारिधिः' इत्यादिरूपेण श्रुतिस्मृत्युक्तेः ।

तत्रागममात्रं परमेश्वरस्य महिमानं प्रख्यापयति । 'द्वासुपर्णे' त्यादिभेदश्रुतिर्जडचेतनपरे साविभिन्नावेवेति प्रतिपाद्यते । तथा

अर्थात् देवदेहरूपो न भवति, न वा नरोत्तमदेहरूपो वा, न वायं जीवः पशुः पशुशरीरतादात्म्यापन्नः, न वायं पादपः स्थावरशरीररूपः । परन्तु सर्वे इमे भेदाः शरीराकृतौ वर्तमानाः शुभाशुभकर्मजनिता आगमापायिन एवेति ।

नायं देवो न मर्त्यः इत्यादि-अयं जीवो न स्वभावतः देवदेहरूपो न वा मर्त्योमनुष्यादिशरीररूपो नं वा तिर्यक् पशुकीटपतंगादिदेहकल्पो न वा स्थावरो वृक्षादिदेहरूपो वा, किन्तु पूर्वोदितप्राकृतसर्वोपाधिविवर्जितो वस्तुतो ज्ञानानन्दमयो ज्ञानानन्दस्वभावकः परमात्मनः सर्वनियामकश्रीरामचन्द्रस्यायं जीवराशिः शेषः प्रकार

अभिन्न ब्रह्म भी स्वप्रकाश है और स्वप्रकाश होने से ब्रह्म के ऊपर में प्रकार का आवरण भी नहीं है। ब्रह्म को एतादृश स्वभावक होनेपर भी '**तत्त्वमस्यादि**' श्रुति के बल से जीव के साथ एकत्व है । तब ब्रह्म अज्ञानोपाधिक कहलाता हैं और उसी ब्रह्म में बन्धन मोक्ष होता हैं । अर्थात् अज्ञान के बल से ब्रह्म को ही संसार होता है तथा वही ब्रह्म श्रवणादि द्वारा आत्मसाक्षात्कार से मुक्त भी होता है। निर्विशेष ब्रह्म से अतिरिक्त परमेश्वर तथा परमेश्वर नियाम्यत्वादिकरूप जो अनेक प्रकार के प्रपञ्च समुदाय है, वह सब मिथ्या है अर्थात् यह सब परिदृश्यमान जगत् पारमार्थिक नहीं है किन्तु स्वप्न इन्द्रजाल के समान प्रातीतिक अथवा व्यावहारिक है और आत्मा के एक होने से कोई वद्ध है तो कोई मुक्त है पूर्वकाल में शुकादिक मुक्त हो गये । एवं अनागतकालिक महापुरुष मुक्त होंगे, यह व्यवस्था भी पारमार्थिक नहीं है। हिरण्यगर्भ ही एक मुख्य जीव है, तदीय शरीर सजीव है, तदितर सब शरीर निर्जीव हैं । ज्ञान का उपदेशक आचार्य भी मिथ्या है तथा शिष्य भी मिथ्या है। शास्त्र मिथ्या है । और शास्त्रजनित जो ज्ञान है वह भी मिथ्या है अर्थात् अपारमार्थिक ही है।

प्रश्न-बन्धमोक्षव्यवस्था आचार्य तथा शास्त्रादिजनित ज्ञान सब मिथ्या है, इस बात को किस प्रमाण से जानते हैं, क्योंकि प्रमाण के द्वारा ही तो प्रमेय जाना जाता है, प्रमाण को तो सत् होना चाहिये ? यदि शास्त्र लक्षण प्रमाण ही मिथ्या होने से अप्रमाणिक है, तब तो उस से प्रमेयावगम किस तरह से होगा ?

उत्तरः-इन सब का उत्तर करने के लिये कहते हैं '**सर्वमेतन्मिथ्येत्यादि** ब्रह्मव्यतिरिक्तपदार्थमात्र मिथ्या है। शास्त्रतज्जन्यज्ञान मिथ्या है, इत्यादिक मिथ्याभूत शास्त्र से ही जाना जाता है। क्योंकि '**यक्षानुरूपो बलिः**' ऐसा न्याय है । अर्थात् जिस तरह स्वप्नकाल में '**न तत्ररथा न रथयोगा न पन्थानः**' इत्यादि श्रुति से सिद्ध होता है कि उस काल में न द्रष्टव्यवस्तु है न वा दर्शन का कारण चक्षुरादिक है क्योंकि निद्रा दोष से

घटकश्रुतिशिरसि जडचेतनादितत्वं भगवतः शरीररूपमेवेति प्रतिपाद्यते । परमेश्वरश्च जड़चेतनपदार्थयोरात्माशरीरी । अनयोः शरीरात्मभाव एव सम्बन्धः । अनयोराधारभूतः परमात्मैव यत इमौ परमेश्वरस्यनियमने विद्येते । ईश्वरारार्थो

इति । अर्थात् जीवलक्षणप्रकारस्य भगवान् प्रकारी जीवस्तु शेषलक्षणः प्रकार एवेति पूर्वोदितप्रमाणैर्जीवे भेदद्वयं चकास्ते ते च बाह्यभेदान्तरभेदौ । तत्र जीवे प्रतिभासमानो मनुष्यदेवादिभेदो बाह्यः सुखित्वदुखित्वज्ञानित्वादिभेद आन्तरः । इमौ द्वावपि जीवे प्रतिभासमानौ परोपाधिकौ न स्वाभाविकौ भेदौ । यतः प्रकृतिपरिणामशरीरान्तःकरणलक्षणोपाधिसंवन्धादेव जीवे तादृशभेदयोः प्रतिभासमानत्वात् । इमौ च भेदौ नात्मनः स्वाभाविकौ यत उपाध्यपगमे तद्विनाशे वा जीवे तयोः प्रतिभानत्वासंभवात् । कारणाभावे कार्याभावस्यावश्यंभावदर्शनात् । निमित्ताभावे नैमित्तिकाभाव इति नियमात् देहाद्युपाधिसंवन्धश्च जीवस्य शुभाशुभकर्मजनित इति कारणवलात् कर्मनाशे कर्मसंबन्धजनि-

---

ये सब विरत हो जाते हैं; तो उस समय में असत् चक्षुरादिकरण से रथादि का ज्ञान होता है, वहां चक्षुरादि प्रमाण भी मिथ्या है। ज्ञायमानरथमार्गादिज्ञेय पदार्थ भी मिथ्या है, तथापि असत् चक्षुरादि प्रमाण से मिथ्याभूत प्रमेय का अवगम होता है, ऐसा लोकव्यवहार सिद्ध है। उसी तरह प्रकृत में मित्याभूत शास्त्र आचार्य से तथा मिथ्या ज्ञान से मिथ्यापदार्थ का अवगम होने में कोई क्षति नहीं है। इस तरह शंकरमतानुयायी लोग प्रतिपादन करते हैं। यद्यपि ये अनेक प्रकार की कल्पना करते हैं, उन सव का विस्तृत रूप से प्रतिपादन करना समय साध्य है । इसलिये आचार्यजी ने संक्षेप रूप से उनके मत ज्ञा दिग्दर्शन मात्र कराया है। विशेष जिज्ञासु भाष्यविवरणादि में देखने का कष्ट करें। मैने भी प्रकृत प्रसङ्ग का वहीं पर्यालोचन किया है। प्रबन्दकाय वृद्धिभय से यहां संक्षिप्त किया हूं।

'**तत्त्वमसि**' इत्यादि श्रुतिघटक तत्पदवाच्य प्रकरण पदोपात्त ब्रह्म को सविशेष नमान करके दुराग्रहग्रस्त होकर के निर्विशेष मानते हैं । उनका जो मत है, तादृशमत का निराकरण करने के लिने उपक्रम करते हैं- '**अथैकांकामपि श्रुतिमित्यादि ।**' यत् किञ्चित् किसी एक श्रुति को-अर्थात् जो ब्रह्म जड़चेतनात्मक सकल संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है जिनमें कारणत्व सर्वज्ञत्व सत्यसङ्कल्पवत्वादिक असाधरण अनेक गुण हैं, तादृशब्रह्म को निर्विशेष मानते हैं। उनका मत परास्त हो जाता है अर्थात् खण्डित हो जाता है जो व्यक्ति ब्रह्म को सविशेष मानते हैं, उनके सद्युक्ति द्वारा । क्योंकि एक श्रुति के अर्थ का पर्यालोचनकरने से कथञ्चित् आपाततः कारण ब्रह्म में निर्विशेषता का प्रतिभान होने पर भी सकलश्रुतियों का पूर्वापर का विचार करने से तो ब्रह्म में सविशेषता की ही सिद्धि होती है। कारणीभूत ब्रह्म में निर्विशेषत्व की सिद्धि नहीं होती है। तो सविशेषता की सिद्धि किस प्रकार से होती है ? इस जिज्ञासा का निराकरण करने के लिये कहते हैं-'**तथाहि**'

चेमौ तस्मादीश्वरस्यभूतौ । ईश्वरश्चैतयोरात्मा । लोकेऽपि शरीरवाचको देवमनुष्यादिशब्दः तत्तच्छरीरस्थमात्मानमपि बोधयति । देवः सुखी मनुष्यो ज्ञानी अज्ञानी चेत्यादिप्रतीतेः । यथा जातिवाचको गुणवाचको वा शब्दोलोकेप्रयुज्यमानो जातिं गुणं तदाश्रयं च बोधयति । तथैव प्रकृते

तदेहाद्युपाधेर्विनाशस्तथा देहाद्युपाधिविनाशे तज्जनिततादृशोपाधिजनितभेदद्वयस्यापि सर्वथाविनाशात् । ततश्च **कर्मविनाशे कर्मजनितदेहाद्युपाधेस्तथा तादृशोपाधिजनितभेदस्यापि** सर्वथा विनाशेन **सर्वकलङ्करहितश्चन्द्रवत्** प्रकाशमानो जीवस्वाभाविकज्ञानानन्दरूपेण प्रतिभासोऽवतिष्ठते । **आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूपोऽयमेव** जीवस्य स्वाभाविकः स्वरूपः ।

अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवतीति **श्रुत्याजीवः स्वयं प्रकाशरूपः । अतएव स्वयंप्रकाशज्ञानरूप आनन्दरूपश्च । आनन्दरूपत्वादेव सर्वेषामयमतिप्रियः । यद्यपि** देहगेहकलत्रपुत्रधनादौप्रियत्वज्ञानं तदात्मार्थमेव । आत्मनि च नान्यार्थं प्रेम भवति । मानभूवंनभूयासमितिप्रेमात्मनीक्ष्यते । आ च कीटपतंगेभ्य आ च ब्रह्मर्षिभ्यः सर्वस्यापि स्वभावत एव प्रेम दर्शनात् । तस्मात् सर्वस्यापि प्रकाशकत्वात् स्वस्मिन् स्वाभाविकप्रेमद-

इत्यादि । प्रतिज्ञात अर्थ का उपपादन करने के लिये कहते हैं '**तत्त्वमसीत्यादि**' (हे श्वेतकेतु ! जो परमात्मा संपूर्ण जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, तुम उसी प्रमात्मा के शेष अंशरूप हो ।) '**तत्त्वमसि**' इस श्रुतिका घटकीभूत जो तत् शब्द है वह जगत् कारण निर्विशेष ब्रह्म का प्रतिपादक नहीं है, क्योंकि जिस तरह '**घटोस्तितमानय**' (यह घट है उसको तुम ले आओ) इस वाक्य में जो तत् शब्द है, वह पूर्व में प्रकान्त घट का ही बोध करता है, अतः घट का ही आनयन होता है, घटेतर का आनयन नहीं होता इस तरह प्रकृत में यहां पूर्व में '**तदैक्षत**' इत्यादी स्थल में कथित जो सविशेष ब्रह्म है उसीका तत् शब्द से ग्रहण होता है । '**घटोस्तितमानय**' इत्यादि स्थलीय तदादि पद की तरह ।

पूर्व में '**तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय**' (समस्त जगत् का मूलभूत परब्रह्म ने ईक्षण संकल्प किया कि एक ही मैं अनेक रूप में परिणत होऊं ।) इत्यादि स्थल में । तथा '**सन्मूलाः सोम्य प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः**' (हे सोम्य श्वेतकेतो ! यह परिदृश्यमान जडचेतनात्मक सकलप्रजा सत् मूलवाली है, अर्थात् सदात्मक ब्रह्मरूप कारण से उत्पन्न होती है, और ये सब जडचेतन कार्य वर्ग उसी ब्रह्म में अवस्थिस्त हैं, एवं प्रलयकाल मे उसी सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट परब्रह्म में प्रलीयमान होजाती है । अर्थात् नामरूप विभागार्हस्थूलावस्था का परित्याग करके सूक्ष्म चिदतिद्विशिष्ट ब्रह्म में प्रलीयमान होजाती हैं इत्यादि स्थल में । तथा शाखान्तर में '**यः सर्वज्ञः ससर्ववित्**' जो ब्रह्म सामान्यरूप से सकलजगत् को जानता है वह सकल कारण ब्रह्म विशेषरूप से भी जडचेतमात्मक जगत् को जानता है, सर्वज्ञ है । '**परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते**' अर्थात् इस

जडादिवाचकः शब्दः प्रयुज्यमानः स्वं स्वाश्रयं परमात्मानमपि बोधयत्येव । शरीरवाचकपदानां शरीरिणीपर्यवसानस्य नियमात् । 'ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीयनिरस्ताखिलदोषमनवधिकातिशयासङ्ख्येय-कल्याणगुणगणं भगवन्तं श्रीराममेवाह सामान्यवाचकानां पदानां विशेषार्थे

र्शनादयमात्मा ज्ञानानन्दस्वरूप एव । अतएव ज्ञानानन्दमयत्वं जीवस्य स्वाभाविकं तदन्यत्सर्वमौपाधिकमेवेतिदिक् ।

योऽयं परमात्मा सर्वस्यापि जड़चेतनजनिमतो वस्तुन उत्पत्तिस्थितिप्रलयादिषुनि-दानत्वेन सर्वत्रश्रुतो भवति स किं प्रमाणकः किं लक्षणकश्च ? यतः लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्भवतीति नियमात् । इति तत्र प्रमाणादिदर्शनाय तदीयस्वरूपादि-दर्शनायाचार्यचरणाः प्रक्रमन्ते प्रत्यक्षादिप्रमाणोपनीतेत्यादि । **तत्र यत्किंचित्सावयव-रूपस्यार्थादिमत् तद्गतयोग्यगुणकर्मादिकं तत् सर्वं विभज्य प्रत्यक्षप्रमाणेनोपनीयते । यच्च**

ब्रह्म की नाना प्रकार की परा अत्युत्कृष्ट शक्ति सुनने में आती है, इस वाक्य से ब्रह्म में सर्वशक्तित्व गुण सिद्ध होता है । '**स ईशोऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय**' वह परब्रह्म इस जगत के उपर सर्वदा शासन करनेवाला है । उसका कोई अन्य शासक नहीं है । इससे ईश्वर में शर्वेश्वरत्वगुण है यह सिद्ध होता है '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' अर्थात् यह सब पदार्थ ब्रह्म ही है इससे सिद्ध होता कि सब पदार्थ ब्रह्म का विशेषण है । इससे कारणीभूत ब्रह्म म सर्वप्रकारत्व रूपगुणसिद्ध होता है । अर्थात् जडचेतन सब पदार्थ प्रकार तथा विशेषण है और ब्रह्मप्रकारी तथा विशेष्य है । एवं श्रुत्यन्तर में कहा है '**न तत्समश्चाभ्यधिकश्चविद्यते**' अर्थात् ब्रह्म के समान कोई नहीं है तथा उस ब्रह्म से कोई विशिष्ट भी नहीं है । इससे ब्रह्म में समाभ्यधिक रहितत्व गुण सिद्ध होता है । एवं '**अपहतपाप्मा**' '**निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्**' इससे शकलंदोषराहित्य ब्रह्म में सिद्ध होता है इत्यादि अनेक स्थल में बहुभवन सङ्कल्प जगदुत्पत्यादिकारणत्व सर्वज्ञत्वादि अनन्त कल्याणगुणविशिष्टत्व, '**निष्कलं**' इत्यादि अनेक स्थल में सर्वदोषरहितत्व कारण ब्रह्म में बतलाया गया है । तो उपर्युक्त श्रुतियों के द्वारा जगदुपादान ब्रह्म में सविशेषत्व सिद्ध होता है । अर्थात् जो जगत् का कारण है वह सगुण ही है । नतु निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म है । निर्गुण ब्रह्म है और वह कारण है, यह कथन तो बाधित भी है क्योंकि जव कारणत्ववान् है तब निर्गुण नहीं हो सकता है और निर्गुण होता तब कारणता लक्षण गुणवान् नहीं हो सकता है इसलिये शंकरमत ठीक नहीं है ।

प्रश्नः-'**तत्त्वमसि**' इस वाक्य के पूर्व में '**तदैक्षत बहुस्यां**' इत्यादि वाक्य है । और इसके पूर्व में '**येनाश्रुतं भवति**' इत्यादि वाक्य है । जिसमें जगत् कारण एक ब्रह्म को जानने से कार्यभूत सकल जगत् का ज्ञान हो जाताहै, इस प्रकार की प्रतिज्ञा का वर्णन किया गया है । इस प्रतिज्ञा का तात्पर्य यह है कि जो कारण

पर्यवसानात् । तदाहवृत्तिकार: विशेषार्थेन सामान्यार्थोऽवसीयत इति (वो.वृ.) 'आनन्दभाष्यम् १।१।१।) इत्याद्याचार्योक्तेश्च। ये चाभेदप्रतिपादका आगमास्तेपि चेतनाचेतनत्त्वयोः परमात्मशरीरत्त्व परमात्मनश्च शरीरित्त्वं शेषित्त्वमेवबोधयन्ति । तस्मात् सर्वाप्यागमो जडचेतनयो:

प्रत्यक्षाप्राप्यं तदनुमानेन ततः परं शब्दादिभिः सिद्धं भवति जड़चेतनादिकं जगत् तेषामुत्पत्तिस्थित्यादिकारणं परमेश्वरः श्रीरामः 'यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रत्यन्त्यभिसंविशन्तीतिश्रुतेः । सर्वद्व्यणुकादिकंसकर्तृकंजनिमत्वात् पटादिवदित्यनुमानाच्च । तथा 'तरतिशोकमात्मवित्' 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय इत्यादिश्रुत्या परमात्म एव संसारोच्छेदकत्वदर्शनात् । सुष्ठूक्तमाचार्येण संसारोच्छेदनपटुरिति । तथा हातुं योग्या ये प्राकृतिका गुणास्तेषां स्वभावत एव विरोधित्वात् कल्याणगुणानामाधारत्वात् भगवदितरसमस्तचेतनपदार्थेभ्यो विलक्षणो भिन्नः । इत्यतद्व्यावृत्तिरूपेण सर्वविलक्षणः सिद्ध्यति । अतद्व्यावृत्यानिषेधमुखेन परमात्मस्वरूपं

पदार्थ है वह सत्य है और जो कार्य है वह **'वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्यव सत्यम्'** इत्यादि प्रकरण से असत्य अर्थात् मिथ्या हैं। इस वात को श्रुति ने मृत्तिकादृष्टान्त से सिद्ध किया है इससे फलित होता है कि कार्यजन्य होने के कारण से सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है और इस जगत् का कारण ब्रह्ममात्र सत्य है और जगत् कारण ब्रह्मको **'सदेवसोम्येदमग्रे आसीत्'** इत्यादि श्रुति ने सजातीय बिजातीय तथा स्वगतभेद शून्य है, यह कह करके निर्विशेता का प्रतिपादन किया है। यह निर्विसेष ब्रह्म ही इस सद्विद्या में जगत् के कारण रूप में वर्णित है। एवं इससे भिन्न उपनिषद् के विभिन्न प्रकरणों में बहुत से शोधक वाक्य हैं जो कारण वाक्य से वर्णित कारण पदार्थ का शोधक हैं उन वाक्यों से भी होता है कि जगत् कारण ब्रह्म निर्विशेष है। तथाहि **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' 'निष्कलं हिष्क्रियं शान्तम् निरवद्यं निरञ्जनम्' 'निर्गुणम्' बिज्ञानमानंदं ब्रह्म'** इत्यादि वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि जगत् का कारण रूप जो ब्रह्म है वह निर्विशेष है। अर्थात् सर्व विशेषण गुण क्रियाजात्यादि से परिवर्जित है। तब आप जगत् कारण ब्रह्म में सविशेषत्व की सिद्धि किस प्रकार से करते हैं। अर्थात् कारण में सविशेषता की सिद्धि नहीं होती है। यह पूर्वपक्ष का अभिप्राय है।

इस प्रश्न का उत्तर करते हुए कहते हैं कि-**'किञ्चैकस्यब्रह्मणोविज्ञानेन'** इत्यादि, और भी देखिये-छान्दोग्य उपनिषद में जगत् कारण जो ब्रह्म है, उस एक ब्रह्मरूप कारण का ज्ञान से सभी कार्यजात जो जगत् हैं उसका ज्ञान हो जाता है। एतादृश एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की प्रतिज्ञा की गई है। अर्थात् उद्दालक ऋषि ने अति उद्दण्ड अविनयी पुत्र को जान कर के पुत्र से पुछा कि हे पुत्र ! तुम ने अपने आचार्य से जानलिया है कि एक का ज्ञान होने से अविज्ञात भी ज्ञात होता है ? इसके उत्तर रूप में मृत्तिका के दृष्टान्त से सर्व विज्ञान का

शरीरत्त्व परमात्मनश्च शरीरित्वमेव प्रदर्शयति । एवं च क्वचिच्छरीरत्वं क्वचिदवयवत्वं क्वचित्तनुत्वं क्वचिच्छेषत्वमित्येवं रूपेणभगवतो लीलाविभूत्यादिकमेवोपवर्णयतीतिभावः ।

तत्राद्वैतिनः श्रुतिमात्रं भगवतो विभूतिमेववर्णयतीत्युक्तम् । परन्तु

प्रदर्श्य विधिमुखेनापि तदीयं स्वरूपं साधयितुमाह-अनवधिकातिशयेत्यादि ।अवधिर्मर्यादा तद्रहिता तथा अतिशयोन्यूनाधिकभावस्तद्रहिता ये कल्याणगुणाः कमनीय गुणनिकरास्तेषां सागर इव सागरः । एतादृशानन्तगुणा भगवति विद्यन्ते इत्यर्थः । यद्यपि विधिनिषेधयोरेक एव हेतुर्नतु तत्र वैलक्षण्यम्, तथापि प्रकारमात्रे वैलक्षण्यम् । अथवा निषेधे हेतुपक्षयोराधाराधेयभावः । विधौतु गुणगुणिनोस्तादात्म्यमितिनियमेनपक्षस्वरूपत्वमेव हेतोः । वृक्षशिंशपावदिति । सर्वात्मपरब्रह्मेत्यादिशब्दो हि द्विविधः सामान्यशब्दो विशेषशब्दश्च । तत्र यो हि शब्दः प्रकरणादिबलेनाभिमतमर्थं बोधयन्नर्थान्तरमपिबोधयेत् स प्रथमः यथा सदादिशब्दः, स च प्रकरणवशात्परमात्मानं बोधयति तथा सत्ययं घटादिकमपि बोधयति । द्वितीयस्तु सः योहि प्रतिनियतमेवार्थं बोधयेत् यथा घटवनितादिशब्दः । प्रकृते तु 'सर्वात्मा

समर्थन किया है, तो जिस प्रकार एक कारण रूप मृत्तिका को जानने से तदिय कार्य विज्ञात हो जाता है, उसी तरह सदात्मक ब्रह्मरूप कारण का ज्ञान होने पर तदभिन्न जगत् का भी ज्ञान हो जाना स्वाभाविक है। परन्तु इस प्रतिज्ञा का समर्थन तभी हो सकता है जब कि कारण ब्रह्म को सविशेष माने और कार्यजगत् को उस कारण का प्रकार विशेषण तथा अंशरूप में स्वीकार किया जाय, इस से फलित होता है कि ब्रह्म सविशेष है निर्विशेष नहीं।

निर्विशेषवाद मत में दोषान्तर बतलाने के लिये कहते हैं-**'अपि च कार्यजातस्यमिथ्यात्वे'** इत्यादि। जिस तरह शुक्तिका में अध्यस्त रजत का भान अधिष्ठान ज्ञान हो ने से हो जाता है क्योंकि अधिष्ठान तथा आध्यासिक तादात्म्य है। इसी तरह ब्रह्मध्यस्तजगत् का ज्ञान अधिष्ठानभूत ब्रह्मज्ञान होने पर हो जायगा, य सत्यादिक हो तो यह भी ठीक नहीं है, क्यों कि सत्य ब्रह्म का तादात्म्य यदि जगत् में है तब तो सत्य मिथ्या में एकत्व हो जाने की आपत्ति हो जायगी। इष्टापत्ति मानो तो वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि तमप्रकाशवत् अतिविरुद्ध वस्तुओं में तादात्म्य होना प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित है। अतः निर्विशेषत्वादमत में सत्य मिथ्या का एकत्वरूप दोष का निराकरण नहीं हो सकता है।

परिणामी कार्यकारण स्थल में साजात्य होता है ऐसा नियम है किन्तु विवर्त में यह नियम नहीं है। इस शंका का निराकरण करने के लिये कहते हैं **'अपि च ब्रह्मणोनिर्विशेषत्वे'** इत्यादि, यदि ब्रह्म को निर्विशेष मानें और कार्यजगत् को मिथ्या माने तब तो एक विज्ञान प्रतिज्ञा का समर्थन करने के लिये जो मृत्तिका का

'तत्त्वमस्याद्यभेदश्रुतीनां न विभूतिवर्णनेतात्पर्यं किन्तु क्वचिदन्यत्रैवतासां तात्पर्यमिति वर्णयन्ति। केचन तत्र शङ्करमतानुयायिनः तत्त्वमस्यादिवाक्यानामर्थान्तरमेवस्वीकुर्वन्ति । तथाहि निर्विशेषविज्ञानमात्रमेव ब्रह्म । तत् नित्यमुक्तस्वयंप्रकाशरूपमपि तत्त्वमस्यादिश्रुत्याजीवैक्यं भजते। ब्रह्मैवा

परंब्रह्म' इत्यादिशब्दः सामान्यशब्दः । तथा सर्वेश्वरश्रीरामः पुरुषोत्तम इत्यादिविशेषः । इत्यादिसामान्यविशेषशब्दद्वारा वेदान्तशास्त्रमन्तर्यामित्वरूपं निर्धारयति । सर्वस्याप्ययमात्मरूपत्वात्सर्वात्मपदेन व्यपदिश्यते । व्यापकत्वात्सर्वस्यपरिणामित्वात् परब्रह्मेति गीयते । अतिशयिततेजः संपन्नत्वात् परज्योतिपदेन व्यपदिश्यते । श्रेष्ठत्वात् परत्वपदेन गीयते । सर्वाभ्यन्तरवर्तित्वादन्तरात्मपदव्यपदेश्यो भवति । किं च 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इतिरामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते' इत्याद्युक्त्यासर्वस्यापि आनन्ददातृत्वाद्राम इति पदेन व्यपदिश्यते सः । मुक्तपुरुषेभ्योप्यतिविलक्षणत्वात्पुरुषोत्तमपदेनव्यपदिश्यते । एवं प्रकारेण सर्ववेदान्तेन भगवान् श्रीराम एव प्रतिपादितो भवति । एवं च यथोक्तस्वरूपकं

दृष्टांत बताया है वह ठीक नहीं है। क्योंकि मुत्तिका घट में जो कार्यकारण भाव है वह तो पारिणामिक कार्य कारण भाव है। तो इस दृष्टान्त से तो दार्ष्टान्तिक में भी परिणाम वाद ही सिद्ध होता है। यदि यहाँ विवर्तवाद अभिमत होता तब तो यथोक्त प्रतिज्ञा का साधक शुक्तिरजत दृष्टान्त दिया जाता सो नहीं दिया गया है, इस लिये सविशेष ब्रह्मवाद ही ठीक है। निर्विशेषवाद नहीं।

सद्विद्या में अर्थात् छान्दोग्य के षष्ठाध्याय में '**स्तब्धोसि**' हे पुत्र ! तुम परिपूर्ण के समान लक्षित होते हो। क्या तुमने उस आदेशको अर्थात् परमात्मा के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिये अपने आचार्य से, इत्यादि वाक्य आया है। इस वाक्य का वक्ष्यमाण अर्थ सम्पन्न होता है। '**स्तब्धोसि**' इत्यादि वाक्यघटक जो आदेश शब्द है वह आदेश कर्ता भगवान् का बोध कराता है। क्योंकि आदेश दिया जाय जिससे, अर्थात् प्रशासन करनेवाला जो हो उसको आदेश कहते हैं। इस प्रकार आदेशपद की व्युत्पत्ति होती है।

हे पुत्र श्वेतकेतु ! तुम स्तब्ध अर्थात् परिपूर्ण की तरह मालूम पडते हो। क्या तुमने अपने आचार्य को परमात्मा के विषय में पूछ ताछ कर लिया है। अर्थात् क्या तुमने स्वकीय आचार्य से परमात्मा के यथावत् ज्ञान को प्राप्त कर लिया है। क्योंकि परमात्मा का यथावत् ज्ञान प्राप्त होने पर ही सब परिपूर्ण होता है अन्यथा नहीं। क्योंकि परमात्मा ही सर्वथा परिपूर्ण हैं। आदेशशब्द का अर्थ परमात्मा है, क्योंकि-'**एतस्याक्षरस्येत्यादि**' हे गार्गि ! इसी अक्षर परमात्मा के प्रशासन से सूर्य चन्द्रमा प्रभृतिक पदार्थ विधारित होने से स्वस्वस्थान में यथावत् अवस्थित रहते हैं। इत्यादि श्रुति से तथा 'सब का प्रशासन करनेवाले' इत्यादि मानवीय स्मृतिवचन द्वारा आदेशशब्द से परमात्मा ही अवगत होते हैं। परमात्मा स्वकीय संकल्प द्वारा संपूर्ण जडचेतन पदार्थ के

ज्ञानोपाधिकम्। तदेवबन्धमोक्षं भजते। निर्विशेषब्रह्मव्यरितिक्तमीश्वरेशितव्यादिविविधविकल्पस्वरूपं जगज्जालं मिथ्यैव , आत्मन एकत्वाद् बन्धमोक्षव्यवस्थापि न घटते। पूर्वं केचन मुक्ता तदपरेमुक्ताभविष्यन्तीत्यपि

वेदान्तप्रमाणगम्यमन्तर्यामिस्वरूपमिति संक्षेपः।

ननुभेदश्रुतिमवलंब्यजीवजगतोः परेशस्य च परस्परंभेदः शरीरात्माभावश्चसमर्थ्यते । परन्तु अभेदप्रतिपादकास्तुभेदविरुद्धमभेदमेवसमर्थयन्ति । तत्कथंभेदमूलकोयंपक्षः सुसंगतो भवतीति शङ्कां समाधातुमुपक्रमते 'द्वासुपर्णेत्यादिभेदश्रुतिरित्यादि । 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' 'यो विज्ञाने तिष्ठन्' इत्यादिश्रुत्या जड़चेतनपदार्थौपरमेश्वरस्य शरीरभूतावितिसिद्ध्यत्येव । ततश्च यथादेवादिशरीरस्याधारो देवस्यात्मा तथा प्रकृतेऽपि । एवं च भेदश्रुतिलौकिकोदाहरणेन शरीरात्मभावः सिद्धोभवति । अभेदश्रुतिरपिप्रकृतमर्थमेव गमयति । अन्यथा यदि अभेदश्रुतिंप्रामाणिकीं मन्येत तदाभेदश्रुतयोनिरालंबता बाधिताश्चभवेयुः । अथ यदि भेदश्रुतिंप्रामांणिकीं मन्येत तदाऽभेदश्रुतय एव बाधिताभ-

---

उपर में शासन करते हैं तथा स्वकीय संकल्प द्वारा संपूर्ण जगत् सर्गको करते हैं। अर्थात् संपूर्ण जगत् का उत्पादन करते हैं। जगत् सर्ग के कर्ता निमित्तकारण होने से ये परमेश्वर कहलाते हैं। यह परमेश्वर संपूर्ण चेतनाचेतनात्मक जगत् का निमित्त कारण अर्थात् कर्ता कहलाते हैं। जिस तरह घटादि कार्य को उत्पन्न करनेवाला कुलाल घटका कर्ता कहलाता है। जिस तरह जडात्मक घटकार्य के प्रति जडात्मक सजातीय कपाल द्वय उपादान कारण अर्थात् समवायि कारण होता है तथा घटापेक्षया विजातीय चेतन कुलाल निमित्त अर्थात् कर्ता कारण होता है। उसी तरह जडचेतन लक्षण सकल कार्य के प्रति परमेश्वर निमित्त कारण अर्थात् कर्त्ता करण होता है। उसी तरह जड चेतन लक्षण सकल कार्य के प्रति परमेश्वर निमित्त कारण अर्थात् कर्ता कहलाते हैं। क्योंकि ईश्वर स्वकीय संकल्प द्वारा जगत् को उत्पन्न करते हैं। तथा वही शक्तिमान् सर्वप्रशासक परमेश्वर जगत्रूप से परिणमित होते हैं। इसलिये चेतनाचेतन सकल जगत् का उपादान कारण भी हैं। जिस तरह घटकार्य के प्रति मृत्तिका उपादान कारण बनती है उसी तरह प्रकृत में सकल कार्य के प्रति यही परमेश्वर उपादान कारण भी होते हैं। इसी वात को आचार्यश्री स्वकीय शब्द द्वारा स्पष्ट करने के लिये कहते हैं '**यथा मृत्तिका घटरूपेण**' इत्यादि जिस तरह मृत्तिका रूप द्रव्य घटरूप से परिणाम को प्राप्त करता है तो घट के प्रति वह मृत्तिका द्रव्य उपादान कारण कहलाता है। इसी तरह आदेश पदवाच्य परमेश्वर सूक्ष्मचेतन तथा सूक्ष्म अचेतन से विशिष्ट होकर के स्थूल चेतनात्मक जगत् रूप से परिणत होते हैं, इसलिये जगत् के प्रति परमेश्वर उपादान कारण भी होते हैं।

यद्यपि घटादि कार्य के प्रति जो उपादान कारण होता है वही घटादि कार्य के प्रति निमित कारण अर्थात् कर्ता कारण हो ऐसा नहीं देखने में आता है। क्योंकि कार्य घटादिक जड है तो उसका सजातीय

मिथ्यैव । एकमेवहिरण्यगर्भशरीरं सजीवं तदितराणिनिर्जीवानि । आचार्योज्ञानोपदेशशब्दोमिथ्या । शास्त्रं मिथ्येति तज्जन्यज्ञानमपि मिथ्यैव । सर्वमेतन् मिथ्याशास्त्रेणैवावगतं भवतीति प्रतिपादयन्ति ।

वेयुरित्यत उभयोरेकवाक्यतावश्यमेव कर्तव्या । ततश्चोभयोरेकवाक्यत्वेऽयमेवार्थः हस्तगतोभवति । 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' इत्यादिश्रुतिप्रतिपादिताभेदनिर्देशोपि भगवतोमहिमानमेवाभिव्यञ्जयति । किं च 'परस्य ब्रह्मणशक्तिस्तयेदमखिलं जगत् । (अर्थात् संपूर्णमिदं चेतनाचेतनात्मकं जगत् परस्य ब्रह्मणः शक्तिरूपमेवेति ।)'विष्णोरंशाः द्विजोत्तम' हे द्विजोत्तम ! परिदृश्यमाना अपरिदृश्यमानाश्च सर्वे जड़चेतनपदार्थाभगवतो विष्णोरंशा एवेत्यर्थः । 'वष्णोरेताविभूतयः' सर्वे चेतनाचेतनाः पदार्थाः भगवतो विष्णोर्विभूतिरूपा एव । 'परस्यब्रह्मणोरूपम्' परिदृश्यमानं चेतनाचेतनात्मकं जगत् परस्य परमात्मनोरूपम् । 'जगत्सर्वंशरीरंते' हे भगवन् सर्वमिदं चेतनाचेतनात्मकं परिदृश्यमानमखिलविश्वं सर्वनियन्तुः श्रीरामस्य तव परस्य ब्रह्मणोशरीरमेवेत्यर्थः । 'तानि सर्वाणि तद्वपुः' 'एतत्सर्वंभगवतः शरीरमित्यर्थः । इत्यादीतिहासपुराणादिसंबलितवेदवचनैः पूर्वोक्त

मृद्द्रव्य उपादान कारण होता है। और घट कार्य का विजातीय कुलालादिक चेतन ज्ञान तथा कृतिमान् होने से कर्ता होता है, तो प्रकृत में तो आप उपादान तथा कर्ता एक पदार्थ को ही वतला रहें हैं, तो यह दृष्ट विरोध होता है, तथापि इस शंका का समाधान करने के लिये '**सदेव सोम्येदमग्रे**' इत्यादि, यहां केवल तर्क द्वारा पदार्थ को स्थिर नहीं किया जाता है, जिससे कि दृष्ट विरोध रूप दोष की प्राप्ति हो, किन्तु प्रमाणान्तरों से अप्राप्त केवल वेदगम्य अर्थ का प्रतिपादन किया गया है। इस लिये दृष्टि विरोध दोष नहीं होता है, जो पदार्थ अनुमान द्वारा स्थिर किया जाता, है उस स्थल में दृष्यान्त के अधीन अनुमान चलता है परन्तु शास्त्र दृष्टान्त के अनीन नहीं होता है अथवा-एक कार्य के प्रति जो उपादान होता है, वह उसी कार्य के प्रति कर्ता भी होता है ऐसा लोक सिद्ध भी है जिस तरह तंतु रूप कार्य के प्रति लूताकीट उपादान कारण भी होता है तथा उसी कार्य के प्रति कर्ता भी होता है इसमें '**यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च**' इत्यादि श्रुति, तथा '**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**' इत्यादि व्याससूत्र प्रमाण है। एवं सजातीय पदार्थ ही उपादान कारण वने ऐसा कोई अव्यभिचरितनियम भी नहीं है क्योंकि सजातीय ऊर्णा तथा गोपाल से बिलक्षण तन्तु रूप कार्य का उत्पादन होना लोक में अनुभव सिद्ध है। तस्मात्-एक ही परमेश्वर सङ्कल्प द्वारा जगत् का निर्मित्त कारण होते हैं तथा सूक्ष्म जडचेतन विशिष्ट होकर के जगत् के प्रति उपादान कारण भी बनते हैं। अत एव जगत् कार्य के प्रति परमेश्वर श्रीरामजी को अभिन्न निमित्तोपादान कारण रूप से '**जगज्जन्मादिहेतुत्वं ब्रह्मणस्तस्य लक्षणम् । उपादानं निमित्तं च जगतो ब्रह्मसंमतम् ॥८॥ उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मचेन्न भवेत्तदा । एकविज्ञानतःसर्वविज्ञानंसम्भवेन्नहि ॥९॥ ब्रह्मणस्त्वनिमित्तत्वे कुप्यति चेक्षणश्रुतिः । सदेवेतिप्रमाणाच्च श्रीरामःकारणद्वयम् ॥१०॥**

॥ तत्र शङ्करमतपर्यालोचनम् ॥

अथैकांकामपि श्रुतिमाश्रित्य ब्रह्मणोनिर्विशेषत्वं मन्यमानाः पराहता भवन्ति । सकलश्रुतिनां पौर्वापर्यालोचनाया ब्रह्मणः सविशेषत्वमेव फलति । तथाहि तत्त्वमसीति वाक्यघटकतत्पदस्य न निर्विशेषपरत्वम् । अत्र हि

एवार्थो हस्तगतो भवति । तदत्रानुसन्धेया जगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्यप्रसादिता दिव्या वाणी' अद्वैतबोधिकाः काश्चित् काश्चिद्वैतस्य बोधिकाः । घटकश्रुतयः काश्चिदन्तर्यामिप्रबोधिकाः । अप्रामाण्यं भवेत्तासां विरोधेऽभिमते मिथः । विशिष्टाद्वैतिभिस्तासां क्रियतेऽतः समन्वयः । अद्वैतश्रुतयोबोध्या विशिष्टब्रह्मबोधिकाः । नान्यश्रुतिमतानां हि तत्त्वानां प्रतिषेधिकाः । परं ब्रह्मच तद् वाच्यं त्वद्वाच्यं त्वच्छरीरकम् । तत्त्वमसीतिवाक्येन तूक्तोऽभेदस्तयोर्द्वयोः । द्वैतश्रुतिसमूहस्तुविद्वद्भिः सम्मतः खलु । चिदचिदीशतत्वानां पार्थक्येनावबोधकः । आत्मत्त्वमीश्वरस्याथचिदचितोश्चदेहता । सर्वाभिर्विनिवेद्यते घटकश्रुतिभिः किल ।' इत्यादिरूपा । तस्मात्तन्महिमाप्रख्यापकमेवसर्वशास्त्रमिति संक्षेपः ।

(प्रमिताक्षरासार) इत्यादिप्रकार से शास्त्र में प्रतिपादन किया गया है। जो लोग सजातीय में ही उपादानोपादेय का दुराग्रह से ग्रस्त हैं, उनको '**तुष्यतु दुर्जन**' न्याय से समझाने के लिये आचार्य विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का स्पष्टीकरण करके समझाने का प्रयत्न करेंगे।

'**पूर्वोक्तं सूक्ष्म चेतनाचेतनविशिष्टं ब्रह्मेत्यादि ।**' पूर्वोक्त-अभिन्न निमित्तोपादनरूप से व्यवस्थित, सूक्ष्मचेतन तथा सूक्ष्म अचेतन से विशिष्ट जो ब्रह्म है, वह स्थूल चेतनाचेतन विशिष्टब्रह्मलक्षण कार्यरूप से परिणत होता है। तादृश परिणाम लक्षण ही जगत है। अर्थात् केवल ब्रह्म जगत् का कारण माना जाय तब कदाचित् विजातीय में उपादानोपादेयभाव नहीं हो सकता हैं, ऐसा आशंका हो परन्तु यहाँ तो विशिष्ट में कारणता का विधान किया गया है। यहां तो सूक्ष्मतत्वोपहित ब्रह्म ही कारण है। तथा स्थूल तत्वोपहित ब्रह्म ही कार्य है। विशिष्ट में जो विधान किया जाता है, उसका यदि विशेष्यांश में बाध रहता है तो वह विशेषणांश में ही पर्यवसित होता है। इस नियम से जन्यत्व जनकत्व विशेषणांश में है, विशेष्यांश में नहीं '**रामस्य परिणामोहि चिदचिद्द्वारको जगद्**' ॥४४॥ (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका) '**स्वरूपे च स्वभावे च विकारः प्रकृतेः खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतोबुधैः ॥११॥ ब्रह्मणस्तु विकारो यन्नस्वरूपस्वभावयोः ॥१२॥**' (परिणामविमर्श) इत्यादि स्थलों में आचार्योंने ऐसाहि सिद्धान्तस्थिर किया है। अत एव ब्रह्म को परिणामी मानने पर भी परिणामी दुग्धादिक की तरह अनित्यत्वापत्ति नहीं होता है। ब्रह्म में जगत् के प्रति उपादान कारणत्व '**एक मेवाद्वितीयं एतद्वाक्य घटक एकमेव**' इस कथन से सिद्ध होता है। जो कार्य है वह कारण से उत्पन्न होता है, किन्तु अकारणक कार्य नहीं होता है, उनमें भी एक कार्य नहीं होता है। उसमें भी एक कारण से कार्य नहीं होता है अपितु कारण समुदाय से कार्य की उत्पत्ति होती है, उस कारण

पूर्वप्रकान्तस्य ब्रह्मण एव परामर्शः ।'घटोस्ति तमानय' अत्रत्यतत्शब्दवत् पूर्वं 'तदैक्षत बहुस्या' मित्यादौ 'सन्मूलाः सौम्यप्रजाः' इत्यादौ तथा शाखान्तरे ' यः सर्वज्ञः स सर्ववि' दित्याद्यनेकस्थले बहुभवनसङ्कल्पजग-

---

'यः पृथिव्यां तिष्ठन्-यस्यपृथिवीशरीरम्' 'यस्य विज्ञानं शरीरं' इत्यादिश्रुतयस्तु कण्ठत एव जगत् परमेश्वरयोः शरीरात्मभावं प्रतिपादयन्ति । जडचेतनलक्षणं जगत् परमेश्वरस्यांशरूपं परमेश्वरस्तु तेषामात्मा शेषी च । यात्वभेदश्रुतिः सापि तयोः सामानाधिकरण्यं दर्शयन्ती भगवतो विभूतिमेवदर्शयतीति विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तः । परन्तु प्रकृतमतं निराकुर्वन्तः शंकरमतानुयायिनः अभेदश्रुतीनामभेदपरकत्वमास्थायान्यथैव श्रुत्यर्थमवलंब्य प्रकृतमतं खण्डयन्ति तम्मतंनिराकरणायप्रथमतस्तन्मतमेवदर्शयितुमुपक्रमते श्रुतिमात्रं भगवतोविभूतिमेवेत्यादि । निर्विशेषविज्ञानमात्रमिति **सर्वविशेषधर्मरहितं विज्ञानमात्रमेव ब्रह्म । 'विज्ञानमानन्दंब्रह्मेति श्रुतेः' तत्र विज्ञानलक्षणे ब्रह्मणि ज्ञानत्वादिलक्षणजडधर्माणां**

समुदायों में उपादान कारण तथा निमित्त कर्ता कारण प्रधान होता है। तदितर कारण गौण रहता है। प्रकृत में जगत् का उपादान कारण सूक्ष्म चिद् अचिद् विशिष्ट ब्रह्म है, यह बात तो निश्चित हो गई हैं। परन्तु निमित्त कारण परमेश्वर है अथवा परमेश्वर से भिन्न कोई निमित्त कारण है ? इस जिज्ञासा का निराकरण करने के लिये कहते हैं **'अस्य जगत उपादानकारणं ब्रह्म'** इत्यादि । नामरूपविभागार्ह परिदृश्मान जो जडचेतन जगत् है, उसका उपादान कारण तो ब्रह्म है अर्थात् सूक्ष्मजडचेतन विशिष्ट ब्रह्म हैं परन्तु उपर्युक्त जगत् कार्य का निमित्त अर्थात् कर्ता कारण उपर्युक्त ब्रह्म ही हैं अथवा तादृश ब्रह्म नहीं हैं इस जिज्ञासा का निराकरण करने के लिये कहते हैं-**'तदेवनिमित्तमपीत्यादि ।'** अर्थात् जो ब्रह्म इस जगत् रूप कार्य का कारण हैं अर्थात् उदान कारण है, वही ब्रह्म इस जगत् का निमित्त कारण भी होता है। यद्यपी एक ही पदार्थ उपादान कारण हो तथा उस कार्य के प्रति वही निमित्त कारण भी ऐसा अन्यत्र देखने में नहीं आता हैं। तथापि प्रकृत में तर्कबल से सिद्ध किया जाता है। केवल तर्क के बल से इस विषय को स्थिर नहीं करता हूं जिससे कि अप्रतिष्ठितत्वरूप दोष का अवसर प्राप्त हो । तदुक्तम् **'यत्नेनानुमितोप्यर्थं कुशलैरनुमातृभिः । अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते'** इति । किन्तु इस कथन में श्रुतिप्रमाण है । इस बात को आचार्यजी बतलाते हैं **'निमित्तमपीत्यद्वितीयपदेनबोध्यते'** इति जिस तरह श्रुतिबल से परमेश्वर में उपादान कारणता की सिद्धि होती है,उसी तरह, परमेश्वर में कर्तृत्व अधिष्ठातृ की भी सिद्धि होती है। इसका साधक **'एकमेवाद्वितीयम्'** इस श्रुतिघटक **'अद्वितीयम्'** पद है, द्वितीयपद सहाय वाची होता है। जैसे **'असिद्वितीयोनुससारपाण्डवम्'** सहायक तलवार को लेकर के अर्जुन के पीछे पडा सहायक प्रायः समान होता है। अथवा स्वापेक्षया जो उत्कृष्ट हो वह सहायक होता है। प्रकृत में द्वितीय का निराकरण करता है। अर्थात् जगत् की उपादान कारणता

दुत्पत्यादिकारणत्वसर्वज्ञत्वाद्यनन्तकल्याणगुणविशिष्टस्य तथा 'निष्कलम्' इत्यादौ सर्वदोषराहित्यमेवकारणेसति प्रदर्शितम् ।एतावता ब्रह्मणि सविशेषत्वमेव सिद्ध्यति न तु निर्विशेषत्वमिति न तन्मतं समीचीनमिवाभातीति ।किञ्चैकस्य ब्रह्मणोविज्ञातेन सर्वस्य कार्यजातस्य ज्ञानं समर्थितम् । सेयं प्रतिज्ञाकारणस्य

नास्ति समावेशः, श्रुत्या तथैव प्रतिपादनात् । श्रुतिश्चप्रमाणम् । अतः केवलंज्ञानमात्ररूपमेवब्रह्म । यदा ब्रह्मणि ज्ञानत्वधर्मोपि नास्तितदा का कथाविज्ञातृत्वादिधर्माणाम् । न वाज्ञेयत्वधर्माणां च तस्मिन् ज्ञानलक्षणे समावेशः । तद् ब्रह्मनित्यमुक्तस्वप्रकाशकमेव । न च यथा ब्रह्मणो निर्विशेषताप्रतिपादकं वचनं तथैवसविशेषताप्रतिपादकवचनमपि विद्यते इति सविशेपमपितत्स्यादिति वाच्यम् । अन्यवचनानां तात्विकार्थबोधकत्वाभावात् । तानि वचनानिभ्रान्तिसिद्धसविशेषतामेव प्रतिपादयन्ति । तदुक्तं सुरेश्वराचार्यैः 'अक्षमाभवतः केयं साधकत्वप्रकल्पने । किं न पश्यसि संसारं तत्रैवाज्ञानकल्पितम्' इति । यथा शुक्तिकायामज्ञानवशात्प्रातीतिकं रजतमवभासते न तत् पारमार्थिकं तथैवाज्ञानबलात्

जो विशिष्ट ब्रह्म में है, उनसे अतिरिक्त अन्य कोई सहायक नहीं है। अर्थात् निमित्त कारण नहीं हैं, किन्तु परमेश्वर ही निमित्त कारण भी हैं। **'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'** (परमेश्वर के समान तथा परमेश्वर से बडा कोई देखने में नहीं आता है) यदि परमेश्वर के समान अथवा परमेश्वर से अभ्यधिक कोई व्यक्त्यन्तर होता, तब तादृश द्वितीयव्यक्ति, इनका सहायक होता और इसमें निमित्त कारणता की संभावना भी होती। परन्तु अद्वितीयपद घटक द्वितीयपदसमाभ्यधिक का निराकरण कर रहा है। इस लिये परमेश्वर ही इस जगत् का कार्य तथा निमित्त कारण भी हैं ऐसा सिद्ध होता है। तथा जो निमित्तकारण होता है वही अधिष्ठाता भी कहलाता है, जिस तरह घटकार्य के प्रति कुलालकर्ता है तो कुलाल ही अधिष्ठाता है, कर्ता से ही कार्य अधिष्ठित रहता है।

अतः हे पुत्रेति ! इसलिए हे पुत्र श्वेतकेतु ! एतादृश प्रशासनकर्ता जगत् का उपादान कारण ब्रह्म के विषय में स्वकीश आचार्य से जान लिया है, जिसका श्रवणमनन तथा विज्ञान होने से अश्रुत अमत अविज्ञात पदार्थ भी श्रुत, मत तथा विज्ञात हो जाता है अर्थात्-संपूर्ण जडचेतनात्मक जगत् का उत्पत्ति स्थिति तथा लय का कारण, एवं-**अपहतपाप्मत्वसत्यसंकल्पसत्यकामत्वसर्वज्ञत्वादि** अनन्त कल्याण गुणों का महासागर सदृश ब्रह्म का क्या तुमने अपने गुरु से श्रवण कर लिया है ! ऐसा गुरु का अभिप्राय है।

जो उपादान कारण होता है वही कार्यरूप से परिणत होता है। जिस तरह घट का उपादान कारण मृत्तिका ही घट शरावादिरूप से परिणता होती है। यथा वा दूधरूप कारण दधिकार्यरूप से परिणत होकरके दधिपदवाच्य होता है। इसी तरह प्रकृत में सकल जड चेतन का कारण जो ब्रह्म है, वह स्थूल जडचेतन

सविशेषत्वमन्तरेण कार्यस्य जड़चेतनस्य सत्यत्वमन्तरेण च नोपपद्येत । अपि च कार्यजातस्य मिथ्यात्वे सत्यमिथ्यापदार्थयोरेकत्वमापद्येत । अपि च ब्रह्मणोनिर्विशेषत्वे कार्यस्य मिथ्यात्वेमृदादिदृष्टान्तप्रणयनं नोपपद्येत किन्तु शुक्ति

प्रातीतिकमेव सविशेषत्वादिकं ब्रह्मणि अज्ञानकाले भासते, भासमानं तत् मिथ्याभूतमेव न पारमार्थिकम् । तत्वमस्यादिश्रुत्या जीवब्रह्मणोस्तादात्म्यप्रतिपादनात्, अज्ञानोपाधिकं ब्रह्मैव संसारबद्धं भवति । तदेव पुनः श्रवणादिनाकृतात्मसाक्षात्कारो ज्ञानेनाज्ञानं विधूयबन्धनमुक्तो भूत्वाकृतार्थोभवति, तत्र निर्विशेषब्रह्मव्यतिरिक्तं मायोपादानकं परमेश्वरजीवाकाशादिकं सर्वमिथ्याभूतमेव, न तु पारमार्थिकम् । तदुक्तम् आच्छाद्यविक्षिपति संस्फुरदात्मतत्त्वंजीवेश्वरत्वजगदाकृतिभिर्मृषैव । अज्ञानमावरणविभ्रमशक्ति-योगादात्माश्रयत्वविषयाश्रयताबलेने' ति । वस्तुमात्रस्याज्ञानमूलकत्वेन वस्तुत आत्मन एकत्वात् प्रकृतमते बन्धमोक्षव्यवस्थापि न पारमार्थिकी । परमार्थतो बन्धाभावेन

साधारण जगदाकार से परिणत होताहै । इसलिये कारणलक्षण सूक्ष्म जडचेतन ब्रह्मरूप जो कारण, तादृश एक कारण का विज्ञान होने से कार्यस्वरूप जो जडचेतन साधारण संपूर्णजगत् वह विज्ञात हो जाता हैं । एतादृश स्वकीय अभिप्राय को हृदय में रखकर के 'हे पुत्र ! जिसको जानने से अश्रुत भी पदार्थ श्रुत होता है अमत भी पदार्थ मति विषयक हो जाता है, अविज्ञात पदार्थ भी विज्ञात हो जाता है, इस वस्तु को अपने पुत्र श्वेतकेतु को पिता उद्दालक ने पुछा । किन्तु यह परिदृश्यमान जडचेतन सकल पदार्थ एक ही कारण से उत्पन्न हुआ है । एतादृश पिता के अभिप्राय को नहीं जानकर के श्वतकेतु पुत्र ने, परस्पर विभिन्न पदार्थों का विज्ञान होने से स्वका ज्ञान कथमपि नहीं हो सकता है घट का विज्ञान होने से पट विज्ञात नहीं होता है इस बात को जानता हुआ पुत्र ने पिता से पुछा '**कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति**' अर्थात् हे पिताजी ! वह आदेश किस प्रकार से होता है, अर्थात् एक के विज्ञान से सर्व पदार्थ किस तरह से जाना जाता है । अर्थात् आप जो यह कह रहे हैं वह तो सर्वथा असंभवित है । क्या गवादि एक का ज्ञान होने से अश्वादीक जाना जा सकता है । इस प्रकार पुत्र से पूछेहुए पिता उद्दालक ने स्वकीय हृदय में अवस्थि ज्ञानानन्द स्वभावक अपरिच्छिन्न माहात्म्यवान्, सत्यकामत्व सत्यसंकल्पत्व सर्वज्ञत्वादि अनन्तकल्याण गुणवान् तथा प्राकृतिक सकलदोष परिवर्जित एवं सूक्ष्म चिदचित् शरीरक लीलामात्र करने के लिये स्वकीय सत्यसंकल्प द्वारा समुत्पादित अनेक प्रकारक विचित्र स्थावरजंगमरूप जगत् समुदायको उत्पन्न करके और अपने एक अंश से जगत् को व्याप्त करके अवस्थित परमेश्वर हैं । एतादृश विलक्षण जो सकल जगत् का एक कारण है, उस एक कारणभूत परमेश्वर का ज्ञान होने से तदीयकार्यरूप सकल जगत् का ज्ञान हो जाता है, इस बातको कहने के लिये तथा लोक प्रसिद्ध कार्य कारण में अभेद को वतलाने के लिये दृष्टान्त को बतलाया-'**यथैकेनमृत्पिण्डेन**' इत्यादि ।

रजतादिदृष्टान्तं प्रदर्शयेत् तत्तु न कुत्रापि शास्त्रे प्रदर्शितम् । तस्मात् ब्रह्मणः सविशेषत्वमेव सिद्ध्यति ।

॥ उद्दालकप्रश्नतात्पर्यम् ॥

सद्विद्याप्रकरणपठित 'स्तब्धोस्युततमादेशमप्राक्ष्य' इत्यादिवाक्य-

तदुच्छेदलक्षणमोक्षस्याप्यभावात् । न चात्मन एकत्वात् एकस्मिन् जायमाने सर्वस्यापि जननं प्रसज्येत इति वाच्यम् । अन्तः करणभेदे तत्तद्व्यवस्थोपपत्तेः । यथैकस्मिन् घटे जायमाने तदवच्छिन्नाकाशोपि जात इव भवति तद्विनाशे तदवच्छिन्नाकाशे एव विनाशप्रतीतिर्भवति, तथैव प्रकृतेऽन्तः करणोपाधिभेदेन तद्व्यवस्थायाः समाधानात् । तस्मात् कश्चिद्बद्धः कश्चिन्मुक्त इति व्यवस्थाया अप्रामाणिकत्वेन न सा व्यवस्था पारमार्थिकी । शुको मुक्तो वामदेवो मुक्त इत्यादिव्यवहारोप्यपारमार्थिक एवेति, एतन्मते एकमेव शरीरं जीववत्, तदन्यानि शरीराणि स्वप्ने परिदृश्यमानशरीरवत् जीवरहितान्येवेति । एवमिहैकजीववादस्य व्यवस्थापनात्, ज्ञानोपदेशकर्ता कश्चिदाचार्योपि नपारमार्थिको न

अर्थात् हे सोम्य ! जिस तरह एक मृत्पिण्ड का ज्ञान होने से मृत्तिका से जायमान सकल घटशराव और उदञ्चनादिक, जो कि-'**अयं घटः**' इत्याकारक वाग्व्यवहार का विषक है वह सब पदार्थ ज्ञात हो जाता है । उन अनेक कार्य के ज्ञान के लिये कारण के विज्ञान व्यतिरिक्त का ज्ञानादिक अपेक्षित नहीं है । यह विकार वाणीमात्र का विषय है, वस्तुतः उसमें तो सत्यकारण मात्र है ।

इसी वात को स्पष्टरूप से बतलाते हैं-'**यथैकमेवमृत्तिकाद्रव्यमित्यादि** ।' जिस तरह एक ही मृत्तिका द्रव्य घटशरावादिक अनेक आकारसे व्यवस्थि होता हुआ अर्थात् घटादि अनेक आकार से परिणत होकरके घटादि अनेक शब्द द्वारा व्यवह्रयमाण होता है वह मृत्तिका द्रव्यसे घटादिक में भेद नहीं होता है क्योंकि '**मार्दवो घटः**' मृत्तिका से जायमान घट है ऐसा व्यवहार होता है । अर्थात् घटकाल में मृत्तिका का अनुवर्तन होता है । घटतो मृत्तिका द्रव्य का ही नामान्तर है वस्तुतः पदार्थ तो मृतिका ही है । वह जिस तरह सत्य कारण मृत्तिका का ज्ञान होने से मृत्तिका का सकल विकार कार्यघटादिक विज्ञात होजाता है । उसी तरह प्रकृत में सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट निखिल पदार्थ का कारण परमेश्वर का ज्ञान होने से तादृश ब्रह्म का कार्य जो स्थूल जडचेतन लक्षण सकल जगत् कार्य है वह भी विज्ञात हो जाता है । एतादृश स्वकीय अभिप्राय का विस्पष्टीकरण उद्दालक ने किया । इसलिये मृत्तिका दृष्टान्त से सिद्ध होता है कि परिणामवाद ही श्रुति संमत हैं, विवर्तवाद श्रुतिस्मृति संमत नहीं है ।

परस्पर अतिविलक्षण अर्थात् विभिन्न जो प्रपंच है, उन सबका उपादान कारण तथा निमित्तकारण एक ब्रह्म है । एतादृश पिता के वचन पर विश्वास नहीं प्राप्त करता हुआ पुत्र श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक से कहने लगा-हे भगवान् ! पूज्य पिताजी ! आपने जो कहा है कि संपूर्ण जडाजड का कारण ब्रह्ममात्र है, यह बात तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से वाधित प्राय मुझको मालूम पडता है । अतः इस बात को आप ही मुझको

स्यायमर्थः संपद्यते । एतद्वाक्यघटकादेशशब्द आदेशकर्तारं भगवन्तमेवबोधयति । आदिश्यतेऽनेनेत्यादेश इत्यादेशपदव्युत्पत्तेः । हे पुत्र ! त्वं स्तब्धः परिपूर्णवदुपलक्षितोभवसि । किं त्वं स्वाध्यापकं परमात्मविषये सर्वं पृष्टवानसि परमात्मज्ञानादेवसर्वः परिपूर्णो भवति नान्यथा । आदेशशब्दार्थः परमात्मेति 'एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रम-

वा शिष्य एव कश्चित् पारमार्थिकः । शास्त्रप्रमाणतापि मिथ्याभूत एव । शास्त्रस्याप्यज्ञानमूलकत्वान्न तत्पारमार्थिकं किन्तु तदपि मिथ्याभूतमेवेति । न च शास्त्रस्यापि मिथ्यात्वे एतत्सर्वं मिथ्यैवेति कथं केन परिज्ञातं स्यादिति वाच्यम्-मिथ्याभूतशास्त्रेणैवैतदवगमात् । यक्षानुरूपोवलिरिति न्यायात् । तस्माद् ब्रह्ममात्रं सत्यं तदन्यस्य सर्वस्याज्ञानजनितत्वेनाज्ञानस्य च ज्ञानेन विनाशात् सर्वं बाधितमिति ब्रह्मव्यतिरिक्तं सर्वमिथ्यैवेति । मिथ्यात्वं च 'स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपमेव' स्वशब्देनाध्यस्तपदार्थस्यग्रहणं कर्तव्यम् । ततश्च यथा इदं रजतमित्यत्र स्वशब्देन रजतस्य ग्रहणम् । तादृशरजतस्याश्रयत्वेनाभिमतं शुक्तिकारूपमधिष्ठानं तत्रैव तस्य प्रतीतेः । तन्निष्ठो योऽभावः

स्पष्टरूपसे बतलाइये, उसके बाद शर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ ब्रह्म ही अत्यन्त विलक्षण अर्थात् परस्पर विभिन्न इस जगत् का कारण है इस बात को कहने की अच्छावान् पिता उद्दालक पुत्र श्वेतकेतु के प्रति बोले '**सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्**' (अर्थात् हे सोम्यश्वेतकेतु यह प्रप्यक्षादि प्रमाणोपनीत अतिविलक्षण जडचेतमात्मक जगत् उत्पत्ति के पूर्वकाल में अर्थात् प्रलयावस्था में सदात्मक जो सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म है तदात्मक, वह ब्रह्म एक ही उपादानकारण थे तथा वही ब्रह्म निमित्तकारण भी थे ।) एतत् श्रुतिघटक '**इदम्**' पद से प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा ज्ञायमान जगत् समझाया जाता है, तथा '**अग्रे**' इस पद से सृष्टि का पूर्वकाल अर्थात् प्रलयकाल का बोध होता है । उस प्रलयकाल में सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट जो ब्रह्म, तादृशब्रह्म के साथ इदं वाच्य जगत् को अभेद हैं, इस वात का प्रतिपादन करके सृष्टिकाल में भी वही है, इस प्रकार से सदात्मक संसार का सूक्ष्मरूपता का प्रतिपादन करते हुए, सत् ब्रह्म में जगत् उपादान कारणता है, इस बात का कथन किया । कोई विद्वान् ऐसा कहते हैं कि जगत् का उपदान कारण ब्रह्म है और निमित्त कारण तो ब्रह्म भिन्न कोई है ? इस शंका का निराकरण उक्त श्रुति घटक '**अद्वितीयम्**' इस पद से किया गया है । तब जगत् का प्रशासक अर्थात् जो निमित कारण परमेश्वर हैं वही उपादान कारण हैं । यह बात जो उद्दालक के अन्तकरण में निहित थी, उसको यहां ऋषि ने अभिव्यक्त किया ।

परमात्मा जगत् का उपादान कारण है तथा निमित्त कारण भी है, इस वातका समर्थन तो '**सदेवसोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्**' इस श्रुति के व्याख्यान से ही समर्थित हो गया है । तब पुनः उसका समर्थन करना, यह तो उपयोगी सिद्ध नहीं होता है । तथापि जिस वस्तु का सामान्यरूप से समर्थन

सौविधृतौतिष्ठतः' इत्यादिश्रुतिस्तथा 'प्रशासितारं सर्वेषामित्यादिस्मृतिवचनैरादेशपदेनपरमात्मैवावगतो भवति । परमेश्वरः स्वसङ्कल्पद्वारा सर्वं शास्ति तथा सर्वं सृजति सृष्टिकर्तृत्वात् स च सर्वस्य तस्य चेतनाचेतनात्मकजगतोनिमित्तकारणं कुलालवद् घटादेः । तथा स एव परमात्मा-

नासीदत्र पूर्वं रजतं न भविष्यति परकालेरजतं वर्तमानकालेऽपि वस्तुतोऽत्र रजतं नास्ति, इत्याकारकोऽभावस्तादृशरजताभावस्यप्रतियोगिरजतं भवतीति तादृशं रजतं मिथ्या अपारमार्थिकम् । इत्थं प्रातीतिके मिथ्यात्वलक्षणसमन्वयो भवति । व्यावहारिकेपदादौ तु इत्थम्-अत्र स्वशब्देन आधेयरूपस्य पटस्य ग्रहणं भवति । तादृशपटस्याश्रयोऽधिकरणं तन्त्वादयः तत्र वर्तमानेयोऽभावः स उत्पत्तेः पूर्वं पटो नासीत् तन्तुषु । विनाशादनन्तरं च न भविष्यति तन्तुषु । ततश्च 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानोपि तत्तथा । वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्ष्यते' इति न्यायात् । अथवा यस्मिन् काले पटः तन्तुषु विद्यते तस्मिन्नेव काले देशान्तरावच्छेदेनतदभावस्य तत्र विद्यमानत्वेन तादृशाभावप्रतियोगित्वस्य

किया गया है उसीका तर्कोपपत्ति द्वारा '**स्थूणानिखनन**' न्याय से समर्थन करने के लिये उपक्रम करते हैं '**ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानेत्यादि**' सर्वशक्तिमान् ब्रह्म जगत् का अभिन्निनिमित्तोपादन हैं अर्थात् जिस तरह घट के प्रति मृत्तिका उपादान कारण है । उसी तरह जडचेतनात्मक जगत् कार्य के प्रति ब्रह्म उपादान कारण है । तथा जिस तरह घट के प्रति चेतन कुलाल निमित्त कारण है अर्थात् कर्ता है, उसी तरह जगत् के प्रति परमेश्वर कर्तारूप निमित्त कारण हैं । इस तरह अभिन्न निमितोपादानत्वलक्षण उभयविधकारणत्व का उपपादन करने के लिए, उद्दालकऋषि अपने पुत्र के प्रति बोले-'**तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय**' (जगत् कारणीभूत उस ब्रह्म ने ईक्षण संकल्प किया कि मैं एक हूं तथापि मैं अनेक बन जाऊं) '**सदेवसोम्येदमग्रे आसीत्**' अर्थात् हे सोम्य श्वेतकेतु, यह जगत् जो कि अभी स्थूलरूप से देखने में आता है वह पहले अर्थात् उत्पत्त्यवस्था से पूर्व अवस्था प्रलयकाल में सदात्मक ब्रह्मरूप था, अर्थात् ब्रह्मतादात्म्यापन्न था, जिस तरह इसकी स्थूलावस्था है उसप्रकार से नहीं था, किन्तु अति सूक्ष्मरूप से ब्रह्म का विशेषण था । विशेषण प्रकार तथा विशेष्यप्रकारी में तादात्म्य होता है । '**शुक्लः केवलः**' इत्यादि लौकिक प्रयोग में भी देखने में आता है । अतः ब्रह्म विशेषणीभूत जगत् भी प्रलयावस्था में सत् ही था, किन्तु नैयायिक तथा बौद्ध के समान असत् नहीं था । क्योंकि यदि असत् हो तब इसका प्रादुर्भाव अर्थात् सत्व सर्वथा असंभवित हो जाता । इत्यादि श्रुतियों से उभय कारणरूप से व्यवस्थपित जो सत् रूप ब्रह्म है, तादृश ब्रह्म का इस '**तदैक्षत** ' इत्यादि श्रुति में तत्पद से ग्रहण होता है, क्योंकि तद् शब्द पूर्वप्रक्रान्त पदार्थ का बोधक होता है ।

'**घटोस्तितमानय**' इस स्थल के समान तो प्रकृत श्रुतिघटक तत्पदवाच्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिसमन्वित सत्यसंकल्पत्वादि अनन्तकल्याणगुण से युक्त हैं । वे यद्यपि सकल कामनाओं से युक्त हैं तथापि लीलामात्र

जगद्रुपेणपरिणमते तस्मादुपादानकारणं मृदिवघटादेः। यथा मृत्तिकाघटरूपेणपरिणताभवति तथा सूक्ष्मचेतनाचेतनाभ्यां विशिष्टः परमेश्वर आदेशवाच्यो जगद्रूपेणपरिणतो भवतीति तस्मादुपादानम् 'सदेव

पटे सत्वाल्लक्षणसमन्वयो भवतीति । विशेषतो विचारः प्रकृतमतखण्डनावसरेविधास्यते इति संक्षेपः ।

मुमुक्षुभिः क्रियमाणकथायां परपक्षेदोषानुद्भाव्य तत्खण्डनं नोचितम् । यतः परदोषाद्युद्भावनं सरागतामावहति । तथापि यावत्पर्यन्तं परपक्षस्य निराकरणं न कुर्यात्तावत्स्वपक्षसिद्धिरेव न स्यादिति कृत्वा पूर्वप्रदर्शितपरकीयपक्षाणां निराकरणाय उपक्रमते अथैकां कामपीत्यादि **यां कामेकाम्** तत्त्वमसि अस्थूलम् **इत्यादिश्रुतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणोनिर्विशेषत्वप्रतिपादनमयुक्तमेव । किन्तु सर्वश्रुत्यर्थपर्यालोच्य ब्रह्मणोनिर्विशेषत्वं स्वीकर्तव्यम् । इह च तत्त्वमसीत्यतः पूर्वं 'तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय' 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः' इत्यादिका श्रुतयः सन्ति । तत्र प्रथमश्रुत्या सत्पदवाच्यब्रह्मणि सत्यसङ्कल्पात्मको**

प्रयोजन को लेकरके अनेक प्रकारक विलक्षण जडचेतनभावों से मिश्रित जगत् के रूप से मैं होऊं, इस प्रकार से स्वयं संकल्प करके स्वकीय विशेषणरूप जो जडात्मक प्रकृति तादृश प्रकृति द्वारा महतत्व से लेकर के महाभूत पदार्थ अर्थात् प्रकृति से महत्तत्व महत्तत्त्व से अभिमानलक्षण अहंकार उससे शब्दादिग्राहक पांचश्रोत्रादिक ज्ञानेन्द्रिय पादादिक पांच कर्मेन्द्रिय तथा उभयात्मक मन को एवं आकाशदि पञ्चतन्मात्रपदवाच्य पांच सूक्ष्मभूत और आकाशदि पृथिव्यन्त महाभूतों का सर्ग किया । इसको समष्टि सृष्टि कहते हैं तथा परमेश्वर सृष्टि पद से भी व्यवहार होता है ।

प्रश्न-भगवान् जो सृष्टि करते हैं उनका क्या प्रयोजन है ? नहीं कहो किविना प्रयोजन के ही प्रवृत्ति होती है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि चेतन की प्रवृत्ति स्वार्थ तथा करुणा से व्याप्त होती है। स्वार्थ वा करुणा के विना कोई भी चेतन प्रपृत्त नहीं होता है। इसमें से यदि ईश्वर प्रवृत्ति को स्वार्थ मूलक मानें तब तो ईश्वर में अबाप्त सर्व कामत्व का व्याघात हो जायगा, तथा अस्मदादि की तरह ईश्वर में भी अनीश्वरत्व हो जायगा। द्वितीय पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस पक्ष में अन्योन्याश्रय दोष होता है, तथाहि करुणा नाम है परकीय दुःख प्रहाणेच्छा का, तो जीव का दुःख विनाश करने की इच्छा भगवानको कब होगी जब सर्ग के बाद दुःखी प्राणियों को देखेंगे तब तादृश दुःख विनाश के लिये इच्छारूप करुणा होगी। सर्ग कब होगा जब करुणा होगी। इस प्रकार करुणा से सर्ग होगा और सर्ग होनेसे करुणा होगी तो अन्योन्याश्रय दोष होने से ईश्वर प्रवृत्ति असंभिवत है। इस प्रश्न का निराकरण करने के लिये आचार्यश्री ने कहा कि '**लीलामात्रप्रयोजनमिति**' ईश्वर की प्रवृत्ति न तो स्वार्थमूलक है, नवा करुणा मूलक जिससे कि पूर्वोक्त दोष होने की संभावना हो, अपितु ईश्वर प्रवृत्ति लीलामात्र प्रयोजनक है, जिस तरह कोई राजा लौकिक सर्वसुखको प्राप्त करके भी उपवन, महल

सोम्येदमग्रे आसी' दित्यादिवाक्येनजगत उभयविधकारणत्वं परमेश्वरस्योपवर्णितम् । पूर्वोक्तं सूक्ष्मचेतनाचेतनविशिष्टंब्रह्मैवस्थूलचेतनाचेतनविशिष्टं सदेवजगद्रूपो भवति । ब्रह्मण उपादानत्वम् 'एकमेवेति' कथनेन सिद्ध्यति । अस्य जगत उपादानं ब्रह्मनिमित्तकारणं तदेवान्यद्वेतिजिज्ञासायां ब्रह्मैव

गुणः सिद्ध्यति । 'सन्मूलाः सोम्य' इत्यनया च श्रुत्या ब्रह्मणि जगदत्पत्तिकारण त्वजगत्स्थिति कारणत्वंजगल्लयकारणत्वलक्षणो गुणः सिद्ध्यति । तथा शाखान्तरीय 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्' '**परास्य शक्तिर्विविधैव**' इत्यादिकाः श्रुतयो ब्रह्मणः सत्पदवाच्यस्यानन्तकल्याणगुणवत्वमेवसाधयन्ति । **एवमन्यत्रापिसत्यकामत्वसत्यसङ्कल्पत्वसर्वावभासकत्वादिगुणाः समर्थिता भवन्ति । कुत्रचित् 'अपहतपाप्मा विजरोविमृत्युः' इत्यादौसर्वहेयगुणराहित्यं दर्शयति । ततश्च तत्त्वमसीतः पूर्ववाक्ये शाखान्तरादौ चानेककल्याणगुणवत्वहेयदोषराहित्यस्य प्रदर्शनेन 'सदेवसोम्येदम्' इत्यत्रसत्पदवाच्यं ब्रह्मसगुणमेवेति तत्त्वमसीतिश्रुतिघटकतत्पदेन तस्यैव ग्रहणं कर्तव्यं नतुनिर्विशेषस्य तस्य ग्रहणमिति** घटोस्ति तमानयेति **यथा अत्र घटोस्ति तमानय, इति कथनानन्तर**

बगैरह का निर्माण करके स्वाश्रित जनों के साथ क्रीडा विहार करता है । एतावता उस राजा में राजत्व का विघात नहीं होता है । इसी तरह परमेश्वर यद्यपि सर्वकाम प्राप्त हैं, उनको किसी अप्राप्तादि वस्तु विषयक नहीं है, क्योंकि अप्राप्त वस्तु विषयक इच्छा होती है विषयता संबन्ध से इच्छा के प्रति तादात्म्य सम्भन्ध से विषय प्रतिबन्धक होता है ।

'**ततः सैव सत्पदवाच्य**' इत्यादि । समष्टि सृष्टि करने के बाद वहीं ब्रह्मरूप परादेवता ने अन्यप्रकार का पुनः संकल्प किया । ब्रह्म ने विचार किया कि सृज्यमान जीवों का जो भोग्यभोगस्थान है उस में जब तक मैं प्रविष्ट न होऊं, तो उन पदार्थ का सद्भाव न हो सकेगा और जब उन वस्तुओं की सथिति नहीं होगी तब जीव को भोगादिक संपन्न नहीं होगा । इसलिये व्यष्टि सृष्टि अर्थात् जीव सृष्टि करने के लिये पुनः संकल्प किया । यहां परदेवता शब्द से परब्रह्म का बोध होता है । '**परस्यां देवतायाम्**' इस श्रुति से सिद्ध होता है कि परा देवता का वाच्य सगुणब्रह्म दशरथनन्दनसर्वेश्वर श्रीरामजी ही हैं। क्योंकि '**वेदवेद्येपरेपुंसिजातेदशरथात्मजे**' ऐसी वेदोक्ति है। '**हन्ताहमिमास्तिस्त्रः**' इत्यादि । अर्थात् मैं परादेवता तथा ये जो तेजः प्रभृतिक तीन देवता, इस जीवरूप आत्मा से उत्पादित वस्तुओं में अनुप्रविष्ट होकर के घटादि नाम तथा कंबूग्रीवादि लक्षण स्थान का उपादान करूं । यहां '**अनेनजीवेनात्मना**' इस जीवरूप आत्मा से इस कथन से जीव ब्रह्म स्वरूप है यह कहकर के जीव परमात्मा का प्रकार है यह वात '**यस्यात्मा शरीरम्** इस श्रुति से सिद्ध किया है, क्योंकि प्रकार प्रकारी में तादात्म्य होता है, ऐसा नियम है इसलिये जीव को ब्रह्म स्वरूप से कथन किया है। ब्रह्म से अभिन्न ब्रह्मांश जीवों का घटादि जड वस्तुओं में अनुप्रवेश होने से उन वस्तुओं में वस्तुत्व सिद्ध होता है अर्थात् उन वस्तुओ का सद्भाव सिद्ध होता है तथा जीव का अनुप्रवेश होने से ही जड पदार्थ नामरूपवान् भी

निमित्तमपीत्यद्वितीयपदेन बोध्यते, निमित्तमेवाधिष्ठाता भवति कुलालवदिति। अतो हे पुत्र ! एतादृशं प्रसासितारं जगदुपादानभूतं किं पृष्टवानसि येनश्रुतेन मतेन विज्ञातेनाश्रुतंश्रुतं भवति अमतं मतं भवति, अविज्ञातं विज्ञातं भवति। अर्थात् समस्तजडचेतनात्मकजगदुत्पत्तिस्थितिलयकारणभूतम्,

तमानयेत्यत्रतत्पदेन पूर्वप्रक्रान्तस्य घटस्यैवग्रहणं भवति नतु तदतिरिक्तस्यान्यकस्यचिद्वस्तुन आनयनं भवति । तथैव 'तत्त्वमसीत्यत्रापियथोक्तवाक्यघटकतत्पदेन पूर्वत्रप्रक्रान्तं जगदुत्पत्यादिकारणं सत्यसङ्कल्पादिगुणविशिष्टं ब्रह्मैवोपस्थापितं भवति न तु तदन्यत् । ततश्च तत्पदोपस्थापितसत्यसङ्कल्पादिकल्याणगुणवतः समस्तदोषरहितस्य ब्रह्मणोऽल्पज्ञत्वादिगुणविशिष्टजरामृत्युदुःखादिदोषविशिष्टजीवेन सह तादात्म्यं कथं बोधितंस्यात् । श्रुतेश्चाप्रामाण्यकथनमपि न युक्तम् । तस्मात्तत्वमस्यादिश्रुत ब्रह्मणोनिर्विशेषतायां न तात्पर्यं किन्तु क्वचिदन्यत्रैव तस्यास्तात्पर्यं वक्तव्यम् । तथाहि 'ऐतदात्म्यमिदंसर्वम्' 'यः पृथिप्यांतिष्टन्' 'जगत्सर्वंशरीरंते' इत्यादिश्रुतिसहकारेण

होते हैं। अर्थात् पदार्थमात्र का स्वभाव है कि आश्रय के विना टिक नहीं सकता हैं, अतः ये जो जड पदार्थ हैं भोगाधिष्ठान उसमें जीव का अनुप्रवेश आवश्यक है। जीव उन वस्तुओं में प्रविष्ट होता है तब ये पदार्थ साश्रित होनेसे स्वकीय सद्भाव को प्राप्त करते हैं। जीव को पुण्यापुण्य कर्म द्वारा होनेवाला जो फलोपभोग, उसमें सहायक बन सकते हैं। इसलिये जीवानुप्रवेश आवश्यक है। एवं जीव भी आश्रय के विना स्वकीय सद्भाव को प्राप्त नहीं कर सकते हैं, उन जीवों में परमात्मा का अनुप्रवेश भी समुचित ही है। जीव परमात्मा का प्रकार है, इसलिये इन दोनों में अभेद है और देह घटादिक जीव का प्रकार है, इसलिये इन दोनों में अभेद है और देह घटादिकं जीव का प्रकार है, इसलिये जीव के साथ इन सवका भी तादात्म्य सिद्ध होता है। नाम रूप श्रुति का क्या अभिप्राय है ? इस बात का स्पष्टीकरण करने के लिये कहते हैं '**अयंभावः**' इत्यादि–अर्थात् नामरूप श्रुति का तात्पर्य यह है। '**यस्यात्माशरीरम्**' अर्थात् जिस परमात्मा का जीव शरीर है। इत्यादी श्रुतियों से सिद्ध होता है कि सव परमात्मा का शरीर होने से प्रकार है और प्रकार तथा प्रकारी होने से जीवात्मा परमेश्वर से अभिन्न भी है। अर्थात् शरीर शरीर विशेषण तथा विशेष्य में अभेद होता है अतः जीवात्मा परमेश्वर से अभिन्न है। ऐसा होने से सर्वशरीरक जो ब्रह्म तादृश ब्रह्म का शरीर स्वरूप जीव का देव मनुष्य तिर्यगादि शरीर भोग्यविषयादिक भोगस्तान तत्तत् अधिकरण, ये सव जीव में विशेषण हैं, और जीव स्वयं परमात्मा का विशेषण है। इसलिये चेतन जीव तथा उनका विशेषणरूप सब अचेतन पदार्थ साक्षात् अथवा परम्परया ब्रह्मात्मक होने से ब्रह्माभिन्न है। अतः देव मनुष्यघटादिक शब्द देवादि शरीर के वाचक रूप से लोक में प्रसिद्ध होते हुए, तत्तत् घटपट देहादि संश्थान द्वारा स्वस्व के अभिमानी जीव का, तथा जीव का, अन्तर्यामी, अर्थात् जडचेतन पदार्थमात्र के अभ्यन्तर में नियामकरूप से अवस्थित परमात्मा का बोध कराते हैं। अर्थात् घटपादिरूप पदार्थ का स्वशक्ति द्वारा वाचकरूप से लोक में प्रसिद्ध जो घटपटादिक शब्दराशि हैं, ये शब्द

अपहतपाप्मत्वसत्यसङ्कल्पत्वसत्यकामत्वसर्वज्ञत्वाद्यनन्तकल्याणगुणमहोदधिं ब्रह्म किंत्वयाश्रुतमितिगुरोरभिप्रायः ।

सर्वंजगज्जडचेतनादिकं भगवतः शरीरं भगवतोंऽशः । भगवांश्च सर्वस्य शरीरी शेषी च भवति । ततश्च प्रकृततत्त्वमस्यादिश्रुतिरपि ईशजीवयोः शरीरशरीरीभावशेषशेषीभावमेव दर्शयति । यथा देवादिशरीरतज्जीवयोः शरीरात्मभावः । अविष्वग्भावश्च संबन्धस्तथैव प्रकृतेऽपि ।

ननु तत्त्वमसीतिवाक्यात् पूर्वं 'तदैक्षत' इतिवाक्यम् ततोऽपि पूव येनाश्रुतं श्रुतं भवतीति वाक्यम् । तच्चोपक्रमवाक्यम् । तत्रैकविज्ञातेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा कृता । अर्थात् एकस्यकारणस्यविज्ञानेन तज्जनिकार्यजातस्यविज्ञानंभवतीति । तत्रमृदादिदृष्टान्तः । यथा घटादिकार्यजातस्य कारणंमृद्द्रव्यं तद्विज्ञाने जाते कार्यद्रव्यं घटशरावादिकं विज्ञातमेव भवति । न तत्रप्रयासान्तरस्यावश्यकता । तत्र कारणमात्रं सत्यं कार्यञ्च वागालंवनमात्रंमिथ्येत्यपि कथितम् । प्रकृते च सर्वकारणं ब्रह्म कार्यञ्चजगदिति कारणं ब्रह्ममात्रं सत्यं

समुदाय स्वकीयवाच्य अर्थ का तथा घटाद्यभिमानी जीव का एवं जीव का अन्तर्यामी जो परमादत्मा है, उनका बोधक होता है। इस संपूर्ण प्रकरण का अभिप्राय यह है कि लोक में यह देखने में आता है, शरीर आत्मा का आश्रय लेकर रहता है तथा आत्मा शरीर का अधिकरण वन कर के रहता है, इसमें आत्मा विशेष्य है तथा शरीर विशेषण प्रकार है क्योंकि 'यह मनुष्य है' इस व्यवहार का यही अर्थ होता है कि यह मनुष्य शरीरवाला है। '**अयं मनुष्यः**' इस प्रतीति में मनुष्य शरीर विशेषण प्रकाररूप से भासित होता है और जीवत्मा विशेष्यरूप में भासित होता है। एवं '**नीलो घटः**' इत्यादि प्रतीति में गुण आधेय रूप से और द्रव्य अधिकरण आश्रय आधार तथा विशेष्य रूप से भासित होता है। एवं '**जातिमान् घटः**' इत्यादि स्थल में आधेय विशेषण रूप से जाति का और आधेय विशेषणरूप से जाति का बोध होता है। '**यस्यात्माशरीरम्**' जिस परमेश्वर का यह जीवत्मा शरीर है अर्थात् विशेषण प्रकार है। इस उपर्युक्त श्रुति से सिद्ध होता है कि परमात्मा जीव का अन्तर्यामी है अतः जीव ब्रह्मात्मक है ऐसा सिद्ध होता है। जीवात्मा सर्वदा अपने अभ्यन्तर में परमेश्वर को अन्तर्यामी के रूप में लेकर के रहता है और यह ब्रह्मात्मक जीव देवादि शरीरों के अन्दर में आत्मा के रूप से रहते हैं, जो शरीर मनुष्य देवतिर्यगादि शब्दों से जीवों के प्रति विशेषण रूप प्रतिपादित हैं, शरीरवाचक शब्द हैं वे शरीरमात्र में ही विश्रान्त न होकर आत्मापर्यन्त का प्रतिपादक होते हैं क्योंकि देवमनुष्यादिक शब्द देवमनुष्य शरीरवाले जीवात्मा का वाचक होते हैं। ये शदीरादिक जड पदार्थ जीवात्मा का शीरर है और जीवात्मा परमात्मा का शरीर है। जिस तरह जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप है, उसी तरह शरीरादिक जड पदार्थ भी ब्रह्मात्मक है। प्रकृति प्रत्ययों से युक्त होकर के विभिन्न देव मनुष्य वृक्ष पर्वतादिक शब्द राशि

श्वेतकेतोः प्रश्नः पितुरुत्तरञ्च

कारणमेवकार्याकारेणपरिणमते इतिकारणलक्षणसूक्ष्मचिदचित्पदार्थशरीरकब्रह्मविज्ञानेनकार्यलक्षणं सकलमेवजगद् विज्ञातं भवतीति स्वकीयाभिप्रायं स्वहृदिसमास्थाय 'येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमित्यादिस्वपुत्रं पृष्टवान्नुद्दालकः । किन्तु सकलं वस्तुजातमेककारणक-

कार्यञ्च जगदाकाशादिकं मिथ्यैव । तस्य कारणस्य द्रव्यस्य ब्रह्मण 'एकमेवाद्वितीयमि' तिश्रुतिः । एकमेवाद्वितीयमित्यादिपदैः सजातीयविजातीयस्वगतभेदान् निराकरोति । तदुक्तम् 'वृक्षस्यस्वगतोभेदः पत्रपुष्पफलादिभिः । वृक्षान्तरात्सजातीयोविजातीयः शिलादितः' तथा सद्वस्तुनो भेदत्रयं प्राप्तं निषिध्यते । ऐक्यावधारणद्वैतप्रतिषेधोस्त्रिभिः क्रमात् । निराकृत्य च तान् भेदान् तस्मिन् ब्रह्मणि निर्विशेषत्वं प्रतिपादयतीति । तथा अन्यान्यश्रुतिषुविभिन्नाधिकरणेषु बहूनिशोधकवाक्यानि 'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म' 'निष्कलंनिष्क्रियं शान्तम्' इत्यादीनि सन्ति । तानिवाक्यान्यपि कारणस्य ब्रह्मणो निर्विशेषत्त्वप्रतिपादकानि सन्ति तत्र सत्यपदमसत्याद्व्यावर्तयति ज्ञानपदं जडाद् व्यावर्तयति । आनन्दं पदं च दुःखरूपा-

स्वकीयवाच्य जड के अभ्यन्तरवर्तीतत् तत् अभिमानी जीवों का प्रतिपादन करते हुए जीव के अन्तर्यामी परमात्मपर्यन्त का बोध कराते हैं । प्रत्येक शब्द स्ववाच्य जड का तदभिमानी जीव का तथा जीवान्तर्यामी परमात्मा का बोध कराते हैं । विशेष विवरण अन्यत्र देखिये । कायवृद्धि भय से संक्षेप किया गया है ।

इदं शब्द से प्रतिपादित संपूर्ण जडचेतन को शरीरात्मभाव रूप से ब्रह्मात्मकत्व जो प्रतिपादन किया गया है वह उजित नहीं हैं, क्योंकि '**तत्त्वमसि**' इस श्रुति से तो स्वरूपतःजीव तथा ब्रह्म में एकत्व का प्रतिपादन होता है । अतः '**तत्वमशि**' श्रुतिका किस अंस में तात्पर्य है ? इस वात का प्रतिपादन करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**तत्त्वमसीतिश्रुतेर्जीवात्मा**' इत्यादि । '**तत्त्वमसि**' इस श्रुति का जीवात्मा तथा परमात्मा का अत्यन्त अभेद में तात्पर्य नहीं है, किन्तु यथोक्त श्रुति उपक्रम प्रास शरीरात्मभाव सम्बन्ध से ब्रह्मात्मता का उपसंहार परक है । उपसंहार परकत्व का स्पष्टीकरण करने के लिये कहते हैं-'**तथा हीत्यादी**' **सन्मूलाः सोम्येमाप्रजाः**' इत्यर्थात् हे सौम्य ! यह सभी प्रजा अर्थात् सत् ब्रह्म से उत्पन्न होनेवाला जडचेतन साधारण जगत् प्रजा पद के वाच्य हैं, शरीर विशिष्टजीव प्रजापद वाच्य हैं । इससे शरीरांश अचेतन है और चेतनांश जीव है । एतादृश चेतनाचेतन जगत् सत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है । अतः सत् ब्रह्म इसका उपादान तथा निमित्त कारण होनेसे मूल है । सत् ब्रह्म इस जगत् का आयतन अर्थात् धारक है । यह प्रपंच सत् ब्रह्मरूप आधार के ऊपर में अवस्थित है, जिस तरह पृथिवी के ऊपर में चतुर्विध भूतग्राम अवस्थित रहते हैं । यथा वा गृह में घटादिक अवस्थित रहते हैं वह सत् नियामक बन करके इसका आधार है, । यह जगत् सत् ब्रह्म द्वारा नियाम्य है । तथा यह प्रपञ्च सत् का शेष है । अर्थात् सत् के लिए बना है । यह प्रपंच सत् में लीन होने वाला है सत् इसका लय स्थान है । अत एव सत् जगत् की प्रतिष्ठा है । इत्यादि श्रुति से चेतनाचेतन साधारण इस जगत् में सन्मूलत्व सदायतनत्व सत् प्रतिष्ठितत्त्व

मितिपितुरभिप्रायमज्ञात्वा श्वेतकेतुः परस्परविभिन्नवस्तुनिस्वेतरवस्तुनोविज्ञानेनस्वस्यविज्ञानं कथमपि न संभवतीतिजानन् पुत्रः पृष्टवान् पितरम्- 'कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ततः पुत्रेण पृष्टः पितास्वहृदिनिहितं ज्ञानानन्दस्वभावमपरिच्छिन्नमाहात्म्यं सत्यकामत्वसत्यसङ्कल्पत्वसर्वज्ञ-

द्व्यावर्तयति । न च सर्वेषामेकब्रह्ममात्रबोधकत्वे घटकलसवत् पर्यायतास्यादिति वाच्यम् । व्यावर्त्यभेदेनादोषात् । तदुक्तम्-'प्रतिपद्यपदार्थं हि विरोधात्तद्विरोधिनः । पश्चादभावं जानाति वध्यघातकवत् पदात्' 'तत्रानन्तोऽन्तवद्वस्तुव्यावृत्यैवविशेषणम्' । स्वार्थार्पणप्रणाथा च परिशिष्टौ विशेषणम्' इति । तथा च न घटकलसादिवत् पदानां पर्यायतेति ।

एवं चोपक्रमेनिर्विशेषब्रह्मण एव ग्रहणात्, उपसंहारेऽपि तत्त्वमसीतिघटकतत्पदेननिर्विशेषब्रह्मण एव ग्रहणं भवति न तु सविशेषस्य ब्रह्मण इत्याशङ्कानिराकरणायाह किञ्चैकस्य ब्रह्मणोविज्ञानेन इत्यादि । येयमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञासमर्थनम् । तदद्वैतमतेनोपपद्यते । यतस्तन्मतेकारणमात्रस्य सत्यत्वं कार्यस्य च मिथ्यात्वेनासत्वमिति

सत् शेषत्व और सत् निमाग्यत्व का सामान्यरूप से प्रपितान करके, कार्यकारणभाव द्वारा संपूर्ण जगत् में ब्रह्मात्मकता का समर्थन किया गया है । तदनन्तर-संपूर्ण जगत् का परमेश्वर ही आत्मा है, इस तरह संपूर्ण जगत् में ब्रह्मात्मकत्व का समर्थन किया गया और यह संपूर्ण जगत् परमात्मा का शरीर है । इसलिये त्वं शब्दवाच्य सर्वजीव सत् ब्रह्म का शरीर होने से ब्रह्मात्मक है, क्योंकि जडपदार्थ की करह जीव भी परमात्मा का विशेषण है । इस बात को सामान्यतः '**ऐतदात्यमिदं सर्वम्**' इस वाक्य से कह करके जीव विशेष-उपस्थित जीव विशेष श्वेतकेतु में भी सत् ब्रह्म के विशेषण शरीरलक्षण में ब्रह्मात्मकत्व का उपसंसार किया जाता है '**तत्त्वमसि**' इस वाक्य से । इस लिये ये पूर्ववाक्यों से कथित ब्रह्मात्मकत्व का उपसंहार वाक्य हैं, किन्तु विधायक नहीं । अर्थात् '**तत्त्वमसि**' यह वाक्य ब्रह्म तथा जीव में अत्यन्ताभेद का विधान नहीं करता है, किन्तु '**सन्मूलाः**' '**ऐतदात्म्यम्**' इत्यादि वाक्य से विधियमान कार्यकारण भाव सम्बन्ध तथा शरीरात्मभाव सम्बन्ध से ब्रह्मात्मकत्व है उसका सर्वजीवान्तर्गतजीव विशेष श्वेतकेतु में अनुवादित किया जाता है । प्रमाणान्तराप्रास का कथन करने वाला विधायक कहलाता हैं, और जो प्राप्त प्रापक होता है वह तो अनुवादक ही कहलाता है ।

जीव में जो ब्रह्मात्मकत्व है वह ब्रह्म में तथा जीव में देहात्मभाव से है । नतु भेदासहिष्णु अभेदमूलक है, इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-'**किञ्चे**' त्यादि '**ऐतदात्म्यमिदंसर्वंतत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि**' इस श्रुति में इदं पद से जडचेतनात्मक सर्वजगत् का निर्देश करके उस संपूर्ण जगत् में ब्रह्मात्मकत्व का समर्थन किया गया है । अर्थात् संपूर्ण जगत् का आत्मा शरीरी ब्रह्म है तो यही यह जिज्ञासा होती है कि जो

त्वाद्यनन्तकल्याणगुणकं सर्वदोषपरिवर्जितं सूक्ष्मचिदचिद्वस्तुशरीरकं स्वलीलार्थं सत्यसङ्कल्पेन समुत्पादितविलक्षणस्थावरलक्षणं जगज्जातं स्वांशेवानस्थितमितिताद्दशैककारणस्य विज्ञानेनसकलतदीयकार्यस्य विज्ञानं

तदभावेन कारणज्ञानेपि कार्यस्याभावादेवतद्विज्ञानं कथमिवस्यान्नैव स्यादित्यर्थः । एवं कार्यस्यासत्वात् संबन्धो न संभवति । असतोः सदसतोर्वासंबन्धस्याशक्यत्वात् । यदि कदाचित् शुक्तिकायामध्यस्तरजतस्याधिष्ठानेनाध्यासिकतादात्म्यं भवति, तथैवब्रह्मलक्षणाधिष्ठाने तदध्यस्तजगतोपितादात्म्यं स्यादित्युच्येत तदा सत्यमिथ्यावस्तुनोरेकत्वमापद्येतेति परन्तु एकविज्ञानेनसर्वविज्ञानप्रतिज्ञायाः समर्थनं तदैवस्यात् यदि सर्वं कार्यजातं कारणब्रह्मतादात्म्येन सत्यत्वे एव सिद्ध्येन्नान्यथा ।

अयमाशयः इयमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा अद्वैतवादिमते न समर्थिता भवति । यतस्तन्मते कार्यस्यमिथ्यात्वेनाभावात् । विशिष्टाद्वैतमतेतु सा समर्थिता भवति । तथाहि

यह ब्रह्मात्मकत्व है वह ब्रह्म तथा जीव में स्वरूपतः है अथवा शरीरशरीरीभाव से है अर्थात् जीव ब्रह्म का शरीर है तथा सत् आत्मा शरीरी है । इसलिये जीव में ब्रह्मात्मकत्व है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं- "**नाद्यः**" इति । अर्थात्, इसमें प्रथम पक्ष-अर्थात् स्वरूप से जीव में ब्रह्मात्म भाव नहीं है क्योंकि यदि प्रथम पक्ष मानें तब तो "**तदैक्षत**" इत्यादि श्रुति वाक्यों से अवगत जो सत् ब्रह्म में सत्यसङ्कल्पवत्व सर्वज्ञत्वादिक विशेषण हैं जो कि जीव में नहीं रहनेवाले हैं, उन गुणों का ब्रह्म में बाध हो जायेगा । अर्थात् यदि दोनों में अत्यन्त अभेद है तब जो जीव ब्रह्म का सर्वथा अभेद होने से जीव में नहीं रहनेवाले इन गुणों का सद्भाव नहीं होगा, अथवा ब्रह्म में ये सव गुण हैं तव ब्रह्माभिन्न जीव में भी इन सब गुणों का सद्भाव हो जायगा, परन्तु ये दोनों सर्वतन्त्र से अमान्य हैं। इसलिये जीव में जो ब्रह्मात्मकत्व है वह स्वरूप से नहीं है। इसलिये द्वितीय पक्ष ही ठीक है । अर्थात् जीव में जो ब्रह्मात्मकत्व है वह कार्यकारणभाव संबन्ध से तथा शरीरशरीरीभाव संबन्ध से है । यह द्वितीयपक्ष-"**अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानामात्मा**" "**य आत्मनि तिष्ठन्**" इत्यादि श्रुतियों से अनुमोदित है । अतः जीव में ब्रह्मात्मकत्व शरीर शरीरीभाव संबन्ध से है, किन्तु स्वरूपतः अभेद नहीं है ।

जो व्यक्ति **तत्त्वं** पद में दोनों जगह भाग त्याग लक्षणा करके उस पद द्वय से उपस्थित शुद्ध चेतन द्वय में आत्यान्तिक अभेद सिद्धि करने के लिये असफल प्रयास प्रयत्न करते हैं, उनकेमत का निराकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं-"**ननु यदि जीवब्रह्मणोर्न स्वरूपेणाभेद**" इत्यादि, जीव और ब्रह्म में स्वरूपतः अभेद माना जाय, कार्यकारण भाव द्वारा अभेदमानें तब तो "**तत्त्वमसि**" इस श्रुति से प्रतिपाद्यमान जो अत्यन्त अभेद वह किस तरह उपपन्न होगा ? **उत्तर**-यह कहना ठीक नहीं होगा-क्योंकि प्रकृत में तत् पद तथा त्वं पद का जो सामानाधिकरण्य है अर्थात् समानविभक्ति पदोपस्थाप्यता है, उसके बल से शरीरात्मभाव रूप से ही प्रकृत श्रुति जीव ब्रह्म में अभेद को बतलाती है। क्योंकि इसके पूर्व प्रकरण में ब्रह्म जडचेतन शरीरवाला

भवतीति कथयितुं लोकप्रसिद्धकार्यकारणयोरभिन्नत्वं दर्शयितुं दृष्टान्तमुक्तवान् । 'यथा सोम्यैकेनमृत् पिण्डेन सर्वं मृत्तिकाकार्यविज्ञातं स्यादिति । यथैवमेवमृत्तिकाद्रव्यं घटशरावादिविविधसंस्थानसंस्थितं सत् घटादिविविधशब्देनव्यवहारायकल्पते । तत्र मृद्द्रव्यादिघटादेः पार्थक्यं न

यदि कारणलक्षणब्रह्मणः तत्यत्वं तथा जगत् ब्रह्मात्मकमितिमन्येत तदासमर्थिताभवति । विशिष्टाद्वैतमते कारणीभूतं ब्रह्मसर्वदैव चेतनाचेतनपदार्थैनविशिष्टंयुक्तमेव भवति । प्रलयकाले चेतनाचेतनवस्तुसूक्ष्मरूपेणावतिष्ठते । सृष्टिकाले च तानि तत्वानि स्थूलत्वमापद्यन्ते । प्रलयकालेसूक्ष्मचेतनाचेतनविशिष्टमेव ब्रह्मसृष्टिकाले स्थूलचेतनाचेतनरूपेण परिणमते, स्थूलचेतनाचेतनविशिष्टं ब्रह्मैव जगत् 'तदेतत्कार्यावस्थस्यकारणावस्थस्यचचिदचिद्वस्तुनः स्थूलस्यसूक्ष्मस्य च परब्रह्मशरीरत्वम् । परस्य च ब्रह्मण आत्मत्वमन्तर्यामिब्राह्मणादिषुसिद्धंस्मारितमचिद्वस्तुनि सजीवे ब्रह्मण्यात्मतयावस्थितेनामरूपव्याकरणवचनाच्चिद्वस्तुशरीरकं ब्रह्मैव जगच्छब्दवाच्यम्' (आ. भा. २,१,१४,)

है, ऐसा स्थिर किया है । तथाहि-जिस तरह जड शरीर **अर्थात्** प्रकृति का विकारभूत शरीर भोगाधिष्ठान का अधिष्ठाता,तथा तादृश शरीरका आश्रयभूत जीव देवादि शरीर का वाचक देवमनुश्य तरु गुल्मादिक पदों से बोधित होता है । इस तरह शरीर विशिष्ट जो जीव है वह **परमात्मा** का शरीर है ऐसा-"**यस्यात्मा शरीरम्**" इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है। यानी पूर्व में सिद्ध किया गया है ।

ऐसा हुआ तब "**तत्त्वमसि**" इस श्रुति घटक जो तत्पद है वह सकल कल्याण गुणवाला सगुण ब्रह्म को उपस्थित **करता है** और प्रकृत वाक्य घटक जो त्वं **पद है** वह शरीर विशिष्ट जीव शरीरक, तथा जीव का अन्तर्यामी **ब्रह्म को समझाता है**, तब समान विभक्तिक **तत्त्वं पदों** से ब्रह्म का ही उपस्थित होने से तत् पद तथा त्वं पद बोध्य में **शरीरात्म** भाव संबन्ध से अभेद सुसंगत **होता है** इस में सकल कल्याणगुणवाला जगत् कारण भूत परमेश्वर तत् पदोपस्थाप्य होते हैं, और त्वं पद से **जीव का** अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर उपस्थापित होते हैं। इस प्रकार दोनों पदों से अर्थात् तत् त्वं पदों से परमेश्वर की ही उपस्थिति होती है । इस प्रकार से पदार्थमात्र में ब्रह्मात्मकताकी सिद्धि होती है। अत सर्वपदवाच्य परमेश्वर होते हैं क्योंकि सब पदार्थ चाहे जड हो अथवा चेतन हो, सब ब्रह्म का कार्य होने से ब्रह्म का शरीर रूप होने से ब्रह्मात्मक कहलाता है, तथा शरीरवाचकपद विशेषणवाचक पद शरीरी तथा आश्रय पर्यन्त का वाचक होता है। अतः सर्वपदबोध्यत्व ब्रह्म में सिद्ध **होता** है ।

जड़चेतन सब ही पदार्थ ब्रह्मात्मक है तथा **सब ही** घटादिबोधक शब्द ब्रह्मपर्यन्त अर्थ को समझाते हैं । इस वस्तु **को** समझाने के लिये उपक्रम करते हैं-"**अपि च सर्वोपि पदार्थ**" इत्यादि ।

भवति 'मार्दवोघटशरावादिरितिव्यवहारदर्शनात्। तत्र यथा सत्यकारण-लक्षणैकमृद्द्रव्येविज्ञातेतदन्यतत् कार्यरूपं सर्वं विज्ञातमेव भवति, तथा प्रकृतेपीतिभावः श्रुतेः।

इत्याचार्योक्तेः। जगति च तत्वत्रयंविद्यतेजडतत्वंचेतनजीवतत्वं परमेश्वरतत्वं च। एतादृशः परेश एव ब्रह्मशब्देन कथितो भवति। एतदेव ब्रह्मविभिन्नामवस्थांप्राप्य चेतनाचेतनतत्वसंयुक्तो भूत्वा विश्वरूपतांप्राप्नोति। चेतनाचेतनतत्वविशिष्टं ब्रह्मैव जगत्। अतो जगदात्मकं कार्यं ब्रह्मैव। न ततोव्यतिरिक्तंजगत्। अत एवैकस्योपादनस्यज्ञानानन्तरं कार्यलक्षणसकलमपि जगत् ज्ञातमेवभवति। जगदुपादानकारणं ब्रह्मसत्यमिति तदभिन्नं जगदपि जडचेतनात्मकं सत्यमेव। यतः सूक्ष्मचेतनाचेतनविशिष्टमेव ब्रह्मकार्यजगद्रूपेणव्यवस्थितम्। अतः कारणब्रह्मज्ञानानन्तरं तदभिन्नं जगत्कार्यमपि विज्ञातमेव-भवतीति। एवं च विशिष्टाद्वैतमते एव एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञासमर्थिताभवति न तु केवलाद्वैतवादे सर्वजगतोमिथ्यात्वस्वीकारे संभवतीतिसंक्षेपः।

प्रश्नः-सब ही जड चेतनपदार्थ ब्रह्मात्मक है और सब ही घटपटादिबोधक शब्दराशि सर्वान्तर्यामी परमात्मा को ही समझाता है। यह आपका कथक कथमपि युक्त नहीं है क्योंकि लोक में तो ऐसा कहीं भी देखने में नहीं आता है। लोक में तो देखने में आता है कि लौकिक चक्षुरादि प्रमाणों से रूपस्पर्शादिमान् जड घट ही गृहीतहोता है। न तु चेतनावान् कोई भी गृहीत होता है। अर्थात् चक्षुरादि प्रमाणों से रूप स्पर्शादिकगुण तथा तादृश गुणवान् द्रव्य का ही ग्रहण होता है, आत्मा तो नीरूप तथा निरवयव द्रव्य है उसका ग्रहण तो कथमपि नहीं होसकता है। कदाचित् जीवात्मा का तो **"मनोमात्रस्य गोचरः"** इस नियम से अन्तःकरणमात्रावगम्य है भी, परन्तु परमात्मा तो अनुमेय है प्रत्यक्ष तो कभी नहीं होता है।

न वा घटादिवाचक शब्द घटरूप अर्थ को छोडकर के चक्षुरादिप्रमाणों से अनुगृह्यमाण परमात्मा का बोधक होता है, किन्तु घटादिशब्द स्वकीय शक्ति के बल से कंबुग्रीवादि लक्षण पदार्थ का ही बोधक होता है ऐसा ही देखने में आता है और भी देखिये। यदि पद नियत अर्थ को न समझावे किन्तु स्वशक्त्येतर अर्थ को भी समझावे तब तो वाच्यवाचक भाव संवन्ध की व्यवस्था नहीं होगी, तथा सब शब्दों में पर्यायत्व का कलश पद के समान हो जायगा। इसलिये सर्वशब्द परमात्मा का बोधक होता है यह कथन प्रामाणिक नहीं है किन्तु स्वेच्छामात्र प्रचारित है।

उत्तर-आपका कथन ठीक है क्योंकि जिन्होंने वेदान्त का श्रवण नहीं किया है, उन लोगों का ऐसा कहना ठीक ही है जिन्होंने वेदान्त का श्रवण किया वे लोग तो प्रमाणशेखर शब्द प्रमाण द्वारा, पदार्थमात्र ब्रह्म का कार्य होने से ब्रह्मात्मक है, ऐसा मानते ही है। तथा सभी शब्द घटादि संस्थानस्थित ब्रह्म का वाचक है

॥ पुत्रस्योपदेशप्रार्थनापितुः सतो जगद्धेतुत्वप्रतिपादश्च ॥

परस्परातिविलक्षणस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्ममात्रं कारणमित्यत्र विश्वासम-लभमानः श्वेतकेतुः स्वपितरमुक्तवान्। भगवंस्त्वमेतद्ब्रवीतु। तदनन्तरं सर्वशक्तिसमन्वितं सर्वज्ञं ब्रह्मैव जगतो विलक्षणस्य कारणमिति विवक्षुः

संप्रति उद्दालकप्रश्नस्य कस्मिन्नर्थे तात्पर्यं निर्विसेषे सविशेषे वेतिनिश्चेतुमुपक्रमते सद्विद्याप्रकरणपठित इत्यादि। छान्दोग्योपनिषदः षष्ठेप्रपाठके 'स्तब्धोसिउतत-मादेशमप्राक्ष्य' इत्यादिवाक्यम्। गुरुकुलादधित्यसमागतमविनीतम-भिमानिनमागतं स्वपुत्रंदृष्ट्वापितोद्दालकस्तं पृष्टवान्। हे पुत्र! येन जगदुपादानादिका-रणपरमात्मज्ञानेनाज्ञातमपि वस्तु विज्ञातं भवति तमादेशं परमात्मानं पृष्टवानसिस्वगुरुम्। यद्यप्यन्यत्रादेशशब्द आज्ञायां विद्यतेतथापि आदिश्यतेऽ-

ऐसा मानते हैं।

यदि सब शब्द ब्रह्मवाचक है, ऐसा मानें तब गवादिवाचक शब्द भी ब्रह्मबोधक होगा? तब गवादि शब्दों को जो प्रतिनियत गवादि अर्थबोध करने की जो लोकव्युत्पत्ति है उसका वाध हो जायगा? इस शंका का निराकरण करने के लिये तथा सद्विद्या प्रकरण का उपसंहार करने के लिये उपक्रम करते हैं-**"सर्वोपि गवादिवाचकः"** इत्यादि।

सब ही गवादिवाचक पद समुदाय जड़शरीर तथा तादृश शरीर का अधिष्ठाता जीव और जीव का अन्तर्यामी परमात्मा का बोधक होते हैं। परन्तु इसमें यद्यपि अश्रुत वेदान्तवाला साधारणलोक गवादिपद प्रतिपाद्य परमात्मा को नहीं समझते हैं, क्योंकि परमात्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणगम्य नहीं हैं। और साधारण पुरुष तो प्रत्यक्षादिप्रमाणबोधित वस्तु को ही समझते हैं। तथापि जिसने वेदान्त का श्रवण किया है, वे लोक शब्दप्रमाण के बल से जानते हैं कि प्रत्येक शब्द स्वकीय जड़ अर्थ तदधिष्ठाता जीव तथा तदन्तर्यामी ईश्वर का प्रतिपादन करते हैं। अतएव लोकव्युत्पत्ति का बोध नहीं होता है। अर्थात् यदि केवल परमात्मा बोधकता मानें तो यह दोष होता, परन्तु ऐसा तो है नहीं, किन्तु त्रितयबोधकत्वशास्त्र तथा युक्ति से माना जाता है। जिस तरह वैदिक शब्द परमात्मपर्यन्त अर्थो का बोधक होता है। उसी तरह लौकिक देवादि शब्द देवशरीर तदधिष्ठायक देवजीव तदन्तर्यामी परमात्मा का बोधक होते हैं। ऐसा मनु ने भी कहा है-**'सर्वेषां तु'** इत्यादि प्रजापति के अन्तर्यामी परमात्मा ने वैदिक शब्दों के अनुसार सभी पदार्थों की पृथक् पृथक् अवयव रचना तथा उनके अलग अलग नाम और धर्मों का निर्माण किया।

एवं भगवान् पराशर ने भी कहा है-**'नामरूपं च भूतानामित्यादि'** अर्थात् उस परमात्म ने वैदिक शब्दों के अनुसार देवमनुष्यादि जीवराशियों के नामरूप तथा कर्तव्य कर्मों के विस्तार का निर्माण किया है।

पितोवाच 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकवमेवाद्वितीयम्' अत्रेदं पदेन प्रत्यक्षादिप्रमाणोपनीतं जगदुक्तं भवति । 'अग्रे' इति पदेन सृष्टेः पूर्वकालः प्रलयम् । तत्र प्रलयकालेसूक्ष्मचिदचिद्विष्टसदात्मकब्रह्मात्मकतांप्रतिपाद्यसृष्टि कालेऽपि तदेवेतिसदात्मकस्य संसारस्यसूक्ष्मरूपतां प्रतिपादयन् नेनेतिव्युत्पत्या 'एतस्यवाक्षरस्ये' त्यादिश्रुति 'प्रशासितारं सर्वेषामित्यादिस्मृत्यर्थसहकारात् आदेशकर्तरि परमात्मन्येवविद्यते । स च श्रीरामः सर्वेश्वरत्वात् सर्वस्य जडचेतनस्यप्रशासकः । सूक्ष्मजडचेतनविशिष्टं ब्रह्म स्थूलजडचेतनविशिष्टब्रह्मलक्षणजगत उपादानं भवतीति । 'एकमेवाद्वितीयमिति श्रुतिघटकपदेन जगद्देहश्च सर्वज्ञोविभूरामः सदैव हि । जगद्देहातथैवाहं सर्वज्ञाविभूतां गता' (विशिष्टसंहिता) इत्याद्यागमवाक्येन च ज्ञापितं भवति । तदेव च ब्रह्म जगतः कर्ता अधिष्ठाता भवति । इत्युक्तश्रुतिघटकशब्दद्वितीयपदेनज्ञापितं भवति । एवं जडचेतनविशिष्टपरमेश्वरस्यज्ञाने जाते परमेश्वरप्रकारभूतसमस्तस्यापि जगतो विज्ञानं जायते एव । तादृशं च ब्रह्म 'यः सर्वज्ञः सर्वविदित्यादिश्रुतिस्मृतिभिः अनन्तकल्याणगुणविशिष्टमेवेति जगत्कारणत्वादिगुण-

---

वेद में भी कहा है-"**धाता यथा पूर्वम्**" अर्थात् परमेश्वर ने पूर्वकल्प के अनुसार सूर्यादिकपदार्थों का सर्ग कर उन सब का पूर्व अर्थात् कल्पानुसार ही नामकरण किया । इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि वैदिक शब्द ही लौकिक शब्द बने हैं तो लौकिक शब्द भी वैदिक शब्द की भांती अन्तर्यामी पर्यन्त अर्थ के वाचक होते हैं। **तत्त्वमसि** वाक्य में त्वं पद जीव के अन्तर्यामी का वाचक है यह वाक्य जीव के अन्तर्यामी तथा जगत् कारण ब्रह्म में अभेद को बतलाता है, किन्तु जीव ब्रह्म में अभेद का प्रतिपादन नहीं करता है।

अब सद्विद्या के उपसंहार को आचार्य श्री बतलाते हैं-"**तस्मिन्नेकस्मिन्नित्यादि**" कार्य जगत् तथा कारण ब्रह्म एक ही वस्तु है। उस एक ब्रह्म का विज्ञान होने से उस कार्यरूप सकल जगत् का विज्ञान होता है जिसतरह कारण मृद्द्रव्य का विज्ञान होने पर कार्य रूप घटशरावादि सकल कार्य का विज्ञान हो जाता है। अर्थात् कार्यजगत् तथा कारणब्रह्म एक ही वस्तु है। इन दोनों में भेद नहीं है, क्योंकि सूक्ष्म जडचेतनों से विशिष्ट ब्रह्म कारण है और स्थूल जडचेतनों से विशिष्ट ब्रह्म ही कार्य जगत् रूप है, अतः दोनों एक वस्तु हैं। इस स्थिति में उपादान कारण एक ब्रह्म के विज्ञान से उपादेय सर्व जगत् विज्ञात हो जाता है। इस तरह सर्व विज्ञान की प्रतिज्ञा का उपादान होता है उपादान कारण सत्य है, इसलिये तदभिन्न उपादेय जगत् भी सत्य है मृत्तिका घट की करह। सत् ब्रह्म जगत् को समकल्पपूर्वक बनाता है, इसलिए सद्विद्या से सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है निर्विशेष की नहीं। इस प्रकार सद्विद्या से सविशेष ब्रह्म प्रतिपादित होता है।

सतोब्रह्मणोजगदुपादानकारत्वं प्रतिपादितवान् । तथा ब्रह्मभिन्नेऽतिभिन्नकारणत्वस्यनिराकरणमद्वितीयपदेन कृतवान् । ततश्च प्रशासितैव जगतउपादानमिति यद् हृदयेस्थितं तदेवात्राभिव्यञ्जितम् ।

ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वलक्षणमुभयविधकारणत्वमुपपाद-

विशिष्टपरमात्मज्ञाने जाते तद्विशेषणस्य जगतोपि ज्ञानंभवत्येवेत्युद्दालकप्रश्नस्याभिप्राय इति प्रकरणस्याभिप्राय इति प्रकरणस्य संक्षिप्तोर्थः ।

कारणमेवकार्याकारेण परिणमते इति । अयंभावः यत् कारणद्रव्यं तदेव कार्यरूपेण परिणाममवाप्य कार्याख्यां लभते । यथा तन्तव आतानवितानादिरूपेण समवस्थिताः पट इति । यथा वा दुग्धमेवाकारविशेषमास्थायदधीति नाम्ना व्यपदिश्यते । तथैव सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टं ब्रह्मैव स्थूलचेतनाचेतनविशिष्टपरिणममवाप्य जगत्कार्यरूपेणावस्थितं भवतीति पितुरभिप्रायमजानन् पुत्रः पितरं पृच्छति कथं नु भगव इत्यादि । हे भगवन् न हि कारणमात्रं कार्यमपि तु कारणादत्यन्तभिन्नमेव कार्यम् । न हि भवति

ब्रह्म में कारणता बोधक वाक्य द्वारा जिस तरह सविशेषता का प्रतिपादन किया गया है, उसी तरह शोधक वाक्यों से भी सविशेष ब्रह्म ही प्रतिपादित होता है। कारण बोधकवाक्य के बाद में शोधक वाक्यों का अवसर प्राप्त होता है। (जो कारण होता है वह प्रायः विकारी होता है, जिस तरह घटादिक कार्य का कारण मृदादिक द्रव्य विकारी देखने में आता है, तो इसी तरह जब "**सदेवसोम्येदमग्रे**" इत्यादि प्रकरणस्थ वाक्यों से ब्रह्म में कारणत्व का विधान होता है, तब स्वभावतः यह प्रश्न होता है कि ब्रह्म कारण होने से विकारी होगा ? इस शंका का निराकरण करने के लिये शोधक वाक्य सबसे विलक्षण होने से ब्रह्म में किसी प्रकार का दोष नहीं होता है।) यह शोधक वाक्य ब्रह्म में निर्विकारित्व सर्वदोषराहित्य तथा अनन्तकल्याणगुणाकरत्व को बतलाते हैं। इनसब विषयों को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं "**सद्विद्या प्रकरणस्थ**" इत्यादि। सद्विद्या प्रकरण में अर्थात् छान्दोग्योपनिषत् के षष्ठाध्याय के आदिभाग में विद्यमान जो "**सदेव सोम्येदम् - तत्सत्यं स आत्मा**" (अर्थात् हे श्वेतकेतु ! यह परिदृश्यमान जड चेतन साधारणस्थूल जगत् सृष्टि से पूर्वकाल अर्थात् प्रलय काल में सत् ब्रह्म से अभिन्न था, क्योंकि यह जगत् ब्रह्म का कार्य है और कार्यकारण में अभेद होता है, उस ब्रह्म ने संकल्प किया मैं अनेक रूप से होऊं। तदनन्तर वह अनेक रूप हो गया। वह ब्रह्म सत्य है, वह सब का आत्मा अन्तरात्मा अन्तर्यामी है।) सदेव से लेकर तत्सत्यं स आत्मा, एतदन्त प्रकरण से जगत् का कारणरूप ब्रह्म में सर्वहेय गुण रहितत्व तथा अनन्त कल्याण गुणाकरत्व स्वरूप सविशेषत्व का प्रतिपादन किया है। एवं इसी तरह कारण वाक्य के आगे आनेवाले जितने शोधक "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**" "यः

यितुमुद्दालकः पुत्रं प्रोक्तवान् । 'तदैक्षतबहुस्यां प्रजायेयेति' सदेवसोम्येदमग्रे इत्यादिश्रुत्यातदुभयकारणत्वेनव्यवस्थापितं यत् सत् तदेवात्रत-च्छब्देनपरामृश्यते । ततश्चपूर्वप्रकान्तबोधकतत् पदवाच्यं सर्वज्ञसर्वश-क्तिसमन्वितं सत्यसङ्कल्पादिगुणकं परंब्रह्मसमवाप्तसकलकाममपि

तन्तव एव पटः । कार्यञ्चोभयोः पृथगेव । यथा तन्तुभिर्बन्धनं पटेन प्रावरणम् । शब्दोप्युभयोभिन्न एव, अयंतन्तुरयं पट इति । बुद्धिभेदोप्युभयोः पट इति तन्तुरिति चातस्तस्मान्नकारणात्मकं कार्यम् । किन्तु विभिन्नकारणादिवभिन्नान्येव कारणानि न तु सकलकार्याणामेककारणमपितु कारणभेदादेव कार्यमिति न कार्यकारणयोरैक्य-मित्यभिप्रायवान् पुत्रः पितरं पृच्छति कथं नु भगवः समादेश इत्यादि । तदनन्तरं सकलजगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानं स्वभावतो ज्ञानानंदस्वरूपमपरिच्छिन्नमाहात्म्यं सत्यसङ्कल्पत्वाद्यनन्तकल्याणगुणकं परिवर्तितसफलदोषंपरमात्मानमेव जगत्कारणं प्रविविक्षुः तदेव ब्रह्मसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टंस्थूलजागतः कारणं कारणेन च कार्यमभिन्नं

सर्वज्ञः स सर्ववित्'' ''परास्य शक्तिः'' इत्यादि वाक्य समुदाय हैं ये सब जगत् कारण ब्रह्म में सविशेषत्व का प्रतिपादन परक ही हैं। अर्थात् जिस तरह घटादिक पद घटत्व विशिष्ट घटका बोधक होता है। उसमें घटत्व धर्म तथा तादृश धर्म का आधार घट का भान होता है। इसी तरह प्रकृत में सत्यपद सत्यत्व धर्म तथा तदाश्रयीभूत सत्यलक्षण ब्रह्म का बोधक होने से सत्यादिक पद द्वारा सविशेष ब्रह्म ही सिद्ध होता है। एवं ज्ञानपद ज्ञान तथा ज्ञानाश्रय को बतलाता है, तो ज्ञानादिक विशेषण घटितवाक्यों से सविशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है।

न च ''सत्यं ज्ञानमनन्तम्'' ''प्रज्ञानम्'' इत्यादि । प्रश्न-उपयुक्त श्रुति ब्रह्म को ज्ञानमात्रत्व का प्रतिपादन करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मज्ञान मात्र है, नतु उसमें ज्ञानाद्याश्रयत्व है। एतावता ब्रह्म में तो निर्विशेषत्व ही सिद्ध होता है, तब आप ब्रह्म को सविशेष किस तरह कह सकते हैं। उत्तर-जिस तरह उपर्युक्त श्रुतिद्वय से निर्विशेषता सिद्ध होती है, उसी तरह ''यः सर्वज्ञः स सर्ववित्'' अर्थात् जो सर्वविषयक सामान्यरूप से ज्ञानवान् है, वह विशेषरूप से भी सर्व विषयक ज्ञानादिमान् है। इत्यादि श्रुति तथा ''तद्गुणसारत्वादित्यादि' सूत्र तो बतलाता है कि परमेश्वर ज्ञानादि गुणों का आश्रय है और ज्ञान तदाश्रित है एतावता ब्रह्म में ज्ञान कर्तृत्वरूप ज्ञातृत्वादि धर्मवत्ता की सिद्धि ही होती है। इसलिये उभयश्रुति का सामंजस्य करने के लिये सविशेषता प्रतिपादक श्रुति का ब्रह्म में अप्राकृतिक लोकोत्तर अनन्त कल्याण गुणवत्व का बोध न करने में तात्पर्य है और गुणनिषेधक श्रुतियों का हेय गुण का निराकरण करने में तात्पर्य है। अर्थात् भगवान् सर्वहेय गुण रहित हैं तथा सर्वकल्याणगुण सर्वज्ञत्व सत्यसङ्कल्पत्वादिमान् हैं। एतादृश अर्थ करने पर किसी भी श्रुति का अनादर नहीं होता है। अन्यथा एक को प्रामाणिक मानें तथा तदनुसार

लीलामात्रप्रयोजनायविविधानन्तभावमिश्रितजगद्रुपेणाहमेवं भवेय-मित्येवं स्वयमेव सङ्कल्पं कृत्वा स्वकीयशरीरैकजडप्रकृतिसकाशात्, महत्तत्वादारभ्याकाशादिमहाभूतान्तान् पदार्थानुत्पादयामास । ततः सैव

भवतीति लोकप्रसिद्धिमीयं पुत्रं बोधयितुंमृदादिदृष्टान्तं दर्शयित्वा सर्वमेव वस्तु कारणविज्ञानेनाविज्ञातमेवभवतीति बोधयामासेति प्रकरणस्यभावार्थं प्रोक्तवानिति ।

ब्रह्मैव विविधप्रपञ्चस्योपादानमित्यज्ञात्वा विभिन्ना इमे कथं ब्रह्मैककारणकमिति संशयापन्नः पुत्रः पितरमेवतदर्थंपृष्टवान् । ब्रह्मैव सर्वज्ञं सर्वजगतोऽभिन्ननिमि त्तोपादानमितिदर्शयितुमाह सदेव इत्यादि । अत्र सत्पदंसूक्ष्मजडचेतनविशिष्टसदात्मकब्रह्म बोधकम् । अग्रे पदं सृष्टिकालव्यतिरिक्तनामरूपविभागानर्हप्रलयकालपरकम् । इदं पदं जगद्बोधकम् । तत्काले सदापन्नस्याविभक्तनामरूपतांप्रतिपाद्य तत्कारणत्वं प्रतिपादितंद्विती यपदेन च तद्व्यतिरिक्ते निमित्ततांनिराकृत्य सत एवोभयविधकारणत्वं 'उपादानं निमित्तञ्च जगतो राघवोमतः' इत्यादिरूपेण जगद्गुरुश्रीद्वारानन्दाचार्योक्तदिशा समर्थितम् । अत

निर्वाह करें तो अन्य श्रुतियों का अनादर तथा अप्रामाणिकत्व हो जायगा। परन्तु किसी भी श्रुति को अप्रामाणिक मानना यह तो वेद प्रामाण्यवादि किसी को भी इष्ट नहीं है तब श्रुतिघटक सत्यादिक पद सत्यत्वादिपद सत्यत्वादिक धर्मों का प्रदिपादन करता है, किन्तु सत्यत्वादिक अतद्व्यावृत्ति परक है, यह भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा कहने पर भेद रूप धर्म तो सिद्ध होता ही है। क्योंकि अतद्व्यावृत्ति तो आखिर अगोव्यावृत्तिरूप होने से भेदरूप ही है। नहीं कहो कि-अभाव तो अधिकरणरूप है, तो ब्रह्मभिन्न जगत् का भेद तो ब्रह्म में रहने से ब्रह्म ब्रह्मस्वरूप है ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि तब तो भावाद्वैत है ऐसा जो सिद्धान्त है उसका व्याघात हो जायगा। प्रकृत प्रसङ्ग में विशेषचर्चा अन्यत्र देखें।

जिस तरह-''सोयं देवदत्त'' इस स्थल में तत्पदवाच्य पूर्वदेशविशिष्ट तथा पूर्वकाल विशिष्ट देवदत्त का इदं पदवाच्य वर्तमानकाल संनिहित देशविशिष्ट देवदत्त के साथ अभेदान्वय का बाध होने से तत् पद तथा इदं पदस्वकीय विरुद्ध अंशद्वय का परित्याग करके लक्षणावृत्ति द्वारा देवदत्त मात्र का प्रतिपादन करके अभेद का प्रतिपादन करते हैं, उसी तरह-''तत्त्वमसि'' इस स्थल में तत्पदत्वं पदवाच्य विरुद्धांशका परित्याग करके दोनों जगह में लक्षण वृत्ति से चैतन्यद्वय में अभेद का प्रतिपादन होता है, ऐसा जो अद्वैतवादी का मत है। इसमें मुख्यतः चार दोष का प्रतिपादन करके उसका खण्डन करने के लिये उपक्रम करते हैं ''किं च तत्त्वमसीत्यत्रेत्यादि । अद्वैतमतावलम्बी लोग ''तत्त्वमसि'' इस वाक्य में तत्पद तथा त्वं पद इन दोनों में स्वार्थ परित्याग पूर्वक अर्थात् तत्पद सर्वज्ञत्वादिरूप स्वकीय अर्थ का तथा त्वं पद अल्पज्ञत्वादिरूप स्वकीय अर्थ का परित्यागपूर्वक लक्षणावृत्ति द्वारा निर्विशेष चैतन्यांश का उपस्थि कराके, उन दोनों चैतन्यांश में अभेद का प्रतिपादन होता है, ऐसा कहते हैं यह ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर इस मत में स्वार्थ परित्यागरूप

सत्पदवाच्य ब्रह्मरूपपरादेवता पुनरपि सङ्कल्पान्तरमकरोत् । 'हन्ताऽहमिमास्तिस्त्रोदेवता अनेनजीवेनात्माऽनुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणीति । अत्र 'अनेनजीवेनात्मनेतिकथनात् जीवस्य ब्रह्मरूपतां कथयित्वा-

उभयविधकारणं जगतो ब्रह्मैवेति निर्णीतमितिदिक् ।

यद्यपि 'सदेव सोम्येदम्' इत्यादिश्रुतिघटक 'एकमेव' 'अद्वितीयम्' इति पदेनैव ब्रह्मण उभयविधकारणत्वं व्यवस्थापितमेवेति पुनस्तद्व्यवस्थापने पिष्टपेषणमेव-भविष्यतीति तद्व्यवस्थापनंपुनर्नयुक्तम् । तथापि समावेशतोव्यवस्थापितमपि विशेषरूपेण तद्व्यवस्थापनार्थमुपक्रमते ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तेत्यादि । यतः सामान्यरूपेण कथितस्यैवात्र विशेषरूपेण प्रतिपादनं करोति, अत एवोपपादयितुमित्युक्तम् । आगमोपपत्तिभ्यांपुनर्विचारणमेपोपपादनम् । अथवा परपक्षनिराकरणपूर्वकस्वपक्षस्थापनरूपमेवतदिति । तदैक्षत इत्यादि । पूर्दवाक्यात्प्रासंयत् सत्पदोपस्थापितं तदेव ब्रह्म ऐक्षत ईक्षणं सङ्कल्पमिच्छां

दोष होता है अर्थात् जिस पदका जो शक्य अर्थ है उसका परित्याग होता है। नहीं कहो कि जिस तरह "गङ्गायां घोषः" यहां गङ्गा पद का जो मुख्य प्रवाहरूप अर्थ है उसमें घोष के आधाराधेयभाव का अनुपपन्न होने से गङ्गापद स्वकीय अर्थ का परित्याग करके लक्षणावृत्ति से तीर अर्थ को उपस्थि करके लक्ष्यार्थ तीर में घोषान्वय को बतलाता है तो स्वार्थ परित्याग तो कोई दोष नहीं है ? इस प्रश्न का विराकरण करने के लिये कहते हैं-"**लक्षणा दोषयोरिति**" भले ही स्वार्थ परित्याग दोष न हो, किन्तु लक्षणाश्रयण रूप दोष तो उक्त मत में अनिवार्य होता है, और लक्षणावृत्ति तो अगतिक गति है। नहीं कहो कि उपक्रमोपसंहारादिक जो तात्पर्य निर्णायक छ प्रकारक लिङ्ग हैं उनके बल से तत्पद तथा त्वं पद का ऐक्य बोध कराने में तात्पर्य हैं ऐसा निश्चित होगया है, और यह जो एकत्व है वह लक्षणा के बिना तो हो नहीं सकता है, अतः लक्षणावृत्ति का आश्रय लेना कोई दोष नहीं है-"**सोयं देवदत्तः**" इत्यादि की तरह। अर्थात् जिस तरह "**सोयं देवदत्तः**" यहां तत्पद शक्ति द्वारा भूतकाल तथा विदूर देश स्थित देवदत्त का वाचक है तथा इदं पद वर्तमानकाल तथा संनिहित देशस्थित देवदत्त का वाचक है तो इन दोनों में शक्ति द्वारा उपस्थित व्यक्ति का एकत्व अनुपपन्न होने से लक्षणा से विरुद्धांश का त्याग करके अविरुद्धांश में तादात्म्य होता है, अन्यथा पूर्वकाल में तथा दूर देश संनिहित देश में भी एकत्व हो जायगा।

इसी तरह प्रकृत में तत्त्वं पद जीव परमेश्वर में अभेद तात्पर्य की अन्यथा अनुपपत्ति होने से लक्षणावृत्ति से ऐक्य का बोधन कराते हैं ऐसा कहा है अन्यथाऽनुपपत्ति सर्वप्रमाणापेक्षया वलवती है। "**अन्यथानुपपत्तिश्चेदस्तिवस्तु प्रसाधिका । पिनष्टिदृष्टवैमत्यं सैवसर्वबलाधिका । वाच्यान्यथोपपत्तिर्वात्याज्योवादृष्टताग्रहः । नह्येकत्रसमावेशश्छायातपवदेतयोरिति ।**' इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री कहते हैं "**सोयं देवदत्त**" इत्यादि। "**सोऽयं देवदत्तः**" यहां हमारे सिद्धान्त में लक्षणा

ब्रह्मांशरूपजीवस्य जडेवस्तुन्यनुप्रवेशादेव तस्य वस्तुनोवस्तुत्वम् । तथा जीवानुप्रवेशादेवदेवमनुष्यघटादिसकलपदार्थानां नामरूपवत्वमिति । अयंभावः- 'यस्यात्माशरीर' मित्यादिश्रुत्याजीवात्माब्रह्मणः शरीररूपः सन् प्रकारस्तदभिन्नश्च । एवमेतादृशब्रह्मशरीरलक्षणस्य जीवस्य देवादिशरीरं

वा अकरोत् । कीदृशं शङ्कल्पमकरोत्तत्राह बहुस्यामित्यादि बहुस्याम्, अनेकरूपो भावेयम्' इति । ज्ञानादनन्तरमिच्छति ततः करोतीति क्रमः एतावता तस्मिन् कर्तृत्वं संभावितम् । उपादानागोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमत्वस्यैव कर्तृत्वात् । इत्थं सङ्कल्पं कृत्वा परमेश्वरः सकलशरीरकः स्वविशेषणीभूतायां गुणत्रययुक्तायामुपादानत्वेनाभिमतायां समानरूपायां प्रकृतौ क्षोभमुत्पाद्यमहत्तत्वमुत्पादयामास । ततश्चमहत्तत्वशरीरकः अभिमानलक्षणमहंकारं जनयामास तदुक्तमाचार्येण 'त्रिगुणैषा जगद्योनिरनाद्यन्तवती मता । प्रकृतीरामशक्तिश्चरामाधीना हि संमता । रामेणाहितवीर्या सा सर्जने प्रभवेत् खलु । अव्यक्ताख्यप्रधानस्यपरिणामोमहानिति । सतोऽवस्थान्तराप्तिर्हि द्रव्यस्य परिणामिता । प्रकृतेश्चविकारोहि हमत्तत्वभिधामतम् । महतश्चसमुद्भूतोऽहङ्कारस्त्रिविधोमतः' (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ७७,९८)

का आश्रय नहीं किया गया है, अर्थात् दृष्टान्त में हम लक्षणावृत्ति को नहीं मानते हैं, क्योंकि प्रकृत दृष्टान्त में भी तत्पदवाच्य तथा इदं पद वाच्य अर्थों में मुख्यवृत्ति द्वारा अन्वय होने में किसी प्रकार का विरोध नहीं होता है। तथाहि यदि मुख्यार्थ का अन्वय बाध होने में कोई विरोध हो तब लक्षणा मानी जाती है परन्तु प्रकृत में तो विरोध है नहीं, बौद्धेतर सभी दार्दनिक पदार्थ को स्थिर मानते हैं। अतः एक ही देवदत्त में भूतकाल का सम्बन्ध तथा वर्तमानकाल का सम्बन्ध एवं कालभेदावच्छेदेन दूरदेश तथा संनिहित देश के साथ कोई विरोध नहीं है अतः देदत्त को स्थिर होने से पूर्वकाल का सम्बन्ध तथा वर्तमानकाल का संबंध होना ही ऐक्य कहा जाता है, एवं भूतकाल में दूरस्थ देश का सम्बन्ध तथा वर्तमानकाल में संनिहित देश का जो सम्बन्ध है उसको देवदत्त में एकता शब्द का अर्थ है। इस प्रकार जब मुख्यार्थ का सम्बन्ध संगत होता है तब लक्षणा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कदचित् आप स्वीय सिद्धान्त के आग्रह से लक्षणा मानते हैं तब भी तो एक किसी पद में लक्षणा कर लीजिये उसीसे निर्वाह हो जायगा, तो दोनों पदों में लक्षणा मानने की कोई भी आवश्यकता नही है और उभय पदों में लक्षणा अन्यत्र कहीं दृष्ट भी नहीं है। "**गङ्गायां घोषः**" इत्यादि सर्वत्र स्थलमें एक पद की लक्षणा करने से ही निर्वाह होता है। वस्तुतः यहां लक्षणा की आवश्यकता हो नहीं है क्योंकि भूतकाल में दूरदेश का सम्बन्ध तथा वतमानकाल में संनिहित देश के साथ सम्बन्ध होने में कोई विराध नहीं है। इसी तरह दृष्टान्त में लक्षणा के बिना भी अन्वय बोध को बतलाकर के दार्ष्टान्तिक में भी लक्षणा के अभाव का प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं "**एवमेव प्रकृतेऽपि जगदित्यादि ।**' इसी तरह अर्थात् **सोयं दवदत्तः** इत्यादि दृष्टान्त के अनुसार प्रकृत में अर्थात् "**तत्त्वमसि**" इस दार्ष्टान्तिक में भी जगत् का कारण सर्वज्ञ जो

भोग्यभोगस्थानानि च विशेषणतयापरम्परयाब्रह्मात्मकान्येव । अतोदेवो मनुष्योघटपटादिकास्तत्तद्वाचकतयालोकेप्रसिद्धास्तत्तत्संस्थानद्वारेण-स्वाभिमानिनं तत्तज्जीवं जीवान्तर्यामिणं परमात्मानमेवबोधयन्ति । अर्थात्

अनेन क्रमेणाकाशादिमहाभूतान्तपदार्थानांसृष्टिमकरोत् । सेयं समष्टिसृष्टिरिति सैद्धान्तिकाः । इत्थंच यथा ज्ञानेच्छादिमान् कुलालो घटादिकंसृजन् तेषां कर्ता भवति तथैव परमेश्वरोऽपि संकल्पद्वारा सर्वान् सृजन् कर्तानिमित्तकारणं भवति । तथा स्वशरीरतया स्वाभिन्नजडप्रकृत्या सर्वान् सृजन् उपादानहेतुरपि भवति । एवं च परमेश्वरस्योभयविधकारणत्वं सिद्धं भवति ।

नन यदा परमेश्वरः संप्राप्तसकलकामस्तदा किमर्थं सृष्टिं सृजति ? । यतः प्रयोजनमन्तरेण प्रवृत्तेरेवासंभवात् । नहि 'प्रयोजनमनुद्दिश्यमन्दोपि प्रवर्तते' इति लौकिकन्यायात् । प्रयोजनमन्तरेणप्रवृत्तिं कुर्वन् उन्मत्त एव भवति । नवानिष्फलाप्रवृत्तिः । न कुर्यान्निष्फलं कर्मेत्यादिना तन्निषेधात् । किं च प्रवृत्तेः स्वार्थकरुणाभ्यांव्याप्तत्वेन परमेश्वरस्य सर्गाय

पर ब्रह्म हैं, उनको जीव का अन्तर्यामी रूप परमेश्वर से अभेद होने में कोई विरोध नहीं होता है। अर्थात् जिस तरह "**सोयं देवदत्तः**" इस स्थल में पूर्व काल पूर्वदेश विशिष्ट देवदत्त में वर्तमान कालावच्छेदेन संनिहित देश सम्बन्धित होने में कोई विरोध नहीं होता है तो लक्षणा करने की कोई भी आवश्यकता नहीं पडती है। इसी तरह जगत् कारणीभूत परमात्मा के साथ जीवशरीरक जीव का अन्तर्यामी ब्रह्म के साथ अभेद होने में कोई विरोध नहीं है। प्रमाणान्तर का विरोध नहीं है तब तत्पद तथा त्वं पद का मुख्यार्थ करके एक देश में लक्षणा की कोई भी आवश्यकता नहीं है।

"**तत्त्वमसि**" इस वाक्य का अद्वैती संमत अर्थ करने में दोपान्तर को बतलाने के लिये कहते हैं "**अपि च मदूक्तप्रकारेणैवे**" त्यादि। यदि "**तत्वमसि**" इस वाक्य का विशिष्टद्वैतसंमत अर्थ कहते हैं तब ही "**तत्**" "**त्वं**" इन दोनों पदों में सामानाधिकरण्य अर्थात् अभेद परकत्व का निर्वाह हो सकता है। मतान्तर में अभेदपरकत्व का निर्वाह नहीं हो सकता है। ऐसा वैयाकरणों ने भी कहा है कि "**भिन्नप्रवृत्ति निमित्तकानामिति**" भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तक पदों का जो एकार्थ बोधकत्व होता है उसको ही सामानाधिकरण्य कहते हैं। अर्थात् जिस निमित्त को लेकर के पद स्वकीय अर्थ को बतलाता है उसको प्रवृत्तिनिमित्तक कहते हैं तथा घटत्वरूप निमित्त को लेकरके घटपद स्वकीय शक्यार्थ का प्रतिपादन करता है तो "घटत्वप्रवृत्ति निमित्त है। नीलादि पद का प्रवृत्ति निमित्तक नीलत्वादिक भिन्न धर्म है। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रवृत्ति निमित्त को लेकर चलनेवाले पद यदि एक ही अर्थ में पर्यवसान को प्राप्त करें तो तादृश पदों से युक्त वाक्य को समानाधिकरण अर्थात् अभेद परक कहते हैं। यथा "**नीलो घटः**" इस वाक्य में नीलपद नीलत्व धर्मवान् है, तथा घटपद घटत्व लक्षण भिन्न धर्मवान् होता हुआ आकांक्षा के बल से नील घट में अभेदको समझाता है तो यह वाक्य समामाधिकरण कहलाता है। तो भिन्न पदवोधित भिन्न भिन्न प्रवृत्ति निमित्त को लेकर के तत् प्रवृत्ति

घटादिवाचकतया लोकेप्रसिद्धा अपि घटादिशब्दाः पटादिसंस्था-नतदभिमानिजीवतदन्तर्यामिपरमात्मन एव वाचका इति ।

॥ तत्त्वमसि श्रुत्यर्थवर्णनम् ॥

'तत्त्वमसीतिश्रुतेर्जीवात्मपरात्मनोरत्यन्ताभेदे न तात्पर्यमपि

प्रवृत्तिः स्वार्थमूला करूणामूला वा ? नाद्यः परमेश्वरस्य संमवाप्तसकलकामतया स्वार्थस्वीकारे सिद्धान्तव्याकोपात् । न वाद्वितीयः अन्योन्याश्रयात् । तथाहि करुणानाम परदुःखप्रहाणेच्छा' पारदुःखानुसन्धानाद्विह्वलीभवनं विभोः । कारुण्यात्मगुणस्त्वेष आर्त्तानां भीतिवारकः' इति भगवद्गुणदर्पणे श्रीमधुराचार्योक्तेः सा च सर्गोत्तरकालीना सर्गात् प्राक्तदभावेन सर्गानुपपत्तेः । न च सर्गोत्तरकाले दुःखिनंजीवमवलोक्य तदीयदुःखनिवारणाय करुणा स्यात् । ततश्च करुणाया सर्गः सर्गाच्चकरुणेति दुस्तरमन्योन्याश्रय आपतति ।

किं च विचित्रान् सुखदुःखिनो जीवान् विरचयतः परमेश्वरस्य वैषम्यनैर्घृण्य-मपिस्यादित्याशङ्कां समाधातुमाह लीलामात्रप्रयोजनायेत्यादि । **समवाप्तसकलेप्सितस्यभगवतो**

निमित्त का परित्याग करके यदि वाक्य एक अर्थ में पर्यवसान को प्राप्त करता है तभी वाक्य अभेद परक कहलाता है। अद्वैतवादी तो "**तत्त्वमसि**" इस वाक्य में तत् पदबोधित सर्वज्ञत्वादि प्रवृत्तिनिमित्त को तथा त्वंपदबोधित अल्पज्ञबोधित धर्मों का परित्याग करके तत्त्वमसि वाक्य का चैतन्य स्वरूप मात्र के अभेद अंश में तात्पर्य कहते हैं यह तो ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर वैयाकरणों का जो लक्षणवाक्य है उस वाक्य का आनुकूल्य नहीं होता है। अतः उभय पदों से वोधित प्रवृत्ति निमित्त अर्थात् शक्यतावच्छेदक धर्म को पुरस्कृत करके ही प्रकृत वाक्य का एकत्व में तात्पर्य को स्वीकार करना उचित है। व्याकरण के नियमानुकूल निर्वाह विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में ही सम्पन्न होता है। तत्पद का अर्थ जगत् कारण ब्रह्म तथा त्वं पदार्थ जीवान्तर्यामी के अभेद में "**तत्त्वमसि**" वाक्य का तात्पर्य है।

"**तथोपक्रमविरोध**" इत्यादि, यदि तत्त्वमसि इस वाक्य का अद्वैत मत के अनुकूल अर्थ किया जाय तब उपक्रम विरोध होता है। यथाहि पूर्वामीमांसा में कहा गया है कि उपक्रम अर्थात् प्रारंभस्थ वाक्य के अनुसार ही उपसंहारस्थ वाक्य का अर्थ करना चाहिये, किन्तु प्रारंभ वाक्यार्थ के प्रतिकूल अर्थ में उपसंहार वाक्य का तात्पर्य नहीं मानना चाहिये, इस प्रकृत सद्विद्या में उपक्रमस्थ वाक्य है "**तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय**" अर्थात् उस सत् ब्रह्म ने संकल्प किया कि मैं अनेकरूप हो जाऊं तदर्थ- अनेक देवादिरूपों से उत्पन्न हो जाऊं। इस उपक्रम वाक्य से ब्रह्म में सत्यसंकल्प सर्वज्ञत्व तथा जगत् का प्रधान कारणत्व सिद्ध होता है। और इस सद्विद्या में "तत्त्वमसि" यह उपसंहार वाक्य है। अब यदि इस उपसंहार वाक्य से जीव और ब्रह्म में एकत्व

तूपसंहारपरकमेवेतिदर्शयति । तथाहि 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सन्मूलाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः' इत्यादिना प्रजापदेन चेतनाचेतनजगतः सन्मूलत्वं सत्प्रतिष्ठितत्वं सत्शेषत्वं तन्नियाम्यत्वं च सामान्यतः प्रतिपादनं कृत्वा

येयं सर्गाय प्रवृत्तिः सा केवलं लीलीप्रयोजनैवेति । यथा कश्चित् राजासंप्राप्त सकललौकिककामोपि केवलं लीलार्थमेवविचित्रा ननेकानुद्यानाराममप्रासादादिकान् निर्माय स्वजनेन सह विहारादिकं करोति । तत्र लीलाव्यतिरिक्तं किमपिप्रयोजनं न भवति । तथैव प्रकृते परमेश्वरो दाशरथिः लीलामात्रमुद्दिश्य नानाविधान् सर्गान् करोति । तत्र महत्तत्वादारभ्य महाभूतान्तं सृष्टिं प्रकृतिसाहाय्येनस्वयमेव करोति । 'प्रकृतिं स्वामवष्टभ्यविसृजामि पुनः पुनः' 'मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिः सूयते सचराचरम्' इत्यादिगीतोक्तेः । ब्रह्माण्डात् परतो भोग्यभोगायतनानां जडचेतनमिश्रितपदार्थानां सृष्टिं स्वाभिन्नजीवद्वारेण संपादयति । अन्तर्यामितया सर्वत्रावस्थितः सन्निति । तदाहुराचार्यपादाः 'अपरप्रकृतेरत्यन्तविलक्षणां जीवभूतां जीवपदाभिलप्यां मे सर्वनियन्तुरीश्वरस्यमां परामुत्तमांमच्छरीरस्थानीयां प्रकृतिं

का प्रतिपादन किया जाय तब तो ब्रह्म में अज्ञान को स्वीकार करना होगा, परन्तु उपसंहार वाक्य से ब्रह्म में अज्ञान को मानना उपक्रम वाक्य से विरुद्ध है, क्योंकि उपक्रम वाक्य तो ब्रह्म में सत्यसङ्कल्प तथा सर्वज्ञता को सिद्ध करता है, तो इस प्रकार उपक्रम विरोध होता है, अत उपक्रम के अनुकूल तत्त्वमसि का ऐसा - अर्थ किया जाय जिससे ब्रह्म में अज्ञत्व सिद्ध न हो तथा सर्वज्ञता का बाध भी न हो। अद्वैतमत में प्रधानतया चार दोष होते हैं, ईश्वर में सर्वज्ञत्वादिक का बाध होजाना । उभयपद में लक्षणा व्याकरण नियम का विरोध और उपक्रम वाक्य के साथ उपसंहारस्थ वाक्य का विरोध । इन चार दोषों का सद्भाव तथा अन्य दोष के कारण अद्वैतमत ठीक नहीं है। इस विषय पर विशेष चर्चा गीताभाष्यार्थचन्द्रिकाविवरण में करूंगा।

सभी प्रमाण संबन्ध प्रभृति सविशेष वस्तु का ही प्रतिपादक अर्थात् बोधक होते हैं। किन्तु निर्विशेष वस्तु का बोधक नहीं होते हैं। ऐसा प्रमाणज्ञों का नियम है। इस प्रकार की वस्तुस्थिति के होते हुये भी शब्द प्रमाण से निर्विशेष वस्तु का बोध होता है। अर्थात् शब्दात्मक प्रमाण द्वारा निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है, किन्तु सविशेष ब्रह्म सिद्ध नहीं होता है । अतः विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त शब्द प्रमाण प्रतिपाद्य नहीं है ऐसा जो अद्वैतवादियों की मान्यता है, उसका निराकरण करके के लिये कहते हैं-**"तेऽद्वैत वादिनः शब्दप्रमाणादेवे"** त्यादि । वे लोग अद्वैतवादी शब्द प्रमाण अर्थात् आगम प्रमाण से ही निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है ऐसा मानते हैं। यहाँ **"शब्दप्रमाणादेव"** इस में जो एव कार का कथन है उसका अभिप्राय यह है कि जिस तरह धर्माधर्म पदार्थ वेदैकसमधिगम्य है, किन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाण गम्य नहीं है, उसी तरह ब्रह्म भी प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अभिगत नहीं होते हैं।

कार्यकारणभावद्वारेण संपूर्णस्य जगतो ब्रह्मात्मकत्वं समर्थितम् ततः सर्वस्य जगतः परमात्मैवात्मा संपूर्णं जगत् परमात्मन एव शरीरम् । ततः त्वं शब्दवाच्यसर्वोऽपि जीवो ब्रह्मशरीरत्वात् परमात्मनो विशेषणं ब्रह्मात्मक एवेति सामान्यतः कथयित्वा ततो जीवविशेषे श्वेतकेतावपि ब्रह्मात्मकत्व-

---

विद्धि ययाऽनया इदंपरिदृश्यमानं नामरूपविभागार्हंसर्वं जगदन्तरवस्थाय 'अनेन जीनेनाऽत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपंव्याकरवाणी' इत्यादिश्रुत्युक्तरीत्या धार्यते' (गीतार्थचन्द्रिका ७।५)

परमेश्वरे उभयविधकारणत्वसमर्थकसंपूर्णप्रकरणस्यनिष्कृष्टाभिप्रायं दर्शयितुं प्रक्रमते-अयंभावः इत्यादि-यस्यात्माशरीरम् इत्यादि-बृहदारण्यकीयान्तर्यामि प्रकरणस्थश्रुतिबलात् जीवात्मापरब्रह्मणः शरीररूपः अत एव शरीररूपत्वात् ब्रह्मणो विशेषणं प्रकारः विशेषणप्रकारयोः समानार्थकत्वात् । प्रकारप्रकारिणोश्चतादा-त्म्यमित्यन्यत्र व्यवस्थापनात् । एतादृशब्रह्मशरीरलक्षणस्य जीवात्मनः शरीरतया

इस मत का निराकरण कहने के लिये कहते-**"तन्न"** इति। अर्थात् अद्वैतवादी का जो कथन है, वह ठीक नहीं है । पूर्वमत युक्त नहीं है । इसका उपपादन करने के लिये आचार्यजी कहते हैं-**"अर्थ विशेष तत्सम्बन्धे"** त्यादि । कंबुग्रीवादि अर्थ विशेष तथा पदार्थ का संबन्ध को समझाने वाला जो घट पाचकादि पद, तादृश पद सें घटित जो **नीलो घटः पाकं कुरु** इत्यादिक वाक्य समुदाय रूप जो शब्द प्रमाण है वह अन्ततोगत्वा पदार्थ संसर्ग लक्षण सविशेष वस्तु का ही बोधक होता है, किन्तु निर्विशेष वस्तुका बोधक नहीं होता है। यहां कहने का अभिप्राय यह है कि शब्द प्रणाण पद तथा वाक्यरूप है, प्रायः पद में दो भाग होते हैं, प्रकृति भाग और दूसरा प्रत्यय भाग। प्रकृति तथा प्रत्यय का अर्थ पृथक् पृथक् होता है। ये दोनों प्रकृत्यर्थ तथा प्रत्ययार्थ परस्पर में संबद्ध रहते हैं यथा-पाचकः इस में प्रकृत्यर्थ है पाक तथा प्रत्ययार्थ होता है कर्ता, यहाँ पाक तथा कर्ता में परस्पर सबन्ध को पाचक पद समझाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि पद विशेषण विशिष्ट अर्थ का ही प्रतिपादन करता है, निर्विशेष का प्रतिपादन नहीं करता है, और पद समुदाय का नाम होता है-**"वाक्य"** तो वह भी पदार्थों के परस्पर सबन्ध का प्रतिपादन करता है। पदार्थ संसर्ग पदार्थों से सबद्ध है, इस लिये पथार्थ का संसर्ग एक विशिष्ट वस्तु है। इससे सिद्ध होता है कि वाक्य भी विशिष्ट वस्तु का ही प्रतिपादक है, किन्तु निर्विशेष का प्रतिपादक नहीं होता है । फलितार्थ यह होता है कि निर्विशेष वस्तु का बोधक न पद है नवा वाक्य है, नवा वाक्य समुदाय शास्त्र ही है, ये सब सविशेष का ही प्रतिपादक हैं।

नहीं कहो कि **"इदं निर्विशेषम्"** इत्याकारक शब्द है वह तो निर्विशेष पदार्थ का ही प्रतिपादन करता है । नतु किसी सविशेष का यथा-घट पद से घटरूप अर्थ का प्रतिपादन होता है, पटका प्रतिपादन नहीं

मुपसंहृतमित्युपसंहारपरकमेवेदं वाक्यं नतु विधायकम् ।

किञ्च 'ऐतदात्म्य' मित्यादिश्रुतौ, इदं पदेन सर्वजगतो निर्देशं कृत्वा तस्य सर्वजगतो ब्रह्मात्मकं प्रतिपादितम् । अर्थात् सर्वजगत आत्मा शरीरिब्रह्मैवेति, तदिदं ब्रह्मात्मकत्वं तदुभययोः स्वरूपेण शरीरशरीरीभावेन वा ? नाद्यः तथा सति तयोरत्यन्ततादात्म्ये 'तदैक्षत' इत्यादिवाक्याव-

---

प्रकारभूतानि यानि देवमनुष्यादिसंस्थानि तत्तच्छरीराणि प्राकृतानीति तान्यपि ब्रह्मतादात्म्यापन्नान्येव । तस्मात् 'देवो मनुष्यः पशुपतंगकीटपर्वतघटपटा दिचेतनाचेचनबोधकाः सर्वेऽपिशब्दाः ये स्वकीयस्वकीयार्थबोधनपरतया लोके प्रसिद्धास्ते सर्वेऽपि स्ववाच्यतया ज्ञायमानसंस्थानवस्तुद्वारासाक्षात् स्वकीयं तदभिमानिनं तत्तज्जीवं तथा जीवान्तर्यामिणं सर्वशक्तिसंपन्नंपरमेश्वरमेव बोधयन्ति । इतिसर्वोपि शब्दः स्वमर्थं जीवं तदन्तर्यामिणं परमेष्वरमेतत्समुदायस्यैव वाचको भवति । चेतनो जीवस्तथा तदवयवभूतो जडपदार्थस्तदा-धारपरमेष्वरसमुदायस्य साक्षात् परम्परया बोधको भवति । परमात्मशरीरत्वेन परमात्मनासह तेषामभेदादित्यादिकमिहान्यत्रापि ज्ञातव्यभिति संक्षेपः ।

करता है ?

इस शङ्का के उपर में आचार्यजी कहते हैं-"**निर्विशेष**" इत्यादि शब्दोपीत्यादि । "**निर्विशेष**" इत्यादि जो शब्द है वह भी निर्विशेष वस्तु का प्रतिपादन नहीं करता है, किन्तु किसी विशेषण से विशिष्टरूप से ज्ञायमान जो वस्तु विशेष, उसमें विवक्षित धर्म से अतिरिक्त धर्मान्तर का निराकरण मात्र का प्रतिपादन करता है। और भी देखिये-क्या विशेषात्यन्ताभाव निर्विशेष पद का अर्थ है ? अथवा विशेष का भेद, यह अर्थ है ? इसमें प्रथम पक्ष ठीक नहीं है क्योंकि **निर्घटंभूतलम्** इसके समान। अर्थात् घटात्यन्ताभाववत् भूतल है। इस वाक्य के समान प्रकृत में भी यह दोष समान ही होता है। अपि च निर्विशेषत्व शब्द का अर्थ होता है कि निर्विशेष विशिष्ट पदार्थ, तो यह भी तो सविशेष ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि शब्दप्रमाण सविशेष का ही साधक है। **अयंभावः**-शब्द प्रमाण से ही सम्बन्धादि लक्षण सविशेष पदार्थ का बोध होता है, ऐसा नहीं किन्तु प्रमाणमात्र से सम्बन्धादिक का बोध होता है। यथा-चक्षुप्रमाण से घटवत् भूतल का ज्ञान होता है, तब उसी चक्षुरादि के द्वारा घटभूतल का संबन्ध तथा घटगत धर्म तथा तदीय संबन्ध का भी बोध होता ही है। अनुमिति स्थल में व्यप्तिज्ञान अनुमान द्वारा पर्वत में अनुमेय का ज्ञान होता है तब वहाँ पक्ष धर्मता के बल से पक्ष में अनुमेय वह्नि का संयोग लक्षण साध्यताबच्छेदक संबन्धका बोध होता है। उपमिति स्थल में उपमान द्वारा उपमेय ज्ञान होने से शक्तिरूप संबन्ध का ज्ञान होता ही हैं शब्द स्थल में यद्यपि संबन्ध का उपस्थापक पद नहीं है तथापि अभेदान्वय स्थल में अभेदादि संबन्ध का बोध आकाक्षां द्वारा होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रमाण मात्र संबन्धादि विशेषवस्तु का ही बोधक होता है। अलमति विस्तरेण।

गतब्रह्मणि सत्यसङ्कल्पत्वादिविशेषगुणानां जीवावृत्तीनां ब्रह्मणिबाधप्रसङ्गात् तस्माद् द्वितीयपक्ष एव । स च 'अन्तःप्रविष्टः शास्ता' य आत्मनि तिष्ठनित्यादिश्रुत्या चानुमोदितः । अतः शरीरात्मभावेनैव ब्रह्मात्मकत्वं सर्वस्येतिदिक् ।

ननु 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः' इत्यादिवाक्यं सर्वप्रजानां सन्मूलत्वं सदागतत्वं सच्छरीरत्वं प्रतिपाद्य यज्जीवपरात्मनोः शरीरशरीरिभावेन तदात्मकत्वं प्रतिपादयतीत्युच्यते तन्न युक्तम् । तत्त्वमसीति श्रुतिविरोधात् । प्रकृतश्रुतिर्जीवपरात्मनोरत्यन्ताभेवं दर्शयति न तु शरीरात्मभावेनैकतां दर्शयति । तथा सतिपरस्यसावयवत्वेन विकारित्वेन घटवदनित्यत्वप्रसङ्गादित्याशङ्कां समाधातुं प्रथमतः सिद्धान्तानुकुलमर्थमेव तत्त्वमसिश्रुते-र्वर्णयितुमुपक्रमते तत्त्वमसीति श्रुतेर्जीवात्मपरात्मनोरित्यादि । अर्थात् तत्त्वमसीतिश्रुतिर्न जीवपरा । 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः' इत्यादिश्रुत्या संपूर्णस्य जडचेतनात्मकस्य जगतः ब्रह्मोपादानकत्वब्रह्मनिमित्तकत्वब्रह्माधारत्वब्रह्मनियाम्यत्वपरमेश्वरशेषत्वादिकं सर्वं सप्रपञ्चं

शास्त्रप्रमाण से निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं होती है किन्तु सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है' यह विशिष्टाद्वैतवादी का कथन तब सिद्ध होता-यदि अद्वैतवादी ब्रह्म में शास्त्र को प्रमाण मानें परन्तु यह तो ऐसा नहीं मानते हैं इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-**स्यादेतदित्यादि**। यह आपका कथन ठीक था, परन्तु अद्वैतवादी तो विर्विशेष स्वयं प्रकाश ज्ञानस्वरूप ब्रह्म में शास्त्र प्रमाण है, ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं, जिससे यह पूर्वोक्त दोष प्राप्त हो। किन्तु ब्रह्म तो स्वतः सिद्ध ज्ञानरूप है। उसमें प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। अर्थात् प्रमेय की सिद्धि प्रमाण द्वारा होती है। "**प्रमेय सिद्धिः प्रमाणाद्धि**" ऐसा नियम है, जो प्रमा

अर्थात् ज्ञान विषय हो उसको प्रमेय कहते हैं। जैसे "**अयं घटः**" इत्यादि ज्ञान का विषय घटादि जड पदार्थ प्रमेय कहलाता है। ब्रह्म तो स्वप्रकाशज्ञान का स्वरूप है, नतु ज्ञान का विषय है, अतः प्रमेय नहीं है, जब प्रमेय नहीं है तब प्रमाणका वह विषय किस तरह हो सकेगा इसलिये निर्विशेष स्वप्रकाश ज्ञान स्वरूप ब्रह्म शास्त्र प्रमाण का विषय नहीं है। नहीं कहो कि-यदि ब्रह्म शास्त्र प्रमाण का विषय नहीं है, तब तो ब्रह्म का साधना करने के लिये प्रवृत्त जो वेदान्तवाक्य हैं वे सब निरालंबनक हो जायेंगे, क्योंकि ब्रह्म तो प्रमाण का विषय नहीं है तब वेदान्त क्या करेंगे अर्थात् वेदान्त वाक्य निरर्थक हो जायेंगे। ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि जिस तरह पर्वत में असिद्ध वह्नि का साधक धूमहेतु है अर्थात् धूम से पर्वत में व्याप्ति पक्षता के बल से असिद्ध वह्नि की सिद्धि होती है। उसी तरह वेदान्त वाक्य असिद्ध ब्रह्म का साधक नहीं है किन्तु जिस तरह स्वभाव से शुद्ध भी पट पंकादिमल से नीलवत् आभासित होता है, वहां क्षारादि सहकृत जल से पट को शुद्ध किया जाता है, परन्तु वही क्षारादिक द्रव्य मलापहरण मात्र में प्रयोजक है किन्तु पट की स्वच्छता में कारण नहीं होता है।

तत्त्वमसिश्रुत्यर्थसमर्थनम्

ननु यदि जीवब्रह्मणोर्नस्वरूपेणाभेदः किन्तु कार्यकारण भावमुखेनाभेदस्तदा 'तत्त्वमसी' तिश्रुत्याभिधीयमानतत्त्वयोरभेदः कथमुपपाद्यते, तत्त्वयोः सामानाधिकरण्यं तद्बलेन च तयोरभेदं दर्शयति।

दर्शयित्वा कार्यकारणद्वारेण 'ऐतदात्म्यमिदं सर्व' मित्यादिश्रुत्या संपूर्णप्रपञ्चस्य परमेश्वरात्मकत्वादेव सत्यमित्यपिप्रतिपादितम् 'जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैयं ते वसुधातलम्' इत्युक्तेः। अतः संपूर्णमेव जगत् परमेश्वरशरीरमेव। यतः संपूर्णजगत् सर्वेश्वरश्रीरामशरीरं ततः त्वं शब्दवाच्यः सर्वोऽपि जीवः परमेश्वरशरीरं ब्रह्मात्मकश्च। अतः श्वेतकेतुरपि परमेश्वरस्यैव शरीरं जीवान्तरवत् शरीररूपोभवन् तदात्मक एवेत्यनेन प्रकारेण श्वेतकेतौ शरीरशरीरिभावेन ब्रह्मत्मकत्वस्योपसंरारः कृतो भवति तत्त्वमसीति श्रुत्या नतु जीवपरेशयोर्भेदासहिष्णु तादात्म्यं प्रतिपादितं तत्र किन्तु जीवपरेशयोर्भेदसहिष्णुतादात्म्यमेव प्रतिपादितमन्यथा सर्वथातयोस्तादात्म्ये जीवगताल्पज्ञत्वादिधर्माणां ब्रह्मणि ब्रह्मगतसर्वज्ञ-

---

इसी तरह प्रकृत में वेदान्त वाक्य ब्रह्म का बोधक नहीं होता है किन्तु अविद्या के बल से ब्रह्म में जो ज्ञातृत्वादिक भासित होता है उन सब अध्यस्त पदार्थें का निराकरण अंश में तात्पर्य रखता है। अर्थात् ब्रह्म में अध्यस्त पदार्थों का निराकरण करता है और तब परोपाधिकृत तत्तत् विशेष धर्मों का निराकरण हो जाता है। तब सभी प्रकार के आगन्तुक धर्मों का निरास हो जाने पर सर्वोपाधि रहित निरवच्छिन्न स्वप्रकाशरूप ब्रह्म स्वतः सिद्ध होने से स्वरूपतः विद्यमान रहता है। अर्थात् वेदान्त वाक्य प्रतिबन्धित का अपनयन में कारण है रूपांश में कारण नहीं है।

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यप्रवरजी कहते हैं-**नैतद्युक्तमिति**। यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिस निर्विशेषरूप ब्रह्म लक्षणधर्मी में अध्यस्त उन विशेष ज्ञातृत्वादिक धर्मों का निराकरण करते हैं, उस अधिष्ठानरूप वस्तु का किस शब्द विशेष से उसका निर्देश करते हैं? अर्थात् जिस ब्रह्म में ज्ञातृत्वभाव का वेदान्त प्रतिपादन करता है, उस धर्मो का उपस्थापक कौन शब्द है? (जिस तरह पुरोवर्ती द्रव्य में जव रजतीभाव का प्रतिपादन किया जाता है तो वहां-"**इयं शुक्तिः**" इस शंका से उपस्थापित शुक्तिका में रजताभाव का विधान होता है इसी तरह अध्यस्त ज्ञातृत्वादिक धर्मों का जव विधान करते हैं तब अधिष्ठान का उपस्थापक पद कौन है, क्योंकि अनुपस्थापित अधिकरण में किसी का विधान अथवा निराकरण नहीं हो सकता है, क्योंकि उपस्थित अधिकरण में ही विधिनिषेध होता है) विशिष्टाद्वैती के प्रश्न का अद्वैतियों ने उत्तर दिया कि "**ननुज्ञानशब्देनेत्यादि**" अर्थात् ज्ञान शब्द से ही अधिकरण निर्देश करते हैं, अर्थात् ज्ञानशब्द से ब्रह्मरूप अधिकरण का निर्देश करके निर्दिष्ट ब्रह्मरूप अधिकरण अविद्याध्यस्त ज्ञातृत्वादि विशेषधर्मों का निरास किया

जडचेतनशरीरकं ब्रह्मेतिव्यवस्थापितम्। यथा जडशरीरस्याधिष्ठाता तदाश्रयोजीवः शरीरवाचकपदबोध्यो भवति। एवं सशरीरोजीवः परमात्मनः शरीररूप एवेति 'य आत्मनितिष्ठ'न्नित्यादिश्रुत्यासाधितः। ततश्च 'तत्त्वमसीतिश्रुतिघटकतदितिपदंसकलकल्याणगुणकं सगुणं ब्रह्मोपस्था-

---

त्वापहतपाप्मत्वसत्यसङ्कल्पत्वादिधर्माणां जीवे सङ्क्रमः स्यादिति दिक्।

अपि च 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं स आत्मा तत्वमसीत्यत्रेदं शब्देन चराचरजगतो निर्देशं कृत्वा संपूर्णमिदं जगत् परमात्मशरीरं ब्रह्मात्मकं चेत्युक्तम्। परन्त्विदमत्र विचार्यते यदिदं सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वं तत् प्रकारद्वयेन संभवति। उभयोरत्यन्ताभेदात् शरीरात्मभावेन। तदत्र कीदृशप्रकारमाश्रित्याचार्येणोक्तम्। किं स्वरूपतः शरीरशरीरिभावेन वा? तत्र नाद्यः तथासति जीवब्रह्मणोरेकत्वेन जीवेऽविद्यमानसत्यसङ्कल्पत्वादिगुगस्य 'तदैक्षत' इत्यादि उपक्रमवाक्यप्राप्तस्य बाधप्रसङ्गात्। यदा इमे गुणा जीवे न सन्ति तदा जीवाभिन्ने परमेश्वरे कथंकारस्यात्। तस्मात् 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' 'य आत्मनि तिष्ठन्' इत्याद्यनेकश्रुतिप्रतिपादितो यः शरीरात्मभावस्तेनैवरूपेण ब्रह्मात्मकत्वमिदं

जाता हैं। ऐसा अद्वैतियों ने कहा इसके उत्तर में सिद्धान्ती कहते हैं-"**तदपि न मनोरमम्**" इति। यह भी आपका कहना ठीक नहीं है। क्योंकि ज्ञानपद से भी तो सविशेष वस्तु का ही कथन होता है। तथाहि अवबोधनार्थक ज्ञा धातु से ज्ञान पद की सिद्धि होती है। इसमें धात्वर्थ है ज्ञान और प्रत्ययार्थ होता है लिंग संख्यादिक। यह धातु सकर्मत तथा सकर्तृत है अर्थात् "**घटं जानाति**" यहां ज्ञान का विषय घटादिक जड पदार्थ कर्म है तथा जानने वाला पुरुष कर्ता होता है। ज्ञान से सर्वपदार्थ जाने जाते हैं और ज्ञान किसी अन्य में नहीं जाना जाता है। दूसरे को प्रकाशित कराता हुआ स्वरूप को भी समझाता है अतः यह स्वप्रकाश कहलाता है। यही इस ज्ञान क्रिया में क्रियान्तरापेक्षया विशेषता है, जो अन्य सब क्रियाजड रूप होती हैं और ज्ञान क्रिया स्वप्रकाश है। इसी बात को कहते हैं-"**तच्चज्ञानमिति**" वह ज्ञान अन्य क्रिया के अपेक्षया विलक्षण स्वभाववाली है तथा सकर्तृक सकर्मक है इसलिये ज्ञान में कर्तृकर्म का जो वैशिष्ट्यतद्रूप विशेष धर्मवत् अर्थात् ज्ञानविशेष धर्मवत् का ही प्रतिपादन करता है। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान शब्द से निर्दिश्यमान ब्रह्म विशेषधर्मवाला है। ज्ञान से सभी जड पदार्थ प्रतिभासित होते हैं और ज्ञान तो स्वयंमेव प्रति भासित होता है। क्योंकि ज्ञान अनन्य साधन स्वभाववाला है इस लिये ज्ञान स्वतः सिद्ध होता है यदि ज्ञान को परतः प्रकाश्य मानें तब अनवस्था होगी। तथाहि घटादि जडपदार्थ को जानने के लिये ज्ञान का अनुशरण करना पडता है और ज्ञान को जानने के लिये ज्ञानान्तर को लाना पडेगा एवं आगत द्वितीय ज्ञान को जानने के लिये तृतीयज्ञान एवं चतुर्थ ज्ञान तो इस तरह ज्ञानपरम्परा का अनुशरण करने से अनवस्था होती है परन्तु ज्ञान परम्परा का

पयति । त्वं पदञ्च सशरीरजीवशरीरकं जीवान्तर्यामिणं ब्रह्म बोधयति । ततश्च समानविभक्तिकताद्दशपदाभ्यां ब्रह्मण उपस्थितत्वात् तयोरभेदः सुकर एव भवति, तत्र तत्पदेन सकलकल्याणगुणको जगत् कारणभूतः परमेश्वरश्रीराम उपस्थापितो भवति । त्वं पदेन च जीवान्तर्यामितया

शब्दप्रतिपादितं सर्वजगत इति ध्येयम् ।

तत्त्वमसीति श्रुतिरपि ब्रह्मकार्यस्य सर्वस्य जडचेतनस्य कार्यकारणद्वारेणैवाभेदं दर्शयति । ननु जीवब्रह्मणोः स्वरूपेणाभेदं दर्शयतीति प्रतिपादयितुं तत्वमसीतिश्रुत्यर्थ प्रतिपादनायोपक्रमते-ननु यदि जीवब्रह्मणोरित्यादि **सर्वोपि घटपटादिपदार्थः प्रत्यक्षादिप्रमाणेनब्रह्मभिन्नरूपेणैवप्रतीयते, नतु ब्रह्मरूपेण तत्कथं सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वात् तत्त्वयोः कार्यकारणद्वारेणाभेद इति शङ्कितुरभिप्रायः । उत्तराशयस्तु इत्थम् । जडचेतनात्मकस्य पदार्थमात्रस्य ब्रह्मशरीरत्वेन जडचेतनशरीरकं तत्प्रकारकं ब्रह्मैव सर्वशब्दवाच्यं भवति । ततश्च तत्त्वमिति सामानाधिकरण्येन जीवशरीरकतया जीवप्रकारकं ब्रह्मावाच्यं भवति । ततश्च त्वमितिपदेन देहस्याधिष्ठातृरूपेण पूर्वं योजीवः ज्ञातः सः एव**

अनुधावन अनुभव सिद्ध भी नहीं है, क्योंकि "**अयं घटः**" "**घटविषयकज्ञानवानहम्**" इस प्रकार ज्ञानद्वय ही सर्वत्र उपलब्ध होता है। इस लिये ज्ञान स्वतः प्रकाश तथा सविशेष विषयक है-"**अर्थप्रकाशकं ज्ञानं विभुद्रव्यगुणात्मकम्** (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ३) "**विद्वद्भिः सम्मतंचात्रज्ञानमर्थप्रकाशकम् । धर्मधर्मिस्वरूपञ्चज्ञानंहिद्विविधंमतम्" । ज्ञानंधर्मिस्वरूपंहिजीवस्तथाऽखिलेश्वरः । ज्ञानंधर्मस्वरूप तु नित्यं प्रज्ञाऽभिधं विभु**" (अनन्ततत्त्वपीयूष ४०-४१) इत्यादि दिव्य प्रबन्धों में प्रकृतविषय में आचार्यो का गहन विचार व्यक्त हुआ है अतः विशेष जिज्ञासुजन वहीं देखें निवन्धकाय वृद्धि भय से यहां संक्षेप किया गया है।

इस निर्विशेष ब्रह्मवाद में उपर्युक्त एक दोष को बतला करके भिन्न द्वितीय दोष को भी बतलाने के लिये सिद्धान्ती कहते हैं-**यदि ज्ञानरूपत्वात् ब्रह्मस्वरूपंसर्वदेत्यादि** । यदि स्वप्रकाशज्ञानरूप होने से ब्रह्म का स्वरूप सर्वदा प्रकाशित होता ही रहता है ऐसा कहते हैं तब तो सर्वथा प्रकाश स्वरूप ब्रह्म में उपाधिकृत जो ज्ञातृत्वादिक अन्य धर्म हैं उन धर्मो का अध्यास नहीं हो सकता है क्योंकि जो सामान्यधर्म से ज्ञातहो तथा विशेष धर्म से अज्ञात हो वहीं अधिष्ठान कहलाता है ऐसा नियम है जिस तरह-"**इदं त्वम्**" अथवा पुरोवर्ती द्रव्यत्वरूप से ज्ञात तथा शुक्तित्वरूपविशेषधर्मरूप से अज्ञात शुक्तिका में ही रजत का अधिष्ठानत्व देखने में आता है। (अतएव भ्रमकाल में सामान्यांश शुक्तिकत्वादिक का भान होता है और विशेषांश जो शुक्तित्व है उसका भान नहीं होता है।) और जब विशेषधर्म सहित अर्थात् शुक्तित्व सहित शुक्ति का-"**इयं शुक्तिः**"

परमेश्वरश्रीराम एव उपस्थित इति रूपभेदेन द्वाभ्यामपि पदाभ्यां परमेश्वर एव उपस्थित इति सारः । अपि च सर्वोऽपि जडचेतनपदार्थब्रह्मात्मकस्तथा सर्वेऽपि शब्दाघटपटादिबोधकाः परमात्मानमेव बोधयन्तीतिकथनमपि नो युक्तम् । लोके तथाऽदृष्टत्वात् दृश्यते च लोके लौकिकचक्षुरादिप्रमाणेन घटस्यरूप स्पर्शादिमत्तया जडत्वम् । न तु चेतनारूपत्वम् । न वा

परमात्मनः शरीररूपतया परमात्मनः प्रकाररूपः पृथक् स्थितिप्रवृत्त्यनर्हः, इति, ततः 'त्वमित्याकारकः शब्दो जीवान्तर्यामिणं बोधयति । तत्पदं तु जगदुत्पत्यादि कारणलक्षणं सकलकल्याणगुणमहोदधिं तर्वथाविकारादिदोषरहितं परमात्मानं बोधयति ततश्च तत्त्वं पदाभ्यां परमात्मैव प्रतिपादितो भवतीति तयोः सामानाधिकरण्य-बलेनासीतिपदमभेदं बोधयतीति सर्वं निष्पद्यते । तदेवं प्रवृत्तिनिमित्तभेदेनैकस्मिन् परमात्मन्येव तत्त्वं पदयोर्वृत्तिः प्रतिपादिता । तथा जीवेन सह तादात्म्येऽपिब्रह्मणः सर्वदोषरहितत्वं सर्वविकाराराहित्यं सर्वकल्याणगुणाकरत्वं जगदभिन्ननिमितत्तोपादानत्त्वं सर्वप्रमाणावाधितत्वञ्च भवतीति संक्षेपः ।

इत्याकारक ज्ञान होता है, तो शुक्त्यवच्छिन्न चेतन जगत् अज्ञान का वाध होजाने से अध्यास की निवृत्ति होती है। अर्थात् अध्यास तथा अध्यस्यमान रजतादिक सभी पदार्थ का वाध होजाता है। निष्कर्ष यह है कि शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्यनिष्ठ अज्ञान से रजतादिक प्रातीतिक पदार्थों की उत्पत्ति होती है। उसमें रजत प्रतिपरिणामी उपादान अज्ञान होता है तथा विवर्तोपादन चेतन है और अधिष्ठान का अवच्छेदक शुक्ति का अवच्छेदकता संबंध से कारण होता है। अतएव तादृशजन्य कहते हैं। वस्तुतः रजत शुक्तिजन्य है। ऐसा कहा है- "**शुक्त्यवस्थात्ममोहोत्थारूप्यधी शुक्तिसंभवा । कथ्यते मृदवस्थात्मजातोमृज्जो यथा घटः**" इति । इसलिये यहां प्रकृत में अज्ञान द्वारा अध्यस्त ज्ञातृत्वादि प्रातीतिक पदार्थों का बाध करने के लिये ब्रह्म में एक ऐसा विशेष धर्म का स्वीकार करना आवश्यक है जिससे कि तादृश व्यावर्तक धर्मसहित ब्रह्मज्ञान अध्यास तथा अध्यस्यमान ज्ञातृत्वादिक की निवृत्ति होगी। ब्रह्म में तादृश व्यावर्तक धर्म अर्थात् ब्रह्ममात्र वृत्ति असाधारणधर्म विशेष किसी शब्द अर्थात् किसी आगम वाक्य से ही सिद्ध होगा। तो जिस तरह एक आगम द्वारा धर्मविशेष को आपने मान लिया, उसी तरह आगमान्तर से प्रतिपादित सत्य शङ्कल्प सर्वज्ञत्वादिक विशेष तत्तत्धर्म का भी ब्रह्म में स्वीकार अवस्य करना चाहिये। इसलिए आगम से निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं होती है। किन्तु प्रमाण के बल से सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है इस प्रकार से जगदाचार्यजी ने निर्विशेष ब्रह्मवाद का निराकरण किया है इति दिक्।

शब्दप्रमाण से निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं हो सकती है ऐसा जब विशिष्टाद्वैतवादियों ने स्थिर कर

घटादिवाचकः शब्दो घटरूपमर्थं परित्यज्य चक्षुरादिप्रमाणागम्यपरमात्मनो बोधको भवति अपितु स्वशक्तिबलेन कंबुग्रीवादिलक्षमं स्वार्थमेव बोधयतीति । सत्यम्-अश्रुतशब्दप्रमाणानामीदृश्येवगतिः । श्रुतवेदान्तास्तु प्रमाणशेखरशब्दप्रमाणेन सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वम्- ब्रह्मकार्यत्वात् ।

सर्वान्तर्यामिणमेव बोधयति, विचित्रशक्तित्वात् । यावत् पर्यन्तं लोकोनाश्रयति न श्रृणोति च वेदान्तप्रमाणंतावदेवलौकिकप्रमाणेन घटादिपदवाच्यं तदीयार्थमेवावगच्छति । श्रुतवेदान्तास्तु सर्वपदेन सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं तथा तत्तत्पदस्य तत्तर्थमपि जानन्त्येवातोनात्र कोपि दोष इति दिक् ।

ननु यदि सर्वोऽपिशब्दः परमात्मानं बोधयतीति मन्यते तदा घटादिशब्दः प्रतिनियतघटाद्यर्थमेव बोधयतीति या लोकव्युत्पत्तिः सा कथं न बाधिता स्यात् । न हि लोकोघटादिवाच्यं ब्रह्माभ्युपेतीति शङ्कां समाधातुमुपक्रमते सर्वोपि गवादिवाचक इत्यादि । नायं दोषः, नामरूपेव्याकरवाणीत्यस्याः श्रुतेरर्थकरणसमये एव समाहितत्वात् । सर्वोऽपि शब्दस्तत्तज्जडधारकजीवविशिष्टब्रह्मणोवाचकमेव, नतु केवलब्रह्मणो वाचकम् । यथा

दिया तब अद्वैतवादी "**मृताखूजीवन**" न्याय से पुनः प्रश्न करते हैं-"**यद्यपी शब्दादि प्रमाणेन निर्विशेषब्रह्मणः**" इत्यादि । यद्यपि शब्दप्रमाण द्वारा निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं होती है क्योंकि शब्द प्रमाण संसर्गादि विशेष सहित वस्तुका ही ग्राहक होता है तथापि प्रत्यक्ष प्रमाण से तो निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होने की संभावना है । प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है एक तो निर्विकल्पक तथा दूसरा सवविकल्पक । उसमें निर्विकल्पक प्रत्यक्ष तो विशेष रहित वस्तुमात्र का ग्रहण करता है और सविकल्पक प्रत्यक्ष तो जातिगुणादिरूप विशेषण सहित वस्तु का ग्रहण करता है । इसलिये निर्विकल्प में घटत्व विशिष्ट घट का ज्ञान नहीं होता है किन्तु विशेषण विशेष्यभावरहित वस्तुमात्र गृहीत होता है । और द्वितीय में विशेषण विशेष्य भाव का बोध होता है। तो प्रकृत में निर्विकल्पक प्रत्यक्ष से सर्वविशेषणरहित ब्रह्म मात्र का बोध होता है ऐसा अद्वैतवादी का कथन है ।

इसका खण्डन करने के लिये कहते हैं-"**तदपि न मनोरमम्**" उपर्युक्त आपका कथन ठीक नहीं है क्योंकि-"निर्विकल्पक प्रत्यक्ष सर्व विशेष रहित पदार्थ का ग्रहण करता है सो ठीक नहीं है। क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्ष का स्वरूप होता है-"**अयमेतादृशः**" यह पदार्थ ऐसा है, इस प्रकार ज्ञान का स्वरूप है उसमें इदं शब्द से पदार्थ स्वरूप का, तथा प्रत्ययान्त एतत् शब्द से पदार्थगत विशेष का भान होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि निर्विकल्पक भी सविशेष वस्तु का ही ग्रहण करता है। यदि प्रथम ज्ञान में जाति प्रभृति वेशेषका बोध न हो तब तो द्वितीय ज्ञान में भी जाति प्रभृति विशेष का बोध अशक्य हो जायगा । इसलिये प्रथम

तदन्तर्यामितया पदार्थमात्रस्य ब्रह्मात्मकत्वं तथा सर्वशब्दानां तत्तत्प्रकार-संस्थितब्रह्मसर्वेश्वरश्रीरामवाचकत्वमिच्छन्त्येव । सर्वोपि गवादिवाचकः शब्दराशिर्गवाद्यर्थं तदधिष्ठातारं जीवं तदन्तर्यामिणं परमात्मानमपि बोधयत्येव । तत्र यद्यपि लोकोऽश्रुतवेदान्तो न गवादिवाच्यं परमात्मानं जानाति

गोशब्दः शरीरविशेषं बोधयन् तादृशशरीराधारकं जीवं ततो जीवस्याभ्यन्तरवर्तिनं तन्नियामकं बोधयतीत्युच्यते । अतो न लोकव्युत्पत्तेर्विरोधः । परमेश्वरस्य प्रत्यक्षादिप्रमाणा गम्यत्वेन गवादिपदेनाश्रुतवेदान्तो न जानाति, सतु केवलं जडशरीरं तदधिष्ठातारं वा विजानाति श्रुतवेदान्तस्तु यथाशास्त्रमवगच्छतीतिभावः । वैदिकशब्दवल् लौकिकाः शब्दा देवादिरूपा अपि तादृशशरीरं तदधिष्ठातारं जीवं तन्नियामकपरमात्मपर्यन्तं बोधयन्तीत्यत्र 'सर्वेषां स तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्' 'धातायथापूर्वमकल्पयदित्यादिश्रुतिस्मृतयः प्रमाणम् अनेन क्रमेणप्रपञ्चब्रह्मणोरभेदं प्रदर्श्य तादृशैकब्रह्मविज्ञानेन तज्जन्यसकलप्रपञ्चस्य ज्ञानमनायासेन संपादितं भवति । यथा सकलमार्दवपदार्थकारणरूपायाः विज्ञानेन तत्कार्यजातं विज्ञातमेवभवतीति सद्विद्योपसंहारः ।

निर्विकल्पक ज्ञान भी जात्यादि विशेष का ग्राहक होता ही है । नहीं कहो कि यदि दोनों प्रत्यक्ष विशेष सहित पदार्थ का ही ग्रहण करते हैं, तब इन दोनों में भेद किस तरह सिद्ध होगा ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये आचार्यजी कहते हैं कि-**अल्पाधिकविषयेत्यादि,** अल्प विषयत्व तथा अधिक विषयत्व प्रयुक्त दोनों में भेद सिद्ध हो सकता है, अर्थात् अल्पविशेषण विशिष्ट पदार्थ का ग्रहण करता है । निर्विकल्प प्रत्यक्ष और अधिकाधिक विशेषण को विषय करता है सविकल्प प्रत्यक्ष इस प्रकार दोनों में भेद की सिद्धि होती है। जिस तरह लोक में अल्पवित्तवाले पुरुष को निर्धन कहते हैं अर्थात् अल्प धनवान् कहते हैं तथा अधिकाधिक धनवान् पुरुषको धनवान् कहते हैं। इसी तरह प्रकृत में अल्पविषयक प्रथम ज्ञान को निर्विकल्प कहते हैं। तथा अधिकाधिक विषयवान् ज्ञान को सविकल्पक कहते हैं किन्तु निर्विशेष वस्तु का ग्राहक ज्ञान निर्विकल्पक है और सविशेष वस्तु का ग्राहकज्ञान सविकल्पक है, ऐसा विभाग करना उचित नहीं है। अथवा निर्विकल्पक ज्ञान का विशेषणीभूत जो जात्यादिक है उसमें अनुवृत्तत्व का भान नहीं होता है और सविकल्पकज्ञान विषयजात्यादिक अनुवृत्तत्व का भी भान होता है। अर्थात् प्रथम पिण्डग्रहण समय में विशेष्यरूप से व्यक्ति का तथा विशेषण रूप से जाति का ही बोध होता है और द्वितीयादि पिण्डग्रहण समय में जाति में अनुवृत्तत्व का भी भान होता है। इसप्रकार प्रत्यक्ष मात्र से सविशेष का ही ग्रहण होता है । यह कहकर के जगदाचार्यजी ने यह सिद्ध किया कि निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं होती हैं।

अद्वैतीसंमत-"**वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्**" इत्यादि श्रुति व्याख्या का खण्डन

प्रत्यक्षाद्यपरिच्छेद्यत्वात्तस्य, तथापि श्रुतवेदान्तास्तु तथा जनात्येव । अतएव लोकव्युत्पत्तेर्बाधो न भवति । यथा वैदिकशब्दाः परमात्मसर्वेश्वर-श्रीरामवाचकास्तथा लौकिकाः शब्दाः परमात्मपर्यन्तस्य बोधकाः 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' (पु.सू.) 'सर्वेषां तु स

सद्विद्याप्रकरणं सविशेषब्रह्मैव साधयतीति गतप्रकरणेन संसाध्य ततः परं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यादिशोधकवाक्यान्यपि तथाविधमेव प्रतिपादयन्ति । यतः कारणवाक्यादनन्तरं शोधकस्य प्रवृत्तिदर्शनात् । यत् कारणं तद्विकारिभवति यथा मृदादिकं तथा च ब्रह्मणोपि कारणत्वात् । तदपि विकारयुक्तं स्यादित्याशंकायाः समाधानाय शोधकस्य प्रवृत्तेः । शोधकवाक्यं सर्वविलक्षणत्वात् न विकारिब्रह्मापितु निर्विकारमिति दर्शयितुमुपक्रमत सद्विद्याप्रकरणस्येत्यादि ।

न च सत्यं ज्ञानमनन्तमित्यादि । **ननु कथं शोधकवाक्यं ब्रह्मणः सविशेषत्वं प्रमाणं प्रत्युत सत्यादिपदं ब्रह्मणः सत्यज्ञानादिपदेन ज्ञानमात्रस्वरूपत्वप्रतिपादनेन निर्विशेषताया**

करने के लिये देशिक प्रवर कहते हैं "**स्वयंप्रकाशात्मके ब्रह्मणि**" इत्यादि । स्वप्रकाशस्वरूप ब्रह्म में अर्थात् इतर प्रकाशानपेक्ष प्रकाशस्वरूप ब्रह्म में (**तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासाजगदिदं विभाति" "न सदृशे तिष्ठतिरूपमस्य न चक्षुषापश्यतिकश्चनैनम्"** इत्यादि श्रुतिसिद्धप्रकाशलक्षणब्रह्म में) अविद्यारूप उपाधि से अध्यारोपित जो ज्ञातृत्त्वादिक धर्मसमुदाय है, उन उन धर्मो का अभाव है । वह सब शब्द द्वारा प्रतिपादित होताहै । इस प्रकार से अद्वैती लोग कहते हैं । उसमें सैद्धान्तिक उन वादियों से पूछते हैं कि उपाधिकृत धर्माभाव का सर्वशब्द द्वारा प्रतिपादन होता है, वह कौन ऐसा शब्द है, उनको आप बतवाइये । इस प्रकार पूछे जाने पर अद्वैतियों ने कहा–**वाचारंभणं विकारः** इति । विकाररूप जो कार्य तथा उनका नाम है, ये सब वाचारंभणमात्र है अर्थात् असत्य है । सत्य तो केवल कारण लक्षण मृत्तिका ही है । यह जो श्रुति है वह कारण रूप से उपलक्षित जो सदात्मक कारण है तावन्मात्र में सत्यता को कहती हैं । उससे अन्य जो विकार नामधेय है उसको वाचारंभणमात्र होने से मिथ्यात्व का कतन करती है । तो यथोक्तश्रुति लक्षण शब्द से कारण में सत्यत्व तथा कार्य में मिथ्यात्व का प्रतिपादन होता है । अब इसके बाद सिद्धान्ती कहते हैं–आपका कथन युक्त नहीं है, क्योंकि श्वेतकेतु–"एक को जानने से सब पदार्थ ज्ञात हो जाता है" इस प्रकार से गुरु उद्दालक का वचन सुनकर के एकको जानने से तदन्य का ज्ञान किस तरह से हो सकता है (क्योंकि घटको जानने से घट भिन्न जो पटादिक वह तो ज्ञात नहीं होता है) ऐसा शिष्य के अभिप्राय को जान करके पुनः आचार्य शिष्य के प्रतिकहते हैं भाई श्वेतकेतु ! इस समस्त जडचेतन साधारण जगत् का आदि कारण सत् ब्रह्म है । वह ब्रह्म कारणावस्था में एकरूप रहता है, और वही कारणावस्थ ब्रह्म कार्यावस्था में अनेकरूप से व्यवस्थित

नामानिकर्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' (मनु.) 'नामरूपञ्चभूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम् । वेदशब्दे-भ्यएवादौ देवादीनां चकार सः ' (पराशरः) इत्यादिश्रुतिस्मृ-

एव सिद्धेरिति चेन्न सत्यपदेन सत्यत्वधर्मविशिष्टस्य ज्ञानपदेन च ज्ञानाधिकरणत्व-स्यैवोपस्थापनात् । न च सत्यत्वादिको नभावभूतोधर्मः किन्तु सत्यपदम्, असत्या-द्व्यावर्तयति, ज्ञानपदं जडाद्व्यावर्तयति, यथा गोत्वादिकं गवेतराद्व्यावर्तयति। तथा च सत्यादिपदानांव्यावृत्तिमात्रप्रयोजकत्वेन सत्यत्वादिकं न धर्मोयेन सविशेषता ब्रह्मणः स्यादिति वाच्यम् । तथापिभेदात्मकधर्मस्य तत्र सद्भावात् । यद्यपि 'निष्कलंनिष्क्रियंनिर्गुणम्' इत्यादिना ब्रह्मणि सर्वधर्माभावं दर्शितमिवाभाति तथापि 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्' इत्याद्यनेकश्रुत्या ऽनन्तधर्मवत्वस्यापि प्रतिपादितत्वात् । तत्रोभयोः श्रुत्योः प्रामाण्यनिर्वाहाय निषेधश्रुतेहेयगुणनिषेधेतात्पर्यम् । विधायकश्रुतेरनन्तकल्याणगुणवत्वे तात्पर्यस्य स्वीकारात् तथासति सामान्यविशेषन्यायेनोत्सर्गापवादन्यायेन वोभयोरपिप्रामाण्यस्यनिर्वाहात् । अन्यथा

रहता है । इसमें कारणावस्थ तथा कार्यावस्थ दोनों का जो स्वरूप है वह सत्य है । इस लिए एक अर्थात् कारणावस्थ सत् ब्रह्म का विज्ञान होने से परस्पर विभिन्न कार्यरूप से अवस्थित सकल जगत् का विज्ञान होजाता है । इसी वात को समझाने के लिये-"**यथा सौम्य एकेनमृत्पिण्डेन**" इत्यादि मृदादि दृष्टान्त का कथन किया है । यहां कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जोकि घटादि कार्य में सत्व का प्रतिषेध करनेवाला हो अर्थात् घटादिकार्योंमें मिथ्यात्व का प्रतिपादन करनेवाला हो-"**वाचारंभणं विकारः**" यहां वाचा अर्थात् वाणी से जो व्यवहार आरब्ध हो किया जाय अर्थात् मृत्तिका का पिण्डरूपसे जो अवस्थान है वही उसका नाम किया जाता है, उस समय में मृत्तिका का जो पिण्ड इत्यादि नाम है वह भिन्न है, और पिण्ड जो व्यवहार है वह भी भिन्न है। और घटादिकार्यरूप से जो मृत्तिका का अवस्थान रहता है। उस समय में जो नाम है अर्थात् घटादिक नाम है वह भिन्न है और व्यवहार भी भिन्न है अर्थात् मृत्तिका का कार्याकार से अवस्थान समय में घटादिक जो नाम है और जलाहरणादिरूप व्यवहार कार्य है वह परस्पर भिन्न रहता है । तथापि कारणावस्थ मृत्तिका का तथा कार्यावस्थमृत्तिका का जो रूप है वह तो सब ही सत्य है मिथ्या नहीं । इसी बात को-"**मृत्तिकेत्येव सत्यम्**" इस प्रकरण से कहा गया है । इस प्रकार से अन्य अर्थात् कार्यपिक्ष या नाम तथा व्यवहार से अन्य रूप से परिज्ञायमान कारण के परिज्ञान होने से अन्य अर्थात् नाम तथा व्यवहारापेक्षया अन्य रूप से परिज्ञायमान जोकार्य घट शरावादिक है वह जाना जाता है क्योंकि दोनों में मृत् पिण्ड तथा घटशरावादिक में मृत्तिकात्वरूप जो सामान्यधर्म है वह तो विद्यमान है इसलिये-"**सौवर्णोघटोमार्दवोघटः**" ऐसा व्यवहार होता है । यदि कार्य में कारणगत सामान्यधर्म नहीं हो और कारणापेक्षया गवाश्व के समानकार्य अत्यन्त भिन्न हो--तब तो

त्यादिप्रपञ्चादवगम्यते । अतो यथोक्तप्रकारेण जगत्परमात्मनोरभेदः प्रतिपादितः । तस्मिन्नेकंस्मिन् परमात्मनि विज्ञाते तत्कार्यं सर्वं विज्ञातमेवभवति । ब्रह्मरूपतयैव सर्वस्य सत्यत्वं नान्यथा । यथा मृद्विकाराणां

एकस्य प्रामाण्यानुरोधेन निर्विशेषत्वस्वीकारे सविशेषता बोधकस्यात्यन्ताप्रामाण्यमेवापतेत् । न च सविशेषता प्रतिपादकवचनं लोकप्रसिद्धभेदवत्वादिसविशेषत्वं व्यावहारिक-सत्तामादायानुवदति । तदितरा तु पारमार्थिकसत्तामादाय ब्रह्मणि सर्वं निषेधतीति न किञ्चिदपि अनुपपद्यते इति वाच्यम् । विपरीतस्यापि वक्तुं शक्यत्वात् । पारमार्थिकं सविशेषत्वं व्यावहारिकं निर्विशेषत्वम् । किञ्च द्विधासत्तापरिकल्पनस्य प्रमाणासिद्धत्वात् । अपि च यस्य मते शास्त्रादिप्रमाणमपि मिथ्या । प्रमाताप्रमेयोपिमिथ्यैव स कथमप्रमाणेन तेन व्यावहारिकपारमार्थिकसत्ताभेदं प्रमापयेत् । तस्मात् सर्वसामञ्जस्यायोत्सर्गापवादन्यायेन सामान्यविशेषन्यायेन च श्रुत्यर्थं स्वीकृत्य सर्वहेयराहित्यमनन्तकल्याणगुणाकरत्वंभगवति स्वीकृत्य तस्मिन् परमेश्वरे सविशेषत्वमेवास्थेयमिति संक्षेपः ।

उपर्युक्त व्यवहार नहीं होना चाहिये, परन्तु होता है। अन्यत्वेन व्यवहार दशा में ज्ञायमान भी कारण के विज्ञान होने से तादृश सकल तदीय कार्य विज्ञात होते हैं। और-"**एकस्मिन् विज्ञाते सर्वंविदितं भवति**" इत्यादि प्रतिज्ञा का समर्थन होता है यह समर्थन तभी हो सकता है जबकि कार्य तथा कारण को सत्य तथा एक माना जाय, परन्तु कारणमात्र को सत्य मानें और कार्य को मिथ्या मानें तब नहीं होगा इत्यादिरूप से कहा गया है। कार्य में मिथ्यात्व का समर्थक अथवा सत्यत्व का प्रतिषेधक कोई भी शब्द नहीं है ऐसा समझिये।

किं च और भी देखिये-"**वाचारंभणं विकारोनामधेयम्**" इत्यादि श्रुति का तात्पर्य कार्य जो जगत् उसके मिथ्यात्व में हो तब तो-'**येनाश्रुतं श्रुतं भवति**' इस प्रकरण में भी जगत्गत मिथ्यात्व की ही प्रतिज्ञा होनी चाहिये परन्तु तब तो-"**यथा सोम्यैकेनमृत्पिण्डेन** यहाँ जो मृत्पिण्डादिक दृष्टान्त दिया है, वह तो युक्त नहीं होगा क्योंकि मृत् घटादिक में मिथ्यात्व साध्य तो किसी भी प्रमाणों से सिद्ध नहीं होने से नहीं है और दृष्टान्त तो वही होता है जिसमें साध्य पहले से सिद्ध रहता है, किन्तु प्रकृत में तो रज्जुसर्प का दृष्टान्त देना ही उचित होता। क्योंकि शुक्ति रजत में मिथ्यात्व साध्य सर्व सिद्ध है। नहीं कहो कि-जिस तरह दृश्यत्वादिक हेतु के द्वारा शुक्तिरजत में मिथ्यात्व सिद्ध किया गया है। उसी तरह घटपटादिक कार्य जगत् में भी मिथ्यात्व साधनीय है। क्योंकि घटादिक भी पक्ष समान ही है (प्रतिज्ञा का जो विषय हो उसको पक्ष कहते हैं और जो प्रतिज्ञोपनीत नहीं है किन्तु हेतु अधिकरण हो उसमें भी कदाचित् कालान्तर में साध्य का साधन संभवित रहता है।) अतः घटादिक में भी तो साध्यमिथ्यात्व को सिद्ध करना ही है। ऐसा जो अद्वैतियों ने कहा सो ठीक नहीं है क्योंकि यदि घटादिक को पक्षसब मानें तब तो श्रुति में जो घट का दृष्टान्तरूप से कथन किया है वह युक्त

मृत्तिकात्मनैव सत्यत्वं नान्यथेति ।

॥ शोधकवाक्यनिरूपणम् ॥

सद्विद्याप्रकरणस्य 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीत्यारभ्य 'तत्सत्यं स आत्मा' एतदन्तप्रकरणेन जगत्कारणीभूतसदात्मकब्रह्मणः सर्वेश्वरश्रीरामस्य

अद्वैतवादिभिर्निर्विशेषचैतन्ययोरभेदसिद्धये तत्त्वमसीत्यत्र तत्पदवाच्यसर्वज्ञत्त्वादिधर्मविशिष्टस्य बोधोभवति, त्वं पदेन चाल्पज्ञत्त्वादिधर्मविशिष्टचैतन्यस्येति विरुद्धधर्मवतोरभेदासंभवादुभयपदे लक्षणा स्वीक्रियते विरुद्धांशस्य च परित्यागः क्रियते ततश्चोभयपदबोध्यचैतन्ययोः सामानाधिकरण्यं निर्वहतीत्यत्र वक्ष्यमाणदोष दर्शयितुमुपक्रमते किं च तत्त्वमसीत्यत्रेत्यादि । अयमाशयः-यदि तत्त्वमसीत्यत्र तत्त्वंपदयोः स्वार्थपरित्यागेन स्वरूपमात्रोपस्थापकत्वंमन्यते तदा मुख्यार्थपरित्यागरूपो दोषः समापतति न च यथा 'सोयंदेवदत्तः' इत्यत्र तत्पदेन देशान्तरकालान्तरवर्तीपुरुषो ज्ञायते । इदं पदेन च वर्तमानकालसंनिहितदेशवर्ती पुरुषः प्रतीयते । इतिद्वयोः सामानाधिकरण्येनैक्यं ज्ञायते परन्तु विरुद्धधर्मविशिष्टयोरैक्यासंभवादुभयत्रमुख्यार्थं परित्यज्य लक्षणया सामानाधिकरण्यं

नहीं होगा, क्योंकि जिसमें साध्य तथा हेतु उभयमत से सिद्ध हो उसीका दृष्टान्तरूप से कथन किया जाता है, जैसे "**पर्वतोवह्निमान् धूमात् महानसवत्**" यहां महानस में धूमहेतु तथा वह्नि साध्य प्रत्यक्षादिप्रमाणों से सर्व संमत है, तब ही व्याप्ति के सिद्ध्यर्थ महानस को दृष्टान्त बनाया जाता है। प्रकृत में घट में मिथ्यात्व साध्य तो किसी भी प्रमाण से श्वेतकेतु को सिद्ध नहीं है और साध्य तथा हेत्वधिकरणरूप से उभयमत सिद्ध ही दृष्टान्त होता है, इसलिये अद्वैतमत ठीक नहीं है।

"**सदेवसोम्येदमग्रे**" इत्यादि श्रुतिघटक तत्तत् पद के द्वारा सकलभेद विशेष का निराकरण होने से निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है, ऐसा जो अद्वैतियों ने व्यवस्थित किया है, उसका खण्डन करके स्वाभिमत श्रुत्यर्थ को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं **सदेवसोम्येदमग्रे आसीत्यादि** । (हे सोम्यश्वेतकेतु ! यह परिदृश्यमानजगत् जो कि मानरूप से व्याकृत होकर के स्थूलावस्थ है, वह उत्पत्ति के पूर्व में सत् रूप से था अर्थात् अविभक्तनामरूपावस्थ सत् रूप से विद्यमान था) इस श्रुतिघटक-"**एकम्**" "**एव**" तथा "**अद्वितीयम्**" इन तीन पदों से सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेदत्रय का निराकरणहोने से ब्रह्मव्यतिरिक्त सकलपदार्थ का निराकरण होकर केवल सत् स्वरूप ब्रह्ममात्र की सिद्धि होती है। जिस तरह वृक्ष में पत्रपुष्पफलादि से जो भेद है वह स्वगत भेद है। तथा वृक्षान्तर के साथ जो भेद है वह सजातीय भेद कहलाता है और तदतिरिक्त जलपर्वतादिक से जो भेद है वह विजातीय भेद है। इसी तरह ब्रह्मरूप पदार्थ में प्राप्त जो यथोक्त भेद त्रय है उसका एकं इस पद से स्वगत तथा एवकार से ससजातीय तथा अद्वितीय पद से द्वितीय सामान्य का निषेध

सर्वहेयगुणरहितत्वानन्तकल्याणगुणाकरत्वरूपसविशेषत्वमेव प्रतिपादितम् एवं यानि ब्रह्मणः शोधकवाक्यानि तान्यपि जगत्कारणस्य तस्य सविशेषत्वपरकाण्येव भवन्ति ।

न च 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादिवाक्येन ब्रह्मणो

प्रत्याज्यते । तत्र न लक्षणाश्रयणं दोषाय तथैव प्रकृतेऽपि लक्षणा न दोषायेतिवाच्यम् । सिद्धान्ते दृष्टान्तेऽपि लक्षणाया अस्वीकारात् । तथाहि न मन्मते बौद्धवत्क्षणिकः पदार्थः येनैकस्मिन् कालद्वयसम्बन्धो दोषाय स्यात् । किन्तु स्थिरः पदार्थः तत्र भूतवर्तमानकालयोः पर्यायेण सम्बन्धेऽपि दोषात् । देशद्वयसम्बन्धोऽपि कालान्तरावच्छेदेन संभवत्येव । देशे कालस्येव कालेऽपि देशस्यावच्छेदकत्वमिति नियमात् । ततश्च दृष्टान्ते यथालक्षणा-मन्तरेणैवनिर्वाहस्तथैव प्रकृतेऽपि लक्षणामन्तरेणैव सर्वज्ञत्वादिधर्मवतो जगत्कारणस्य परब्रह्मणो जीवस्यान्तर्यामित्वरूपेण जीवात्मत्वं विरोधाय न भवतीति । तदुक्तं वैयाकरणैर्भिन्नप्रवृत्तीत्यादि- अयंभावः यथा 'नीलोघटः' इत्यत्र नीलपदं नीलत्वावच्छिन्ने लाक्षणिकं घटपदं च घटत्वावच्छिन्नेशक्तमिति नीलत्वघटत्वलक्षणविभि-

होता है । (एवं "नात्र काचनभिदोऽस्ति" "मृत्योः समृत्युमाप्नोति" इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म में भेदमात्र का निराकरण होता है ।) इस भेद सामान्य का निषेद होने से अर्थतः निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है एतादृश सिद्धान्त अद्वैतवादियों का है ।

इस मत का खण्डन करने के लिये आचार्यजी कहते हैं-"**तन्न**" इत्यादि । यह आपका कहना ठीक नहीं है । आपने जो उपर्युक्त श्रुति का अर्थ किया है वह ठीक नहीं है, क्यों ठीक नहीं है ? इसके उत्तर में कहते हैं "**भावानवबोधात्**" अर्थात् श्रुति का जो अभिप्राय है उसको आपने यथावत् नहीं जाना, क्यों नहीं जाना इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं यह सर्वतंत्र सिद्धान्त है कि दृष्टान्त वाक्य जिस तरह का हो उसीके अनुसार दार्ष्टान्तिक वाक्य का अर्थ करना चाहिए । प्रकृतमें-"**यथा सोम्यैकेनमृत्पिण्डेन**" यह दृष्टान्त वाक्य है । इसका यह अभिप्राय है कि जिस प्रकार कारणावस्था अर्थात् पिण्डावस्था अवस्थित मृत्तिका द्रव्य का ज्ञान होजाने से कार्यावस्था घटाद्यवस्था में स्थित मृत्तिका द्रव्य को एक होने के कारण से घटादिक ज्ञात हो जाता है । उसी तरह कार्यावस्था तथा कारणावस्थारूप दोनों अवस्थाओं को प्राप्त होनेवाला पदार्थ एक होता है । उस जगह में एकावस्थावस्थित का ज्ञान होने से अपरावस्थावस्थित का भी ज्ञान होता है । क्योंकि उभयावस्थ द्रव्य एक है यह दृष्टान्त वाक्य का अभिप्राय है । इसीके अनुसार प्रकृत में-"**सदेवसोम्येदमग्रे**" इस वाक्य का भी अर्थ करना चाहिये । सो तो आपने नहीं किया है, अतः आपने श्रुति के अभिप्राय को नही जाना है ।

एतादृश अभिप्राय को स्फुट करने के लिये आचार्यजी कहते हैं-**नहीयं प्रकृतश्रुतिरित्यादि** यह-

ज्ञानमात्रस्वरूपत्वस्य प्रतिपादेनेन तस्य निर्विशेषत्वमेव सिद्ध्यतितीवाच्यम् 'यः सर्वज्ञः स सर्वविदित्यादिश्रुत्या 'तद्गुणसारत्वात्' इत्यादिसूत्रैस्तस्य ब्रह्मणो ज्ञातृत्वस्य साधनात्सविशेषत्वस्यैव सिद्धिसंभवात् । अन्यथा परस्परविरोधेणैकस्यामप्रामाणिकत्वस्यदुष्परिहरत्वमापद्येत । तच्चेष्टं न

न्नप्रवृत्तिनिमित्तकयोरर्थैक्यादाकांक्षयाऽभेदः सामानाधिकरण्यं भवति । न तु 'घटो घटः' इत्यत्रोद्देश्यतावच्छेदकविधेयतावच्छेदकयोर्भेदाभावान्नाभेदान्वयोभवति । तथैव प्रकृते भवन्मते प्रवृत्तिनिमित्तयोर्भेदाभावादभेदान्वयो न संभवति मन्मते तु लक्षणां विनापि तादृशो बोधः समुपपादितः, उपपादयिष्यते चेति ।

उपक्रमविरोध इत्यादि । यदि जीवपरमेश्वरयोरभेद इति कथ्यते तदा उपक्रमविरोधोऽपि भवति । तथाहि उपक्रमते तावत् 'तदैक्षत' इत्यादिना सत्यसङ्कल्पादिगुणवतः परमेश्वरस्यैव प्रतिपादनं कृतम् । तस्य च सत्यसङ्कल्पवत्वं प्रधानकारणत्वे चापि कथितम् । उपक्रमानुरोधेनैवोपसंहारवाक्यस्यापिनयनं कर्तव्यमिति मीमांसकानां नियमः । ततश्च तत्त्वमसीत्यस्योपसंहारवाक्यत्वेनोपक्रमेसत्यसङ्कल्पादिमत उपस्थापनेनोपसंहारवाक्येऽपि

"**सदेवसोम्येदमग्रे**" यह जो श्रुति हैं वह सद् ब्रह्म से भिन्न सकल प्रपञ्च में मिथ्यात्व साधन करने के लिये प्रवृत्त नहीं हुई है क्योंकि पूर्व प्रकरण में जगन्निष्ठामिथ्यात्व प्रतिज्ञात नहीं है । किन्तु जहां जो वस्तु पदार्थ कारणावस्था में अवस्थित तथा कार्यावस्था में अवस्थित एक ही द्रव्य होता है तो उस स्थल में कारणावस्था में अवस्थित द्रव्य पिण्ड का ज्ञान होने से कार्यावस्था घटाद्यवस्था में अवस्थित विभक्त नामरूपक घटादिपदार्थ का ज्ञान होता है इस प्रकार से मृदादि दृष्टान्त को बतलाकरके, श्वेतकेतु यह नहीं जानता था कि संपूर्ण जगत् का एक ब्रह्म ही कारण है, तो श्वेतकेतु को ब्रह्म निखिल जगत् का कारण है इस बात को बतलाने के लिये "**सदेवसोम्येदमग्रे**" इत्यादि छठे अध्याय प्रकरण का आरंभ किया गया है । इस वाक्य में-"**इदमग्रे सदेवासीत्**" इस वाक्यावयव से प्रलयात्मक काल लक्षित होता है, अर्थात् उत्पत्ति से पूर्व में प्रलयकाल में इससे कालात्मक विशेष पदार्थ होता है । तथा सदापत्तिलक्षणक्रिया का सद्भाव सिद्ध होता है । तथा सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म सत् रूप है । उस ब्रह्मके साथ जगत् का एकत्व भी सिद्ध होता है । परन्तु प्रकृत वाक्य का किसी भी पद से जगत् में मिथ्यात्व सिद्ध नहीं होता है । (क्योंकि पदजन्य पदार्थोपस्थिति को ही शाब्दबोध में कारणत्व है । पद से अनुपस्थित अर्थ का शाब्दबोध में भान नहीं होता है ।) एवं उक्त वाक्य घटक जो-"**अद्वितीयम्**" यह पद है वह जगत् का उपादान कारण जो ब्रह्म है तादृश ब्रह्म से भिन्न जो निमित्त कारण कोई चेतन तथा सहकारी कारण इन सब का निराकरण करता है । अर्थात् उपादान भिन्न कोई अधिष्ठाता इस जगत् का नहीं है, ऐसा अद्वितीय पद बतलाता है क्योंकि सर्वविलक्षण सर्वशक्तिमान् सत् कारण मात्र से जगत्

कस्यापि वेदप्रामाण्यावादिनः ।

किं च तत्त्वमसीत्यत्र तत्त्व पदयोर्द्वयोरपिस्वार्थपरित्यागपूर्वकमुभयत्रापि लक्षणावृत्त्यानिर्विशेषचैतन्यांशमुपस्थाप्यजीवचेतनपरेशचेतनयोरभेदः प्रतिपादित इति तन्न, मुख्यार्थपरित्यागलक्षणादोषयोः प्रसङ्गात् ।

तत्पदेन तस्यैव परामर्शो युक्तः । स च भवन्मते न भवति । निर्विशेषस्यैवोपस्थितिर्भवतीति भवन्मतम् । ततश्चोपक्रमविरोधो भवति स च नोपयुक्तः किञ्च जीवेश्वरयोरैक्ये जीववत् परमेश्वरस्यापि, अज्ञानवत्वमापद्येत । स चोपक्रमवाक्यविरुद्ध इत्यादिकं बहुतरमूहनीयम् सति समये बहुतरमुपपादयिष्यामीतिसंक्षेपः ।

अद्वैतवादिनो हि सर्वविशेषरहितं निर्विशेषब्रह्मवादमेव स्वीकुर्वन्ति । तादृशब्रह्मणः शब्दप्रमाणादेव सिद्धिर्भवतीति संगिरन्ते । तदेतन्मतं दुरीकर्तुमाह तेऽद्वैतवादिनः शब्द प्रमाणादेवेत्यादि । तदीयमतमुपस्थाप्यनिराकरोति तत्रेत्यादि नहि शब्दप्रमाणान्निर्विशेषस्यसिद्धिः संभवति । कुतः ? निर्विशेषवस्तुप्रतिपादने तस्यासमर्थत्वात् । वाक्यसमुदायात्मकः शब्दः प्रमाणम् । वाक्यं च पदसमुदायात्मकम् । पदञ्चप्रायः

की सब प्रक्रिया संपन्न हो जाती है। इत्यादि सब वस्तु का मूल के अनुसार समन्वय करना चाहिये।

चेतनाचेतन साधारण स्थूल इस जगत् का उपादान करण परमेश्वर हैं, किन्तु उपादान कारण कोई अतिरिक्त है, तथा निमित्त कारण अर्थात् कर्ता कारण कोई अतिरिक्त है ऐसा नहीं है। इस विषयपर पुनः विशेष विचार करने के लिये जगदाचार्यजी उपक्रम करते हैं–"**यद्यपि घटादिकार्ये ।**'

यद्यपि घटादिक जो कार्यसमुदाय है उसकी उत्पत्ति में मृत्तिका उपादान कारण अर्थात् समवायिकारण है। उस उदापान से भिन्न कुलालादिक चेतन निमित्त कारण, अधिष्ठाताकर्ता, अपेक्षित होता है क्योंकि अचेतन पदार्थों की जो प्रवृत्ति होती है, उसमें चेतन का साहाय्य अपेक्षित होता है। चेतन से अॅनधिष्ठित अचेतन से कार्यका उत्पादन नहीं होता है। यथा कुलालाधिष्ठित मृत्तिका से ही घट का उत्पादन होता है। अन्यथा घटेत्पादन नहीं होता है। प्रकृत में तो आप ऐसा नहीं मानते हैं, अर्थात् उपादन कारण तथा निमित्त कारण तो एक ही परमेश्वर को मानते है यह तो दृष्टि विरोध होता है। इस प्रश्न के समाधान में कहते हैं–**तथापि यत्राचेतनमित्यादि** । यद्यपि लोकस्थिति तो ऐसा है, तथापि जिस स्थल में अर्थात् घटादि कार्यस्थल में अचेतन मृदादिक उपादान कारण होता है। तादृश लोकस्थल में सकल कारण चेतन अधिष्ठाता की आवश्यकता भले ही हो। परन्तु प्रकत में स्थूल जगत् के उत्पादन कार्य में सर्वज्ञ सर्ववित् सर्वशक्तिमान् श्रीरामजी उपादान कारण हैं, तो तादृश परमेश्वर से अतिरिक्त चेतनान्तर का अधिष्ठातारूप से आवश्यकता नहीं होती है। क्योंकि भगवान् सर्वापेक्षया विलक्षण तथा सर्वशक्तिमान् है वह तो अघटमान कार्य का भी संपादन कर सकते हैं तथा करते हैं प्रकृत विषय को महर्षिवाल्मीकिजी ने निम्नरूप से स्फुट किया है–"**सर्वांल्लोकान्सुसंहृत्यसभूतान् सचराचरान् ।** पुनरेव तथा **स्त्रष्टुंशक्तोरामोमहायशाः**

न चोपसंहारादिना तयोरैक्येतात्पर्यस्यनिश्चितत्वेन तस्य च लक्षणामन्तरेणाशक्यत्वात्, लक्षणावृत्तेराश्रयणं न दोषाय, सोयं देवदत्त इतिवदितिवाच्यम् सोयं वेददत्त इत्यादावपि लक्षणावृत्तेः सिद्धान्तेऽनाश्रयणात् तत्र

प्रकृतिप्रत्ययघटितम् । प्रकृतिप्रत्ययौ च यथायथमर्थविशेषं तदीयसम्बन्धविशेषमेव वस्तुप्रतिपादयतो न तु निर्विशेषं प्रतिपादयतः । ततश्च पदघटितवाक्यसमुदायात्मकशब्दोऽपिपदार्थसम्बन्धबोधने एव समर्थः । न तु निर्विशेषवस्तुप्रतिपादने । नहि घटपदं घटार्थमप्रतिपाद्य पटाद्यर्थं प्रतिपादयति तद्वदिहापि । न वा 'निर्विशेष' इत्यादिशब्दोऽपि निर्विशेषवस्तुप्रतिपादने समर्थः किन्तु विशेषान्तरनिराकरणपूर्वकविवक्षितपदार्थप्रतिपादने एव तस्यापि सामर्थ्यात् । अतो निर्विशेषं ब्रह्म न शब्दप्रमाणात्सेद्धुमर्हतीति संक्षेपः ।

ननु शास्त्रप्रमाणात् सविशेषब्रह्मण एव सिद्धिर्भवति नतु निर्विशेषस्य सिद्धिर्भवतीत्युपश्रुत्यनिर्विशेषे ब्रह्मणि न शास्त्रं प्रवर्तते । यतः प्रमेयावगमायप्रमाणंमृग्यमाणं

। देवाश्चदैत्याश्चनिशाचरेन्द्रगन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः । रामस्यलोकत्रयनामकस्यस्थातुं न शक्तासमेरेषु सर्वे । ब्रह्मास्वयम्भूश्चतुराननोवारुद्रस्त्रिनेत्र-स्त्रिपुरान्तकोवा इन्द्रोमहेन्द्रः सुरनायकोवा स्थातुं न शक्तायुधिराघवस्य" (५।५१।३९।४३।४४) इति । तथैव "**शेषी चाथनिमित्तंचोपादनंजगतोऽस्य हि । महाविष्णुर्निराधारोरामोब्रह्माखिलेश्वरः**" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ६।४) इत्यादि प्रबन्धों का भी प्रकृत ही आशय है, इसको मैं अन्यत्र विस्तार करूँगा।

अतएव "**तदैक्षत**" "**तदसृजत्**" इत्यादि अनेक श्रुति भी कहती है कि भगवान् जगत् का उपादान कारण तथा निमित्तकारण भी है। सूत्रकार ने भी कहा है–प्रकृतिश्चप्रति. "अर्थात् चेतन सर्वशक्तिमान् होने से भगवान् इस जगत् का कर्ताकारण तो है ही किन्तु प्रकृति अर्थात् उपादान कारण भी है। अन्यथा एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा तथा "**यथा सौम्येकेनमृत्पिण्डेन**" इत्यादि दृष्टान्त का सामञ्जस्य नहीं होगा इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण तथा निमित्तकारण भी है, यह सिद्ध होता है। यद्यपि लोक में ऐसा नहीं देखने में आता है तथापि भगवान् श्रीरामजी का जो कार्य हैं वे तो सब अलौकिक हैं। जिसकी कृपालेश से सिद्ध महात्मा भी लोकोत्तर कार्य करने में समर्थ होते हैं, तादृश भगवान् के विषय में तो अधिक क्या कहा जा सकता है।

बहुत सी ऐसी श्रुतियां हैं–**किंस्विद्वनं क उतवृक्षः**" इत्यादि। ये सब श्रुति जो जो निमित्त कारण है वह उपादन किस तरह हो सकता है क्योंकि अन्यत्र ऐसा नहीं देखा जाता है ? इत्यादि क्रम से प्रश्न करके सर्वशक्ति युक्त होने से ब्रह्म ही उपादान हैं निमित्त हैं तथा वहीं ब्रह्म अशेष उपकरण भी हैं ऐसा समाधान किया

तत्पदवाच्य इदं पदवाच्ययोर्मुख्यवृत्त्यैवान्वये विरोधाभावात् । एवमेवप्रकृतेऽपि जगत्कारणलक्षणस्यैव परब्रह्मणो जीवात्मान्तर्यामितया जीवात्मत्वं न विरुद्धम् । अपि च मदुक्तप्रकारेणैव तत्त्वयोः सामानाधिकरण्यमपि सम्भवति न तु स्वरूपमात्रस्यैक्ये संभवति । तदुक्तम् वैयाकरणैः

भवति । ब्रह्म न प्रमेयं प्रमाविषयस्यैव प्रमेयत्वात् 'प्रमाया विषयः प्राज्ञैः प्रमेयमितिकथ्यते' इति श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायामाचार्योक्तेः । किन्तुतज्ज्ञानरूपमितितेनान्यस्यसिद्धिर्भवति, न तु केनचिदन्येन तत्सिद्धिः । तदुक्तम्-'सर्वतीर्थदृशांसिद्धिः स्वाभिप्रेतस्य वस्तुनः । यदभ्युपगमादेव तत्सिद्धिः केन वार्यते' इति शब्दप्रमाणाविषयस्यापि तस्यसिद्धिमिच्छतोमतमपाकर्तुमुपक्रमते स्यादेतदद्वैतवादिभिरित्यादि । 'स्वयंप्रकाशज्ञानस्वरूपे' इति । अयंभावः-घटादिजडपदार्थस्य सत्तासाधकं ज्ञानमेव, ज्ञानेनैव ज्ञेयं प्रकाशितं भवति ज्ञानविषयस्य ज्ञेयत्वात् । ज्ञानस्य हि प्रकाशो न ज्ञानान्तरेणतदन्येन वा अनवस्थानात् । ततो ज्ञानं ज्ञेयं प्रकाशयत् स्वात्मानमपि प्रकाशयति । यथा मधुरस्वभावकोगुडः स्वसंमिश्रित

करती है। अतः प्रकृत प्रसङ्ग व्याख्यान वेदमत विरुद्ध प्रदर्शन नहीं है।

निर्विशेष ब्रह्म को सिद्ध करने के लिये अद्वैतियों ने ब्रह्मव्यतिरिक्तसकलप्रपञ्च को मिथ्या बतलाया, तथा इसमें "**सदेव सोम्येदम्**" इत्यादि श्रुति को ही साधकरूप में उपस्थित किया था। उस मत का खण्डन उपसंहार व्याज से करने के लिए आचार्यश्री कहते हैं "**अपिच**" इत्यादि, और भी देखिये "**सदेव सोम्येदमग्रे आसीत्**" इस श्रुति में कोई भी ऐसा शब्द नहीं है जो कि ब्रह्म में निर्विशेषता का साधक हो। अर्थात् यदि कोई भी शब्द जगत् में मिथ्यात्व को बतलाता। तब उसके द्वारा ब्रह्म में निर्विशेषत्व सिद्ध हो। प्रत्युत जगत् तथा ब्रह्म में कार्यकारणभाव को बतलाने के लिये ही इस श्रुति में शब्द सब विद्यमान हैं इसमें "**अग्रे**" यह जो प्रलयात्मककाल का वाचक शब्द है वह ब्रह्म तथा जगत् में कार्यकारणभाव को बतलाता है, क्योकि कार्य के अव्यवहित पूर्वकाल में रहनेवाला जो हो उसको कारण कहते हैं। तथा कारण के अव्यवहितोत्तर काल में जो विद्यमान हो उसको कार्य कहते हैं। एतादृश कार्यकारणभाव काल सापेक्ष है, और श्रुतिघटक "**अग्रे**" यह पद कालरूप विशेष का वाचक है तो कालरूप विशेष की ही सिद्धि होती हैं। किन्तु निर्विशेषता की सिद्धि नहीं होती है और "**आसीत्**" इस पद से क्रिया विशेष का बोध होता है तथा निमित्तकारण और उपादान कारण में भेद का निराकारण द्वारा "**एकमेव**" यह पद ब्रह्म में निमित्तत्व उपादानत्व का बोध कराता है, तो इस तरह, इस विशेषण से उपादानत्व को ब्रह्म में बतलाता है तथा अद्वितीय पद से अन्य अधिष्ठाता का निराकरण होता हैं। तथा सर्वशक्तिमत्व धर्म का भी ब्रह्म में सत्व बतलाया गया हैं। इस प्रकार इस श्रुति से श्रुत्यन्तरों से अनेक विशेषों का ब्रह्म में प्रतिपादन किया जाता है। परन्तु इस श्रुति में अथवा श्रुत्यन्तरों में निषेधवाचक तो कोई भी शब्द नहीं है।

'भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थे वृत्तिः सामानाधिकरण्यमिति। तथा उपक्रमविरोधोब्रह्मणि अज्ञत्वापत्तिश्च भवतीति संक्षेपः ।

तेऽद्वैतवादिनः शब्दप्रमाणादेव निर्विशेषब्रह्मणः सिद्धिमिच्छन्ति । तन्नयुक्तम् । अर्थविशेषतत्संबन्धविशेषबोधकपदघटितवाक्यसमुदाया-

---

पिष्टकादिकं मधुरयति न तु तत्रमधुरता सम्पादकं वस्त्वन्तरं भवति तस्य तत्स्वभावत्वादितिलोकप्रसिद्धिः । तद्वत् प्रकृतेस्वातिरिक्तं वस्तुप्रकाशयज्ज्ञानं स्वात्मानमपिप्रकाशयन् स्वप्रकाश एवेति ।

किं च घटोस्ति नवेति संशये घटसत्वसिद्ध्यर्थं ज्ञानमपेक्षितं भवति । किन्तु ज्ञाने जाते मयि ज्ञानमस्ति न वेतिसंशयो न भवति, न वा विपर्ययोभवति, न वा ज्ञानाभावः प्रमीयते । इतिसंययादिनामभावेज्ञानसत्तामावेदयति, इति भवति ज्ञानं स्वप्रकाशरूपम् । एतादृशस्वप्रकाशज्ञानाभिन्नत्वादात्मापिस्वप्रकाशः । आत्मासंवित्स्यः संवित्कर्मता कर्मतामन्तरेणापरोक्षत्वादित्यनुमानेनात्मनश्चिद्रूपत्वं सिद्ध्यति । ततश्चात्मनोऽपि ज्ञानरूपत्वेन न तस्य शब्दप्रमाणगम्यत्वमिति स्वतः सिद्धमेवनिर्विशेषब्रह्मेतिप्रश्नकर्तुरभिप्रायः ।

इसलिये इस श्रुति से निर्विशेषता की सिद्धि नहीं होती है अपितु सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है।

नैयायिक का अभिमत जो असत्कार्यवाद है अर्थात् ये लोग जगत् का उपादान कारण जो परमाणु है, उसको तो सत् मानते हैं, और कार्य जो घटादिक है उसको असत् मानते हैं। इस लिये इनको असत्कार्यावादी माना जाता हैं (यद्यपि बौद्ध अद्वैती के समान ये लोग कार्य को उत्पत्ति के वाद तो असत् नहीं अपितु सत् मानते हैं अतः न्यायमत का खण्डन करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है क्योंकि ये लोग कार्य उस को कहते हैं, जो प्रागभाव का प्रतियोगी हो तथापि अन्य बौद्धादिक सर्वथा असत् कार्य को हकते हैं और न्यायवाले उत्पत्ति के पूर्व में असत् मानते हैं इस लिये यह भी असत् कार्यवाद में ही अंशतः प्रविष्ट है, यह मानकर के न्यायमत को असत् कार्यवादी कहा ज़ाता है) इस मत का खण्डन करने के लिये उपक्रम करते हैं "**यस्मात्** " सदेवसोम्येत्यादिका श्रुतिरित्यादि। जिसलिये "**सदेव सोम्येदमग्रे**" (हे सोम्य श्वेतकेतु ! यह नाम रूप से विभक्त यह जडचेतन साधारण जगत् अग्रे उत्पत्ति से पूर्वकाल अर्थात् प्रलयकाल में सत् ब्रह्म के साथ तादाम्यापन्न था) इत्यादि श्रुति जगत् तथा ब्रह्म में वास्तविक कार्यकारणभाव को बोधन करने के लिये प्रवृत्त है अर्थात् प्रकृत श्रुति का कार्य कारणभाव का बोधन में तात्पर्य है। अतएव "**कुतस्तु खलु सोम्य एवं स्यात्** " इत्यादि से आरंभ करके "**कथमसतः सज्जायेत**" (**हे सोम्य** ! यह किस तरह हो सकता है कि असत् से सत् उत्पन्न होगा) इत्यन्त प्रकरण से "**असद्वा इदमग्रे आसीत्**" यह परिदृश्यमान जगत् उत्पत्ति के पूर्व में असत् था, इत्यादि ग्रंथ से असत् कार्यवाद का निराकरण जों श्रुति में किया है वह भी संगत होता है। जिस

त्मकशब्दप्रमाणस्य पदार्थसंसर्गात्मकविशेषवस्तुबोधकस्य निर्विशेषवस्तुबोधनासम्भवात्। निर्विशेष इत्यादिशब्दोपि न निर्विशेषवस्तुप्रतिपादकः किन्तु केनचिद्विशेषेण विशिष्टतया ज्ञातस्यैवपदार्थस्य पदार्थन्तरावगतविशेषप्रतिषेधकोभवति। अन्यथा तस्याप्यनवबोधकत्वमेव।

अन्यत्सर्वमूलाक्षरैरेवविदितं भवति।

बौद्धा अद्वैतवादिनश्चेत्थं संगिरन्ति। यत् प्रत्यक्षं द्विविधं निर्विकल्पकं सविकल्पकं च। तत्र प्रथमं निर्विशेषवस्तुनोग्राहकं द्वितीयं तु जात्यादिविशेषसहितपदार्थग्राहकम्। तत्र ब्रह्मणि गुणजात्यादिविशेषस्याभावान्न सविकल्पकप्रत्यक्षेणनिर्विशेषब्रह्मणोग्रहणं किंतु प्राथमिकप्रत्यक्षेणैव तद्ग्रहणम्। ब्रह्मणि कस्यापिविशेषस्याभावेन प्रमाणान्तरग्राह्यं निर्विशेषं ब्रह्म न भवति। निर्विकल्पकेनैव गृहीतं भवति। तमिमं पक्षं निराकर्तुमुपक्रमते-यद्यपि शब्दादिप्रमाणेनेत्यादि। सर्वविशेषरहितस्य ब्रह्मणो निर्विकल्पकप्रत्यक्षेणग्रहणं भवति। गुणजात्यादिरहितकेवलवस्तुग्राहकत्वस्वभावत्वात्तस्येतिप्रश्नः। उत्तरयति तदपि न मनोरमम् इत्यादि। अयंभावः-प्रत्यक्षं निर्विकल्पकं भवतु परन्तु सर्वमपि तत् सविशेषवस्तुन एव

लिये। "**सदेव सम्येदमग्रे**" यह श्रुति कार्यकारणभाव को समझाती है और कार्यकारणभाव सत् में ही होता है नवा असत् में तथा सत् असत् में इसलिये "**असद्वा इदमग्रे आसीत्**" इस ग्रन्थ से असत्कार्यवाद का आर्थात् न्यायतन्त्राभिमत असत् कार्यवाद का निराकरण भी सङ्गत होता है। इस प्रकरण से किस तरह असत् कार्यवाद का निकारण होता है? इस वात को वतलाने के लिये आचार्यपाद कहते हैं- यदि कारण असत् हो तो उस अभावात्मक कारण से जायमान कार्य भी असत् ही होगा। यद्यपि अभाव के अन्तर्गत प्रागभाव घटादिकार्य की उत्पत्ति में निमित्तकारण माना जाता है परन्तु कार्य जो घटादिक है वह अभावात्मक नहीं होता है किन्तु भावात्मक ही होता है। तथापि अभाव में जो कारणत्व का निराकरण किया गया है वह उपादान कारणता का निराकरण किया गया है। घटादि कार्य की उत्पति में तत्तत् प्रागभाव उपादान कारण नहीं है किन्तु निमित्त कारण है और निमित्त कारण का गुण कार्य में नहीं जाता है। किन्तु उपादान का गुण ही कार्य में जाता है। इसी अभिप्राय से "**कारणः गुणाः कार्यगुणानारभन्ते**" यह वचन है। यदि असत् अर्थात् अभाव कारण हो तब तो असत् से उत्पन्न जो होगा कार्य उसको भी तब असत् रूप ही बनना पडेगा।अर्थात् कार्य भी अभावात्मक ही होगा। क्योंकि कार्य में कारण का अनुगमन होता है जिस तरह मृत्तिका से उत्पन्न जो घट वह मृन्मय होता है यथा वा सुवर्ण से उत्पन्न होनेवाला कार्य सुवर्णमय ही होता है। यदि ऐसा न मानें तब तो मृत्तिकोत्पन्न घट सौवर्ण कहलायेगा और सुवर्ण से जायमान घट भी मार्दवकहलायेगा। परन्तु मृत्तिकोत्पन्न में ही - मार्दवो घटः सुवर्ण से उत्पन्न कलश में "**सौवर्णोघटः**" ऐसा व्यवहार होता है। इसी तरह प्रकृत में भी

स्यादेतत्, अद्वैतवादिभिर्निर्विशेषे स्वयंप्रकाशज्ञानस्वरूपे शब्दः प्रमाणं भवतीति न स्वीक्रियते। येनानन्तरोक्तोदोष आपतेत्, स्वतः सिद्धे तस्मिन् प्रमाणस्याकिञ्चित् करत्वात्। न च तदा निर्विशेषब्रह्मप्र-तिपादकवेदान्ता निरालम्बना भवेयुरिति वाच्यम्। अध्यस्तधर्माणं ज्ञातृत्वादीनां परोपाधिकानां

ग्राहकं भवति। अर्थात् निर्विकल्पकप्रत्यक्षेपि गुणजात्यादिविशेषसहितपदार्थस्यैवग्रहणं भवति। न तु परोक्तरीत्याविभागः। अन्यथा सोयमित्यादिसविकल्पके पूर्वगृहीतगुणजात्यादिविशिष्टपदार्थप्रत्ययो न स्यात्, इति प्रथमप्रत्यक्षेऽपि जात्यादिविशेषस्यभानं भवति। ततश्च तादृशविशेषसहितस्यैव पदार्थस्य द्वितीयादिज्ञानेपिभानं भवति। तस्मान्न निर्विकल्पकप्रत्यक्षंनिर्विशेषवस्तुग्राहकमपितु तदपिसविशेषमेव गृह्णातीति न तेन प्रत्यक्षेण निर्विशेषब्रह्मसिद्धिरिति।

ननु विषयभेदाज्ज्ञानयोर्भेदोभवति-यथा घटोयं पटोयमित्यादौ घटपटादि विषयविभेदेनैव तादृशज्ञानयोर्भेदात्। तदुक्तमभियुक्तैः 'अर्थेनैवविशेषोहिनिराकारतयाधियाम्' अर्थेनेत्यत्र तृतीयोऽभेदस्तथा चार्थाभिन्न एव ज्ञानस्य विशेषसार्थक्यम् इह बौद्धवत् ज्ञानगतविशेषणान्तरस्यास्वीकारात्। अन्यथासाकारज्ञानवादिमतप्रवेशात् ततश्च

होगा। अर्थात् यदि असत् से कार्य उत्पन्न होगा तब तो कार्य भी असत् ही होता परन्तु ऐसा तो नहीं देखा जाता है अर्थात् कार्य तो लोक में अभावात्मक नहीं देखने में आता है। इस लिए न तो असत् कारणवाद ठीक है न वा असत्कार्यवाद ही ठीक है। किन्तु कारण सत् परमात्मा के तथा परमात्मा का विशेषणरूप जगत् भी सत् रूप ही है।

नहीं कहो कि यदि उत्पत्ति के पूर्व में भी कार्यसत् ही है तब तो घटोत्पादन करने के लिये कारण का व्यापार निरर्थक होता हैं। क्योंकि असिद्ध का साधन होता है सिद्ध पदार्थ का साधन तो विफल है। और यदि कार्य सत् है तब उसकी उत्पत्ति किस तरह हो सकती है। उत्पन्न पदार्थ की उत्पत्ति पुनः न हो सके इस के लिये घटादि की उत्पत्ति में तादात्म्य से घटादि द्रव्य को प्रतिबन्धक माना गया है। अन्यथा उत्पन्न का पुनः उत्पत्ति कोई रोक नहीं सकता है। समवायि [illegible]मवायि तथा निमित्तकारण का समवधान विद्यमान है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि सत्कार्यवाद में कार्य का उत्पादन होता है ऐसा नहीं माना जाता है। किन्तु कार्य का आविर्भाव तिरोभाव ही केवल होता है अर्थात् कारण द्रव्य मृत्तिकादि से मृत्तिका से भिन्न अवयवी नवीन द्रव्य का उत्पादन नहीं होता है। परन्तु एकावस्था से युक्त अर्थात् पूर्वावस्था युक्त मृत्तिका द्रव्य का उत्तरोत्तरावस्था का जो सम्बन्ध है तादृश सम्बन्धयोग को ही घट कहते हैं। कारणवस्था तथा कार्यावस्था उभयत्र एक ही द्रव्य का प्रतिभास होता है। मृत्तिका द्रव्य से बना हुआ घट मिट्टि का घड़ा यह है। परन्तु सोने का घड़ा है ऐसा

निरासे एव तेषां तात्पर्यात् । निराकृतेष तत्तद्विशेषेषु सर्वोपाधिरहितं निरवच्छिन्नं स्वप्रकाशरूपं स्वत एवावतिष्ठते । नैतद्युक्तम्, यस्मिन् ते विशेषधर्मा निरस्यन्ते तद्वस्तुनः केन शब्दविशेषेण निर्देशः क्रियते । ननु ज्ञानशब्देनाधिकरणस्य निर्देशः क्रियते । अर्थात् ज्ञानपदेन ब्रह्मरूपाधिकरणं

यद्युभयत्रापि सविशेषवस्तुविषयकत्वं समानं तदा कोभेदस्तयोः सिद्धान्ते इति चेन्न-अल्पविषयबहुविषयकत्वेनैव तयोर्भेदात् । अर्थात् निर्विकल्पकमल्पविशेषणविशिष्टं पदार्थं गृह्णाति । सविकल्पकं तु अधिकाधिकविशेषविशिष्टंविषयं विषयीकरोति । यथालोकेऽल्पवित्तोऽधन इति कथ्यते बहुवित्तोधनी इति, अल्पवित्त इत्यत्र नञर्थोऽल्पार्थकः अनुदराकन्येति वत् । न तु सर्वथाधनराहित्यं गमयति । धनी इत्यत्र तु इन् प्रत्ययोधनाधिक्यं गमयति । तथैव प्रकृतेपि अल्पविषयत्वं निर्विकल्पकस्य बहुविषयत्वं च सविकल्पकस्य अतएव निर्विकल्पकंविशेषरहितमिति लोकप्रवादोपि संगतो भवति । तथा सविकल्पकं जात्यादिविशेषणविशिष्टं गृह्णातीतिप्रवादः सुसंगत इति । अथवा निर्विकल्पके भासमानजात्यादौ अनुवृत्तत्वादिकं न भासते । तदेव सविकल्पकेभासते । गौः गौरिति

व्यवहार नहीं होता है। तो इस से यह सिद्ध हुआ की कारण द्रव्य ही कार्याकार से परिणत होता हैं और कारण द्रव्य है सत् तो तत्स्वरूप जो कार्यद्रव्य वह असत् कैसे हो सकता है ? क्यों ? कार्यकारण को तादात्म्य माना गया है।

और भी देखिये यदि उत्पत्ति के पूर्व में तथा विनाश के अनन्तर में घट नहीं है तब **"उत्पद्यते घटो विपन्नो घटः"** यह व्यवहार किस तरह से होगा ? क्योंकि यहां उत्पादन तथा विनाशरूप धर्म का आश्रय घट प्रतीत होता है, और तादृश धर्म का आश्रयरूप से घट प्रतीतहोता है तो आप विचार करें जो असत् घट आश्रय कैसें होगा क्योंकि अविद्यमान पदार्थ तो किसी का आश्रय नहीं होता है। इस लिए उत्पादन तथा विनाश का आश्रयत्व को अन्यथा अनुपपद्यमान होने से सिद्ध होता है कि उत्पत्ति से पूर्व तथा विनाशोत्तर काल में भी घट है। इस घटरूप आश्रय में उत्पाद विनाश लक्षणधर्म बैठता है। इस से सिद्ध हुआ कि घट पहले से है और उत्पत्ति के पूर्व में घट की सत्ता सत्कार्यवाद में ही सिद्ध होता है अतः सत्कार्यवाद को ही मानना चाहिये। नतु असत् कार्यवाद जो कि वैशेषिक का अभिमत वह ठीक नहीं है। विशेष सत्कार्यवाद व्यवस्था में देखिये।

इस लिये सत्कार्यवाद है अर्थात् कारणकार्याकार से परिणत होता है किन्तु, जो असत् है उस को कोई भी सत् नहीं बना सकता है , क्योंकि जो वस्तु असत् है उसका सद्रूप से परिणाम होता है ऐसा कहीं भी नहीं देखा गया हैं। क्या स्वभाव से असत् जो गगनकमल तथा बन्ध्यापुत्र उस को कोई सत् बना सकता है ? अर्थात् नहीं बनाता हैं। किन्तु जो पदार्थ सत् है उसीका आविर्भाव तथा तिरोभाव देखने में आता है तथा सत्

निर्दिश्य तत्राध्यस्तविशेषाणां ज्ञातृत्वादीनां निरासोभवतीति तदपि न मनोरमम् । ज्ञानपदेनापि स विशेषवस्तुन एव समर्पणात् । तथाहि अवबोधनार्थकज्ञाधातुना ज्ञानस्य सिद्धिर्भवति । तच्च ज्ञानं क्रियान्तराद्विलक्षणस्वभावकं सकर्तृकं सकर्मकं चेति

प्रत्ययो न प्रथमे द्वितीयेऽनुवृत्ततापिजातौभासते । एतावानेवोभयोर्भेद इत्यधिकमाकरग्रन्थेभ्योऽवधातव्यमिति संक्षेपः ।

'वाचारंभणं विकारो नामधेय'मित्यादिश्रुतेरद्वैतवादिभिः कृतव्याख्याया निराकरणायोपक्रमते स्वयंप्रकाशात्मके ब्रह्मणीत्यादि । अयमाशयः अद्वैतवादिभिः स्वप्रकाशज्ञानात्मके ब्रह्मण्यविद्यया ये ये धर्माः समारोपितास्तांस्तान् धर्मान् 'अस्थूलमनणु' 'नेति नेति' इत्याद्यनेकश्रुतिर्निराकरोतीति ते प्रतिपादयन्ति । तत्र सैद्धान्तिका स्तान् पृच्छन्तिकीदृशः स शब्दो यश्च ज्ञातृत्वादिकान् निराकरोति । 'वाचारंभणमित्यादिरिति न वक्तव्यम् एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञां गुरुमुखादवगत्य, न हि घटे विज्ञाते पटोविज्ञायते, इति क्रमेणतदसंभवंमन्वानस्यशिष्यस्याशयं ज्ञात्वा कार्यकारणयोरभेदात्तांप्रतिज्ञांसमर्थयन् गुरुर्मृदादिदृष्टान्त

का ही आविर्भाव तिरोभाव होता है। यथा सर्वदा विद्यमान ही नक्षत्रमंडलादिक पदार्थों का दिन में आविर्भाव तथा रात में आविर्भावतिरोभाव देखा जाता है किन्तु शश श्रृंगतथा कुर्म रोमादि का आविर्भाव तिरोभाव नहीं होता है, क्योंकि उपर्युक्त ये सब पदार्थ असत् हैं इस का केवल विकल्प प्रतिभास ही होता है।

अतः एक ही कारण द्रव्य पूर्वावस्था का परित्याग करके जब उत्तरावस्था को प्राप्त करता हैं तब उसी कारण द्रव्य का नाम हो जाता है कार्य क्योंकि दोनों काल में द्रव्य तो एक ही हैं जिस तरह एक ही सर्प सरलावस्था में रहता है तो उसका नाम सर्प ऐसा रहता है और जब वही सर्प कुण्डलावस्था में रहता है तो तब उस का नाम हो जाता हैं कुण्डली परन्तु दोनों जगह में सर्प तो एक ही रहता है। यथा वा एक स्त्री पियर में जब रहती है तब माता पिता की अपेक्षा से पुत्री कहलाती है और ससुराल में जाने पर साशु सशुर की अपेक्षा से वधू कहलाती पति की अपेक्षा पत्नी कहलाती है। परन्तु सर्वत्र मूलद्रव्य तो एक ही है तद्वत् प्रकृत में भी समझना चाहिये।

"एकेनविज्ञातेन सर्वं विदितं भवति" इत्यादि प्रकरण में एक कारण द्रव्य का विज्ञान होने पर सकल कार्य का विज्ञान होता है , ऐसी जो प्रतिज्ञा है इस का समर्थन असत्कार्यवाद में नहीं हो सकता है क्योंकि असत्कार्यवादी के मत में इस प्रतिज्ञा का समर्थन नहीं होता है , क्योंकि इनके मत में समवायि कारणीभूत कपालतन्तुओं से जायमान जो अवयवीरूप घटरूप कार्य है वह अत्यन्त भिन्न माना गया है गौ अश्व की तरह। अब आप ही विचार कीजिये तो कारण से अत्यन्त भिन्न जो कार्यद्रव्य वह कारण का विज्ञान होने से किस तरह विदित हो सकेगा। क्या आमवृक्ष का ज्ञान होने से कचनार का वृक्ष कभी भी ज्ञात होता है ?तो इस में क्या

कर्तृकर्मवैशिष्ट्यलक्षणविशेषवत्वमेव । ज्ञानेन सर्वोऽपि जडपदार्थः प्रतिभासितो भवति, ज्ञानं तु स्वत एव प्रकाशतेऽनन्यसाधनस्व- भावत्वाज्ज्ञानस्यातस्तत् स्वतः सिद्धम्, यदि ज्ञानरूपत्वात् ब्रह्मस्वरूपं स्वयमेव सर्वदा अवभाषते इत्युच्यते तदा सर्वथाप्रकाशरूप

ब्रह्मण्यविद्यया ये ये धर्माः समारोपितास्तांस्तान् धर्मान् 'अस्थूलमनणु' 'नेति नेति' इत्याद्यनेकश्रुतिर्निराकरोतीति ते प्रतिपादयन्ति । तत्र सैद्धान्तिका स्तान् पृच्छन्तिकीदृशः स शब्दो यश्च ज्ञातृत्वादिकान् निराकरोति ।'वाचारंभणमित्यादिरिति न वक्तव्यम् एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञां गुरुमुखादवगत्य, न हि घटे विज्ञाते पटोविज्ञायते, इति क्रमेणतद- संभवंमन्वानस्यशिष्यस्याशयं ज्ञात्वा कार्यकारणयोरभेदात्तांप्रतिज्ञांसमर्थयन् गुरुर्मृदादिदृष्टान्त प्रदर्श्य तं बोधयामास, तत्र विवर्तदृष्टान्तं परित्यज्य परिणामिदृष्टान्तं गुरोर्ज्ञात्वा स्वसंशयं परित्यक्तवान् । अतो 'वाचारंभणमित्यादिवाक्यस्य न सर्वमिथ्यात्वे तात्पर्यमपितु कार्यकारणयोः सत्यतायामेव तत्तात्पर्यम् । न वा घटादौ मिथ्यात्वं शुक्ति वदेव सिषाधयिषितं तथात्वे मृदादेर्दृष्टान्तता नोपपद्येतेति ।'

विदित हो सकेगा। क्या आमवृक्ष का ज्ञान होने से कचनार का वृक्ष कभी भी ज्ञात होता है ?तो इस में क्या कारण है ? अत्यन्त भेद वह अत्यन्त भेद जब आपके मत में कार्यकारण में विद्यमान है तब कारण का विज्ञान होने पर भी कारण से अत्यन्त भिन्न कार्य किस तरह ज्ञात हो सकता है। इस लिये असत्कार्यवाद ठीक नहीं है।

और भी देखिये असत्कार्य की उत्पत्ति होती है इस में तो कोई भी दृष्टान्त नहीं है। सत्कार्यवाद में तो अनेक दृष्टान्त हैं। तथा तिल में विद्यमान तेल कारण व्यापार से आविर्भृत होता है। किन्तु सिकताओं से तेल का आविर्भाव नहीं होता है। गाय में विद्यमान दूध गाय से आविर्भूत होता है, बैल से नहीं होता है। इन सब दृष्टान्तों से यह सिद्ध होता है कि सात् ही आविर्भाव तिरोभाव होता है, असत् का आविर्भाव तिरोभाव नहीं होता है। अतः एक ही कारण द्रव्य पूर्वावस्थआदि के सम्बन्ध से कारण ऐसा नाम होता है और उसी का उत्तरावस्थादि के सम्बन्ध से कार्य इत्याकारक व्यवहार होता है। दोनों जगह में मूल द्रव्य तो एक ही है। इस लिये असत् कार्यवाद ठीक नहीं। इस प्रकार से आचार्यपाद ने वैशेषिकाभिमत असत्कार्यवाद का निराकरम किया है। किन्हीं विद्वानों ने इस प्रकरण से बौद्धाभिमत असत् कारण असत्कार्यवाद का खण्डन होता है ऐसा कहा है। परन्तु आचार्यपाद के अग्रिम ग्रन्थावलोकन करने से यह स्पष्ट होता है ,कि प्रसंग बौद्ध असत्कार्यावाद निसारपरक नहीं यह "**तस्मान्नबौद्धमतासत्कार्यवादस्यनिरास**" **इस पङ्क्ति से स्पष्ट है** अतः प्रकृत प्रसङ्ग वैशेषिकाभिमत असत्कार्यावद का ही निराकरणपरक है। श्रुति में जो असत्कार्यवाद का निराकरण

तस्मिनुपाधिकृतधर्माणां ज्ञातृत्वादीनामध्यास एव न स्यात् । यतः सामान्यरूपेण ज्ञातस्य विशेषरूपेणाज्ञातस्यैवाधिष्ठानत्वमिति नियमात् । इदंत्वेन ज्ञातायं शुक्तित्वविशेषधर्मवत्तयाज्ञातायामेव शुक्तिकायां रजताधिष्ठानत्वस्य दर्शनात् । तथा विशेषधर्मवत्तयाधिष्ठा-

शाङ्करमतानुयायिनो हि ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्यापिदृश्यादृश्यसाधारण जगतोमिथ्यात्वं समर्थयन्ति । तत्र 'सदेव सोम्य' इत्यादिश्रुतिप्रमाणयन्ति । एतन्म तनिराकरणायसंप्रति देशिकप्रवरोपक्रमते-सदेव सोम्येदमग्रे इत्यादि । शंकरमतमुपपादयति एकम्-एवाद्वितीयमिति प्रदर्शितपदत्रयेणकथं कस्यमिथ्यात्वं तदुपपादयति सजातीयेत्यादि भेदो हि त्रिप्रकारकोभवति, स्वगतोभेदः-यथावृक्षस्य स्वावयवपत्रपुष्पफलादिभिर्योभेदः स स्वगतोभेदः । तस्यैव वृक्षान्तरेभ्योयोभेदः स जातीयोभेदः । तद्वृक्षे वृक्षान्तरे च वृक्षत्वसामान्यधर्मस्य विद्यमानत्वेन तदुभययोः साजात्यात् । तथा वृक्षस्य शिलादिभ्या यो भेदो भवति स विजातीयो भेदः । यतो वृक्षेशिलायां चानुगतासाधारणधर्मस्यासत्वात् यथा वृक्षादिषु त्रिप्रकारको भेदस्तथैव ब्रह्मण्यपिप्राप्तभेदत्रयम् । पदत्रयेण निवारितं भवति । ततश्च ब्रह्मणि कस्यापिभेदस्याभावेन निर्विशेषं ब्रह्मसिद्धं भवति । तथा

किया गया है वह वैशविकाभिमत असत् कार्य वाद का निराकरण है ऐसा अभिप्राय श्रुति का है ; ऐसा आचार्यश्री ने बतलाया। परन्तु कोई विद्वान् तो कहते हैं कि यहां जो असत्कार्यवाद का निराकरण है वह वैशेषिकाभिमत का निराकरण नहीं है किन्तु बौद्धाभिमत असत्कार्यवाद का निराकरण है। क्योंकि बौद्ध लोग मानते हैं कि कार्य भी असत् है और कारण भी असत् है , किन्तु शून्यमात्रत्व है, ऐसा कहा है- **भिन्नापि देशनाऽभिन्नशून्यताऽद्वयलक्षण इति** । ये सब पदार्थ भ्रम से सत् रूप से भासित होते हैं। वस्तुतः ये सब अनिर्वचनीय है ऐसा कहा हैं - **यथा यथार्थाश्चिन्त्यन्तेविशीर्यन्त्यें तथा तथा । यदेतत्स्वयमर्थेभ्योरोचतेतत्रकेवलमिति** । इत्यादि विषयों पर विचार करने के लिये उपक्रम करते हैं "**ननु यो योऽध्यास**" इत्यादि जो अध्यास है वह सब ही सत्याधिष्ठानक ही होता है। जिस तरह शुक्तिरजतादिक सर्वत्र भ्रमस्थल में देखता हूं कि इदं पदवाच्य शुक्तिका सत्य है क्योंकिबाधोत्तर काल में रजत रजत्व उनका जो संसर्ग है, उसका बाध होने पर भी अबाधित रूप से शुक्ति का प्रतिभास होता रहता है। इस से यह सिद्ध होता है कि अविद्यारूप दोष आच्छादित तदाश्रयीभूत चिद्रूप सत् ब्रह्म जगत् विभ्रम का अधिष्ठान है वह सत्य है, उसी सत्य अधिष्ठान ब्रह्म में यह परिदृश्यमान समस्त जगत् अध्यस्त है। किन्तु जो भ्रम होता है वह बिना अधिष्ठान का नहीं होता है तथा अधिष्ठान जो होता है वह सत्य ही होता है। नहीं कहो कि जिस तरह कल्पित अविद्या अध्यास में कारण है उसी तरह कल्पित पदार्थको भी यदि अधिष्ठान का कारण मानें तो क्या क्षति ह ?

नज्ञानादेवाध्यासनिवृत्तिदर्शनात्। तदिह ब्रह्मण्यध्यस्तज्ञात्वादीना निवर्तनाय ब्रह्मण्यवश्यमेवैकस्तादृशो विशेषधर्मोऽभ्युपगन्तव्यः । येन तादृशविशेष धर्मसहितब्रह्मज्ञानादध्यासाध्यस्तयोर्निर्वृत्तिः स्यात् । सच विशेषधर्मः

तदितरसकलप्रपञ्चस्य स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वलक्षणमिथ्यात्वमर्थसिद्धंभवति । प्रातीतिकरजतादिवदिति तन्मताशयस्याशय इति ।

पूर्वमतं खण्डयितुमाह तत्रभावानवबोधादिति । नहि भवदुदिरितक्रमेण प्रकृतश्रुत्यर्थोनेतव्यः । दृष्टान्तानुसारेण दार्ष्टान्तिकवाक्यस्यार्थोनिर्णेतव्य इति सर्वसंमतः । प्रकृते च यथा-'सोम्यैकेनमृत्पिण्डेन' इत्यादिदृष्टान्तवाक्यं विद्यते । अस्याशयस्तु यथा मृत्पिण्डादिकारणावस्थावस्थितमृत्तिकाया ज्ञानेन घटादिकार्यावस्थावस्थितमृत्तिकायाएकद्रव्यतया तज्ज्ञानमनायासेन संपद्यते । एतदनुसारेणैव 'सदेवसौम्य' अस्य वाक्यस्याप्यर्थः कर्तव्यः । श्वेतकेतुश्चपूर्वं न ज्ञातवान् यदिदं जगत् केवलब्रह्मणैवजातमर्थात् सर्वस्यकारणं ब्रह्मेति, एतत् वोधयितुमेव 'सदेवेत्यादि वाक्यमवोचत् । तत्र 'इदमग्रेसदेवासीत्' इतिवाक्यावयवेन कालविशेषः सिद्धो भवति तथासदापत्तिरूपा क्रिया

इस शङ्का के उत्तर में कहते हैं- **अन्यथाऽनवस्थापातादिति**" यदि अधिष्ठान भी कल्पित हो तब तो अधिष्ठान की कल्पना करने के लिये अधिष्ठानान्तर की कल्पना होगी, तो इस प्रकार अनवस्थादोष होगा इस लिये अध्यस्यमान जो जगत् है उस का अधिष्ठान सत्य ब्रह्म है इस प्रकार से विचार करके निरधिष्ठानक भ्रमवादी असत्कार्यवादी बौद्धों का जो मत है तादृशमत का निराकरण करने में ही "**असद्वा इदमग्रे**" इत्यादि श्रुति का तात्पर्य है। परन्तु वैशेषिकाभिमत असत्कार्यवाद का निराकरण करने में तादृश श्रुति का तात्पर्य नहीं है। इस प्रकार अद्वैतवादी लोग कहते हैं। इसका खण्डन करने के लिये आचार्याश्री कहते हैं। "**तन्नयुक्तमिति**" यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि श्रुति तो मृदादि दृष्टान्त प्रदर्शन द्वारा एक विज्ञान से सकलविज्ञान की प्रतिज्ञा सत्कार्यवाद को पुष्ट करती है। किन्तु असत्कार्यवाद अथवा असत्कारणवाद का कथन नहीं करती, ऐसा कहा गया है। अद्वैतीलोग भी निरधिष्ठानक भ्रम नहीं होता है इस बात को सिद्ध नहीं कर सकते हैं। जिसके मत में चेतन में रहने वाले दोष पारमार्थिक अर्थात् सत्य है तथा तादृशदोष का आश्रय एवं सम्बन्ध सत्य है उन के मत में तो सत्याधिष्ठान में पारमार्थिकदोष के बल से अपारमार्थिक गन्धर्व नगरादिकों का भ्रम वन भी सकता है, किन्तु जिसके मत में दोष अपारमार्थिक है दोष का आश्रयता तथा सम्बन्धादिक सब अपारमार्थिक है उनके मत में जिस तरह अपारमार्थिकदोष के बल से भ्रम का उपपादान किया जाता है । उसी तरह अपारमार्थिक अधिष्ठान से भी भ्रम हो सकता है- केशोणुक की तरह। इसका अभिप्राय यह है कि जैसे चन्द्रमा अथवा त्रिजली से जिसकी आँख खराब है वह व्यक्ति बिजली से निकलता हुआ लम्बायमान पूंछ की

केनचित् शब्देनैवज्ञापनीय इति तादृशशब्दान्तरेभ्योऽवगतास्तेतेधर्मा अपि स्वीकर्तव्या एवेति न निर्विशेषब्रह्मसिद्धं भवति । किन्तु प्रमाणबलात् सविशेषस्यैव तस्य सिद्धिर्भवतीतिदिक् ।

च सिद्ध्यति । सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टब्रह्मैवसत्त्वम् तेन सहैकत्वमपि जगतः सिद्ध्यति । न तु केनापि पदेन जगतो मिथ्यात्वं सिद्ध्यति । अद्वितीयमिति पदं ब्रह्मात्मकोपादानभिन्ननिमित्तकारणस्य सहकारिकारणस्य चानपेक्षतांदर्शयति । यतो विलक्षणशक्तिमत्वेन सत्कारणमात्रेणैवसर्वसंभवादित्यादिकं सर्वमूलानुसारेणैव नेतव्यम् । तथैवाहुरानन्दभाष्याकाराः प्रकृतश्रुतिव्याख्याने-'ये तु एकमेवद्वितीयमिति वेदवाक्यं जगतोमिथ्यात्वे प्रमापयन्ति ते भ्रान्ताः, यतो यदि एकमेवेत्यादिवाक्यंमिथ्यात्वमवबोधयेत्तदा 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीदिति वाक्यघटककालप्रापकाग्रपदेन तथा 'तदैक्षत नामरूपे व्याकरवाणि' इतीक्षणनामरूपप्रतिपादकोत्तरवाक्येनविरोधप्रसङ्गात् (आनन्दभाष्यम् ६।२।१)

यद्यपि यदेवनिमित्तं तदेवोपादानमित्यन्यत्र नदृश्यते तत्राचेतनमुपादानं निमित्तं च

तरह तार को देखता है वहां वह अक्षिदोष से देखता है वहां कोई भी अधिष्ठान नहीं रहता है। इसी तरह प्रकृत में केवल दोष के बल से अधिष्ठान के बिना भी भ्रम हो सकता है। तब जो आप कहते हैं कि निरधिष्ठान भ्रम नहीं होता है यह आपका कहना ठीक नहीं है। इसलिये प्रकृत में बौद्धमताभिमत असत्कार्यवाद का निराकरण करने में श्रुति का तात्पर्य नहीं है किन्तु वैशेषिकाभिमत असत्कार्यवाद निराकरण में तात्पर्य है। वस्तुतः श्रुति का सत्कार्यवाद की स्थापना करने में ही तात्पर्य है। सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट परमेश्वर कारण है जो कि पारमार्थिक सत् हैं तथा स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मकार्य है वह भी परमसत्य है। इस सिद्धान्त में असत्कार्य वाद अथवा असत् कारणवादों की शङ्का का समावेश नहीं होता है।

सदेवसोम्येत्यादि कारणताबोधक श्रुति द्वारा सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है नतु निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है , इसका प्रतिपादन करके इसके बाद शोधक वाक्य जो "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**" इत्यादिक है उन से भी सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है नतु निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि होती है। इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं यथा सदेवेत्यादि, जिसतरह "**सदेवसोम्य**" यह परिदृश्यमान स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मरूप परिदृश्यमान विविध प्रपञ्च है वह उत्पत्ति के पूर्व में प्रलयकाल में सत्स्वरूप था, अर्थात् नामरूप विभागानर्ह होकर के सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्मरूप कारणरूप बन करके अवस्थित था इत्यादि कारण वाक्य से जगत् कारणत्वादि विशेषण विशिष्टब्रह्म की ही सिद्धि होती है। उसी तरह शोधक वाक्य से "**सत्यं ज्ञानम्**" ब्रह्म असत् से व्यावृत होने से सत्यत्व धर्मवान् है। जडादि से व्यावृत्त होने से ज्ञानवान् है अतः ज्ञानपदवाच्य है। तथा परिच्छिन्न पृथिव्यादिकों से व्यावृत्त होने के कारण अनन्तत्व गुणवान्

यद्यपि शब्दादिप्रमाणेननिर्विशेषब्रह्मणः सिद्धिर्नभवति, तथापि प्रत्यक्षप्रमाणेनैव निर्विशेषब्रह्मणः सिद्धिसम्भवः । प्रत्यक्षं द्विविधं निर्विकल्पकं सविकल्पकञ्च । तत्र प्रथमं निर्विशेषस्यग्राहकं द्वितीयं तु

चेतनम् । तत् क्वचित् सर्वज्ञत्वादिगुणकं यथाद्व्यणुकादीनामुत्पत्तौ परमेश्वरचेतनं निमित्तमुपादानं च परमाणुः । यथा वा घटादिकार्येनिमितं कुलाल उपादानं कपालादिकम् तथा च दृष्टविपरीतंकथमत्रेति । तथापि यथा तन्तुकार्ये उत्पादयितव्ये लूताकीट एवोपादानं स एव निमित्तकारणमपि । न चात्र लूताजीव एव निमित्तमुपादानं तदीयं शरीरमिति वाच्यम् । प्रकृतेऽपि तदासूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टपरमेश्वरस्य स्थूलचिदचिद्विशिष्टं प्रतिकारणत्वे-नोपलक्षितचेतनस्य निमित्तकारणत्वे विशेषणांशे चोपादानत्वमित्यवगन्तव्यम् इदं तु न्यायमतमनुसृत्य समाधानम् । वैयासकिमतमनुवर्तमानास्तु श्रुतिप्रमाणमनुसरन्तः सङ्कल्पादिगुणयोगात्सर्वज्ञः परमेश्वरोनिमित्तं भवति स्थूलचिदचिद्विशिष्टस्य जगतस्तथा उपादानमपिभवतीति । यत्र चेतनभिन्नमुपादानं भवति यथा घटादिकार्ये तत्रैवोपादानव्यतिरिक्तस्य चेतनस्याधिष्ठातृतयानिमित्तकारणत्वम् । तदन्तरेण कार्योत्पादस्यासंभवात् । यत्र तु चेतनमेवोपादानम् । तत्र तदतिरिक्तस्या चेतनान्तरस्य नास्ति प्रयोजनम् । प्रकृतेसर्वशक्तिमतएकस्यैवाभिन्ननिमित्तोपादनतेति 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्'

होने से अनन्त कहलाते हैं। इत्यादि शोधक वाक्यों से भी सत्यत्व ज्ञानवत्व अनन्तत्वादि लक्षण विशेष गुणवत्वरूप से सविशेष ब्रह्म की ही सिद्धि होती है। किन्तु नुर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं। अद्वैतवादी लोगों ने महान् प्रयास करके कारण वाक्य तथा शोधक वाक्यों के द्वारा निर्विशेष का साधन किया था। उस का निराकरण आचार्यजी ने कर दिया। विशेष अन्यत्र देखें।

अर्थात् "**आदेशो नेति नेति**" इस श्रुति से भी प्रपञ्च का निराकरण करके निर्विशेष ब्रह्म की सिद्धि नहीं होती है। इस बात को शङ्का समाधानपूर्वक सिद्ध करने के लिये उपक्रम करते हैं-"ननु **श्रुति प्रपञ्चनिषेधं न करोतीत्यादि।**' श्रुति के द्वारा सकलप्रपञ्च निषेध होता है इस बात को आप नहीं मानते हो क्योंकि प्रपञ्च निषेध का प्रतिपादन करने वाला कोई भी शब्द है ही नहीं, ऐसा आप क्यों कहते हैं? क्योंकि देखिये- प्रपञ्च का निषेधक शब्द तो विद्यमान है - "**अथात आदेशो नेति नेति**" (इस के बाद यह एक आदेश उपदेश होता है, यह नहीं है यह नहीं है) यह उपर्युक्त श्रुति का प्रतिषेधक विद्यमान है, तब आप कैसे कहते हैं कि प्रपञ्च प्रतिषेधक शब्द नहीं है। जबकी उपर्युक्त श्रुति विद्यमान है ऐसा अद्वैतियों ने कहा तब आचार्यजी कहते हैं कि इस "**नेति नेति**" श्रुति से किस का निषेध किया जाता है। ऐसा आप बोलो? तब अद्वैती कहते हैं "**द्वे वावब्रह्मणोरूपे मूर्तंचामूर्तं चेति**" ब्रह्म के दो रूप हैं एक तो पृथ्वी जल और तेज है, और दूसरा है, वायु

जातिगुणादिसहितवस्तुग्राहकमिति । तदपि न मनोरमम् । यदि प्रथमज्ञाने जात्यादीनां बोधो न स्यात् तदाद्वितीयादिप्रत्ययेऽपि तदवबोधस्याशक्यत्वात् तस्मात् प्रथममपि तद्ग्राकमेव । न चोभयत्र तद्भाने उभयोः कोभेद इति

इत्यादिसूत्रे श्रुतौ च तथैव प्रतिपादनादित्यादिकं सर्वं तत्र तत्र प्रपञ्चितमितिदिक् ।

निर्विशेषब्रह्मसाधनायाद्वैतिभिः 'सदेवसोम्येत्यादिकाश्रुतिःप्रमाणतयोपक्षिप्ताः । परन्तु सा सविशेषमेव तत् साधयति । निषेधबोधकपदाभावादितिद्योतयितुमुपक्रमते अपि च सदेवसोम्येदमग्रे इत्यादि । वाचकेन हि वाच्यस्यासिद्धिर्भवतीतिनियमः । परन्तु प्रकृतेनास्तिनिर्विशेषताप्रतिपादकःशब्दः । अपितु सविशेषताप्रतिपादकता तत्र तदेवदर्शयति अग्रे पदमिति । अग्रे इति पदं कालवाचकः । कालश्चकार्यकारणभावघटकः । नियताव्यवहितपूर्वकालवृत्तित्वमेवकारणम् । इति प्रकृतेजगत ब्रह्मणोः कार्यकारणत्वं कालःसूचयति । आसीदितिक्रियापि पूर्वकालसम्बन्धबोधिकाविशेषस्यैव । एवं च तदात्मकविशेष एव सिद्ध्यति । एकमेवेतिपदं च ब्रह्मणिजगदुपादानत्वादिविशेषमेवदर्शयति ततश्चसर्वविशेष एव ब्रह्मणिस्थापितो भवति । नतु तत्र निर्विशेषत्वमिति न तन्मतं साधुः ।

और आकाश जिसको अमूर्त शब्द से कहते हैं और पृथिव्यादि त्रयमूर्तपदवाच्य हैं। इस श्रुति से मूर्त तथा अमूर्त का निषेध किया जाता है। और "**मूर्तामूर्त**" पद उपलक्षण है, सकलप्रपञ्च का इस लिये सकलप्रपञ्च का निषेध नेति नेति पद से प्रतिपादित होता है। जिस तरह "**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः । मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्थावेद यत्र सः:**" इस काठक मन्त्र में ब्राह्मण क्षत्रिय पद उपलक्षण होने से उक्त पद से सकलप्रपञ्च ओदन स्थानापन्न सिद्ध होता है। इसीतरह प्रकृत में "**मूर्तामूर्तपद**" उपलक्षण है सकल दृश्य का तो "**नेति नेति**" जो मूर्तामूर्त का प्रतिषेधक है वह सकलप्रपञ्च का निषेधक सिद्ध होता है। इसप्रकार से अद्वैतियों ने कहा। इस के उत्तर में कहते हैं "**सत्यम्" इत्यादि । अर्थात्** आपका यह कहना कि "**द्वे वाव ब्रह्मणोरूपे**" इस श्रुति से उपस्थापित मूर्तामूर्त जो कि सकलप्रपञ्च का निषेध कराता है, उस सकलप्रपञ्च का निषेध का निषेध नेति से होता है यह आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि जो पदार्थ प्रमाणान्तर से सिद्ध नहीं होता है, एतादृश अप्रज्ञात पदार्थ का ही श्रुति विधान करती है। जिस तरह स्वर्ग अपूर्व इत्यादिक, अर्थात् स्वर्गादिक पदार्थ परोक्ष होने के कारण प्रत्यक्षादि से सिद्ध नहीं है, तादृश स्वर्ग को उद्देश्यकरके तादृश स्वर्ग का कारणरूप याग का विधान "**स्वर्गकामो वाजपेयेन यजेत**" इस से करती है। इस लिये "**अज्ञातार्थज्ञापकोविधिः**" ऐसा मीसांसकों ने कहा है। ऐसा नियम है। इस में जिस पदार्थ का एक बार विधान कर दिया गया उसका पुनः निषेध करना तो ठीक नहीं है। क्योंकि जब निषेध करने का ही है तब उस पदार्थ का विधान ठीक नहीं जंचता है। लोकोक्ति भी इसी तरह की है-"**प्रक्षालनाद्धि**" इत्यादि। इस का

वाच्यम् । अल्पाधिकविषमविषयग्राहकत्वेनैवतत्सम्भवात् । यद्वा निर्विकल्पकेविशेषणीभूतजात्यादौ अनुवृत्तत्वेनभासते, सविकल्पकेव्यक्ति-जाती तथा जातावनुवृत्तत्वस्यापिभानात् । तस्मात् सर्वं प्रत्यक्षं सविशेषवस्तुन एवग्राकं न तु निर्विशेषस्य ग्राहकमिति न निर्विकल्पकप्रत्यक्षेण-

यदिदंमन्येत मनसाप्यनालोचनीयंजगदाख्यंकार्यं तत्कारणेनजातमितिव्यवस्थापितम् तत्रकारणात् कार्यं जायते तत्रवादीनां विप्रतिपत्तयः सन्ति, तत्र केचनसतः परमाण्वादिकारणकलापात् प्रागभावप्रतियोगिकार्यमर्थादसदेवकार्यमुत्पद्यते । अर्थादुत्पत्तेः पूर्वमसदेवकार्यं कारणव्यापारेणसत् क्रियते, इति वैशेषिकाः । असत्कारणाद-र्थादभावादेवभावस्यसत्कार्यस्योत्पत्तिर्भवति, विनष्टादेव बीजादङ्कुराद्युत्पत्तिर्जायते 'नानुपमृद्यप्रादुर्भावादितिबौद्धाः । अन्ये सतो ब्रह्मणोऽसज्जगदाख्यं कार्यं जायते इत्यपि केचन अन्ये तु सत एव कारणात् सदेव कार्यं जायते इति वदन्ति । तत्राभावात्का-र्योत्पत्तिस्वीकारे अभावस्य सर्वत्र सुलभत्वात् सर्वं कार्यं सर्वत्रस्यादिति कार्योत्पादाय कारणमन्वेषणीयं न स्यात् । ततश्चाप्रयतमानस्यैव कुलालादेरनायासेनैव घटादिकार्यस्य

यह अर्थ है कि पङ्क का लेप लगा करके उस को पुनः धोने की अपेक्षा से उस पङ्क का स्पर्श न करना ही अच्छा है। उसी प्रकार मूर्तामूर्त प्रपञ्च को ब्रह्म का रूप कह करके पुनः आगे उसका निषेध करना, तदपेक्षया मूर्तामूर्त प्रपञ्च को ब्रह्म का रूप तरीके से कथन नहीं करना ही अच्छा है, किन्तु किसी अज्ञात अर्थ का विधान करके पुनः उस का निषेध करना अच्छा नहीं है, उस बात को न कहना ही उचित है। नहीं कहो कि नैयायिकों का नियम है कि अभाव ज्ञान में प्रतियोगिज्ञान की कारणता है जो पदार्थ ज्ञात होता है उसी का निराकरण किया जाता है, अन्यथा कूर्मरोम का अभावज्ञात भी ज्ञात होना चाहिये। इस नियम से ब्रह्म में जो मूर्तामूर्त का निराकरण करेंगे, उस के पूर्व में उस मूर्तामूर्त का विधान आवश्यक है। अन्यथा उस का निषेध नहीं होगा। इस लिये "**द्वे वाव**" यह श्रुति पहले ब्रह्म में रूपद्वय का विधान करती है तब द्वैत प्रतियोगिके प्रमित हो जाने के वाद "**नेति नेति**" श्रुति प्राप्त प्रतियोगि का निराकरण करती है। लोकोक्ति की सार्थकता लोक में ही होती है वेद में नहीं और अनुमान प्रमाण में ही दृष्टान्त की अपेक्षा होती है। शब्दप्रमाण स्थल में तथ प्रत्यक्ष प्रमाण स्थल में दृष्टान्त की आवश्यकता नहीं होती है। यहां तो यथा प्रमाण प्रमेय का व्यवस्थापन होता है। ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि "**नान्तरिक्षेऽग्निश्चेतव्यः**" इत्यादि स्थल में अप्रसक्त प्रतिषेध को भी माना गया है क्योंकि अन्तरिक्ष में अग्निचयन प्रमाण प्राप्त नहीं है तथापि उस का निषेध देखने में आता है।

तब पुनः अद्वैती पूछते हैं कि तब "**द्वे वाव ब्रह्मण**" इस श्रुति का तथा "**नेति नेति**" इस श्रुति का क्या अभिप्राय है ? इस के उत्तर में आचार्यश्री कहते हैं कि एक बार प्रतिषेध करके उस के बाद पुनः ब्रह्म के

निर्विशेषब्रह्मणः सिद्धिरिति संक्षेपः ।

स्वप्रकाशात्मके ब्रह्मणि उपाधिकृतधर्माणामभावः सर्वशब्दद्वारा-प्रतिपादितो भवतीति ते प्रतिपादयन्ति । तत्र पृच्छामि कीदृशः स शब्दः ? 'वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यमित्यादिश्रुतिः कारणत्वेनोप-

लाभः स्यात् । न वा निष्प्रपञ्चब्रह्मणः सकाशात् मिथ्याभूतस्य प्रपञ्चस्योत्पत्तिः संभवति । असतोः सदसतोर्वा तादात्म्यासंभवात् । ततश्चमतद्वयस्यायुक्तत्वात् । न्यायमतस्य निराकरणाय सतोरेव कार्यकारणभावसंभवेन सतोरेव कार्यकारणभावं' सदेवसोम्येदमग्रे आसीदिति श्रुतिर्बोधयितुं प्रवृत्तेति बोधयितुमुपक्रमते यस्यात् सदेवेत्यादिका श्रुतिरित्यादि । यत् इयं श्रुतिर्वस्तुभूतकार्यकारणभावम् । अर्थात् सत एव द्रव्यस्य कारणत्वे तथा बीजात्मनाऽवस्थितस्यैवातएवापरिदृश्यमानस्य सतो जगत्कार्यस्य कार्यत्वं प्रतिपादयति अतएवैतस्यामेवश्रुतावग्रे असदेवेदमग्रे आसीदित्यादिना असत्कार्यवादं निराकरोति । असतःकार्यत्वमनुपपन्नमानेत्यपि सङ्गच्छते । यदि कारणस्यासत्वंभवेत्तदाकारणाभिन्नं

गुण का विधान किया गया है, तो पुनः गुण का विधान देखने में आता है तो रूपद्वय का विधान करने से संप्राप्त जो ब्रह्म में इयत्ता, अर्थात् ब्रह्म में दो ही गुण हैं , इस भ्रम का निराकरण करने के लिये पुनः गुणान्तर का विधान है, अर्थात् ब्रह्म में दो ही गुण है, ऐसा नहीं है किन्तु ब्रह्म में तो अनन्त कल्याणगुण हैं, ऐसा श्रुति का तात्पर्य है। न केवल मूर्तामूर्त लक्षण गुणद्वय ही ब्रह्म में हैं। किन्तु अनेक गुण हैं इस बात को श्रुति बतलाती है और इस श्रुति का अभिप्राय तो सूत्रकार ने स्वयं बतलाया है "**प्रकृतैतावत्वं हि प्रतिषेधति**" इत्यादि सूत्र में प्रकृत-अर्थात् प्राप्त "**द्वे वाव**" इस श्रुति से जो रूपद्वयं की इयत्ता उस इयत्ता मात्र का "**नेति नेति**" श्रुति से निषेध किया जाता है। नतु रूप का निषेध है क्योंकि प्रतिषेध के बाद में भी "**सत्यस्य सत्यम्**" इत्यादि अग्रिम प्रकरण से अनेक गुण का विधान किया गया है। इस से यह सिद्ध होता है कि गुण का निषेध नहीं है, किन्तु केवल इयत्ता मात्र का निषेध किया गया है। इत्यादि अर्थ का सूत्रकार ने स्वयमेव समर्थन किया है। इस प्रकरण के संक्षिप्त अर्थ को बतलाते हुये प्रकरण का उपसंहार करते हैं "**मूर्तामूर्तनिषेध इत्यादि नेतिनेति**" इत्यादि श्रुति से जो मूर्तामूर्त का निषेध किया गया है वह प्रपञ्चमात्र का अर्थात् इस से सकल प्रपञ्च का निषेध सिद्ध नहीं होता है। किन्तु "**द्वे वाव ब्रह्मणोरूपे**" इत्यादि श्रुति से परमेश्वर के गुण में जो इयत्ता कही गई है अर्थात् दो ही गुण हैं, यहां जो कथन किया है उस इयत्ता मात्र का निराकरण किया गया है, भगवान् का मूर्तामूर्त ही गुण नहीं है। किन्तु अनन्त कल्याणगुण भगवान् के हैं इस में श्रुति का तात्पर्य है क्योंकि आगे चल करके "सत्यस्य सत्यम्" स्वरूप में सर्वथा विकार रहित अत एव सत्य जो जीव तदपेक्षया-स्वरूप तथा गुण विकार से रहित परमात्मा सत्य है। इत्यादि अनेक गुण का कथन श्रुति में किया गता है। इत्यादि रूप से प्रकरण के संक्षिप्तार्थ को जानना चाहिये। अद्वैती लोगों ने पूर्व में कहा था कि- "**नेह नानास्ति किंचन**" इस

लक्षितस्य वस्तुमात्रस्य सत्यतांवदति, तदन्यस्य विकारनामधेययोर्वा-चारंभणमात्रत्वेनमिथ्यात्वं प्रतिपादयतीति न युक्तम् । एकस्मिन् विदिते सर्वं विज्ञातं भवतीति गुरुवचनमाकर्ण्य अन्यविज्ञानेन तदन्यस्य विज्ञानं

कार्यकथंसत् भवेत् । अर्थात् नैवकथमपिसत् स्यात् । असतोःसदसतोश्चतादात्म्याभावात् दृश्यते च कार्यावस्थापरमपिकारणानुवर्तनंसौवर्णोघट इत्यादिप्रयोगस्य बहुलमुपलम्भादिति ।

ननु कार्यकारणयोः शब्दबुद्धिकार्यादीनांभेदात् कथं तयोरैक्यम् । तथाहि तन्तुरितिकारणबोधकः शब्दः बुद्धिरपितथैवकार्यं च तन्तूनांपटः । पटःकार्यमितिशब्दः पट इति ज्ञानम्, कार्यं च पदस्यप्रावरणमितिशब्दादिभेदात् कथं तयोरैक्यम्, कथंवाउत्पत्तेः-प्राक्पटस्य न प्रत्यक्षतेति । तथा यदि सत्वात्पटः पूर्वमपि विद्यते एवतदातत्कार्यं नोत्पद्येत उत्पन्नस्योत्पत्त्ययोगात् । तदुत्पत्तिप्रतितस्य द्रव्यस्य तादात्म्येन प्रतिबन्धकत्वात् । अतएवोत्पन्नस्यापि द्रव्यस्य समवायिकारणासमवायिनिमित्तादीनामवस्थानेऽपिपुनस्त्पत्तिर्न भवति । पूर्वमपि कार्यसद्भावे समुत्पन्नस्यापि पुनस्त्पादवरणमशक्यं स्यात् प्रवाहपरम्पराप्यापद्येत इत्यासङ्कां निवारयितुमाह-न चोत्पत्तेप्रागपिकार्यस्यसत्वे इत्यादि ।

श्रुति से ब्रह्म में नाना वस्तु सामान्य का निषेध होने से ब्रह्मात्मक अद्वैत की सिद्धि होती है। इस मत का निराकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं **''किंच नेह नानेत्यादि''** जिस तरह **''अर्थात् आदेशो नेति नेति''** इस श्रुति से प्रपञ्च का निषेध नहीं होता है, उसी तरह **''नेह नानास्ति किंचन'' इस ब्रह्म** में नाना कोई भी पदार्थ नहीं है। अर्थात् सकलप्रपञ्च रहित केवल **ब्रह्म ही हैं इस श्रुति** से प्रपञ्च का निषेध सिद्ध नहीं होता है। इस लिये यहां उत्तर- अर्थात् अग्रिम प्रकरण में **''सर्वस्यवशी'' यह** परमेश्वर सब को अधिकार में रखनेवाला है। **''सर्वस्येशानः''** सबका यह परमेश्वर स्वामी है। इत्यादि से सत्यसंकल्पत्व सर्वेश्वरत्व सर्वशरीरकत्वादिगुण का परमेश्वर में विधान किया है। इस लिये कथित श्रुतियों के साथ प्रकृत श्रुति का विरोध न हो इस लिये इस श्रुति का एतदनुकूल ही अर्थ करना चाहिये। इस से तो जडचेतन शरीरक परमेश्वर का साधन होता है अर्थात् जडचेतन सब पदार्थ भगवान् का शेष है, भगवान् सब का स्वामी तथा अन्तरात्मा है। तब जिस वस्तु को देखते हो उन सब वस्तुओं का भगवान् ही अन्तारात्मा है ऐसा जानो। इस से यह सिद्ध होता है कि सर्वशरीरवाले परमेश्वर एक ही हैं और वहां अनेक रूप से सर्वत्र होते हैं। भगवदवयवरूप जडचेतन साधारण प्रपञ्च नहीं है, यह अर्थ सिद्ध नहीं होता है। जिससे कि आप प्रपञ्च निषेध को सिद्ध करते हो। अतः अब्रह्मात्मक नाना पदार्थ का निराकरण होता है। इस विषय पर पूर्व में विचार हो गया है। इस लिये मूलानुसार अर्थ को ही यहां देखिए।

ब्रह्म विषयक ब्रह्माश्रित अनादि अनिर्वचनीय अज्ञान से ब्रह्म स्वरूप का आच्छादन होता है तब आवृत स्वरूप ब्रह्म में उसी अविद्या के बल से जीवेश्वरादि विविध प्रपञ्च को ब्रह्म में देखता है। ऐसा जो

कथं स्यादितीशिष्याशयं ज्ञात्वा पुनराचार्यः शिष्यं प्राह-अस्य समस्तस्य जडचेतनसाधारणस्य जगत एकमेव सदादिकारणम् । तत्कारणाव-स्थायामेकरूपं कार्यावस्थायामनेकरूपेण व्यवस्थितम् । तत्रोभयावस्थयोः सर्वं रूपं सत्यमेवेति तत्रैकस्य विज्ञानेसति विभिन्नरूपेणावस्थितं सव

अयंभावः नहिकार्यस्योत्पत्तिर्नामकश्चिद्वस्तुविशेषः किन्तु पूर्वावस्थयाऽवस्थितं कारणं तदेव यदा अवस्थान्तरेण संयुज्यते, तस्यैवनामकार्योत्पत्तिरिति । उभयत्रद्रव्यस्यैकत्वादेवेति न च शब्दबुद्धिकार्यादिभेदोवस्तुतःकारणात् कार्यंभिनत्ति, अवस्थाभेदेन सर्वसंभवात् । यथा प्रत्येकं विष्टयः शिविकोद्वहनमकुर्वाणोऽपिमिलितास्तामुद्वहन्त्येव । न तत्र वस्तुनो भेदो भवति । कारणकार्ययोः सत्वेवहबोदृष्टान्ता भवन्ति । यथा प्रथमतो गविविद्यमानमेव दुग्धंपीडनेनततोनिःसरति न तु वृषभात्, अविद्यमानं दुग्धं निःसरति । तथा तिलेषु विद्यमानमेवतैलंनिष्पीडनेनाविर्भूतं भवति । न तु सिकतास्ववर्तमानं तैलं व्यापारसहस्रेण निःसार्यते । न च कार्यस्य कारणात् योऽभावः तस्यापि आविर्भावो भवति न वा ? आविर्भावस्याप्याविर्भावस्वीकारेऽनवस्था । अस्वीकारेकथंकार्यदर्शनम् । उत्पत्तावप्य-

अद्वैतमत है, उस को श्रुति विरुद्ध बतला करके अब उस में युक्तितर्क विरुद्धत्व को बतलाने के लिये आचार्यजी उपक्रम करते हैं **''आच्छाद्य विक्षिपति''** इत्यादि। पहले अद्वैतमत का संक्षेप में विवेचन करते ह। ब्रह्म में आश्रित तथा ब्रह्म विषयक अज्ञान सदा स्फूर्यमाण भी ब्रह्मतत्व को आवरण शक्ति से आवृत करके विक्षेप शक्ति के बल से उस तिरोहित ब्रह्म में जीवेश्वरादि विविध भेद को बतलाता है। और अविद्या समुत्पादितभेद प्रपञ्च का अनुभव करता है। एतादृश भवदुक्त प्रकार से सत् असत् से विलक्षण अनिर्वचनीय अज्ञान आवरण विक्षेप शक्ति से समन्वित हो करके स्वयं प्रकाश ज्ञान मात्र स्वरूपवाले ब्रह्म को आवरण करता है। अर्थात् तादृश अज्ञान से ब्रह्म आवृत हो जाता है। तदनन्तर तादृश शक्ति द्वययुक्त अज्ञान से तिरोहित ब्रह्म विक्षेप शक्ति से युक्त अज्ञान से उत्पादित जीवेश्वरत्वादि अनेक प्रकारक भेद को जो कि सर्वथा मिथ्याभूत है, उस को अपने में देखता है। और जब श्रवम मननादि द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार लक्षण विद्या का प्रादुर्भाव होता है तादृश विद्या के बल से एतादृश अज्ञान का विनाश हो जाता है, तब बन्धन रहित हो करके मुक्त हो गया, इत्यादि व्यवहार को प्राप्त कर जाता है। वस्तुतः न अज्ञान कोई वस्तु है न वा बन्ध कोई वास्तविक पदार्थ है न वा मोक्ष कोई पदार्थ वास्तविक है।

यह जो आपका सिद्धान्त है वह श्रुति विरुद्ध तो है ही परन्तु युक्ति द्वारा विचार करने पर भी युक्तियुक्त नहीं देखने में आता है। इसी का समर्थन करने के लिये कहते हैं **''तथाहि''** इत्यादि। प्रकाश का विनाश होना ही तो प्रकाश का तिरोधान है। और ब्रह्म तो ज्ञान स्वरूप होने से प्रकाशत्मक ही है। तो प्रकाशक तिरोधान हो जाता है, इस का मतलब होता है कि प्रकाशात्मक जो ज्ञान वह ब्रह्म का स्वरूप नहीं है किन्तु ज्ञान ब्रह्म का धर्म है तो ज्ञान के आगमापायी होने पर भी ब्रह्म का स्वरूप का विनाश नहीं होगा ? इस शङ्का का निराकरण

विज्ञातमेव भवति । तत्रायं मृदादिदृष्टान्तः । न तु तत्रकोपि शब्दः प्रतिषेधकोविद्यते । 'वाचारम्भणं विकार' इति तु वाणीव्यवहारेणारभ्यते इति आरम्भणम् । अर्थात् मृत्तिकायाः पिण्डरूपेण यदवस्थानं तस्यैव नाम करणं भवति । तत्समयेमृत्तिकाया मृत्तिकेतियन्नामतदन्यमेव । व्यवहारोपि पिण्डोयं सोपि कश्चिदतिरिक्त एव भवति । घटादि

स्यदोषस्यसमानत्वात् । 'यश्चोभयोः समोदोषः परिहारोपितादृशः । नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे' इति न्यायात् ।

न च कार्यस्य प्रागपिसत्वेतदर्थकारणव्यापारोपिनिरर्थक इतिशङ्कनीयम् । कारणव्यापारस्याविर्भावमात्रप्रयोजनकत्वात् । कारणव्यापारश्च कारणावस्थापन्नं कार्यं, कार्यरूपेणप्रकाशयति केवलं न तु तदुत्पादयति । यथा निशिनीडेषु विलीनः पतत्रीप्रभातेनीडादाविर्भूतो भवति । नतु तत्र पतत्रिणोनिशिविनाशः प्रभाते समुत्पादो भवति तथैव प्रकृतेर्नजगतः प्रलयावस्थायां विनाशः सर्गेचोत्पत्तिर्जायते किन्तुसूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टेब्रह्मणि तस्य तिरोभावः सर्गे च स्थूलचिदचिद्विशिष्टब्रह्मरूपेणाविर्भावो जायते । तत्र कार्यकार-

करने के लिये कहते है कि प्रकाश तो अर्थात् ज्ञान तो ब्रह्म का स्वरूप ही है , किन्तु ज्ञान ब्रह्म का धर्म नहीं है क्योंकि यदि ज्ञान को ब्रह्मधर्म माना जाय तो द्वैत प्रसङ्ग हो जायगा । अर्थात् ज्ञानधर्मवान् ब्रह्म को मानें तब तो सविशेष ब्रह्म सिद्ध होगा । निर्विशेष ब्रह्म सिद्ध न होगा । तब तो आपका जो ब्रह्म निर्विशेषवाद है उस के लिये तो तिलाञ्जलि दान हो जाता है । अतः प्रकाश का नाश ही प्रकाश तिरोधान है । तब अविद्या से ब्रह्म स्वरूप का तिरोधान मानें तब ब्रह्म नष्ट हो जायेगा, इस मूल का ही विनाशप्राप्त हो जाता है । तब यहां **"वृद्धिमिच्छतो मूलमपिनष्टम्"** मूल की वृद्धि करने की इच्छा से ऐसा व्यापार किया कि, जिसमें आपकी बात तो आगे पीछे परन्तु मूल का ही विनाश हो गया। यह लौकिक न्याय आपके मस्तकारूढ़ हो जाता है । इस प्रकार से अद्वैतमत युक्तियुक्त नहीं जमता है । इस प्रकार अविद्या से ब्रह्म का तिरोधान होना सर्वथा असंगत है । इस के ऊपर में विद्वान् लोग स्वयं विचार कर लें ।

अद्वैतवादी विशिष्टाद्वैतमत में दोष बतलाते हैं कि अद्वैतवादियों के मत में आपने अर्थात् विशिष्टाद्वैतवादी लोगों ने जीवात्म तिरोधान की अनुपपत्तिरूप दोष को बतलाये हैं । परन्तु यह जीवात्मा तिरोधानानुपपत्ति दोष तो विशिष्टाद्वैत में भी होता ही है । एतादृश दोष का निराकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं- **"स्यात्देतदित्यादि"** यह दोष तो तब हमको आप कह सकते हैं । यदि आपके विशिष्टाद्वैतवादियों के मत में न होता हो । परन्तु ऐसा तो है नहीं आपके मत में भी तो उपर्युक्त दोष होता ही है । तथाहि विशिष्टाद्वैत में भी तो जीवात्मा को विज्ञान स्वरूप ही मानते हैं । इस में **"विज्ञानघनः"** यह जीवात्मा विज्ञान घनरूप है अर्थात्

कार्यरूपेणावस्थितायाः मृत्तिकाया यन्नामतदन्यत् । व्यवहारोऽपि जलाहरणादिरूपोऽन्य एव । तथापि कारणवस्थकार्यावस्थयोर्यद्रूपं तत्सव सत्यमेव न तु मिथ्येति । एतदेवमृत्तिकेत्येवसत्यमित्यनेन कथितम् । एवं क्रमेणान्यस्य कारणस्य विज्ञानेन तदन्यस्य कार्यविज्ञानस्य सम्भवः प्रदर्शित

णयोरुभयोरपि ब्रह्मरूपत्वेतु सर्वदैवसत्यमेव । न तु कारणस्यकार्यस्यवाऽसत्वम् । एतावताऽनयाश्रुत्यावैशेषिकसिद्धान्तो निराकृतः । यद्यप्यत्रबहुवक्तव्यमवशिष्यते तथापि मूलभावमात्रप्रदर्शनायप्रवृत्तोविरमामि विशेषस्तु जिज्ञासुभिरन्यत्र द्रष्टव्यः ।

विशिष्टाद्वैतवादिनस्तुश्रुतौयस्यासत्कार्यवादस्यनिराकरणं तत् वैशेषिकाभिमतस्य अद्वैतवादिनस्तु इत्थं कथयन्ति-यदत्रवैशेषिकाभिमतस्य न वर्णनमपितु बौद्धाभितस्यनिराकरणम् । बौद्धाः हि सर्वं शून्यमेव शून्यमेवतत्वम् । कार्यमसत् कारणमसदेव । यथा शुक्तिरजतादिभ्रमेरजतादेरसत्वेऽपि सद्रूपेणभानं तथैव जगदपि सदात्मनाऽनाभ्रमेऽवभासते । एतादृशासत्कार्यवादस्यबौद्धाभिमतस्यात्रनिराकरणम् । वेदान्तिनस्तुभ्र-

ज्ञान स्वरूप है । इस श्रुति से जीवात्मा ज्ञान स्वरूप है । इस श्रुति से जीवात्मा ज्ञान स्वरूप है ऐसा सिद्ध होता है । और जब जीवात्मा विज्ञान स्वरूप है तब उस को स्वयं प्रकाश रूप भी मानना ही पडेगा, क्योंकि ***"अत्रायं पुरुषः"*** स्वप्नावस्था को अधिकृत करके श्रुति कहती है यहां अर्थात् स्वप्नावस्था में यह जीव स्वयं प्रकाश हो जाता है । इस श्रुति से सिद्ध होता है कि जीव स्वयं प्रकाश स्वरूपवाला है । इस स्थिति में मैं देव हूं मैं मनुष्यरूप हू मैं काना हूं मैं लंगड़ा हूं इत्यादि रूप जो जीव में देहाभिमान होता है वह जब तक जीव स्वरूप का तिरोधान नहीं होगा, तबतक इस देहात्माभिमान का उपपादन नहीं हो सकता है । जब शुक्तिका का जो स्वरूप है उस का तिरोधान नहीं होता है तब तक शुक्तिका में रजताध्यास नहीं होता है । अध्यास में अधिष्ठानगत जा विशेष धर्म है तदभाव ज्ञान में कारत्व होता है क्योंकि स्वरूप का यदि प्रकाश होगा तब तो उस में अध्यास नहीं हो सकेगा ! इस लिये आपके मत में अर्थात् विशिष्टाद्वैतवादियों के मत में भी स्वरूप तिरोधान को आवश्यक होने से, दोनों मत में तिरोधानानुपपत्तिरूप दोष तो समानरूप से होता है । इस लिये एक के माथे ऐसा दोष देना उचित नहीं है । ऐसा कहा भी है **"यस्योभयोः समो दोषः परिहारोपि तादृशः । नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे"** जो दोष उभय पक्ष में समान हो तथा उस का उत्तर भी समान हो तो एतादृश दोष का कथन नहीं करना चाहिये । इस लिये अद्वैतवादी को तिरोधानानुपपत्तिदोष है तो वह स्वरूप तिरोधानानुपपत्तिदोष तो आपके मत में भी समान ही होता है । अब अद्वैती विशिष्टाद्वैती के मत में दोषान्तर देने के लिये कहते हैं **"अपि च"** इत्यादि । और भी देखिये मेरे मत में अर्थात् अद्वैतवादी के मत में तो एक जीववाद है अर्थात् सर्वशरीर में एक ही जीव है, और आपलोग तो सुखदुःखादि की तथा जीवन मरण बन्ध मोक्षादिक की जो व्यवस्था है, उस का उपपादन करने के लिये तो अनेक जीववाद को मानते हैं तो

इति पूर्वोक्तम् ।

किञ्च 'वाचारम्भणं विकारः' इतिश्रुतेर्यदिकार्यजगतोमिथ्यात्वे तात्पर्यं भवेत्तदा येनाश्रुतं श्रुतं भवतीत्यत्रापि तदेवप्रतिज्ञातं भवेत्, परन्तु तदा 'यथासौम्येकेनमृत्पिण्डेन' यो दृष्टान्तः प्रदत्तः स नयुक्तः । यतस्तत्र साध्यस्यासत्वादपितुरज्जुसर्पादिरेव दृष्टान्ततयायुक्तः स्यात् । यतस्तत्र

मेभासनमध्यस्तं मिथ्याअधिष्ठानं तु सत्यमेव । यथा रजतादिभ्रमेऽधिष्ठानभूतशुक्तिकायाः सत्यत्वदर्शनात् । तथैवचिद्रूपे ब्रह्मणि विवर्तमानंजगत् अविद्यादिदोषवशात् ब्रह्मण्यध्यस्ततया मिथ्यैव । एतावानेवविशेषोयत् रजतभ्रमेदोशादिकंसत्यमिव, जगद्भ्रमेतु अविद्यादिदोषादिकंसर्वमध्यस्तमेव । केवलमधिष्ठानमात्रं सत्यम् अधिष्ठानस्यापिसत्यत्वेतस्याप्यध्यासायाधिष्ठानान्तरं कल्पनीयमित्यनवस्थैवस्यात् निरधिष्ठानकभ्रमासंभवाच्चेत्यादिशंकरमतप्रतिक्षेपाय, अर्थात् नात्रबौद्धाभिमतासत्कार्यवादस्यनिरासः किन्तुवैशेषिकाभिमसत्यैव निरासोऽभिमतं श्रुतेरित्यादिकं दर्शयितुमुपक्रमते 'ननु यो योऽध्यासः इत्यादि । निरधिष्ठानकभ्रमो न भवतीति । यश्चभ्रमः स साधिष्ठानक एव । यथा शुक्तिरजताविति । तदप्यधिष्ठानं सत्यमेव, कल्पितस्याधिष्ठानस्याध्यस्तत्वेनाधिष्ठानत्वायोगात् । यथा

अनेक जीवों के स्वरूप का तिरोधान तो दुर्घट होता है, जिसका समाधान अशक्यप्राय ही है। तो इस प्रकार से यह द्वितीय दोष भी आपके अर्थात् विशिष्टाद्वैतवादी के मत में होता है।

इस शङ्का का समाधान करने के लिये सिद्धान्ती कहते हैं "अत्रोच्यते" इत्यादि। अब सिद्धान्ती स्वमत में जीव स्वरूप का तिरोधान की उपपत्ति बतलाते हैं। जो व्यक्ति समस्त हेय रहित अनन्तकल्याणगुण का महासमुद्र जिन की दो प्रकार की लीलाविभूति भोगाविभूति हैं जिस में प्रकृति मण्डल सहायक है, तथा द्वितीय विभूति में कालादि किसी भी पदार्थ का प्रभाव नहीं होता है। केवल अपरिमित शक्ति स्वेच्छा मात्र से सभी अलौकिक व्यवहार होता है जो सर्वज्ञत्वादि विविध कल्याणगुणों से सर्वदा सम्पन्न रहते हैं तादृश महापुरुष श्रीरामजी का जो उपासना करने वाले हैं। तथा भगवदुदीरित अनादि सम्प्रदाय विच्छेदरहित वेद राशि के प्रामाण्य को मानते हैं एवं एतादृश वेदमूलक इतिहास पुराणादिक का प्रामाण्य को मानने वाले व्यक्ति हैं उन को तो सर्वतुच्छ शङ्का का समाधान अनायास से ही हो जाता है। आगत दोषों का निराकरण करने वाले तत् तत् ऋषि पुराणादि वचनों को उदाहृत करते हैं - तदुक्तं भगवतेत्यादि,यो मामजमनादिं चेति । भगवान् द्वैपायन ऋषिने महाभारत में कहा है - यो मामजमनादिमिति ।

अर्थात् मनुष्यों में जो मनुष्य जोकि निर्मल अन्तः करणवाले उपासना के बल से हो गये हैं, वे मुझ परमेश्वर को इतर सजातीय न मान कर के अच्छीतरह से समझते हैं वे भक्ति प्रपत्ति की उत्पत्ति में विरोधी

मिथ्यात्वसाध्यस्य सर्वसिद्धत्वात् । न च घटादिष्वपि मिथ्यात्वं साध्यं साधनीयमेव पक्षसमत्वात्तस्येतिवाच्यम् । एवं सति तस्य दृष्टान्तता न स्यात् । उभयसिद्धस्यैव दृष्टान्तत्वादितिसंक्षेपः ।

'सदेवसोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्यत्र 'एकम्, एव,

कल्पितरजतेन कस्याप्यधिष्ठानं न भवति । तथा यद्यधिष्ठानमपि कल्पितं तदातस्याप्यधिष्ठानता न स्यात् तस्मात् तस्य सत्यत्वमेवैषणीयम् जगद्भ्रमेऽपि दोषाश्रयीभूतं ज्ञानात्मकं ब्रह्म सत्यमेवाधिष्ठानं तस्मिन् जगत् विवर्तते इति ।

तदिदं बौद्धाभिमतासत्कार्यवादनिराकरणपरकमद्वैतवेदान्त्यभिमतपक्षं निराकर्तुमाह तन्न युक्तमिति । निराकरणप्रकारं दर्शयति- मृद्विकारेत्यादि यस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीत्याद्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा यथा सोम्यैकेनमृत्पिण्डेन इत्यादि मृद्विकारादिदृष्टांतप्रदर्शनपरा । सेयं सत्कार्यवादमेव पोषयति । यदुक्तंभवता निरधिष्ठानकभ्रमो न भवति, तदपि भवतो वाङ्मात्रमेव, किन्तु तदुपपादयितुं न शक्यते । यो हि वादी चेतन गतं दोषं पारमार्थिकं मनुते दोषाश्रयत्वादिकं च सत्यं स्वीकरोति । तन्मते सत्यदोषबलात्

सकल प्रकारकपाप बन्धन से छुट जाते हैं। मुझको वे लोग ऐसा समझते हैं कि भगवान् श्रीरामजी अज हैं अर्थात् अस्मदादि की तरह उत्पन्न होने वाले तथा मनण होने वाले नहीं हैं। इस से यह सिद्ध होता है कि भगवान् जड पदार्थ तथा बद्ध जीवों से विलक्षण हैं, क्योंकि जडपदार्थ **विकारी** द्रव्य है अतएव यह विकारीद्रव्य पूर्वावस्था का परित्याग कर के उत्तरावस्था को प्राप्त करता है ऐसा कहा है "**प्रतिक्षणपरिणामिनो हि भावा ऋते चिति शक्तेरिति ।**" अत एव पदार्थों का उत्पादन तथा विनाश होता रहता है। और एतादृश उत्पादन विनाशशील जो जडपदार्थ शरीरादिक उसके सम्बन्ध से संसारी चेतन का भी जन्म मरण होता रहता है संसारी चेतन का नवीन देह के साथ जो सम्बन्ध होता है उसी का नाम है जन्म एवं उत्पन्न तादृश शरीर का जो वियोग वही मृत्यु है न तु स्वभावतः जीव का उत्पाद विनाश होता है। क्योंकि स्वरूप से जीव नित्य है। इस तरह जडपदार्थ शरीरादिक तथा संसारी चेतन जन्म मरण परम्परा को प्राप्त करते हैं। परन्तु भगवान् श्रीरामजी कभी भी उत्पन्न होने वाले तथा विनष्ट होने वाले नहीं हैं। अतः भगवान् जड तथा जड सम्बद्ध संसारी चेतन से विलक्षण हैं ऐसा सिद्ध होता है। तथा भगवान् अजन्मा होते हुए अनादि हैं अर्थात् अनादिकाल से ही श्रीरामजी का जन्म नहीं होता है। इस अनादित्व विशेषण से यह सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीरामजी मुक्त जीवों से अर्थात् संसार बन्धन रहित जीवों से विलक्षण हैं क्योंकि मुक्तजीव पहले संसार में रहने के समय में जन्म लेते थे। अब मोक्ष में जाने के बाद इन का जन्म लेना बन्द होता है। भगवान् का तो जन्म कभी भी नहीं हुआ तथा न होगा। यद्यपि तत् तत् अवतार के समय में जन्म होता है, ऐसा प्रतिभासित होता है तथापि

अद्वितीयम्' इतिपदत्रयेण सजातीयविजातीयस्वगतभेदलक्षणविशेषस्य निराकरणेन सन्मात्रस्य ब्रह्मणोऽद्वैतं व्यवस्थितं भवतीति मतान्तरानुयायिनामुद्गारः । तन्न भावानवबोधात् । न हीयं प्रकृतश्रुतिः सदितरस्य सर्वस्य मिथ्यात्वसाधनाय प्रवृत्ता । किन्तु यत्र यद्वस्तुकारणावस्थयाऽवस्थितं

सत्येधिष्ठाने भवतु भ्रमः । परन्तु भवन्मते दोषादिकं सर्वमसत्यमेव । ततश्च यथाऽसत्यदोषबलात् भ्रभो जायते तथाऽसत्याधिष्ठानादपिभ्रमो भवतु ? इति यदि भवन्तं बौद्धा वदेयुस्तदातदुत्तरं ते किं ? नास्तिकिमप्युत्तरमिति न बौद्धमतखण्डनकर्तुं शक्नोतिभवानिति नात्र बौद्धाभिमतासत्कार्यवादस्य चर्चा न वा तन्निराकरणम् । किन्तु प्रकृते वैशेषिकाभिमतासत्कार्यवादस्यनिराकरणमिति प्रतिभाति तथा यथा सर्वस्य दोषादेरपारमार्थिकत्वेऽपिभ्रमोभवति, तथा यदि अपारमार्थिकाधिष्ठानेनापि केशोऽणुकादिवद्भ्रमः संभवत्येवेति ।

यद् वाक्यं परब्रह्मणि जगत् कारणतां बोधयति तद्वाक्यं कारणवाक्यमितिपदेन व्यवह्रियते तथा यद्वाक्यं तादृशे ब्रह्मणि कारणत्वेनेतरकारणसादृश्यमात्रेणसमागता

जन्म अवतार वस्तु अत्यन्त भिन्न हैं। एवं मुक्तजीवों को संसार के समय में दोषों का सम्बन्ध था। परन्तु भगवान् को तो कभी भी दोष सम्बन्ध नहीं होता है। इस से यह सिद्ध होता है कि भगवान् मुक्तजीवों से भी अत्यन्त विलक्षण हैं। और भगवान् श्रीरामजी लोक महेश्वर है अर्थात् लोकेश्वर जो ग्रहपालादिक हैं उन का भी वे ईश्वर शासक हैं। इस से सिद्ध होता है कि श्रीरामजी सर्वविलक्षण हैं। यद्यपि लोक में तो राजा अथवा कोई महात्मा लोग में शासक होने से मनुष्यों में शासक होने से मनुष्य श्रेष्ठ कहलाते हैं तथापि इतर मनुष्यों का शासक होने से भी इतर मनुष्यों सजातीय तो मनुष्यरूप से रहता ही है। एवं देवों का अधिपति इन्द्र हैं वे इतर देवों से श्रेष्ठ होने पर भी देवत्वेन तत्सजातीय ही हैं। परन्तु भगवान् तो सर्वापेक्षया अतिविलक्षण हैं। वे कार्यकारण में रहने वाले जडद्रव्य तथा बद्धमुक्त चेतन प्रभृतिक सर्व पदार्थापेक्षया अत्यन्त विलक्षण है, तो भगवान् स्वयं कहते हैं कि एतादृश उर्युक्त विशेषणों से युक्त हमको जो उपासक समझते हैं वे उपासक भक्ति प्रपत्ति प्रतिबन्धक सब पापकर्म से छुटकारा पा जाते हैं। इस से यह सिद्ध हुआ कि श्रीरामजी जडचेतन सभी पदार्थो से विलक्षण हैं।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥

वेदव्यासजी ने भी गीता में कहा है- द्वाविमावित्यादि इस का यह अर्थ है कि पुरुष दो प्रकार के होते हैं, एक क्षर पुरुष तथा द्वितीय अक्षर पुरुष। उस में उत्पत्ति विनाशशील शरीर के सम्बन्ध से उत्पादविनाशशील

कार्यावस्थयाऽवस्थितमेकमेव द्रव्यं भवति तत्र कारणावस्थयाऽवस्थितस्य ज्ञानेन कार्यावस्थावस्थितस्यापि ज्ञानं जायते एवेति मृदादिदृष्टान्तं दर्शयित्वा सर्वस्यापि जगतः कारणं ब्रह्मैवेति श्वेतकेतोः शिष्यस्य प्रज्ञापयितुं 'सदेव सोम्य' इत्यादिप्रकरणमारब्धवान् । तत्रेदं जगत् अग्रे सदेवासीत् । तत्र अग्रे

मनुपपत्यादिकंव्यपोह्यकारणत्वंस्थिरयति, तद्वाक्यंशोधकवाक्यमिति । प्रकृते 'सदेव सोम्येत्यादिवाक्यं परस्मिन् कारणतां बोधयति । तदनन्तरं भवति कस्यचिदियं शङ्का यथा मृत्तिकादिकं घटादिकारणं तत्परिच्छिन्नं जडं च । इतीमां शङ्कांनिराकृत्यपरमेश्वरं शोधयति । यत् कारणं ब्रह्म तत् 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' यत् इदं ब्रह्म सत्यं अर्थात् सत्यत्वधर्मवत् तस्मादसत्येभ्योव्यावृत्तम् । यतश्च ज्ञानवत् तस्माज्जडेभ्योव्यावृत्तम् । यतश्चानन्तम् अर्थात् अन्तवत्वरहितं तस्मात् परिच्छिन्नमृदादिभ्यो व्यावृत्तमिति सर्वेभ्योव्यावृत्तत्वात् सर्वविलक्षणमिति सत्यत्वज्ञानवत्वापरिच्छिन्नादिविविधगुणवत्वगुणानां परस्मिन् प्रतिपादनेन शोधकवाक्यं सर्वदोषेभ्यो विनिर्मुक्तं कुर्वन् सर्वविलक्षणत्वं बोधयति । तथासत्यादिकं समानार्थबोधनेच्छयाप्रयुक्तं समानाधिकरणवाक्यमित्यप्यभिधीयते । तस्मात् कारणवाक्यवत्, अर्थात् 'सदेव सोम्येत्यादिकारणताबोधकवाक्यवत्, शोधकमिदंसत्यंज्ञानम-

---

जो जीव है वह तो क्षर पुरुष कहलाता है। और जड सम्बन्ध से रहित तथा निर्विकार स्वकीयरूप में अवस्थित मोक्ष प्राप्त जीव अक्षर पुरुष पद से प्रतिपादित होते हैं। इन दोनों से अतिरिक्त उत्तम पुरुष पद से कहे जाते हैं ये बद्ध तथा मुक्त पुरुषों से सर्वथा भिन्न हैं। इन्हिं को वेद में परमात्मा शब्द से कथन किया गया है। अचेतन शरीरों के अन्दर रहने वाला जीवात्मा वस्तुतः एक आत्मा है। ये परमात्मा जीवात्मा के अन्तर में रहते हैं। इस लिये जीवात्मा से परमात्मा भिन्न हैं आधाराधेय में भेद होता है। और उन के अन्दर रहने वाले कोई आत्मा नहीं है। व ही अचेतन तथा चेतन जीव के अन्दर रहने वाले आत्मा हैं। इस लिये उनको परमात्मा कहते हैं। प्रमाण से गृहीत होने वाले जडपदार्थ बद्ध चेतन और मुक्त चेतन इन तीन प्रकार के पदार्थों में अन्तरात्मा के रूप में आवेश करके परमात्मा इन जडादिक सर्वपदार्थों से भिन्न सिद्ध होते हैं। क्योंकि धार्य्यधारक का भेद अनुभव सिद्ध है। अचेतन पदार्थ स्वयं विकारवाला है और बद्ध जीव विकारी शरीर के सम्बन्ध से ज्ञान में संकोच तथा विकासरूप विकार को प्राप्त करता है। मुक्त पुरुष यद्यपि विकाररहित है। तथापि मुक्तजीव पराधीन होते हैं। इस कारण वह मुक्त पुरुष भी विकार की प्राप्ति करने के योग्य है। इन में विकार की फलोपधायकता तो नहीं है परन्तु वनस्थ दण्डवत् स्वरूप योग्यत्व रूप कारणत्व है। परमपुरुष परमात्मा तो सर्वदा स्वरूप से तथा गुणों से भी निर्विकार होते हैं, तथा सर्वदा एकरूप रहते हैं, क्योंकि पूर्वावस्था तथा

इति पदेन प्रलयात्मककालविशेषः प्रोक्तः । प्रपञ्चस्य सर्वस्य सतिलयलक्षणा क्रिया प्रोक्ता । सदात्मकद्रव्यरूपतापि कथिता । एकमेवेति जगतो नामरूप योरभावं प्रतिपादयति । एतावता जगत उपादानकारणं

नन्तमिति वाक्यं सविशेषब्रह्मणएबोपस्थापकंभवति नतु निर्विशेषब्रह्मण उपस्थापकमिति सविशेषस्यैव सिद्धिर्नतु निर्विशेषस्येतिदिक् ।

ननु 'नेति नेति' श्रुत्या सर्वप्रपञ्चस्य निराकरणेन प्रपञ्चे मिथ्यात्वं तत् द्वाराच ब्रह्मणि निर्विशेषत्वमर्थत एव सिद्ध्यति । इत्यद्वैतिमतम् । तत्र सुहृद्भुत्वाचार्यो वक्ति-नेयं श्रुतिः प्रपञ्चनिषेधे तात्पर्यवती । तथात्वे 'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे' इत्यादिना रूपद्वयविधानस्य नैरर्थक्यात् । यदि किमपि विधाय तन्निरस्यति तदा तदपेक्षयाऽविधानमेव वरम् 'प्रक्षालनादित्यादिन्यायात् । इत्यादिकं सर्वं बोधयितुं देशिकाचार्योपक्रमते-'ननु श्रुतिः प्रपञ्चनिषेधमित्यादि । इतः पूर्वं ब्रह्मणोनिर्विशेषता बोधकः प्रपञ्चनिषेधको नास्ति कोऽपि शब्दः इतिकथितं तत्राद्वैतीपृच्छति प्रपञ्चनिषेधं न करोती त्यादि । प्रश्नमेवोपपादयति यावता नेति नेति इत्यादि । ननु सत्यं निषेधः क्रियते, परन्तु निषेधस्याभावरूपत्वेन, तस्य च

उत्तरावस्था का नियामककाल होता है परन्तु कालचक्र का परमेश्वर में गति नहीं होती है । इस कारण से भी सिद्ध होता है कि परमात्मा जड बद्ध जीव तथा मुक्त जीवों से भिन्न हैं । वह उत्तम पुरुष परमात्मा स्वामीबन करके इन पदार्थों के ऊपर शासन करते हैं। इस लिये वह सर्वेश्वर कहलाते हैं । ये जड तथा चेतन पदार्थ समुदाय उत्तम पुरुष के सदा नियन्त्रण में रहने वाले हैं। इस कारण से भी उत्तम पुरुष में जड तथा चेतन पदार्थ समुदायों से भेद सिद्ध होता है । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने पुरुषोत्तमत्व को बद्ध तथा मुक्त चेतनों से भिन्न सिद्ध किया.। इस तरह पुरुषोत्तम तत्व में सर्वविलक्षणत्व सिद्ध होता है । श्रीवेदव्यासजी ने महाभारत में कहा है-

कालं स पचते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः । एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मानः ॥ इति ।

अर्थात् भगवान् की दो प्रकार की विभूति हैं, एक तो लीलाविभूति तथा द्वितीय भोग विभूति है । उस में प्रथमतः द्वितीय भोग विभूति के विषय में वेदव्यास महाराज कहते हैं -"**कालं स पचते**" इति । अर्थात् भगवान् की जो भोग विभूति है, उस में कालका प्रभाव नहीं चलता है । वहां भोग विभूति में भगवान् काल को पचा देते हैं । परमपुरुष श्रीभगवान् श्रीरामजी के उस अलौकिक स्थान के आगे ये मनुष्यलोक से लेकर के प्रजापतिलोक पर्यन्त जो स्वर्गादिकलोक हैं ये सब नरक की तरह अति उपेक्षणीय हैं । इसी भोग विभूति को लक्षित करके कहा गया है- "**एतस्यैवानन्दस्य मात्रामुपजीवत्यन्यभूतानि**" **इसी** आनन्दसागर का लेश मात्र का अनुभव अन्य जीवों को होता है । लोक में भी कहा है कि- "**अविदितपरमानन्दो वदति जनो विषयमेवरमणीयम् । तिलतैलमेवमिष्टं येन न दृष्टं घृतं क्वापि**" जिन्होंने परमानन्द का अनुभव नहीं किया है वे ही लोग विषयजनित आनन्द को ही आनन्द कहते हैं, जिस तरह जिन्होंने घृत के आस्वाद को प्राप्त नहीं

सद्ब्रह्मैवेति ज्ञायत । श्रुतिस्थमद्वितीयमिति पदं जगत्कार्ये उपादानव्यतिरिक्तमधिष्ठातारं वारयति । यद्यपि घटादिकार्ये मृदात्मकोपादानातिरिक्तोधिष्ठाता कुलालादिरपेक्षितो भवति चेतनानधिष्ठितस्याचेतनस्य कार्यानुत्पादकत्वदर्शनात् । तथापि यत्राचेतनमुपादानं तत्र चेतनस्याधिष्ठातुरावश्यकता भवतु नाम । प्रकृते तु

प्रतियोग्यनुयोगिसापेक्षतया तस्य प्रतियोगी कः? इति जिज्ञासया पृच्छति सिद्धान्ती प्रश्न कर्तारम् न च कस्यात्रनिषेधः इत्यादि । नेति नेति पदवाच्याभावस्य प्रतियोगी कः? इति जिज्ञासितुरभिप्राय इति । समाधानाय प्रयतते द्वे वाव ब्रह्मणः इत्यादि । अनया श्रुत्या ब्रह्मणि रूपद्वयं मूर्तात्मकममूर्तात्मकं च तयोरूपलक्षत्वेन यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चेत्यादिश्रुतौ यथा ब्रह्मक्षत्रपदयोरुपलक्षणत्वात्सर्वदृश्यपरकत्वं तथैव मूर्तामूर्तयोः सर्वप्रपञ्चबोधकत्वात् सर्वप्रपञ्चनिषेध एवानयाश्रुत्या प्रतिपादितो भवतीत्यर्थः।

सिद्धान्ती समादधाति सत्यमिति । उत्तरप्रकारमेव दर्शयति अज्ञातमेवार्थश्रुतिरित्यादि अज्ञातार्थज्ञापको विधिरिति-नियमः । यद्वस्तु प्रमाणान्तरेण न प्राप्तं तस्यैव विधानं श्रुतिः

किया है वे लोग तिल के मीठा तेल को ही मीठा कहते हैं । इस से यह सिद्ध होता है कि भोगविभूति में जो सुख है वह कालादि परिच्छेद रहित सर्वथा अलौकिक सर्वातिशायी है । लीलाविभूति के विषय में वेदव्यासजी ने महाभारत में कहा है-

अव्यक्तादिविशेषान्तं परिणामर्द्धि संयुतम् । क्रीडा हरेरिदं सर्वं क्षरमित्युपधार्यताम् ॥

अर्थात् अव्यक्त अर्थात् सर्वमूल कारण गुणत्रय का समुदायात्मक प्रकृति से लेकर के विशेषान्त अर्थात् महाभूत तक के जितने स्थूल सूक्ष्म पदार्थ समुदाय हैं ये सभी वृद्धि ह्रास इत्यादि अवस्था को प्राप्त करने वाले होते हैं । ये सब भगवान् पुरुषोत्तम श्रीरामजी की लीलाविभूति हैं । इन को क्षर समझना चाहिये । क्योंकि ये उत्पादविनाशशाली हैं । इस वचन से भगवान् की जो लीलाविभूति है उस की सिद्धि होती है । महाभारत में ही अन्यत्र परमऋषि वेदव्यासजी ने कहा है-

कृष्ण एव ही लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः । कृष्णस्य ही कृते भूतमिदं विश्वं चराचरम् ॥

इस का आशय यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण ही इन लोकों का उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय का निदान कारण हैं । यह चराचर जगत् भगवान् श्रीकृष्ण के लिये ही है । अर्थात् भगवान् के सुखोल्लास के लिये है इस वचन से सिद्ध होता है कि इस चराचर जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा विनाश भगवान् के अधीन है तथा यह जगत् भगवान् की वस्तु है । श्रीपराशर ऋषिजी ने भी विष्णुपुराण में कहा है-

शुद्धे महाविभूत्याख्ये परे ब्रह्मणि शब्द्यते । मेत्रैय भगवच्छब्दः सर्वकारणकारणे ॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वर्य वीर्यतेजांस्यशेषतः । भगवच्छब्दबाच्यानि विनाहेयैर्गुणादिभिः ॥

सर्वज्ञस्य सर्वविदः सर्वशक्तिमत्वेनोपादानव्यतिरिक्तचेतनानपेक्षत्वमेव । यतो भगवान् श्रीरामः सर्वविलक्षणः सर्वशक्तियुक्तोऽतएव श्रुतिरप्युपादानत्वं निमित्तत्वं च प्रतिपादयति । सन्ति तादृश्योऽनेका श्रुतयः 'किस्विद्वनंकउतवृक्षः' इत्यादिकाः निमित्तस्योपादानत्वं कथमन्यत्राद्दृष्टत्वादिक्रमेण प्रश्नं कृत्वा सर्वशक्तियुक्तत्वात् । ब्रह्मैवोपादानम् तदेवनिमित्तं

करोति । ब्रह्मणि मूर्तामूर्तात्मकं स्पद्वयं श्रुत्या कृतम् । यदि विधाय पुनर्निषेधति तदा तद्विधानं निरर्थकमेवभवति । तथा च लोकोक्तिः 'प्रक्षालनादित्यादि' ननु तदा 'नेति नेति' इतयादिश्रुतेः कोऽभिप्रायः ? श्रुत्यभिप्रायं सूत्रकार एव प्रोवाच-'प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः' इति । अयमभिप्रायः-नेति नेति श्रुतेः-'द्वे वाव' इत्यादिना ब्रह्मणो गुणस्येयत्ता प्रतिपादिता' । एतावानेव ब्रह्मणि गुणः । एतादृशगुणेयत्तायाः प्रतिषेधं श्रुतिः करोतीत्यभिप्रायः । नतु तदतिरिक्तगुणानां निराकरणं करोति । यतः प्रतिषेधानन्तरमपि सत्यस्यसत्यभित्यादिना गुणान्तराणां विधानं करोत्येवेत्यादिकं यथामूलमेवावधेयम् । समस्तप्रकरणस्य सङ्ग्रहः श्लोकेन कृतः । मूर्तामूर्तनिशेधो हीत्यादि । नेति नेतीत्यादिना-भूर्तामूर्तनिषेधद्वारा प्रपञ्चस्यनिषेधो न भवति । किन्तु संप्राप्तब्रह्मगुणानां या इयत्ता सैव

एवमेव महा शब्दो मैत्रेय ! भगवानिति । परमब्रह्मभूतस्य वासुदेवस्य नान्यगः ॥
तत्र पूज्यपदार्थोक्तिः परिभाषा समन्वितः । शब्दो येनोपचारेणह्यन्यत्र ह्युपचारतः ॥ इति

एतेषामर्थाः - हे मैत्रेय ! भगवान् नित्य शुद्ध हैं। वे अति उच्च भोगविभूति के मालिक हैं, इस से भगवान् का "महाविभूति" ऐसा नाम किया गया है। वह भगवान् लीलाविभूति के अन्तर्गत सभी पदार्थों के कारण हैं वह परंब्रह्म हैं। उन के नामरूप में भगवान् एतादृश शब्द का प्रयोग होता है। "

भगवान्" इस शब्द में भ.ग.व. अन्" ऐसा चार अक्षर हैं, इस में अन् के उलटाने से अर्थात् व्यत्यास करने पर "न" बन जाता है। जिस तरह हिंसि हिंसायाम् यहां "हिंस" का वर्ण का व्यत्यास करने पर "सिंह" बन जाता है । वैयाकरणों का मत है "भवेद्वर्णागमाद् हंसः सिंहोवर्णविपर्ययात् । गूढोत्मावर्णविकृते वर्णनाशात्पृषोदर मिति" इसी तरह अन् का व्यत्यास करने पर प्रकृत में "न" बन जाता है। इस में पहले तीन वर्णों से "भ.ग.व." से ज्ञान शक्ति, बल ऐश्वर्य वीर्य और तेज ये छ गुण बतलाये जाते हैं। और "न" इस वर्ण से सकलदोष का अभाव बतलाया जाता है । और समुदित "भगवान्" शब्द से संपूर्ण षड्गुणों से युक्त एवं दोष रहित भगवत्तत्व का प्रतिपादन होता है। हे मैत्रेय ! इस प्रकार महान् अर्थ को बतलानेवाला भगवान् यह बहुत बडा शब्द परमब्रह्म दाशरथी श्रीरामजी को बतलाता है दूसरे किसी को नहीं बतलाता है, इस तरह यह भगवान् शब्द योग शक्ति तथा समुदायशक्ति से युक्त हो कर के मुख्य रूप से सर्वेश्वरश्रीरामजी का ही प्रतिपादक होता है भगवान् श्रीराम इस शब्द का मुख्य अर्थ है अन्यत्र यदि भगवान् शब्द का प्रयोग हो तो वह औपचारिक ही है

तदेवाशेषोपकरणमिति समादधतीति ।

अपि च 'सदेवसोम्येदमग्रे' इत्यादिश्रुतौ नास्तिकश्चनतादृशः शब्दो यश्च ब्रह्मणोनिर्विशेषतांसाधयेत् । प्रत्युतब्रह्मजगतोः कार्याकारणभावप्रद्योतनायैवशब्दोविद्यते तत्र 'अग्रे' इति पदं तयोः कार्यकारणभावं दर्शयति ।

वाधिता भवति । यतः प्रतिषेधानन्तरमपि पुनः सत्यस्यसत्यमित्यादिना अनेकगुणवत्वस्य ब्रह्मणि प्रतिपादनादिति श्लोकार्थः संक्षेपः ।

अद्वैतिनो हि 'नेहनानास्तिकिञ्चन' इति श्रुतिं दृष्ट्वा अनया सर्वप्रपञ्चनिषेधः क्रियते ततश्चार्थतो निर्विशेषब्रह्मसिद्धिर्भवतीति मन्यन्ते । तन्न शोभनम् । यतः 'नेति नेति' वाक्यवदिहापि सविशेषब्रह्मसिद्धिरेव भवति । यस्मादिहापि एतदुत्तरप्रकरणे सर्वेश्वरत्वसत्यसङ्कल्पत्वसर्वशरीरित्वस्य प्रतिपादनेन तदनुरोधादस्याः श्रुतेरपितथैवाभिप्रायो वर्णनीयो यावता विधिनिषेधश्रुत्या एकवाक्यता संभवेत् । ततश्च सर्वेश्वरत्वसर्वशरीरकत्वादिगुणविशिष्टः परमेश्वर एक एव न तु नानेत्ययमेवार्थः । अब्रह्मात्मकस्यैवानयानिराकरणम् । नतु प्रपंचस्य । प्रपञ्चस्य जड़चेतनसाधारणस्य परमेश्वरशरीरत्वात् । शेषशेषिणोस्तादात्म्यस्यप्रसाधनादिकं सर्वं बोधयितुमुपक्रमते किंच नेह नानास्तीत्यादि । इह ब्रह्मणि अब्रह्मात्मकं किञ्चननानास्ति

"ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसि षड्गुणाः । भगवत्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् ।
श्रीरामे भगवच्छब्दो मुख्यवृत्त्या प्रवर्त्तते । गौण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशतः" इत्यादि प्रबन्धों से जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यजी ने इसी विषय को स्पष्ट किया है। अन्याचार्यों ने भी इस विषय में बहुत विवेचन किया है विस्तारभय से नहीं लिख रहे हैं अतः उन्हीं प्रबन्धों से विशेष जिज्ञासुओं को जानना चाहिये। श्रीपराशरजी के इन वचनों से श्रीरामजी की दोनों विभूति का तथा भगवान् का नित्य निर्दोषत्व तथा अनन्तकल्याण गुणाकरत्व सिद्ध होता है। एवं श्रीपराशर ऋषि ने पुनः विष्णुपुराण में कहा है-

एवं प्रकारममलं सत्यं व्यापकमक्षरम् । समसहेयरहितं विष्णवाख्यं परमं पदम् ॥

इस का यह अर्थ है कि भगवान् श्रीविष्णु का जो स्वरूप है प्राप्य है, न केवल प्राप्य ग्रामादिक के समान प्राप्य है ऐसा नहीं है किन्तु परमप्राप्य है, तदितर प्राप्य सकल वस्तु है अतिविक्षण होने के कारण से वह परमप्राप्य है। वह विष्णु का स्वरूप तादृश गुणों से युक्त है यादृश गुण मुक्तजीव में भी विद्यमान रहते हैं। वह विष्णु स्वरूप निर्मल है, तथा सब मलों को नाश करने वाला भी है। वह स्वरूप है अर्थात् निर्विकार व्यापक एवं क्षय विनाशरहित है। वह विष्णु का स्वरूप सर्वदोषरहित है। इस से भगवान् विशुद्ध स्वरूप सिद्ध होते है, तथा अन्यत्र भी श्रीपराशरजी महर्षि ने कहा है- " कलामुहूर्तादिभयश्च काले न यद्विभूतेः परिणामहेतुः । "अर्थात् कला मुहूर्त दिन रात्रि मास संवत्सरादिरूप में परिणाम

कार्यपूर्ववर्तिनः कारणत्वात्, कारणपरवृत्तित्वस्य कार्यत्वाच्च, आसीदितिपदेन क्रियाविशेषस्य बोधनात् । तथा निमित्तोपादानयोर्भेदनिराकरणद्वारेण 'एकमेवेतिपदेन जगदुपादानत्वं निमित्तत्वमिति जगदुपादानत्वादिधर्मविशेष एव ब्रह्मणि प्रदर्शितो भवति, तथा ब्रह्मणि

न विद्यते इत्यर्थः प्रकृतश्रुतेः । तदिह ब्रह्मभिन्ननानात्वस्यैव निराकरणं, प्रपञ्चस्य ब्रह्मशरीरत्वेन तदनिषेधादिति । एतत्तत्वं प्रागेव महता विस्तारेण प्रतिपादितमिति नात्र पुनस्तन्निर्वचनं क्रियतेऽतोयथामूलमेव सर्वमवधातव्यम् ।

ब्रह्मवादिनां मते एकं स्वप्रकाशज्ञानमात्रं ब्रह्मैव परमार्थसत्यम् । तदन्यत्सर्वमविद्यादिकं वस्तु तथाविधे ब्रह्मणि समारोपितं सत् व्यावहारिकसत्वरूपेण विवर्तमानं सदवभासते । तत्राविद्याध्यासोऽनादिरेव तद्बालादेवाकाशादिक्रमेण सूक्ष्मशरीरादारभ्यब्रह्माण्डपर्यन्तस्योत्पादस्ततश्च सर्वोऽपि लौकिकवैदिकव्यवहारः प्रवर्तते । तत्राविद्याज्ञानस्वरूप स्याच्छादिका तयाऽच्छादितं ब्रह्मैव स्वस्मिन् जीवेश्वरत्वादिविविधप्रपञ्चमनावाधितमिव पश्यति । सर्वमेतदविद्याबलेनोपपादितंभवति । तत्र मूलकारणमज्ञानमेव तदेव ब्रह्मस्वरूपस्याच्छादकम्, आच्छादकेन तेन ब्रह्मस्वरूपंतिरोहितमिव भवति । यथा

को प्राप्त करने वाला काल भगवान् का भोगविभूति को परिणामित करने में समर्थ नहीं होता है। इस से भोगविभूति में काल परिच्छेद्यत्व का अभाव सिद्ध होता है। अन्य स्थल में भी कहा है - **"क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय" इति** अर्थात् भगवान् बालक के समान खेलते हैं देखो, इस से सिद्ध होता है कि भगवान् इस लीलाविभूति में स्वकीय लीला करते हैं । मनु ने भी कहा है - **"प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणीयसमिति" वह परमात्मा पुरुषजडचेतन** सभी के ऊपर प्रशासन करने वाले हैं। एवं उस भगवान् का स्वरूप अणुओं से भी अणु है अर्थात् अतिसूक्ष्म् है। तथा भगवान् के स्वरूप बडों से भी बडा है "महतो **महीयान्** " इत्यादि श्रुतिसिद्ध है। इस प्रकार मनु ने भी भगवान् के स्वरूप में अनेक प्रकार की विशेषताओं का वर्णन किया है।

याज्ञवल्क्य ने भी कहा है- **"क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमात्मता"** ईश्वर के ज्ञान से जीव को परम विशुद्धि प्राप्त होती है। इस से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर ज्ञान विशुद्धि में कारण है न तु निर्विशेष ब्रह्मज्ञान को विशुद्धि में कारणता है । आपस्तम्भ ऋषि ने भी कहा है- **"पूः प्राणिनः सर्व एव गुहाशयस्य"** सर्वप्राणी हृदय गुहा में विद्यमान परमात्मा का निवास स्थान है इस से परमेश्व में सर्वान्तर्यामित्वसिद्ध होता है इस प्रकार आचार्यश्री ने महर्षियों के वचनों का प्रमाण देकर के स्वकीय सैद्धान्तिक पदार्थों को प्रमाणित किया इस प्रकार प्रमाण सिद्ध होने से विशिष्टाद्वैत में किसीप्रकार की अनुपपत्ति नहीं होती है। यह विशिष्टाद्वैत की वासना भगवत्कृपा से ही होती है उन परमभक्तों को जिन्होंने भगवान् की शरणागति स्वीकार कर लिया है। **तदुक्तमभियु** :-

सर्वशक्तिमत्वमपि धर्मः प्रदर्शितोभवतीत्येवमनेके विशेषाः प्रतिपादिता भवन्ति । न तु कश्चननिषेधवाचकः शब्दोविद्यते । इति नानया श्रुत्यानिर्विशेषब्रह्मसिद्धिरपितु सविशेषस्यैव तस्य सिद्धिः ।

यस्मात् 'सदेवेत्यादिकाश्रुतिर्वास्तविककार्यकारणभावबोधनायप्रवृत्ता । अतएव 'असदेवेदमग्रे आसीदित्यादिनाऽसत्कार्यवादस्यनिरासः श्रुतौकृतः । तत्र 'कुतस्तुखलुसोम्यैवं स्यादित्यारभ्य 'कथमसतः

शुक्तिकाऽज्ञानेन शुक्तिकायाः शुक्तित्वरूपमाच्छादितं भवत् तिरोहितं भवति । यथा स्वल्पेनापि मेघमण्डलेन सूर्यचन्द्रादिकमाच्छादितं सत् तिरोभूतं भवति । ततश्चब्रह्मतोवस्तुनः समुत्पत्तिः समुत्पत्या च सर्वलोकव्यवहार इति । तत्राचार्यो वक्ति तिरोधानं नाम विनाश एव । ततश्चाविद्यया ब्रह्मस्वरूपं तिरोहितं भवतीत्यस्यायमर्थः संपद्यते यत् ब्रह्मस्वरूपस्यविनाशो जायते तथा यदाविद्यया अज्ञानं विनाश्यते तदा ब्रह्मस्वरूपमुत्पद्यते, इत्युत्पादविनाशशालित्वं ब्रह्मस्वरूपस्यभवतीति न तिरोधानमुपपद्यते इति तिरोधानानुपपत्त्या न तन्मतं समीचीनम् । न च ज्ञानस्य ब्रह्मधर्मत्वे स्वीकृते नायं दोषः यतो धर्मांशे एवोत्पादविनाशेन ब्रह्मस्वरूपस्यानपायादिति वाच्यम् तथा सति ब्रह्मणः सधर्मकत्वेन निर्विशेषस्य तस्य सिद्धिर्नस्यात्तथाद्वैतापत्तिरप्यापतति । तच्च नेष्टं तव । न च नित्यमेव तदीयज्ञानमिति वाच्यम् । तदा तदीयं ज्ञानं नित्यमिति कथं सत्यतिरोधानं तिरोधानस्यविनाशपर्याय-

"सर्वेशानुग्रहादेषा विशिष्टाद्वैतवासना । या सर्वानुपपत्तीनां नाशिका भवति क्षणात्" इति।

एतदन्त प्रकरण से आचार्यश्री ने अद्वैतमतापेक्षया स्वमत में विशेषता का प्रतिपादन कर के परमत का निरास किया। परन्तु अद्वैती पुनः कहते हैं कि इतना कहने पर भी जीवस्वरूप का जब तिरोधान हो जाता है तब तो तिरोधान स्वरूप है तब जीव का भी नाश हो जायगा। यह जो दोष है उस का उत्तर तो आपके मत में भी नहीं होता है ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये कहते हैं वस्तुतस्तु इत्यादि मैंने अनेक शास्त्र वचनों से सिद्ध करादिया कि परब्रह्म सर्वथा निर्दोष हैं उन पर में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है किन्तु अनेक कल्याण गुण ही रहते हैं। वे परमेश्वर अपनी क्रीडा का संपादन स्वशक्ति तथा सत्यसंकल्प से किया करते हैं। लीलाविभूति में केवल जडचेतन पदार्थ सहायक होते हैं , और भोगविभूति में तो अन्य किसी की भी आवश्यकता नहीं है। जीव में दोष होता है। वह संसारकाल में कर्मरूप अविद्या के बल से जीव का स्वाभाविक भी ज्ञानधर्म संकुचित होता है। इस लिये देहात्मभ्रम को प्राप्त करके तत् तत् देहोचित शुभाशुभ कर्म के द्वारा हीन मध्यम तथा उच्च योनि में जन्म लेकर सुखदुःख का अनुभव करता है। इस लिये जीवधर्म का तिरोधान अनुपपन्न नहीं होता है। न वा जीवस्वरूप का नाश होने की ही शङ्का होती है। इन सब विषयों का विस्ताररूप से प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं- **"मन्मते यद्यपीत्यादि"** मेरे मत में अर्थात् विशिष्टाद्वैतवादियों के मत में यद्यपि जीवस्वरूप से नित्य है तो इस का नाशात्मक तिरोधान का कथन अयुक्त तो अवश्य है, तथापि जीव का धर्मभूत विशेषणरूप जो ज्ञान है अर्थात् **"ज्ञोऽतएव"** ब्र.सू. २।३।२०।

सज्जायेत' इत्यादिप्रकरणेन । यदि असत्कारणं भवेत् तदा तत् उत्पन्नं कार्यमपि तथैवस्यात् । कार्येकारणस्यानुगमात् । यथामृत्तिकयोत्पन्न कार्यं मृदात्मकमेवभवति । एवं प्रकृतेऽपि भवेन्नत्वेवं दृश्यते । तस्मान्नासत्कारणवादोन वाऽसत्कार्यवादश्च । न च कार्यस्योत्पत्तेः प्रागपिसत्वे कारण व्यापारोनैरर्थक्यमापतेत् उत्पादानुपपत्तिश्चेति । सत्कार्यवादे आविर्भावतिरोभावावेवभवतोनत्वसतः सत्वं क्वचिदपि तथाऽदर्शनात् । सतश्च तौ दर्शनात् । एकमेवकारणभूतं द्रव्यमवस्थान्तरयोगात्कार्याख्यां लभते, एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानस्य प्रतिज्ञानात् । एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाऽसत्कार्यवादे न सिद्ध्यति, तत्र कार्यकारणयोर्भेदाभ्युपगमात् । असतस्तूत्पादेनास्ति कश्चिद्

त्वादितितिरोधानानुपपत्त्या न तदीयं मतं समीचीनमित्यादिकंबोधयितुमाह आच्छाद्यविक्षिपतिसंस्फुरदात्मतत्वमित्यादि । अज्ञानंसदसद्भ्यां विलक्षणम्, संस्फुरदात्मतत्वम्, सर्वदाप्रकाशलक्षणज्ञानमात्रकस्वरूपकं ब्रह्म, आवरणशक्तियोगेन आच्छाद्य अज्ञानस्य द्वे शक्ती भवतः । अवरणशक्तिः विक्षेपशक्तिश्च । तत्रावरणांशेनात्मावृणोति । ततश्चावृते तस्मिन् विक्षेपशक्तिबलेन जीवेश्वरप्रभृतिविक्षेपं विक्षिपतिसमुत्पादियति । आत्मानमेव विषयीकृत्य तदाश्रित्य च तत्रैव मृषाभूतान् नाना विकारान् समुत्पादयतीति । तन्मतं खण्डयति

"ज्ञोऽत एवेति सूत्रेऽपि ज्ञातृता चात्मनो मता । विज्ञानात्मेति वेदोक्तेरात्मनो ज्ञानरूपता" (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५।१५) "मन्ता बोद्धेति प्रामाण्याज् ज्ञाता जीवो बुधैर्मतः । ज्ञोऽत एवेति सूत्रं हि ततो व्यासेन सूत्रितम्" (बोधायनमतादर्श ८९८) इत्यादि रूप से निरूपण किया है अतः "ज्ञानवान् जीवः" ऐसा जीव का लक्षण फलित होता है इस में ज्ञान तथा जीव में आधाराधेयभाव कहा गया है तो ज्ञान आधेय होने से विशेषण होता है और जीव आधार है। अतः जीव का विशेषणज्ञान होने से जीव का धर्म है धर्मी तो तथा जीव है। एतादृश जीव का धर्म भूतज्ञान स्वाभाविक है अर्थात् अविच्छिन्न भूत होने से सार्वदिक है। तथापि एतादृश ज्ञान का पुण्य पापरूप कर्म के बल से संकोच विकाश होता है कर्म से विनाश होता है, तथा कर्म से संकोच विकाश होता पर उस का उत्पाद होता है किन्तु धर्मीभूत जीव का उत्पाद विनाश नहीं होता है, इसी से देहात्माभिमान की व्यवस्था होती है। अर्थात् स्वरूप का आच्छादन होने से उस में भ्रम हो तो ज्ञान द्वारा जीव स्वरूप में आच्छादन मान करके जीव में देवमनुष्यादि देह का भ्रम होता है।

आप के मत में तो प्रकाश ही जीव का स्वरूप है किन्तु ज्ञानस्वरूप प्रकाश तो जीव का धर्म नहीं है। न वा ज्ञानरूप जीव धर्म का आप संकोच विकास मानते हैं। मेरे मत में तो जीवधर्म ज्ञान प्रकाश का नहीं फैलने का नाम ही तिरोधान है। अतः कर्मरूप अविद्या से स्वरूपतः नित्य भी जीव का धर्मभूत जो विज्ञान

दृष्टान्तः । सत्कार्यवादेतु विद्यते तादृशो दृष्टान्तः । एकस्यैवद्रव्यस्यावस्थाविशेषयोगेनकारणमितिव्यवहारः । अवस्थान्तरयोगेन तु कार्यमिति नासत्कार्यवादः साधीयान् ।

ननु यो योऽध्यासः सर्वोपि सत्याधिष्ठानक एव दृश्यते शुक्तिरजतादौ सर्वत्रैव । ततश्चाविद्यादोषाश्रयीभूतं चिद्रूपं सत्यं ब्रह्मैवाधिष्ठानं जगतस्तत्रै-

---

तदपिविचारतया इत्यादि । खण्डनप्रकारं दर्शयति तथाही त्यादी । अन्यत्सर्वमतिरोहितार्थकम् ।

ननु 'यश्चोभयोः समो दोषः परिहारोऽपि तादृशः । नैकः पर्यनुयोक्तव्यस्तादृगर्थविचारणे' इतिरीत्याममते यो जीवस्य स्वरूपविनाशलक्षणोदोषो दत्तः स दोषस्तुभवन्मतेपि भवतीति तदुत्थापनं नोचितम् । भवतां मतेऽपि जीवोज्ञानरूप एव तथा स्वप्रकाशात्मक एवेत्यविद्ययास्वरूपतिरोधाने तद्विनाश एव स्यात्, यदि स्वरूपतिरोधानं न स्वीक्रियेत तदा तत्र मनुष्याद्यभिमान एव न स्यात् । तदुपपादनाय स्वरूपतिरोधानमत्यावश्यकम् । तथा एकस्मिन् जायमाने सर्वे जायेरन् । एकस्मिन् म्रियमाणे सर्वे म्रियेरन्नित्यादिदोषापत्तिभिया जीवनानात्वं स्वीकृतमिति भवन्मते जीवस्यानेकत्वादनेकत्रेमेदोषाः पतन्तीत्यादिशङ्कां मनसि निधाय तदुद्धरणायोपक्रमते स्यादेतदित्यादि

है वह संकुचित हो जाता है, इस लिये उस जीव में देहाद्यभिमान की अनुपपत्ति नहीं होती है। किन्तु आपके मत में तो ऐसा नहीं माना गया है, अर्थात् आप तो जो जीव को ज्ञानस्वरूप मानते हो तथा ज्ञान को जीवधर्म नहीं मानते हो तो प्रकाश का तिरोधान होने से जीवस्वरूप का विनाशादिक हो जायगा इत्यादिक दोष होता है। परन्तु हमारे मत में अर्थात् विशिष्टाद्वैतवादी के मत में जीव के स्वरूप का विनाशादिक दोष नहीं होते हैं। यही विलक्षणता अद्वैतावादियों के मत से विशिष्टाद्वैतवादियों के मत में विशेषता है।

जीवात्मा का धर्मभूत जो ज्ञान है उस का कर्म के बल से संकोच तथा विकास होता है, इस बात को तर्कद्वारा सिद्ध करके शास्त्र प्रमाण से सिद्ध करने के लिये उपक्रम करते हैं "**तिरोधानानुपपत्तिप्रकरणे**" इत्यादि इस के पूर्व स्वरूप तिरोधान के अनुपपत्ति प्रकरण में प्रसंगवश सिद्धान्ती ने कहा कि जीव का धर्म विशेषणरूप जो ज्ञान है, उसी का संकोच विकास होता है ऐसा कहा परन्तु कुछ प्रमाण तो नहीं बतलाया। क्योंकि प्रमाण के बिना किसी भी वस्तु की सिद्धि नहीं होती है। अन्यथा प्रतिज्ञा मात्र से ही स्वकीय पक्ष का प्रतिपादन सिद्ध हो जायेगा तथा परपक्ष का खण्डनरूप प्रयोजन भी सिद्ध हो जायेगा। तब प्रमाण का अन्वेषण निरर्थक ही हो जायगा। अतः प्रतिज्ञात वस्तुत को स्थिर करने के लिये श्रुतिस्मृति पुराण तथा पूर्वाचार्यों के दिव्य वचन ही प्रमाण हैं। अतः उन वचनों को बतलाते हैं-

वाध्यस्तमिदं जगत् । किन्तु निरधिष्टानको न भवति । अन्यथाऽनवस्था-
पातादित्यध्यस्तं जगत् सत्याधिष्टानकमेवेति विमृश्य निरधिष्ठानकभ्र-
मवादिनामसत्कार्यवादिनां बौद्धानामसत्कार्यवादमतनिराकरणे एव
'असद्वेतिश्रुतेस्तात्पर्यं न तु वैशेषिकाभिमतासत्कार्यवादनिराकरणे

विज्ञानधन: विज्ञानस्वरूपो विज्ञानप्रचुरोवेत्यर्थः ।'अत्रायं पुरुषः' इति स्वप्नावस्थामधिकृत्य श्रुरितियं प्रवृत्ता, तदर्थस्तु अत्र स्वप्नावस्थायां तनूकृतमलोयं जीवः स्वयंज्योतिर्भवति अर्थात् स्वप्रकाशरूपोभवतीति । अनया च स्वप्राकाशरूपत्वमपि जीवस्यभवतीति । तथा च स्वप्राकाशरूपे तस्मिन् कथं देवत्वाद्यध्यासः तदन्तरेण च कथं देवोऽहं मनुष्योऽहमित्यादिप्रतीतिः । तदभावे च देवमनुष्याद्युचितकार्येषु प्रवृत्तिरिति । किञ्च जीवस्यैकत्वे जन्ममरणकरणादिव्यवस्थालौकिकीपारमार्थिकी वा न समुपपादिता भवतीति लोकदृष्टिमनुरुध्यजीवनानात्वमभ्युपगतंभवता । ततश्चैकजीवेऽनुपपत्तिः प्रदर्शिता सैवेयमनुपपत्तिर्भवन्मस्तकेऽपि समागता भवति । ततश्च त्वदीयो बाणस्त्वामेव ताडयतीति प्रश्नाशयः समाधानन्तु सर्वशक्तिमतः सर्वशरीरिणोऽनन्तज्ञानक्रियाशक्तियुतस्य स्वेच्छया

"अविद्याकर्मसंज्ञान्या" इत्यादि । इन सबों का संक्षेप यह अर्थ होता है- हे राजन् ! कर्म जो शुभाशुभरूप हैं उनका पर्यायवाची यह अविद्या तीसरी शक्ति है उस अविद्या शक्ति से वेष्टित- आवृत होकर के जीव निरन्तर होनेवाला अनेक प्रकारक सांसारिक ताप (जन्म मरण दुःख शोकदौर्मनस्य आदि) का सतत अनुभव करता रहता है। मनुष्यादिक किसी शरीर में कोई जीव अत्यधिक ज्ञानवाला है तो कोई दूसरा जीव शरीरान्तर में अल्प अत्यल्प ज्ञान वाला होता है। जिस जीव का ज्ञान कर्म के बल से संकुचित हो जाता है वह जीव अल्पज्ञ कहलाता है और जिस जीव का ज्ञान कर्म बल से विकसित होता है तो वह जीव बहुश्रुत ज्ञानी कहलाता है। इन वचनों से सिद्ध होता है कि जीव का धर्मभूत जो ज्ञान है उस का संकोच विकास होता है। अतः ज्ञान का संकोच विकास का जो पूर्व प्रकरण में कथन किया है वह अप्रामाणिक है, इस का खण्डन हो जाता है। विशेष विवरण तत्तत् निबन्ध व्याख्यान में अन्यत्र देखिये।

अद्वैतवादियों के अद्वैतवाद का व्यवस्थापन करते हैं इस में मूलकारण है- अविद्या अर्थात् अज्ञान उस अविद्या का निराकरण करने से अद्वैतवाद खंडित हो जाय इस लिये अविद्या का स्वरूप अनुपपन्न है अर्थात् अनिर्वचनीय अविद्या का तो न स्वरूप लक्षण बन सकता है, न वा एतादृश अविद्या का स्वीकार करने में कोई भी प्रमाण है। इस अभिप्राय से कहते हैं - **'ननु अनृतेन हि प्रत्यूढा'** इत्यादि । अनृत अर्थात् मिथ्याभूत किसी पदार्थ से यह सकल आच्छादित था **"मायां तु"** इत्यादि यह जो अनिर्वचनीय सत् असत् से भिन्न ब्रह्मस्वरूप का आच्छादक है, उस को तो प्रकृति रूप से जानो , तथा मायावान् चेतन

तादृशश्रुतेरभिप्राय इत्यद्वैतवेदान्तिनः संगिनन्ति ।

तन्न युक्तम्- मृद्विकारादिदृष्टान्तप्रदर्शनमुखेनैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्र-
तिज्ञा सत्कार्यवादमेव कुक्षीकरोति नत्वसत्कार्यवादादिकम् । अद्वैतमते
निरधिष्ठानकभ्रमस्याभावो नैव साधितुमुक्तो भवति । यो हि चेतनगतदोषं
पारमार्थिकं मनुते तादृशदोषस्याश्रयोपि सत्यस्तन्मते पारमार्थिकदोषबलात् ।

स्वसंकल्पमात्रेण गुणसागरस्यलीलाविभूतिभोगविभूत्यादिकसंपादनप्रवीणस्य भगवतो महापुरुषस्य तदाज्ञया प्रवर्तमानानां तत्प्रणीतवेदे तन्मूलकेतिहासपुराणप्रमाणमनुवर्तमानानां तत्सेवकानां किमिवानुपपन्नं स्यात् । अर्थात् भगवत्कृपयैव सर्वसंभवात् । अत्र पुराणादिवचनानि स्वयमेवव्याख्येयानीति न तदर्थं प्रयते । यद्यपि उपर्युक्तमुत्तरं श्रद्धाधनस्य कृते एव शोभते, अर्थात् गुरुशिष्ययोः संवादरूपवादकथायामेवोपयुज्यते न तु जल्पकथायां वादकथायां वा । तत्र प्रमाणतर्कादिकमूलकोत्तरस्यैवोपयुज्यमानत्वात् । प्रकृते च तद्रहितत्वात्, इत्यस्वारस्येन कर्कशतर्कोपेतोत्तरदानायाहाचार्यः वस्तुतस्तु इत्यादि । भवतुनामजीवस्वरूपस्य नित्यत्वं परन्तु प्रकृतेप्रकाशात्मकमपि ज्ञानं न जीवस्य स्वरूपमपि तु 'ज्ञानाधिकरणमात्मा' इत्यनुरोधेन ज्ञानधर्मक एव जीवो 'ज्ञोऽत एवेति सूत्रेऽपि ज्ञातृता

को परमेश्वर जानो । इत्यादि श्रुतियों के बल से तथा तत्वमसीत्यादि श्रुति से जो जीव का ब्रह्म के साथ में एकता का उपदेशकिया गया है, उस ऐक्योपदेश से। अर्थात् जीव ब्रह्म से वस्तुतः भिन्न नहीं है, किन्तु अज्ञान आवरण शक्ति द्वारा ब्रह्म को आवृत करके विक्षेप शक्ति द्वारा आवृत ब्रह्म में जीवादिक के भेद को अज्ञान बतलाता है। और भेद के अज्ञान का तत्वज्ञान से विनाश होने पर अज्ञान का कार्य जीवादि विक्षेप भी चला जाता है। तब जीव ब्रह्म में एकता हो जाती है तो तादृश एकत्व का शास्त्र में उपदेश है। इस के बल से ब्रह्म स्वरूप को आच्छादन करने वाला एक अज्ञान नाम का कोई पदार्थ है जिस का नाम अविद्या अज्ञान नाम है ऐसा आपलोग - अर्थात् अद्वैतीलोगों ने निश्चित कर लिया है। उत्तर-परन्तु आपलोगों ने जो ऐसा मान लिया है वह ठीक नहीं है, क्योंकि एतादृश अविद्या का जो स्वरूप है उसका निर्वचन अशक्य हो जाता है। अर्थात् अतिरिक्त अविद्या स्वरूप का निर्वचन करने में न कोई लक्षण है न वा कोई प्रमाण ही उपलब्ध होता है। लक्षणानुपपत्ति को बतलाने के लिये कहते हैं- **"तथाहि"** इत्यादि । जिस तरह शुक्ति रजत स्थल में अविद्यारूप एक दोष है उसी तरह जगत् विभ्रम स्थल में भी एक अविद्यारूप दोष है। तो जिस प्रकार रजत प्रातीक अर्थात् मिथ्या है क्योंकि बाधोत्तरकाल में बाधित हो जाता है, उसी तरह अविद्यारूप जो दोष है वह भी तो मिथ्या ही है सत्य तो केवल ब्रह्म ही हैं तदतिरिक्त तो सब मिथ्या है। तो जिस प्रकार मिथ्या रजत की उत्पत्ति में अविद्या दोष है, उसी तरह

अपारमार्थिकोभ्रम उपपादयितुं शक्यते । किन्तु यस्य मत सर्वदोषादि-कमपारमार्थिकमेव, तन्मेते यथा अपारमार्थिकदोषेणभ्रम उपपाद्यते तथाऽपारमार्थिकाधिष्ठानेनापि तदुपपादनसंभवात् केशोणुकादिवदिति पर्यनुयोगे किमुत्तरं ते स्यात् । तस्मान्न बौद्धमताभिमतासत्कार्यवादस्यात्र

चात्मनो मता । विज्ञानात्मेति वेदोक्तेरात्मनो ज्ञानरूपता' 'अपृथक् सिद्धधर्मश्च ज्ञानं जीव परात्मनोः' इत्यादिरूपेणपूर्वाचार्यैः प्रतिपादनात् न तु ज्ञानस्वरूपः । स च स्वरूपनित्योऽपि तदीयधर्मज्ञानं संकोचविकाशात्मकम् । तत्र कर्मरूपाविद्यया तस्य तौ भवतः । यदा संकोचस्तदातिरोहितं तदिति कथ्यते । तस्मिन् समये हितविज्ञाने देवादीनामध्यासः, यदा तु विकाशमेतिज्ञानं तदा न स इति ज्ञानसंकोचविकाशाभ्यां सर्वमुपपद्यते । इति मन्मते न जीवस्वरूपस्य विनाशशङ्कोदेति । भवन्मते ज्ञानस्य जीवरूपत्वेन तत् तिरोधाने स्वरूपविनाश एवापततीत्यादिकं सर्वसम्प्रदायानुसारेणैवावगन्तव्यमिति संक्षेपः ।

ननु इतः पूर्वप्रकरणे स्वरूपतिरोधानानुपपत्तिः प्रदर्शिता । तत्प्रसङ्गात्, जैवीयज्ञानस्य संकोचविकाशौ प्रदर्शितौ, परन्तु नोपपन्नौ तावस्य । यतः संकोचो नामावयवस्य-तनूकरणमसंकोचीकरणमविकाशश्च तेषामेवावयवानां दीर्घीकरणम् । परन्त्वेतत्सर्व

अविद्या को भी मिथ्या होने से उस अविद्या की उत्पति के लिये कोई दूसरा दोष है अथवा नहीं ? इस में यदि प्रथम पक्ष को मानें तब तो ब्रह्म में अविद्या भ्रम का निर्वाहक प्रकृत अविद्यातिरिक्त एक होगा। और दोषान्तर का विभ्रम को संपादन करने के लिये भी दोषान्तर होगा । इस प्रकार दोष परम्परा का अनुसरण करने से अनवस्था हो जायेगी । यदि द्वितीयपक्ष का स्वीकार किया जाय तब तो ब्रह्म से अतिरिक्त सत्य दोषान्तर है नहीं तब तो जगत् विभ्रम कारणीभूत अविद्या को ही जगत् विभ्रम तथा स्वविभ्रम में भी कारण मानने से आत्माश्रयदोष होगा, क्योंकि स्व की उत्पत्ति में स्व को ही कारणत्व प्राप्त हो जाता है। परन्तु यह तो हो नहीं सकता है, कारण व्यतिरिक्त तथा स्वपूर्वकालावस्थित होता है। और कार्य तो कारणोत्तर कालवृत्ति स्वव्यतिरिक्त ही होता है। एक में ही पूर्वकालवृत्तित्वेन कारण काल वृत्तित्वेन कार्यत्व असंभव है। यदि सत्य ब्रह्म को ही अविद्या विभ्रम में दोष मानें तब तो यह सिद्ध होता है अविद्या से पहले भी ब्रह्म में दोषान्तर बैठा है तब तो मोक्ष कभी भी नहीं होगा। तब शास्त्र में जो मोक्ष कथा है वह अस्तमित हो जायेगी।

और भी देखिये- भवदभिमत जो अविद्या है वह सती है तब तो ब्रह्म सत् तथा अविद्या भी सत् है तब तो द्वैत हो गया, अद्वैत की बातें गई। यदि कदाचित् अविद्या को असत् मानें तब तो वह अविद्या जगत् विभ्रम का उपादान कारण नहीं बन सकती है। क्योंकि घटादिस्थल में उपादानत्व सत् में ही होता

निरासः ।

卐 शोधकवाक्येन सविशेषब्रह्मप्रतिपादनम् 卐

यथा-'सदेव सोम्येदमग्रे आसीदित्यादिकारणवाक्येन सविशेष-ब्रह्मण एव सिद्धिर्भवति । तथैव शोधकवाक्येन 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्'

सावयवद्रव्यस्यरूपस्पर्शादिमतएवसंभवति, गुणक्रिययोर्द्रव्य एव समवेतत्वात् । ज्ञानस्य तु तत्कथमपि न संभवति गुणत्वात्, गुणानामवयवाभावात्ततश्च ज्ञानस्य संकोचवि-काशावप्रामाणिकाविति । अपि च तस्य ज्ञानस्य संकोचविकाशोभवतः, इति प्रतिज्ञामात्रेणैव कथितौ प्रमाणं तु न कथितम् । प्रमेयसिद्धिश्च प्रमाणादेवभवतीति नियमात् । न च तत्र प्रत्यक्षं वर्तते प्रत्यक्षायोग्यत्वात्तस्य, न वाऽनुमानं व्याप्तिग्रहासंभवादित्यादिशङ्कां समाधातुं शब्दप्रमाणेन तत्साधनायोपक्रमते तिरोधानानुपपत्तिप्रकरणे इत्यादि । प्रमाणशेखरं शब्दप्रमाणं पौराणिकादिवचनमुदाहरति अविद्याकर्मसंज्ञान्येत्यादि संक्षेपतः प्रमाणवचनस्यायमर्थः । हे नृप राजन् ! कर्मनाम्नाप्रसिद्धेयमविद्याशक्तिरियं तृतीया शक्तिरिष्यते तन्त्रे स्वीक्रियते, ययाशक्त्याशरीराभिमानी जीवात्मा, जीवोऽपि भगवतो विशेषणीभूतः शक्तिपदेन बोधितो भवति । एतादृशो जीवस्तृतीययाशक्त्या सर्वत आवृतोभूत्वा अनादिप्रवाहवतस-

---

है। असत् वन्ध्यापुत्रादिक में कारणत्व नहीं देखने में आता है नवा अविद्या को सत् असत् उभय रूप कह सकते हैं क्योंकि विरोध होता है जो सत् है वह असत् नहीं होगा और जो असत् है वह सत् रूप नहीं हो सकता है। और सत् असत् पक्ष से अतिरिक्त कोई हो नहीं सकता है, असम्भव होने से यदि सत् से भी विलक्षण असत् से भी विलक्षण है अनिर्वचनीय ऐसा यदि मानें तब तो बौद्धमत में प्रवेश हो जायेगा। और भी देखिये- भवदभिमत अज्ञान का कोई लक्षण भी नहीं बनता है। यदि ज्ञान से जो निवृत्त हो उस को अज्ञान लक्षण कहें तब तो ज्ञान के प्रागभाव में अतिव्याप्ति होगी , क्योंकि ज्ञान की उत्पत्ति होने के बाद ज्ञान का प्रागभाव विनष्ट हो जाता है। यदि "भावरूप हो तथा ज्ञान से विनष्ट होता हो जो उस को अज्ञान कहते हैं" ऐसा कहो तब तो प्रागभाव में अतिव्याप्ति का कारण होगा भी परन्तु परमाणु की जो श्यामिका है वह भाव है तथा ईश्वर ज्ञान से निवर्त्य है तो उस परमाणु श्यामिका में अतिव्याप्ति हो जायेगी। यदि विभ्रम के उपादान कारण को अज्ञान कहो तब तो आत्मा में अतिव्याप्ति होगी - क्योंकि आत्मा भी उस में उपादान कारण होता है। नहीं कहोकि आत्मा तो सत्य है, उसकी यदि विभ्रम का उपादान कारण मानें तब तो विभ्रम भी सत्य हो जायेगा। ऐसा कहना ठीक नहीं , क्योंकि स्वरूप से सत्य तो विभ्रम भी है। केवलबाधोत्तरकाल में भ्रम के विषय का अपहार हो जाता है, इस लिये विभ्रम को मिथ्या कहते हैं। नतु स्वरूप का अपहार होने से विभ्रम को मिथ्या कहा जाता है।

इत्यादिकेनापि सविशेषस्यैव तस्य सिद्धिर्जायते एव । यथा पूर्ववाक्येन जगत्कारणत्वादिविविधधर्मवैशिष्ट्यं प्रतिपादितं तथैवेहापि सत्यत्वज्ञानत्वा-

र्वानेवसांसारिकाननेकविधतापान् अनुभवति, हे भूपाल ! कर्मलक्षणविद्याशक्त्यातिरोहितो जीवो ज्ञानमादाय विविधशरीरेषु हीनमध्यमोत्कृष्टदेहेषु न्यूनाधिकभावेन विद्यते । देवादिशरीरेष्वधिकज्ञानवान् भवति, कीटपतङ्गादिष्वल्पज्ञानवान्, भवति, यस्य जीवस्य ज्ञानं संकुचितं भवति स भवत्यल्पज्ञः इतरस्तु विशेषज्ञो भवति । इत्येव श्रुतिस्मृतिपुराणाचार्यादिवचनेन जैवीयं ज्ञानं संकुचितं भवति कर्मबलाद्विकाशितं च भवतीति सिद्धम् ।

अद्वैतवादस्याविद्यामूलकत्वेन मूलोच्छेदप्रासादावस्थानकारणंस्तंभपाते गृहपातवत् अद्वैतमतंनिरसितुं स्वरूपानुपपत्तिवर्णनेन तदुच्छेदनायोपक्रमते ननु अनृतेन इत्यादि । तत्रानृतेनमिथ्याभूतेनाच्छादिताः 'मायां च प्रकृतिं विद्यान्मायितं च महेश्वरम् । तस्यावयवभूतैश्च व्याप्तं सर्वमिदं जगदित्यादिना तथा 'माया चाविद्या च स्वयमेव

इस प्रकार अविद्या का कोई भी लक्षण उत्पन्न नहीं होता है।

तब भवदभिमत अज्ञान में कोई प्रमाण है ? नहीं कहोकि **"अहमज्ञ"** मैं अज्ञानवान् हूं एतादृश प्रात्यक्षिक अनुभव यथोक्त अज्ञान में प्रमाण है, तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि यह अनुभव तो ज्ञानाभाव को विषय करता है, अर्थात् "मैं ज्ञानाभाववान् हूं यह अर्थ इस का है। नतु भावात्मक किसी अज्ञान की सिद्धि इस से होती है। नहीं कहोकि अभाव ज्ञान में तो प्रतियोगिज्ञान तथा अनुयोगिज्ञान को कारणता है और **"अहमज्ञः"** तो सौषुप्तिक है तो सुषुप्ति काल में तो प्रतियोगि ज्ञानादिक तो नहीं है तो इस को अभावानुभव कि तरह से कह सकते है। अन्यथा उस समय में प्रतियोगी ज्ञानादिक की सत्ता मानें तब तो उस को सुषुप्ति ही नहीं कह सकते हैं। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि यह ज्ञानाभावानुभव निर्विकल्पक है इसे प्रतियोगि ज्ञानादि की आवश्यकता नहीं होती है। जिस तरह भेदज्ञान सादृश्य ज्ञानस्वरूपत एव होता है, उसी तरह प्रकृत में भी होता है। सविकल्पक दशा में प्रतियोगि ज्ञानादि सापेक्ष होने से अस्फुटतर व्यवहार का विषय होता है। नहीं कहो कि **"तम आसीत्"** इत्यादि श्रुति अज्ञान में प्रमाण है। ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि **"तम आसीत्"** इत्यादि श्रुति अज्ञान में प्रमाण है। ऐसा कहना भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि यथोक्त श्रुति तो प्रलयकालिक जीव ज्ञानाभाव का प्रतिपादन करती है। अर्थात् प्रलयकाल में जीव को घटादि विषयक ज्ञान नहीं था। नतु भवदभिमत अज्ञान का साधक उपर्युक्त श्रुति है। इस प्रकार से लक्षण प्रमाण का अभाव होने से भावरूप सदसद् विलक्षण अनिर्वचनीय अज्ञान है ऐसा कथन करना ही अज्ञान है। आचार्यश्री ने उपर्युक्त प्रकार से अविद्या स्वरूप की अनुपपत्ति

नन्तत्वादिधर्मवत एवं प्रतिपादनात् ।

ψ नेतिनेतितीवाक्येननिर्विशेषत्वनिरूपणनिषेधः ψ

ननु श्रुतिः प्रपञ्चनिषेधं न करोतीति कथमुच्यते ? यावता नेति नेति

भवतीत्यादिप्रामाणिकवचनेनाविद्यायाः सद्भावः प्रसिद्धो भवतीति । इयं च ब्रह्मस्वरूपस्याच्छादिका भवति । तदुक्तम् 'आच्छाद्यविक्षिपति संस्फुरदात्मतत्व' मित्यादि । अनाच्छादितब्रह्मस्वरूपे जगद्विभ्रमस्याशक्यत्वात् । न हि अनाच्छादितशुक्तौ रजतविक्षेपो जायते । तथा तत्त्वमसीत्यादिना जीवब्रह्मणोरैक्योपदेशः कृतः, स च यदि जीवब्रह्मणोर्भेदप्रयोजकः कश्चिद्भवेत्तदा तद्विनाशेनैवैक्योपदेशः साधीयान् स्यादित्यादि-प्रकारेणाविद्यासिद्धिः कृतेति पूर्वपक्षाशयः ।

उत्तरयति इति चेन्नेति । **तदेवोपपादयति** तत्स्वरूपनिर्वचनस्येत्यादि । यदियमाच्छादिकाविद्या भवद्भिः स्वीक्रियते, तस्याः स्वरूपोपपादनमशक्यमेव । अत्र यथा मूलमेवयोजनीयम् । अपि च अविद्येत्यत्र विद्यया सह समस्यमानस्य समासान्तर्गत नञः भेदोऽर्थोऽभावो विरोधो वा ? अर्थात् विद्याभिन्ना अविद्या विद्या विरोधिनी वा सा । अथवा विद्यया अभावो वा अविद्या ? तत्र न द्वितीयः पक्षः तथा सति विद्याविरोधि-

को बतलाया है। इस के बाद अद्वैती का जो एक जीवबाद तादृश एक जीव का निराकरण करने के लिये कहतें **"अतएवाविद्यास्वरूपानुपपत्त्येत्यादि" जिसलिये अविद्या के स्वरूप का** उपपादन नहीं हो सकता है, इस लिये अविद्या के अधीन जो एक जीववाद है उस का भी निराकरण होता है। तथाहि जिस तरह स्वप्न को देखनेवाला पुरुष स्वप्नकाल में अनेक प्रकारक स्वप्न को देखता है और उस स्वप्न में यह भी देखते हैं कि अनेक शरीर हैं तथा उन शरीरों से अनेक प्रकारक कार्य करने वाले पुरुष को भी देखता है। परन्तु जब वह जागता है तब वह स्वेतर सर्वशरीर को निर्जीव जानता है क्योंकि जागरणकाल में उन शरीरों का तथा उन शरीरों में अवस्थित जीवों का बाध हो जाता है। तो स्वप्नस्थल में परिदृश्यमान शरीर समुदाय तथा तदवस्थित जीव समुदाय नहीं है। किन्तु स्वप्न को देखनेवाला जीव तथा उसका शरीर मात्र अबाधित है। इसीतरह प्रकृत में हिरण्यगर्भ के एक शरीर में अवस्थित ब्रह्म भ्रमवशात् जीवभाव को प्राप्त करता है तो वह शरीरमात्र सजीव शरीर है। उस शरीर में आत्मभाव को प्राप्त किया हुआ एकमात्र जीव है। स्वप्न जीव तथा तदीय शरीर की तरह जीव तथा परिदृश्यमान सकल शरीर जीवरहित है, ऐसा एक जीव वादी का मत है।

परन्तु यह सिद्धान्त उन का अद्वैतवादी के घर में ही है सर्वतन्त्र सिद्ध नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त दार्षान्तिक में वैलक्षण्य है, क्योंकि दृष्टान्त में तो स्वप्न दृक् शरीर तो जाग्रतकाल में अवाधित प्रतीत

इत्यादिना प्रपञ्चनिषेधस्य वर्णनात् । न च कस्यात्र निषेध इति वक्तव्यम् । 'द्वेवाव ब्रह्मणोरूपम् मूर्तं चामूर्तं चेति' मूर्तामूर्तरूपयोर्निषेधदर्शने-नोपलक्षणात्सर्वनिषेध इतिवाच्यम् सत्यम् । अज्ञातमेवार्थं श्रुतिर्बोधयतीति स्थितिः । तत्रैकदारूपद्वयं विधायपुनस्तन्निराकरणमयुक्तमेव । 'प्रक्षालनाद्धिपङ्कस्य

नांभ्रमसंशयविपर्ययादीनामप्यविद्यात्वं प्रसज्येत । इमे विरोधिनः प्रमाज्ञानस्य न तु एतान् अविद्यात्वेन कश्चिदभिप्रैति । न वा प्रथमाः तथा सति अविद्याभिन्नस्य सर्वजगतोऽवि-द्यात्वंभवेत् किन्तु न तेषु रूढिरस्त्यविद्यायाः । न वा विद्याया अभावो वेति तृतीयः पक्षः । यथा वेद्यस्य घटादेरभावो नाविद्या तथा विद्याया अभावोप्यविद्या न स्यात् । किंचाविद्याभ वन्मते भावरूपा किन्तु विद्याया अभावो न भावरूपः । एवं भवन्मते अविद्याऽनिर्वचनीया, न तु विद्याया अभावोऽनिर्वचनीयः, अभावत्वेन तस्यानिर्वचनात् । न चाज्ञानापरपर्याया अविद्यायाः किमपि लक्षणं संभवति । न च ज्ञाननिष्ठानिवर्तकतानिरूपितनिवर्त्यतावत्वं तल्लक्षणम् । तथात्वे ज्ञानप्रागभावेऽतिव्याप्तेः ज्ञानप्रागभावस्यज्ञाननिवर्त्यत्वात्, प्रागभावो हि प्रतियोगिन उत्पत्तौनिमित्तकारणं भवति, तथा प्रतियोगिना विनाशितो भवति । यथा

होता है और तदतिरिक्त स्वप्नकाल में दृष्ट शरीर तथा उन शरीरों में रहते जीव समुदाय बाधित हो जाते हैं। इस लिये दृष्टान्त में तो बाधावाध की व्यवस्था हो जाती है । परन्तु दार्ष्टान्तिक में तो ब्रह्म मात्र सत्य है और संसार स्वप्न को देखनेवाला जीव तथा अविद्या बल से प्राप्त शरीर का तो तत्त्वज्ञान से बाध हो जाता है । इस प्रकार दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक में विषमता होने के कारण से एक जीववाद सिद्धान्त ठीक नहीं जंचता है।

और भी देखिये- एक जीववाद में जन्म मरण व्यवस्था तथा बन्धमोक्ष व्यवस्था का भी समाधान नहीं होता है और अनेक जीववाद का प्रतिपादन तो श्रुति स्वयमेव करती हैं- **"सर्वे आत्मानः समर्पिताः"** यदि श्रुति सम्मत एक ही जीव हो तब तो **"सर्वे आत्मानः"** यहां जो बहुवचन का प्रयोग किया गया है वह सर्वथा अनुपपन्न हो जायेगा एवं श्रुत्यर्थ का उपबृंहक जो इतिहास पुराणादिक हैं उनमें तो सर्वत्र अनेक जीववाद का ही प्रतिपादन किया गया है। और बद्ध मुक्त तथा नित्य मुक्तादिक जीव व्यवस्था महर्षियों ने शास्त्र तत्व को जान करके किया है वह सब अस्तव्यस्त हो जायगा। इस लिये संसार- जीव को व्यामुग्ध करने का केवल एक जाल मात्र है। वेदादिशास्त्र सम्मत एक जीवाद नहीं है अतः सुधीजनों को इस के चक्कर में नहीं पडना चाहिये इस को त्याग देना ही श्रेयस्कर है।

अविद्यास्वरूप की अनुपपत्ति तथा एक जीववाद का विस्ताररूप से विवेचन करके अविद्या निवृत्ति स्वरूप की अनुपपत्ति तथा निवर्तक तत्वज्ञान की अनुपपत्ति को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-

दूरादस्पर्शनं वरमितिन्यायात् । न च तदानिषेधस्य कोभिप्राय इतिवाच्यम्, एकदा प्रतिषिध्य तदनन्तरं पुनर्गुणविधानस्यदर्शनेन रूपद्वयप्रदर्शनात् संप्राप्तब्रह्मगतेयत्तामात्रस्य प्रतिषेध इति । सूत्रकारोपि 'प्रकृतैतावत्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः' इत्यादिना प्रसक्तेयत्तायाः प्रतिषेधात्

घटादिप्रागभावो घटादिप्रतियोगिनमुत्पादयति । उत्पन्नानन्तरं स्वप्रागभावं प्रतियोगिनं विनाशयत्यपि । अन्यथैकदा जातोपि घटः पुनरपि प्रागभावादिसामाग्र्याः सद्भावात्पुन-रवश्यमेवोत्पद्येत । प्रतियोगिनोविनाशकत्वस्वीकारे तु प्रतियोगिना प्रागभावस्यविनाशेन प्रागभावघटितसामग्र्याऽभावादेकदा जातो घटो न पुनरुत्पद्यते । तस्माज्ज्ञानप्राग-भावस्यज्ञानेन विनाशात् । ज्ञाननिर्वत्यत्वमज्ञानलक्षणं ज्ञानप्रागभावेगतमिति भवत्यतिव्याप्तिः । न च भावत्वे सति ज्ञाननिवर्त्यमेवाज्ञानलक्षणम् । तच्च न ज्ञानप्रागभावेविद्यते तस्य भावत्वाभावादितिवाच्यम् । एतस्य लक्षणस्य प्राचीनमतेन परमाणुश्यामिकायामतिव्याप्तेः । तस्याभावत्वेन परमेश्वरज्ञाननिवर्त्यत्वात् । अतोनेदं लक्षणमज्ञानस्य समीचीनम् । न वा भ्रमोपादानमज्ञानमित्यपिलक्षणं सूक्तम् । आत्मन्यतिव्याप्तेः । तथाहि जगद्विभ्रमं प्रति अज्ञानं

"ननु अविद्यास्तमयो मोक्षः" इत्यादि । अविद्या का जो अस्तमय अर्थात् अविद्या का विनाश हो जाना उसी का नाम है मोक्ष । इस में अविद्या दो प्रकार की होती है, एक तो स्थूल रूपा तथा द्वितीय सूक्ष्मरूपा इसी को तुला विद्या तथा मूला विद्या भी साम्प्रदायिकों ने कहा है। एतादृश उभय प्रकारक अविद्या की जो निवृत्ति है, उसी को मोक्ष कहते हैं। ऐसा आपका अर्थात् अद्वैतवेदान्ती का पक्ष है। उस में अविद्यास्तमय शब्द का अर्थ होता है , अविद्या कि निवृत्ति अर्थात् अविद्या का विनाश ध्वन्स वह अविद्या निवृत्ति किस कारण से होती है । क्योंकि विनाश कार्य है और जो कार्य होता है वह कारण वह कारण से ही होता है। बिना कारण का कार्य नहीं होता है जो कारण कहाता है वह तो नित्य होता है, यथा आकाशादिक । अथवा सर्वथा असत् होता है, यथा गगनकुसुम, अतः कार्य होगा, वह आकस्मिक नहीं होता है। किन्तु जो कार्य वह कादाचित्क होता है। अर्थात् जब कारण का संनिधान होता है तब उत्पन्न होता है और जब कारण सामग्री नहीं रहती है तब उत्पन्न नहीं होता है। इसी कारण परतन्त्रता को तदाचित्क कहते हैं। प्रकृत में अविद्या निवृत्ति कार्य है अतः इसके कारण की जिज्ञासा होती है। तथा वह अविद्या निवृत्ति कैसी है , अर्थात् तादृश निवृत्ति का स्वरूप क्या है ? यह विषय अर्थात् अविद्या निवृत्ति का कारण तथा अविद्या निवृत्ति का स्वरूप ये दोनों पदार्थ विचारणीय हैं।

इस में अविद्या का निवर्तक क्या है ? इस विषय पर विचार करने के लिये उपक्रम करते हैं **"अथ जीव ब्रह्मणोरित्यादि"** जीव अन्तः करणावच्छिन्न चेतन तथा शुद्ध ब्रह्म का जो ऐक्यज्ञान है अर्थात्

पुनरपि गुणान्तरस्य प्रतिपादनेन कथितार्थस्यैव दृढीकरोति तदाहुर्भाष्यकाराः प्रकृतसूत्रव्याख्याने- 'तस्मादत्र नेति नेतित्यादिना न ब्रह्मणस्सविशेषत्वं निषिध्यतेऽपितु पूर्वप्रकृतेयत्तामात्रमित्युभयलिङ्गत्वमस्त्येव ब्रह्मणः'

कारणं तथा विवर्तोपादानं परमेश्वरोऽपि, ततश्च विभ्रमोपादाने परमेश्वरेऽपि प्रकृतलक्षणस्य गतत्वात् तत्रातिव्याप्तेः । तथा विभ्रमस्य सत्योपादानत्वे कार्यस्याऽपि सत्यत्वप्रसङ्गात् । न च स्वरूपतः सत्यत्वं तु तत्राप्यस्त्येव, अन्यथा एतावन्तं कालंरजतभ्रमादिप्रत्ययो न स्यात् । विषयापहाराद्धि तत्रासत्यत्वव्यवहारो न स्वरूपापहारादितिवाच्यम् स्वरूपसत्यत्वे विषयापहारोऽपि वाद्योत्तरं न स्यादिति भवत्येवात्मन्यतिव्याप्तिः । तस्मान्नाविद्यायाः किंचिल्लक्षणं संभवति । न वा अविद्यायां किंचित् प्रमाणमपि । 'नचाहमज्ञः' इत्यादिप्रत्यय एव प्रमाणमितिवाच्यम् तादृशप्रत्ययस्य ज्ञानाभावविषयतयापि चरितार्थत्वात् । न चाभावज्ञानस्य प्रतियोगिबोधपराधीनतया सुषुप्तिकाले ज्ञानप्रतियोगिनः तदनुयोगिनश्च ज्ञानाभावात् कथमयं ज्ञानाभावविषयकः प्रत्ययः स्यादिति वाच्यम् भेदसादृश्यवत् तदन्तरेणापि तदानीं तत्संभवात्, सविकल्पकज्ञानकाले एवाभावज्ञानस्य प्रतियोग्या-

चरमवृत्तिरूप तत्वज्ञान है अविद्यादि सकल दृश्य का निवर्तक वही तत्वविनाशक है। अर्थात् तत्वज्ञानरूप कारण से अविद्या की निवृत्ति होती है। और अनिर्वचनीय जो निवृत्ति है वह भी अनिर्वचनिय ही है।

इस में विशिष्टाद्वैतवादी आपको पूछता हूं कि एतादृश अर्थात् तत्वज्ञान से जायमान जो अविद्या निवृत्तिरूप पदार्थ है, वह सत् अबाधित है अथवा असत् अबाधित है। अथवा उभय रूप है, अर्थात् सत् भी है और असत् रूप भी है। ऐसा तीन विकल्प हुआ। इन तीन में से प्रथम विकल्प जो सत् रूप है वह ठीक नहीं है क्योंकि यदि अविद्या निवृत्ति को सत् अबाधित माने तब एक अबाधित तत्व ब्रह्म है तथा दूसरा अबाधित सत् लक्षणत्व सत् लक्षणत्व अविद्या निवृत्ति हुई तब तो अद्वैतवाद के मूल में आपंने कुठाराघात ही कर दिया। और आप के मत से तो ब्रह्म व्यतिरिक्त सभी पदार्थ बाधित हैं, तो अविद्या निवृत्ति को भी जन्यता है तो तादृश निवृत्ति को जन्य होने से मिथ्यात्व है अर्थात् अविद्या निवृत्ति तो भी मिथ्या है तो उसका बाध होना आवश्यक है। अतः अविद्या निवृत्ति सद्रूप है ऐसा प्रथम पक्ष ठीक नहीं है।

एवं अविद्या निवृत्ति असत् है अर्थात् बाधित है, यह जो द्वितीयपक्ष है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि यदि तादृश निवृत्ति को बाधित मानें तब तो देवदत्त हन्तृ हतन्याय को लागू होने से अविद्या का सद्भाव हो जायेगा। क्योंकि अभावाभाव प्रतियोगि स्वरूप होता है। जिस तरह भूतल में घट का निराकरण करने

(आनन्दभाष्यम्३।२।२१) इति।

मूर्तामूर्तनिषेधो हि न प्रपञ्चस्य बाधकः ।
ब्रह्मनिष्ठामियत्तां हि बाधते गुणवर्णनात् ॥

दिबोधपराधीनत्वस्य नियमात् । सविकल्पककाले एव स्फुटतरबोधात् । 'तम आसीदि' त्यादिश्रुतिरपि अज्ञाने न प्रमाणम् । तत्र तमः पदेन सांसारिकजीवानां ज्ञानाभावस्यैव प्रलये प्रतिपादनात् । न तु तया श्रुत्या भावाभावविलक्षणोऽज्ञाननामकः पदार्थः प्रतिपादितो भवतीति ।

अतएवाविद्यास्वरूपानुपपत्येत्यादि । यतो विचारे कृते सति अविद्यास्वरूपं नोपपद्यते, अतएवाविद्यामूलकैकजीववादोपि नोपपद्यते । तथाहि अविद्यावच्छिन्नं चेतनमेवजीवः । तत्राविद्यैकाव्यापिका च । इति तदवच्छिन्नो जीवोप्येक एव व्यापकश्च । तन्मते यथाकश्चित् स्वप्नदृक् पुरुषः स्वप्नेऽनेकान् देहान् तदन्तर्गतानेकान् जीवान् पश्यति । प्रबोधसमये च स्वशरीरस्वशरीरावस्थितं जीवमात्रमबाधितं पश्यति । यानि चान्यानि शरीराणि तदन्तर्गताश्च

से घटाभावज्ञान होता है, और यदि पुनः घटविरोधी घटाभाव का निराकरण करने पर भूतल में घटाधिकरणता का ज्ञान होता है। इसी तरह प्रकृत में अविद्या का विरोधि अविद्या की निवृत्ति है, तो तादृश निवृत्ति का मिथ्या होनें से अभाव होगा, तब अविद्या का सद्भाव हो जायेगा। और अविद्या का सद्भाव होगा तब तो अविद्या का सकल कार्य सर्वदा रहेगा तब मोक्ष की आशा तो अतिदूर हो जायेगी। विरोधी घट ध्वंस होने से वह ध्वंस कपाल स्वरूप है क्योंकि नैयायिकों का नियम है कि प्रतियोगि का प्रागभाव तथा ध्वंस प्रतियोगि का समवायिकारण में होता है और ध्वंस अभाव होने से अधिकरण रूप ही होता है, अब यहां घटध्वंसात्मक कपाल का विनाश हो जाने पर घट तथा कपालात्मक घटध्वंस इन दोनों का अभाव हो जाता है किन्तु घट अथवा घटध्वंस इन दोनों में से एक भी नहीं देखने में आता है। उसी प्रकार से प्रकृत में तत्वज्ञान से अविद्या सहित अविद्या निवृत्ति, जिस तरह घट का अभाव हो जाता है, अर्थात् प्रकृत में दोनों को अविद्या को तथा अविद्या निवृति इन दोनों को एक नाशक नाश्यता है, अर्थात् प्रकृत में जहां एक नाशक नाश्यता होती है, उस स्थल में अभाव की निवृत्ति होने पर प्रतियोगी का पुनः सद्भाव नहीं होता है। घट तथा घटध्वंसवत् यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त में तो घटकारणीभूत कपाल का नाश हो जाने पर घट का समवायि कपाल तथा कपाल संयोगादिक कारण सामग्री का अभाव हो जाता है, इस घट तथा तदीय ध्वंस का पुनः दर्शन कपाल नाशोत्तरकाल में नहीं होता है। दार्ष्टान्तिक में तो निवृत्ति की निवृत्ति होने पर अभावाभाव प्रतियोगी रूप होता है" यह जो उत्सर्ग न्याय है वह अवाधित है तो निवृत्ति की निवृत्ति होने से अविद्या का सद्भाव अवश्यमेव हो जायगा।

यतोऽत्रापि उत्तरप्रकरणे 'सर्वस्यवशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः' इत्यादिना सत्यसङ्कल्पत्वसर्ववशित्वसर्वेश्वरत्वादिविशेषस्य प्रतिपादनात्, जडचेतनशरीरः परमेश्वरः सिद्ध्यति । ततश्च सर्वशरीरशरीरीपरमेश्वरः

भवति । अन्यथा तस्य पुरुषस्य मोक्षाभावप्रसङ्गात् । किं च यद्येक एव जीवः स्वीक्रियेत तदा जन्ममरणकरणादीनां या प्रतिनियतव्यवस्था बन्धमोक्षव्यवस्था च सापि नोपपादिता स्यात् । तथाहि सर्वशरीरे जीवस्यैकत्वात्, एकस्मिन् जायमाने सर्वेप्युत्पन्नाभवेयुः । परन्तु नैवं दृश्यते नवोपपद्यते चापि । तथा एकत्रैकस्मिन् म्रियमाणे सर्वे म्रियमाणाः भवेयुस्तदपिनोपपन्नम् । एवं कश्चित् दुःखी कश्चित् सुखी इत्यपि न स्यात् । कश्चिद्बद्धः कश्चिन्मुक्त इत्यादिव्यवस्थापि न स्यात् । तस्माल्लोकवेदप्रमाणप्रमापितव्यवस्थासम्पादनाय जीवबहुत्वमेव मन्तव्यं नतु तदैक्यमिति । एतदस्वारस्येन भवत्पक्षपातिनः केचनबन्धमोक्षव्यवस्थामुपपादयितुमन्तःकरणावच्छिन्नो जीव इति स्वीकृत्य तत्रान्तः करणानां भेदात् तद्भेदेन जीवबहुत्वपक्षमेव स्वीकुर्वन्तीति संक्षेपः पूर्वमेवगीतानन्दभाष्यार्थचन्द्रिकाविवरणे प्रपञ्चितत्वात् ।

रूप से अविद्या कारण ब्रह्म को अविनाशी होने से विनाशादि सम्भवित नहीं है। इस लिये अभावाभाव प्रतियोगि रूप है इस नियम का बोध नहीं होने से अविद्या का तो सद्भाव अवश्यमेव हो जायेगा अविद्या का सद्भावरूप दोष द्वितीय पक्ष में वज्रलेप हो जाता है। तृतीय पक्ष है **"उभयरूपं वा"** अर्थात् जो यह अविद्या की निवृत्ति है वह उभयरूप है सत् भी है तथा असत् भी है यह तृतीय पक्ष भी ठीक नहीं है । क्योंकि एक ही पदार्थ दो रूपवाला हो ऐसा नहीं देखा जाता है, अर्थात् वह अविद्या निवृत्ति सत् भी है असत् बाधित भी है और अबाधित भी हो ऐसा नहीं। यतः सत्व तथा असत्व विरुद्ध धर्म हैं तदुक्तम्- **"परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः"** ऐसा नियम है। इस दोष को तृतीय पक्ष में रहते हुए कहते हैं- **"द्विरूपत्वेऽर्थात् अंशतोऽबाधितत्वे"** इत्यादि। दो रूपवाला मानें अर्थात् अंशतः अबाधित भी माने तथा अंशतः बाधित माने तब तो जिस अंश से अबाधित मानेंगे तब तो अबाधितांश को लेकर के अद्वैत का व्याघातदोष होगा और जिस अंश से बाधित मानेंगे तो अविद्या निवृत्ति का बाध होने से पुनः अविद्या का सद्भाव सिद्ध हो जाने से पुनः अद्वैत का व्याघात दोष होगा । उक्त युक्ति से अर्थात् अभावाभाव प्रतियोगि का स्वरूप होता है ऐसा नियम है। इस से अतिरिक्त तो कोई पक्ष हो नहीं सकता है। एतत् पक्षत्रयव्यरिक्त पक्ष अनुभव बाधित है। एतादृशस्थल में चतुर्थपक्ष सर्वथा अनुपलब्ध है। अनिर्वचनीयता पक्ष तो लोक वेदविरुद्ध होने से सुसंगत नहीं है। इसलिये उस की चर्चा यहां अनुचित ही है।

नहीं कहो कि अविद्या की निवृत्ति अर्थात् अविद्यादिक कल्पित पदार्थ की जो निवृत्ति है वह

एक एवेत्येव सिद्ध्यति । न तु प्रपञ्चनिषेधः फलितोभवति । ततश्चाब्रह्मात्मकस्यैव निषेधो न तु प्रपञ्चस्य सः । एवमन्यत्रापि ।

॥ आत्मनस्तिरोधानानुपपत्तिः ॥

'आच्छाद्यविक्षिपतिसंस्फुरदात्मतत्त्वं जीवश्वरत्वजगदाकृतिभिर्मृषैव । अज्ञानमावरणविभ्रमशक्तियोगादित्यादिरीत्या सदसद्भ्यामनीर्वचनीयाज्ञा-

अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः ।
निवृत्तिरात्मा मोक्षस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः । इति ।

तत्र बन्धनिवृत्तिर्मोक्षः, मुचेर्बन्धनविश्लेषरूपत्वात् । बन्धश्चाविद्यैव । सा च द्विविधा स्थूलरूपा सूक्ष्मरूपा च । तत्र प्रथमा महाभूतपर्यन्ता । संस्काररूपा च । इयमेव तुलाविद्यामूलाविद्येति पदेनापि व्यवह्रियते । अनयोर्विनाशस्ततश्च तादृशविनाशोपलक्षितात्मैव मोक्षः । अनयोर्विनाशकं च श्रवणमननादिपरम्परया जायमानमन्तःकरणपरिणामरूपं तत्वज्ञानमेव । ततश्च बन्धविनाशोत्तरकालिकात्मस्वरूपावाप्तिरेव मोक्षः । तस्यामेवदशायां जायमानो मोक्ष एव मोक्षपदस्य मुख्यो मोक्षो विदेहतात्कालिक एव । जीवन्मोक्षे तु गौणो व्यवहारस्तदा सूक्ष्मरूपाविद्यायाः सत्वात् । तथा च तत्वज्ञानप्रयोज्या-

अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप है, इस लिये पक्षत्रय में जो दोष कह गये हैं वे सब दोष निरर्थक हैं। ऐसा कहा गया है कि "कल्पित अर्थात् अध्यस्त जो शुक्ति रजतादिक पदार्थ हैं उन कल्पित पदार्थ का जो विनाश है सो अधिष्ठानावशेष है । अर्थात् कल्पित पदार्थ का विनाश अधिष्ठान स्वरूप ही है। और अभाव अधिकरण स्वरूप होता है, ऐसा मीमांसकों का सिद्धान्त है। जिस तरह गन्धाभाव वायुस्वरूप है, क्योंकि गन्धाभाव वायु में रहता है। अन्यथा यदि अधिकरण स्वरूप न मान करके अतिरिक्त मानें तब तो अभाव नामक एक अतिरिक्त मानने से गौरव हो जायेगा। इस लिये अभाव अधिकरण स्वरूप है। प्रकृत में अविद्या निवृत्ति अभावरूप है, इस लिये वह अभाव ब्रह्म में रहने से ब्रह्म स्वरूप ही है।

ऐसा कहना ठीक नहीं है , क्योंकि अविद्या निवृत्ति यदि ब्रह्मरूप है और ब्रह्म तो सर्वदा एकरूप है, तब वेदान्त जनित तत्वज्ञान से पूर्व में ही अविद्या की निवृत्ति हो जायगी। इष्टापत्ति तो आप कह नहीं सकते, क्योंकि ऐसा कहो तब तो वेदान्त जन्य ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानरूप तत्वज्ञान से अविद्या की निवृत्ति होती है। ऐसा जो आपका सिद्धान्त है उस का व्याघात हो जायेगा ।

और भी देखिये- सम्पूर्ण जगत् का विनाशक जो तत्व ज्ञान है, वह स्वयं मन का परिणाम रूप होने से वह भी अविद्यक तत्वज्ञान का भी तो विनाश आवश्यक है। अन्यथा तादृश तत्वज्ञान जो अविद्यादि

अज्ञानमावरणविभ्रमशक्तियोगादित्यादिरीत्या सदसद्भ्यामनीर्वचनीयाज्ञानमावरणविक्षेपशक्ति समन्वितं सत्स्वयंप्रकाशज्ञानं मात्रस्वरूपं ब्रह्मावृणोति । तादृशाज्ञानतिरोहितस्वरूपं ब्रह्मविक्षेपशक्तिसमन्विताज्ञानोत्पादितजीवेश्वरत्वादिविविधभेदप्रपञ्चस्वभावतोमृषात्मकं पश्यति । तदेव च ब्रह्म यदा विद्ययाविनाशिताज्ञानं भवति तदा बन्धविनिर्मुक्तं मुक्तमिति च व्यवह्रियते'

तुलाविद्यामूलाविद्येति पदेनापि व्यवह्रियते । अनयोर्विनाशस्ततश्च तादृशविनाशोपलक्षितात्मैव मोक्षः । अनयोर्विनाशकं च श्रवणमननादिपरम्परया जायमानमन्तःकरणपरिणामरूपं तत्वज्ञानमेव । ततश्च बन्धविनाशोत्तरकालिकात्मरूपावाप्तिरेव मोक्षः । तस्यामेवदशायां जायमानो मोक्ष एव मोक्षपदस्य मुख्यो मोक्षो विदेहतात्कालिक एव । जीवन्मोक्षे तु गौणो व्यवहारस्तदा सूक्ष्मरूपाविद्यायाः सत्वात् । तथा च तत्वज्ञानप्रयोज्याविद्यानिवृत्तिरेव मोक्षः । तत्र पृच्छामि किमात्मिका बन्धनिवृत्तिः, निवर्तकं च किमिति । येयमविद्यानिवृत्तिः सा अबाधिता वा बाधिता वा उभयरूपा वा । नेतोऽपरः पक्षः संभवति, असंभवात् । तत्र नाद्यः । निवृत्तेरबाधितत्वे ब्रह्मभिन्नत्वेन च द्वैतप्रसङ्गात् । यत एकमबाधितं

सकते, क्योंकि ऐसा कहो तब तो वेदान्त जन्य ब्रह्मात्मैक्य ज्ञानरूप तत्वज्ञान से अविद्या की निवृत्ति होती है। ऐसा जो आपका सिद्धान्त है उस का व्याघात हो जायेगा।

और भी देखिये- सम्पूर्ण जगत् का विनाशक जो तत्व ज्ञान है, वह स्वयं मन का परिणाम रूप होने से वह भी अविद्यक तत्वज्ञान का भी तो विनाश आवश्यक है। अन्यथा तादृश तत्वज्ञान जो अविद्यादि सकल है इस वस्तु का विनाशक है, उस तत्वज्ञान से द्वैतापत्ति हो जायगी। इस लिये तादृश तत्वज्ञान का भी विनाश होता है ऐसा कहना चाहिये। अब इस तत्वज्ञान का विनाश किस कारण से होता है वह कहिये। नहीं कहो कि जिस तरह कतकरज को मल सहित जल में देने से वह कतकरज जल में रहने वाले मल के विनाश करके जल निर्मल कर देता है तथा स्वयमपि विनष्ट हो जाता है। यथा वा विष को विनाश करने के लिये दिया हुआ विषान्तर प्रथम विष को विनष्टकरके स्वयमपि विनष्ट होता हुआ सविष शरीर को स्वस्थ बना देता है। यथा वा चरमश्चरम शब्द उपान्त्य शब्द का नाश करता हुआ स्वयमपि विनष्ट हो जाता है। उसी तरह तत्वज्ञान अविद्या प्रभृति सब आविद्यक कार्य का विनाश करता हुआ स्व को भी अविद्याक होने से स्व का भी विनाश कर देता है। ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि जो यह सर्व का विनाशक तत्वज्ञान है वह स्व मन का परिणामरूप होने से ब्रह्म भिन्न है। इस लिये एतादृश जो यह तत्वज्ञान है उस का उत्पाद विनाश होता है ऐसा मानना ही पड़ेगा। और उस तत्वज्ञान का जो उत्पाद विनाश है वह मिथ्यारूप है। यह भी मानना ही पड़ेगा। तब मिथ्या लक्षणरूप तत्वज्ञान

इति तव मतं तदपि विचारतया न घटमानं भवति । तथा हि प्रकाशनाशस्यैवतिरोधानरूपत्वात् । ब्रह्म च ज्ञानस्वरूपत्वात् प्रकाशात्मकमेव । प्रकाशो हि तत्स्वरूप एव । न तु ज्ञानं ब्रह्मधर्मोद्वैतापत्तेः । प्रकाशविनाश एव तिरोधानमित्यविद्यया ब्रह्मस्वरूपस्य तिरोधाने स्वीकारे मूलक्षतिरेव स्यादिति

ब्रह्म, अबाधिता चा विद्यानिवृत्तिरिति । द्वितीयपक्षे अविद्यानिवृत्तेरपि बाधात् । अविद्या सत्वं दुष्परिहरमेव । अभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वात् 'द्वौनञौ प्रतियोगीनं गमयतः' इति नियमात् । यथाभूतले घटनिषेधे घटाभावः प्रादुर्भवति तस्याभावस्य च निषेधे पुनः प्रतियोगी परिदृष्टो भवति तद्वदेव प्रकृते अविद्या निवृत्तेर्मिथ्यारूपत्वेन बाधितत्वे अविद्यायाः सत्वमेवेति पुनरपि द्वैतप्रसङ्गोऽनिर्मोक्षश्च । ततश्च गतमेव तत्वज्ञानस्य विनाशकत्वमिति, अविद्यानिवृत्तेरुभयरूपत्वस्वीकारे अर्थात् अबाधितबाधितत्वोभयरूपत्वे, यदंशेनाबाधितत्वं तदंशमादायसत्यत्वेनानिर्मोक्षः । यदंशमादायबाधितत्वं तदंशेनाविद्यासद्भावेन मोक्षाभाव एव ।

का विनाशरूप जो अविद्या है, उस का विनाश असम्भवित है। नहीं कहो कि तत्वज्ञान का विनाशरूप जो कार्य है उस नाशात्मक कार्य का अन्य किसी विनाश को मानें अर्थात् दृश्य ध्वंस को विनाशक मानें तब तो अनवस्था होगी। अर्थात् तत्वज्ञान विनाश का विनाशक दृश्य ध्वंस को मानेंगे तब दृश्य ध्वंसरूप अविद्या कार्य का विनाशक भी एक किसी को मानना पडेगा। उसका भी विनाशक अन्य किसी को मानियेगा। इस प्रकार अपरापर विनाशक मानने से अनवस्था होगी। दावानल विषादिक का जो आपने दृष्टान्त दिया था। वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहाँ तो पूर्वावस्था का परित्याग तथा उत्तरावस्था का आगम होता ही रहता है। मूलरूप से पदार्थ का विनाश नहीं होता है, केवल पूर्वावस्था का परित्याग हो जाता है और वही पदार्थ उत्तरावस्था में परिणत हो जाता है क्योंकि कहा है कि पदार्थमात्र प्रतिक्षण में परिणत होता रहता है। अर्थात् पदार्थ मात्र का प्रतिक्षण में परिणाम होता रहता है। इसमें परिणाम दो प्रकार का होता है। एक तो सजातीय परिणाम होता है। जिस तरह मृत्तिका का परिणाम मृत्तिका रूप होता है। और दूसरा परिणाम विजातीय रूप होता है। जैसे बीज का परिणाम बीज रूप में होता है। विशेषता इतनी हीं है कि दावानलादि स्थल में विजातीय परिणाम होता है। और दुग्धादिक स्थल में सजातीय परिणाम होता है। किन्तु पदार्थों का सर्वथा विनाश नहीं होता है। वेदान्त सिद्धान्त में तो परिणाम वाद माना गया है। अत एव सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का परिणाम स्थूल चिदचिद्विशिष्ट जगत् सत्य माना जाता है। अतः अविद्या निवृत्ति तथा अविद्या का निवर्तक तत्व ज्ञान का जो स्वरूप है उसका

वृद्धिमिच्छतोमूलमपि नष्टमितिन्यायः प्रवर्तते । तदेवमद्वैतमतं न युक्त्या युक्तम् । अधिकं सुधिभिः स्वयमेवोहनीयमितिदिक् ।

स्यादेतत् विशिष्टाद्वैतमतेऽपि जीवात्माविज्ञानस्वरूप एव 'विज्ञानघनः' इत्यादिश्रुतेः । तथा स विज्ञानरूपत्वात् स्वप्रकाश एव मन्तव्यः । 'अत्राय पुरुषः स्वयं ज्योति' रितिश्रुतेः ।एवं च तस्मिन् योयं देहाद्यभिमानो 'मनुष्योहं

न च यदि अविद्यानिवृत्तिरतिरिक्ता भावरूपा तदा सा बाधिता अबाधितेत्यादिपक्षा अवतरेयुः । परन्तु 'अधिष्ठानावशेषो हि नाशः कल्पितवस्तुनः' इति नियमेना-भावस्याधिकरणरूपत्वमिति । यथा जले विद्यमानोऽग्न्याद्यभावजलस्वरूपस्तथा ब्रह्मणि विद्यमानाऽविद्या निवृत्तिब्रह्मरूपैवेति वाच्यम् । भावाभावयोरेकत्वायोगात् । ब्रह्मणः सर्वदा विद्यमानत्वेन तत्वज्ञानात् पूर्वमपि सद्भावात् तत्वज्ञानोत्तरकालिकत्वं मोक्षस्येति प्रवादोऽमूलक एव स्यात् ।

न तु सर्वहरस्य तत्वज्ञानस्यापि कार्यत्वेन कार्यमात्रस्य विनाशस्यावश्यकतया तस्य केन भवतीति वक्तव्यम् । न हि स्वेन भवतीति तथाऽदर्शनात् । न च दावानलादौ विषान्तरे

जो स्वरूप तादृश स्वरूप का निरूपण करना अशक्य ही होता है । इसलिये अद्वैतवादियों का मत समीचीन नहीं है । विशिष्टाद्वैत मत में तो परमेश्वर सर्व दोष रहित तथा अनन्त कल्याण गुणवान् सर्वज्ञ सर्वशक्ति माने जाते हैं, वह स्वकीय सत्य संकल्प से सब वस्तु को करने में नहीं करने में या अन्यथा करने में सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, इसलिये इस मत में किसी भी दोष का चंचु प्रवेश नहीं होता है । इस विषय पर विशेष विचार मेरे भाष्यविवरणों में देखें ।

गत प्रकार से अध्यासानुपपत्ति दोष का वर्णन कर के अद्वैतवाद का निराकरणं कर के निवर्तक ज्ञान का कर्ता कोई नहीं बन सकता है, इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं '**ननु यदिदंबाधक ज्ञानमित्यादि प्रश्न**' ब्रह्म में प्रपंच नहीं है । इत्याकारक जो बाधक ज्ञान है, जिसका नाम निवर्तक ज्ञान तथा तत्व ज्ञान भी है, तादृश निवर्तक ज्ञान का ज्ञाता अर्थात् कर्ता कौन है ? इस निवर्तक ज्ञान को कौन जानता है । क्योंकि ज्ञानरूप जो क्रिया है वह तो सकर्तृक है, इसलिये उस क्रिया का कर्ता ज्ञाता है, ऐसा मानना आवश्यक है । नहीं कहो कि शुद्ध ब्रह्म चैतन्य में आरोपित जो अहमर्थ अर्थात् अहंकार है 'मैं जानता हूँ' इत्यादि प्रतीति सिद्ध है तादृश अहंकार ही ब्रह्म भिन्न सकल प्रपञ्च का निषेधक ज्ञान का कर्ता है । ऐसा कहना ठीक नहीं है । क्योंकि अहमर्थ जो जीव है वह तो स्वयं अध्यस्त है तो बाध्य होने से निवर्तक ज्ञान का विषय अर्थात् कर्म है, तो बाधक ज्ञान का कर्ता किस तरह से हो सकता है । जो जिस क्रिया का कर्म होता है वही उस क्रिया का कर्ता नहीं होता है । ऐसा गमनादि क्रियाओं में देखा जाता है । (अर्थात् 'देवदत्त गांव

देवोहं काणः कुब्जः इत्यादिरूपः स च स्वरूपतिरोधानमन्त-रेणाशक्योपपादः । यतः स्वरूपप्रकाशे तस्मिन् देहाद्यध्यासासंभवात् । इति भवन्मतेऽपि स्वरूपतिरोधानस्यावश्यकत्वेन समान एव दोषो भवति । अपि च मम मते जीवैक्यं भवन्मते तु सुखादिव्यवस्थोपपादनाय

च भवतीति । दावानलादेः पूर्वावस्थापरित्यागस्यावस्थानान्तरस्यैव दर्शनात् । न चाविद्यादिदृश्यध्वंस एव तत्वज्ञानस्य विनाशको भवतीति । तदा दृश्यध्वंसस्यापि कार्यतया तद्विनाशकोऽपि क इति पर्यनुयोगप्रसङ्गात् । उत्तरोत्तरविनाशस्योत्तरविनाशकत्वे विनाशकस्यानवस्थास्यादितिदूषणजालं हृदिनिधायोपक्रमते ननु अविद्यास्तमयोमोक्षः इत्यादि । अन्यत्सर्वं यथामूलमेवावधातव्यम् ।

तत्वज्ञानस्यसर्वमिथ्यापदार्थबाधकस्य ज्ञानत्वेन ज्ञानस्यक्रियारूपत्वात् क्रियायाश्च कर्तृसापेक्षत्वमिति तादृशबाधकज्ञानस्य कश्चित् कर्ताऽवश्यमेवान्वेषणीय इति न तस्य ज्ञाता कर्ता संभवति न वा तादृशज्ञातुः स्वरूपपदमप्यध्यास्ते इति कृत्वा ज्ञात्रनुपपत्तिप्र-करणमारभमाणो जगदाचार्य उपक्रमते ननुयदिदं बाधकज्ञानमित्यादि तस्य कर्ता अर्थात्

जाता है' इस स्थल में गमन क्रिया का कर्म है ग्राम, क्योंकि देवदत्त में समवाय संबध से रहने वाली जो गमन क्रिया है उस क्रिया का फल है, उत्तर देशसंयोग, तादृश संयोग रूप फल का ग्राम सम्बन्धी है । इसलिये ग्राम कर्म कहलाता है, और इतर सर्वकारक का प्रयोजक होने से देवदत्त कर्ता होता है । तो यहाँ कर्ता भिन्न है और कर्म भी भिन्न है । इसी तरह जो कर्म होता है वह कर्ता कदापि नहीं होता है । प्रकृत में अहमर्थ निवर्तक ज्ञान का कर्म है तब वह अहमर्थ निवर्तक ज्ञान का कर्ता कभी भी नहीं बन सकता है ।) इसलिये निबर्तक ज्ञान के प्रति कर्मीभूत समारोपित अहमर्थ, उस निवर्तक ज्ञानरूप क्रिया का कर्ता कभी भी नहीं हो सकता है । अतः समारोपित जीव निवर्तक ज्ञान का कर्ता है, यह जो आपका पक्ष है यह समुचित नहीं है । नहीं कहो कि सकल प्रपञ्च का बाधक जो निवर्तक ज्ञान है, तादृश निवर्तक ज्ञान का ज्ञान जीव तो नहीं बन सकता है, परन्तु शुद्ध चैतन्य निरवच्छिन्न ब्रह्म ही उस निवर्तक ज्ञान का ज्ञाता है ? यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि इस पक्ष में होने वाला जो विकल्प उसका समाधान नहीं हो सकता है । तथाहि शुद्ध चेतन ब्रह्म ज्ञाता है तो इस ब्रह्म में जो ज्ञातृत्व धर्म है वह ब्रह्म का स्वाभाविक धर्म है अथवा ब्रह्म में ज्ञातृत्व धर्म औपाधिक है अर्थात् ज्ञातृत्व ब्रह्म में अध्यस्त है ? इसमेंसे यदि द्वितीय पक्ष को मानें अर्थात् ज्ञातृत्वधर्म ब्रह्म में अध्यस्त है तब तो ब्रह्म में जो ज्ञातृत्व का अध्यास है, इस ज्ञातृत्वाध्यास का मूलकारण, उपादान कारण अविद्यान्तर अर्थात् जिस अविद्या को कारण बना कर के यह नवीन ज्ञातृत्वाध्यास हुआ है, इन दोनों का निवर्तक जो पूर्वकालिक 'नाम प्रपञ्च' यह जो निवर्तक ज्ञान है,

जन्ममरमादिव्यवस्था सिद्धये च जीवनानात्वमिति सर्वजीवेषु स्वरूपति-
रोधानेन दुर्घुटत्वम्। अत्रोच्यते – भगवदुपासकानां भगवदुदीरितवेदप्रामाण्यं
तन्मूलकेतिहासपुराणादिप्रामाण्यंचाभ्युपगच्छतां सर्वमेव समाहितं भवति।
तदुक्तं भगवता 'यो मामजमनादिञ्चवेत्ति' द्वाविमौ पुरुषौ लोके''कालं स

कर्मैवकर्ता, कर्ता वा कर्म भवति,

कर्तृकर्मणो भेदात्। नहि भवति देवदत्तो देवदत्तं गच्छति, ग्रामो वा ग्रामं गच्छतीति।
प्रकृते च नेह नानास्तिकिञ्चन इत्याश्रुतिबोधितब्रह्मणि प्रपञ्चोनास्तीति बाधकज्ञाना-
त्मकतत्वज्ञानस्य ज्ञाता कः? इति प्रश्ने ब्रह्मणि समारोपिताहमर्थस्य ज्ञातृत्वे स्वीकृते,
अहमर्थस्य तादृशज्ञानक्रियायाः कर्मत्वेन तादृशज्ञानक्रियायाः कर्तृत्वात्। ब्रह्मणि एव
तत्कर्तृत्वं न संभवति, तज्ज्ञातृत्वं ब्रह्मणि समारोपितं स्वाभाविकं वेति प्रश्ने ब्रह्मणि
ज्ञातृत्वस्याध्यस्तत्वे स्वाभाविकत्वे च मूलोक्तदोष आपतीति जगदाचार्येणैव सर्वं निवेदितं
तथासत्यनवस्था-प्रसङ्गादिति। **ब्रह्मणि जगतोऽध्यारोपायब्रह्मण्यध्यासः।**

नहीं कहो कि इन दोनों का नाश नहीं होता है इस को तो आप इष्टापत्ति नहीं मान सकते हो-क्योंकि ऐसा मानने पर आपको स्वकीय सिद्धान्त का विरोध होता है। क्योंकि आप का सिद्ध ब्रह्म मात्र सत्य है। तदितर जितने पदार्थ है चाहे वह अविद्यादिक अनादि पदार्थ हो तथा आकाशादिक हों ये सब ब्रह्म के अज्ञान से ब्रह्म में कल्पित होते हैं, और जब वृत्ति प्रति फलित चैतन्य साक्षात्कार रूप विद्या के तत्व ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, तब वह ज्ञान स्वविरोधी अज्ञान को नाश करता है, उसके बाद अज्ञान रूप कारण का विनाश होने से अज्ञान का कार्य जो सादि अनादि जितने पदार्थ हैं (जिसमें तत्वज्ञान का भी अन्तर्भाव है) ये सब विनष्ट हो जाते हैं, केवल अधिष्ठान लक्षण सत्य ब्रह्म मात्र रह जाते हैं। तब तादृश विनाशोपलक्षित आनन्द लक्षण ब्रह्म प्राप्ति लक्षण मोक्ष होता है ऐसा आपका सिद्धान्त है, अगर इन अज्ञानादिक पदार्थों में से एक की भी सत्ता रह जाय तब तो मोक्ष नहीं होगा। इसलिये इष्टापत्ति नहीं कह सकते हैं।

नहीं कहो कि-ज्ञातृत्वाध्यास तथा उस अध्यास का प्रयोजक जो अविद्यान्तर है इन दोनों का निवर्तक बाधक दूसरा तत्व ज्ञान होता है किन्तु पूर्वकालिक तत्त्वज्ञान बाधक नहीं होता है। अर्थात् जिस तत्वज्ञान से जगदध्यास तथा जगदध्यास का प्रयोजक अविद्या का विनाश होता है उससे अतिरिक्त तत्वज्ञान ज्ञातृत्वाध्यास तथा तत्प्रयोजकीभूत अविद्या का विनाशक होता है ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें अनवस्था दोष हो जायगा। शुद्ध ब्रह्म रूप जो ज्ञान है वह तो बाधक नहीं होता है। क्योंकि वह तो सब का आश्रय होता है और आश्रय विनाशक नहीं होता है। किन्तु वृत्त्यारूढ़ जो ब्रह्म ज्ञान है

पचते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः''एतेवैनिरयास्तातस्थानस्य परमात्मनः'
अव्यक्तादिविशेषान्तं परिणामर्द्धिसंयुतम्। क्रीडाहरेरिदं सव
क्षरमित्युपधार्यताम्' 'जगतः पितरौ रामो जानकी वेदविश्रुतौ। सर्वेशौ
सर्वगौ सम्यक् सर्वज्ञौ सर्वदौ शिवौ॥ नाशकौ सर्वदुष्टानां प्रणतानां च

ततश्च पुनः निवर्तकज्ञानज्ञातुरध्यासाय ब्रह्मणि ज्ञातृत्वाध्यास इत्यादिक्रमेण
दुरवस्थानवस्था भवति। अन्यत्सर्वं यथामूलमेव ज्ञातव्यम्।

कृतान्त इव भूयविवर्जितमिदं तत्वज्ञानं स्वेतरं विनाशयत्स्वात्मानमपि दृश्यं
**विनाशयतीति प्रथितमाहात्म्यस्य तस्य कुत उत्पत्तिरिति ज्ञातुं तत् खण्डनाय च प्रयतमानो
जगदाचार्य उपक्रमते** अथ यदिदमित्यादि **तत्र तत्वज्ञानोत्पत्तौ न प्रत्यक्षप्रमाणं संनिकर्षाधीनस्य
तस्य तत्राप्रसरात्। नवाऽनुमानमनुमापकहेतोरसंभवात्। परिशेषात् तत्त्वमस्यादिशास्त्रमेव
तत्वज्ञानोत्पत्तौ कथञ्चित् प्रमाणतामश्नुते। परन्तु तदपि न संभवति। यन्निर्दुष्टं तदेव प्रमाणं
सदोषस्य प्रमोत्पादकत्वासंभवात्। शास्त्रं च ब्रह्मभिन्नतयाऽविद्यादोषाघ्रातमेवेति न तेन**

वही बाधक होता है। अर्थात् वृत्ति में प्रतिफलित चेतन ही प्रतिबन्धक होता है इसलिये वृत्तिज्ञान रूप तत्त्वज्ञान विनाशक होता है। यदि कहो कि ज्ञातृत्व धर्म ब्रह्म का स्वाभाविक है अर्थात् ब्रह्म में अध्यस्त नहीं है। तब तो स्वविशेष ब्रह्म वादरूप विशिष्टाद्वैत पक्ष में प्रवेश रूप दोष होता है, तथा स्वसिद्धान्त अद्वैत सिद्धान्त का विरोधरूप दोष भी होता है, क्योंकि आपके मत में तो ब्रह्म को निर्विशेष मानते हैं। आपलोग तो ज्ञान स्वरूप ब्रह्म में ज्ञानत्वादिक धर्म को भी नहीं मानते हैं। और द्वैताभाव को अधिकरण स्वरूप मानते हैं। देशानवच्छिन्नत्व रूप व्यापकत्व कालानवच्छिन्न रूप नित्यत्वादिक धर्म को अधिकरण स्वरूप मान कर के कथञ्चित् व्यवहार को मानते हैं। ब्रह्म में तो किसी भी धर्म को नहीं मानते हैं। इस स्थिति में यदि ब्रह्म में ज्ञातृत्व धर्म को पारमार्थिक ब्रह्म धर्म मान लेते हैं, तब तो स्वसिद्धान्तभङ्ग रूप दोष अनिवार्य हो जाता है। इस पर विशेष विचार अन्यत्र देखिये। यहां तो केवल अक्षरार्थ का विवरण किया गया है।

जो तत्वज्ञान सकल प्रपञ्च का विनाशक होता हुआ प्रपञ्चान्तर्गत स्व का भी कतक रजोवत् विनाशक होता है ऐसा आप मानते हैं। तादृश तत्वज्ञान का उत्पादक कारण कौन है? उत्पादक का निर्वचन नहीं होने से उत्पाद्य स्वरूप भी अनुपपन्न है इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं कि-'**अथ यदिदमित्यादि**' यहां अथशब्द प्रश्न का सूचक है। अथवा आनन्तर्यार्थक है। अथ-इसके बाद अर्थात् तत्वज्ञान का जो ज्ञाता, उसकी अनुपपत्ति वर्णन करने के बाद। जो यह ब्रह्म भिन्न वृत्तिज्ञानरूप सर्वभेद का-अर्थात् सकल प्रपञ्च का बाध करनेवाला तत्वज्ञान है, उसका कारण क्या है,

रक्षकौ । त्रातारौ दीनदासानां सृष्टिसंहारकारिणौ ॥ दृष्टिनिक्षेपमात्रेण योलोकान् सृजति प्रभुः 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्' 'सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ । जगत्सृष्ट्यादयो लीला ममेव राघवस्य च । सर्वेशः सर्वशक्तिश्च श्रीरामः

तथाविधेन जातमप्रमाभूतं तत्वज्ञानं मोक्षसाधकं प्रपञ्चबाधकं च संभवति । न चाविद्यापरिकल्पितमपि नायं सर्पः इति प्रत्यक्षं प्रतिबध्नात्येव रज्जौसर्पज्ञानं तज्जनितां भीतिं चेति वाच्यम् विभ्रमवतः पुरूषस्य नायं सर्पः इति वदतः पुरूषस्य चक्षुरादिकं दोषदुष्टमिति ज्ञातुर्भ्रान्तस्य सर्पबाधादर्शनात्तज्जनितभयादिनिवृत्तेरप्यदर्शनात् किञ्चेदं तत्वज्ञानं प्रपञ्चेमिथ्यात्वं करोति तथा प्रपञ्चान्तर्गतमिथ्यात्वमपिमिथ्या कुर्यात् । ततश्च देवदत्तहन्तृहतन्यायेन प्रपञ्चसत्यतैवापादिता भवतीति न भवतः समीहितसिद्धिरिति न तत्वज्ञानकारणस्यनिर्वचनं भवतीति दिक् ।

अविद्याब्रह्मण्यध्यस्ता, सा च स्वमेवोपादानं स्वमेवदोषरूपा च भूत्वासकलजगद्विभ्रमं संपादयति । तत्र जगत्येवशास्त्रस्यापि समावेशो ब्रह्मभिन्नत्वादिति सदोषशास्त्रेणो-

अर्थात् किस साम्रग्री विशेष से तत्वज्ञान उत्पन्न होकर तत्वज्ञान प्रपञ्च कारण जन्य होता है। अकारणक कार्योत्पादन नहीं होता है। यदि जो अकारणक है और सत् है तब तो वह नित्य होगा। जैसे आत्मा प्रभृतिक पदार्थ और यदि अकारणक असत् है तो वह कभी नहीं होता है जैसे गगन कुसुम शशविषाणादिक। अतः यहां तत्वज्ञान के कारण की जिज्ञासा होती है, जो कि स्वाभाविक है यह प्रश्न हुआ। इस प्रश्न का उत्तर रूप में आचार्य जी प्रश्न को वतलाते हैं-**'न च प्रमाणशेखरेत्यादि'**

नहीं कहो कि सर्व प्रमाण की अपेक्षा से श्रेष्ठ 'तत्वमस्या' दिक शास्त्र हैं, वही एतादृश तत्वज्ञान का उत्पादक कारण है। अर्थात् तत्त्वयस्यादि वाक्य द्वारा तत्व ज्ञान उत्पन्न होता है, तथा उत्पन्न हो कर के सकल प्रपञ्च का बाधक होता है। यद्यपि यथोक्त वाक्य से जायमान तत्वाज्ञान, अथवा प्रत्यक्षात्मक तत्वज्ञान यदि प्रपञ्चान्तर्गत स्वकीय कारण काभी विनाश करे तब तो उपजीव्य विरोध होता है। तथापि जिस अंश में तत्वज्ञान कारण की अपेक्षा रखता है उस अंशका बाधक नहीं होता है। अर्थात् वह स्वकारण के व्यावहारिकता मात्र की अपेक्षा रखता है तो उसका बाध नहीं करता है। किन्तु पारमार्थिकता का बाध करता है तदंश में उपजीव्योपजीवक भाव नहीं है। इस विषय में भामती कार ने कहा है **'उत्पादकाप्रतिद्वन्द्वित्वा'** दिति परन्तु ऐसा कहना आपका ठीक नहीं है-क्योंकि तत्वमस्यादिक जो शास्त्र हैं ये सब ब्रह्म से भिन्न हैं और जो ब्रह्म भिन्न होते हैं वे सब अविद्या से जन्य होने से भिन्न होता है। तो अविद्या दोष से शास्त्र दुष्ट है तब तो दोषाघ्रात शास्त्र से तत्व ज्ञान का उत्पाद नहीं हो सकता है। अर्थात् जब शास्त्र स्वयमेव सदोष है तब वह तत्वज्ञान का उत्पादक किस तरह से हो सकता है।

सर्वकारणम्'' कृष्ण एव हि लोकानामुत्पत्तिरपि चाव्ययः । कृष्णस्य हि कृते भूतमिदं विश्वं चराचरम्' इत्यादिश्रुतिस्मृतिपुराणादिवचनान्येव मन्मते

त्पादिततत्वज्ञानं कथमवबोधयतीति विशिष्टाद्वैतप्रश्नस्योत्तरं दातुं स अद्वैतवादीपुनरपियतते इति तन्मतं सम्यगुपपाद्य तन्मतनिराकरणायोपक्रमते-ननुयद्यपीत्यादि यद्यपि दोषजनितशुक्तिप्रभृत्याधिष्ठानज्ञानेन जातंशुक्तिरजतज्ञानं कस्यचित् साधकंबाधकंवा न भवति । तथापि प्रकृतेब्रह्मरूपविषयस्याबाधिततत्वादप्रमाणेनापि ज्ञानेन सदद्वितीय लक्षणब्रह्मसिद्धिर्भवत्येवेति शङ्काग्रन्थस्याभिप्रायः । अयंभावः-यथा कश्चित् वाष्पं धूमं ज्ञात्वा वाष्पाध्यस्तधूमेन 'वह्निव्याप्यधूमवानयं पर्वतः' इतिपरामर्शादनुमितिं संपादयति । तत्र कारणस्य तादृशधूमज्ञानस्याप्रमारूपत्वेऽपि वस्तुतो यदि पर्वते वह्निर्वर्तते तदा पर्वतोवह्निमानित्याकारिकाऽनुमितिः प्रमारूपैव भवति । कुतः ? तत्रानुमितिविषयस्य वह्निरूपविषयस्यबाधाभावात् । तत्र वह्निसाधकस्य प्रत्यक्षस्य सद्भावात् । इत्यप्रमाणेनापि करणेन विषयाबाधे सति जायमानज्ञानं प्रमैव भवति । तद्वदिहाप्रमाणेनापि शास्त्रेण

अर्थात् शास्त्र सर्व निवर्तक तत्वज्ञान का जनक नहीं हो सकता है। क्योंकि दोष दुष्ट करण से जायमान ज्ञान किसी का साधक अथवा बाधक नहीं होता है। किस कारण से ऐसा होता है ? तो दुष्ट करण जन्य होने से वह साधन तथा बाध करने में असमर्थ होता है । दुष्ट करण से जायमान रज्जुसर्पज्ञान क्या किसी का साधक बाधक होता है ? अर्थात् साधक बाधक नहीं होता है मिथ्या रूप होने से। इसी तरह प्रकृत में अविद्या दोष दुष्ट शास्त्र से जायमान तत्वज्ञान किसी का साधक या बाधक नहीं हो सकता है।

नहीं कहो कि स्वप्न समय में किसी को ज्ञान होता है कि 'मैं गरीब हूँ' परन्तु उत्तर क्षण में ही ज्ञान होता है कि 'मैं धनाढ्य हूँ' यहां स्वाप्निक उत्तर ज्ञान से पूर्व ज्ञान का तो बाध हो जाता है ऐसा देखने में आता है, तो आप किस तरह कहते हैं कि दोष दुष्ट करण जनित ज्ञान साधक बाधक नहीं होता है, निद्रा दोष जन्य स्वप्नज्ञान है। यह कहना आपका ठीक नहीं है क्योंकि स्वप्नकाल में ही यदि यह द्वितीय जो ज्ञान हुआ है वह स्वाप्निक है सत्य नहीं है। ऐसा यदि ज्ञान हो जाता है तब प्रथम ज्ञान का बाध नहीं होता है। प्रथम ज्ञान का तथा प्रथम ज्ञान से जनित जो भय कंप, तथा तज्जनित सुखादिक का विनाश नहीं होता है। प्रत्युत प्रथम ज्ञान तथा तज्जनित सुख दुःखादिक का जाग्रत् काल पर्यन्त अनुव्रजन होता है। एवं जाग्रत् काल में भी कदाचित् उसका स्मरण भी होता है। तथा अत्युग्र स्वप्न से भयकम्पादिक का भी अनुव्रजन होता रहता है।

और भी देखिये-ब्रह्म भिन्न होने से यदि तत्वज्ञान को उसका ज्ञाता और शास्त्र को मिथ्या मानें तब तो प्रपञ्च की जो निवृत्ति है वह भी मिथ्या है ऐसा मानना पडेगा, तब प्रपञ्च निवृत्ति की भी निवृत्ति होने से प्रपञ्च में सत्यत्व हो जायगा। इस प्रपञ्च की सत्यता का निवारण कौन कर सकता है। अर्थात्

प्रमाणमिति प्रमाणसिद्धत्वात्, मन्मते न भवति काप्यनुपपत्तिः। वस्तुतस्तु मन्मते यद्यपि स्वरूपतो जीवो नित्य एव. तथापि तदीयधर्मभूतज्ञानस्य स्वाभाविकस्यापि कर्मणा संकोचविकाशौभवतः। कर्मणा संकोचे तु तस्य विनाशोविकाशश्चोत्पाद एवेति धर्मस्यैव तौ भवतः। ततश्च

जायमानज्ञानस्य विषयीभूतब्रह्मणोऽबाधितत्वात् सदद्वितीयविषयस्य ब्रह्मणः सद्भावे न क्षतिर्यतो ब्रह्मणोऽधिष्ठानतया त्रिकालेप्यबाधितत्वादितिशङ्काशयः।

सिद्धान्ती समादधाति-इतिचेन्न इति। उपपादयति सर्वंशून्यमित्यादि। यदुच्यते भवता, विषयस्याभावादिति नैतत्साधीयः। यतस्सर्वं शून्यमित्यादिवाक्येन ब्रह्मणोऽपि बाधात्। यथा तत्वमस्यादिवाक्येन सदद्वितीयं सिद्ध्यति तथैव 'सर्वं शून्यमिति वाक्येन तदभावोऽपि सिद्ध्यत्येवेति। उभयोर्वाक्यत्वस्याविशेषात्। न च तयोर्वाक्ययोर्वाक्यत्वेन समानत्वेऽपि सर्वं शून्यमिति वाक्यस्याप्रामाणिकत्वान्नाबाधकत्वमिति विशेषता भवत्येवेति वक्तव्यम्

कोई भी निवारण नहीं कर सकता है। जिस तरह कोई व्यक्ति अपना परिजन पिता आदि का मरणादिक रूप अनिष्ट को देखता है। और जाग्रत् काल में यह समझता है कि यह अनिष्ट दर्शन स्वाप्निक होने से मिथ्या है तब उस स्थल में पिता आदि में सत्यत्व देखने में आता है उसी तरह प्रकृत में निवृत्ति की निवृत्ति होने से जगत् में सत्यत्व बलात् प्राप्त होता है।

और भी देखिये कि जो यह प्रपञ्च का मिथ्यात्व है, वह मिथ्या है अथवा सत्य है ? उसमें यदि प्रपञ्च धर्मिक मिथ्यात्व मिथ्या है ऐसा मानें तब तो सत्यता विरोधी मिथ्यात्व का बाध हो जाने पर प्रपञ्च में सत्यत्व हो जायगा। अथ कदाचित् प्रपञ्चधर्मिक मिथ्यात्व को सत्य मानो तो सत्यत्वरूप धर्म द्वारा प्रपञ्च में पुनः सत्यत्व प्रसङ्ग हो जायगा। अथ कदाचित् प्रपञ्चधर्मिक मिथ्यात्व को सत्य मानो तो सत्यत्वरूप धर्म द्वारा प्रपञ्च में पुनः सत्यत्व प्रसङ्ग हो जायगा। नहीं कहो कि जगत् में मिथ्यात्व है, इस में प्रयोजक है दृश्यत्व, अर्थात् जिसलिये प्रपञ्च दृश्य है अत एव प्रपञ्चमिथ्या है, तो मिथ्यात्व का प्रयोजक है दृश्यत्व, वह दृश्यत्व तो जिस तरह प्रपञ्च में है उसी तरह प्रपञ्च धर्मिक मिथ्यात्व में भी है तो वह दृश्यत्व जिस तरह प्रपञ्च को विरोधी सत्यता का पदार्पण किस तरह होगा ? यह कहना आपका ठीक नहीं है-क्योंकि 'अभावाभाव प्रतियोगी का स्वरूप होता है' ऐसा एक नियम है। तो प्रपंचगत मिथ्यात्व का जब मिथ्यात्व है तब प्रपञ्च सत्यता का निराकरण कभी भी नहीं हो सकता है। (जिस तरह भूतल में घट का निराकरण करने से घटाभाव का अनुभव होता है, और उसी स्थल में जब घटाभाव का निराकरण कर देते हैं तब '**घटवद्भूतलम्**' इत्याकरक प्रतीति होने लगती है) इसलिये घटाभावाभाव घट स्वरूप सिद्ध होता है। इसी तरह प्रकृत में प्रथम मिथ्यात्व का मिथ्यात्व होने से प्रपञ्च में सत्यत्व अनिवार्य हो जाता है। अतः अविद्या परिकल्पित शास्त्र तत्वज्ञान का उत्पादक नहीं हो सकता है यह सिद्ध हुआ।

तन्मूलकस्य देहात्माभिमानस्य व्यवस्था जायते एव। भवन्मते तु प्रकाश एव जीवस्वरूपं न प्रकाशस्तदीयधर्मो न वा ज्ञानकर्मस्य संकोचो विकाशो वा भवति। मन्मते तु तादृशप्रकाशप्रसरानुत्पत्तिरेव तिरोधानं तच्च कर्मणा संपादितं भवति। न तु स्वरूपविनाशस्तिरोधानं भवति।

। भवन्मतेऽपि श्रुतिवाक्यस्याविद्याजन्यत्वेनाप्रामाणिकत्वस्यानुमतत्वात्। बाधदर्शनमदर्शनं-चोभयत्रापि समानमेवेति न किञ्चिदेतदिति।

एतेनेत्यादि। एतेन प्रमाणभूतशास्त्रस्य तर्कस्य च प्रामाण्यानभ्युपगमेनोभयोरपि सर्वशून्यवादिब्रह्मव्यतिरिक्तसर्वमिथ्येतिमन्यमानस्य च वादेनास्त्यधिकार इति प्रतिपादितः तदुक्तम्-'सर्वदा सदुपायानां वादमार्गः प्रवर्तते। अधिकारोऽनुपायत्वान्नवादे शून्यवादिनः' इति। अत्र शून्यवादिन इत्युपलक्षणम्, द्वयोरपिवेदतर्कशास्त्रस्य प्रामाण्यास्वीकारस्यानभ्युपगमस्य च समानत्वादितिसंक्षेपः।

'सत् घटः सत् पटः' इत्यादि प्रत्यक्षं घटादि प्रपञ्चस्य सत्तां दर्शयति 'नेह नानास्ति किञ्चनेत्याद्यागमस्तु प्रपञ्चस्यमिथ्यात्वमवगमयति। तत्र प्रत्यक्षं दोषदुष्टत्वादप्रामाणिकम्।

जब आपलोग-अद्वैत वादी लोग शास्त्र को भी प्रामाणिक नहीं मानते हो सब तो वचन मात्र से सत् अद्वितीय ब्रह्म को मानते हो तब तो वचन मात्र से '**सर्वं शून्यम्**' इत्यादि वाक्य से ब्रह्म का बाध को भी कोई कह सकता है तो इस का समाधान आप क्या कर सकते हैं इत्यादि दोष को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं- '**ननु यद्यपि दोषलक्षणेत्यादि।**'

प्रश्न-यद्यपि दोष रूप जो अविद्या उससे परिकल्पित अर्थात् उत्पन्न होने के कारण से शास्त्र मिथ्या रूप है। (काच का मलादि दोष युक्त चक्षुरादि करण से जाय मान रजतादि विभ्रम की तरह।) तथापि एतादृश शास्त्र सदद्वितीय ब्रह्म का बोध तो कराता है क्योंकि बोध्यमान ब्रह्म रूप जो विषय है वह अबाधित है। जैसे यदि पर्वत में वह्नि रहती है, उस समय में वाष्प को धूप समझ कर के 'वह्निव्याप्य धूमवाला पर्वत है' एतादृश अप्रमात्मक परामर्श से जो 'पर्वत वह्निवाला है' इत्याकारक अनुमिति होती है, उसका वह्नि रूप जो विषय है उसका अबाध होने से 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक ज्ञान प्रमात्मक ही होता है। क्योंकि अबाधितविषयक है, इसलिये। इसी तरह प्रकृत में ब्रह्म रूप विषय को त्रिकालाबाधित होने से अप्रमाणभूत शास्त्र से ब्रह्म का बोध होने में कोई क्षति नहीं रहती है। इस प्रश्न का समाधान करते हैं '**इति चेन्न**' इत्यादि ग्रन्थ से। 'सर्व पदार्थ शून्य ही है' इत्यादि माध्यमिक बौध्द के वाक्य से सर्व पदार्थान्तर्गत ब्रह्म को भी बाधित होने से अबाधित विषयत्व असिद्ध हो जाता है।

नहीं कहो कि-'**सर्वं शून्यम्**' यह जो वाक्य है वह भ्रममूलक है, इसलिये तादृश वाक्य से ब्रह्म का बाध असंभवित है ऐसा नहीं कहना क्योंकि आप भी तो शास्त्र को दोष जनित होने से अप्रमाण ही मानते हो, तो तादृश अप्रमाण रूप शास्त्र से सदद्वितीय ब्रह्म की सिद्धि होती है। पश्चात् काल में ब्रह्म का बाध नहीं देखने में आता है। यह कथन तो दोनों के पक्ष में समान ही है। इसलिये आपके मत से ब्रह्म में अबाधितत्व की सिद्धि नहीं

कर्मरूपाविद्ययास्वरूपनित्यस्यापि जीवस्य धर्मभूतज्ञानप्रकाशः संकुचित इति तत्र जीवे देहाद्यभिमानादीनामनुपपत्तिर्न भवति । भवन्मते तु नैवं तस्मात्स्वरूपविनाशो जीवस्येत्यादिदोषो भवति, मन्मते तु नेमे दोषाः प्रसरन्तीत्यादिरेवभवन्मतापेक्षया मन्मते विशेषः ।

आगमस्तु परमेश्वरोच्चरितत्वादपा रुषेयत्वाद् वा प्रामाणिकमिति प्रमाणभूतेनागमेनाप्रमाणिकस्य प्रत्यक्षस्यवाधो भवति । तथाऽप्रामाणिकप्रत्यक्षसिद्धस्य प्रपञ्चस्य च मिथ्यात्वमर्थत एव सिदूध्यतीत्यद्वैतमतमिति तादृशमतनिराकरणाय तन्मतमुपसंहर्तुं चोपक्रमते किंच सर्वश्रेष्ठेत्यादि । यथाऽनुमानप्रमाणादिकं स्वोत्पत्तौ स्वेतरप्रत्यक्षसापेक्षं प्रत्यक्षस्योत्पत्तौ स्वेतरप्रमाणानपेक्षत्वादेव सर्वापेक्षयाज्येष्ठत्वंश्रेष्ठत्वं च सिद्ध्यति ।

किंच प्रत्यक्षेतरप्रमाणेनागतोऽपिपदार्थः सर्वथाऽसंदिग्धो विशदो न भवति । यथा प्रत्यक्षेण विशदो भवति । अर्थात् प्रत्यक्षेतरप्रमाणावगतेऽपि वस्तुनि प्रत्यक्षापेक्षा न निवर्तते

होती है। प्रत्युत पदार्थान्तर शुक्ति रजतादिक की तरह ब्रह्म में भी बाधीतत्त्व ही सिद्ध होता है इसलिये अद्वैतमत समीचीन नहीं है । कथा तीन प्रकार की होती है। उसमें अनेक वक्तृक पूर्वोत्तर पक्ष प्रतिपादक जो वाक्य विस्तार है उसी को कथा कहते हैं। वह तीन प्रकारक है-वाद जल्प और वितण्डा उसमें तत्व बुभुत्सु की जो कथा, अर्थात् गुरु शिष्य की जो कथा उसतो वाद कहते हैं। उभय विजिगीषु की कथा को जल्प कहते हैं।अर्थात् एक व्यक्ति अपने सिद्धान्त का स्थापन करने के लिये प्रमाण का उपयोग करता है, अन्य मत का खण्डन करने के लिये प्रमाण तर्क का आश्रय लेता है। एवं जिस प्रकार से एक ने किया उसी प्रकार से द्वितीय व्यक्ति भी स्वपक्ष का स्थापन और पर पक्ष का प्रमाण तर्क द्वारा खण्डन करता है दोनों को स्वस्वमत का स्थापन तथा परपक्ष का निराकरण अभिमत रहता है। और जिस कथा में स्वपक्ष का स्थापन न किया जाय। केवल परपक्ष का निराकरण करने में ही तात्पर्य रहता हो उसे वितण्डा कहते हैं। इसमें अद्वैतवादी तथा शून्यवादियों की जो कथा है वह तो वितण्डा कथा है। इन दोनों को न कोई स्थापनीय पदार्थ है। न वा स्थापनीय पदार्थ के लिये कोई प्रमाण है। प्रमाण को भी तो ये लोग अप्रमाण कहते हैं। शुष्क तर्क द्वारा ही केवल खण्डन करते हैं। तर्क तो प्रतिष्ठित नहीं होता है ऐसा कहा है कि '**यत्नेनानुमितोप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः । अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते ॥**' और तर्क तो केवल प्रमाण का अनुग्राहक रूपे से ही माना गया है। तर्क कोई प्रमाण तो है नहीं। क्योंकि तर्क तो आरोप मूलक ही होता है। इसलिये आचार्यजी ने-सर्व प्रमाण विरुद्ध होने से अद्वैत वादी तथा शून्यवादी को वाद में अनधिकारत्व का प्रतिपादन किया है।

सर्व प्रमाणों में ज्येष्ठ प्रत्यक्ष प्रमाण का बाध हो जाता है और प्रत्यक्ष ग्राह्य विषय जगत् में मिथ्यात्व की सिद्धि होने से ब्रह्माद्वैत सुस्थिर है। ऐसा जो अद्वैत वादियों का मत है उसका निराकरण कहते हुए इस मत का उपसंहार करने के लिये उपक्रम करते हैं '**किञ्च-सर्व श्रेष्ठज्येष्ठेत्यादि**' प्रत्यक्षभिन्न सभी प्रमाण की अपेक्षा से ज्येष्ठ श्रेष्ठ, घटादि सकल पदार्थ के सत्व के ग्रहण करनेवाले

॥ जीवधर्मभूतज्ञानस्य संकोचविकाशत्वेप्रमाणम् ॥

तिरोधानानुपपत्तिप्रकरणे प्रसङ्गवशाज्जीवधर्मभूतज्ञानस्य सङ्कोचविकाशौ भवत इति कथितम् । प्रमाणं तत्र पुराणश्रुतिस्मृतिपूर्वाचार्यवचनमेव प्रस्तूयते-

'अविद्याकर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते ।

प्रत्यक्षविषये तु सर्वथाऽसंदिग्धो भवतीति प्रत्यक्षस्यसर्वतो ज्येष्ठत्वं श्रेष्ठत्वं चेति । तस्मात्सुष्ठुक्तं ज्येष्ठश्रेष्ठमिति । प्रत्यक्षमात्रेऽनुगतदोषस्य वक्तु मशक्यत्वादिति । क्वचित् काचकामलादिको दोषः । क्वचित् सादृश्यमेवतथा । क्वचित् दूरत्वं क्वचिदतिसामीप्यमेव । क्वचिद्वंशोरगभ्रमेमण्डूकोवसर्जनमित्यादि । तथा च दोषाणामननुगमो भवति । न च भ्रमोत्पादकत्वेन दोषाणामनुगमे अन्योन्याश्रयोदुर्वारः । दोषत्वेभ्रमः । भ्रमे सति दोषपरिचय इति । न चानादिभेदवासनयाप्रत्यक्षस्य दुष्टत्वम् । तादृशदोषस्य भवन्मते आगमेऽपि समानत्वात् । अविद्यादोषस्यसर्वत्र समानरूपेण विद्यमानत्वादिति न तयोर्बाध्यबाधकभाव इति । उभयोर्विभिन्नविषयत्वादिति । अर्थात् यस्मिन्नधिकरणे यद्वत्ताप्रतीतिर्भवति तस्मिन्नेवाधिकरणे यदि तदभावप्रकारको निश्चयो भवेत्तदेव तत्र बाध्यबाधकभावो भवति न तु विभिन्नाधिकरणे

सर्वथा दोष रहित चक्षुरादि प्रमाण से जब प्रपञ्च में सत्ता की सिद्धि हो रही है, तब एतादृश प्रमाण का बाध हो जाता है, तथा प्रत्यक्ष सिद्ध पदार्थ में मिथ्यात्व की सिद्धि होती है, यह किस तरह से कहते हैं । अर्थात् जब प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रपञ्च में सत्व सिद्ध होता है, तब आपका जो मत है सब पदार्थ मिथ्या है, यह आप किस तरह से कहते हैं, अर्थात् यह प्रपञ्च मिथ्या नहीं है किन्तु सर्वथा अबाधित सत् रूप ही है। यह सिद्धान्ती का कथन है।

नहीं कहो कि किस तरह '**वितस्तिपरिमाणवान् चन्द्रः**' एक बीत परिमाणवाले चन्द्रमा हैं एतादृश चन्द्रमा में अल्पपरिमाण का ग्राहक प्रत्यक्ष है, उसका चन्द्रमा में अत्यधिक परिमाण का ग्रहण करनेवाले ज्योतिष शास्त्र से बाध हो जाता है। क्योंकि प्रकृत प्रत्यक्ष में दूरत्व दोष है, और शास्त्र तो अपौरुषेय होने से पुरुषगत सर्व दोषों से रहित है। तो प्रत्यक्ष का बाध हो जाता है । इसी तरह प्रकृत में सदोष प्रत्यक्ष का बाध हो जाता है शास्त्र से। इसलिये प्रत्यक्ष में बाध्यता है तथा प्रत्यक्ष ज्ञापित जगत् में मिथ्यात्व सिद्ध होता है। इस तरह पूर्वपक्ष का प्रश्न हुआ। इसके समाधान में सिद्धान्ती कहते हैं कि आपका यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि सकल प्रत्यक्ष में अनुगत एक दोष का कथन तो अशक्य है । अर्थात् प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है लौकिक और अलौकिक । उसमें लौकिक प्रत्यक्ष छ प्रकार का होता है-चाक्षुष स्पर्शन घ्राणज रासन श्रावण और मानस। अलौकिक प्रत्यक्ष सामान्यलक्षण ज्ञानलक्षण

यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप ! सर्वगा ॥
संसारतापानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान् ।
तया तिरोहितत्वाच्च शक्तिः क्षेत्रज्ञसंज्ञिता ॥
सर्वभूतेषु भूपाल ! तारतम्येन विद्यते ॥'

बाध्यबाधकभावो भवति तयोः । यथा भूतले घटाभावनिश्चये एव तत्र घटवत्ता बुद्धेर्बाधदर्शनात् । नतु विभिन्नाधिकरणे । न च घटादिप्रत्यक्षं घटादिपदादिति यत् विषये एव प्रवर्तते, आगमस्तुतदतिरिक्तेऽपि प्रवर्तते इति सामान्यविषयकागमस्यविशेषविषयकप्रत्यक्षेणबाधः 'अग्नीषोमीयं पशुमालभेत' इत्यनेन 'नहिंस्यादितिवद् वाच्यम् तत्रापि विभिन्नतया बाधासंभवात् । अग्नीषोमीयमितिविधिस्तु यागस्योपकरोति । निषेधविधिस्तु पुरुषदोषं दर्शयतीति ।

उपजीव्येन प्रत्यक्षेणोपजीवकस्य शास्त्रस्यैवेत्यादिप्रत्यक्षमुपजीव्यमुपजीवकं शास्त्रमिति न शास्त्रेणोपजीव्यस्य बाध इति सत्यं किन्तु शास्त्रं यदंशेप्रत्यक्षमुपजीव्यं करोति । न तदंशे तं प्रतिबध्नाति, यदंशे च प्रतिबध्नाति न सोऽश उपजीव्यव्यवहारिकमात्र मंशमुजीव्यशास्त्रमुत्पद्यते, उत्पन्नं तत् प्रतिहन्ति प्रत्यक्षस्य पारमार्थिकताम् । अर्थात् प्रत्यक्षं न पारमार्थिकमित्येव दर्शयति न तु प्रत्यक्षस्य व्यावहारिकतामपहरति । उपजीव्योपजीव-

तथा योगज भेद से तीन प्रकार का होता है। इन छओं प्रकार के प्रत्यक्ष में एक अनुगत दोष नहीं है। चक्षुरादि स्थल में जो दोष है वही रासन में नहीं है इत्यादि विशेष वक्तव्य अन्यत्र देखें। तो अनुगत दोष के अभाव होने से प्रत्यक्ष को सदोष कहना ठीक नहीं जँचता है।

नहीं कहो कि-अनादि कालिक अविद्योपस्थापित जो भेद वासना है, वह अनुगत सब प्रकार के प्रत्यक्ष में दोष है। इसलिये सदोष प्रत्यक्ष से जायमान ज्ञान भी अप्रमाणिक है। तो इस प्रकार अप्रामाणिक प्रत्यक्ष का आगम से बाध हो जायगा। ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अनादि कालिक भेद वासना रूप दोष तो जिसप्रकार से प्रत्यक्ष में है उसी तरह से तो उक्त दोष आगम में भी है। शङ्कराचार्य स्वयं लिखते हैं कि-'**अविद्यवद्विषयकाणि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि विधिप्रतिषेधमोक्षपरकाणि शास्त्राणि च**' अर्थात् प्रत्यक्षादिक प्रमाण तथा विधिप्रतिषेध और मोक्ष परक जो शास्त्र हैं ये सब अविद्यावद्विषयक है ऐसा कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि शास्त्र में भी अविद्यारूप दोष का सद्भाव होने से शास्त्र अप्रामाणिक है, तो अप्रामाणिक शास्त्र से प्रत्यक्ष का बाध असंभवित है, क्योंकि प्रत्यक्ष तथा शास्त्र में समान बल होने से एक दूसरे का प्रतिरोध नहीं कर सकता है। जहां न्यूनाधिक बल रहता है उसी स्थल में बाध्य बाधकभाव होता है, किन्तु समान बलवालों में

'तथा हेयगुणध्वंसादवबोधादयो गुणाः ।
प्रकाश्यन्ते न जायन्ते नित्या एवात्मनोहि ते ॥
सुषुप्त्यादिकसंसिद्धिस्तमोविशेषसन्निधेः ।
उत्पन्नं चाथनष्टं च व्यवहारो मतेः खलु ॥

कभावस्तु व्यवहारे एव भवति न तु पारमार्थिके स भवतीति कथमुच्यते उपजीव्यविरोध इति । तदुक्तम् उत्पादकाप्रतिद्वन्द्वित्वादित्यध्यासभामत्याम् । एतत्तु भवतः मरिमाणमात्रं न तु सर्वतन्त्राभिमत इति । तस्मान्न विभिन्नविषये बाध्यबाधकभाव इति दिक् ।

शांकरमतंसंक्षेपपूर्वकंप्रदर्श्यतदनुभास्करमतंदर्शयितुमुपक्रमते भास्कराचार्योहीत्यादि तत्र माध्वो जीवेश्वरयोः सर्वथाभेदवादी । शंकरश्च सर्वथाऽभेदवादी 'अहं ब्राह्मास्मीत्यादि-श्रुत्यनुरोधात् । अयं तु तदुभयश्रुत्योः प्रामाण्यमाकलय्यभेदाभेदमेवस्वीकरोति । तत्र 'तत्वमस्यादिश्रुतिभ्यः स्वाभाविकंभेदं' सर्वज्ञत्वादिभेदप्रतिपादकश्रुतिबलादौपाधिकंभेदम् । ब्रह्मैव देहादिजडोपाधिसम्बन्धाज्जीवरूपोभूत्वा यावदुपाधिः संसारी भवति । तदेव चोपाधिविनाशेऽपगतजीवभावो मुक्तो भवति ।

आकाशघटाकाशवदिति । **यथाऽवच्छेदरहितोमहाकाशघटाद्युपाधियोगात्**

बाध्य बाधकभाव नहीं होता है।

और भी देखिये कि-प्रत्यक्ष प्रमाण जो है वह रूप स्पर्शादिमान् घटादि पदार्थों का ग्रहण करता है, और शास्त्र तो प्रत्यक्ष प्रमाण का अविषयीभूत स्वर्ग अपूर्व तथा सत्य सङ्कल्पत्व सत्य कामत्वादि पदार्थों का ग्रहण करता है, तो इसप्रकार से प्रत्यक्ष तथा आगम प्रमाण को परस्पर विभिन्न पदार्थों का ग्राहक होने से इन दोनों में बाध्य बाधकभाव नहीं हो सकता है। देखिये भूतल में घट सत्व का ग्राहक जो प्रत्यक्ष है, उस को जल रूप अधिकरण में रहनेवाला जो घटाभाव तादृश घटाभाव ग्राहक प्रत्यक्षादि प्रमाण से बाध नहीं होता है। प्रश्न-ऐसा क्यों होता है ? उत्तर-दोनों को विभिन्न विषयक होने से। अर्थात् 'भूतल में घट का संयोग है' इस ज्ञान का विषय है भूतल धर्मिक घट, और जल में घट नहीं है। इस निश्चय का विषय है जल धर्मिक घटाभाव तो यहां भूतल तथा जल रूप अधिकरण का भेद है इसलिये उपर्युत ज्ञान द्वय में बाध्य बाधकभाव नहीं है ऐसा सर्वानुभव सिद्ध है। इसी तरह प्रकृत में परस्पर विभिन्न विषयक आगम तथा प्रत्यक्ष में बाध्य बाधक भाव नही होता है। अर्थात् प्रत्यक्ष का विषय है घटादि पदार्थों का सत्व, तथा आगम का विषय है स्वर्गापूर्वादिक अलौकिक पदार्थ, तो दोंना का विषय भिन्न है, इसलिये इन दोनों में समान विषयता होने से बाध्य बाधक भाव नहीं है। जिस स्थल में समान विषयत्व रहता है उसी स्थल में विरोध होने से बलवान् से दुर्बल का बाध होता है, जिस तरह

संकोचाश्चविकासाख्यावस्थाभ्यां संभवेदिह ।
संकोचाख्यविकासश्चसर्पकुण्डलवन्मतः ।।
संकोचोऽस्येन्द्रियद्वाराबद्ध एवहि कर्मणा ।

घटाकाशोयमिति व्यवहारभाग् भवति । घटादि उपाधिविनाशे तु निरुपाधिकः सन् महाकाश इति कथितो भवति । तत्र महाकाशघटाकाशया रूपाधिकृतमौपाधिको भेदः । उपाधि विनाशे उभयोः स्वाभाविकोऽभेदः । तथैव प्रकृते तदेव ब्रह्म देहाद्युपाधिसम्बन्धाज्जीव भावं भजते । उपाधिविगमे ब्रह्मरूपो भवति । तत्र ब्रह्मजीवयोरौपाधिको भेदः अभेदश्च स्वाभाविक इति ।

ननु यादृशजडोपाधिबलात् ब्रह्मणिजीवेचौपाधिको भेदो भवति, स जडात्मक उपाधिर्ब्रह्मणोभिन्नः अभिन्नो वा ? अर्थात् स उपाधिरुपाध्यन्तरसापेक्षोनिरपेक्षोवेति ? तत्रमप्रथमोपाध रुपाध्यन्तरसापेक्षपक्षे उपाध्यन्तरस्याप्युपाध्यन्तरसापेक्षतया दुरवस्थाऽनवस्थास्यात् । निरपेक्षत्वपक्षे यथा उपाधिर्नान्यासापेक्षोऽपितु निरपेक्षः तथैव ब्रह्मजीवभेदोपि देहाद्युपाधि अन्तरेणैव भवतु किमुपाधिनान्तर्गडुना इत्याशङ्कायामाह उपाधिब्रह्मणोश्चभेदाभेद **इति । योयं जडलक्षण उपाधिः स ब्रह्मणि भिन्नश्चाभिन्नश्च । अत्र**

'घटवद्भूतलं तथा घटाभाववद् भूतलम्' और भी देखिये-आपका अभिमत अत्यन्त बलवान् जो शास्त्र है उसका स्व का जो स्वरूप है तादृश स्वरूप का निष्पादन तो श्रावण प्रत्यक्ष के अधीन है, इसलिये प्रत्यक्ष है उपजीव्य, अर्थात् कारण और शास्त्र है उपजीवक अर्थात् कार्य तो उपजीव्य उपजीवक में यदि विरोध हो तो उस स्थल में उपजीव्य प्रत्यक्ष से उपजीवक शास्त्र का ही बाध होगा, किन्तु उपजीवक आगम से कारणीभूत प्रत्यक्ष का बाध नहीं होता है। अतः प्रत्यक्ष सिद्ध घटादि सत्व का वाध शास्त्र से होता है, तथा प्रत्यक्ष सिद्ध प्रपंच की सिद्धि होती है यह कथन सर्वथा ही असंगत होता है। इसलिये असार तर्क के द्वारा उपस्थापित अद्वैतमत का ग्रहण हित कामनावान् कथमपि न करें किन्तु विशिष्टाद्वैत मत को सर्वथा निर्दुष्ट होने से इस मत का ही ग्रहण करें। इस तरह से अद्वैत मत की समालोचना जगदाचार्यजी ने की जो सर्वथा शास्त्र तथा युक्तिसंगत है।

संक्षिप्तरूप से शंकर मत का विवरण कर के तदनन्तर भास्कराचार्य मत का वर्णन करने के लिये उपक्रम करते हैं-**'भास्कराचार्यो हीत्यादि'** भास्कराचार्य द्वैताद्वैत सिद्धान्त को मानने वाले हैं। वे भेद श्रुति तथा अभेद श्रुति का व्याख्यान करते हुए इस भेदाभेद सिद्धान्त को ही व्यवस्थित किये हैं । इनके मत में पर ब्रह्म निर्विशेष नहीं हैं शंकरमत की तरह । किन्तु सर्वज्ञत्व सत्य कामत्व अपहतपाप्मत्वादि सकल कल्याण गुण बिशिष्ट होने से ब्रह्म सविशेष है क्योंकि ब्रह्म में ये कल्याण गुण

विकासश्चेन्द्रियेणाथ ज्ञानस्य प्रसृतौ मतः ।।
'संकोचं च विकासं च तदाप्नोति यथा प्रभा ।
नष्टोत्पन्नप्रतीतिस्तु जायते ततः एव च ।।
ज्ञानं संकुचितं बद्धे विभुमुक्तपरेशयोः ।

भेदस्तथाऽभेदश्चोभावपि स्वाभाविकावेव । तेन नानवस्थादिप्रसरः । तत्वमसीत्यादिश्रुतिबोधिताभेददृष्टिमासाद्यविचारे कृते ब्रह्मैवोपाधिरूपो भूत्वाऽनेकप्रकारकविकारान् प्राप्नोति । एतावानेवात्र विशेषोयज् जडब्रह्मणोर्भेदाभेदावुभावपि स्वाभाविकौ । जीवब्रह्मणोर्भेदस्तु परोपाधिकः । अभेदस्तु स्वाभाविक इति । एतन्मते ब्रह्मसगुणं न निर्गुणम् । जगदपि सत्यमेव अत्राविद्योपाधिसम्बन्धाद् ब्रह्मैवानेकजीवरूपो भवति । तेन बन्धमोक्षव्यवस्थापि संपद्यते । नतु पूर्वमतवद् बन्धादिव्यवस्थाया अभावा मिथ्यात्वंवेतिसंक्षेपः ।

अथ गतप्रकरणेन शंकरमतमद्वैतं श्रुतिस्मृतितर्कादिभिर्विमृश्यमानेऽसमीचीनमिवाभातीति तन्मतं निराकृत्य तदनुद्वैताद्वैतमतमप्यंशतस्तत्सदृशमिति तस्यापि विशिष्टाद्वैतप्रतिबन्धकत्वेननिराकरणीयतया प्रथमतः संक्षिप्य प्रदर्श्य खण्डयितुमुपक्रमते-एतन्मते एकं

समुदाय श्रुति प्रतिपादित हैं। अतीन्द्रियादि अर्थ के बोधन में श्रुति ही प्रमाण है। उन श्रुतियों का अनादर करना युक्त नहीं है। इसलिये परमात्मा सगुण ही हैं निर्गुण नहीं हैं। यद्यपि परमात्मा में सर्वज्ञत्वादिक अनन्त कल्याण गुण हैं, और जीव में तो अल्पज्ञत्व दुःखित्वादिक पूर्व विरोधी अनेक गुण हैं तब ब्रह्म जीवों में तत्वमस्यादि वाक्य द्वारा सर्वथा तादात्म्य नहीं हो सकता है। तथापि जीव परमेश्वर में भेदाभेद हो सकता है। उसमें इन दोनों में जीव ब्रह्म में अभेद स्वाभाविक है। और भेद परोपाधिक है, महाकाश घटाकाश की तरह। (अर्थात् जिस तरह उपाधिरहित आकाश महाकाश कहलाता है और उसी में घटादि उपाधि का संबन्ध होने से वह घटाकाश कहलाता है। यहां घटादि का विनाश हो जाने पर वह घटाकाश महाकाश रूप हो जाता है, तो घटाकाशको महाकाश के साथ स्वाभाविक अभेद है, और भेद तो घट रूप उपाधिमूलक है, इसी तरह जीव को ब्रह्म के साथ स्वाभाविक अभेद है तथा सोपाधिक भेद है।) जहां तक ब्रह्म में जड देहादिरूप उपाधि का सम्बन्ध रहता है तावत्काल पर्यन्त वही ब्रह्म जीव कहलाता है तथा ब्रह्म से भिन्न रहता है तथा संसारी बद्ध कहलाता है। और जड देहादि लक्षण उपाधि का विनाश हो जाने पर ब्रह्म से अभिन्न हो जाता है तथा संसार रहित होकर के मुक्त कहलाता है। इस प्रकार ब्रह्म ही मुक्त होता है तथा ब्रह्म ही बद्ध संसारी होता है ऐसा कहा जाता है। इसलिये इस मत में मोक्ष काल में जीव ब्रह्म में अभेद होता है तथा संसार काल में औपाधिक भेद रहता है।

ज्ञाने दैवे न संकोचो दैवाभावे विकासिता ॥

प्रसृतत्वं च प्रज्ञायाः श्वेताश्वतरसंमतम् ।

ज्ञानावृत्तिश्च गीतायामावृतं ज्ञानमित्यतः ॥' इति

परं ब्रह्म इत्यादि । सर्वज्ञः परमेश्वरः सर्वशक्तिमान् सचैक एव तदनेकत्वे प्रमाणविरहात् । तथा परमेश्वरातिरिक्त एक उपाधिरपि विद्यते । आभ्यामतिरिक्तं वस्त्वन्तरं नास्ति किञ्चित् । जीवस्तु परमेश्वरादुपाधिसद्भावेपरमेश्वरादतिरिक्त उपाध्यभावे तु परमेश्वरादनतिरिक्त एव । स चायं जीवपरमेश्वरयोरभेदः स्वरूपत एव । अतोद्वैतमद्वैतमपि यथा घटपटाद्युपाधिभेदेन स महाकाश एव घटाकाशसंज्ञां प्राप्य विभिद्यते, अपगतेत्वुपाधौ महाकाश रूप एव भवतीति तथैव प्रकृते भगवान् परमेश्वरो यावदुपाधिजीवभावमवाप्य तदपगमे स्वस्वरूपेण मुक्त इति व्यवराहं लभते । सोयं द्वैताद्वैतवादो भास्कराचार्यस्य । तदेतन् मतं दूषयितुमाहाचार्यः परन्तुनैतन्मतं समीचीनमित्यादि । यद्यपिभास्करमते प्रपञ्चस्यसत्यत्वं ततोमिथ्याजगदिति मते योदोषः पूर्वमद्वैतमते प्रदर्शितः स दोष एतन्मते न भवति । ततापि जीवेश-योरभेदेऽभेदप्रयुक्तदोषस्त्वापद्यत एवेति । स दोषो मूलकारोक्त एव ज्ञातव्यः । यथा वा

जीव तथा ब्रह्म में भेदाभेद का समर्थन कर के उपाधि-तथा ब्रह्म में भेदाभेद का समर्थन करने के लिये कहते हैं-'**उपाधिब्रह्मणोश्चेत्यादि**' उपाधि तथा ब्रह्म में भेदाभेद है। इसमें भेद तथा अभेद ये दोनों ही स्वाभाविक हैं परोपाधिक नहीं है अर्थात् जिस तरह जीव ब्रह्म में अभेद स्वाभाविक है और भेद सोपाधिक है ऐसा यहां नहीं है किन्तु जड उपाधि तथा ब्रह्म में स्वाभाविक भेदाभेद ही है।

आचार्य प्रवर संक्षेप पूर्वक भास्कराचार्य का मत को बतलाकर के तदनन्तर यादवाचार्य का संक्षिप्त मत बतलाने के लिये उपक्रम करते है। '**यादवप्रकाश**' इत्यादि । यादव प्रकाशाचार्य '**तत्वमसि**' इत्यादि अभेद प्रतिपादक श्रुतियों के अर्थ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-पर ब्रह्म स्वभाव से ही सर्वदा अपहत पाप्मत्वादि अनन्त कल्याण गुण विशिष्ट होने के कारण से सगुण हैं किन्तु निर्गुण नहीं है। पर ब्रह्म को जड चेतन पदार्थो के साथ भेद तथा अभेद है। यह भेदाभेद स्वाभाविक है। किन्तु भास्करमत की तरह जीव को ब्रह्म के साथ अभेद स्वाभाविक और भेद औपाधिक है ऐसा नहीं इस मत में स्वभाव से ही ब्रह्म का जड चेतन पदार्थो के साथ भिन्नता भी हैं तथा अभिन्नता भी । इसी प्रकार जीव के साथ भी ब्रह्म में भेद भी है और अभेद भी है। एवं समस्त कल्याण गुण गण से युक्त ब्रह्म ही देवमनुष्य पशुतिर्यक् नारकादि अनेक रूप होते हैं। तथा इन देवादिक जीवों से विलक्षण भी होते हैं। एवं देवादि तथा जड़ादि पदार्थों के साथ में अभिन्न रूप होकर के आकाशादिक अनेक दोषवत् पदार्थ रूप से परिणाम को प्राप्त करते हैं। एवं स्वभाव से ही जड पदार्थों से विलक्षण भी ब्रह्म होते हैं।

卐 अविद्या स्वकल्पानुपपत्तिवर्णनम् 卐

ननु 'अनृतेनहि प्रत्यूढाः' 'मायां च प्रकृतिं विद्यात् ' इत्यादिश्रुत्या तथा जीवब्रह्मणोरैक्योपदेशाच्च सत्यातिरिक्ता तदाच्छादिका विद्याकाचि-

अवयवावयविनोरत्यन्तभेदपक्षेऽवयवगतगुणदोषयोरुपसंक्रमोऽनिवार्यो यथा हस्तपादाद्यवयवजनितसुखदुःखाभ्यामवयवीजीवस्तत्संपृक्तस्तद्गतंसुखादिकमनुभवति । एवं जीवगतदोषेण स्वरूपतोऽभिन्ने परमात्मनि तादृशसंक्रमणेनेश्वरोप्यनीश्वरोऽस्मदादिवत् स्यादेवेत्यादिकोदोषोऽपरिहार्य एवेति । यद्यपि सिद्धान्ते यो जीवे तिष्ठन् इत्यादिश्रुत्या-जीवेश्वरयोर्विशेषणविशेष्यभावोभ्युपगत इत्युभयपक्षेप्ययं दोष उद्भवति तथापिप्रकार-भेदमासाद्यसमाधानमकरोदाचार्यपादः । ननु प्रौढिबादमाश्रित्येन्द्रियाणां भौतिकत्व-मभ्यनुज्ञाय, यथैकैवाकाश उपाधिसम्बद्धो घटाकाशो भवति निरुपहितो महाकाशो भवति, तथा तदेवाकाशमुपाधिसंबद्धरहितमतीन्द्रियमित्यादिव्यवहारंपरमतेन दर्शयित्वा स्वकीयंसैद्धान्तिकपक्षं प्रदर्शयितुमुपक्रमते वस्तुतस्तु इत्यादि, यदेतदाकाशस्य स्वरूपत इन्द्रियत्वं प्रतिपादितं तत्परमतमभ्युपगम्य न तु स्वमतेन । वैदिकमते तु न भूतकार्याणि तानीन्द्रियाणि, किन्त्वेतानि अहंकारकार्याणि । तदा भूतान्यप्यहङ्कारकार्याण्येव

इस क्रम से जड में ब्रह्म में तथा जीव ब्रह्म में स्वभाव से ही भेद तथा अभेद सिद्ध होता है। ऐसा यादव प्रकाशाचार्य का मत है। इन के मत में ब्रह्म निर्गुण नहीं हैं, किन्तु सगुण है तथा आकाशादिक जगत् प्रपंच सत्य ही है, मिथ्या नहीं एवं अनेक जीव रूप से ब्रह्म का ही परिणत होने के कारण बन्ध मोक्ष सुखित्व दुःखित्व ज्ञानित्वाज्ञानित्व शिष्याचार्य व्यवस्था भी सिद्ध होती है।

गत प्रकरण से शंकराचार्याभिमत अद्वैत वाद का श्रुति स्मृति तथा तर्क विरोध होने से निराकरण कर के भास्कराचार्याभिमत द्वैताद्वैत का निकाकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**एतन्मते एकं परंब्रह्मेत्यादि ।**' (भास्कराचार्य के मत में उपाधि तथा ब्रह्म को छोड़ कर के तृतीय कोई भी पदार्थ नही माना जाता है। जिस तरह महाकाश घटादि उपाधि को प्राप्त कर के घटाकाश मठाकाशादिक बन जाता है। इसी तरह ब्रह्म अन्तः करणादिक उपाधि को प्राप्त कर के अनेक जीव बन जाते हैं, प्रपच सत्य हैं।) इस मत में अर्थात् भास्कराचार्य के मत सिद्धान्त में एक तो परं ब्रह्म तत्व है, तथा ब्रह्म भिन्न एक उपाधि है। इससे अतिरिक्त कोई भी पदार्थान्तर नहीं है, परन्तु इनके मत में प्रपञ्च सत्य है। (इसलिये इस पक्ष में प्रपंच को माना गया है, अतः सिद्धान्त वादी ने जगत् का मिथ्यात्व पक्ष में जो दोष दिया था, वे सब दोष इस पक्ष में नहीं होते हैं, परन्तु अन्य विषय को लेकर के सिद्धान्त वादी इस पक्ष में भी तो दोष देंगे ।) जिस तरह अनवच्छिन्न महाकाश घटपटादिक उपाधि के सम्बन्ध से घटाकाश मठाकाश इत्यादि नाम को प्राप्त करता है। वस्तुतः स्वरूप से तो महाकाश और घटाकाश में तो एकता

दस्तीति निश्चीयते इति चेन्न तत्स्वरूपनिर्वचनस्याशक्यत्वात् । तथा हि शुक्तिरजतादिस्थले यथा काचिदेका तथा जगद्विभ्रमस्थले अविद्याया: प्रातीतिकत्वेन तद्विभ्रमाय तदतिरिक्तं दोषान्तरमस्तीति न वा ? प्रथमपक्षे अविद्याभ्रमनिर्वाहकस्य दोषान्तरं तदन्यदस्तीति तद्विभ्रमे दोषान्तरमित्य-

---

तत्रासात्विकाहङ्कारेणेन्द्रियोत्पत्तिः तामसेन च तेनैवाहङ्कारेणाकाशादिभूतानाम् । प्रकृतेर्महत्तत्वं जायते । महत्तत्वेनाहङ्कारस्योत्पत्तिर्भवति । स च त्रिविधः-सात्विको राजसस्तामसश्च । तत्र सात्विकेन तेन प्रकाशकप्रकाशमानेन्द्रियाणामुत्पत्तिर्भवति । तामसाहङ्कारेण भूतानामाविर्भावो भवति, कार्ये जाड्याधिक्यदर्शनात्कारणेऽपि तमोमात्राधिकेति ज्ञायते । अत एवायंभूतादिरिति कथ्यते भूतानां जाड्याधिक्या-नामाकाशादिपञ्चानामादिः कारणमित्यर्थः । इन्द्रियाणां भूतैराप्यायनन्तु कोशान्तर्गतत्वात्, अन्नाप्यायितमनोवदिति । इन्द्रियाणामभौतिकत्वे पूर्वाचार्यवचनान्युदाहरति तैजसानीन्द्रि-याण्याहुरित्यादि । अर्थात् महत्तत्वजनितोहङ्कारास्त्रिविधः । वैकारिकस्तैजसोभूतादिश्च । स

है। उसी तरह जीव तथा ब्रह्म में स्वरूप से तो एकता ही है। तथा उपाधि से भेद भी जीव ब्रह्म में है। संपूर्ण जड़चेतन साधारण यह जगत् सत्य ही है। नतु शंकराचार्य मत की तरह मिथ्या है। अत एव जगत् के मिथ्यात्व पक्ष में जो जो दोष होता है, उन दोषों का समावेश इस पक्ष में नहीं होता है। जिस तरह घटादि पदार्थ के उत्पन्न होने के बाद में ही घटाकाश उत्पन्न होता है तथा घटादि उपाधि का विनाश होने के बाद घटाकाश विनष्ट होता है। किन्तु आकाश का उत्पाद विनाश नहीं होता है। न वा घटादि एक उपाधि से उपहित आकाश में पटादि उपाधि जनित गुण दोष से घटाकाश संस्पृष्ट होता है। इसी तरह शरीरादि उपाधि से अवच्छिन्न एक जीव में उपाध्यन्तरावच्छिन्न जीवान्तर गत भोग का साकर्य नहीं होता है। न वा जीवगत गुण दोषों से ब्रह्म को संबन्ध होता है। यह पूर्व पक्ष हुआ। उत्तर-परन्तु यह द्वैताद्वैतवाद ठीक नहीं जँचता है क्योंकि आपके मतानुसार स्वरूप से जीव तथा ब्रह्म में एकता होने से जीव में रहने वाले जो गुण दोष हैं उन दोषों का सम्बन्ध ब्रह्म में भी अनिवार्य हो जायगा, परन्तु यह तो इष्ट नहीं है अर्थात् कोई भी वादी ब्रह्म को सदोष नहीं मानते हैं। अन्यथा ब्रह्म में भी दोष मानें तब तो '**निष्कलं निष्क्रियम्**' इत्यादि अनेक श्रुतियों में जो ब्रह्म में सर्वदोष राहित्य का प्रतिपादन किया है, वह सब असङ्गत हो जायगा। तथा श्रुति भी अप्रामाणिक हो जायगी।

महाकाश घटाकाश जो दृष्टान्त बतलाया गया है, वह भी युक्त नहीं है, क्योंकि सावयव द्रव्यों में ही यह संभवित कथंचित् हो सकता है। किन्तु निरवयव व्यापक द्रव्यों में तो यह असंभवित है जिस तरह घटादि सावयव वस्तु है तो उस घट में अमुक प्रदेश में पटादि का संयोग होता है और अमुक प्रदेश

नवस्था स्यात् । द्वितीयपक्षे ब्रह्मव्यतितिक्तस्य कस्यचिदन्यस्याभावेन तस्यैव तथात्वमितिभवेदात्माश्रयः । ब्रह्मण एव तथात्वे तस्य नित्यत्वेनेतः पूर्वमपि दोषवत्वेन मोक्षकथैवास्तमियात् । किं च न च सासतीद्वैतापातात् । न

एव सात्विकोराजसस्तामसश्चेत्यन्यत्र गीयते । तत्र भूतादिनाऽहङ्कारेणभूतानामुत्पत्ति-रितिसर्गक्रममुपवर्ण्य राजसादहङ्कारात्प्रकाशशीलानामुत्पत्तिरित्यन्यस्यमतं प्रदर्श्य सात्विकाहंकारेण वैकारिकेन्द्रियाणामुत्पत्तिर्भवतीति स्वकीयं सिद्धान्तमार्ग दर्शयामासतुर्नातोभौतिकत्वमिन्द्रियाणामिति ।

ननु ब्रह्मणः परिणामित्वे सत्यं तस्य निर्विकारता प्रतिपादकश्रुतेर्बाधः स्यात्, किन्तु न तथा स्वीक्रियते किन्तु ब्रह्मणो या शक्तिस्तस्या एव परिणामो भवति, अतः परिणामप्रयुक्तदोषस्य न ब्रह्मणि प्रसक्तिस्तत्राह-न च ब्रह्मणो न परिणाम इत्यादि, येयं ब्रह्मणः शक्तिः परिणता भवति सा यदि ब्रह्मकार्यत्वाद् ब्रह्मभिन्ना इति कथ्यते, तदा ब्रह्मैव शक्तिरूपेण परिणतमभूदिति पुनरपि ब्रह्मणि विकारित्वमापततीति-'भक्षितेऽपि लशुने नशान्तोव्याधि' रितिन्यायः शिरसिवलादापतितः । यदि सा शक्तिब्रह्मरूपैव अर्थात् ब्रह्म

में तदभाव भी रहता है। यथा वा एक ही वृक्ष में शाखावच्छेदेन कपि संयोगाभाव रहता है, परन्तु आकाश परमात्मा तो व्यापक निरवयव है, उसका संयोग तो किसी द्रव्य में नहीं हो सकता है, क्योंकि संयोग का कारण क्रिया कर्म है, और व्यापक द्रव्य को निष्क्रिय होने से उसमें क्रिया नहीं होती। क्रिया रूप कारण के अभाव होने से व्यापक प्रतियोगिक घटाकि सावयव वस्तु का अनुयोगिक संयोग नहीं होता है।

नहीं कहो कि आकाश तथा परमात्मा निष्क्रिय हैं तो उसका, अर्थात् व्यापक प्रतियोगिक सावयव उपाधि अनुयोगिक संयोग न भी बने परन्तु सक्रिय सावयव पटादि प्रतियोगि ब्रह्म का आकाशानुयोगिक एक क्रिया जनित संयोग तो हो सकता है। ब्रह्म का उपाधि में संयोग न हो परन्तु घटादि उपाधि का संयोग तो व्यापक में भी हो सकता है ऐसा कहना ठीक नहीं है-क्योंकि तब तो उपाधि जनित दोषों का सम्बन्ध ब्रह्म में अनिवार्य हो जायगा, और व्यापक तथा सावयव का जो संयोग है, वह वृत्त्यनियामक संबन्ध आधाराधेय भाव का नियामक नहीं होता है। पतन प्रतिबन्धक संयोग ही वृत्तिनियामक कहलाता है। घट से संयुक्त होने के कारण से आकाश का पतन नहीं होता है, अथवा आकाश से संयुक्त होने के कारण से घट का पतन नहीं होता है-ऐसा लौकिक नहीं जानते हैं, किन्तु सावयवभूतल संयोग रहने से घट का पतन नहीं होता है-ऐसा लौकिक लोग जानते हैं। इसका विशेष विवरण अन्यत्र देखें।

नहीं कहो कि जिस तरह एक ही महाकाश है परन्तु उस आकाश का जो प्रदेश जिस काल में

वाऽसती उपादानत्वाभावात् । न चोभयात्मिकाविरोधात् । न च प्रदर्शितपक्षव्यतिरिक्तः पक्षः सम्भवति- असंभवात् । अनिर्वचनीयपक्षान्तरस्वीकारे च बौद्धमतप्रवेशात् । अतएवविद्यास्वरूपानुपपत्त्या एकजीववादपक्षोपि निराकृत एवेतिदिक् ।

णोऽभिन्नेतिद्वितीयः पक्ष इष्यते तदा ब्रह्मण एव स्वपरिणामोजातः । अर्थात् ब्रह्माभिन्नायाः शक्तेः परिणामेऽभ्युपगते तदाभिन्नस्य तस्यैव ब्रह्मणः परिणाम इति पुनर्निर्विकारता प्रतिपादकश्रुतिविरोधोऽनिवार्यः । भेदाभेदाभ्यामतिरिक्तप्रकारस्याभावात् । तदुक्तम्- परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिरिति नियमात् । न वा संमिलितोभेदाभेदः, परस्परविरोधादिति संक्षेपः । विस्तरस्त्वन्यत्रानुसन्धातव्यः । सम्प्रति मध्यमपक्षं द्वैताद्वैतवादपक्षमुपसंहरति द्वैताद्वैतवाद इत्यादि, उपर्युक्तदूषणजालस्यापरिहार्यत्वात्, भास्कारमतं न प्रामाणिकमिति तत्र नादरो विधेयः । गतप्रकरणेन भास्काराचार्यसंमतद्वैताद्वैतवादं निराकृत्य तदनु तत्सदृशयादवप्रकाशाचार्यसंमतस्वाभाविकद्वैताद्वैतवादं निरसितुमतिदिशति-एतेन इत्यादि ।

जिस पुरुष के कर्ण प्रदेश अर्थात् जिस कर्णशष्कुली से अवच्छिन्न होता है, उस काल में वह आकाश प्रदेश उस पुरुष के लिये श्रोत्रेन्द्रिय कहलाता है, पुरुषान्तर के लिये वह आकाश प्रदेश श्रोत्रेन्द्रिय नहीं कहलाता है, तथा तदतिरिक्त आकाश प्रदेश श्रोत्र नहीं कहलाता है । इस प्रकार से व्यापक भी आकाश प्रदेश में श्रोत्रेन्द्रिय का व्यवहार होता है, और तदतिरिक्त आकाश में अतीन्द्रियत्व की व्यवस्था बन जाती है, कोई भी क्षति नहीं होती है । उसी प्रकार से प्रकृत में भी जिस चलायमान उपाधियों से जिस ब्रह्म प्रदेश का संबन्ध होता है वह ब्रह्म प्रदेश जीव है और तदतिरिक्त ब्रह्म है, ऐसी व्यवस्था हो जाती है, इसमें कोई भी दोष नहीं होता है ।

आपका ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योकि शरीर का एक अवयव जो कर्ण प्रदेश है वह प्रत्येक पुरुष का अलग-अलग है-इसलिये श्रोत्राकाश में इन्द्रियत्व की व्यवस्था तथा तदितर आकाश प्रदेश में अतीन्द्रियत्व की व्यवस्था घट जाती है-परन्तु प्रकृत में उपाधि तो शरीर है वह प्रति क्षण में इतस्ततः चलायमान परिणामी है तो प्रत्येक क्षण में एक प्रदेश से प्रदेशान्तर में जाने से पूर्व प्रदेशावस्थित ब्रह्म प्रदेश का अपगम उत्तर का आगम होने से मोक्ष में भी क्षणिकत्व हो जायगा । अतः प्रकृत में श्रोत्रवत् व्यवस्था के अभाव से जीव गत दोष से ब्रह्म सम्बन्ध अपरिहार्य है, अतः द्वैताद्वैतवाद मत भास्कराचार्याभिमत उपयुक्त नहीं है । विशेष विवरण आगे होगा ।

卐 निवर्त्यनिवर्तकानुपपत्तिः 卐

ननु 'अविद्यास्तमयो मोक्षः सा च बन्ध उदाहृतः 'इति भवतः पक्षः तत्रास्तमयो नाम अविद्या निवृत्तिः । सा च निवृत्तिः केन जायते कीदृशी च

यद्यप्युभावपि द्वैताद्वैतवादिनौ तथाप्युभयोरेतावानेवभेदः । तत्र भास्करमते जीवब्रह्मणोर्विद्येते भेदाभेदौ, तत्र तयोरभेदः स्वाभाविको भेदश्चौपाधिकः । यतोऽन्तःकरणादिपरोपाधिभिरेवभेदस्य प्रतिभासनात्, न तु स्वतः स भेदः । शास्त्रे मोक्षदशायां जीवब्रह्मणोरभेदस्य प्रतिपादनात् । सर्वोपाध्यभावस्यैव मोक्षरूपत्वात् । तथा मोक्षसमये एवाभेदस्य प्रतिपादनेनाभेदस्य स्वाभाविकत्वम् । भेदस्य चागमापायिकत्वेन औपाधिकत्वमेव । जडे ब्रह्मणि च भेदाभेदावुभावपि स्वाभाविकावेवेति । यतः श्रुतौ सर्वस्य पदार्थस्य ब्रह्मात्मकम्-इदं सर्वं यदयमात्मेत्यादौ कथितम्, अतोऽचेतने ब्रह्मणि चाभेदः स्वीकर्तव्यः । एवं श्रुतावेवाचेतनस्य दोषवत्वंश्रावितं निर्मलत्वं च ब्रह्मण इत्युभयोर्विरुद्धधर्मवत्वाद् भेदोऽपि । इति भास्करीयंमतम् ।

यादवप्रकाशाचार्यस्तु जीवे ब्रह्मणि च भेदाभेदावुभावपि स्वाभाविकावेवेति मन्यते ।

न्याय सिद्धान्त के अनुरोध से कहा गया कि-जिस तरह निरवयव निर्विकार सर्व व्यापक आकाश में कर्णशष्कुली रूपोपाधि के बल से श्रोत्रेन्द्रियत्व का व्यवहार होता है, जो कि कर्णान्तर्गत होकर के शब्द का ग्राहक होता है, और वही आकाशनिरुपाधिक होकर के अतीन्द्रिय कहलाता है सर्वव्यापक होता है, इसी तरह पर ब्रह्म में समझना ऐसा कहा है, परन्तु यह बात सिद्धान्त सिद्ध नहीं है । सिद्धान्त में तो श्रोत्रादिक इन्द्रिय पृथिवी प्रभृति भूतों का कार्य नहीं है, किन्तु इन्द्रियों की उत्पत्ति तो अहङ्कार से होती है, यह बात वेद संप्रदाय सिद्ध है, जैसा कि- **'इन्द्रियाणिहि जातानि चाहङ्करात्तु सात्विकात् । अनुग्राहकता चाथ राजसाहङ्कृतेरिह'** इसप्रकार आचार्य श्रीश्रियानन्दाचार्यजी ने प्रतिपादन किया है अतः इन वस्तुओं का प्रतिपादन करने के लिये तथा भास्कर मत का उपसंहार करने के लिये उपक्रम करते हैं **'वस्तुतस्तु'** इत्यादि । वस्तुतः अगर विचार किया जाय तब तो यह श्रोत्रेन्द्रिय जो कि शब्द ग्राहक कहा जाता है वह आकाश रूप नहीं है, किन्तु सब इन्द्रिय समुदाय चक्षुरादिक अभौतिक हैं ऐसा ईश्वर कृष्ण ने भी कहा है **'अभिमानोऽहङ्कार'** इत्यादि । अर्थात् मूल प्रकृति साम्यावस्था को छोड कर के जब गुणों में विषमता होके वैषम्यावस्था को प्राप्त करती है, तदनन्तर महत्तत्व उत्पन्न होता है, महत्तत्व से अभिमान व्यापार वाला अहङ्कार उस से दो प्रकार का सर्ग होता है एक तो इन्द्रिय सर्ग तथा दूसरा भूतसर्ग । यह अहङ्कार तीन प्रकार का है सात्विक राजस तथा तामस । इस में सात्विक अहङ्कार से प्रकाशक इन्द्रियों का तथा तामस अहङ्कार से तमो बहुल आकाशादि तन्मात्रा का प्रादुर्भाव होता है

सेतिविचारणीयं भवति । अथ जीवब्रह्मणोर्यदैक्यज्ञानं तदेव निवर्तकम् । अनिर्वचनीयायास्तस्या निवृत्तिरनिर्वचनीयैवेति तत्र पृच्छामि-एतादृशं वस्तु सद्वा असद्वा उभयरूपं वा । तत्र नाद्यः पक्षः यतस्तादृशनिवृत्तेरबाधितत्वेऽद्वैतव्याघातात् । असद्रूपत्वेऽर्थात् बाधितत्वे अविद्या सद्भावः सिद्ध्येत् ।

यतः श्रितौ मोक्षकाले जीवे ब्रह्मणि च भेदाऽभेदश्चापि वर्णितः । अत उभावपि स्वाभाविकावेव । अचेतने ब्रह्मणि च भेदाभेदौ स्वाभाविकावेवेति उभयोर्भेदः । उभयोः समानता च प्रपञ्चसत्यतायाम् । उभयमतेऽपि प्रपञ्चसत्यता । तथा सत्येवबन्धमोक्षयोर्व्यवस्थाव्यवस्थिता भवति । प्रपञ्चमिथ्यात्वे बन्धमोक्षव्यवस्था न स्यात् तथा प्रपञ्चसत्यत्वे एव स्वमतव्यवस्थापकं प्रमाणमपि सिद्धं स्यात् । तस्मात् प्रपञ्चसत्यताप्यत्यावश्यकीत्येवमुभयोः समानत्वमिति । प्रकृतखण्डनं तु इत्थम्-यादवमते यथा जीवब्रह्मणोर्भेदस्ताथाऽभेदोपि स्वीक्रियते । तद् ब्रह्म नेश्वरादतिरिक्तम्, किन्तु तद्रूपमेव । यद्यपि यादवमते ब्रह्मांशीजडचेतनपरमेश्वरश्च ब्रह्मणोंऽशास्तथापि ईश्वरो ब्रह्मरूप एवेति 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते' इत्यादिस्थले समाभ्यधिकराहित्यस्य परमेश्वरे एव प्रतिपादनात्

। एवं सूक्ष्माकाशादि तन्मात्रा से पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति होती है। इस ईश्वर कृष्ण के वचन से सिद्ध होता है कि इन्द्रियों की उत्पत्ति अहङ्कार से होती है किन्तु आकाशादिक से नहीं है।

प्रश्न-यदि इन्द्रियभौतिक नहीं है किन्तु आहङ्कारिक हैं तब इन्द्रियों में '**अन्नमयं हि सोम्यमनः**' (हे सोम्य ! यह मनरूप इन्द्रिय अन्नमय है अर्थात् अन्न का विकार है) इत्यादि स्थल में जो भौतिकत्व व्यवहार सर्व प्रसिद्ध है, उस व्यवहार का समर्थन आपके मत में किस तरह से संपादित होगा ? क्योंकि आपने तो इन्द्रियों को अहङ्कार प्रकृतिक मानलिया है।

उत्तर-ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि भौतिक अन्न जल तेज के द्वारा इन्द्रियों का पुष्टिकरण होता है, इस बात को मान कर के इन्द्रियों में भौतिकत्व व्यवहार किया है। सात्विक अहङ्कार से चक्षुरादि इन्द्रियों कि उत्पत्ति होती है, इस बात को श्रीपराशर प्रभृतिक महर्षियों ने भी कथन किया है। पराशर वचन का उद्धरण देते हैं-'**तैजसानीन्द्रियाण्याहुः**' इत्यादि (अर्थात् अन्य कोईवादी कहते हैं कि इन्द्रियगणतैजस हैं अर्थात् राजस अहंकार से उत्पन्न होते हैं, परन्तु उन लोगों का यह कथन ठीक नहीं है किन्तु पराशरादिक स्मृतिकारों ने यह माना है कि चक्षुरादि बाह्य दश इन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय पांच तथा पांच कर्मेन्द्रिय ये सब वैकारिक हैं अर्थात् सात्विक अहङ्कार से उत्पन्न होते हैं परन्तु भूतों से उत्पन्न नहीं होते हैं, यह सिद्धान्त है।

अभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वात् । द्विरूपत्वेऽर्थादंशतोऽबाधितत्वे बाधितत्वे च, येनांशेनाबाधितत्वं तदंशमादायद्वैतापातात् बाधितत्वे पुनरपि अविद्या सद्भावः स्यादुक्तयुक्तेः । न चैतद्भिन्नः कश्चित् पक्षः सम्भवत्य-सम्भवात् । न चाविद्यानिवृत्तिर्ब्रह्मरूपैव । 'अधिष्ठानावशेषोहिनाशः कल्पित वस्तुनः' इति नियमेनाभावस्याधिकरणरूपत्वादितिवाच्यम् । एवं स्वीकारे

। यदि ब्रह्मणोंऽशः परमेश्वरो भवेत्तदांशिनोऽपेक्षया परमेश्वरस्यावश्यंन्यूनता स्यादिति समाभ्यधिकराहित्यवचनं पीडयेत, इति कारणीभूतब्रह्मणएवेश्वरत्वम् । ततश्च जीवपरमेश्वरयोरभेदात् जीवगतदुःखादीनामनुसंधानं स्यात् । ततश्च परमेश्वरस्येश्वरत्वं बाधितं स्यात् । न च यथा जीवानां परस्परं शरीरभेदादेकेनानुभूतस्य वस्तुनः परोनानुसन्दधाति, तथैव जीवानुभूतदुःखस्यानुसन्धानं परमेश्वरे न स्यादिति वाच्यम् । यथा-सौभरिमहामुनीनां शरीरभेदेऽपि आत्मैकत्वे सर्वशरीराबच्छेदेनानुभूतस्य तदैकस्मिन् अनुसन्धानं जायते । यथा वा परमेश्वरो नानावतारं गृह्णाति, तत्र नृसिंहावतारे संपादितकार्यस्यानुसन्धा-नमवतारान्तरेऽपि करोति । यत आत्मन एकत्वादिति शरीरभेदोनानुसन्धानप्रतिपन्थी भवति । तथैव प्रकृते जीवेश्वरयोरेकत्वात् जीवशरीरानुमितदुःखादीनां सर्वदा परस्यानुसन्धानं स्यादिति

तस्मात् इसलिये सर्व व्यापक निरवयव परमात्मा में अनेक उपाधियों का संपर्क होने से जायमान दोषों का होना अनिवार्य हो जाता है द्वैताद्वैतवाद में। एवं द्वैताद्वैत वादी लोग परमेश्वर के स्वरूप परिणाम को मानते हैं तब तो ब्रह्म में विकारित्व भी हो जायगा, तब ब्रह्म में निर्विकारता का प्रतिपादक जो श्रुति हैं, वे सब अप्रामाणिक हो जायेंगे, और ब्रह्म में निर्विकारत्व का परित्याग हो जायगा। नहीं कहो कि-ब्रह्म का परिणाम तत्तत् उपाधि रूप से नहीं होता है, अपितु ब्रह्म की जो शक्ति है तादृश शक्ति का परिणाम होता है-ऐसा मानने से ब्रह्म तो परिणामी हुआ नहीं, इसलिये ब्रह्म में निर्विकात्व प्रतिपादक श्रुतियों का विरोध नहीं होता है ? ऐसा कहना ठीक नहीं हैं, क्योंकि जो यह ब्रह्म की शक्ति है वह ब्रह्म का कार्य होने से ब्रह्म से भिन्न है, अथवा ब्रह्म से वह शक्ति अभिन्न है ? इसमें दोनों पक्ष युक्त नहीं है-क्योंकि दोनों ही पक्ष में ब्रह्म में परिणामित्व की आपत्ति हो जायगी। अर्थात् यदि यह शक्ति ब्रह्म का परिणाम-कार्य है तो यह मानना पडेगा कि ब्रह्म स्वयमेव शक्ति रूप से परिणत हुआ, तब तो ब्रह्म में परिमामित्व होने से वह ब्रह्म सविकारी है, तब निर्विकारता प्रतिपादक श्रुतियों का अप्रामाणिकत्व हो जाता है, और यदि शक्ति को ब्रह्म से अभिन्न मानते है तब तो शक्ति परिणाम कहिये अथवा ब्रह्म का परिणाम कहिये दोनों वस्तु एक ही हुई। इस स्थिति में ब्रह्म का ही परिणाम हुआ ऐसा मानना पडेगा, और ब्रह्म का स्वरूप परिणाम मानने पर ब्रह्म में निर्विकारत्व तथा निर्दोषत्व के प्रतिपादक श्रुति का

वेदान्तजनितब्रह्मज्ञानात् पूर्वमेवाविद्यानिवृत्तिः स्यात् । ततश्च वेदान्तज्ञानजनितैक्यज्ञानादविद्यानिवृत्तिरिति भवतः सिद्धान्तो व्याकुप्येत । अपि च सकलजगद् विनाशकत्वज्ञानस्य मनः परिणामरूपत्वेनाविद्यकत्वात्तन्नि-

---

गतमीश्वरस्येश्वरत्वमिति न विचार्यमाणे सति यादवपक्षोऽपि साधीयान् ।

ततश्च यथा भास्करमतं न युक्तियुक्तंतथैव यादवमतमपि । अतो जगदाचार्येणभास्करमतातिदेशेनैव 'एतेनभास्करमतनिरासेन यादवमतमपि निरस्तं भवतीति कथितम् । अक्षरार्थस्तु न तिरोहितः ।

सप्रति यादवप्रकाशमतं संक्षिप्यदोषं दर्शयितुं तथा स्वमते ईश्वरे निर्दोषतां प्रतिपादयितुं चोपक्रमते-अयमभिप्राय **इत्यादि एतन्मते एक एव परमेश्वरो मनुष्यादि जीवरूपेण परिणमते जडरूपेणापि विपरिणमते । स च परिणामः स्वरूपत एव भवति ततश्चद्वयोः स्वरूपेणाभिन्नत्वाज्जीवगताः सर्वे दोषा अवयविनि संक्रमन्तीति परमेश्वरोऽपि जीववदेव दोषवान् स्यादित्यादिदोष एतन्मते अनिवार्य एवेत्यादिदोषजातं दर्शयति** परमेश्वरः स्वकीयस्वरूपेण **इत्यादि** यदिकदाचिदंशांशिनो **रित्यादि । अयंभावः जीवगतदोषेण ब्रह्मणोऽपि दोपवत्वं भवति, यतस्तयोरेतन्मतेऽभिन्नत्वादित्येतद्दोषपरिहाराय यद्ययं जीवब्रह्मणो**

बाध होने से वे सब श्रुति अप्रामाणिक हो जायेंगी, इसलिये भास्कराचार्य का अभिमत जो द्वैताद्वैतवाद है वह युक्ति तथा श्रुति बाधित होने से युक्त प्रतिभासित नहीं होता है। इस विचार से आचार्य जी ने यह सिद्ध कर दिया कि द्वैताद्वैत वाद जो कि विशिष्टाद्वैत का विरोधी है श्रुति युक्ति सिद्ध नहीं होने से अमान्य तथा मुमुक्षुओं से अग्राह्य है। गत प्रकरण से भास्कराचार्य संमत द्वैताद्वैत वाद का निराकरण किया गया है। तदनन्तर तत्सदृश तथा विशिष्टाद्वैत का विरोधी यादवप्रकाशाचार्य संमत द्वैताद्वैत वाद का निराकरण करने की इच्छा से उपक्रम करते हैं '**एतेन यादवमतमपि निरस्तं भवतीत्यादि**' एतेन अर्थात् इससे अर्थात् भास्करमत का निराकरण करने से तत्सदृश भास्कर मत के समान यादव मत संमत यादवमत भी निराकृत हो जाता है, ऐसा समझना चाहिये ।

भास्कराचार्य तथा यादवाचार्य का मत क्या है इसे संक्षेप रूप से कुछ बतला देता हूँ, जिससे आगेनिराकरण ग्रन्थ का अभिप्राय सरल रूप से समझ में आ जायगा । भास्कराचार्य संमत जो द्वैताद्वैत वाद है जिसका निराकरण गत प्रकरण में किया जा चुका है, तथा यादवाचार्य संमत द्वैताद्वैत वाद में यह भेद है कि भास्कराचार्य जी ने जीव तथा ब्रह्म में भेदाभेद को मानते हुए ऐसा कहा है कि '**तत्त्वमस्यादि**' वाक्य प्रतिपादित इन दोनों में जो अभेद है वह स्वाभाविक है तथा जो '**विज्ञानेतिष्ठन्**' इत्यादि श्रुति प्रतिपादित जो भेद कहा गया है वह औपाधिक है, जीव ब्रह्म को अभिन्न होने पर भी जो

वृत्तिरावश्यकी । अन्यथा तेनैवतत्वज्ञानेनाविद्यकेन द्वैतप्रसङ्गात् । ततश्च तादृशतत्त्वज्ञानस्यापि विनाशो वक्तव्यः स च केनेति वक्तव्यम् । न च यथा कतकरजः समले रजसिप्रक्षिप्तं तत्र मलान्तरंनिवाशयत् स्वयमपि विनश्यति। यथा वा विषं विषान्तरं शमयति स्वयमपि शाम्यति वस्तुस्वभावस्य

रंशांशीभावं स्वीकुर्यात्-अर्थात् जीवो ब्रह्मणोंऽशो ब्रह्म च जीवस्यांशी तथा तयोर्भेदं च स्वीकुर्यात्, तदा यादवानुयायिनां विशिष्टाद्वैतमतप्रवेशात्स्वसिद्धान्तपरित्यागरूपो दोषः समापतेदिति । इत्थंहि विशिष्टाद्वैतमतम् । तथाहि एतन्मते सूक्ष्मचेतनाचेतनाभ्यां विशिष्टमीश्वरतत्वमेव ब्रह्म । एतादृशविशिष्टतत्वे विशेषणीभूतम् एतदुभयमिति ब्रह्मणि चेतनं विशेषणं भवति, विशेषणं यद् भवति तद्विशिष्टस्यांशो भवति इति जीवो ब्रह्मणोंशः । तदाहुर्जगद्गुरवः श्रीपूर्णानन्दाचार्याः 'जीवश्च प्रकृतिर्ब्रह्मदेहत्वाद्धिविशेषणे । शरीरी चोभयोर्ब्रह्म विशिष्टं तदद्वयेन च ॥ सूक्ष्मा चिच्चिद्विशिष्टः श्रीरामो ब्रह्म हि कारणम् । स्थूलचिच्चिद् विशिष्टस्तु कार्य ब्रह्म स भाषितः । द्वयोर्विशिष्टयोश्चाथ कार्यकारणरामयोः । सदेव सोम्येदमग्र आसीदिति श्रुतौयतः । ऐक्यमापादितं तस्माच्छ्रीमद्बोधायनो मुनिः । मेने च सुमतं श्रौतं विशिष्टाद्वैतसंज्ञकम् (श्रीबोधायनमतादर्शः ६।९-११) तथा विशेषणं

यह भेद प्रतिभासित होता है वह अन्तः करणादि उपाधि से होता है, अतः भेद औपाधिक है। जिस तरह महाकाश तथा घटाकाश में जो भेद है वह घटादि उपाधि जनित है। यथा वा स्फटिक में जो आरुण्यज्ञान होता है वह जपाकुसुम लक्षण उपाधि जनित होता है, इसी तरह प्रकृत में भी जीव ब्रह्म में जो भेद है वह उपाधि जनित है स्वाभाविक नहीं है। स्वाभाविक तो जीव ब्रह्म में अभेद ही रहता है। श्रुति में कहा है कि मोक्ष समय में जीव तथा ब्रह्म में अभेद होता है, सर्व प्रकारक उपाधि के अभावदशा को मोक्ष कहते हैं, इसलिये अभेद स्वाभाविक है और भेद औपाधिक है।। और अचेतन तथा ब्रह्म में जो भेद है तथा अभेद है वह सब स्वाभाविक है, क्योंकि वेद में '**ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्**' इस वाक्य से सब पदार्थ को ब्रह्मात्मक माना है इसलिये अचेतन और ब्रह्म में अभेद माना जाता है एवं श्रुति में अचेतन पदार्थ को दोष युक्त माना गया है, और ब्रह्म को निर्मल सर्व दोष रहित माना गया है, इसलिये अचेतन पदार्थ तथा ब्रह्म में भेद मानना भी आवश्यक है यह समझ कर के भेद का भी स्वीकार किया गया है, यह भास्कराचार्य का मत है, इसी को भास्कराचार्य संमत द्वैताद्वैत वाद कहते हैं।

और यादवप्रकाशाचार्य के मत में ब्रह्म तथा जीवों में भेदाभेद माना है-यह दोनों ही स्वाभाविक है-क्योंकि श्रुतियों में मोक्ष काल में जीव और ब्रह्म में भेद का तथा अभेद का भी वर्णन किया गया है इसलिये जीव ब्रह्म में जो भेद तया अभेद है, ये दोनों स्वाभाविक हैं ऐसा मानना पडता है, और

वैलक्षण्यदर्शनात् तथैव तत्त्वज्ञानं स्वेतराविद्यां तत्कार्यं च विनाशयत् स्वयमेव स्वात्मानमपि विनाशयेत् । यथा चरमशब्दः उपान्त्यशब्दं विनाशयन् स्वात्मानमपि विनाशयतीतिवाच्यम् । यदिदं सर्वनिवर्तकं तत्त्व ज्ञानं तस्य मनः परिणामरूपत्वेन ब्रह्मभिन्नत्वम्, तेन तादृश तत्त्वज्ञानस्योत्पा-

विशेष्यात्सर्वथैव पृथग् भवति । यथा-'रूपादिमान् घटः' इत्यादौ विशेषणस्यगुणात्मक-स्यरूपादेर्द्रव्यात्मकघटस्वरूपविशेष्यापेक्षया सर्वथाभेदस्यानुभविकत्वात् । अतो विशेषणीभूतो जीवः परमेश्वरात् श्रीरामाद्विभिन्न एव भवति । विशिष्टाद्वैते न जीवब्रह्मणोः स्वरूपत ऐक्यं स्वीक्रियते । यादवमते तु जीवब्रह्मणोः स्वरूपत एवैक्यमतो जीवगतदोषेण परमेश्वरोपि दोषभाग् भवति । यद्यपि विशिष्टाद्वैतमतेऽपि जीवब्रह्मणोरैक्यं भवतीति स्वीक्रियते, तथाप्यत्र न स्वरूपत ऐक्यं किन्तु शरीरात्मभावसंबन्धेनैक्यं स्वीकृतम्, अतो जीवब्रह्मणोरेकत्वेपि शरीलक्षणजीवगतदोषेण शरीरि ब्रह्मणि जीवात्मकविशेषणगता दोषा न समाविशन्ति विशेषणविशेष्ययोर्भेदात् । अपितु ब्रह्मणि बहवो निरतिशयाः कल्याणगुणा एव सिद्ध्यन्ति । यतः चेतनाचेतनयोर्ब्रह्मणि च शरीरात्मभावसंबन्धस्वीकारे

अचेतन पदार्थ तथा ब्रह्म में जो भेदाभेद है ये दोनों ही स्वाभाविक हैं यही इन दोनों के मत में अन्तर है, और इन दोनों आचार्यों के मत में समानता यही है कि दोना मतों में प्रपञ्च को सत्य माना गया है। अद्वैतवादी की तरह प्रपञ्च को मिथ्या नहीं मानते हैं। इन दोनों आचार्यों ने कहा है कि प्रपञ्च को सत्य मानने से ही बन्ध तथा मोक्ष की व्यवस्था सिद्ध होती है, एवं ये दोनों आचार्य का स्वकीय स्वकीय सिद्धान्त का साधक प्रमाण भी प्रमाण रूप से सिद्ध होता है, इसलिये प्रमाण तथा प्रमेय उभय प्रकारक प्रपञ्च को सत्य ही मानना चाहिये अन्यथा पदार्थ मात्र को मिथ्या मानें तो किससे किसकी सिद्धि होगी, क्योंकि असत् शशशृङ्ग से क्या किसी-भी पदार्थ का साधन होता है ? अतः प्रमाण प्रमेय सब पदार्थ सत्य ही है मिथ्या नहीं इस प्रकार इन दोनों के मतों में अंशतः समानता भी है तथा किसी किसी अंश में भेद भी है। यद्यपि प्रायः सब मतों में अंशतः समानता तथा अंशतः विषमता रहती ही है तथापि इन दोनों में अंशत समानता का आधिक्य है विषमता बहुत कम है। इस प्रकार से दोनों आचार्यों का संक्षिप्त मत का दिग् दर्शन कराया गया है।

इस तरह से व्यवस्थित यादवाचार्य के मत में दोष बतलाने के लिये आचार्यजी कहते हैं- **'एतन्मते जीवब्रह्मणोरित्यादि'** इस यादव प्रकाशाचार्य के मत में जिसप्रकार से जीव ब्रह्म में भेद है उसी तरह अभेद भी माना गया है तो जीव संबन्धी सुखदुखों से परमेश्वर को भी संबद्ध होने से जीव की तरह परमेश्वर को भी दुःखादिरूप दोषों से दोषत्व प्रसंग हो जायगा तब परमेश्वर में निर्दोषता

दविनाशादिकं मिथ्यारूपत्वेन तद्विनाशरूपाऽविद्याया विनाशासम्भवात् । न च तत्वज्ञानविनाशस्य विनाशकान्तरस्वीकारे दुरवस्थैवानवस्था स्यात् । दावानलादीनां तु पूर्वावस्थाविरोधि अवस्थान्तरस्यसद्भावस्तिष्ठत्येव

चेतनाचेतनपदार्थः परमेश्वरस्य शरीररूपोभूत्वा परमेश्वरेण धृतो भवति । ईश्वरस्य नियन्त्रणेऽवस्थितो भवति तथा परमेश्वरस्य सुखाय परमेश्वरस्य शेषोभूत्वाऽवतिष्ठते । परमेश्वरश्च चेतनाचेतनानामात्मानियन्ताधारकः स्वामी च भवति । शरीरात्मभावे जीवपरमेश्वरेऽभ्युपगते प्रदर्शितप्रकारेण परमेश्वरेऽनन्तकल्याणगुणा एव सिद्धा भवन्ति । न तु जीवगतदोषेण दोषभाग् भवतीति । यदि निर्दुष्टमेतन्मतं स्वीकुर्यात्तदा यादवस्य स्वसिद्धान्तपरित्यागोऽस्वीकारे ब्रह्मणि सदोषत्वमापततीत्युभयतः पाशारज्जुरिति नैतद् यादवीयं मतं शोभनमितिदिक् ।

यादवप्रकाशाचार्येण हि 'तत्त्वमसि' प्रभृतिश्रुतिसमर्थितजीवब्रह्मणोरेकत्वसिद्धये जीवब्रह्मणोरभेदप्रतिपादनाय, तथा 'यः सर्वज्ञः स सर्ववि' दितिकल्याणगुणस्य साधनाय जीवब्रह्मणोर्भेदसिद्ध्यर्थं जीवेशयोर्भेदाभेदः स्वीकृतः । इतिपूर्वप्रकरणेन तदभिमतभेदा-

प्रतिपादक श्रुतियों का अप्रामाणिकत्व अनिवार्य हो जायगा।

अर्थात् आचार्यजी का अभिप्राय यह है कि यादवप्रकाशाचार्य के मत में जिस तरह जीव ब्रह्म में भेद माना गया है, उसी तरह जीव ब्रह्म में अभेद भी माना गया है, और वह ब्रह्म परमेश्वर ही है। यद्यपि यादव मत में ब्रह्म को अंशी माना जाता है और चेतन अचेतन और ईश्वर को भी ब्रह्म का अंश माना है परन्तु ईश्वर को ब्रह्म का अंश कहना ठीक नहीं है क्योंकि ईश्वर ही ब्रह्म है, इन में अंशांशीभाव नहीं है क्योंकि **'यतो वा इमानि' 'जन्माद्यस्ययतः'** इत्यादि स्थल में जगत्कारणत्वादिक ब्रह्म का लक्षण कहा गया है, तथा श्रुति ईश्वर को ही जगत्का कारण बतलाती है, अतः ईश्वर को ही ब्रह्म कहना चाहिये । एवं **'न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते'** इत्यादि स्थल में कहा गया है कि ईश्वर के सदृश तथा तदधिक कोई नहीं है। अब यदि ईश्वर को ब्रह्मांश माने तब तो अंश से अंशी बड़ा होगा ही तब तो समाभ्यधिक वर्जितत्व जो परमेश्वर में कहा गया है वह बाधिक हो जायगा। अतः ईश्वर और ब्रह्म एक ही तत्व हैं अंशांशी नहीं। यादव के मत में जीव ब्रह्म में अभेद है ऐसा मानते हैं तब तो ईश्वर ही जीव भाव को प्राप्त करता है, और यादव के मत में ईश्वर सर्वज्ञ है इसलिये ईश्वर को सर्वदा यह ज्ञान होता रहेगा कि मैं ही अनेक जीवभाव प्राप्त किया हूँ, जीव में होने वाला दुःख प्रभृति सर्वदोष मुझ को ही हो रहा है, तब दोषवान् होने से ईश्वर में अनीश्वरत्व हो जायगा। नहीं कहो कि जीव का शरीर तो भिन्न भिन्न है तो शरीर भेद होने के कारण से अन्य शरीरों में होने वाले सुखादिक का अनुसन्धान ईश्वर को नही होगा अतः ईश्वर

'प्रतिक्षणपरिणामिनो हि भावाः' इति नियमात् स च परिणामः क्वचित्सजातीयः क्वचित् विजातीयः । दावानलादौ तु सविजातीय एतावानेवविशेषः । ततश्चाविद्यानिवृत्तेस्तन्निवर्तकस्य च स्वरूप निरूपणमशक्यमेति न तदीयं मतं समीचीनम् । विशिष्टाद्वैतमत त सर्वाधारस्य दोषरहितत्वादेव निर्दुष्टमितिसंक्षेपः ।

भेदवादो निराकृतो भेदाभेदयोः परस्परविरुद्धतया सहावस्थानासंभवं पश्यन् । संप्रति सार्वत्रिकभेदाभेदं निराकर्तुमुपक्रमते 'यादवप्रकाशाचार्याभिमतेत्यादि । अयञ्च सार्वत्रिको भेदाभेदवादी जैनाद्यभिमतः स चेत्थं प्रवर्तते । यथैकस्मिन्घटादिधर्मिणि स्वदेशस्वकालापेक्षयाऽभेदोभवति, तथा परदेशपरकालापेक्षया भेदोऽपि निविशते । तदेवं वस्तुमात्रे भेदाभेदौसहैवावतिष्ठते । एवं वस्तुमात्रे नित्यत्वमनित्यत्वं सत्वमसत्वं च वर्तते । यथा घटः स्वरूपमपेक्ष्यनित्यो द्रव्यत्वादिकमपेक्ष्यानित्यश्च । एवं स्वापेक्षयासन् परापेक्षयाऽसन्नपि । तदुक्तम्-'स्वरूपपररूपाभ्यां नित्यं सदसदात्मको वस्तुनि ज्ञायते किंचित् कैश्चिद्रूपं कदाचने' ति । परन्तु नैतद्युक्तं भेदाभेदयोः परस्परविरुद्धत्वात् । एककाले एकदेशे सहावस्थातुमशक्यत्वात् । यदि तयोः सहावस्थानं भवेत्तदा तयोर्विरोध एव न स्यात् । विरोधो हि

में कोई दोष नहीं होगा ? यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिस स्थल में समझने वाला आत्मा एक है तो उस स्थल में शरीर का भेद अनुसन्धानाभाव का प्रयोजक नहीं होता है, जिस तरह काय व्यूह करने वाले सौभरि ऋषि प्रभृतिक जीवों ने अनेक शरीरों को बना करके तत्तत् शरीरों से तत् तत् शरीरों के अनुकूल कार्य करके तज्जनित सुख दुःख का अनुभाव किये हैं, क्योंकि वहां शरीर के भिन्न होने पर भी अनुभव करनेवाला सौभरि प्रभृति जीवात्मा एक हैं यथा वा भगवान् स्वयं तत् तत् कल्प में अनेक अवतार को धारण करते हैं, वहां अवतार शरीर का परस्पर भेद होने पर भी अवतार शरीरस्थ कृत कार्य का अनुसन्धान भगवान् को सदा होता रहता है, क्योंकि समझनेवाला आत्मा एक है, और समझनेवाले आत्मा का अभेद होने से शरीर भेद अनुसन्धानाभाव का प्रयोजक नहीं हो सकता है, इसलिये इस द्वैताद्वैतवाद में ब्रह्म जीव में अभेद होने से ईश्वर जीव को स्व से अभिन्न सर्वदा समझते रहेंगे, तब अनंत जीवभाव प्राप्त परमेश्वर को अनेक जीवकृत कर्मफल का सर्वदा अनुसन्धान होता रहेगा तब ईश्वर में सदोषता प्राप्ति रूप दोष का परिहार नहीं हो सकता है ।

और भी देखिये-जीव कर्मफल से छुटकारा प्राप्त करने के लिये भगवान् की उपासना द्वारा मोक्ष प्राप्ति करने के लिये सर्वदा पयत्न करता है । भगवान् सर्वदा मुक्त हैं, परन्तु जब ईश्वर जीव का भेद मानें तव ही यह हो सहेगा । यहां तो आप ने स्वरूप से ईश्वर तथा जीव में अभेद मान लिया है तब तो सकल

॥ ज्ञात्रनुपपत्तिः ॥

ननु यदिदं बाधकज्ञानं निवर्तकज्ञानापरपर्यायकं तदा तस्य ज्ञाता कः ? ज्ञानाक्रियायाः सकर्तृकत्वेन ज्ञात्रपेक्षया आवश्यकत्वात् । न च शुद्धचैतन्येऽध्यारोपितोऽहमर्थ एव तथेति वाच्यम् । तस्याहमर्थस्याध्यस्ततयानिवर्तकज्ञानंप्रतिकर्मत्वेन तत्कर्तृकत्वस्यासम्भवात् । नहि यस्याः

द्विविधः सहानस्थानं प्रतियोग्यनुयोगिभावश्च । तत्र प्रथमो जलहुतभुजोः । द्वितीयस्तु भावाभावयोः । यथा यदा यस्मिन् काले यस्मिन् देशे जलं तदा तत्रैव देशे वह्निः धूमयोः समानदेशताया अदर्शनात् । यथा वा यथा यत्र घटो न तदा तत्र घटः । घटघटाभावयोः प्रतियोग्यनुयोगिरूपत्वात्, घटमपसार्य्यैव घटाभावः आगच्छति, घटाभावमपसार्य्यैव च घटस्य सद्भावात्, अभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वात् । अनुभवोऽपि तथैव समर्थितो भवति । तद्वत्ताबुद्धितदभाववत्तानिश्चयस्य च प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावात् । तस्मात् न भेदकालेऽभेदोऽभेदकाले च भेदोऽवस्थानं प्राप्नुयादिति न सार्वत्रिको भेदाभेदवादः कथमप्युत्थातुं शक्नुयात् । न च यथैकैवस्त्रीरूपादिसंपन्ना स्वामिनः सुखाय भवति सपत्नीनां दुःखाय सैवच कामिनमविन्दमाना तेषां मोहाय भवन्ती स्वस्मिन् परस्परविरुद्धं गुणत्रयं विभर्ति । यथा वा

जीवगत सर्व प्रकारक दुःख का अनुसन्धान परमेश्वर को ही होगा तब तो भगवान् स्वयमेव दुःखी हो गये, इस हालत में भगवान् क्या दूरसों के दुःख को हटा सकेगें-प्रत्युत स्वयमेव अनेक दुःख से संपृक्त हो जायेगें, और जब भगवान् स्वयं दुःखी हैं तब उनके उपासकव्यक्ति को मोक्ष संभावना किस तरह होगी, इस लिये यादवीय द्वैताद्वैतवाद अयुक्त है ।

आचार्यजी इसके पूर्व में श्रीभास्कराभिमत द्वैताद्वैतवाद का यह कह कर कि जीव ब्रह्म में यदि अभेद मानते हैं तब जीवगत जो दुःखादि दोष हैं उन दोषों से जीव से अभिन्न परमेश्वर भी दोषवान् हो जायेंगे, तब परमेश्वर में निर्दोषता प्रतिपादक श्रुतियों का अप्रामाणिकत्व हो जायगा ? इस दोष से खण्डन कर के तदनन्तर भास्कर के सदृश यादवाचार्य के अभिमत द्वैताद्वैत का सामान्यरूप से खण्डन किया । अब पुनः यादवमत का विशेषरूप से खण्डन करने के लिये तथा स्वमत में भी जीव को परमेश्वर से अभिन्न होने के कारण अभेदमूलक उन दोषों का उद्धार करने के लिये उपक्रम करते हैं '**अयमभिप्रायः**' इत्यादि । यादवीयमत का जो गत प्रकरण से खण्डन किया गया है, उस प्रकरण का अभिप्राय-भाव यह है कि-यादवप्रकाशाचार्य यह मानते हैं कि परमेश्वर स्वकीय रूप से देव मनुष्यादिक चेतन रूप से तथा स्थावरादिक जड रूप से परिणत होते हैं । अर्थात् यादवाचार्यजी ने अभेद प्रतिपादक '**तत्त्वमसि**' प्रभृतिक श्रुतियों का अभिप्राय वर्णन करते हुए कहा कि परमेश्वर स्वकीय स्वरूप से ही देवता मनुष्य पशु तथा स्थावर प्रभृतिक अनेक रूपों में परिणाम को प्राप्तकरते हैं, ईश्वर तथा देव प्रभृतिक पदार्थों में

क्रियाया यत्कर्म तदेव तस्याः कर्ता सम्भवति गमनादिक्रियासु तथाऽदर्शनात् । तस्मान्निवर्तकज्ञानं प्रतिसमारोपिताहमर्थस्य तत्कर्तृकत्वानुपपत्तेः । न च शुद्धचैतन्यमेव तत्कर्तृ इति वाच्यम् विकल्पासहत्वात् ।

प्रतियोग्यपेक्षयापत्नीमातादुहिताप्रभृतिशब्दवाच्या भवति तथैव सकलवस्तुनि द्रव्यापेक्षयाऽभेदोभविष्यति तत्तद्रूपापेक्षया च भेदोपि भविष्यतीति कथमुच्यते भेदाभेदयोः सहावस्थानं विरुद्धमिति वाच्यम् । तत्रापि द्रव्यत्वादिव्यापकधर्मेण धर्मिणोर्भेदाभेदः स्वीकरणीय इति तत्र विरोधात्स न संभवतिति दुरात्मा विरोधो नापगच्छतीत्यादिकंसर्वं यथामूलमेवानुसन्धेयम् । विशेषविचारस्तु भेदाभेदप्रकरणेऽन्यत्र करिष्यते ।

ननु यथा पदार्थमात्रस्य परस्परं स्वभावतो भेदो भवत्येव, तथा जातिव्यक्त्योरपि पदार्थत्वाविशेषात्, परस्परं भेदोऽभ्युपगत एव सर्वैरपि वादिभिः । एवं यथातयोर्भेदस्तथाऽभेदोपि स्वीकर्तव्य एवेति कृत्वा भेदाभेदो भवतीति । तत्राभेदसाधनाय चत्वारो हेतवः प्रदर्शिता । तान् हेतून् हेत्वाभासीकर्तुं जगदाचार्योपक्रमते यदपि यादवप्रकाशाचार्यैरित्यादि । तत्र प्रथमे वक्ष्यमाणो दोषः । अयंगौरिति प्रत्यये गो गोत्वयोर्विशेष्यविशेषणरूपेण

स्वरूपैक्य है ऐसा अर्थ को लेकर के जीवेश्वर में एकत्व का प्रतिपादन अभेद श्रुतियों में किया गया है यह मत यादव का है।

परन्तु यह मत समीचीन अर्थात् युक्त नहीं है-क्योंकि जिस तरह मृत्तिका द्रव्य का जो जो घट शरावादिक कार्य वर्ग है उन कार्य वर्गों का जो जलाहरणादि कार्य है वे सब कार्य मृत् पिण्ड के ही हैं, ऐसा व्यवहार होता है क्योंकि मृत्तिका तथा मृत्तिका का कार्य घटादिकों में स्वरूपतः एकता है, उसी तरह सर्व जीवों में होने वाले जो संसारिक सुखता दुःखादिक वे सब परमेश्वर में ही मानें-जायेंगे, क्योंकि जीव और ब्रह्म में स्वरूप से एकत्व है पुनः प्रश्न 'ननु' इत्यादि, जिस तरह मृत्तिका द्रव्य का जो अंश घटरूप से परिणत हुआ है उसी घटादि अंश में जलाहरणादि कार्य का सम्बन्ध होता है किन्तु जो अंश घटादि से अतिरिक्त अंश है, उन अवशिष्ट अंशों में तो जलाहरणादि कार्यों का अन्वय नहीं होता है क्योंकि अन्य अंशगत कार्य का अन्यांश में अन्वय प्रत्यक्ष बाधित है। उसी तरह प्रकृत दार्ष्टान्तिक में परमेश्वर का जितना अंश जीवरूप से परिणत होता है उतने अंश जीव में ही दुःखादिक का सम्बन्ध होगा किन्तु अवशिष्ट जो परमेश्वर का महान् अंश है, उन अंशों में जीव सम्बन्धी दुःखादिक का सम्बन्ध नहीं होने से परमेश्वर में अनन्त कल्याण गुणाकरत्व ही सिद्ध होता है, परन्तु दुःखादिमत्व सिद्ध नहीं होता है, अर्थात् जीवरूप से परिणत अंशावच्छेदेन परमेश्वर को दुःखानुभव होता है, और अवशिष्ट अंशाबच्छेदेन सर्वज्ञत्व सर्वकल्याण गुणवत्वादिक की सिद्धि होती है इसलिये उभय प्रकारक अनुभववान् परमेश्वर

शुद्धचैतन्ये यत् ज्ञातृत्वं तत् तस्य स्वरूपम् । अथवा तज्ज्ञातृत्वमपि तत्राध्यस्तम् । यदि द्वितीयपक्षस्तदा ज्ञातृत्वाध्यासस्य तत्प्रयोजकीभताऽविद्यान्तरस्य निवर्तकज्ञानाविषयत्वेन सर्वदा तयोः सद्भावप्रसङ्गात् । न चैतत्तवेष्टं सिद्धान्तविरोधात् । न च तयोर्निवर्तकं ज्ञानान्तरमेव न तु पूर्वकालिकं

भानात्, तत्र गोरूपविशिष्ये गोत्वस्य प्रकाररूपतयैवभानं भवति, विशेष्यप्रकारौ च परस्परं विभिन्नावेवेति कथं तयोरभेदः संभवेदिति प्रथमोहेत्वाभास एवेति । द्वितीयश्च सहोपलंभनियम इति एकस्य ग्रहणे एवान्य उपलभ्यते, प्रथमस्य ग्रहणाभावेऽन्यो नोपलभ्यते, तत्र तयोः सहोपलंभ इति कथ्यते । अयं चाभेदाभेदसाधकः यथैकस्मिश्चन्द्रे समुपलभ्यमाने एव द्वितीयो दृश्यते प्रथमस्य ग्रहणाभावे नोपलभ्यते द्वितीयः । इति सहोपलंभनियमोऽभेदसाधकः । तदुक्तम् 'सहोपलंभनियमादभेदो नीलतद्धियोः । भेदश्चभ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्यतेन्दाविवाद्वये' इति । अयमपिहेतुर्हेत्वाभास एव । हेत्वाभासत्वप्रदर्शनं तु यथामूलमेव ज्ञातव्यम् । तृतीयचतुर्थयोरपि हेत्वाभासत्वं यथा मूलमेव ज्ञातव्यमितिसंक्षेपः ।

यदिदं स्वेतरव्यावर्तकतयोपस्थापितं गोत्वादिकं तदीयस्वरूपविषये बहुविप्रतिपद्यमाना भवन्तीति तेषां विप्रतिपत्तिर्निराकृत्यस्वमतेन तत्स्वरूपं निर्धारयितुं

होते हैं अंश भेदावच्छेद से जैसे एक ही वृक्ष में मूलावच्छेद से कपि संयोगाभाव तथा शाखावच्छेद से कपि संयोग की तरह। यह प्रश्न हुआ यादव मतानुयायियों का।

यह कहना भी ठीक नहीं है, इस बात को आचार्यपाद कहते हैं-'**तदपि न क्षेमाय**' इत्यादि। यह भी आपका यादव मत का कथन मनोरम् अर्थात् समीचीन नहीं है, क्यों समीचीन नहीं है ? इसका उपपादन आचार्यजी बतलाते हैं-'**तथाहि**' इत्यादि प्रकरण से वास्तविक स्थिति तो यहां है कि परमेश्वर सर्वदा सर्वांश में सर्व दोष रहित हैं तथा अनन्त कल्याणगुण के महोदधि हैं। परन्तु यदि ईश्वर के किसी अंश में दुःखादि दोष मान लिया जाय और तदतिरिक्त अंश में कल्याण गुण माना जाय तब तो जिस तरह देवदत्तादिक जीव को हस्तपादादि में कण कनोदन जनित व्याथा का अनुभव होता है और मस्तक में चन्दनलेप जनित सुखानुभव होने पर भी वह जीव दुःखी ही कहलाता है, उसी तरह परमेश्वर को भी नारकादि अंश में दुःखानुभव करने से तथा देवादि अंश में सुखानुभव होने पर भी तथा तदतिरिक्त अंश में सर्वज्ञत्वादि कल्याण गुणाकरत्व होने पर भी ईश्वरत्व जीववत् नहीं हो सकेगा। ईश्वर में अनीश्वरत्व की आपत्ति बनी रह जाती है, इसलिये अंशभेद से दुःखानुभव से दुःखानुभव तथा अंश भेद से अनन्त कल्याण गुणत्व का समर्थन करके प्रकृत दोष का उद्धार करना ठीक नहीं है।

यदि कदाचित् जीवगत दुखादि दोष से परमेश्वर में दोषवत्व हो जाता है, इस दोष का निराकरण

निवर्तकज्ञानं निवर्तकमितिवाच्यम् तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्गात् । शुद्धब्रह्मरूपज्ञानस्याश्रयत्वेन निवर्तकत्वानुपपत्ते: । वृत्त्यारूढस्यैव निवर्तकत्वस्वीकारात् । यदि ज्ञातृत्वं न ब्रह्मणि समारोपितमपितु ब्रह्मण: स्वभावभूतमित्याकारकद्वितीयपक्षस्वीकारेऽस्मन्मतप्रवेश: स्वसिद्धान्तविरोधश्चापतति ।

जगदाचार्योपक्रमते--ननु यदिदङ्गोत्वघटत्वादिकमित्यादि । तत्र नित्यत्वेसत्यनेकसमवेतत्वं जातेर्लक्षणम् । तत्र नित्यत्वेसतीत्यन्तविशेषणानुपादाने संयोगद्विष्ठत्वेनानेकस्मिन् समवायेन वृत्तित्वात्संयोगविभागादिकद्विष्ठगुणेऽतिव्याप्तिरिति तद्वारणायनित्यत्वे, इति । तथा सति संयोगादिकगुणानां क्रियाजन्यत्वेन 'अप्राप्तयोस्तु या प्राप्ति: सैव संयोग ईरित: । कीर्तितिस्त्रिविधस्त्वेष आद्योन्यतरकर्मज: । तथोभयक्रियाजन्यो भवेत्संयोगजोऽपर:' इत्यादिना संयोगमात्रस्य क्रियाजन्यत्वेन जन्यस्य च नित्यत्वाभावान्न तत्रातिव्याप्तिरिति । अनेकेति विशेषणानुपादाने एकसमवेते नित्ये च गगनपरिमाणादावतिव्याप्तिरिति तद्वारणायानेकेति विशेषणम् । तथासति गगनव्यक्तेरेकत्वेननानेकसमवेतत्वं तदीयपरिमाणे इति न तत्रातिव्याप्ति: ।

करने के लिये आप अंश तथा अंशी में भेद को मान कर के जीव तथा परमेश्वर में भेद मान लें और तब जीवगत दोष का निवारण परमेश्वर में करना चाहते हैं ? तब तो विशिष्टाद्वैतमत में ही आपका प्रवेश हो जाता है, और इस मत में प्रवेश होने से आप प्रतिवादी नहीं कहे जा सकते हैं। विशिष्टाद्वैत की यह परिभाषा है, इस मत में चेतन तथा अचेतन से विशिष्ट ईश्वर तत्व को ही ब्रह्म माना गया है। इस विशिष्ट ब्रह्म में चेतन सब विशेषण हैं और विशेषण विशिष्ट का अंश कहलाता है, जिस तरह दण्डी, इस विशिष्ट का दण्ड रूप विशेषण अंश होता है। इस तरह जीव ब्रह्म का अंश कहलाता है, और विशेषण से सर्वथा भिन्न कहलाता है जिस तरह दण्ड रूप विशेष पुरुष रूप विशेष्य से सर्वथा भिन्न है तथा तत्संयुक्त है, अत: जीव समुदाय ईश्वर से सर्वथा भिन्न है ऐसा सिद्ध होता है। यदि यादवाचार्य मतानुयायी लोग जीव को परमेश्वर से अत्यन्त भिन्न मानें और जीव को ब्रह्म का अंश मान लें तब तो वह भी विशिष्टाद्वैती ही कहलायेंगे। विशिष्टाद्वैत मत में जीव तथा परमेश्वर में स्वरूपत: एकता नहीं मानी जाती है। एतदतिरिक्त मतों में ही जीव ईश्वर में स्वरूपत: एकत्व माना गया है। इसलिये जीव तथा परमेश्वर में स्वरूपत: एकत्व होने से जीवगत दोष का परमेश्वर में भी संक्रमण अनिवार्य हो जाता है। यद्यपि '**तत्त्वमसि**' प्रभृति श्रुतियों का समन्वय करने के लिये विशिष्टाद्वैत मत में भी जीव ईश्वर में एकता मानी गई है, तथापि विशिष्टाद्वैत मत में शरीरात्मभाव सम्बन्धमूलक एकत्व को माना गया है। इसलिये जीवगत दोष का ईश्वर में संक्रमण नहीं होता है। प्रत्युत परमेश्वर में अनन्त कल्याण गुणत्व ही सिद्ध होता है, क्योंकि चेतनाचेतन

ॐ बाधकज्ञानोत्पादकानुपपत्ति: ॐ

अथ यदिदं ब्रह्मभिन्नं वृत्तिज्ञानात्मकं सर्वभेदबाधकं तत्वज्ञानं तस्य कारणं किमिति ? न च प्रमाणशेखरतत्त्वमस्यादिशास्त्रमेव तादृशतत्वज्ञानोत्पादकं कारणमितिवाच्यम् । शास्त्रस्य ब्रह्मभिन्नतयाऽविद्याजन्यत्वेन प्रपञ्चनिवर्तकतत्वज्ञानोत्पादकत्वासम्भवात् । न हि दोषदुष्टकारणजनितं ज्ञानं कस्यचित्साधनाय बाधनाय वा प्रभवति । तत्कस्यहेतो: ? दोषदुष्टकरण

समवेतत्वं नाम समवायसम्बन्धेन वृत्तिमत्वं, तत्त्वं द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषाणामेवनान्येषाम् । तत्र समवायेन वृत्तिमत्वं नदीयेत अपितु सम्बन्धमात्रेण वृत्तिमत्वे सतिनित्यत्वे सत्यनेकगतत्वं, तदानित्येस्वरूपसम्बन्धेनानेकवृत्तित्वमत्यन्ताभावेऽपि प्रकृतलक्षणं गतं भवेदित्यत्यन्ताभावेप्यतिव्याप्ति: स्यादिति समवायनिवेशोप्यावश्यक एवेति । एतादृशलक्षणलक्षिताजातिरिति नैयायिका: । परन्तु एतदीयपरिभाषामात्रपरिभाषिततत्वेन न सर्वतन्त्रसिद्धमिति, न वेदार्थविचारोपयुक्तम्। गवेतरावृत्तित्वेसतिसकलगोवृत्तिरूपातद्व्यावृत्तिलक्षणबौद्धाभिमतलक्षणापि न युक्ताजाति: । तस्या अभावरूपत्वात् । सिद्धान्तेभावरूपतया एवस्वीकृतत्वादित्यादिकंविभाव्यजगदाचार्य आह–

तथा परमेश्वर में शरीरात्मभाव सम्बन्ध के स्वीकार करने से यह सिद्ध होता है कि चेतनाचेतन पदार्थ समुदाय परमेश्वर का शरीर बन करके ईश्वर द्वारा धृत है। ईश्वर के नियन्त्रण में रहते हैं, एवं ईश्वर को मेरे द्वारा सुख हो इसलिये परमेश्वर का शेष बन करके रहते हैं। परमेश्वर चेतन तथा अचेतन पदार्थों की आत्मा हैं, उन सब को धारण करने वाले हैं नियामक हैं और सब के स्वामी हैं। जीव परमेश्वर शरीरात्मभाव सम्बन्ध मानने से परमेश्वर में प्रदर्शित क्रम से अनन्त कल्याण गुणवत्व की सिद्धि होती है। किसी भी प्रकार का दोष ईश्वर में नहीं जाता है। इस प्रकार से आचार्य पाद ने यादवादि मतों का निराकरण कर दिया।

'शुभमस्तु सर्व जगत:'

'**तत्त्वमसि**' इत्यादि श्रुति जीव ब्रह्म का अभेद प्रतिपादन करती है, तथा 'य: सर्वज्ञ:' इत्यादि श्रुति ईश्वर में सर्वज्ञत्व सत्य संकल्पवत्वादिक कल्याण गुण का प्रतिपादन कर के जीवेश में न सर्वथा अभेद ही है न वा सर्वथा भेद ही है, किन्तु आंशिक भेद तथा आंशिक अभेद का प्रतिपादन कर के जीवेश में भेदाभेद का प्रतिपादन करती है एसा जो यादव प्रकाशाचार्य का भेदाभेदवाद है उस भेदाभेदवाद का निराकरण करके जो लोग पदार्थ मात्र में भेदाभेद का समर्थन करते हैं, तादृश सार्वत्रिक भेदाभेद का

जन्यत्वेन साधनबाधनाक्षमत्वात् । नहि दुष्टकरणजनितं रज्जुसर्पादिकज्ञानं साधकं बाधकं वा भवति मिथ्यारूपत्वात् । तथैव प्रकृते आविद्यकशास्त्रजनितं तत्वज्ञानं कस्याचित् साधकं बाधकं वा न स्यात् । न च

अतः परिशेषादवयवसंस्थान इत्यादि । तस्मादवयवसंस्थानलक्षणरूपैव अर्थादाकारविशेषरूपैवजातिः । एकत्र एकस्याङ्गविषयमाकारविशेषमन्यविलक्षणं दृष्ट्वा गौरिति गौरित्येवं निश्चिनोति । अन्यत्रापि तमेवाकारविशेषं दृष्ट्वा निश्चिनोच्येव, अयम् गौरिति । तथा एकत्रस्थले कम्बूग्रीवादिमत्वलक्षणमाकारविशेषं पश्यन् अयं घट इति । यथा जानाति तथैव स्थलान्तरेऽपि तमाकारविशेषविषिष्टं दृष्ट्वा निश्चिनोत्ययमेव घटो न पट इति । तत आकारविशेषरूपैव जाति नत्वतिरिक्ता । 'आकृतिर्ग्रहणाजातिरिति' अभियुक्तोक्ते : । योऽपि असाधारणधर्मव्यतिरिक्तं जात्यात्मकं वस्तु समनुमन्यते, सोऽपि गोत्वादिजात्यभिव्यञ्जकशास्त्रादिमत्वं कम्बूग्रीवादिमत्वं च स्वीकरोत्येव तमन्तरेण जात्याभिव्यक्तेरनभ्युपगमात् । किञ्च गवादिपदशक्यत्वं व्यक्तौ जातौ वा ? संशये व्यक्तौशक्तिस्वीकारे व्यक्तीनामनेकत्वेन तद्भेदाच्छक्तिरप्यनेका स्यात्, अतो न व्यक्तौ शक्ति : ।

निराकरण करने के लिये आचार्य जी उपक्रम करते हैं-'**यादवप्रकाशाचार्याभिमत भेदाभेदेत्यादि ।**' यादवप्रकाशाचार्य का जो भेदाभेदवाद है अर्थात् जीव ब्रह्म में भेदाभेद है ऐसा जो मत है उसका निराकरण करने से सभी घटापटादिक पदार्थों में भेद रहता है, एतादृश सार्वत्रिकं भेदाभेदवाद का भी निराकरण हो जाता है ऐसा जानना चाहिये । (जिस तरह पार्थिव रूप का अभाव रहता है तथा जलीय तैजस रूप का अभाव होने से अर्थात् वायु में रूपविशेषाभाव कूट के रहने से वायु में रूप सामान्याभाव की सिद्धि होती है क्योंकि विशेषाभावकूट सामान्याभाव का साधक होता है । इसी तरह प्रकृत में जीवेश में भेदाभेद नहीं बनता है, एवं तत्तत्स्थल विशेष में जब भेदाभेद नहीं बनता है तो सामान्यरूप से भेदाभेद नहीं बन सकता है । इसलिये आचार्य जी ने सार्वत्रिक भेदाभेद का खण्डन करने का प्रयास किया है ।

क्यों भेदाभेद सर्वत्र नहीं बन सकता है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**यतो भेदाभेदयो लोके**' इत्यादि, इसलिये लोक में भेदाभेद परस्पर प्रतिद्वन्द्वी विरोधी रूप से प्रसिद्ध है, एक विरोधी पदार्थ जिसमें जिस समय में रहता है उस समय में उसी अधिकरण में उसका विरोधी पदार्थ का सहावस्थान नहीं होता है जिस तरह भूतल में जिस समय में घटाभाव रहता है उसी समय में घटाभाव का विरोधी घट का अवस्थान नहीं देखा जाता है, इसी तरह जिस अधिकरण में जिस काल में भेद रहेगा उसी अधिकरण में भेद का विरोधी अभेद नहीं रह सकता है । यदि कदाचित् विरोधी पदार्थ द्वय का एकत्र सहावस्थान मान लिया जाय तब तो लोक में प्रसिद्ध जो विरोध है उसका सर्वदा के लिये परित्याग

प्रथमस्वप्नज्ञानस्य तद्विरोधिस्वप्नादिकज्ञानेन बाधो भवतीति वाच्यम् । द्वितीयस्वप्नज्ञानस्य यदि स्वाप्निकमितिज्ञानं जायते तदा प्रमथमस्य बाधनासम्भवात् । प्रमज्ञानस्य तज्जनितभयादेश्च निवृत्तेरदर्शनात् । अपि च तत्वज्ञानं यन्निवर्तकं तस्य तथा ज्ञातुः शास्त्रस्य च ब्रह्मभिन्नत्वेऽपि यदि

नवा केवलजातौ शक्ति : कुतः ? जातेः पदशक्यत्वे शक्यतावच्छेदकं तदतिरिक्तं गोत्वत्वमेव तथा स्यात् । नतु गोत्वं स्वस्य स्वावच्छेदकत्वासंभवादिति, स्वं यदि स्वावच्छेदकं स्यात् तदा स्वभिन्नं स्यादिति । ततश्च गोत्वस्य शक्यत्वे गोत्वत्वमेव शक्यतावच्छेदकम् । गोत्वत्वं च गवेतरावृत्तित्वे सति सकलगोसमवेतत्वम् इतिशक्यतावच्छेदककुक्षौ व्यक्तीनामनुप्र-वेशाद्गौरवंस्यादिति गोत्वादिविशिष्टव्यक्तावेवशक्तिरितिन्यायमतम् । तत्र नैयायिकोप्या-कारविशिष्टे शक्ति वदन् आकारस्य शक्यत्वं मन्यते । तस्मादाकारादिरेव जात्यादिप्रकारः पदार्थस्येति । यद्यपि सास्नादीनामननुगतानां गवादिपदार्थानुगमत्वे गवादिव्यक्तीनामनुगम-कसास्नादीनां च स्वरूपतोऽधिकरणद्वारेण च परस्परं भेदस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तत्कथं 'सोऽयङ्गौ' रितिव्यवहारः स्यात् । न च सोऽयं घट इति वत्

हो जायगा । (अर्थात् जिस तरह एक ही वृक्ष में देशभेदावच्छेदेन कपि संयोग तथा तदभाव का अवस्थान होता है, उसी तरह प्रकृत में होगा ? ऐसा कहो तो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि विरुद्ध दो वस्तुओं का एक देश एक काल में युगपत् सहावस्थान बाधित है सहावस्थान ही तो विरोध है । वृक्ष में तो देशान्तर कालान्तर को अवच्छेदक बना कर के सामानाधिकरण्य व्यपदेश होता है । उस समय में वहां विरोध नहीं होता है । देशकाल का निवेश किया जाय तब तो तादृश कपि संयोग तथा तदभाव का भी विरोध होता ही है, तब उन दोनों में विरोध रहता है और सहावस्थान भी नहीं माना जाता है ।

यदि आप कहें कि व्याप्य धर्म से जिसमें भेद रहता है जैसे खण्डत्व मुण्डतत्व रूप से खण्ड मुण्ड व्यक्ति में परस्पर भेद है, उसी में व्यापक धर्म अर्थात् गोत्व जाति को लेकर उन दोनों खण्ड मुण्ड व्यक्तियों में '**अयं गौरयं गौः**' इत्याकारक अभेद भी देखने में आता है, तब जो आप कहते हैं भेदाभेद का सहावस्थान विरुद्ध है यह तो आप का कथन उचित नहीं है । यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि यहां भी तो एक वस्तु को एक देश तथा एक काल में सह संभव अभाव होता है, इस नियम के अनुसार निर्वाह नहीं हो सकता है । अर्थात् जाति के रूप से अभेद तथा व्यक्ति के रूप से भेद सिद्ध किया है यह बात जाति तथा व्यक्ति में भेदाभेद सिद्ध किया जा सकता है । यदि जाति व्यक्ति भिन्न भिन्न होवे तब '**अयं गौः**' इस व्यवहार के अनुसार जाति में अभेद और व्यक्ति में भेद सिद्ध होगा परन्तु एक व्यक्ति में दोनों की सिद्धि नहीं होगी । यदि जाति और व्यक्ति में अभेद मान लें तब तो जाति से अभिन्न खण्डादि व्यक्ति

बाध्यत्वमिति कथ्यते तदा प्रपञ्चनिवृत्तिरपि मिथ्यास्यादिति प्रपञ्चस्य सत्यत्वं केन निवारयितुं शक्येत । यथा कश्चित् स्वप्ने स्वेष्टस्यानिष्टं पश्यति, तज्ज्ञानस्य मिथ्यात्वात् पित्रादीनां स्यात् सत्यतैव भवतीतिवत् । किञ्च यदिदं प्रपञ्चमिथ्यात्वं तन्मिथ्या सत्यं वा यदि यदि प्रपञ्चमिथ्यात्वस्यमिथ्यात्वं

स्यात्, न तत्र जात्यैकत्वमादाय घटत्वजातेश्च सर्वघटादौ समानतयाऽवस्थानात् संभवेदपि सोयं घट इति व्यवहारः । भवन्मते तु, नियामकसास्नादीनां विभिन्नत्वात्, अर्थात् यादृशसास्नादिमत्त्वमेकस्यां गवि विद्यते, नहि तदेवसास्नादिकं गवान्तरे, गवान्तरे स्वरूपतोऽधिकरणद्वारेण च नियामकसास्नादीनां भेदादिति । तथापि यथा बौद्धमते प्रतिक्षणमुत्पादविनाशशीलानामपि प्रदीपद्वयशिखानां, तन्मते जातेरभावेन जात्याव्यक्तिरूपेणात्यन्तभिन्नानां स्वरूपस्यात्यन्त-सादृश्यमादायसायंकालिकदीपकलिका तथा निशावसानकालिकदीपकलिकायां 'सैवेयं दीपकलिके'ति व्यवहारोव्यक्तिभेदसत्वेऽपि भवति । न केवलमियं गतिर्वेदबाह्यमतेऽपितु सर्वमते भवति । तथैवव्यक्तिद्वये सास्नादीनामसाधारणधर्माणां परस्परं भेदे सत्यपि तादृशनियामकधर्मयोः

है तो मुण्डत्वादिक का भी सकल गो में समावेश होने से खण्ड में मुण्डत्व का तथा मुण्ड में खण्डत्व का भी समावेश हो जायगा। इत्यादिक अनेक दोष हो जाते हैं जाति को व्यक्ति के साथ अभेद मानने से। एवं जाति तथा व्यक्ति को भेदाभेद मानने से भी दोष हो जाते है, इसलिये सार्वत्रिक जो भेदाभेद बाद है वह प्रमाण पराहत है।

परस्पर विरोधी होने से भेदाभेद नहीं हो सकता है, इस तरह भेदाभेद का निराकरण किया था। परन्तु यादवानुयायियों ने भेदाभेद का समर्थन करने में चार हैतुओं को बतलाया हैं । उन चारों हेतुओं का खण्डन करने के लिये उपक्रम करते हैं **'यद्यपि यादवप्रकाशाचार्यै रित्यादि'**-यद्यपि यादवप्रकाशाचार्य ने जाति तथा व्यक्तियों में भेदाभेद की सिद्धि करने के लिये साधक रूप से चार हेतुओं का कथन किया हे, परन्तु यह बात युक्ति युक्त प्रतित नहीं होती है। वे चार हेतु कौन-कौन है ? इस बात का कथन करने के लिये कहते हैं **'तथा हीत्यादि'** इन चार हेतुओं में से प्रथम हेतु को बतलाते हैं **'यत्र प्रथम तो घटादीत्यादि'** जहां सर्वप्रथम **'अयं घटः'** यह घडा है, इस प्रकार से घटादि व्यक्तियों का दर्शन होता है, उस समय में घटत्व जाति तथा घटादिक व्यक्ति ये दोनों अभिन्न रूप से ही प्रतीयमान होते हैं। अर्थात् जाति व्यक्ति का भेद तो सभी व्यक्ति मानते ही हैं और उपर्युक्त प्रतीति से अभेद भी सिद्ध होता है अतः जाति व्यक्ति में भेदाभेद सिद्ध होता है । तथा दूसरा हेतु भेदाभेद का साधक है **'सहोपलम्भ'** अर्थात् एक ही काल में जाति तथा व्यक्ति का उपलंभ अर्थात् ज्ञान होता है, एक का ज्ञान होने पर ही द्वितीय

स्वीक्रियते तदा मिथ्यात्वमिथ्यात्वे प्रपञ्चस्य सत्यतैव स्यात् । अथ यदि प्रपञ्चमिथ्यात्वं सत्यं तदा मिथ्यात्वस्य सत्यत्वे पुनः प्रपञ्चस्य सत्यत्वमेवा-पततीति । न च मिथ्यात्वप्रयोजकं दृश्यत्वं तस्य प्रपञ्चे तदीयमिथ्यात्वे समानरूपेण विद्यमानत्वात् कथं जगतस्तान् मिथ्यात्वस्य सत्यतास्यादितिवाच्यम्

स्वरूपतोऽधिकरणतश्च भेदेसत्यपि अत्यन्तसादृश्यमादाय 'सोऽयं गौः सोऽयं दण्डवा' नित्यादिव्यवहारोनिराबाध एवेति । विशेषतोऽत्रत्यविचारः सूक्ष्मबुद्धिभिः स्वयमेव विधातव्यः । सत्यवसरे प्रपञ्च्यतेऽन्यत्रेतिदिक् ।

अयमेवोपवर्णितघटत्वादीत्यादि योऽयं घटादीनां पदार्थानां प्रकाररूपेण प्रतिपादितो जात्यादिस्तदन्यो वा तद्गतोऽसाधारणधर्मादिः स एव जात्यादिः प्रकारः घटादीनां पदार्थानां भेद इति कथितो भवति । तथा तादृशजात्याद्यात्मकभेदवत्वमेव घटादौ भिन्नत्वम् । अर्थात् घटः स्वेतरेभ्योभिद्यते घटत्वादित्यादिस्वेतरभेदानुमाने घटत्वमेव हेतुर्भवति, तदिदं घटत्वादिकमेव भेदः । यतो 'घटोनपटः' इत्यत्र घटस्यभेदः पटे भाति अर्थात् घटे तादृशः कश्चित् पदार्थो विद्यते यो पटे नास्ति, एतादृशश्चधर्मो घटत्वादिरेव । पटादौ घटभेदो

का ज्ञान होता है, द्वितिय चन्द्रमा की तरह, जब प्रथम चन्द्रमा का ज्ञान होता है तब ही द्वितीय चन्द्रमा का भी ज्ञान होता है। और जब प्रथम का ज्ञान नहीं होता है तब दूसरे का भी ज्ञान नहीं होता है। इस तरह जाति व्यक्ति का सहोपलंभ होने से दोनों में अभेद सिद्ध होता है, इसी सहोपलंभ हेतु से विज्ञानवादी योगाचार ने ज्ञान तथा नीलादी ज्ञेयों में अभेद का साधन किया है । **'सहोपलंभनियमात्, अभेदोनीलतद्धियोः । भेदश्चभ्रान्तिविज्ञानैर्दृश्येतेन्दाविवाद्वये ।'** अर्थात्-ज्ञानज्ञेय में सहोपलंभ का नेयत्व होने से नीलादिक विषय तथा ज्ञान भ्रान्त पुरुष को होता है । वस्तुतः उन दोनों चन्द्रमा में सहोवलंभ होने से एकत्व है, उसी तरह ज्ञेय ज्ञान में अभेद स्वाभाविक है और भेद तो दोष जनित है। इसी तरह प्रकृत में सहोपलंभ होने से जाति व्यक्ति में अभेद है। इस तरह जाति व्यक्ति का अभेद साधक यह द्वितीय हेतु है।

जाति व्यक्ति में अभेद का साधक तीसरा हेतु यह है-जहां विभिन्न दो पदार्थों में से एक पदार्थ विशेषणरूप से भासित होता है तथा दूसरा पदार्थ विशेष्य रूप से भासित होता है, उस स्थल में विशेषण विशेष्य का सम्बन्ध बोधक मतुप् प्रभृति प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। जिस तरह 'दण्डवान्' 'यह दण्डवाला है' यहां दण्ड है विशेषण और पुरुष है विशेष्य। इन दोनों के संयोगरूप सबंध का प्रदर्शन कराने के लिये मतुप् प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है प्रकृत में दण्डवान् की तरह **'गोत्ववानयम्'** ऐसा प्रयोग तो नहीं किया जाता है, किन्तु 'अयङ्गौः' एतादृश प्रयोग होता है, किन्तु संयोगादि सम्बन्ध

अभावाभावस्य प्रतियोगिस्वरूपत्वमिति नियमेन मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वे प्रपञ्चसत्यताया अनपायादिति नाविद्यापरिकल्पितशास्त्रमपि तत्वज्ञानोत्पादनायालम् ।

भवति, घटभेदस्य चाभावो न पटादौ यतः पटादिसर्वपदार्थेषु घटभेदस्यैव विद्यमानत्वात्, किन्तु घटभेदस्य पुनरभावो घटे एवागच्छति तथा घटत्वमपि घटे एव भवति । अन्योन्याभावाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्वरूपत्वनियमात् । अतः पटादौ विद्यमानो घटप्रतियोगिकोभेदः पटत्वादिरूपः । तथा घटादौ विद्यमानः पटादिप्रतियोगिको भेदो घटत्वादिरूप एवेति । एतादृशो भेद एव घटो भिन्न इत्यादिव्यवहारे हेतुर्भवतीति । यथायं जात्यादिरूपो वैधर्म्यात्मकोभेदः स्वकीयमाश्रयं, तदितरेभ्यो भिनत्ति तथा स्वात्मानमपि स्वाश्रयाद्विभिद्यतेनापिसह स्वस्य भेदव्यवहारं सम्पादयति । अन्यथा स्वाश्रयेण सह भेदेऽभेदे भावाभावयोरेकत्वापत्तिः । भेदे तु सभेदो भेदान्तरेण स्वकीयभेदव्यवहारं करिष्यति । एवमन्योऽपि भेदान्तरेण सहितस्तथा करिष्यतीति । भेदानवस्थास्यादित्यादिकमन्यत्र द्रष्टव्यम् । अयं च जात्यादिरूपो भेदः स्वपरनिर्वाहक इति कथितो भवति । यथा स्वाश्रयं स्वेतरेभ्यो

बोधक प्रत्यय का उल्लेख तो नहीं है और सम्बन्ध तो अयुत सिद्ध में होता है, अतः प्रकृत में अर्थात् जाति व्यक्ति के विषय में अर्थत अभेद सिद्ध होता है। यह जाति व्यक्ति में अभेद साधक तृतीय हेतु है। और चतुर्थ हेतु यह है कि–'**अयमेको गौः**' 'यह एक गौ है' इस प्रतीति से गो तथा गोत्व में अभेद की सिद्धि होती है। अन्यथा विशेषण निरर्थक हो जाता अतः एकत्व विशेषण की अन्यथाऽनुपपत्ति होने से गो तथा गोत्व में एकत्व अर्थात् अभेद सिद्ध होता है। इस प्रकार चार हेतुओं के द्वारा जाति व्यक्ति में अभेद को सिद्ध किया गया। इस तरह से जाति व्यक्ति में अभेद साधन करने के लिये उपन्यस्यमान जो चार हेतु हैं, उनके हेत्वाभास होने से साध्य का साधकत्व नहीं हो सकता है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं कि–'**तत्र प्रथमहेतोरित्यादि**' इन चार हेतुओं में से जो प्रथम हेतु है उस प्रथम हेतु का निराकरण करते हैं–'**प्रथमदर्शने**' इत्यादि, प्रथमतः गवादि व्यक्ति का जो दर्शन होता है '**अयं गौः**' 'यह गो है' इत्याकारक प्रतीति में गोत्व तथा गोत्व का विशेषण तथा विशेष्य रूप से ही भान होता है। जो विशेषण होता है, उस को प्रकार कहते हैं, और जो विशेष्य होता है उस को प्रकारी कहते है, और प्रकार प्रकारी में भेद होता है। जिस तरह 'दण्ड' इस प्रतीति में दण्ड प्रकार है और पुरुष रूप प्रकारी में भेद होता है, तो इसलिये प्रथम हेतु से अभेद की सिद्धि नहीं होती है किन्तु अभेद का विरोधी जो भेद है तादृश भेद ही सिद्ध होता है। इसलिये प्रथम हेतु अभेद का साधक नहीं हो सकता है अपितु हेत्वाभास है। द्वितीय सहोपलंभ है–जहां एक के ग्रहण होने से दूसरे का भी ग्रहण होता है उसे सहोपलंभ कहते है। यह भेदाभेद

॥ अबाधितविषयत्वाद्ब्रह्मसत्यमितिवादनिराकरणम् ॥

ननु यद्यपि दोषलक्षणाविद्यापरिकल्पितत्वात् शास्त्रमिथ्यात्वं तथापि तत् सदद्वितीयं ब्रह्मबोधयत्येव तत्र ब्रह्मरूपविषयस्याबाधितत्वादितिचेन्न । सर्वं शून्यं सर्वं क्षणिकमित्यादिवाक्येन ब्रह्मणोऽपि बाधात् । न च तद्वाक्यं भ्रममूलकमिति वाच्यम् । सदद्वितीयमितिवाक्यस्यापि तथाविधत्वात् । पश्चाद् बाधादर्शनं समानमेवेति । ऐतन वादानधिका-

भिनत्ति तथा स्वात्मानमपि स्वेतरेभ्यो व्यावर्तयत्येवान्यथा सर्वाभेदप्रसङ्गस्य दुर्वारता स्यादिति । भेदस्य स्वपरनिर्वाहकत्वेऽनुरूपदृष्टान्तमाह स्वप्रकाशज्ञानवदिति यथा 'सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो ज्ञानम्' इति नियमात्, घटपटादिसर्वोऽपि व्यवहारस्तथाहारविहारादिकश्चज्ञानेन सम्पादितो भवति तथा ज्ञानंव्यवहारोऽपि ज्ञानेनैव व्यवहृतो भवति । अन्यथा सर्वव्यवहारसम्पादकज्ञानस्य व्यवहारः केन भवतीति प्रश्ने यदि ज्ञानव्यवहारस्य ज्ञानेतरे केनचिज्जडेन स्वीकारे जडस्य स्वतोऽन्धत्वेनानन्धज्ञानव्यवहाराप्रयोजकत्वात् । नापि द्वितीयज्ञानेन प्रथमज्ञानस्य व्यवस्था तथा सति द्वितीयस्य तृतीयेन तृतीयस्य चतुर्थेनेत्यादिक्रमपरम्परानुसरणेऽनवस्था प्रसङ्गात् न च चरमज्ञानस्य स्वपरनिर्वाहकत्वं

साधक होता है। जैसे एक चन्द्रमा के ग्रहण होने पर ही दूसरे चन्द्र का भी ग्रहण होता है एक के ग्रहणाभाव में दूसरे का ग्रहण नहीं होता है। अतः यह भी हेत्वाभास होने से प्रकृत का साधक नहीं हो सकता है क्योंकि सहोपलंभ का अवस्थान साथ में ही होता है अतः सह प्रतीति होने से वह उपायोपेयता है अभेद नहीं। तथैव तृतीय हेतु भी हेत्वाभास ही है। जैसे 'दण्डवान्' यहां पर मतुप्प्रत्यय के होने से विशेषण विशेष्य रूप से अवभासित होता है अतः गो तथा गोत्व में अभेद है यह कहनां ठीक नहीं क्योंकि '**अत्रायं गौः**' इस स्थल में मतुप्प्रत्यय के अभाव में भी भेद की प्रतीति होती है अतः यह तीसरा भी हेत्वाभास होने से इष्टसाधन में अक्षम है।

इसी प्रकार चतुर्थ हेतु भी हेतु नहीं है किन्तु हेत्वाभास है–तथा हि 'यह एक गौ है' '**अयमेको गौरिह तिष्ठति**' इस कथन से गोत्व जाति तथा गौ व्यक्ति में एकत्व अर्थात् अभेद की सिद्धि होती है। परन्तु यह हेतु भी हेत्वाभास है, क्योंकि 'यह गौ एक है' इस कथन से जाजि तथा व्यक्ति में एकत्व की सिद्धि नहीं होती है। किन्तु गो व्यक्ति निष्ठ अनेकत्व का निराकरण होता है, अर्थात् यहां अनेक गौ नहीं है किन्तु एक ही गौ है। अतः पूर्वोक्त कथन से जाति व्यक्ति में एकत्व सिद्ध नहीं होता है, किन्तु अनेकत्व मात्र का निराकरण सिद्ध होता है। इस प्रकार से अभेद साधक चारों हेतुओं को हेत्वाभास सिद्ध कर के जाति व्यक्ति गत अभेद का निराकरण किया गया।

यादवप्रकाशाचार्य के मत में भेदाभेद वाद अभिमत है। सभी पदार्थों में भेदाभेद ही होता है,

रत्वमित्यपि सूचितम् ।

ꗃ प्रत्यक्षप्राबल्यविचारोऽद्वैतमतोपसंहारश्च ꗃ

किञ्च सर्वश्रेष्ठज्येष्ठघटादिसत्वग्राहकप्रत्यक्षप्रमाणेन घटादिवस्तुनः सत्वसिद्धौ कथं प्रत्यक्षस्य बाध्यत्वं तत्सिद्धप्रपञ्चस्य मिथ्यात्वं प्रज्ञाप्यते ।

मन्तव्यम् । तदा प्रथमस्यैव तदिष्यताम् 'अन्तरेण विवाहः स्यादादावेवकुतो न हि' इति न्यायादिति ।

न च ज्ञानस्य स्वप्रकाशकत्वे आत्माश्रयदोषः स्यादितिवाच्यम् । वस्तूनां भुवि विचित्रस्वभावदर्शनेन तथा संभवात् । यथा सर्पः स्वयमेव स्वात्मानं वेष्टयति, नान्यस्तथा कर्तुं शक्नोति, न चात्माश्रयः स्वभाववैचित्र्यात् तथैव प्रकृते ज्ञाने जात्यादावपि स्वपरनिर्वाहकत्वमिति सर्वसम्मतं भवतीति ।

ननु प्रत्यक्षेण घटादिवस्तुग्रहणे सति तद्गतगुणादिकं पटादिभेदादिरपि गृगीत एव भवतीति प्रत्यक्षविरोधात्, नाद्वैतश्रुतिः सर्वस्याद्वैतं विधातुमुत्सहते इति यन्मतं तन्न साधुः,

---

न तु एकान्ततः भेद है नवा एकान्ततः अभेद ही होता है। वे लोग जाति तथा व्यक्ति में भी भेदाभेद मानते हैं। इससे पूर्व में इस मत का निराकरण किया गाय है। तथा प्रसंग से आकार विशेष को जात्यादि प्रकार रूप से भी व्यवस्थित किया गया है इसके उपर विस्तृत विचार करने के लिये उपक्रम करते हैं '**ननु यदिदं गोत्व घटात्वादिकमित्यादि**' जो यह गोत्व घटत्वादिक को जाति रूप कहा जाता है। जिस जाति का अपने व्यक्ति के साथ भेदाभेद का निराकरण किया है। उसका स्वरूप कैसा है अर्थात् जाति किसको कहते हैं तथा उस जाति का लक्षण क्या है और उसमें प्रमाण क्या है ? ऐसी जिज्ञास होती ह। क्या नैयायिकों का अभिमत जो-जो नित्य हो तथा अनेक में समवाय सम्बन्ध से रहने वाला हो उसको जाति कहते हैं (इस लक्षण में '**नित्यत्वे सति**' यह विशेषण नहीं दिया जाय तब अनित्य तथा अनेक में समवाय संबन्ध से रहनेवाला जो संयोगादिक द्विष्ठ गुण है उसमें अतिव्याप्ति हो जायगी । तादृश अतिव्याप्ति का वारण करने के लिये नित्यत्व विशेषण है। संयोग किया जन्य होता है इसलिये नित्य नहीं है। एवं इस लक्षण में अनेक पद न दिया जाय तब आकाश परिमाण में अतिव्याप्ति हो जायगी क्योंकि गगन परिमाण नित्य है तथा अनेकत्व विशेषण देने से अतिव्याप्ति नहीं होती है क्योंकि गगन परिमाण एक वृत्ती है अनेक वृत्ती नहीं है। एवं समवाय सम्बन्ध से वृत्ति मत्व न कहें तब स्वरूप सम्बन्ध से वृत्तिमान् अत्यन्ताभाव में अतिव्याप्ति हो जायगी, क्योंकि नित्य होकर के अनेक में स्वरूप सम्बन्ध से अत्यन्ताभाव रहता है, अतः समवेतत्व विशेषण देने से असमवेत अतिव्याप्ति नहीं होती है

न च चन्द्राल्पताग्राहकप्रत्यक्षस्य चन्द्रगतात्यधिकपरिमाणग्राहकागमेन बाधो भवति । प्रत्यक्षस्य तत्र दूरत्वादिदोषग्रस्तत्वादितिवाच्यम् । प्रत्यक्षमात्रेऽनुगत-दोषस्य वक्तुमशक्यत्वात् । न चानादिभेदवासनैवानुगतो दोष इति वाच्यम् तादृशदोषस्यागमेऽपि सत्वेन शास्त्रस्य प्रत्यक्षबाधकत्वासम्भवात् । यत

यतः प्रत्यक्षेण योसौभेदो गृहीतो भवति, स किं स्वरूपभेदः, अन्योन्याभावात्मकोभेदः, वैधर्म्यात्मकः, पृथगत्वादिरूपो वा ? तत्र न प्रथमः पक्षः यतः स्वरूपभेदः स च प्रतियोगिसापेक्षः 'घटाद्भिन्नः पटः' इत्यत्र घटप्रतियोगिकोभेदः पटस्वरूपः तथा पटप्रतियोगिको भेदो घटस्वरूप इत्युभयोरुभयस्वरूपे संनिवेशात्, यद्भेदग्राहि घटाद्भिन्नः पट इति प्रत्यक्षं तत् न तयोर्भेदं प्रतिपादयति अपितु घटपटयोरेकत्वमेव विदधाति, यत उभया रुभयस्वरूपे समाविषष्टत्वादिति ।

न वा द्वितीयः पक्षः ? यतो घटान्योन्याभाववान् पट इत्येव प्रतीतिर्भवति । अत्र प्रतियोगितासम्बन्धेन घटोऽन्योन्यावेव प्रविशति स च घटविशिष्टोऽन्योन्याभावः स्वरूपसम्बन्धेन पटे प्रविशतीति घटपटयोरन्योन्याभावप्रदर्शकं प्रत्यक्षं परम्परया घटं पटात्मन्येव प्रवेशयतीति घटपटयोरेकत्वमेवापादयतीति । तस्मान्न घटान्योन्याभाववान्

)यह नैयायिकाभिमत जाति का लक्षण है, ईदृश जाति अभिमत है । अथवा बौद्धाभिमत-अतत् व्यावृत्तिरूप जाति है ? अर्थात् '**तदभिन्न भिन्नत्वम्**' तत्पद से गो व्यक्ति का ग्रहण कीजिये, उस गो से भिन्न है, गो से इतर सकल जगत् तादृश हो भिन्न जगत् से भिन्न है पुनः वही गोव्यक्ति और गोत्व भी गोभिन्न में नहीं रह कर के केवल गो व्यक्ति में ही रहता है तो अतद्व्यावृत्तिरूप गोत्व हुआ वह गोत्व ही जाति है, इसी को बौद्ध लोग अपोहरूप धर्म भी कहते हैं। स्वतन्त्र रूप से-ये लोग जाति को नहीं मानते हैं। जाति के विषय में इन बौद्धों का कथन है कि-'**न याति न च तत्रासीन्नचोत्पन्नं न चांशवत् । जहाति पूर्वं नाधारो अहो व्यसनसंस्थितिः**' इति । इस की व्याख्या को वैशेषिक सूत्रोपरकार के जाति प्रकरण में देखिये, तो क्या एतादृश जाति का स्वरूप है ।

अथवा संस्थान विशेष विशेष रूप ही जाति है अर्थात् सास्नादिरूप जो आकार विशेष है तद्रूप ही जाति है । सकल गो में अनुगत वृत्ति तथा गो से इतर में नहीं रहने वाला जो सास्नादिक अवयव संस्थान है क्या ? तद्रूप ही जाति है, जो कि गवादि पदार्थों में प्रकाररूप से भासित होने वाली वस्तु है। इस प्रकार से जाति के विषय में संशय होता है।

एतादृश संशय के बाद इतर मत का निराकरण करके स्वमत का प्रदर्शन करने के लिये

उभयो: समानबलवत्तयाप्रतिरोधासम्भवात्। न्यूनाधिकबलभावे एव बाधात्, न तु समानवत्वे तथेति । किञ्च प्रत्यक्षं घटादिरूपस्पर्शादिपदार्थग्राहकं शास्त्रं तु प्रत्यक्षाप्राप्तस्वर्गापूर्वसत्यकामत्वादिविषयस्य ग्राहकमितिप्रत्यक्षा-गमयोर्विभिन्नवस्तुग्राहकतया न भवति बाध्यबाधकभाव:, नहि भूतले

पट इति प्रत्यक्षं घटपटयोर्भेदंदर्शयति। यद्यप्यत्र घटनिष्ठतादात्म्यस्य पटेप्रतिषेध एवानुभविक इति तादात्म्यप्रतिषेधेनार्थादेवभेदप्रतिपादनम् । तथाप्युपर्युक्तरीत्या घटपटयोरेकत्वस्यैव समर्पणान्न द्वितीय: पक्ष: ।

नवा वैधर्म्यात्मकोभेद इति तृतीयपक्ष: । यत: 'घटपटौभिन्नौ' इत्यत्र घटे वैधर्म्यघटत्वमेव पटे तत् पटत्वरूपं तदेवभेद: । तत्रयोसौ वैधर्म्यात्मकोभेद: स घटाद्भिन्नोऽभिन्नो वा ? यदिभिन्नस्तदाभिन्ने घटे वैधर्म्यात्मको भेदस्तिष्ठतीत्यर्थ: । तत्रोद्देश्यतावच्छेदकतयाविध्यभेदो विधेयरूपभेदात् यदि अभिन्नस्तदा आत्माश्रय: । यदि भिन्नस्तदा उद्देश्यतावच्छेदकीभूतोभेदो यो घटे आगच्छति तत: घटे भेदान्तरो वाच्य:, इत्यादिक्रमेणानवस्थानात्। स्वीकृतायामनवस्थायां पूर्वभेदस्य विलोप: । उत्तरोत्तरभेदागमने पूर्वपूर्वभेदस्य विलोपात् पूर्वभेदकार्यस्योत्तरोत्तरेणैव सम्पादनात् ।

जगदाचार्यजी उपक्रम करते हैं-इसमें भी प्रथमत: न्यायमत का निराकरण करने के लिये कहते हैं-'**तत्र नाद्य:**' इत्यादि। जाति के विषय में उपस्थापित जो अनेक मत हैं उन में से प्रथमत: अर्थात् नैयायिक का मत ठीक नहीं है क्योंकि वह जो नित्यत्वे सत्यनेक समवेतत्व घटित जाति का लक्षण है, वह समवाय से घटित है और विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में समवाय का स्वीकार नहीं किया गया है, इस स्थिति में समवाय का उपर्युक्त जाति लक्षण ठीक नहीं होता है, इस लिये नैयायिकाभिमत जाति का स्वीकार करना ठीक नहीं होता है।

न वा बौद्धाभिमत अतद्व्यावृत्तिरूप जाति लक्षण भी ठीक है क्योंकि-जात्यादिक जो प्रकार हैं वे समभावरूप से प्रतीयमान होते हैं, और यह जो अतद्व्या वृत्ति है वह तो अभावरूप है क्योंकि-तद्भिन्न भिन्नत्व रूप ही तो अतद्व्यावृत्ति है तो इसका तो अभाव में अन्तर्भाव होता है, यह भावरूप नहीं है, और जब भावरूप नहीं है तब भावत्व व्याप्य द्रव्यगुणादिरूप होना तो सर्वथा असंभवित है। जहां व्यापक नहीं रहता है उस स्थल में व्याप्य का भी अवस्थान नहीं होता है। यथा जलादिक में जब वह्नि नहीं रहती है तो उस जलादिक अधिकरण में वह्नि का अभाव होने से धूम का अभाव भी अर्थत सिद्ध हो जाता है। इसी तरह प्रकृत में जब अतद्व्यावृत्तिभाव नहीं है तब वह जात्यादि प्रकार किस तरह हो

घटसत्वग्राहकप्रत्यक्षस्य जलाद्यधिकरणतदभावग्राहकप्रत्यक्षेण बाध: कुत: ? उभयोर्विभिन्नविषयत्वात्। तथैव प्रकृते विभिन्नविषयकयोरागमप्रत्यक्षयोर्न बाध्यबाधकभाव: ।

न च सर्वेभेदा एकदैव धर्मिणि प्रविशन्तीति, तदा अन्योन्यकलहस्यासमाधेयत्वात् सर्वेऽपि आगन्तुका एवेति क उद्देश्यतावच्छेदक: स्यात् कश्चविधेय: स्यात्। नहि आगन्तुक आगन्तुकं व्यवस्थापयति । एककालोपस्थितातिथिद्वयवदिति । न चानन्तभेदप्रवाहे प्रमाणमपि विद्यते इति । तस्मादनवस्था स्वीकर्तॄणां प्रागलोपोऽविनिगम्यत्वप्रमा-णापगमाख्यस्त्रिदोष: सर्वथैवत्रिदोषवदसमाधेय इति न वैधर्म्यात्मको भेद: । अतएव न पृथगत्वरूपोऽपि तत्रापि भिन्ने प्रविशति अभिन्ने वा पृथक्त्वात्मको भेदोर्धर्मिणि प्रविशतीति दोषस्यासमाधेयत्वादित्यादिपरपक्षापादितदोषमाकल्प्यतदुद्धर्तुमाह अतएव भेदो न प्रत्यक्षग्राह्य: किन्तु प्रत्यक्षं सन्मात्रं गृह्णातीतिनिरस्तमितीति । अतएवाकारविशेषलक्षणजा-त्यादिविशेषाणां समर्थनादेव, तथाधर्मविशिष्टधर्मिण एव प्रत्यक्षादिप्रमाणेन ग्रहणं भवतीति कथनेनाद्वैतमतं प्रतिक्षिप्तं भवतीतिसंक्षेप: ।

सकेगा, और प्रकार तो स्थल विशेष में द्रव्य गुणादिक सब होते हैं।

इसलिये अतद्व्यावृत्ति के जाति रूप नहीं कह सकते हैं। यद्यपि गोभेद भेदरूप अतद्व्यावृत्ति गोमात्र में रहती है और गोत्व भी गोमात्रवृत्ति है तथापि समनियत होने से दोनों में एकत्व का यथाकथंचित् व्यवहार किया जाता है परन्तु दोनों का अवच्छेदक रूप भिन्न भिन्न होता है, एक जगह तो अवच्छेदक रूप अभावत्व है और द्वितीय में अवच्छेदकरूप भाव होता है। जिस तरह घट भी भूतल में रहता है तथा घटाभावाभाव भी भूतल में ही रहता है, परन्तु संयोग सम्बन्ध से तथा घटत्व रूप से भूतल में घटाधिकरणता की प्रतीति होती है, तथा स्वरूप सम्बन्ध से एवं घटाभावाभावत्व रूप से घटाभाव का भूतल में अधिकरणता की प्रतीति होती है।

इसलिये अतद्व्यावृत्ति को जाति रूप मानें यह ठीक नहीं है। तब जाति का व्यवहार किस में किस तरह से होता है ? इस जिज्ञासा के उत्तर में कहते हैं-'**अत: परिशेषादवयव संस्थानमित्यादि**' इसलिये अर्थात् इतर दर्शनानुयायियों का जाति के विषय में जो परिभाषा है वह परिभाषा मात्र है, इसलिये अवयव संस्थान ही जाति का व्यवहार विषय है, अर्थात् सकल गो में अनुगत तथा गो से इतर में अपरिदृश्यमान जो आकार विशेष है '**सास्ना तु गलकंबल:**' गला में लम्बायमान जो आकार विशेष है वह गो से इतर में उपलब्ध नहीं होता है और सकल गो में ही उपलभ्यमान होता है, इसलिये एतादृश अवयव संस्थान लक्षण आकार विशेष ही '**गौरयम्**' यह गौ है इस व्यवहार में कारण है। (अब यहां

किञ्च भवदभिमतातिप्रबलस्य शास्त्रस्य स्वस्वरूपसिद्धिरपि श्रावणप्रत्यक्षाधीनेति प्रत्यक्षमुपजीव्यं शास्त्रं तूपजीवकमिति । उपजीव्योपजीवकयोर्विरोधे उपजीव्यस्यैव प्राबल्यं दौर्बल्यं चोपजीवकस्येति। उपजीव्येन प्रत्यक्षेण शास्त्रस्यैवस्वविषये बाधो नतूपजीवकेन शात्रेण

यादवप्रकाशाचार्यसम्मतभेदाभेदखण्डनावसरे प्रसङ्गागतपरमताभिजातिलक्षणं निरस्य स्वमते पदार्थगतासाधारणधर्मस्यैव जातिरूपतामुदाजहार । तदनु घटकश्रुति-भेदश्रुत्योर्विरोधे विद्यमानेऽभेदश्रुतेरवरोधः कथं न स्यात् ? अवरोधे चाभेदबोधिका-नामप्रामाण्यमापततीतिशङ्कां निरसितुं तादृशश्रुत्योरविरोधमुखेनाभेदप्रतिपादिकानां तत्त्वमस्यादिश्रुतीनामर्थान् निर्णेतुं तत्त्वमोर्मुख्यया वृत्त्या च सामानाधिकरण्य सम्पादयितुमनेकमहर्षिवचनप्रदर्शनोपहारव्याजेनाचार्योपक्रमते-'ननु घटक श्रुतीनामित्यादि यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादिकाण्वशाखीयमिदं वचनम् । अस्यार्थः यः सर्वजगदभिन्नो-पादानकारणभूतः, पृथिव्याम्-सर्वचराचराधिष्ठानभूतायां स्वभावतो जड़भूतायामतिष्ठन्-तदन्तः प्रविष्टः सन् पृथिव्यन्तरे विद्यमान इत्यर्थः । 'पृथिव्या अन्तरः-न केवलं पृथिव्या

यह प्रश्न होता है कि जब आपने जाति के विषय में जितने पक्षों को उपस्थित किया उन सब पक्षों का तो आपने-ये सब पक्ष अयुक्त हैं ऐसा ठहरा दिया तब-आखिर **'अयं गौरयं गौः'** इत्यादि प्रतीति सिद्ध जो गोत्व जाति है वह कौन पदार्थ है ? इस विषय में विशिष्टाद्वैत बादी महापुरुष लोग कहते हैं कि-जोधर्म प्रत्येक गवादि व्यक्तियों में समान रूप से रहता हो तथा गवादिव्यक्ति से इतर व्यक्तियों में न रहता हो, उसी को गोत्व घटात्वादि जाति कहते हैं किन्तु तदतिरिक्त कोई गोत्व घटत्वादिक जाति नहीं है। जैसे सभी गो व्यक्तियों में सास्ना-गलकंबल इत्यादि अवयवों का विलक्षण संनिवेश तथा घट सें कंबू ग्रीवादिमत्व लक्षण अवयवों का संनिवेश प्रायः एक प्रकार का ही रहता है। (यद्यपि सास्नादि कों में दीर्घत्व ह्रस्वत्वादिक भेद प्रत्यक्षोपलब्ध है तथापि आकार विशेष में कोई भेद नहीं होता है किन्तु अवयव संस्थान तो एक समान ही रहता है।) और यह जो सास्नादि रूप अवयव संनिवेश है वह गवादि व्यक्ति को छोड़ करके कहीं अन्यत्र नहीं पाया जाता है। अत एव यत् किञ्चित् गोका सादृश्य को लेकर के **'यथा गौस्तथा गवयः'** ऐसा व्यवहार होता है, परन्तु इसमें भी गवय में सास्ना नहीं होता है किन्तु तदितर गो सादृश्य को लेकर के व्यवहार होता है क्योंकि सादृश्य भी आखिर भेद घटित होता है, इसलिये सास्ना कंबूग्रीवादि मत्वरूप जो असाधारण धर्म है, वहीं गोत्व घटत्व जाति है तदितर कोई गोत्व जाति नहीं है।

नहीं कहो कि-आप जो कहते हैं कि असाधारण सास्नादि धर्म ही जाति है तदितर कोई जाति

कारणस्य प्रत्यक्षस्य बाधः । तदेवमसारतर्कोपस्थापितमद्वैतमतं न कथमप्यादेयं श्रेयस्कामैरपित्वनादेयमेवेतिदिक् ।

प्रकृते भास्कराचार्याः

भास्कराचार्योहि द्वैताद्वैतसिद्धान्तवादी स च देवश्रुतिस्तथाऽभे-

उपरिभागे एव तिष्ठति किन्तु तस्या मध्यभागेऽन्तर्भागेप्यन्तरेऽवस्थितः।'यं पृथिवी न वेद' स्वकीयाभ्यन्तरे विद्यमानमपि परमात्मानं पृथिवी न विजानाति यन्ममान्तरे कश्छिन्निवासं करोति स ईदृश इति नो विजानाति पृथिवीति । 'यस्य पृथिवी शरीरमिति । यस्य सकलकारणकारणस्य भगवतोरामस्य परिदृश्यमानेयं पृथिवी सकलब्रह्माण्डमिति 'शरीरं' शरीरवच्छरीरं शेषभूतम्, यथा जीवाख्यस्य प्रकारभूतमिदं भोगाधिष्ठानं तथैव परमात्मनः प्रकाररूपैव पृथिवीत्यर्थः 'यः पृथिवीमन्तरोयमयति' पृथिव्या नियामको यः । न केवलं भगवान् पृथिव्यां स्थितः तस्यावयवरूपा च पृथिवी किन्तु तस्यानियन्त्रणमपि करोति, भगवतानियन्त्रितेयं पृथिवी स्वमर्यादया कदापिच्युता न भवति न वा स्वस्थानादूर्ध्वं नीचैर्वा गच्छति। भगवन्नियन्तृता तु सदैव स्थाने एव स्थिता भवति। तेनाचलेयं सर्वदा चलनक्रिया विवर्जितैवावतिष्ठते । तदाहुरानन्दभाष्यकाराः 'विश्वं जातं यतोऽद्धा

नहीं है, ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि **'घटत्वं जातिः उपाधि- भिन्नसामान्यधर्मत्वात् सत्तावत्'** 'घटत्वादिक जाति है, उपाधि भिन्न सामान्य धर्म होने से' इस अनुमान से प्रत्यक्षसिद्ध घटत्वादिक में जातित्व की सिद्धि होती है ? ऐसा कहना ठीक नहीं उपर्युक्त अनुमान से पूर्व में उभयमत से जातित्व के सिद्ध नहीं होने से पूर्वोक्त अनुमान में अप्रसिद्ध साध्य विशेषणत्व रूप दोष होने से यह अनुमानाभास है तो इस अनुमान से असाधारण धर्मेतर जाति की सिद्धि नहीं हो सकती है, किन्तु सास्नादि असाधारण धर्म ही जाति व्यवहार में कारण है इसी प्रकार अन्य जाति के विषय में भी समझना चाहिये। यह जो पूर्व कथित सास्नादिक असाधारण लक्षण गोत्वादिक जातिरूप से कहे गये हैं ये सब प्रकार विशेषण हैं ये सब गोव्यक्तियों के प्रति विशेषण रूप से सर्वदा गवादि व्यक्ति में रहते हैं क्योंकि अपृथक् सिद्ध जो विशेषण होते हैं वे विशेष्य को छोड़ करके नहीं रहते हैं ऐसा इन का नियम है। यथा रूपादिक जो गुण हैं वे कभी भी घटादि प्रकारी को छोड करके अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते हैं, और जों विशेषण अयुतसिद्ध होते हैं वे कदाचित् विशेष्य को छोड़ करके भी उपलब्ध होते है, यथा दण्डी में दण्डरूप जो विशेषण है वह पुरुष को छोड करके भी उपलब्ध होता है। परन्तु जिस समय में पुरुष संयुक्त दण्ड नहीं रहता है उस समय में पुरुषासंयुक्त दण्ड से पुरुष दण्डी नहीं कहलाता है, उस समय में दण्डोपलक्षित पुरुष है ऐसा व्यवहार होता है, और जो समवेत विशेषण है वब सर्वदा विशेष्य में विशेषण रूप से ही

दश्रुतेर्व्याख्यानां कुर्वन् यथोक्तसिद्धान्तंस्थापयामास। एतन्मते परं ब्रह्म न निर्विशेषं पूर्वमतवत् किन्तु सर्वज्ञत्वं सत्यकामत्वापहतपाप्मकत्वादि-सकलकल्याणगुणविशिष्टत्वात् सविशेषमेव। यत इमे गुणाः श्रौताः। न ता अवहेलनीयाः। अतः परमात्मा सगुण एव। यद्यपि परमात्मनि

यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते सूर्यो यत्तेजसेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः। यद्भीत्या वाति वातोऽवनिरपि सुतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययोविश्व-भर्ता' (श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः ८) 'एष ते' एष उपर्युक्तगुणविशिष्टः परमात्मा ते तव जीवस्यात्मा अर्थात् प्रकारभूतस्य ते प्रकारीभूतः परमात्मैव भवतीति। स च परमात्मा सर्वस्यान्तर्यामीति भवतोपि स एवान्तर्यामी। स चामृतः-मरणधर्मविवर्जितः। यथा लोकानां निग्रहानुग्रहे समर्थो राजादिर्यमराजो मरणमाप्नोति कर्मावसाने अयं तु न तथेति। अथवा अमृतः अमृततुल्यस्य स्वर्गस्य मोक्षस्य च प्रदाता। भगवत्कृपयैव जीवानां स्वर्गापवर्गयोः संभवो भवतीत्युदयनाचार्येणापि न्यायकुसुमाञ्जलौ प्रतिष्ठापितम्। तथाहि 'स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्तिमनीषिणः। यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते' इति। श्रुतो

रहता है।

यद्यपि प्रत्येक गो घटादिक पदार्थों में रहने वाला असाधारण धर्म रूप जो सास्नादि तथा कंबू ग्रीवादिक पदार्थ हैं ये तो परस्पर विभिन्न विभिन्न हैं क्योंकि प्रत्येक गो व्यक्ति जिस तरह अलग-अलग है उसी तरह तन्मात्र वृत्ती सास्नादिक भी तो भिन्न भिन्न है, एक गो व्यक्ति में रहने वाला सास्नादिक तो व्यक्त्यन्तर में नहीं रहता है, तब तो सास्नादिक असाधारण धर्म होता हुआ भी अनुगत नहीं है ? तब अननुगत सास्नादिक को जाति रूप किस तरह से मानते हैं ? तथापि सभी सास्ना एक समान हैं, परस्पर सदृश हैं। जिस तरह लून पुनर्जात केशों में-'**त एवामी केशाः**' वे वहीं केश हैं जो कि पहले थे। यहां जिसतरह पूर्वापर केशों में प्रत्यक्ष सिद्ध भेद के रहते हुए भी अति सादृश्य होने के कारण से वे ही ये केश हैं ऐसा ज्ञान अति सादृश्य मूलक होता है धर्मी तथा धर्म का भेद होने पर भी उसी तरह गो में तथा गोवृत्ती सास्नाओं में परस्पर भेद होने पर भी अति सादृश्य होने से एकत्व प्रत्यय होने में भी कोई बाधक नहीं होता है, अर्थात् धर्मों में परस्पर भेद के रहते हुए भी अति सादृश्य होने से एकत्व प्रत्यय अभ्रान्त होता है तथा तन्मूलक अनुगत प्रत्यय भी होता है। अत एव एक गवादि व्यक्ति को देखने के बाद उसी स्थल में अथवा कालान्तर देशान्तर में अपर गवादि व्यक्ति को देखने के अव्यवहितोत्तर काल में कहा जाता है कि-'**इयमपि गौस्तादृशी एव**' यह भी गाय पूर्वदृष्ट गाय के समान ही है न तु वही गाय है। इस तरह से दोनों गायों में सादृश्य प्रत्यय ही होता है न तु एकत्व प्रत्यय होता है। जहां भी एकत्व प्रत्यय

सर्वज्ञत्वादिकल्याणगुणो विद्यते जीवे चाल्पज्ञत्वदुःखित्वादिविरुद्धधर्म इति तदुभयोस्तत्वमस्यादिवाक्येन सर्वथा तादात्म्यं न सम्भवति, तथापि जीवपरमेश्वरयोर्भेदाभेदौ भवतः। तत्राभेद उभयोः स्वाभाविकः भेदश्च परोपाधिक आकाशघटाकाशवत्। यावत्पर्यन्तमुपाधिसम्बन्धस्तावत्पर्यन्तं

हि भगवान् बहुशः श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिषु इदानीं मन्तव्यो भवति 'तत्र यः पृथिव्याम्' इत्यादिश्रुतिषु 'ततः स्वयंभूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः' इत्यादौ स्मृतिषु। श्रवणानन्तरं मननस्य श्रुतौ प्रतिपादनात् 'श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यः' इत्यादिवचनात्। तदिदं ब्रह्मविचारशास्त्रम्। श्रुत्या श्रुतस्य ब्रह्मरूपार्थस्य अनेकहेतुद्वारास्थिरीकरणमेव मननमिति।

माध्यन्दिनशाखायान्तु 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्माशरीरं य आत्मानमन्तरोयमयति स ते आत्मान्तर्याम्यमृतः' इति। **अस्यार्थः यः परमात्मा आत्मनि स्वकृतभवपरम्परयाऽर्जितपुण्यपापफलभोक्तरि चेतनात्मके जीवे तिष्ठन् वर्तमानः, आत्मनो जीवस्य अन्तरो मध्यं तिष्ठति तद्भिन्नश्च।** य आत्मा न वेद स्वाभ्यन्तरे सर्वदाऽवस्थितमपि परमात्मानं जीवो न वेद-नो विजानाति, तदीयमायया कर्मरूपयाव्यामोहितचित्तः सन्

होता है, जिस तरह एक किसी जगह किसी अतिभयानक कृष्ण सर्प को देखता है, और वही व्यक्ति समीपोत्तर काल में तादृश भयानक कृष्ण सर्पान्तर को देख कर के बोलता है कि-'**स एव कृष्ण सर्पोमृत्युप्रदः समुपस्थितः**' वहीमृत्यु प्रदकृष्ण सर्प पुनः उपस्थित हुआ है। इत्यादि स्थल में जो एकत्व ज्ञान होता है, वह भी अति सादृश्य मूलक ही है, न तु तदेकत्व मूलक होता है। एक गो व्यक्ति को देखने के बाद जो दूसरे व्यक्ति में कहा जात है कि '**इयमपि गौस्तादृशी एव**' यह कथन के समान ही है जो एक दण्डवाले बाबा जी को देखने के बाद द्वितीय दण्डधारी बाबाजी को देखने के बाद तुरन्त-'**अयमपि दण्डवान् पुरुषः**' यह भी दण्ड वाले बाबाजी हैं। उपर्युक्त स्थल में विचारणीय यह है कि उभयत्र सर्प भी भिन्न भिन्न है तथा पुरुष भी भिन्न भिन्न ही है तथा भय जनकत्व और दण्ड भी भिन्न भिन्न है तथापि व्यक्तियों को भिन्न भिन्न होते हुए भी धर्मों में भय जनकत्व तथा दण्डों में अति समानता होने से कहा जाता है कि 'यह भी दण्डवान् पुरुष है' यह भी कृष्ण सर्प है उसी तरह गो व्यक्तियों में तथा सास्नादिक असाधारण धर्मों में परस्पर स्वभाव सिद्ध भेद के रहते हुए भी, इन में समानता रहने के कारण से 'यह भी गौ है' ऐसा कहना अयुक्त नहीं है। अर्थात् असाधारण सास्नादिक पदार्थ अधिकरण तथा स्वरूप से प्रतिव्यक्ति में भिन्न भिन्न होने पर भी परस्पर में अत्यन्त सदृश होने के कारण से एकरूपता का निर्वाहक होता है। '**कण्टकं कण्टकेनोद्धरेत्**' इस न्याय का आश्रय लेकर के आचार्यजी ने नैयायिकाभिमत जाति का खण्डन करके अननुगत असाधारण धर्म के द्वारा एकत्व प्रत्यय

स एव जीवस्तस्मादभिन्नः संसारी च । जडदेहादिविनाशे स एवाभिन्नः संसाररहितो मुक्त इति ब्रह्मैव बद्ध्यते मुच्यते । अतोऽत्रमोक्षकालेऽभेदो भवति, संसारकाले चौपाधिको भेदः । उपाधिब्रह्मणोश्चभेदाभेदः । तत्रोभावपिभेदाभेदौ स्वाभाविकावेवेति ।

यस्यात्मा शरीरं-यस्य परमात्मनः जीवात्माशरीरं विशेषणीभूतः प्रकार इत्यर्थः । य आत्मानमन्तरो यमयतिय: परमात्मा आत्मनो जीवस्य मध्ये प्रविश्य तं नियमयति तदुपरि शासनं करोति । 'एतस्याक्षरस्य प्रशासने गार्गिद्यावा पृथिवी विधृते तिष्ठत' इतिश्रुतेः । स ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः-अस्यपूर्ववदेवार्थः । एवं सुबालोपनिषदि 'यः पृथिवीमन्तरे संचरन् यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वेद' इत्यादि । अस्यार्थः यो जगत् कारणीभूतः परमात्मा पृथिवीमन्तरे संचरन् पृथिव्या मध्ये स्वेच्छया संचरणं करोति । यथा कश्चिद् बालकः स्वकीयगृहप्राङ्गणे स्वेच्छयेतस्ततः संचरन् क्रिडां करोति तथैव परमात्मा पृथिव्यादिषु स्वविशेषणीभूतेषु सदैव लीलाविभूतिमनुभवति । यथोक्तस्य या यथा वर्णिता पृथिविशरीरं प्रकारलक्षणं यं यथा वर्णितकल्याणगुणाकरं परमात्मानं पृथिवी न वेद-अत्र पृथिवीजलादीनां

का निर्वाह किया है, इससे यह नहीं समझना चाहिये कि न्यायाभिमत जात्यादिक का सर्वथा निराकरण किया गया है, क्योंकि इस सिद्धान्त में परमात्मा के शरीर होने के कारण सभी पदार्थों की अस्तिता का स्वीकार किया जाता है, परन्तु आत्मादिक सूक्ष्म पदार्थो का समर्थन वेदैक समधिगम्य है वह आगम मात्र से सिद्ध किया गया है, इसलिय व्यावहारिक पदार्थ का स्वातन्त्रेण निर्वचन अनति प्रयोजनक है, ऐसा समझ कर के प्राचीनाचार्यो ने इस विषय में गजनिमिलिका का अनुसरण किया है। उपर्युक्त विषय पर विचार आचार्यजी अक्षर द्वारा बतलाते हैं-'**नचावयवसंस्थान विशेषस्य सास्नादेरित्यादि ।**' नहि कहें कि अवयव संस्थान विशेष रूप जो सस्नादिक पदार्थ हैं वे तो व्यक्तिरूप हैं तो वे व्यक्ति विशेष होने से प्रतिगवादिक पदार्थों में '**सोयं घटः**' वही यह घट है, वही यह गौ है इस तरह की जो प्रत्यभिज्ञा होती है, उसका निर्वाह किस तरह से होगा ? यह कहना आपका ठीक नहीं है क्योंकि '**सैवेयं दीपकलिका**' वही यह दीपकी कलिका की ज्वाला है, इत्यादि स्थल में प्रत्येक क्षण में दीपज्वाला के उत्पादविनाश शील होने से अत्यन्त भेद होने पर भी अत्यन्त सदृश होने के कारण से 'वही यह दीप कलिका है' ऐसा व्यवहार होता है। इसी तरह प्रकृत में सास्नादिक का प्रत्येक व्यक्ति में भेद होने पर भी-अर्थात् अननुगत होने पर भी एक सास्ना को दूसरे व्यक्तिवर्ती सास्ना के साथ अत्यन्त सादृश्य होने के कारण से 'वही यह गाय है' ऐसा व्यवहार होता है।

ॐ प्रस्तुते यादवप्रकाशाचार्याः ॐ

यादवप्रकाशाचार्यो हि तत्वमसीत्यादि - अभेदश्रुत्यर्थं वर्णयन् स्वभावत एव परम्ब्रह्म सर्वदा कल्याणगुणविशिष्टं सत् सगुणम् । परब्रह्मणो जडचेतनपदार्थेन सह भेदाभेदः स च भेदाभेदः स्वाभाविक एव । न तु

प्राकृतवस्तूनामुपलक्षणम्, तथा स्वस्वाभिमानिदेवपरकमेव । अचेतने वस्तुनि ज्ञानज्ञानाभावकथनस्यासंभवात् । चेतन एव विजानाति न विजानाति च । नहि भवति प्रतीतिर्घटादिर्विजानाति, अन्धो वा रूपं पश्यतीति । तथाऽस्यामेवोपनिषदि-'योऽक्षरमन्तरे संचरन् यस्याक्षरं शरीरं यमक्षरं न वेद, यो मृत्युमन्तरे संचरन् यस्य मृत्युः शरीरं यं मृत्युर्न वेद एष सर्वभूतानामन्तरात्माऽपहतपाप्मादिव्यो देव एको नारायणः ।' यः परमात्मा भगवान् रामः, मृत्युमन्तरे संचरन् अत्र मृत्युपदम्, प्रकृतेः सर्वजगत् कारणीभूतायाः उपलक्षणम्, अथवा मृत्युपदं यमुनाभ्रातुः कृतान्तस्योपलक्षकं कृतान्तस्यापि सर्वमारकस्य परमात्मनः शासने एव वर्तमानत्वात् ! श्रीशङ्कराचार्येणापि-'मृत्युनैवेदमावृतमासीत्' इत्यादिश्रुतौ मृत्युपदेन मायाया एव ग्रहणं कृतम् । यस्य परमात्मनो मृत्युः शरीररूपम् । यं परमात्मानं

'**अयमेवोपवर्णितघटत्वादिप्रकारः**' इत्यादि । विशिष्टाद्वैत अथवा वेदान्त विचार में अनभिप्रेत जो जात्यादिक पदार्थ हैं उनके विचार के लिये जो इतना प्रयास किया तथा प्रसङ्ग सङ्गति से जो एतावत् कालपर्यन्त विचार किया गया है, उसका फल क्या है ? इस संशय का निराकरण करने के लिये कहते हैं-'**अयमेवेत्यादि**' । यही अर्थात् पूर्वोक्तक्रम से विचार विषयीभूत जो गोत्व घटत्वादिक प्रकार अर्थात् गो घटादि धर्मियों का विशेषणीभूत वस्तु विशेष हैं वे ही भेद शब्द से व्यवहृत होते हैं । अर्थात् घटत्वादिक पदार्थ ही घट पट के भेद कहलाते हैं। घटपटों का जो भेद है वे घटत्व पटत्वादिक धर्म से अतिरिक्त नहीं है। एतादृश घटात्वादि लक्षण भेद के द्वारा ही '**घटः पटाद्भिद्यते घटः पट भिन्नः**' घट पट से भिन्न होता है, घट पटादिक से भिन्न है, इस रीति से घटादिक में पटादि भिन्न का ज्ञान होता है 'घटादि धर्मी है पक्ष, उसमें घटेतर सकल पदार्थ जगत् की व्यावृत्तिरूप साध्य है, घटात्वादिक हेतु बनता है। घटत्व धर्म घटमात्र में रहता है, घट से इतर में नहीं रहता है तो तादृश घटत्वरूप हेतु से घटरूप पक्ष में घटेतर सकल जगत् का भेद सिद्ध होता है तब घट स्वेतर सकल पदार्थो से भिन्न है ऐसा अनुमिति है। इस अनुमिति में अनुमापक अव्यभिचरित हेतु गृहीत व्याप्ति भेदात्मक घटत्व है। जिस तरह '**पृथिवी स्वेतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्वात्**' इत्यादि स्थल में गन्धवत्व हेतु से पृथिवीतर सकल जगत् से पृथिवी भिन्ना कहलाती है । इसी तरह भेदात्मक गोत्व घटत्वादि धर्म के द्वारा 'घटो भिन्नो गौ भिन्ना' घट स्वेतर व्यावृत्त है इत्यादि व्यवहार है एतादृश व्यवहार का संपादन करने के लिये प्रासंगिक पदार्थो का भी निर्वचन

भास्करमतवज्जीवेन सहाभेदः स्वाभाविक भेदश्चौपाधिक इति । तस्मात् स्वभावत एव ब्रह्म जडेन डिन्नमभिन्नं च तथा जीवेनापि ब्रह्मणः स्वाभाविक एव भेदोऽभेदश्चेति । एवं समस्तकल्याणगुणगणोपेतं ब्रह्मैव देवमनुष्यादि-

मृत्युरपि तत्वतो न विजानाति । एतादृशः परमात्मा न केवलं पृथिव्यादिभूता-नामेवान्तरात्मा किन्तु सर्वभूतानामेवान्तरात्मा । अयं च परमात्मा अपहतपाप्मा विगलितसकलपापकर्मा । सर्वहेयदोषपरिवर्जितः स्फटिकवत् स्वभावतो निर्मलः स्वच्छः दिव्यः स्वयं प्रकाशतया सर्वस्यापि प्रकाशकः । अनन्तकल्याणगुणगणविशिष्टः । अथवा प्रकाशात्मके साकेते स्वकीयविभूतौ सर्वदा विद्यमानः । एतेन 'अपहतेत्यादिविशेषणेन भगवति रामे हेयसर्वदोषराहित्यमभिव्यञ्जितम् । 'दिव्यो देवः' इत्यनेन हेयप्रत्यनीकानन्तक-ल्याणगुणाकरत्वं च सूचितम् । मीमांसकमते लाघवादभावस्याधिकरणस्वरूपत्वाभ्युपगमेन सर्वहेयदोषाभावस्याधिकरणरूपतया सर्वदोषाभावादेव भगवति कल्याणगुणाकरत्वसिद्धौ

आचार्यजी ने किया हैं। वेदार्थ चिन्तन में अति आवश्यक है इसलिये नहीं।

घट का चक्षुरादि करण द्वारा गृहीत होने पर तद्गत जो भेद है वह भी गृहीत होता है। एतादृश भेद चार प्रकार का होता है, ऐसा दार्शनिकों का कथन है-स्वरूप भेद, अन्योन्याभावात्मक भेद, वैधर्म्यात्मक भेद और पृथकत्व स्वरूप भेद। उन भेदों में से तृतीय वैधर्म्यात्मकभेद को लेकर विचार करते हैं-'**अयमेव च भेदः स्वाश्रयमन्यस्मा- दित्यादि ।**' यही भेद अर्थात् घटामात्र में रहने वाला तथा पटादिमात्र में रहने वाला जो वैधर्म्यात्मकभेद है स्वकीय अर्थात् घटात्वादिक का आश्रय जो घटादिक पदार्थरूपधर्म उसको घटेतर से भिन्न कराता है, उसी तरह स्व को भी-घटत्व को भी स्वाश्रय घटादिक से भिन्न कराता है, स्वभाव के वैचित्र्य होने से, और जो वैधर्म्य आश्रय का भेदक है उसमें दूसरा वैधर्म्य रहता है अथवा नहीं रहता है? यदि रहता है वैधर्म्य मे वैधर्म्यान्तर तब मैं पूछता हूँ कि द्वितीय वैधर्म्य भेद पुनः वैधर्म्यान्तर रहता है अथवा नहीं रहता है? यदि रहता है तब तो वैधर्म्यों की अनवस्था होगी, और वैधर्म्य का कार्य है भेद कराना, वह तो अन्तिम वैधर्म्य से ही सिद्ध हो जायगा तब प्रथम द्वितीयादि वैधर्म्यों का विलोप हो जायगा। यदि कहें कि वैधर्म्यात्मक भेद अनन्त हैं और सब एक काल में घटादिक आश्रय में रहते हैं तब तो कौन धर्म उद्देश्यतावच्छेदक बनेगा तथा कौन भेद विधेय बनेगा? तो इस प्रकार से अविनिगम्यत्व दोष होगा। अर्थात् जो धर्मो में विधेय का आगमन से पूर्वकाल में रहता है उसको उद्देश्यतावच्छेदक कहते हैं तादृश उद्देश्यता वच्छेदक विशिष्ट धर्मों में पश्चात् काल में विधेय आकर के बैठता है अर्थात् उद्देश्यतावच्छेदक तथा विधेय में पूर्वापर कालिकत्व का नियम है। पूर्वकालिक नियामक होता है तथा पर कालिक नियम्य होता है, परन्तु सव्येतर विषाणवत्

भेदेनानेकजीवरूपो भवति । एभ्यो विलक्षणमपि । तथा तदेव जडपदार्थेन सह भिन्नरूपतामासाद्याकाशाद्यनेकदोषमयपरिणामं प्राप्नोति । तथा स्वभावतो जडपदार्थात् विलक्षणमपि । अनेन क्रमेण जडे ब्रह्मणि जीवे ब्रह्मणि च स्वभावत एव भेदोऽभेदश्च सिद्ध्यतीति यादवीयं मतम् । एतन्मते

तदर्थं दिव्येत्यादिविशेषणेन कल्याणगुणाकरत्वसाधनं निरर्थकमिवाभाति । तथापि न्यायसिद्धान्तालङ्कारिकसिद्धान्तमाश्रित्य तथोक्तत्वात् । यदि अभावस्याधिकरणस्वरूपता स्यात् तदा गन्धाद्यभावानां जलाद्यधिकरणरूपाणां घ्राणादीन्द्रियग्राह्यता न स्यात्, घ्राणादीन्द्रियाणां द्रव्यग्राहकत्वाभावेन जलस्वरूपगन्धाभावस्य घ्राणग्राह्यत्वासंभवात् 'यो गुणो येनेन्द्रियेण गृह्यते तदभावस्यापि तदिन्द्रियग्राह्यत्वस्यैव नियमात् । किञ्च 'निर्दूषणा गुणवती रसभावपूर्णा सालंकृतिः कमलवर्णराजिः ।' इत्यादिमहाकविश्लोके दोषाभावस्य निर्दूषणेति पदेन बोधनात् तादृशदोषाभावस्य गुणस्वरूपत्वेन तस्यां गुणवत्वस्य सिद्धत्वात् पुनर्गुणवत्वस्यकामिन्यां साधनाय 'गुणवतीत्यादिविशेषणस्य नैरर्थक्यं स्पष्टमेव भवेदिति साहित्यविदुषामप्यभावो नाधिकरणस्वरूपः । इतीहापि श्रुतौ भगवति दोषाभावसा-धकगुणाकरत्व साधकयोर्विशेषणयोर्ग्रहणं न दोषायापितु गुणायैवेति दिक् । एको नारायणः

समकालिक वस्तुओं में नियम्य नियामक भाव नहीं होता है, तो प्रकृत में अनन्तभेद का युगपत् घटादि धर्मी में समाहार वृत्तिता मानेंगे तब नियम्य नियामक नहीं होने से अविनिगम्यत्व हो जायगा। (देखिये-एक किसी मठ में एक ही समय में यदी दो महात्मा पदार्पण करत हैं तो उनमें से एक उस मठ का अधिकारी महन्थ नहीं बन जाता है जो इतर तत्काल समुपस्थित द्वितीय साधु के आसनादि व्यवस्था करने में नियामक बनता है। न वा द्वितीय साधु नियम्य बनता है क्योंकि उन दोनों में सम समयत्व तथा आगन्तुकत्व समान है। इसी तरह प्रकृत में यदि अनन्त भेद एक समय में घटादिक में आकर के बैठेंगे तब उन भेदों में नियम्य नियामक भाव नहीं होगा।) और अनन्त अप्रामाणिक भेद प्रवाह को मानेंगे तब अनवस्था दोष हो जायगा, इसलिये भेद नाम का कोई पदार्थ नहीं है, ऐसी जो किसी दार्शनिक की मान्यता है, उस मत का निराकरण करने के लिये आचार्यश्री कहते हैं-'**अयं च भेदः स्वाश्रयमन्यस्मादित्यादि**'। गवादि व्यक्तियों में रहने वाला जो असाधारण धर्मात्मक वैधर्म्यात्मक भेद है वह अपना आश्रय गवादि व्यक्तियों को भिन्न कराता हुआ अपने को भी स्वेतर से भिन्न कराता है।

नहीं कहें कि-स्व को स्व ही यदि भेदक होगा तब तो आत्माश्रयादिक दोष होगा? ऐसा नहीं कहिये, क्योंकि पदार्थों का स्वभाव विलक्षण विलक्षण होता है सभी का स्वभाव एक समान नहीं होता

ब्रह्म न निर्गुणं किन्तु सगुणमेव तथा जगदपि सत्यमेव न मिथ्येति । अनेकजीवरूपेण ब्रह्मणः परिणमनात् बद्धमुक्तव्यवस्थापि सरलतयैव व्यवस्थापिता भवतीति संक्षेपः ।

इति स परमात्मा एकः सजातीयद्वितीयरहितः । अथवा समाभ्यधिकविवर्जितः अर्थात् परमात्मसदृशो नान्यः कश्चिदस्ति, ततोऽधिकोगुणादिभ्योपि नास्त्येव । 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्चदृश्यते' इतिश्रुत्यन्तरात् । नारायणः-नैमित्तिकप्रलयेशेषासन समुपविश्यजलेऽवस्थानात् भगवान् श्रीरामो नारायणेति नाम्ना प्रथितः 'भवान्नारायणो देवः' (श्रीमद्रामायणे ६।११७।१३) 'अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः' (तत्रैव२२) 'पद्मे दिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्यमामपि । प्राजापत्यं त्वया कर्ममयि सर्वं निवेशितम् । सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपास्य जगत्पतिम् । रक्षांविधत्स्व भूतेषु मम तेजस्करोभवान् । ततस्त्वमसिदुर्धर्षात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षांविधास्यन्भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' (तत्रैव ७।१०४।७-८-९) 'आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन

है । इसमें दृष्टान्त बतलाते हैं-**'स्वप्रकाशज्ञानवदितीति ।'** जिस तरह ज्ञान घटादि जड़ पदार्थों को प्रकाशित कर के 'घटः पटः' इत्यादि व्यवहार का संपादक होता है तथा स्वकीय स्वरूप का भी प्रकाशक होता है । इसी तरह असाधरण धर्म स्वरूप भेद स्वाश्रय का भेदक होकर के स्व का भी भेदक होता है । अर्थात् जिस तरह घटादि पदार्थों का प्रकाश ज्ञान से होता है । परन्तु ज्ञान का प्रकाश किस से होता है ? क्योंकि प्रमेय मात्र ज्ञेय होता है तो ज्ञान भी तो प्रमेय है तो उसको भी ज्ञेय होना चाहिये ज्ञान का विषय होना चाहिये ? यदि ज्ञान को स्व से ही प्रकाश्य मानें त आत्माश्रय होगा । यदि ज्ञान का प्रकाश स्वेतर से होता है तो वह स्वेतर यदि जड है तब प्रकाशक नहीं होगा । यदि वह भी ज्ञानरूप है तब उस द्वितीय ज्ञान का पुनः ज्ञानान्तर से प्रकाश होगा । इस प्रकार अनवस्था होगी । इसलिये ऐसा माना जाता है कि ज्ञान घटादिक पदार्थ का प्रकाशक है तथा स्वरूप का भी प्रकाशक है । यथा घट के दर्शन में चक्षु को प्रदीप की आवश्यकता होती है अर्थात् आलोक सापेक्ष चक्षु घट का प्रकाशक होता है । परन्तु प्रदीप के प्रत्यक्ष में चक्षु को ज्ञातव्य प्रदीप का अथवा प्रदीपान्तर की आवश्यकता नही है । प्रकृत विषय में **'अर्थप्रकाशकं ज्ञानं विभूद्रव्यगुणात्मकम्'** (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ३।३) **'ज्ञान नित्यविभूतौ च परस्मै स्व प्रकाशता । स्वान्यनिर्वाहकत्वेन दीपवदत्र सा मता'** (श्रुतिसिद्धान्तदीपिका १३) इत्यादि रूप से विशद वर्णन पूर्वाचार्योंने किया है अतः यहां संक्षेप किया गया है । सारांश यह है कि प्रदीप के प्रत्यक्ष में उस प्रदीप की अथवा प्रदीपान्तर की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वस्तु का एतादृश स्वभाव है । इसी तरह प्रकृत में समझना चाहिये । अर्थात् ज्ञान का प्रकाशक ज्ञानान्तर नहीं होता है किन्तु

॥ भास्कराचार्यमतनिराकरणम् ॥

एतन्मते एकं परंब्रह्म तथा तदतिरिक्त उपाधिः । एतदतिरिक्तं वस्त्वपरं नास्ति । ब्रह्मैवोपाधिसम्बन्धाज्जीवभावं लभते । यथा महाकाशोघटाद्युपाधिसम्बन्धेन घटाद्याकाशसंज्ञामाप्नोति । महाकाशघटाकाशयोः स्वरूपत

नारायणः स्मृतः' (मनुस्मृतिः) इत्येवमनेकविधस्मरणात् शास्त्रकारैः ।

एवं माण्डूक्योपनिषदि-द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तिअनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति । अस्यार्थः समानगुणविशिष्टौ परस्परं मित्रभावमापन्नौ द्वौपतत्रिणौ शरीरलक्षणे एकस्मिन् वृक्षे तिष्ठतः । एकवृक्षमाश्रित्य स्थितौ । तत्रैको जीवलक्षणः पतत्री शरीरलक्षणः पतत्री शरीरकृतस्वादुगुणविशिष्टं कर्मफलं सुखदुःखात्मकं फलमीश्वरप्रेरितोभुनक्ति-अन्यस्तु सर्वस्य प्रेरयिता सर्वनियामकः परमात्मा कर्मफलमभुञ्जन्नेव सर्वथा प्रकाशमान एव भवतीति । अत्रमन्त्रे पक्षिपदेन जीवात्मपरमात्मानौ विवक्षितौ । तत्रैकस्य कर्मकृतफलभोक्तृ त्वं तदन्यस्य फलाभोक्तृत्वं प्रदर्शितम् । अर्थात् उत्पादविनाशशीले शरीरे जीवपरेशयोर्निवेशः उभयोः परस्परवैलक्षण्यमपि दर्शितमिति ।

अन्तः प्रविष्टशास्ताजनानां सर्वस्यात्मा अयमर्थः, अयं परमात्मा प्राणिमात्रस्यान्तः

स्व ही स्व का प्रकाशक है, उसी तरह असाधारण धर्मात्मक भेद का भेदक भेदान्तर नहीं होता है किन्तु स्व ही स्व को अन्य से भिन्न करादेता है । विशेष विचार अन्य प्रवन्धविवरण में करेंगे ।

'अतएव भेदो न प्रत्यक्षग्राह्यः' इत्यादि उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से यह सिद्ध होता है कि अर्थात् प्रत्यक्ष प्रमाण गवादि पदार्थो का ग्रहण करता है संयोग संनिकर्ष से गवादि व्यक्ति में अवस्थित जाति गुणादिक असाधाण धर्म का भी ग्रहण करता है जो असाधारण धर्म प्रतियोगि सापेक्ष होकर के भेद स्वरूप है तादृश भेदादि विशेषण का ग्रहण करता है । इस स्थिति में शंकरानुयायियों का कथन है **'सन् घटः सन् पटः'** इत्यादि प्रत्यक्ष सन्मात्र ब्रह्म का ही ग्रहण करता है किन्तु भेदादि पदार्थो का ग्रहण नहीं करता है क्योंकि भेदाकारा अन्तः करण की वृत्ति नहीं होती है किन्तु सदाकारा ही वृत्ति होती है । इत्यादिक कथन उन वादियों का सर्वथा असङ्गत सिद्ध होता है अर्थात् उनका यह कथन जो है वह परास्त होता है, क्योंकि असाधारण धर्म लक्षण जात्यादि विशेष वस्तु तादृश विसेष सहित गो घटादि का ही प्रत्यक्ष प्रमाण से ग्रहण होता है, इस तरह से आचार्यपाद ने व्यवस्थित कर दिया है । अतः **'अतएव भेदो न प्रत्यक्षग्राह्यः'** इत्यादि कथन सर्वथा असङ्गत ही है । इन उपर्युक्त विवेचनों से यह भी सिद्ध होता है कि यादवप्रकाशाचार्य का भेदाभेदवाद भी असङ्गत है एवं यादवप्रकाशाचार्य भास्कराचार्य की तरह ब्रह्म

एकत्वं तथैव जीवब्रह्मणोरपि स्वरूपत एकत्वमौपाधिकश्च भेदः । सर्वं जगत् सत्यमेव न तु शंकरमतवत् मिथ्या अत एव जगन्मिथ्यात्वदोषाणां सम्भवो न भवति । यथा घटे समुत्पन्ने एव घटाकाशो जायते तद्विनाशे

प्रवेशंकृत्वा सर्वस्यापि शासनकर्ता भवतीति । एतावता सर्वात्मिता परमेश्वरे सिद्ध्यति । अन्तः प्रविष्टोऽपि सर्वैः सह स्वरूपैक्याभावात् जीवेशयोः स्वरूपत ऐक्यं न भवत्यपितु भेद एवेति । 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवत् सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्' अस्यार्थः परमात्मा जगदन्तर्गतं सर्वमुत्पाद्य तेष्वनुप्रविष्टः, तदनुप्रविश्य च निर्विकारचेतनस्य सविकारस्य च जडपदार्थस्य च यद्रूपं तं धारयामास । परन्तु सविकारयोरूपं गृहीत्वापि स्वयं निर्विकार एवाभवत् । 'स्वरूपे च स्वभावे च विकारः प्रकृतेः खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतो बुधैः । ब्रह्मणस्तु विकारो यन्न स्वरूपस्वभावयोः' इत्याचार्योक्तेः । अनेन वचनेन जडचेतनयोरनुप्रवेशं प्राप्य तत्संबन्धिनामरूपादिकं प्राप्यापि तेन सह स्वरूपत एकतां नासादयति । तेन निर्विकार एव सर्वदाऽवस्थितो भवतीति समुदीरितश्रुतेरभिप्रायः । अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि

का स्वरूप परिणाम मानते हैं, तब तो यदि ब्रह्म आकाशादि जड वस्तुओं के स्वरूप में परिणत होता है तब तो ब्रह्म में निर्विकारत्व नहीं होगा, अपि तु सविकार ब्रह्म हो जायेगा, और भास्कर के मत में जो दोष कहा गया है वे सब दोष यादवमत में भी लगता है। इन उपर्युक्त विचारों से सिद्ध होता है कि यादवप्रकाश का मत श्रुति तर्क विरुद्ध होने से अनादरणीय है। इस तरह से संक्षेपतः शंकरमत तथा भास्कर का भेदाभेद वाद और यादव का जो भेदाभेद वाद है उन सब का खण्डन कर दिया गया है विशेष विवेचन पुस्तकान्तर में करेंगे।

अनपेक्षितपक्षाणां खण्डनं कृतवानिह ।
तदनेन रमानाथः प्रीयतामिति मे मतिः ॥ इतिशम् ॥

घटक श्रुति है '**यः पृथिव्यां तिष्ठन्**' इत्यादि अन्तर्यामि प्रकरणस्थ तथाभेद श्रुति है '**द्वासुपर्णा**' '**ज्ञाज्ञावजावीशानीशौ**' इत्यादि। इन घटक श्रुति तथा भेद श्रुति के अर्थ के साथ जो अभेद श्रुतियों का विरोध होता है, उस विरोध का उद्धारपूर्वक उपर्युत श्रुतियों का अविरोध पूर्वक अभेद श्रुतियों का अर्थ करने के लिये उपक्रम करते हैं '**ननु घटकश्रुतीनां तथा भेदश्रुतीनां च**' इत्यादि। प्रश्न-घटक श्रुति जो '**यः पृथिव्यां तिष्ठन्**' इत्यादिक है तथा भेद का प्रतिपादन करने वाली जो '**द्वा सुपर्णा**' इत्यादि है इन श्रुतियों के विद्यमान होने से इन श्रुतियों से विरोध होने से जीव ब्रह्म में तथा प्रपञ्च और ब्रह्म में अभेद का प्रतिपादन अभेद प्रतिपादक '**तत्त्वमसि**' इत्यादि श्रुति किस तरह से कर सकती है।

घटाकाशोऽपि विपद्यते । न वा घटाकाशगतगुणदोषाभ्यांपटाकाशः संस्पृष्टो भवति । तथैवोपाधिके जीवे भोगमोक्षसांकर्य्यं न भवति । न वा जीवगतगुणदोषाभ्यां संस्पृश्यते परं ब्रह्मेति । परन्तु नैतन्मतं समीचीनमिवाभाति, जीवब्रह्मणः स्वरूपत एकत्वस्वीकारे जीवगतगुणदोषयोर्ब्रह्मण्यपि सम्बन्धस्य दुर्वारप्रसङ्गात् । न चैतदिष्टम् 'निष्कलंनिष्क्रियं शान्तमित्याद्यने

इतिछान्दोग्योपनिषत् । सोयं परमात्मा संकल्पं कृतवान्, पृथिव्यादिजडवस्तुनि जीवात्मरूपेण तेषु जडेषु अनुप्रविश्य नामरूपयोः सर्गं करिष्यामि । अनेन वचनेन स्पष्टतः प्रतीतं भवति, यत् प्रथमतोऽहं जीवेऽनुप्रवेशं कृत्वा, जीवस्वरूपेण सर्वतो व्याप्तो भूत्वा जीवात्मद्वारेण जडादिषु प्रवेशं कृत्वा नामरूपयोः सर्गं कुर्याम् । अर्थात् सर्वोऽपि जडपदार्थो जीवे आधारितः । अर्थात् जीवस्य नियन्त्रणे भवतु स च जीवः परमात्मनि आधारितो भवतु एतस्य जडपदार्थस्य वाचको नामादिशब्दः एतान् जडपदार्थानवबोध्य तदन्तर्गत जीवात्मानं बोधयन् जीवेऽन्तरात्मरूपेण समवस्थितं मामपि बोधयतु, इतीच्छया परमात्मा यथोक्तंसंकल्पमकरोत्

परस्पर विरोध होने से एक श्रुति में अप्रामाणिकत्व अनिर्वाय हो जाता है। इस प्रकार से शंका कर के घटक श्रुति तथा भेद और अभेद प्रतिपादक सभी श्रुतियों का अविरोध पूर्वक समन्वय करने के लिये अर्थात् पूर्व श्रुति के साथ अविरोध पूर्वक अभेद श्रुतियों का अर्थ को निर्णीत करने के लिये सभी श्रुतियों का अर्थ का व्याख्यान करते हैं। इस में पहले घटक श्रतियों का अर्थ बतलाने के लिये घटक श्रुतिययों को बतलाते हैं-'**यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः**' इसका अर्थ इस प्रकार से होता है जो परमात्मा सकल चगत् का कारण है वह परमात्मा पृथिवी में रहता है, पृथिवी के अभ्यन्तर में रहता है, जिस परमात्मा को पृथिवी नहीं समझ सकती है, पृथिवी जिस परमात्मा का शरीर है, अर्थात् विशेषण है, जो परमात्मा पृथिवी के अन्दर में रह कर के पृथिवी का नियमन करता है-नियन्ता है, यही अन्तर्यामी सर्व दोष रहित तुम्हारी भी अन्तरात्मा है। यह काण्वशाखा का बचन है, इसी तरह माध्यंदिन शाखा में भी कहा गया है-'**य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोऽन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्माशरीरंय आत्मा नमन्तो यमयति स ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः**' अर्थात् जो परमात्मा जीव में रहता है, जो जीवात्मा के अन्दर में रहता है, जिसको जीवात्मा नहीं जान सकती है, जीवात्मा जिसका शरीर है, जो जीवात्मा के अभ्यन्तर में रह कर जीवात्मा का नियमन करता है। वह तेरी निर्दोष अन्तर्यामी आत्मा है। इस प्रकार से दोनों शाखाओं में अनेक वचन उपलब्ध होते हैं इस प्रकरण को अन्तर्यामी प्रकरण कहते हैं। इन वचनों से पदार्थ मात्र परमेश्वर का शरीर है, तथा परमेश्वर सब पदार्थों का आत्मा रूप से कहा गाय है।

कश्रुतिस्मृत्या ब्रह्मणोनिर्दोषत्वप्रतिपादनस्यासङ्गतत्वमेवस्यात् । न वा घटाद्याकाशदृष्टान्तप्रदर्शनं युक्तम् । तादृशदृष्टान्तस्य सावयवे कथंचित्सं-भवेऽपिनिरवयवव्यापकवस्तुन्यसम्भवात् । न च यथा एक एवाकाशो

। संकल्पञ्च नामरूपयोः सृष्टिं करोतीति । इमा उपर्युक्ताः सर्वाः श्रुतयोजडजीवयोः शरीरात्मभावं प्रतिपादयन्तीत्येता घटकश्रुतिनाम्ना व्यवहृता भवन्तीति । अतः परं भेदप्रतिपादकश्रुतिमुदाहरति-पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति यो यं साधकः स जीवात्मा तथा जीवस्य तत्तत्कर्मणि प्रेरयितारं परमात्मानं च, इमा परस्परं विभिन्नौ पदार्थावितिमत्वा परमेश्वरप्रीतिभाजो भवन्ति । ततस्तादृशः परमेश्वरोपासको जीवस्तादृशजीवेश्वरभेदज्ञानात् मोक्षं सर्वबन्धनविनिर्मुक्तिपूर्वकनित्यनिरतिशयसुखात्मकं साकेतनिवासं प्राप्नोति । एतावता जीवेश्वरयोर्भेदः सिद्ध्यति, तादृशभेदज्ञानमेवमोक्षसा-धकत्वात्तत्वज्ञानमिति च व्यवहृतं भवतीति ।

भोक्ताभोग्यं प्रेरितारञ्च मत्वा सर्व प्रोक्तंत्रिविधं ब्रह्ममेतत् इतिश्वेताश्वतरवचनम् । अस्यार्थः । तत्र भोक्ता स्वकृतकर्मफलभोक्ताजीवः, भोग्यं पृथिव्यादिसर्वजडपदार्थलक्षणम्, तथा प्रेरितारं एतयोर्नियन्तारं परमात्मानं च ज्ञात्वाऽहं त्वां त्रिविधं त्रिप्रकारकंब्रह्मप्रदर्शितवान्,

उपर्युक्त वचनों से सिद्ध जड चेतन साधारण प्रपञ्च तथा ब्रह्म इन दोनों में शरीरात्मभाव लक्षण संबन्ध है । इसी तरह मुण्डकोपनिषद् में यह वचन उपलब्ध होता है कि '**यः पृथिवीमन्तरे सञ्चरन् यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वेद**' इत्यादि । '**योऽक्षरमन्तरे सञ्चरन् यस्याक्षरं शरीरं यमक्षरं न वेद यो मृत्युमन्तरे सञ्चरन् यस्य मृत्युः शरीरं यं मृत्युर्नवेद, एष सर्वभूतान्तरात्माऽपहतपाप्मादिव्यो देव एको नारायणः ।**' अर्थात् जो पृथिवी के अन्दर में संचार करता है, अर्थात् पृथिवी के प्रत्येक रजः कण में सर्वदा अवस्थित रहता है, पृथिवी जिसका शरीर अर्थात् विशेषण रूप से विद्यमान है, पृथिवी जिसको नहीं जान सकती है । यद्यपि पृथिवी जड पदार्थ है तो उसमें ज्ञातृत्व शक्ति नहीं है, तथापि तदभिमानी देवता परक वाक्य है । जिस तरह पृथिवी में परमेश्वर सर्वतः व्याप्त है तथा पृथिवी जिसका शरीर है यह कहा गया है, उसी तरह जलादि सकल जड पदार्थ में भी जानना चाहिये कि जो यह प्राकृतिक जड पदार्थ हैं वे सब के सब परमात्मा के शरीर हैं और इन सब में परमात्मा व्याप्त रहते हैं जिस तरह तिलादिक स्निग्ध पदार्थों में तेल व्याप्त रहता है । इस प्रकार से सकल जड पदार्थों का नाम लेकर के वे सब परमात्मा के शरीर हैं, ऐसा अन्तर्यामी प्रकरण में तथा श्रुत्यन्तर में बतलाया गया है । '**अक्षरमन्तरे संचरन् यस्याक्षरं शरीरं यमक्षरं न वेद**' इति । यह सुवालोपनिषत् का वाक्य है, **अस्यार्थस्त्वेवम्** जो परमात्मा अक्षर में रहता है अर्थात् जो अपने स्वयं कभी भी विनष्ट नहीं होता है

यदायत्र कर्णशस्कुल्यावच्छिद्यते तदातस्य श्रोत्रेन्द्रियमितिव्यवहारः । यत्र न तथा तत्र महाकाशोऽतिन्द्रिय इति व्यवस्था, तथैव प्रकृतेपीतिमन्ये कर्णप्रदेशस्य प्रतिपुरुषं व्यवस्थितत्वेन तत्र तथा तद् भवतु नाम, परन्तु प्रकृते शरीरस्यचलत्वेन प्रतिक्षणमितस्ततोगमनागमनेन व्यवस्थायाः

त्रिविधप्रकारस्त्वित्थम् परमात्मा जीवस्यान्तर्यामीभूत्वाऽवतिष्ठते, तथा पृथिव्यादिज-ड़पदार्थानामपि अन्तर्यामिभूत्वाऽवतिष्ठते, तथा स्वस्वरूपेणाप्यवतिष्ठते, एतदेवत्रिविधं ब्रह्मेति । एतावता जड़जीवपरमेश्वराणां परस्परं स्वरूपभेदः सिद्धो भवति जडाद्भिन्नो जीवो जडावयवत्वात् । जीवाद्भिन्नः परः तदन्तर्यामित्वात्प्रशासकत्वाच्चेति । सर्वान्तर्यामि-परब्रह्मश्रीरामस्य प्रकारत्रया भवन्ति जडानामन्तर्यामीत्येकः प्रकारो जीवान्तर्यामित-याप्रतिवसतीतिद्वितीयः प्रकारस्तृतीयस्तु प्रकारः स्वस्वरूपेणापि सवदैवावस्थानत्वमिति । नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । इत्यादिकाठकंवचनम् । अस्यार्थः नित्यत्वेनाभिमतानां परमाण्वादीनामपि नित्य एकश्चेतनः परमेश्वरः नित्यानामनेकेषां चेतनानां जीवानाम्, कामान् स्वस्वाभिलषितमनोरथोपनीतान् पदान् पूरयति । एतावता परमेश्वरे नित्यत्वमेकत्वं चेतनत्वं च सिद्धं तथा जीवे नित्यत्वमनेकत्वं चेतनत्वञ्च,

ऐसा जो चेतन जीव है, उस जीव के अन्दर में सर्वदा विद्यमान रहता है, जीवात्मा जिसका शरीर है जिसको जीवात्मा नहीं जान सकती है ।

'**यो मृत्युमन्तरे सचरन् यस्य मृत्युः शरीरं यं मृत्युर्नवेद**' यहां मृत्यु शब्द का अर्थ है, प्रकृति जिस तरह कृतान्त सब का मारक है उसी तरह प्रलय काल में सभी पदार्थ प्रकृति में विलीयमान हो जाते हैं इसलिये प्रकृत में मृत्यु पदबोध्य प्रकृति कहलाती है । जो परमात्मा प्रकृति के अन्दर में सर्वदा अवस्थित रहते हैं, प्रकृति जिनकी शरीर है, प्रकृति जिसको नहीं जान सकती है, यह सर्वभूतों की अन्तरात्मा है, पापरहित, समाभ्यधिक विवर्जित दिव्य देव नारायण अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी हैं । उन घटक श्रुतियों से चेतनाचेतन प्रपञ्च और परब्रह्म श्री रामजी में शरीरात्मभावरूप सम्बन्ध सिद्ध होता है, तथा यह भी सिद्ध होता है कि उपर्युक्त अन्तर्यामी पद का वाच्य श्रीरामाख्य देव ही हैं अन्य कोई नहीं है । पूर्व वर्णित श्रुतियों में 'अमृत' इस शब्द से अन्तर्यामी देव में निर्दोषता का प्रतिपादन किया गया है । इसका पोषक '**अपहतपाप्मा**' शब्द भी उसी निर्दोषता का प्रतिपादन करता है । किसी मत से भेद ज्ञान मोक्ष का कारण है । किसी के मत में अभेद ज्ञान मोक्ष का कारण माना गया है, तो तादृश भेद श्रुति तथा अभेद प्रतिपादक श्रुतियों के अर्थपर विचार करना आवश्यक है परन्तु '**यः पृथिव्याम्**' इत्यादि श्रुतियों का अर्थ करने में आचार्य जी का क्या आशय है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि सर्वप्रथम

कर्तुमशक्यत्वेन जीवदोषेण ब्रह्मणोदोषवत्त्वस्यापरिहार्यत्वात्।

वस्तुतस्तु न श्रोत्रेन्द्रियमाकाशः। किन्तु सर्वाणि तान्यभौतिकान्येव तदुक्तम्–'अभिमानोऽहंकारस्तस्माद्‌गणश्चषोडशकः। तस्मादपि षोडषकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि।' न चेन्द्रियाणामभौतिकत्वे सर्वत्र तेष्विन्द्रियेषु

जीवपरेशयोः परस्परं भेदोपि स्पष्टतया प्रतिभाति। एतेन जीवेश्वरयोः पराभिमत औपाधिको भेदः स्वभावाभेदश्च पराकृतो भवति। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः इति श्वेताश्वतरीयवचनम्। अयं परमात्मा यो हि स्वेतरप्रकृतिं यां सत्वरजस्तमोगुणानां सामान्यावस्थारूपांमन्यन्ते तद्विदः। तथा तत्कार्यरूपाम् तथा तत्कार्यशरीरादीनां प्रकारी जीवः, एतेषां स्वामी अधिष्ठाताजीवः। एतयोः स्वामी एतेषां प्रकतितत्कर्याजीवानां नियामकः परमात्मैव भवति। एतावता प्रकृतिजीवपरमेश्वराणां स्वरूपतो गुणतश्चभेदः स्वाभाविकोभेदः प्रसिद्ध्यति यद्यपि प्रकृतिजीवेशानां परस्परो भेदो लोकतोऽनुमामादिभ्यश्चप्रसिद्ध एवेति तत्साधनं नातीवप्रयोजनकम्। तथापि ये प्राज्ञं मन्यमानाः अभेदश्रुतिदर्शनेनैतेषु औपाधिकभेदं स्वाभाविकमभेदमेवेच्छन्ति तन्मतं व्यावर्तयितुं प्रकृतश्रुतिमुदाहृत्यैतेषां भेदः श्रुत्यैव प्रसिद्ध्यतीति दर्शितवान्। येन संसारसागरतर्तुमिच्छतां भेदज्ञानादेव संसारतरणं भवेदित्याशायेति। न केवलं परमात्मा प्रकृत्यादिप्रतियोगिकभेदवानेव, किन्तु

घटक श्रुति तथा भेद श्रुति के अविरुद्ध रूप में अभेद श्रुति का अर्थ करना आवश्यक है। '**सर्वंखल्विदं ब्रह्म**' यह परिदृश्य मान सभी जड चेतन पदार्थ ब्रह्म स्वरूप है। '**तत्वमसि**' हे श्वेतकेतु! यह जो जगत् का कारण सर्वज्ञत्वादि गुण विशिष्ट तथा सर्व दोषरहित जो पारमात्मा हैं उसका स्वरूप ही तुमहो, अर्थात् जीव ब्रह्म में अभेद है अत्यादिक जो श्रुति समुदाय हैं ये सब अभेद श्रुति हैं ये सब जगत् और ब्रह्म में तथा जीव और ब्रह्म में अभेद का प्रतिपादन करती है। एवं '**द्वा सुपर्णा**' इत्यादि भेद प्रतिपादक श्रुति समुदाय जगत् तथा ब्रह्म में और जीव तथा ब्रह्म में भेद का प्रतिपादन करते हैं। ये दो प्रकारक श्रुतियां परस्पर विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करती हैं ऐसा आपाततः प्रतीत होता है। इन दोनों में जो विरोध प्रतीत होता है उसका निराकरण आवश्यक है अन्यथा 'भेद प्रतिपाद तथा अभेद प्रतिपादक श्रुतियों में परस्पर विरोध होने से अप्रामाणिकत्व हो जायगा, इसलिये इन दोनों श्रुतियों में परस्पर प्राप्त विरोध को हटाकर के समन्वय करना आत्यावश्यक है। अतः इन दोनों में समन्वय करने के लिये '**यः पृथिव्यां तिष्ठन्**' इत्यादि अनेक श्रुतियां हैं जो तत्तत् शाखाओं में उपलब्ध होते है। इन्हीं श्रुतियों को घटक श्रुति अर्थात् भेद श्रुति तथा अभेद श्रुति में आपाततः प्रतीयमान विरोध का शमन करती है तथा दोनों में सामञ्जस्य

भौतिकत्वव्यवहारः कथं भवतीति वाच्यम् भूतैस्तेषामाप्यायनं परिपोषणं भवतीति कृत्वा तथा व्यवहारादिन्द्रियाणां न तु भूतकार्यत्वात्। सात्विकाहंकारेणेन्द्रियाणामुत्पत्तेः श्रीपराशरादिभिः प्रतिपादनात् 'तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश। एकादशं मनश्चात्रदेवा वैकारिकाः

अनन्तकल्याणगुणानामाकारोऽपि भवतीत्याशयेन 'गुणेशः' इत्यादिविशेषणं श्रुतौ निर्दिष्टम् एतावला निर्विशेषब्रह्मवादोऽपि परास्तः। येऽपि स्थूलत्वादिगुणनिराकरणपरका आगमाः ते आगमाः प्राकृतान् हेयगुणानेव परमेश्वरे प्रतिषेधति, न तु श्रुतिप्रतिपादितकल्याणगुणान् निराकुर्वन्तीति भावः। नच वाच्यं 'निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यंनिरञ्जनम्' (श्वे ०६।१९) इत्यादिभिर्वेदवचनैर्ब्रह्मणो निर्गुणत्वे तस्य मानसव्यापाररूपज्ञानसाध्यत्वादन्यविधया भक्तेरूपायत्वासम्भवादिति। निर्गता निकृष्टाः सत्वादयः प्राकृता गुणा यस्मात्तन्निर्गुण-मितिव्युत्पत्तेर्निकृष्टगुणराहित्यमेवर्गुणत्वम्। तथैव च सत्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः। स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु' 'योऽसौ निर्गुणः प्रोक्तः शास्त्रेषु जगदीश्वरः। प्राकृतैर्हेयसत्त्वाद्यैर्गुणैर्हीनत्वमुच्यते।(वि. पु०) इत्यादौ प्रतिपादितत्वात्प्राकृ-तसत्वादिगुणनिषिद्धे सति ब्रह्मणोदिव्यगुणाश्रयत्वसिद्धेः' (आनन्दभाष्यम् १।१।२)

प्रतिपादन करती है इसलिये इन श्रुतियों को घटक श्रुति कहते हैं। इन घटक श्रुतियों का प्रतिपाद्य अर्थ यह है कि सर्व जगत् कारणीभूत परमात्मा ब्रह्म सभी की अन्तरात्मा है और चेतन अचेतन सकल जगत् उस परमात्मा का शरीर है अर्थात् विशेषण प्रकार है, परमात्मा विशेष्य शरीरी प्रकारी हैं और जड चेतन पदार्थ प्रकार विशेषण-प्रकार है इसलिये जगत् एवं ब्रह्ममें शरीरात्मभाव रूप सम्बन्ध है ऐसा फलित होता है। इससे भेद प्रतिपापक तथा अभेद प्रतिपादक श्रुतियों में परस्पर समन्वय हो जाता है। इसलिये प्रथमतः घटक अनेक प्रकारक '**यः पृथिव्यां तिष्ठन्**' इत्यादि अन्तर्यामी प्रकरणस्थ श्रुत्यन्तरस्थ वाक्यों के अर्थ का प्रतिपादन आचार्यजी ने किया, विरोध शान्ति के लिये।

इसके बाद भेद प्रतिपादक श्रुतियों को उधृत करते हैं '**द्वा सुपर्णा सयुजासखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति**' यह मुण्डको पनिषत् का वचन है अर्थात् समान गुणवाले एवं एक अधिकरण में रहने के कारण मित्रभाव को प्राप्त किये हुए दो पक्षी के समान पक्षी एक शरीर रूप वृक्ष को आश्रय लेकर के निवास करते हैं, उन दोनों में से एक पक्षी अर्थात् जीव स्वकर्म कृत सुखात्मक फल का उपभोग करता है। दूसरा परमेश्वर फलभोग के बिना ही प्रकाशमान हो कर के सदानिवास करते हैं, यहां पक्षिद्वय के रूप में जीवात्मा तथा परमात्मा कहे

स्मृता:' इति तथैव जगद्गुरव: श्रीश्रियानन्दाचार्या:- 'इन्द्रियाणिहि जातानि चाहङ्कारात्तुसात्त्विकात् । अनुग्राहकता चाथ राजसाहङ्कृतेरिह ॥१००॥' इति । ततो नेन्द्रियाणि भौतिकानीति । तस्मात् सर्वव्यापकेनिरवयवे परब्रह्मणि सर्वोपाधिसंसर्गजनितो दोषोऽनिवार्य एव द्वैताद्वैतमते भवति । तथा तै:

इत्याचार्येक्ते: । अनेनोपर्युक्तक्रमेणोपर्युक्तानेकश्रुतिप्रमाणेन जीवप्रकृतिपरेशानां परस्परं भेद: समर्थित: । तत्र न कवलं श्रुतिबलेनैव जीवप्रकृतिपरमेश्वराणां परस्परं भेद: शरीरात्मभावश्च समर्थितो भवति, अपित्वेतासां श्रुतीनामर्थोपोद्बलकस्मृतिपुराणेतिहासादिभिरप्येतासामर्था: प्रमाणिता भवन्तीति कृत्वा, स्मृतिपुराणेतिहासवचनान्यपि दर्शयितुमुपक्रमते जगत्सर्वं शरीरं ते । इत्यादि तत्र प्रथमत आदिकवेर्वाल्मिकेर्वचनं समुदाहरति-'जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलमिति ।' अयमर्थ:-हे भगवन् श्रीराम ! स्थूलसूक्ष्मजड़चेतनसाधारणं परिदृश्यमानं प्रत्यक्षादिप्रमाणोस्थापितं निखिलमेव जायमानं जगत् भवत: शरीरं विशेषणमेव । तथा पृथिव्यां ये यं स्थिरतानैश्चल्यमेवरूपेण सर्वदाऽवस्थानात्मकचलनादिधर्मविवर्जितमिति यावत् । तदपि भवत एव । अर्थात् कृपयैवैकरूपेण पृथिवीसमानरूपेण सर्वदाऽवस्थितेति अनेनादिकवेर्वचनेन जगत् परमेश्वरयो: शरीरात्मभावरूपसम्बन्ध: सुस्पष्टं प्रतिपदितो भवति ।

जाते हैं, वे दोनों चेतन रूप से समान गुणवाले हैं तथा सहवासी होने से मित्र भी हैं, जिस प्रकार वृक्ष नश्वर है उसी तरह नश्वर शरीर रूपी एक आश्रय को लेकर के निवास करते हैं इन में से एक जीव रूप पक्षी फल भोक्ता होता है, दूसरा ईश्वर रूप पक्षी फल भोक्ता न होता हुआ भी सर्वदा प्रकाशमान रहता है इस श्रुति से एक शरीर में जीवात्मा तथा परमात्मा की स्थिति तथा उन दोनों में भेद भी स्पष्ट होता हैं । **'अन्त: प्रविष्ट: शास्ता जनानाम्'** अर्थात् अन्त: प्रविष्ट होकर के परमात्मा प्रत्येक प्राणियों का शासन करते हैं इसलिये सर्वात्मा परमात्मा है । परमात्मा को सब पदार्थों के साथ स्वरूपैक्य नहीं है। **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवत्' 'सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्'** यह छान्दोग्य का षष्ठ प्रपाठक का वाक्य है । अयमर्थ :-वह सर्वान्तर्यामी परमात्मा जगदन्तर्गत सर्व पदार्थों की सृष्टि कर के सृष्ट उन पदार्थों में अनुप्रविष्ट हो गया और उन में अनुप्रवेश कर के विकार रहित जीवों में तथा विकार शील जड पदार्थ के रूप को धारण कर लिया । परन्तु इन पदार्थों के रूप को धारण कर भी वह स्वयं तो निर्विकार ही रहा । इस वाक्य से सिद्ध होता है कि जड चेतन पदार्थों में अनुप्रविष्ट हो कर के पर ब्रह्म उन पदार्थों में होने वाले नाम रूप को तो प्राप्त करता है परन्तु उनके साथ स्वरूप से एकत्व नहीं होता है । अत एव परमात्मा सर्वदा निर्विकार ही रहता है । यदि परमात्मा को जड चेतन के साथ स्वरूपत: एकता होती तब वह निर्विकार नहीं रह सकता ।

परमेश्वरस्य स्वरूपपरिणाम: स्वीक्रियते इति निर्विकारता प्रतिपादकश्रुतिविरोधोप्यापतत्येव ब्रह्मणो निरवयवतापि दत्ततिलाञ्जलिरेव भवति । न च ब्रह्मणो न परिणाम: किन्तु तदीयशक्तेरेव तत्तद्रूपेण परिणामो भवतीति वाच्यम्- विकल्पासहत्वात्, किं सा शक्तिर्ब्रह्मण: कार्यरूपा तदन्या वा ?

दृश्यते च लोकेपि देहिन: स्थिरत्वे तदवयवतद्विशेषणीभूततद्देहस्यापि निश्चलत्वम् तद्वदेव कारणस्य निश्चलत्वे सत्वे एव तदवयभूतपृथिव्यादेरपि तथात्वम् 'कारणगुण:कार्यगुणारंभकत्वादिति ।

यत् किंचित्सृज्यते येन सत्वजातेनवैद्विज ! तस्य सृज्यस्य संभूतौ तत्सर्वं वै हरेस्तनुरिति । विष्णुपुराणीयं वचनम् । अस्यार्थस्तु हे द्विज ! यस्य यस्य च कार्यस्य समुत्पत्तये यत् यत् कारणं सहकारितया अपेक्षितं भवति, अर्थात् कार्यस्य यत्कारणं भवति । यथा घटादिकार्योत्पत्तये कपालदण्डचक्रचीवरसलिलादिकमपेक्षितं सत् कारणं भवति तस्य तस्य कार्यस्य समुत्पादकं कारणं सर्वमेव कारणं परमकारणस्य भगवतो विशेषणीभूतं सत् शरीरमेव भवतीति । एतावता प्रपञ्चब्रह्मणो: शरीरात्मभावाख्य एव सम्बन्ध: प्रसिद्धयतीति । अर्थात् सर्वमपि सृज्यमानं कार्यं तथा तदुत्पादकंसर्वमपि चेतनजडसाधारणं

एवं **'अनेन जीवेनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणी '** इसका यह अर्थ है कि परमात्मा ने सङ्कल्प किया कि हम पृथिवी जलादिक जड पदार्थों में जीवात्मा के द्वारा प्रवेश करके नामरूपों को बनाऊँ इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मने पहले जीवात्मा में प्रवेश कर के अर्थात् जीव के स्वरूप में सर्वत्र व्याप्त हो कर के उस जीव के द्वारा जड पदार्थों में अनुप्रविष्ट हो कर के नाम रूपों का निर्माण किया है । अर्थात् सब जड पदार्थ जीव पर निर्धारित हैं जीवों के नियन्त्रण में रहे और वे सब जीव मुझ परमात्मा पर आधारित रहें अर्थात् परमेश्वर के नियन्त्रण में रहें । अर्थात् इन जड पदार्थों का वाचक नाम शब्द इन पृथिव्यादि जड पदार्थों को बतला कर के उन जड पदार्थों में आत्मा के रूप में अवस्थित जीवों को बतलाते हुए उन जीवों में अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान मुझ परमेश्वर को भी वतलावें अर्थात् परमात्मा का भी वाचक बनें, इन वस्तु को सिद्ध करने के लिये परमात्मा यथोक्त रूप से संकल्प कर के नाम रूपों का सर्ग करते हैं । उपर्युक्त श्रुति गण से भी शरीरात्म भाव का प्रतिपादक होने से घटक श्रुति कहलाते हैं । इसके बाद शुद्धभेद प्रतिपादक श्रुतियों का उल्लेख किया जाता है ।

'पृथगात्मानं प्रेरितारञ्च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ।' अर्थात् जीवत्मा तथा जीव के प्रेरक परमात्मा को पृथक् पृथक् रूप से जान कर के साधक पुरुष परमेश्वर की प्रीति का विषय बन जाता है, तदनन्तर वह उपासक तादृशभेद ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त करता है । इस वचन से सिद्ध होता है

उभयत्रापि स्वरूपपरिणामस्यावर्जनीयत्वेन द्वैताद्वैतवादोनयुक्तियुक्तः प्रतिभाति । अतोऽत्रप्रकरणे जगद्गुरुश्रीश्रियानन्दाचार्याः- 'तत्त्वमसि श्रुतावुक्तो ह्यभेदो ब्रह्मजीवयोः । स्वभावात्तावभिन्नौ तन्मते भास्करसम्मते ।

यथा यथा कारणरूपेण व्यवस्थितं तत्सर्वमेव हरेर्जीवान्तं सर्वकर्मविनाशकमोक्षप्रदायकस्य भगवतो रामस्य तनुरेव, अर्थात् भगवतो विशेषणात्मकं शरीरमेवेति । अनेनापि वचनेन विष्णुपुराणवचनेन प्रपञ्चब्रह्मणोः शरीरात्मभावसंबन्ध एव साधितो भवतीति सिद्धम् ।

तथा-'अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव चेति' गीतास्थं श्रीवेदव्यासवचनम् । **एतदर्थस्तु हे गुडाकेश ! तत्र गुडाका नाम निद्रा तस्या ईशो गुडाकेशः निद्राजित इत्यर्थः । यथा वयं श्रान्ता वयं यावन्निद्रामनुभवामस्तावत्पुनः कार्यान्तरकणे नो समर्था भवामः । किन्तु अलभ्यापिनिद्रामतन्द्रित एव यथापूर्वं कार्यान्तरं करोत्येवेत्यातोऽयं गुडाकेश इति कथ्यते । हे अर्जुन ! अहं परमात्मा सर्वप्राणिनां हृदयेऽन्तर्यामिभवन् आत्मरूपेण सवदैवावस्थितः नतु समाधिकाले एवावस्थितो भवामीति अनेनापि वचनेन प्रपञ्चब्रह्मणोः शरीरात्मभावरूप एव सम्बन्धः स्पष्टतयैव प्रतिभासते एवं** सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहं नं च । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेद

कि जीव तथा परमेश्वर में भेद है तथा एतादृश भेद ज्ञान ही तत्त्व ज्ञान है। एवं **'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म मेतत्'** यह भी श्वेताश्वतर उपनिषत् का ही वचन हैं। इसका अर्थ यह है-भोक्ता जीव क्योंकि जीव स्वकृत कर्मफल सुख दुःख का भव परंपरा से भोग किया है तथा करता है, भोग का विषय जड पदार्थ तथा सर्व प्रेरक परमेश्वर को जान कर के इस प्रकार मैंने तुम को त्रिविध ब्रह्म को बतला दिया है। ब्रह्म का त्रैविध्य यह है कि परमेश्वर जीव का अन्तर्यामी होकर रहते हैं, जड पदार्थ पृथिव्यादिक का भी अन्तर्यामी होकर के रहते हैं तथा स्वरूप से भी ईश्वर रहते हैं, यही त्रिविध ब्रह्म हैं। इस वचन से सिद्ध होता है कि जड पदार्थ जीव एवं परमेश्वर में परस्पर भेद है। एवं परमेश्वर में तीन प्रकार होता है-जीवों का अन्तर्यामी बनकर रहता है-यह एक प्रकार होता है। दूसरा प्रकार है जड का अन्तर्यामी बन कर के रहता है, और तृतीय प्रकार है कि स्वस्वरूप में सर्वदा बना रहता है।

कठोपनिषत् का वचन यह है-'**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधातिकामान्**' नित्य चेतन परमेश्वर नित्य चेतन अनेक जीवों को काम्यमान अनेक फलों को सिद्ध करते हैं। इस वचन से सिद्ध होता है कि ईश्वर नित्य है एक है तथा चेतन है तथा जीवों में भी अनेकत्व नित्यत्व और चेतन की सिद्धि होती है। यह श्रुति स्पष्ट रूप से जीवेश्वर में भेद का प्रतिपादन करती है। '**प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः**' यह भी श्रुति खण्ड श्वेताश्वतरोपनिषत् का ही है। इसका यह अर्थ होता

भेदस्त्वौपाधिकस्तत्र देवादिभेदतो मतः । ब्रह्माचितौमतौ तत्र भिन्नाभिन्नौ स्वभावतः ॥ उपाधिब्रह्मभिन्नं न तत्त्वं मतं हि तन्मते । ततश्चौपाधिका दोषा भवेयुर्ब्रह्मणि ध्रुवम् ॥ ततोऽपहतपाप्मादिश्रुतिकोपा हि सम्भवेत् । ननूपाधिविशिष्टस्य ब्रह्मदेशस्य जीवता । जीवदोषा ततो नस्युर्ब्रह्मणि

विदेव चाहम् । इत्यपि **अहमेव परमेश्वरः सर्वनियामकः सर्वस्य जन्तुजातस्य हृदये आत्मरूपेणावस्थितः । मदवस्थानादेव सर्वजन्तूनामतीतपदार्थविषयकं स्मरणं विस्मरणं वा भवति । तथा सर्वैरपि वेदवचनैरहमेववेद्यो भवामि । 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च संचरन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि, ओमित्येतदितिश्रुत्यन्तरात् । अनेनापि भगवद्वचनेन प्रपञ्चजीवयोः ब्रह्मणा सह शरीरात्मभाव एव सम्बन्धः सिद्ध्यति । सोऽयं शरीरात्मभावसम्बधो जडादीनां परमात्मना सह भवतीति वेदहृदयविद्भिः श्रीपराशरादिभिरेवोपवर्णितः । तदनुसारिभिरस्मत्सकलपूर्वाचार्यैरस्माभिरपि ब्रह्मणा सह तथैव शरीरात्मभावलक्षणसंबन्ध एवोपपादितः । न तु कदाग्रहग्रहगृहीतासन्त एवं क्रमः प्रदर्शितः । शिष्टंस्पष्टमेवं प्रकारेण श्रुतयो ब्रह्मणः सर्वशरीरकत्वं प्रतिपाद्य तदीयं**

है कि-परमेश्वर प्रकृति तथा जीव के स्वामी-मालिक हैं तथा ऐश्वर्यादिक षट् गुण सम्पन्न हैं, इससे भी सिद्ध होता है कि जीव प्रकृति तथा परमेश्वर में भेद सिद्ध है वह स्वाभाविक है नतु औषाधिक है। **'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ'** अर्थात् उत्पन्न नहीं होनेवाले दो तत्व हैं-उन में एक ईश्वर तत्व है तथा दूसरा जीव तत्व है। इसमें ईश्वर सर्वज्ञत्वादि गुण युक्त हैं तथा जीव अल्पज्ञ तथा पराधीन है। इसप्रकार ईश्वर तथा जीव में स्वाभाविक भेद सिद्ध होता है।

उपर्युक्त श्रुति वचनों से सिद्ध होता है कि प्रकृति जीव तथा परमेश्वर ये तीन तत्व हैं और ये तीनों परस्पर भिन्न भिन्न हैं। जीव से भी ईश्वर भिन्न हैं, इनमें अभेद नहीं है। इसके बाद जीवेश्वर में भेद का साधक पुराणादि वचनों का उद्धरण देते हैं-'**जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यंते वसुधातलम्**' यह वाल्मीकीय श्रीमद्रामायण का वचन है, इसका यह अर्थ है कि हे भगवन् ! यह सम्पूर्ण जड चेतन साधारण जगत् आपका शरीर है प्रकार विशेषण है, एवं पृथिवी में विद्यमान जो स्थिरता धर्म है वह भी आपके अधीन है। श्रुत्यर्थ का प्रकाशक इन वचनों से जगत् और परमेश्वर में शरीरात्मभाव लक्षण सम्बन्ध सिद्ध होता है अर्थात् पृथीवि शरीर है तथा परमात्मा उसकी आत्मा है। विष्णु पुराण में भी एतदर्थ साधक वचन उपलब्ध होता है '**यत् किञ्चित् सृज्यते येन सत्वजातेन वै द्विज ! । तस्य सृज्यस्य संभूतौ तत्सर्वं वै हरेस्तनुरिति ।**' अर्थात् हे ब्रह्मण ! जिन जिन पदार्थों से जो जो पदार्थ बनाये जाते हैं, उन सृज्यमान पदार्थों की उत्पत्ति होने में जो जो पदार्थ कारण रूप से अपेक्षित होते हैं वे सब कारणीभूत पदार्थजात श्री भगवान्

निरुपाधिके ॥ मैवं ब्रह्मण्यनित्यत्वं तथा सावयवत्त्वतः । नित्यत्त्ववादिनीनां च श्रुतीनां स्याद्विरोधिता । समीचीनं न तद्भाति भास्कराचार्यसम्मतम् ॥ (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५।५९।६४) इति शम् ।

वैभवमेव प्रतिपादयन्ति । एतादृशब्रह्मवैभवं दर्शयितुं 'तत्त्वमसि' तथा 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' इत्यादिकाःश्रुतयोऽभेदप्रतिपादिकाः प्रवृत्ताः । इमा अभेदप्रतिपादिकाः श्रुतयो विभिन्नविभिन्नविशेषणं दर्शयन्त्यस्तत्त्वयोः पदार्थयोरैक्यं बोधयन्ति । अयमेव समानाधिकरणनिर्देशः कथ्यते इतिदिक् ।

विशिष्टाद्वैतमते घटकश्रुतिभेदश्रुत्योरर्थाविरोधेनाभेदश्रुतेरर्थवर्णनं कुर्वन् तत्त्वमस्यादिवाक्यघटकतत्त्वयोः पदयोः सामानाधिकरण्यं शक्तिद्वारेणैव भवतीत्येवं सर्वकारणे निर्मले परब्रह्मणि न कोऽपि दोषः पदमादधातीति गतप्रकरणेन प्रतिपाद्य संप्रति मतान्तरे दोषदर्शनाय ब्रह्मणि सदोषतां च प्रतिपादयितुमुपक्रमते जगदाचार्यः शांकरादिमतेषु इत्यादि । अयंभावः शंकरमते 'तत्त्वमसीत्यत्र' तत्पदं सर्वज्ञत्वादिधर्मविशिष्टं चैतन्यमुपस्थापयति, तथा त्वं पदमल्पज्ञविशिष्टं जीवचैतन्यमुपस्थापयति । ततश्च

श्री रामजी का शरीर है। जिस तरह पार्थिव घटादि पदार्थ की उत्पत्ति साक्षात् कारण पृथिवी तथा सहकारी कारण जो जलादिक पदार्थ हैं ये सब कारणत्वेन अपेक्षित पदार्थ भगवान् का शरीर है इस वचन से सिद्ध होता है कि जगत् और परमेश्वर में शरीरात्मभाव रूप सम्बन्ध है। भगवद्गीता में भी भगवान् के वचन रूप में वेदव्यास जीने कहा है-'**अहमात्मा गुडाकेश ! सर्वभूताशयस्थितः । अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव चेति ।**' अर्थात् हे गुडाकेश जितेन्द्रिय अर्जुन ! सभी प्राणियों के हृदय में मैं भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा के रूप में व्यवस्थित रहता हूँ मैं ही प्राणियों का आदि, मध्य तथा अन्त हूं। इस भगवत् वचन से भी शरीरात्मभाव रूप सम्बन्ध स्पष्ट से प्रतीत होता है। एवं '**सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेवचाहम्**' यह भी वचन गीता में उपलब्ध होता हैं ! अर्थात् हम सब प्राणी के हृदय में अवस्थित रहते हैं। हम से ही स्मृति ज्ञान तथा विस्मरण जीवों को होते रहते हैं, सभी वेदों से मैं ही वेद्य हू मैं ही वेदान्त कर्ता हूं तथा वेद का कर्ता हूं। इस वचन से भी शरीरात्मभाव सम्बन्ध की ही सिद्धि होती है। इन पूर्वोक्त श्रुति से तथा पूर्वाचार्य महर्षियों के वचनों से यह सिद्ध होता है कि परमात्मा सब की आत्मा हैं तथा जड चेतन पदार्थ परमात्मा के शरीर हैं और शरीर का स्वभाव है कि वह आत्मा के प्रति सर्वदा विशेषण बन कर के ही रहता है, शरीर आत्मा में ऐसा स्वभाव है कि आत्मा को छोड कर के शरीर रह नहीं सकता है जब शरीर रहेगा तब आत्मा का विशेषण होकर के ही रहता हैं। अर्थात् आत्मा तथा जड चेतनरूप

॥ यादवप्रकाशीयनिरुपाधिकद्वैताद्वैतमतनिराकरणम् ॥

एतेन यादवमतमपिनिरस्तं भवति । एतन् मते जीवब्रह्मणोर्भेद-वदभेदस्यापि स्वीकारेण जैवीयसुखदुःखाभ्यां परमेश्वरस्यापि संस्पृष्टतया जीववत्परमेश्वरस्यापि दुःखित्वेन परमेश्वरे निर्दोषत्वप्रतिपादकश्रुती-

शक्त्योपस्थितयोर्द्वयोरैक्यासंभवेन तत्पदं विशेषांशं त्यजति, त्वं पदमपि विशेषणं परित्यज्य लक्षणया द्वे अपि पदे विशेष्यं चैतन्यमात्रं बोधयतस्ततश्चद्वयोश्चैतन्ययोरभेदः प्रतिपादितो भवतीति । एवं सति तत्त्वयोः सामानाधिकरण्यं न भवति । यतः 'विभिन्न विशेषणमुपस्थापयतोः शब्दयोरिकस्मिन् विशेष्येपर्यवसानमेव सामानाधिकदण्यमिति तद्विदां लक्षणम् । परन्तु नैतन्मतेप्रकृतलक्षणस्यनिर्वाहः । प्रत्युतद्वेऽपि तत्वं पदे त्यजत एव विशेषणे । तस्मान्नात्र द्वयोः पदयोः सामानाधिकरण्यलक्षणं निर्वहति । एवं जघन्यवृ-त्तेर्लक्षणाया आश्रयणमपिभवतीत्यपि दोषो भवति । यद्यपि 'आदित्यो यूपः' 'कृष्णलंश्नपयति' इत्यादिस्थले वैदिकेऽपि कर्मणि लक्षणाश्रयणं कृतमेवेति लक्षणाश्रयणं न दोषाय, तथापि तत्र दृष्टान्ते प्रत्यक्षादिबाधे सति शक्यार्थत्यागंकृत्वा लक्षणाश्रिता । प्रकृते तु शक्यार्थयोः सामानाधिकरण्यनिर्वाहे सति स्वमनीषामात्रेण लक्षणाश्रयं दोषाय

भगवान् के शरीर में ऐसा विलक्षण यह शरीरात्म रूप सम्बन्ध है कि जिस से शरीर आत्मा को छोड कर के कभी भी जीवित नहीं रह सकता है। यद्यपि शरीर तथा आत्मा में स्वरूप भेद तदा धर्म भेद रहने पर भी यदि शरीरात्मभाव सम्बन्ध के अति सुदृढ होने से कदाचित् शरीर धर्म का आत्मा में संक्रमण हो जाय तथा आत्मा धर्म का शरीर में भी संक्रमण हो जायगा, जिस तरह अग्नि के सम्बन्ध से लोहा में भी दाहकत्व हो जाता है यथा वा महापातकी के सम्बन्ध से विशुद्ध ब्राह्मण भी पातकी हो जाता है । तथापि गाढ सम्बन्ध होने पर भी इन दोनों में परस्पर धर्म सांकर्य नहीं होता है क्योंकि गाढ सम्बन्ध होने पर भी असंकीर्ण धर्म को लेकर के ही इन दोनों को रहने का स्वभाव है। परमात्मा चेतन अचेतन रूप शरीरों में अन्तरात्मा के रूप में गाढ सम्बन्ध रखने पर भी विशेषणीभूत शरीरों दोष से सर्वदा असंस्पृष्ट ही रहते हैं जलस्थ कमल पत्र की तरह ब्रह्म विशेषणगत दोष से कभी भी स्पृष्ट नहीं होते हैं । यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तब घटादि पदार्थ के दर्शन काल में भी तत् तत् शरीरक ब्रह्म का ही दर्शन होता है '**दृश्यते त्वग्रयाबुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**' इत्यादि श्रुत्यन्तर में कहा है। यद्यपि साधारणरूप से बुद्धि स्थूल चेतनाचेतन पदार्थ का ही ग्रहण करती है-'**परांचिखानि व्यतृणत् स्वयंभूः**' इत्यादि श्रुति कहती है, तथापि यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो सर्वत्र तत्तच्छरीरक ब्रह्म का ही ग्रहण होता है-'**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैच्छत्**' इति श्रुतेः । एतादृश सूक्ष्म बुद्धि में पदार्थ मात्र विशेषणरूप में तथा ब्रह्म विशेष्यरूप में भासित होते हैं। जिस तरह द्रव्य घटादि पदार्थ के ग्रहण समय में द्रव्यगत गुणक्रिया

नामप्रामाणिकत्वप्रसङ्गस्यानिराकरणात् । मध्यमपक्षवत् तृतीयपक्षेऽपि सर्वदोषा उदाहर्तव्या इति ।

अयमभिप्रायः- यादवाचार्यो हि-परमेश्वरः स्वकीयस्वरूपेण देवमनुष्यादिरूपेण परिणमते तथा स्थावरादिभेदेनापि परिणमते इति सर्वस्य परमेश्वरात्मकत्वं प्रतिपादयतीति तन्नसमीचीनम् तथा मृद्द्रव्यजातस्य

भवति । किञ्च सर्वगुणाकरे सर्वहेयदोषवर्जितेसर्वेश्वरे दोषवत्त्वापत्तिरपि न निर्वारिता भवति । तथाहि 'अस्थूलमनणु' इत्यादिश्रुतिं पुरस्कृत्य ब्रह्मणो निर्धर्मकत्वं स्वीकृत्य सर्वकल्याणगुणेभ्यः परमेश्वरं वञ्चयति । तथा-'आश्रयत्वविषयत्वभागिनीनिर्विभागचितिरेवकेवला । पूर्वसिद्धतमसो हि पश्चिमो नाश्रयो भवति नापि गोचरः' इति तदीयनियमात् । सकलसंसारकारणाज्ञानलक्षणदोषाश्रयत्वस्य ब्रह्मणि स्वीकारेण ब्रह्मणोदोषवत्वानपायात् । यद्यपि-अध्यस्तकृतदोषगुणाभ्यामधिष्ठानं नोपलिप्यते तथापि

जात्याजिक का विशेषण रूप से ग्रहण होता है तथा द्रव्य घटादिक का विशेष्य रूप से भान होता है, तो जिसप्रकार जाति गुण क्रियादिक द्रव्य के साथ साथ ही एक एक ज्ञान में भासित होते हैं उसी तरह चेतन तथा जड साधारण प्रपञ्च ब्रह्म के साथ साथ ही एक ज्ञान में भासने लगता है। उस समय में ज्ञान बुद्धि चेतनाचेतन साधारण संसार शरीरक ब्रह्म का ही उपर्युक्त बुद्धि ब्रह्म का ही सर्वत्र दर्शन करती है, ब्रह्म ही तत्तत्पदार्थों के रूपों को धारण करता हुआ दृष्टि गोचर होता है। इसी प्रकार से श्रुति ब्रह्म को चेतनाचेतन शरीरक कह कर के ब्रह्म के वैभव का प्रतिपादन करती है कि इन सब पदार्थ को ब्रह्म शरीर रूप में धारण करता है। नियमन करता है, इन से उत्कर्ष को प्राप्त करता है, ये सब पदार्थ ब्रह्म के अत्यन्त परतन्त्र हैं अर्थात् ब्रह्म के अधीन हैं। ये सब पदार्थ ब्रह्म को नाना प्रकार से सुखोल्लास करने के लिये ही उत्पन्न हुए हैं।

इसप्रकार से उपर्युक्त प्रकार से ब्रह्म के वैभव को बतलाने के लिये ही-**'तत्त्वमसि' 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इत्यादि जीव ब्रह्म में परस्पर अभेद का प्रतिपादन करने के लिये प्रवृत्त होते हैं। ये सब श्रुति परस्पर विभिन्न विशेषणों को लेकर बताये गये दोनों पदार्थों में एकता वर्णन करती है। यह एकत्व शरीरात्मभाव सम्बन्धमूलक है, न तु औपाधिक भेदनिवृत्तिपूर्वक स्वाभाविक अभेदमूलक अन्यथा भेदप्रतिपादक श्रुतियों का तथा घटक श्रुतियों का सर्वथा बाध हो जायगा। इसलिये तत् त्वं पदों का समानाधिकरण निर्देश किया गया है इस समानाधिकरण निर्देश से शब्द की शक्ति के द्वारा न तु उभय पद में भाग त्याग लक्षणा के द्वारा सर्व चेतनाचेतन विशिष्ट ब्रह्म का ही कथन किया जात है, अर्थात् स्थूल चेतन जड विशिष्ट ब्रह्म का सूक्ष्म जड चेतन विशिष्ट ब्रह्म के साथ में एकत्व का समर्थन किया जाता है। समानाधिकरण पद का प्रयोग उस स्थल में किया जाता है, जिस स्थान में प्रयुज्यमान विशेषण विशेष्यवाचक पदद्वय विभिन्न विशेषण को बतलाते हुए एक ही विशेष्य को बतलावें। जिस तरह **'नीलो घटः'** यहां नील

घटादेर्यानि कार्याणि जलाहरणादीनितानि सर्वाण्यपि मृद्द्रव्यस्यैव भवन्तीति व्यवह्रियते । कुतः ? घटादीनां मृद्द्रव्येणाभेदात् । तथैव सर्वजीवेषु जायमानानि सुखदुःखादीनि परमेश्वरस्यैव भवेयुः । यत एतन्मते जीवपरमेश्वरयोः स्वरूपैक्यात् । ननु यथा मृद्द्रव्यस्य योंशो घटादिरूपेण

ब्रह्मण्यज्ञानाभावे तस्मिन् जगत्सर्जकत्वमेव न स्यात् । ब्रह्मण एव सर्वाधिष्ठानत्वस्यस्वीकारेण अविद्याश्रयत्वेन ब्रह्मणः सदोषतारूपदोषवत्वस्य वज्रलेपायितत्वादिदूषणजालं शांकरमतेऽनुसंधेयमिति संक्षेपः ।

स्यादेतत् प्रलयसमये एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मासीदिति श्रुत्या ज्ञातं भवति नतुचेतनाचेतनयोः सत्ताऽसीत् । तदाप्रलयमये चेतनाचेतनैः सह परमात्मनः शरीरात्मभाव संबन्धः कथमिवस्यादिति प्रश्नस्य समाधानमित्थं संप्रदायविद्भिः कृतम् । तथाहि-यथा प्रलये केवलस्य ब्रह्मणः सत्वमावेद्यते तथा श्रुत्यन्तरेण ब्रह्मजगत उपादानकारणं निमित्तकारणं च एवं सर्वविकाररहितोऽपि परमात्मेति श्रूयते । तत्र ब्रह्मणः कर्तृकारकत्वेन सत्यसङ्कल्पवत्त्वसर्वज्ञत्वादिकल्याणगुणाकरत्वं सिद्ध्यति परन्तूपादानकारणत्वनिर्विकारत्वयोस्तु परस्परं

शब्द नीलत्व अर्थात् नैल्य गुणरूप विशेषण को लक्षण द्वारा बतलाता है तथा घट शब्द शक्ति द्वारा घटत्व लक्षण जातिरूप विशेषण को बतलाता हुआ घटात्मक विशेष्य को बतलाता है अर्थात् दोनों पद एक ही घट का प्रतिपादन कर के समान विभक्तिक होने से अभेद रूप अर्थ प्रतिपादन करते हैं अभेद सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारक घटत्वावच्छिन्न विशेष्यताशाली शाब्दबोधत्वावच्छिन्नं प्रति स्वतन्त्र नीलपद समभिव्याहृत स्वतन्त्र घटपदत्व रूपाकांक्षा ज्ञानं कारणं भवतीति ।

उसी स्थल में समानाधिकरण शब्द का प्रयोग किया जाता है जहां विद्यमान विशेषण वाचक तथा विशेष्य वाचक पदद्वय परस्पर भिन्न भिन्न विशेषण को बतलाते हुए एक ही विशेष्य में पर्यवसित होते हों। यथा पूर्वोक्त **'नीलो घटः'** इसमें नीलरूप विशेषण नीलत्व प्रकार को समझाता है, तथा घट पद घटत्व को समझा कर के एक घट में पर्यवसित होते हैं अर्थात् नीलाभेद को घट में समझाते हैं। यह समानाधिकरण पद का प्रयोग प्रकृत में अर्थात् विशिष्टाद्वैत मत में शब्द शक्ति के द्वारा ही निर्वाहित होता है, इस मत में मतान्तर की तरह उभय तत्त्वं पद में भागत्याग लक्षणा का अनुसरण नहीं करना पडता है। यथा **'तत्त्वमसि'** यहां अभेद का निर्देश है तो इसमें तत् पद का वाच्य वह परमात्मा होता है जो कि सर्व जड चेतन जगत् का निदान कारण सर्व कल्याण गुणाकर तथा सर्व दोष रहित हैं एतादृश परब्रह्म तच्छब्द वाच्य है, क्योंकि तत् शब्द तथा त्वं शब्द में दोनों जगह प्रथमान्त विभक्ति रूप समान

परिमतस्तदंशस्यैव जलाहरणादिकार्येण सम्बन्धोभवति, किन्तु तदतिरिक्तो यावानंशोऽवशिष्टस्तदंशानां घटादिकार्येणान्वयो न भवतीति नियमः । तथैव प्रकृते परमेश्वरस्य यावानंशो जीवरूपेण परिणतो जातस्तदंशे एव परमेश्वरस्य दुःखानुसन्धानं भवति तदितरावशिष्टांशेकल्याणगुणा-

विरोध आपतति । यतः परिणामिकारणस्य मृत्तिकादेर्विकारवत्वस्य दर्शनात्, ब्रह्मणि विकाराभावे तस्योपादानतैव न स्यादिति तत्र परस्परविरोधसमाधानाय सांप्रदायिकानामयमभिप्रायः । तथाहि प्रलयकालेऽपि सूक्ष्मचेतनयोः सत्वं भवत्येव । अत एव प्रकृतिजीवयोरजत्वं नित्यत्वं चापि सिद्धमेव सूक्ष्मरूपेण प्रलयेऽपि तयोरवस्थानात् 'प्रकृतिं पुरुषञ्चैवविद्ध्यनादि उभावपि' इतिगीतोक्तेः । यदि कदाचित् प्रलये जीवस्य सत्तां न रोचयेत् तदा यागादिकर्मकर्तुजीवस्य देहेन सहभस्मीभूतत्वात् कालान्तरे तादृशकृतकर्मणः फलोपभोगं कः कुर्यादिति कृतहानिरकृताभ्यागमदोष आपतेदिति प्रकृतदोषनिराकरणार्थं जीवादेर्नित्यतागलेपतितेति कृत्वा तन्नित्यतासिद्ध्यति । ततश्च प्रलयसमये सूक्ष्मचेतनाचेतनाभ्यां विशिष्ट एवावतिष्ठते । तथास्वयं निर्विकाररूपत-याऽवस्थितोपि स्वविशेषणीभूतचेनाचेतद्वारेण जगदाकारेण परिणामभागपि भवति । अतो

विभक्तिकत्व है, इसलिये दोनों शब्द के अर्थ अभेद सम्बन्ध से होता है, और त्वं शब्द से प्रत्यक्षोपस्थित श्वेतकेतु जीव का अन्तर्यामी बना हुआ पर ब्रह्म प्रतिपादित होते हैं। एतादृश पर ब्रह्म जीव को स्वकीय शरीर बना कर के उस जीवरूप शरीर में सर्वदा अन्तरात्मा के रूप में अवस्थित रहता है, इसलिये वह परमेश्वर सर्वदा जीव विशिष्ट रहता है। समान विभक्तिक दोनों पद अर्थात् तत् तथा त्वं पद जगत्कारण ब्रह्म तथा जीव विशिष्ट ब्रह्म में अभेद का बोधक होता है। मतान्तर में '**सोयं देवदत्तः**' इस स्थल में पूर्व काल विशिष्ट देवदत्त तत् पद वाच्य होता है तथा इदं पद वर्तमान देशकाल विशिष्ट देवदत्त का बोधक है तो इन दोनों में अभेद बाधित है अर्थात् इन दोनों का अभेद मानें तब तो पूर्वकाल पूर्व देश तथा वर्तमान देश रूप विशेषण का भी अभेद होगा, यह तो प्रत्यक्षबाधित है। इस स्थिति में दोनों जगह में विशेषण अंश का त्याग कर के विशेष्यांश में अभेद किया जाता है भाग त्याग लक्षणा के बल से। इसी तरह '**तत्त्वमसि**' इस वाक्य में सर्वज्ञत्वादि विशिष्ट ब्रह्म तत् पद वाच्य है और अल्पज्ञत्वादि विशिष्ट त्वं पद वाच्य है, तो इन दोनों में शक्ति द्वारा अभेद के बाधित होने से लक्षणा वृत्ति द्वारा उभयपदोस्थापित चैतन्यों में अभेद सिद्ध करने के लिये लक्षणा का आश्रय करना पडता है। और लक्षणा क आश्रय करना अनन्य गतिक है, लक्षणा जघन्य वृत्ति है। जब शक्ति द्वारा कार्य की सिद्धि संभवित होता है, तब लक्षणा वेद वाक्य में क्यों माना जाय। परन्तु मतान्तर में लक्षणा के विना तो निर्वाह होता ही नहीं है। विशिष्टाद्वैत

करत्वमिति भवति सर्वसामंजस्यमिति तदपि न क्षेमाय, तथाहि ईश्वरो हि सर्वांशे दोषरहितोऽनन्तकल्याणगुणाकरश्चेति वस्तुस्थितिः । परन्त आंशिकदुःखादिसत्वे आंशिककल्याणगुणसत्वे जीववत् परमेश्वरस्यापि परमेश्वरत्वं हीयेत । यदि कदाचिदंशांशिनोर्भेदमाश्रित्य जीवेशयोर्भेदस्वीकृत्य

तादृशकृतकर्मणः फलोपभोगं कः कुर्यादिति कृतहानिरकृताभ्यागमदोष आपतेदिति प्रकृतदोषनिराकरणार्थं जीवादेर्नित्यतागलेपतितेति कृत्वा तन्नित्यतासिद्ध्यति । ततश्च प्रलयसमये सूक्ष्मचेतनाचेतनाभ्यां विशिष्ट एवावतिष्ठते । तथास्वयं निर्विकाररूपत-याऽवस्थितोपि स्वविशेषणीभूतचेनाचेतद्वारेण जगदाकारेण परिणामभागपि भवति ।
अतो जगत उपादानकारणं परमेश्वरः । ब्रह्मणि निर्विकारत्वं जगत उपादानत्वं च परस्परविरुद्धं मा भवत्विति कृत्वा सृष्टेः प्राक्कालेपि सूक्ष्मरूपेण चेतनाचेतनयोः सद्भावः सिद्धमेव । अन्यथा-निर्विकारत्वजगदुपादानत्वप्रतिपादकश्रुत्योः परस्परविरोधेनैकत्राप्रा-माणिकत्वमेव स्यात्, परन्तु तन्नेष्टं वेदस्य स्वतः प्रामाण्यमभ्युपगच्छताम् । प्रलयकाले च ब्रह्मसर्वज्ञत्वादिकल्याणगुणोपेतं तथा सूक्ष्मचेतनाचेतनरूपशरीरविशिष्टं सदवतिष्ठति । तदेव च ब्रह्मसर्गकालेस्थूलचेतनाचेतनशरीरविशिष्टरूपेणावस्थितं भवति । तत्र प्रलयकाले

उभयपदोस्थापित चैतन्यों में अभेद सिद्ध करने के लिये लक्षणा का आश्रय करना पडता है। और लक्षणा क आश्रय करना अनन्य गतिक है, लक्षणा जघन्य वृत्ति है। जब शक्ति द्वारा कार्य की सिद्धि संभवित होता है, तब लक्षणा वेद वाक्य में क्यों माना जाय। परन्तु मतान्तर में लक्षणा के विना तो निर्वाह होता ही नहीं है। विशिष्टाद्वैत में तो शक्ति द्वारा जगत कारण ब्रह्म में तथा जीव विशिष्ट ब्रह्म में अभेद की सिद्धि हो जाती है। इसलिये जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी सम्मत विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में लक्षणा न मानकर के शक्ति द्वारा निर्वाह प्रकार को बतला कर के एतदनुकूल तत्त्वमसि का निर्दुष्ट अर्थ किया जाता है। इसका विशेष विचार आनन्दभाष्य विवरण में किया हूं अतः वहीं देखें।

'**यः पृथिव्यां तिष्ठन्**' इत्यादि घटक श्रुति तथा-'**द्वा सुपर्णा सयुजा**' '**ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ**' इत्यादि भेद श्रुति एवं एतदुपबृंहक स्मृति पुराणादिकों का अनुरोध कर के 'अभेद श्रुति का जड चेतन साधारण प्रपञ्च परमेश्वर का शरीर है तथा परमेश्वर सब की अन्तरात्मा हैं इस प्रकार से अर्थ करने में कोई दोष नहीं होता है। प्रत्युत अभेद श्रुति का अर्थ निर्दुष्ट होता है। इस प्रकार से आचार्यजी ने पूर्व प्रकरण में व्यवस्थित कर के विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त ही सर्व श्रुति स्मृत्यादि से अनुमोदित होता है परन्तु तदितर मत श्रुति आदि के अनुकूल नहीं है। अतः इन लोगों के मत में दोष बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं '**शांकरादिमतेषु**' इत्यादि।

जीवगतदुर्गुणानां परमेश्वरे वारणमीहेत, तदा विशिष्टाद्वैतमते एव तवापि प्रवेश इतिप्रतिवादित्वान्निवृत्तस्याः । अर्थात् यथा जीवस्यैकस्मिन् कस्मिनंशेहस्ताद्यवयवे सुखसामग्र्या सुखं जायते तदितरावयव दुःखसामग्र्या दुःखं जायते इति न तादृशो जीवः सुखीति कथ्यतेऽपितु

विशेषणाभ्यां विशिष्टं भवति सृष्टौ च स्थूलाभ्यां ताभ्यामिति प्रलयेऽपि तयोः सद्भावोऽस्त्येवेति तदाहुर्जगद्गुरुश्रीदेवानन्दाचार्याः परिणामविमर्शे-

'उपादानं यतो ब्रह्म जगतोस्य मतं बुधैः ।
परिणतं यतो ब्रह्म जगद्रूपेण सम्मतम् ॥८॥
व्यासेनाप्रकृतिश्चेत्यादिकं हि सूचितं ततः ।
श्रीबोधायनवृत्तौ तद्व्याख्यातमेवमेव च ॥९॥
ब्रह्मणः परिणामोहिप्रकारद्वारको जगत् ।
विकारित्वं ततो द्वारे प्रकृतिपुरुषद्वये ॥१०॥
स्वरूपे च स्वभावे च विकारः प्रकृतेःखलु ।

सदोषत्वापत्तिरूप दूसरा भी दोष होता है । अर्थात् विशिष्टाद्वैतेतर मतों में सामानाधिकरण्य लक्षण की हानि होती है तथा सर्वथा कलङ्क रहित ब्रह्म में सदोषत्व प्रभृतिक भी दोष लगता है । इस प्रकरण का अभिप्राय यह है कि-स्वकीय विशेषण के रूप में विभिन्न धर्मों का प्रतिपादन करते हुए दो पद यदि एक ही विशेष्य में पर्यवसित हों तो इसी का नाम होता है सामानाधिकरण्य लक्षण, तथा-'**नीलो घटः**' इस वाक्य में नीलपद स्वविशेषण नीलत्व धर्म को बतलाता है और घटपद स्वविशेषणरूप में घटत्व को बतलाते हुए एक नील गुणविशिष्ट घट रूपी विशेष्य में पर्यवसित होता है । अर्थात् अभेद संबन्ध से नील प्रकारक घट विशेष्यक बोध होता है । यहां यद्यपि दो पद हैं, ये दोनों लक्ष्य वाच्य साधारण स्वकीय स्वकीय विसेषण को शब्द वृत्ति से बतलाते हुए एक विशेष्य में पर्यवसित होते हैं । यहां अपने अर्थ का बोधन कराने वाले दो पद तो उपस्थित हैं परन्तु इन दोनों के बीच में जो अभेद संबन्ध है वह आकांक्षा से भासित होता है । अभेद सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारक घटत्वावच्छिन्न विशेष्यताशाली शाब्द बोध के प्रति असमास स्थल में स्वतन्त्र नील पद समभिव्याहृत स्वतन्त्र घटत्वरूप आकांक्षा ज्ञान कारण होता है । तथा समासस्थल में अभेद सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारक घटत्वावच्छिन्न विशेष्यक शाब्द बोध के प्रति नीलपदाव्यवहित स्वतन्त्र घटपदत्वरूप आकांक्षा ज्ञान को कारणत्व होता है । प्रकृत में अर्थात् '**तत्वमसि**' इस स्थल में शङ्कराचार्य के मत से उक्तवाक्य घटक तत् शब्द सर्वज्ञत्व

दुःखिनमेवावगच्छन्ति लोकास्तथैवेश्वरस्यापिलेशेनापि दोषवत्व कल्याणगुणाकरत्वं न स्यात् दोषसामान्याभावस्याभावात् । एकस्यापि प्रतियोगिनः सत्वे तत्सामान्याभावस्यास्वीकारादिति सर्वथा परमेश्वरस्य

स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतोबुधैः ॥११॥
ब्रह्मणस्तु विकारोयन्नस्वरूपभावयोः ।
व्याकोपात्रसरः कश्चिच्छ्रुतीनांवर्तते न तत् ॥१२॥
जीवस्य प्रकृतेश्चापि सत्ता न प्रलये ननु ।
तद्द्वारिका कथंसृष्टिर्जगतस्तद्विभावय ॥१३॥
मैवं वाच्यं यतः सत्ता सूक्ष्मजीवप्रधानयोः ।
प्रलये वर्तते तस्मात् सिद्धान्तो मे न दोषभाक् ॥१४॥
'प्रकृतिं पुरुषञ्चैवविद्ध्यनादीउभावपि' ।
उक्तंभगवता चैवमनादित्वं तयोर्द्वयोः ॥१५॥
ततो 'नात्माश्रुते' रादिसूत्रं व्यासेननिर्मितम् ।

प्रभृतिक विशेषणों का परित्याग कर के तथा त्वं शब्द अल्पज्ञत्वादि विशेषणों का परित्याग कर के केवल चैतन्य अंश के ही उपस्थापक होते हैं, तो इस पक्ष में विशेषणों का परित्याग होने के कारण से सामानाधिकरण्य लक्षण नहीं होता है । एवं इन का सिद्धान्त है कि-'**आश्रयत्व विषयत्वभागिनी निर्विभागचितिरेव केवला**' इत्यादि नियम से ये लोग सकल अनर्थ का मूलकारण रूप जो अज्ञान लक्षण महादोष है उस दोष का आश्रय ब्रह्म को ही मानते हैं, इसलिये ब्रह्म में सदोषत्व भी प्राप्त होता है । नहीं कहें कि हमारे मत में तो विवर्तवाद है अर्थात् यहां अध्यस्त पदार्थ को दोष गुण से अधिष्ठान मे कोई क्षति नहीं होती है, यह दोष तो कदाचित् परिणामवाद में उपस्थित हो सकता है । ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि मायावाद विवर्तादिक अनपेक्षित वादों का आगे चलकर के निरास किया जायगा ।

एवं श्रीभास्कराचार्य के मत में जीव तथा ब्रह्म में अभेद मानते हैं जिस तरह घटावच्छिन्नाकाश पटावच्छिन्नाकाश तथा महाकाश अर्थात् निरवच्छिन्नलोकाकाश में अभेद होता है, भेद तो केवल औपाधिक है, तो कल्याण गुणाकर पर ब्रह्म में जो कि-'**तत्त्वमसि**' वाक्य घटक तत् शब्द का प्रतिपाद्य है, उस ब्रह्म में सर्वज्ञत्वादि कल्याण गुण का विरोधि धर्म अल्पज्ञत्व सर्व प्रकारक दुःखित्वादिक का प्राप्तिरूप दोष होगा, क्योंकि ब्रह्म को जीव के साथ अभेद होने से जीवगत दोषों का संक्रमण अनिवार्य हो जायगा एवं ब्रह्म गत अपहत पाप्मत्व सर्व कल्याणगुणवत्वादिक का संक्रमण जीव में भी होने से जीवेश्वरत्वादि की जो मोक्ष शास्त्र में प्रवृत्ति होती है वह नहीं होगी ये सब अस्तव्यस्त हो जाने से तथा

निर्दोषत्वं न स्यात् । तस्मात् यादवप्रकाशाचार्यसम्मतद्वैताद्वैतवादो न समीचीनः । तथैवाहुर्जगद्गुरवः श्रीश्रियानन्दाचार्याः 'भिन्नाभिन्नौ श्रुतौ ब्रह्मजीवौ ब्रह्मचितोरिव । तथाभूतौ स्वभावात्तौ मते यादवसम्मते ॥ अभेदोभेदवद्

अव्याकृतं जगत् तर्हि चासीच्छ्रुतिर्वदत्यपि ॥१६॥

उक्तंब्रह्मशरीरत्वं जीवप्रधानयोः श्रुतौ ।

शरीरत्वात्प्रकारत्वंतयोस्तद् ब्रह्मणोमतम् ॥१७॥

सूक्ष्मचिच्चिद्विशिष्टं हि सद् ब्रह्मकारणं तथा ।

स्थूलचिच्चिद्विशिष्टंतद्ब्रह्मकार्यमतंबुधैः ॥१८॥

प्रकारांशेविकारित्वंविशेष्यांशेतुनैव तत् ।

ब्रह्मणः सम्मतं तस्मात्कश्चिद्दोषो न विद्यते ॥१९॥

'स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्चपरमेश्वरः ।

इतिविष्णुपुराणेऽपि ब्रह्मकार्यं च कारणम् ॥१८॥

तथैव जगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्यचरणा अपि

'त्रिधापि श्रुतौ सर्ववित्सर्वशक्तिर्जगत्कारणं जानकीनाथ एवं ।

ततः कापिलं गौतमीयञ्च शैवं च शाक्तंतथान्यन्मतं नानवद्यम् ॥७॥

भास्कराचार्य के मत में ब्रह्म में ये सब दोष लगने से यह मत ठीक नहीं है।

एवं श्रीयादवप्रकाशाचार्य के मत में जीव तथा ईश्वर ये दोनों ही एक ही ब्रह्म का अंश माने जाते हैं। जिस तरह मृत्तिका का विकार घट भी है तथा शराव उदञ्चनादिक भी हैं मृद्विकार घट शरावादिकों में घट गत असाधारण धर्म का संक्रमण शराव में नहीं होता है न वा शरावगतासाधारण धर्म का संक्रमण घट में होता है। इसी तरह जब ब्रह्म का अंश ईश्वर तथा जीव हैं तब इन दोनों अंशों में एक अंश परमेश्वर में जीव धर्म का संक्रमण नहीं होगा, न वा जीव गत धर्म का संक्रमण ईश्वर में होता है। यदि ब्रह्म के अंश जीव परमेश्वर में कदाचित् अभेद माना जाता, तब जीव दोष का संक्रमण ईश्वर में होने की संभावना होती। अर्थात् ईश्वर में सर्वज्ञत्वादि गुणों का विरोधी अल्पज्ञत्व तथा दुःखित्वादिक दोष आ जाते। परन्तु इनके मत में भी तत् पद त्वं पद का हानि प्रसंग तो प्राप्त होता ही है। प्रकारान्तर से इन दोषों का उद्धार का प्रयत्न किया जाय तब तो मुख्यार्थ का परित्यागरूप दोष होगा। इत्यादि अनेक दोष लगते है। निर्दुष्टपना विशिष्टाद्वैतमत ही है। अतः सुधी जनो को इसीका आश्रय लेना चाहिये।

पूर्वप्रकरण में कहा गया है कि जड चेतन सब पदार्थ परमात्मा का शरीर है तथा परमात्मा शरीरी हैं, इन में शरीरात्मभाव सम्बन्ध है। परन्तु यह बात तो सृष्टिकाल में ही संभवित है, क्योंकि सृष्टि में जड चेतन पदार्थ विद्यमान रहते हैं। प्रलय में तो ऐसा नहीं हो सकता है, क्योंकि 'सदेवेत्यादि' श्रुति से सिद्ध होता है कि सर्ग पूर्वकाल प्रलयकाल में तो केवल ब्रह्म ही थे, इससे यह सिद्ध होता है कि जड चेतन

यस्माद् स्वभावाद् ब्रह्मजीवयोः । ब्रह्मणि जीवदोषाः स्युस्तथात्वेतद्वरं नतु ॥ यतोऽपहतमाप्मादिश्रुतेश्चैवंविरोधिता । ततो यादवप्रकाशस्य समीचीनं मतं नहि' (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ५।६५-६७) इति ।

॥ सार्वत्रिकभेदाभेदवादनिरासः ॥

यादवप्रकाशाचार्याभिमतभेदाभेदवादनिराकरणेन सार्वत्रिका

विकारश्चरामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्चनैति ।

प्रकारेविकारस्तथाचित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म ॥८॥ इति ।

विशेषविवरणमत्रत्यं सांप्रदायिकसद्गुरुमुखादेवज्ञातव्यं वेदहृदयस्यतैरेवावगमात् । अयमेवात्रत्य संपूर्णस्य मूलस्य संक्षिप्तोऽभिप्रायः । एतादृशाभिप्रायविशेषमजानाना एव केचनविशिष्टाद्वैतसंप्रदाये मुधैवदोषं संगिरन्तीति तेषां दौर्भाग्यमात्रमेव तदिति संक्षेपः ॥

'अयं गौर्निलः पटः' इत्यादिस्थले जातिगुणवाचकौ शब्दौ जातिं गुणं च बोधयन्तौ तदाश्रयमपि बोधयत इति तयोराश्रयाभावेऽवस्थानासंभवादतस्तौ विशेषणीभूतौ द्रव्यं तु विशेष्यं भवति । तत्रैकार्थवाचकतया सामानाधिकरण्यमविष्वग्भावोऽपि भवति, प्रकृतसिद्धान्ते तु जडचेतनयोर्द्रव्यत्वस्वीकारेण, द्रव्यस्य स्वातन्त्र्येणभानसंभवात् कथं

जो कि भगवान् का शरीर रूप से अभिमत हैं वे नहीं थे, तब शरीरात्मभाव किस तरह सिद्ध होगा? इस शंका का समाधान करने के लिये उपक्रम करते हैं-'ननु सदेव सोम्येदमित्यादि'

पूर्वपक्ष -'सदेव' हे सोम्य ! यह परिदृश्यमान जगत् सृष्टि के पूर्वकाल में अर्थात् प्रलयकाल में सदात्मक था, वह सत् एक अद्वितीयरूप में वर्तमान था इस श्रुति से सिद्ध होता है कि सृष्टि से पूर्वावस्था में प्रलय काल में सजातीय विजातीय तथा स्वगतभेद रहित होकर के विद्यमान था, न तु इससे चेतनाचेतन पदार्थों का सद्भाव सिद्ध होता है। तब किस तरह से परमेश्वर को चेतनाचेतन पदार्थों के साथ शरीरात्मभाव संबन्ध सिद्ध होगा? अर्थात् जड चेतन पदार्थ परमेश्वर का शरीर है और परमात्मा इन सब की अन्तरात्मा हैं तो यदि सर्वदा इन जड चेतनादि पदार्थ का सद्भाव हो तब शरीरात्मभाव संबन्ध हो सकता है परन्तु इनका प्रलय में सद्भाव तो यथोक्त श्रुति से सिद्ध नहीं होता है किन्तु ब्रह्ममात्रका सद्भाव ही सिद्ध होता है? इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहते हैं- 'सत्यम्' अर्थात् आपका कहना ठीक है कि 'सदेव' इत्यादि श्रुति में इन जडादि पदार्थों का सद्भाव प्रलय में सिद्ध नहीं होता है परन्तु दूसरी श्रुतियों से तो सिद्ध होता है। तथा हि अन्य श्रुतियों से यह विदित होता है कि ब्रह्म सकल जगत् के उपादान कारण तथा निमित्त कारण हैं तथा ब्रह्म निर्विकार एवं निर्दोष है यह भी विदित होता है। ब्रह्म निमित्त कारण हैं इससे ब्रह्म में सर्वज्ञत्व सत्य सङ्कल्पत्वादिक कल्याण गुण की सिद्धि होती है। परन्तु

भेदाभेदवादोऽपि निरस्त एव । यतोभेदाभेदयोर्लोके परस्परप्रतिद्वन्द्वितया प्रसिद्धतयैकस्य सत्वे तत्रैव तत्प्रतिद्वन्द्विनः सहावस्थानासम्भवात् । यदि कदाचित्तयोः सहावस्थानमीहेत, तदा तयोर्विरोध एव दत्तजलाञ्जलिः स्यात् । परस्परविरुद्धयोर्द्वयोरेकदैकदेशादौ युगपत् सहसंभवस्य विरुद्धत्वात् । न

तयोरीश्वरस्य विशेषणतया भानं स्यात्, आवश्यकतापि नास्ति स्वातन्त्र्येण भानसंभवे पारतन्त्र्येण तदुपस्थापने प्रयोजनाभावात्, 'अयं गौर्नीलो घटः' इत्यादौ आश्रयमन्तरेण भानासंभवेन तयोस्तथात्वं न तु द्रव्यस्य द्रव्यान्तरं प्रतिविशेषणत्वं स्वातन्त्र्येणभानसंभवे पारतन्त्र्येणोपस्थापने प्रयोजनस्यानतिप्रयोजकत्वादित्याशङ्कां समाधातुमुपक्रमत अथद्रव्याश्रिताज्ञेया इत्यादि, द्रव्यमेव विशेष्यगुणादिकं सर्वत्र विशेषणमेव द्रव्यं द्रव्यान्तरं प्रति तदन्यं वा प्रतिविशेषणं न भवतीति न नियमः । 'दण्डवान् पुरुषः' इत्यादिप्रतीतौ द्रव्यस्य दण्डस्य पुरुषात्मकद्रव्यंप्रति विशेषणत्वदर्शनात् तथा 'घटेरूपम्' घटे घटत्वमित्यादिस्थले द्रव्यस्यापि घटादेराधेयता सम्बन्धेन विशेषणत्वं गुणस्यरूपस्य विशेष्यत्वम्, न्यायमते प्रथमान्तमुख्यविशेष्यकशाब्दबोधस्वीकारात् तथा घटेघटत्वमित्यत्रापि द्रव्यस्य घटस्याधेयतासम्बन्धेन प्रकारत्वं तथा जात्यात्मकघटत्वस्य विशेष्यत्वमुक्त-

ब्रह्म जगत् के उपादान करण हो कर के और निर्विकार रहते हैं, इस अंश में तो परस्पर विरोध होता है क्योंकि जो कारण कार्याकार से परिणत होता है उसी को उपादान कारण कहते हैं यथा घट का उपादान कारण मृत्तिका है तो घटाकार से परिणत होती है, और जो उपादान कारण होगा वह अवश्यमेव विकारी होगा क्योंकि जब विकार नहीं होगा तो पूर्वाकार का त्याग तथा उत्तराकार की प्राप्ति नहीं होगी । यदि ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानें तब वह विकारी होगा । यदि वे ब्रह्म निर्विकार हैं तो वे उपादान कारण नहीं बन सकते हैं । ब्रह्म में निर्विकारत्व तथा उपादान कारणत्व साथ साथ में नहीं रह सकते हैं क्योंकि निर्विकारित्व तथा उपादानता में परस्पर विरोध है, तो एतादृश विरोध का निराकरण करने के लिये ऐसा मानना पडता है कि प्रलयकाल में भी अति सूक्ष्म रूप से जड चेतन पदार्थ पर ब्रह्म में सर्वदा सबद्ध रहते हैं, अर्थात् इन जड चेतन पदार्थों का सद्भाव प्रलय काल में भी रहता ही है ।

अत एव परलोक की सत्ता मानने वाले आस्तिकों के दर्शन में प्रकृति तथा जीव को अज तथा मरणरहित कहा गया है । अर्थात् यदि जीव का उत्पाद तथा विनाश घटादिवत् मानना पडेगा, तब तो कृतनाश और अकृताभ्यागम दोष होगा । अर्थात् जिस जीव ने जीवन पर्यत अंगिनहोत्रादि स्वर्ग साधन कर्मो का अनुष्ठान किया परन्तु स्वकृत कर्म का फलभोग तो लोकान्तर में करेगा, यदि लोकान्कर में पहुँचेगा तब होगा परन्तु शरीर के विनाश के बाद जन्य जीव भी मर गया तो उस कर्म का कर्म फल भोग नहीं किया । इस तरह कृत कर्म का फलभोगउसको नहीं मिला । एवं आगे जन्म में शरीर के साथ

च विरुद्धयोरपिद्वयोर्व्याप्यधर्मेण भेदो व्यापकधर्ममादाय चाभेदस्यदर्शनात्, न यतोर्विरोध इति वाच्यम् तत्रापि एकस्य वस्तुन एककाले एकदेशे युगपत् सह सम्भवाभावनियमस्य जागरुकतया निर्वाहात् । तस्मान्न सार्वत्रिको

नैयायिकनियमादेव । तस्मादेतत् स्थितं यत् द्रव्यं विशेष्यमेव न विशेषणमिति, तथा गुणादिकं सर्वत्र विशेषणमेव न विशेष्यमिति । किन्तु द्रव्यमपि क्वचित् विशेष्यं कुत्रचित् विशेषणमपि भवति तथा गुणादिकमपि क्वचित् विशेष्यं भवति विशेषणं तु न भवति । वक्तुर्यादृशी यत्र विवक्षा तत्र तथा तथा भवति यतो विशेषणविशेष्यभावस्य विवक्षाधीनत्वादिति तु न्यायविदांमार्गः । तदिह प्रकृते द्रव्ययोरपि चेतनाचेतनयोर्विवक्षाबलात् द्रव्यलक्षणपरमेश्वरं प्रति विशेषणत्वं भवत्येव द्रव्यात्मकदण्डादेर्द्रव्यरूपपुरुषंप्रति विशेषणवत् तत्र दण्डी इत्यत्र दण्डीपुरुषयोस्तादात्म्यसम्बन्धेन विशेषणविशेष्यभावः, 'दण्डवान् पुरुषः' इत्यत्र तु संयोगसम्बन्धेन विशेषणविशेष्यभाव इति । द्रव्यस्य दण्डादेर्द्रव्यान्तरं प्रति विशेषणत्वं प्रतीति बलादास्थीयते तथैव गुणादिकं प्रत्यपि द्रव्यस्य विशेषणत्वं 'घटेरूपं घटेघटत्वमित्यादिप्रतीति बलादास्थीयते इति । चेतनाचेतनयोरीश्वरं

जीव भी पैदा होगा, और वहां फलभोग करता है, परन्तु तादृश भोग जनक कर्म का तो उसने अनुष्ठान नहीं किया था तो अन्यदीय कृत कर्म का ही फलोप भोग होगा, ऐसा कहने से अकृताभ्यागम दोष होगा । इसलिये शास्त्र में जीव को नित्य अर्थात् जन्मविनाश रहित मान गया है । इन उपर्युक्त दोनों दोषों का निराकरण करने के लिये शास्त्रकारों ने जीवराशिको नित्य अर्थात् उत्पादविनाश रहित माना है तथा अन्यथानुपपत्ति से मानना पडता है अन्यथा यागादि प्रतिपादक सकल कर्मकाण्ड प्रतिपादक आगम को अप्रामाणिक मानना पडेगा । प्रलयकाल में भी ब्रह्म सूक्ष्म चेतनाचेतन पदार्थों से विशिष्ट होकर के रहता है । तथा स्वयं निर्विकार रह कर के भी सूक्ष्म चेतनाचेतन के द्वारा जो चेतनाचेतन उसका शरीर है उसके द्वारा जगदाकार से परिणत होता है । इसलिये जगत् का ब्रह्म उपादान कारण कहलाता है, अर्थात् ब्रह्म में स्वरूप से परिणाम नहीं होता है किन्तु तद्विशेषणीभूत सूक्ष्म जडचेतनों का परिणाम यह जगत् होता है । इसलिय ब्रह्म जगत् का उपादान कारण कहा जाता है । ब्रह्म सर्वदा निर्विकार रहने के साथ ही जगत् का उपादान कारण भी बने इसलिये प्रलय काल में भी लूक्ष्म रूप से चेतनाचेतन पदार्थों का सद्भाव स्वीकार किया जाता है । प्रलयकाल में चेतनाचेतन सब पदार्थ ब्रह्म के पराधीन विशेषण अर्थात् शरीर बन कर के ही रहते हैं । जब ये रहते हैं जड़चेतन तब परमेश्वर के पराधीन ही रहते हैं स्वतन्त्र कभी भी नहीं रहते हैं । तो इन सूक्ष्म जड़ चेतनरूप विशेषणों से विशिष्ट परमेश्वर प्रलयकाल में रहते हैं । यदि कोई सम्प्रदायानभिज्ञ व्यक्ति पूछे कि प्रलयकाल में ब्रह्म जो कि एक अद्वितीय हैं ऐसा कहे गये हैं वे किस तरह से रहते हैं ?

भेदाभेदवादः समीचीनः ।

❁ जात्यादिहेतुपर्यालोचनम् ❁

यदपि यादवप्रकाशाचार्यैर्जातिव्यक्त्योर्भेदाभेदसाधनाय चत्वारो हेतवः साधकतयोपन्यस्तास्तेऽपि न साधीयांसः । ते च हेतवोऽमी तथाहि

प्रति विशेषणत्वं न व्यसनितया सिद्धान्तपक्षपातेन वा स्वीकुर्मः किन्तु श्रुत्यनुगृहीतयुक्तिबलेन श्रुतीनां पौर्वापर्यपर्यालोचनयैवस्वीकुर्मस्ताश्च पूर्वोदाहृतेति संक्षेपः ।

अथ यत्रैकं द्रव्यवाचकपदं स्वान्त्येण स्वार्थं प्रतिपादयति, तत्र तदेव पदं यदि द्रव्यान्तरस्य विशेषणं भवति तत्राश्रयबोधनाय मतुवादिप्रत्ययस्यावश्यकता भवति, यथा 'दण्डवान्' इत्यत्र दण्डस्वतन्त्रद्रव्यं पुरुषोऽपि तथैव, इति तत्र दण्डस्य प्रकारतया पुरुषस्य चाधिकरणतया बोधनाय मतुप्प्रत्यय आवश्यकोऽन्यथा दण्डपुरुषयोराधाराधेय-भावबोधस्यासंभवात्, प्रकृते चेतनाचेनद्रव्यभूतयोर्द्रव्यान्तरमीश्वरं प्रति विशेषणत्वं स्वीक्रियते । तत्र चेतनाचेतनगुणजात्यादिवत्, स्वस्वार्थं बोधयतस्वाश्रयं परमात्मानमपि बोधयतीति कथ्यते, तत् न समीचीनमिवाभाति । तत् न समीचीनमिवाभाति । यत एकं द्रव्यं स्वशक्त्या स्वार्थमेव बोधयति, कारणवशाद् यदि द्रव्यान्तरस्य विशेषणं भवति तदा

तो उस अज्ञाततत्वपुरुष को उत्तर देना चाहिये कि-जो व्यक्ति ब्रह्म को जगत् का उपादान तथा निमित्त उभयविधमानते हैं वे इस प्रकार उत्तर देते हैं कि प्रलयकाल में सृष्टि के पूर्वकाल में परमात्मा सत्य सङ्कल्प सर्वज्ञत्व तथा विचित्र विविधशक्तित लक्षण कल्याणा गुणों से समन्वित हो कर के और सूक्ष्म चेतनाचेतन लक्षण शरीर से जो कि परतन्त्र विशेषण है तादृश पराधीन विशेषणों से विशिष्ट हो कर के ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नित्य निर्विकार कल्याण गुणोपेत ब्रह्म प्रलय काल में रहते हैं और वही ब्रह्म सर्गकाल में स्थूल चेतनाचेतन शरीर लक्षण विशेषण से विशिष्ट होरक के रहतेहैं । प्रलयकाल में चेतनाचेतन पदार्थ नाम रूप लक्षण विभाग से रहित होकर के रहते हैं यही उन विशेषणों की सूक्ष्मावस्था तथा एकत्वावस्था शब्द से प्रतिपाद्य होती है । जिस तरह दुग्धावस्था में अवस्थित भी धृत है, परन्तु उस समय में धृत नाम रूप से विभक्त नहीं रहता है तो धृत की वह अवस्था सूक्ष्मावस्था तथा दूध के साथ एकत्वावस्था कही जाती है, उसी तरह इन विशेषणों की प्रलय काल में सूक्ष्मावस्था तथा एकत्वावस्था कही जाती है। और सृष्टि काल में चेतनाचेतन पदार्थ नामरूप विभाग को प्राप्त करते हैं (नाम रूप विभाग को प्राप्त करना ही तो उनका सर्ग है इसके पहले भी तो ये सब पदार्थ कारण में थे ही । यही उन चेतनाचेतन पदार्थों की स्थूलावस्था तथा बहुत्वावस्था कही जाती है । वे पदार्थ चेतनाचेतन नहीं थे पूर्व में ऐसा नहीं किन्तु पूर्व में भी वर्तमान ही थे परन्तु पूर्व में अविभक्त नाम रूप वाले थे संप्रति

यत्र प्रथमतो घटादिव्यक्तेर्दर्शनसमये जातिव्यक्ति- अभिन्नरूपेणैव दृष्टिप्रथममधिरोहतः । द्वितीयोहेतुः सहोपलंभनियमः । एकदैवोभयोरुपलंभो जायते द्वितीयचन्द्रवत् । तृतीयश्च यत्र विभिन्नयोर्द्वयोर्मध्ये एकं विशेषणरूपेणभासते अपरश्चविशेष्यरूपेण तत्र मत्वर्थीयप्रत्ययो भवति,

स्वाश्रयबोधनाय मतुवादिप्रत्ययमपेक्षते दण्डवानित्यादौ तथैव दर्शनादिति मतुवादिप्रत्ययाभावे कथमाश्रयबोधकत्वं चेतनाचेतनपदयोरितीमां शङ्कां लोकवेदव्य-वहारसमर्थनमुखेनापाकर्तुमुपक्रमते अथ यत्रैकं स्वतन्त्रं द्रव्यं द्रव्यान्तरमित्यादि मूलाक्षरा-र्थस्तुनतिरोहितः समाधत्ते सत्यमित्यादि तदेवोपपादयति देवदत्तोऽभाग्येनेत्यादि । अत्र कमपि दुःखिनं जीवं देवदत्तादिकंदृष्ट्वा लोको वदति, यदयमभाग्यबलेन नरकदुःखमनुभवति, सुखिनं च दृष्ट्वा वदति यदयं सुखमनुभवति देववत् । अत्र सुखदुःखे आत्मधर्मौ न तु शरीरधर्मौ शरीरस्याचेतनत्वात् तत्र शरीरबोधकमपि देवदत्तादिपदं द्रव्यात्मकविशेषणं बोधयत् शरीरावच्छिन्नचेतनमपि बोधयति । तथैव परमात्मविशेषणं चेतनाचेतनं स्वस्वस्वरूपं बोधयत्, स्वस्वावच्छिन्नमात्मभूतं परमात्मानमपि बोधयति विशेष-

सर्ग काल में विभक्त नाम रूप वाले होकरके आविर्भूत हो जाते हैं करण व्यापार के द्वारा, जिस तरह तिलों में तेल रहता ही है किन्तु निष्पीड़न करने से विभक्त नाम रूप वाला हो जाता हैं, यह सत्कार्यवाद है यहां असत् की उत्पत्ति नहीं मानी गई है, न वा सत् का निरोध होता है । इस पक्षमें कार्योत्पत्यर्थ कारण व्यापार निरर्थक है ? ऐसा नहीं कहना क्योंकि कारण व्यापार से कार्य स्वकीय नामरूप से आविर्भूत ही होता है ।) ब्रह्म शरीर बनकर परतन्त्र विशेषण के रूप में अवस्थित चेतनाचेतन पदार्थों के द्वारा प्रलय काल में एकत्वावस्था को और सृष्टिकाल में बहुत्वावस्था को प्राप्त करते हैं । अत एव छान्दोग्योपनिषत् के षष्ठ प्रपाठक में कहा जाता है '**तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय**' अर्थात् उस चेतनाचेतन शरीरक ब्रह्म ने संकल्प किया कि मैं चेतनाचेतन के द्वारा एकत्वावस्था को प्राप्त किया हूँ, अब मैं उन चेतनाचेतनों के द्वारा अनेक बन जाऊँ । सृष्टिकाल तथा प्रलय काल में सर्वदा यह चेतनाचेतन प्रपंच समुदाय ब्रह्म के पराधीन विशेषण बन कर के ही रहते हैं, वे स्वतन्त्र हो कर के कभी भी नहीं रहते हैं और ब्रह्म सर्वदा इन चेतनाचेतन विशेषणों से विशिष्ट हो कर के ही रहते हैं। ब्रह्म को जानने के समय में इन चेतनाचेतन पदार्थों से विशिष्ट ब्रह्म को ही जानना चाहिये जिस तरह देवादि को जानने के समय में शरीर विशिष्ट देवादिक समझ में आजाते हैं। इसी तरह ब्रह्म को समझते समय में चेतनाचेतन शरीर विशष्ट ब्रह्म समझ में आजाते हैं, और चेतनाचेतन पदार्थ विशेषणरूप से समझ में आजाते हैं। इन विशेषणों को पृथक् रूप

यथा दण्डवानिति, प्रकृते तु न गोमानिति प्रतीतिरपितु गौरितिप्रतीतिरिति गोगोत्वयोरभेदः । चतुर्थश्च अयमेको गौरिति प्रतीतौ गोगोत्वयोरैक्यप्रतीतेः ।

तत्र प्रथमहेतोर्निराकरणम्- प्रथमदर्शने अयं गौरिति प्रतीतौ गोगोत्वयोर्विशेषणविशेष्यरूपेण भानं जायते प्रकारप्रकारिणोः परस्परं

णस्वभावात् । अर्थात् परमेश्वररूपाधारमन्तरेण तत्सद्भावस्यैवासंभवात् यथा घटीयं रूपादिकं घटात्मकद्रव्यं विना स्वात्मानं न लभते, यावदवतिष्ठते वावत् घटादिद्रव्याश्रितमेव भवति, इतिगुणादिकमपृथग् विशेषणं तत्र यथा स्वाश्रयबोधकतया सामानाधिकरण्यं भवति । एवं देवदत्तशरीरं द्रव्यं सदपिस्वावच्छिन्नं चेतनं बोधयति, तथा चेतनाचेतन-योरपृथक् सिद्धविशेषणतया परमात्मवाचकत्वमपि भवतीति अयमेवार्थः अयंभावः इत्यादिना वक्ष्यति- । अयमाशयः विशेषणं द्विविधम् अयुतसिद्धं युतसिद्धं च तत्र अनयोर्द्वयोर्मध्ये एकमविनश्यदपराश्रितमेव भवति, तत्रायुतसिद्धता, यथा अवयवावयविनो गुणगुणिनौ जातिव्यक्तो च । तत्र घटोयावदवतिष्ठते तावत् कपालमाश्रित्यैव भवति । यथा वा शरीरशरीरिणौ, गुणगुणिनौ, तत्र गुणादिको यावदवतिष्ठते तावद्द्रव्यमादायैवातस्तयोरपृथग् विशेषणत्वेन स्वाश्रयपर्यन्तबोधकता । तथैव प्रकृते चेतनाचेतनद्रव्यत्वेऽपि परमेश्वरविशेष-णत्वेन

से कहने की आवश्यकता नहीं रहती है। ब्रह्म जब कारण बनते हैं तब सूक्ष्म चेतनाचेतन शरीर विशिष्ट होकर के रहते हैं। और जिस समय में अर्थात् सर्ग काल में जब कार्य बनते हैं उस सर्ग काल में स्थूल चेतनाचेतन शरीरको धारण कर के रहते हैं। सर्ग प्रलय दोनों काल में चेतनाचेतन पदार्थ ब्रह्म के पराधीन विशेषण बन करके ही रहते हैं स्वतन्त्र रूप से नहीं रहते हैं। इसलिये पर ब्रह्म का चेतनाचेतन वस्तुओं के साथ सर्वदा शरीरात्मभाव संबन्ध रहता है। इन साम्प्रदायिक तत्वों का विस्पष्टीरण जगदाचार्यजी ने **'सत्यं श्रुत्यन्तरेण'** इत्यादि मूलग्रंथ से बतलाया है। मूल अक्षरों का अर्थ इस प्रकार से होता है। तथाहि-सृष्टि काल में तो चेतनाचेतन का सद्भाव है तो उनके साथ परमेश्वर का शरीरात्मभाव सम्बन्ध बन सकता है परन्तु सृष्टि के पूर्व काल में प्रलय काल में तो उनका सद्भाव नहीं था केवल ब्रह्म ही थे ? यह प्रश्न आपका ठीक है क्योंकि **'सदेव सोम्य'** इसका आपाततः अर्थ देखने से तो ऐसा ही प्रतीत होता है परन्तु श्रुत्यन्तर में तो कहा गया है कि ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है एवं निमित कारण भी है और साथ साथ यह भी बतलाया है कि ब्रह्म निर्विकार माने जायं तब तो ब्रह्म उपादान कारण नहीं बन सकते हैं क्योंकि उपादान कारण का परिणाम कार्य है तो उपादान रूप ब्रह्म में सविकारत्व हो जायगा। इसलिये इस दोष को हटाने के लिये सूक्ष्म चेतनाचेतन विशिष्ट ब्रह्म जगत् का उपादान कारण बनते हैं और वही ब्रह्म स्थूल चेतनाचेतन विशिष्ट कार्य कहलाते हैं ऐसा जानना चाहिये। ऐसा मानने पर प्रलय

भिन्नत्वान्नाभेदप्रतीतिरपितु भिन्नतयैवेति न प्रथमोहेतुर्हेतुः, न द्वितीयो हेतुरपि साधकः सहोपलंभश्च सहैवावस्थानात् सहप्रतीत्याचौपायोपेयता नतु तयोरभेदः । तृतीयोऽपि न तथा यत्रैकं विशेषणमपरं विशेष्यं तत्र मतुप्प्रत्ययो भवतीति, 'अत्रायं गौरिति प्रतीतौमतुप्प्रत्ययस्याभावो दृश्यते तस्मान्ना

परमेश्वरपर्यन्तस्य बोधकत्वं भवतीति बोध्यम् ।

अथ चेतनजीवप्रकाररूपतत्तच्छरीरवाचकं मनुष्यदेवादिपदं स्ववाच्यतत्तच्छरीर-प्रकारिणं तत्तच्चेतनं बोधयतु नाम तदुभययोः प्रकारप्रकारिभावस्य साधितत्वात् परन्तु स्थावरादिवाचकपदं कथं परमात्मनो वाचकंस्यादित्याशङ्क्य यथा 'यो विज्ञाने तिष्ठन्' इत्यादिश्रुत्या जीवः परमात्मनः शरीररूपः समधिगत इति जीवस्य प्रकारीपरमात्मेति प्रकारवाचकपदं प्रकारिणः परमेश्वरस्यापि वाचको भवतिती स्वीक्रियते तथैव 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादिश्रुत्या पृथिवीप्रभृतिकजडपदार्थोऽपि परमेश्वरस्य शरीररूप एवेति कृत्वा जडवाचकोऽपि जडं बोधयन् तदन्तर्यामिणं परमात्मानं बोधयत्येवेति सर्वशब्दानां परमात्मवाचकत्वं सुव्यवस्थितमित्यावेदयितुमाह यथाशरीरवाचको देवमनुष्यतिर्यगादिशब्द इत्यादि, येन प्रकारेण देवादिशरीरबोधकोदेवादिशब्दो जीवविशेषणीभूततदीयशरीरस्यैव

काल में सूक्ष्म चतनाचेतन का सद्भाव सिद्ध होता है। और परमेश्वर का शरीर होने के कारण चेतन तथा जड़ात्मक प्रकृति में अजत्व नित्यत्व भी सिद्ध होता है। अन्यथा चेतन जो जीवादिक हैं वे यदि उत्पाद विनाश शील हों तब तो कृतहानि तथा अकृताभ्यागम दोष होगा। अर्थात् जीव ने जो कुछ धर्माधर्म का अनुष्ठान किया उसका तो वह फल भोगेगा नहीं क्योंकि शरीर विनाश के अनन्तर वह भी विनष्ट हो गया इसलिये कृतहानिदोष होगा, और जो जीव सुख दुःखादिक फल का उपभोग करता है उसने तो तादृश भोगजनक कर्मों का अनुष्ठान नहीं किया है तो अकृत कर्म का जो फल है वह उसको प्राप्त हो जायगा इसलिये अकृताभ्यागम दोष हो जायगा। और दार्शनिक जगत् में ये दोनों महान् दोष हैं। इसलिये ब्रह्म का विशेषणीभूत जो सूक्ष्म चेतन जड पदार्थ हैं ये सव उत्पाद विनाश रहित नित्य हैं, इसलिये इन चेतनाचेतन पदार्थों क सद्भाव प्रलयकाल में भी सिद्ध होता है तव प्रलयकाल में भी चेतनाचेतन पदार्थ के साथ ब्रह्म का शरीरात्मभाव सम्बन्ध होने में कोई बाधक नहीं होता है। ये सब विषय सर्व श्रुति की एक वाक्यता पूर्वक विचार करने पर सिद्ध होता है। इसका यह फलितार्थ होता है कि सूक्ष्म चेतनाचेतन शरीरक ब्रह्म जगत् के कारण हैं और वही ब्रह्म स्थूल चेतनाचेतन विशिष्ट कार्य हैं, ऐसा मानने से प्रलय तथा सृष्टि में भी ईश्वर का शरीर रूप चेतनाचेतन का सद्भाव सिद्ध होता है। इसलिये प्रलय में चेतनाचेतन का सत्व तथा ईश्वर के निर्विकार होने पर भी अभिन्न निमित्तोपादानत्व सिद्ध होता है इस परमगंभीरभाव

भेदप्रतिपत्तिरपितु भेदस्यैवेति । न चतुर्थः एकोगौरितिप्रतीत्याऽनेकत्वस्यैवनिराकरणमात्रं भवति नाभेदः समुपस्थापितो भवति ।

ननु यदिदं गोत्वघटत्वादिकं जातिरूपं यस्य व्यक्त्या सह भेदाभेदो निराकृतः । तत्किं नैयायिकाभिमतनित्यत्वेसत्यनेकसमवेतत्वलक्षणकम् ? बौद्धाभिमत अतद्व्यावृत्तिलक्षणकम् ? संस्थानविशेषलक्षणम् ,

---

वाचकः परन्तु अपृथक् सिद्धविशेषणं विशेष्यं न कदापि व्यभिचरति एतादृशस्वभाववलात् स्वप्रकारिणं तत्तज्जीवमपि बोधयति तमन्तरेण तदवस्थानस्यैवासंभवापातात् । एवं सर्वोऽपि स्थावरादयचेतनबोधकोऽपि शब्दः स्वान्तर्यामिणं परमात्मानं बोधयेदिति स्वीकारे कितेऽपहृतं भवति । प्रत्युतश्रुतिः पुराणवचनादिकमपि सुव्यवस्थितं भवतीति भावः ।

एतत्तत्वंप्रतिपादितं तत्त्वमसीत्यादौति । अयमाशयः-जगतिवर्तमाना ये स्थावरजङ्गमात्मकाः पदार्थास्ते सर्वेऽपि परमेश्वरस्य शरीररूपा एवेति 'यो विज्ञाने तिष्ठत्' 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' 'योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्' इत्यादिश्रुतिभिस्तदुपबृंहणपरैः पुराणादिभिः समधिगताः । ईश्वरं प्रति विशेषणरूपेणैव स्थातव्यमिति तेषां स्वभावः । यथा घटीयादिरूपाणां गुणानां घटादौ विशेषेणरूपेणैवावस्थानमन्यथा तदवस्थानासंभवादिति अतः स्थावरादिवाचकाः

को साम्प्रदायिक महापुरुषों से जानना चाहिये । ग्रन्थकार कहां तक स्पष्ट करें ।

गुणक्रिया जात्यादिक जो अयुतसिद्ध पदार्थ हैं इन सब को द्रव्य के साथ अति घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् गुणादिक स्वसत्ताकाल में द्रव्यरूप आश्रय को छोडकर के रहने का स्वभाव नहीं हैं परन्तु जब तक रहते हैं तब तक द्रव्य के अधीन होकर के ही रहते हैं। तथा जाति वाचक एवं गुणवाचक जो शब्द हैं, वे गुणजात्यादि मात्र का बोध करा करके ही उपरत नहीं होते हैं किन्तु स्व का आश्रय जो गवादिक आधार हैं उनका भी बोधक होते हैं, अर्थात् जाति तथा गुणवाचक शब्द जाति गुण का बोध करा कर के स्वाधार का भी बोधक होते हैं । इसलिये इनको एकार्थ वाचक कहा जाता है । इसलिये गुणादि वाचक गुणादिक विशेषण कहलाते हैं तथा उनका आधार द्रव्य विशेष्य कहलाता है। परन्तु द्रव्य का तो ऐसा नियम नहीं है कि वह विशेषण वन कर के ही रहे, उन द्रव्यों का स्वतन्त्र रूप से भी बोध होता है तब वे द्रव्य क्यों दूसरों का विशेषण बनें। इस स्थिति में जो आप कहते हैं कि चेतनाचेतन ब्रह्म का विशेषण शरीर है सो किस तरह बन सकता है ? क्योंकि चेतनाचेतन पदार्थ तो द्रव्य हैं ये तो द्रव्यान्तर के प्रति विशेषण नहीं होंगे स्वतन्त्र रूप से बिशेष्य ही रहेंगे ? एतादृश शङ्का का निराकरण के लिये उपक्रम करते हैं कि-'**अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया**' इत्यादि गुणकर्मादिक समवायान्त पदार्थ द्रव्याश्रित होते

अर्थादाकरविशेषलक्षणकमेववेति संशयः । तत्र नाद्यः तस्य समवायादिसम्बन्धघटिततया समवायस्यात्र मतेऽस्वीकारेण समवायघटितस्य तस्यासिद्धेः । तस्मान्न नैयायिकाभिमतं तत् । नापि बौद्धाभिमतम् , यता जातेर्भावरूपतया

सर्वेशब्दाः स्वान्तर्यामिणः परमात्मनो ब्रह्मपदसमभिव्याहृतश्रीरामस्य वाचका भवन्त्येवेति तदाहुर्जगदाचार्यप्रवराः 'ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीयनिरस्ताखिलदोषमनवधिकातिशयासंख्येयकल्याणगुणगणं भगवन्तं श्रीराममेवाह सामान्यवाचकानां पदानां विशेषार्थे पर्यवसनात् । तदाह वृत्तिकारः 'विशेषार्थेन सामान्यार्थोऽवसीयत इति (बो.वृ.)' (आनन्दभाष्यम् १।१।१) इति । अयमर्थः पूर्वप्रतिपादितः । एतावता 'तत्त्वमसीति वाक्ये जीववाचको युष्मच्छब्दो जीवान्तर्यामिणं ब्रह्मैवावबोधयति, तच्छब्दस्तु जगदभिन्ननिमित्तोपादानभूतं परमात्मानं बोधयति । तदुभयत्रापि ब्रह्म एकमेव । अतः 'असीति पदेन तदुभययोरभेदनिर्देशो निर्दिश्यते, अयं चाभेदनिर्देश उभयोर्जीवब्रह्मणोः शरीरात्मभावसम्बन्धमूलकः, जीवो हि शरीररूपः परमात्मा भवति शरीरी तदनयोरभेदः

हैं तथा निर्गुण एवं निष्क्रिय होते हैं । इत्यादि नियम होने से गुण कर्म जात्यादिक पदार्थ द्रव्यवृत्ती होने से विशेषण कहलाते हैं तथा द्रव्य इन सब का विशेष्य कहलाता है । एवं तादृश गुणादि वाचक जो नीलादिक पद हैं उनको स्ववाचकत्व हो कर के स्वाश्रय का बोधकत्व रूप एकार्थ वाचकत्वरूप सामानाधिकरण्य भी होता है अर्थात् ये शब्द समुदाय समानाधिकरण शब्द कहलाते हैं अर्थात् एकार्थवाचक भी कहलाते हैं। इसलिये गुणादिक विशेषण कहलाते हैं, किन्तु द्रव्य तो सब का आश्रय होने से विशेषण नहीं होते हैं, इन द्रव्यों का तो स्वतन्त्र रूप से ही सर्वत्र उपस्थित होने का स्वभाव है इसलिये द्रव्य तो सर्वत्र विशेष्य ही बनता है ऐसा नियम है। इस स्थिति में चेतनाचेतन पदार्थ तो द्रव्य हैं तब तो ये जहां भासमान होंगे वहां बिशेष्य रूप से ही भासित होंगे परन्तु विशेषण रूप से तो भासित नहीं होंगे, तब इनके स्वभिन्न ब्रह्मात्मक द्रव्य के प्रति विशेषण किस तरह से कहते हैं ? और जब ये चेतनाचेतन ब्रह्म के विशेषण नहीं हैं तब इन चेतनाचेतन द्रव्यों को ब्रह्म के साथ शरीरात्मभाव रूप सम्बन्ध होगा ? और जब शरीरात्मभावरूप सम्बन्ध नहीं घटता है, तब इन चेतनाचेतन द्रव्यों का प्रलयकाल में सूक्ष्मरूप से अवस्थान रहता है यह भी किस तरह से कहते हैं ? यह हुआ प्रश्न इस प्रश्न का समाधान करने के लिये हहतेहैं कि-'**इति चेन्न**' यह आपका कहना ठीक नहीं है । क्यों ठीक नहीं है ? इसका उपपादन करते हुए कहते हैं '**यथोक्त नियमस्येति**' आपका पूर्वोक्त जो नियम है अर्थात् दव्य विशेषण नहीं होता है किन्तु गुणादिक पराधीन होने से विशेषण होते हैं द्रव्य तो स्वतन्त्रोपस्थितिक होने से विशेष्यरूप से ही भसित होता है यह जो आपका नियम है, उस नियम

प्रतीयमानत्वात्, अतद्व्यावृत्तेश्चाभावरूपत्वात्। तस्माद-तद्व्यावृत्तेर्नतत्वम्। अतः परिशेषादवयवसंस्थानलक्षणकमेव तदिति । न चावयवसंस्थानविशेषस्य सास्नादेर्व्यक्तिरूपतया तस्य च प्रतिव्यक्तिभिन्नतया 'सोऽयं घटः' इत्यादिप्रत्यभिज्ञानं न स्यादितिवाच्यम् 'सैवेयं

शरीरात्मभावसम्बन्धः । नतु शङ्करमतवत् जीवब्रह्मणोः स्वरूपैक्यमूलकोऽभेदनिर्देशः । तन्मते त्वं पदं भागत्यागलक्षणया केवलचेतनपरकं तत्पदमपि भागत्यागया लक्षणया चेतनपरकमिति तयोश्चेतनयोः स्वरूपत एवैक्यमिति । तदन्येनानुमोदन्ते शक्त्यानिर्वाहसंभवे जघन्यवृत्तेरनादरणीयत्वात् । अपि तु श्रुतिस्मृतिपुराणानुमोदितशरीरात्मभावसम्बन्धपूर्वक एव भेदनिर्देशो न तु स्वस्पैक्यादिति । विशेषविवरणं नामरूपव्याकरणश्रुत्यर्थप्रतिपादनप्रकरणे कृतमिति तत एवावगव्यमतो नात्र पिष्टपेषस्यावसर इति विरम्यते ।

सद्विद्याप्रकरणे एकविज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति । 'कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदविज्ञातं भवतीत्यादिप्रकरणे । सेयं प्रतिज्ञाविशिष्टाद्वैतमते एव सरलतया समर्थिता भवति न मतान्तरे इति दर्शयितुं तत्र कारणं च प्रदर्शयितुमुपक्रमते सृष्टेरादि कालेप्रकृतिरित्यादि । अयंभावः सर्वप्रथमं मूलप्रकृतिर्महत्तत्वं जनयति, महतोऽहंकारस्य तदनन्तरमेकादशेन्द्रियाणि

का- **'घटवद्भूतलम्' 'दण्डवान् पुरुषः'** भूतल घटवाला है, पुरुष दण्डवाला है, इस स्थल में उपर्युक्त नियम का व्यत्यास देखने में आता है । अर्थात् द्रव्य विशेषण नहीं होता है, यह नियम **'घटवद्भूतलम्'** घट भूतल में है यहां तथा दण्डवाला पुरुष है इन दोनों स्थल में घट तथा दण्ड ये दोनों संयोग सम्बन्ध से भूतल तथा पुरुष में प्रकार होने से विशेषण बने हैं । (यहां संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारतानिरूपित भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यताशाली बोध होता है। एवं संयोग सम्बन्धावच्छिन्न दण्डत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित पुरुषत्वावच्छिन्न विशेष्यताशाली शाब्द बोध **'दण्डवान् पुरुषः'** इस स्थल में होता है। अर्थात् एक द्रव्य द्रव्यान्तर के प्रति विशेषण होता है। इस से यह सिद्ध होता है कि द्रव्य भी विशेषण होता है। अर्थात् जिस स्थल में समवाय सम्बन्धावच्छिन्न गुणकर्मत्वाद्यवच्छिन्न प्रकारता का भान होता है उस स्थल में गुणादिक ही विशेषण रहेगा और द्रव्य विशेष्य रहेगा, अवयवावयवी स्थलातिरिक्त स्थल में। और जिस स्थल में संयोग सम्बन्धावच्छिन्न द्रव्यनिष्ठा प्रकारता रहेगी। उस स्थल में द्रव्य भी विशेषण होता है तथा **'दण्डवान् पुरुषः'** इत्यादि स्थल में द्रव्य जो दण्डात्मक है वह प्रकार होता है और पुरुषरूप द्रव्य विशेष्य होता है, और जो गुणकर्म जात्यादिक हैं ये सर्वत्र विशेषण ही होते हैं विशेष्य नहीं होते हैं ऐसा भी कोई अव्यभिचरित नियम नहीं है तथा

दीपकलिका' इत्यादौ प्रतिक्षणं कलिकाविभिद्यमानत्वेप्यत्यन्तसादृश्यात् 'सैवेयं दीपकलिकेतिव्यवहारस्तथैव प्रकृते सास्नादीनां प्रतिव्यक्तौभेददर्शनेप्यत्यन्तसादृश्यात्तथा व्यवहारो भवतीति । अयमेवोपवर्णितघटत्वादिप्रकारः पदार्थस्यभेद इति शब्देन कथितो भवति, तादृश-

तत्र पञ्चज्ञानेन्द्रियं चक्षुरादिकं पञ्चकर्मेन्द्रियाणि वागादीनि, एकादशेन्द्रियमुभयात्मकंमनः । तत आकाशादितन्मात्रस्य सूक्ष्मभूतानामुत्पत्तिः ततश्च सूक्ष्मभूतानामुत्पत्तिः ततश्च सूक्ष्मभूतेभ्य आकाशादिभूतेभ्यः पञ्चीकृतान्याकाशादिमहाभूतानि जायन्ते ततस्तादृशमहाभूतेभ्यः प्रञ्चीकृतेभ्यः सप्तभूरादिरूपर्युपरिसंस्थितो लोकस्तथाऽधोधोववर्तमानातलवितलादिकाः सप्तलोकास्तद्रूपब्रह्माण्डस्योत्पत्तिः । तेषु चतुर्दशलोकेषु देवमनुष्यनारकतिर्यगादिका जायन्ते, तथास्थावरान्तपदार्थानामुत्पत्तिर्जायते । ततश्च स्थावरान्तसर्वपदार्थोत्पत्तिः । एतत्सर्वं कार्यमनेकविधमनेकलक्षणकं विचित्रं च । एतेषां भेदाः प्रमेदाश्चानेकप्रकारका भवन्ति । तदेतत्सर्वं कार्यजातं ब्रह्मात्मकमेव,यतो ब्रह्मसर्वेषामन्तरात्मा, प्रकारप्रका-रिणोरभेदात् ।

'घटेरूपम्' घट में रूप है, इस स्थल में आधेयता से घट ही प्रकार होता है और गुणात्मक जो रूप है वह विशेष्य होता है, क्योंकि नैयायिक के मत से प्रथामान्तार्थ मुख्य विशेष्यक बोध होता है ऐसा नियम है, **'घटेरूपम्'** इस स्थल में प्रथमान्त है रूप और घट सप्तम्यन्त है इसलिये आधेय है घट घट में आधेयत्व सम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता रहती है और रूप लक्षण गुण में विशेष्यता रहती है तब आधेयत्व सम्बन्धावच्छिन्न घटादि द्रव्य निष्ठ प्रकारतानिरूपित गुणात्मक रूपनिष्ठ विशेष्यताशाली बोध होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि द्रव्य विशेष्य ही हो, द्रव्यान्तर के प्रति अथवा गुणादिक पदार्थों के प्रति विशेषण न हो ऐसा कोई अनुगत नियम नहीं है, किन्तु तात्पर्य के बल से द्रव्य भी विशेषण बनता है एवं द्रव्येतर गुणादिक भी विशेष्य हो सकते हैं।

ऐसा हुआ तब द्रव्य रूप भी चेतनाचेतन पदार्थ ब्रह्म का विशेषण रूप से श्रुति द्वारा सिद्ध होते हैं तब चेतनाचेतन द्रव्य को ब्रह्म के साथ शरीरात्मभाव सिद्ध होता है तथा उन चेतनाचेतन द्रव्यों का प्रलयकाल में सूक्ष्मरूप से सद्भाव सिद्ध होता है तथा सृष्टिकाल में स्थूलरूप से सद्भाव सिद्ध होता है। इस प्रकरण से आचार्यजी ने यह सिद्ध किया कि द्रव्य भी द्रव्यान्तर के प्रति विशेषण होता है। इस में **'दण्डवान् पुरुषः'** इस प्रतीति को प्रमाण रूप से कथन किया। इसका विशेष विचार अन्यत्र देखें ?

'दण्डवान् पुरुषः' यह पुरुष दण्डवाला है इस स्थल में जिस तरह विशेषणीभूत जो द्रव्यात्मक विसेषण वह स्वतन्त्र रूप से दण्ड का ही बोधक होता है और विशेष्य पुरुष को नहीं

भेदवत्वमेव घटादिधर्मिणोभिन्न इत्याकारकव्यवहारकारणं भवतीति । अयं च भेदः स्वाश्रयमन्यस्माद्भिनत्ति स्वात्मानमपि स्वेतराद्भिनत्त्येव स्वप्रकाशज्ञानवत् । अत एव भेदो न प्रत्यक्षग्राह्यः किन्तु प्रत्यक्षं सन्मात्रं गृह्णातीति निरस्तम् । जात्याद्याकारविशेषसहितस्यैव घटादिपदार्थस्य प्रत्यक्षेण ग्रहणादिति दिक् ।

सप्तलोकास्तद्रूपब्रह्माण्डस्योत्पत्तिः । तेषु चतुर्दशलोकेषु देवमनुष्यनारकतिर्यगादिका जायन्ते, तथास्थावरान्तपदार्थानामुत्पत्तिर्जायते । ततश्च स्थावरान्तसर्वपदार्थोत्पत्तिः । एतत्सर्वं कार्यमनेकविधमनेकलक्षणकं विचित्रं च । एतेषां भेदाः प्रभेदाश्चानेकप्रकारका भवन्ति । तदेतत्सर्वं कार्यजातं ब्रह्मात्मकमेव,यतो ब्रह्मसर्वेषामन्तरात्मा, प्रकारप्रकारिणोरभेदात् । अनेनप्रकारेण सर्वं कार्यजातं ब्रह्मैवकारणमपि ब्रह्मैवेतिकारणीभूतब्रह्मज्ञाने जाते सर्वस्यापि कार्यस्य परिज्ञानं भवत्येवेत्येवं प्रकारेण सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा समर्थिता भवति । सर्वमपि जडचेतनादिकार्यं ब्रह्मणः प्रकाररूपमिति कार्यकारणभावद्वारेण सर्वस्य ब्रह्मात्मकत्वंकथितं भवतीति विशिष्टाद्वैतवादे एवेयं प्रतिज्ञा संगता भवति नान्यमते, कस्यचिन्मते कार्यकारणयोरत्यन्ताभेदः कस्यचिन्मते तयोर्भेदः । कस्याचिन्मते कार्यस्य

प्रलयकाल में सूक्ष्मरूप से सद्भाव सिद्ध होता है तथा सृष्टिकाल में स्थूलरूप से सद्भाव सिद्ध होता है। इस प्रकरण से आचार्यजी ने यह सिद्ध किया कि द्रव्य भी द्रव्यान्तर के प्रति विशेषण होता है। इस में '**दण्डवान् पुरुषः**' इस प्रतीति को प्रमाण रूप से कथन किया। इसका विशेष विचार अन्यत्र देखें ?

'**दण्डवान् पुरुषः**' यह पुरुष दण्डवाला है इस स्थल में जिस तरह विशेषणीभूत जो द्रव्यात्मक विसेषण वह स्वतन्त्र रूप से दण्ड का ही बोधक होता है और विशेष्य पुरुष को नहीं समझाता है किन्तु विशेषण विशेष्य का बोध मतुप् प्रभृति प्रत्यय द्वारा होता है। इस तरह चेतन अचेतन और अन्तर्यामी का जो सम्बन्ध उसका बोधक किसी पद की आवश्यकता नहीं है किन्तु '**नीलो घटः**' घट नील है इस वाक्य में जिस तरह नीलात्मक विशेषण स्वाश्रय का भी बोधक होता है। उसी तरह चेतनाचेतन वाचक विशेषण स्व को समझाता हुआ स्वकीय आश्रय परमात्मा पर्यन्त द्रव्य को समझाता है, इन बात का स्पष्टीकरण करने के लिये आचार्यजी शरीर लक्षण द्रव्य वाचक पद आत्म पर्यन्त द्रव्य का भी बोधक है इसके समर्थक प्रकरण का उत्थान करने के लिये कहते हैं- '**अथ यत्रैकं स्वतन्त्रं द्रव्यमित्यादि**' जिस स्थल में एक स्वतन्त्र द्रव्यवाचक पद किसी द्वितीय द्रव्य का विशेषण रूप से भासित होता है, उस स्थल में विशेषण तथा विशेष्य के सम्बन्ध का बोधक प्रत्ययादि पद की आवश्यकता होती है। जिस तरह '**दण्डवान्**' इस स्थल में। अर्थात् दण्डवाला

ॐ घटकश्रुतिभेदप्रतिपादकश्रुत्योः समन्वयनम् ॐ

ननु घटकश्रुतीनां भेदप्रतिपादकश्रुतीनां च सद्भावात्तद्विरोधसम्भवेनाभेदप्रतिपादकश्रुतीनां कथं समर्थनं भवतीत्याशङ्कायां समन्वयः

ब्रह्मविवर्तत्वेनमिथ्यात्वात्, कार्यकारणयोरभेदासंभवादिदूषणानि मतान्तरेऽनुसन्धेयानि ।

ननु श्रुतावेकत्र निर्विकारनिरवयवत्वादिकमीश्वरस्य स्वरूपतः परिणामित्वं निवारितम् । अन्यत्र 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधादित्यत्रैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञां मृदादिकार्यप्रदर्शनद्वारेण परमेश्वरस्योपादानकारणत्वं प्रदर्शितम्, एतदुभयमपि सर्वथा विरुद्धम्, अर्थात् यदि परमेश्वरे एकश्रुत्यनुरोधात् निर्विकारत्वनिरवयवत्वं स्वीक्रियते तदा परिणामितारूपोपादानत्वं न स्यात् । यदि श्रुतिस्मृत्यनुमोदितोपादानत्वमाद्रियेत तदा तस्मिन् परमेश्वरे निर्विकारत्वं न स्यादिति परस्परविरोधात्कथंनिर्विकारत्वमुपादानत्वं च गतप्रकरणेन साधितमितीमां शङ्कां सर्वश्रुतियुक्तिभिः पूर्वापरालोचनं कृत्वा चिदचिद्विशि-

पुरुष है यहां दण्ड द्रव्य स्वतंत्र है अर्थात् पुरुष के बिना भी रहता है और पुरुष भी स्वतन्त्र द्रव्य है दण्ड के बिना भी रहता है, अब जब दण्डवाला यह पुरुष है ऐसा कहा जाता है तब स्वतन्त्र इन दोनों द्रव्य के सम्बन्ध को समझाने के लिये मतुप् प्रत्यय का समभिव्याहार आवश्यकता पडती है, अन्यथा दण्डवाला पुरुष है यह अर्थ होकर के यह दण्ड है यह पुरुष है ऐसा ज्ञान होगा किन्तु दण्डवाला पुरुष है ऐसा ज्ञान न होगा। और जब मतुप् प्रत्यय लगाते हैं तब दण्ड तथा पुरुष में आधाराधेयभाव सिद्ध होता है। (किन्तु '**नीलो घटः**' नील घट है इसके समान विशेषण ही विशेष्य पर्यन्त को नहीं समझाता है।) प्रकृत में द्रव्यरूप जो चेतनाचेतन पदार्थ है वह तो पुरुष में दण्ड के समान स्वतन्त्र विशेषण है तब इन दोनों को यदि परमेश्वर रूप द्रव्य के प्रति प्रकार-विशेषण मानेंगे तब तो 'दण्डवाला पुरुष है' इसके समान प्रकारता बोधक मतुप् प्रत्ययादिकों का समभिव्याहार होना चाहिये उस प्रकारता बोधक पद का तो अभाव है, तब किस तरह ये चेतन तथा अचेतन द्रव्यात्मक पदार्थ परमेश्वर के प्रति प्रकारहोंगे तथा इन विशेषण तथा विशेष्य का ईश्वर पद में सामानाधिकरण्य भी नहीं होता है, क्योंकि विभिन्न विशेषणों को समझाता हुआ एक विशेष्य में पर्यवसान प्राप्त करने वाले शब्दों में सामानाधिकरण्य होता है। 'जिस तरह '**नीलो घटः**' घट नील है इस स्थल में नीलपद नीलत्व विशेषण को बतलाता है तथा घट पद घटत्वरूप धर्म को समझाता है और दोनों विशेष्य विशेषण एक घटरूप अर्थ को समझाते हैं इसलिये ये दोनों पद समानाधिकरण कहलाते हैं। परन्तु प्रकृत में तो नीलो घटः इसके समान नहीं है प्रत्युत दण्डवान् के समान विभिन्न विशेषण तथा विभिन्न विशेष्य

प्रदर्श्यते 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोऽयं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयति एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः।' 'य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरो यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मा-नमन्तरो यमयति स ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः' 'यः पृथिवीमन्तरे संचरन्

ष्टस्येश्वरस्य कारणतामभ्युपगम्य चिदचिदात्मके विशेषणे उपादानत्वं सदोषत्व विशेष्याशेपरमेश्वरे निर्दोषत्वसकलकल्याणगुणालयत्वस्वीकारेण पूर्वशङ्कामुद्धर्तुं भगवति परमेश्वरे उपादानत्वस्वीकारेऽपि निर्विकारत्वनिरवयवत्वादिपूर्वकसकलकल्या-णगुणाकारत्वं च साधयितुमुपक्रमते स्यादेतदेकत्रब्रह्मणः इत्यादिस्यादेतत् संभवेदेतद् भवतः पूर्वोक्तकथनं यदीश्वरोनिर्विकारो जगत उपादानकारणं चेति, परन्तु तन्न संभवति, निर्विकारत्वपरिणामित्वयोः परस्परविरोधात्। तदेव दर्शयति एकत्रेत्यादि अयंभावः 'यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते' इत्यादिश्रुत्या 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादिसूत्रेण ब्रह्मण उपादानकारणत्वं व्यवस्थाप्यते। उपादानं तु तदेव यत् कार्याकारेण परिणमते, यथा घटंप्रतिमृत्तिका यदि ब्रह्मणः स्वरूपमेव जगद्रूपेण परिणमते तदापरमेश्वरे निर्विकारत्वं

का बोधकत्व है। इसलिये एकार्थ वाचतकत्व गुणादि पद के समान नहीं होने से चेतनाचेतन वाचक पद स्वार्थ बोधक होता हुआ परमात्मा का बोधक नहीं हो रहा है। यहां तक प्रश्न प्रकरण हुआ।

इसप्रकार का जो प्रश्न है उस का समाधान करने के लिये कहते हैं-**'सत्यमिति'** यह आपका कहना ठीक है कि एक स्वतन्त्र द्रव्य यदि द्रव्यान्तर का विशेषण होता है उस स्थल में उन दोनों का सम्बन्ध बोधक मतुप् प्रभृतिक प्रत्यय का समभिव्याहार आवश्यक हो जाता है अन्यथा **'दण्डवान्'** इत्यादि स्थलमें दण्डाधिकरण पुरुष है ऐसा ज्ञान नहीं होगा। परन्तु यह भी लोक में प्रसिद्ध है कि शरीर वाचक पद शरीरी का भी बोधक होता है। यथा देवदत्त अभाग्य विशेष से अर्थात् पापकर्म से पशु हो गया हैं, यहां पशु पद जो कि पशु शरीर का वाचक है परन्तु शरीरावच्छिन्न चेतन पर्यन्त को समझाता है, और वही 'देवदत्त पुण्य विशेष के बल से देव हो गया है' यहां भी देवादि पद पृथिव्यादि द्रव्य समुदायात्मक शरीर का वाचक होता हुआ देव शरीरावच्छिन्न तत् तत् चेतन पर्यन्त को भी समझाता है। अन्यथा शरीर तो जड है उसमें पुण्यपाप कर्मों का जो फल सुख दुःख है उन फलों का अनुभव नहीं होगा। तादृश फलोपभोग तो तत् तत् शरीरावच्छिन्न चेतन में ही होता है। सुखादिक फल के प्रति समवायि कारण जीव होते हैं, शरीर तो अवच्छेदकमात्र है, तो इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर बोधक पद स्व शरीरी स्वावच्छिन्न स्वकीय आत्मा का भी बोध कराता है। यह

यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वेद 'इत्यादि। एवं 'योऽक्षरमन्तरे संचरन् यस्याक्षरं शरीरं यमक्षरं न वेद' 'यो मृत्युमन्तरे संचरन् यस्य मृत्युः शरीरं यं मृत्युर्न वेद' 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति'

निरवयवत्वं न स्यात्, श्रुतिश्चेश्वरं निर्विकार इति मनुते। तथा 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधादित्यादिसूत्रेण ब्रह्मणउपादानत्वं व्यवस्थायितम्। यतः एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा प्रदर्शिता श्रुतौ, तां प्रतिज्ञामुपपादयितुं मृत् तत् कार्ययोर्दृष्टान्तरूपेण प्रदर्शनम्। मृत्तिकैवकारणं घटादिकार्याकारेण परिणतं भवति, तस्मात् मृद्द्रव्यं घटश्चैकमेववस्तु, तथा मृत्तिका ज्ञानेन घटोऽपि ज्ञातो भवति, मृद्द्रव्यं च घटोपादानम्। तथैव प्रकृते ब्रह्मजगदाकारेण परिणमते इति ब्रह्मजगच्चैकमेववस्तु, तथा ब्रह्मात्मककारणविज्ञानेन कार्यरूपं जगदपि विज्ञातं भवति। तदनेन दृष्टान्तेन ब्रह्मजगत उपादानकरणमिति सिद्ध्यति। अत्रेयं जिज्ञासा भवति यत् ब्रह्म यदि जगत उपादानं भवति अर्थात् ब्रह्मजगदाकारेण

बात-**'पुण्येन देवोऽपुण्येन देवदत्तो गौर्जातः'** इत्यादि स्थल में सेखा गया है, तो इस स्थल में द्रव्यरूप दोवदत्त शरीर को देवदत्तावच्छिन्न आत्म चैतन्य बोधकत्व होता है तथा द्रव्यरूप शरीर आत्मारूप द्रव्य का विशेषण बनता है, तता एक विशेष्य बोधकत्वरूप सामानाधिकरण्य भी होता है ऐसा देखन में आता है। इसी तरह प्रकृत में जो चेतन तथा अचेतन द्रव्य हैं वे दोनों द्रव्य रूप परमेश्वर का विशेषण भी बनते हैं तथा इन दोनों पदों में सामानाधिकरण्य प्रत्यय भी होता है। अर्थात् द्रव्य भी द्रव्यान्तर का विशेषण बन सकता है तथा गुणादिक भी विशेषण बन सकता है स्थल विशेष में दोनों ही देखने में आता है। अनुभव बल से यह सिद्ध होता है। इसी बात को **'अयंभावः'** इत्यादि प्रकरण से स्पष्ट करते हैं-**'अयंभावः'** इति। इस प्रकरण का भाव यह ह कि-जिस पदार्थ का-चाहे द्रव्य होया गुण कर्मादिक हो उन पदार्थों का सद्भाव-स्थिति किसी द्रव्य विशेष के प्रति विशेषण रूप से ही होता है उसको अपृथक् सिद्ध विशेषण कहते हैं-यथा-अवयवी द्रव्य घट पटादिक गुण कर्म और समान्य-यहां घट रूप अवयवी द्रव्य, कपालरूप अवयव में विशेषण रूप से ही स्वकीय सत्ता को प्राप्त करता है क्योंकि आश्रय के अभाव में वह स्वकीय सत्ता को ही प्राप्त नहीं कर सकता है। यथा वा घट का गुण कर्म घटादिक द्रव्य के अभाव में विशेषण रूप से गुणादिक का सद्भाव ही नहीं हो सकता है, तो ये अवयवी द्रव्य तथा गुण कर्मादि पदार्थ अपृथक् सिद्ध विशेषण कहलाते हैं उस आधार रूप द्रव्य में इन गुण कर्मादिक का प्रकार रूप से भान होगा तथा सामानाधिकरण्य भी होता

'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवत् ।' एवम् 'सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्' 'अनेनाऽनुप्रविश्य' इति तथा 'पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनाऽमृतत्वमेति' 'भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं

परिणामास्पदं भवति, तदा तद् ब्रह्मनिर्विकारं निर्दोषं च न स्यादन्यत्रोपादानस्यविकारित्वदोषवत्त्वदर्शनात् । यदि निर्विकारत्वप्रतिपादकश्रुत्यनुरोधेन तस्य ब्रह्मणोनिर्विकारत्वं निर्दोषत्वं चाद्रियेत तदा तस्योपादानता न स्यात्, यतो निर्विकारत्वोपादानत्वयोः परस्परविरोधात्, नास्ति आभ्यामतिरिक्तः पक्षः । तदुक्तम्-'परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिरितिनियमादिति । तमिममाक्षेपमाक्षिप्तं तत्र प्राह सत्यमित्यादि नहि स्वरूपेण मृत्तिकावत् परमेश्वरपरिणमते किन्तु तदीयविशेषणस्य परिणामे विशेष्यस्यापि परिणाम इति कथ्यते अतो न कोऽपि दोषः प्रादुर्भवतीति । अत्रायं भावः ब्रह्मजगतः साक्षादेव नोपादानकारणं भवति किन्तु प्रकृतिपुरुषद्वारा जगत उपादानकारणं भवति । ब्रह्मस्वयं निर्विकारं सदपि

है । अर्थात् एतादृश स्थल में द्रव्य गुणादिवाचक शब्द स्वकीय अर्थ का प्रतिपादन कर के स्वकीयाश्रयीभूत द्रव्य का भी प्रतिपादन कर के एकार्थ वाचक होने से समानाधिकरण शब्द कहलाते हैं। एतादृश अपृथक् सिद्ध विशेषण द्रव्य हो कि गुण हो अथवा कर्म और जाति ही हो ऐसा कोई आग्रह नहीं है। अर्थात्-एतादृश अपृथक् सिद्ध विशेषण द्रव्य भी हो सकता है यथा अवयवी द्रव्य घटादिक कपालादिक के प्रति गुण भी होगा, गुणी के प्रति यथा घटीय रूप रसादिक घट के प्रति अपृथक् सिद्ध विशेषण है क्योंकि इन सब का सद्भाव तत्तत् द्रव्य के अधीन है और उन द्रव्यों में ये गुणादिक पदार्थ जब रहते हैं तब विशेषण रूप से ही सत्ता को लाभ करते हैं कभी भी विशेष्य रूप से नहीं रहते हैं। एतादृश अपृथक् सिद्ध विशेषण द्रव्य गुण कर्मादिक सब ही हो सकते हैं, इसमें कोई आग्रह नहीं है कि अमुक पदार्थ ही एतादृश विशेषण हो । और जिस स्थल में द्रव्य दण्डादिक पृथक् सिद्ध स्वतन्त्र है यथा पुरुष सम्बन्ध के विना भी स्वकीय सत्ता को प्राप्त करनेवाले हैं और कारण के बल से स्वभिन्न द्रव्यान्तर में विशेषण बन जाते हैं उस स्थल में उन दोनों में आधाराधेयभाव की सिद्धि के लिये मत्वर्थीय मतुप् प्रभृतिक प्रत्यय की आवश्यकता पडती है । यथा 'धनवान् दण्डवान्' धनवाला है दण्डवाला है इस स्थल में किसी जगह में स्वतन्त्र रूप से धन भी तथा पण्ड भी पडा है, परन्तु कारण वशात् पुरुष के साथ पुरुष का समभिव्याहार होता है तब धनादिक तथा पुरुष में आधाराधेय अर्थात् धनाधिकरणता तथा दण्डाधिकरणता के सिद्ध्यर्थ मतुप् प्रत्यय लगाते

ब्रह्ममेतत्' 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्' 'तदात्मसंस्थम्' 'प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः' 'ज्ञाज्ञौद्वावजावीशानीशौ' 'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि । इति रामपदेनासा परंब्रह्माभिधीयते' 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं

प्रकृतिपुरुषद्वारेणैव जगत उपादानं भवतीति 'रामस्य परिणामोहिचिदचिद्द्वारको जगत्' 'ब्रह्मणस्तुविकारोयन्नस्वरूपस्वभावयोः' इत्याद्याचार्योक्तेर्ज्ञायते श्रुतिस्मृत्यनुकूलत्वात् । तेन निर्विकारत्वोपादानत्वयोरुभयोप्येकस्मिन् ब्रह्मणिसद्भावे न कापि क्षतिः । इदमुत्तरं प्रलयकालेऽपि प्रकृतिपुरुषयोः सद्भावो विद्यते एवेति कृत्वा । अन्यथा यदि प्रलयकाले प्रकतिपुरुषयोः सद्भावो न भवेत् तदा प्रकतिपुरुषद्वारेण ब्रह्मण उपादानकारणत्वं जगत इति चर्चैव न स्यात् । यदि सूक्ष्मदृष्ट्या विचार्यते प्रलये तयोः प्रकृतिपुरुषयोः सद्भावो भवत्येव । अतोऽत्रेदं विचारणीयम् तथाहि-यानि वाक्यानि ब्रह्मणो जगत उपादानकारणता

हैं तब वह मतुप् प्रत्यय स्वबल से पुरुष में धनाधिकरणता को समझाता है। यद्यपि धनवान् तथा धनी इन दोनों स्थलों में मत्वर्थीय मतुप् तथा इन् प्रत्यय हैं ये दोनों से धनाधिकरणता का ज्ञान होता है तथापि पतुप् स्थल में संयोग सम्बन्धावच्छिन्न धनत्वावच्छिन्नाधेयतानिरूपित अधिकरणता की प्रतीति होती है, और स्वामीत्व सम्बन्धावच्छिन्न धनत्वावच्छिन्न आधेयतानिरूपित अधिकरणता की प्रतीति होती है । समानार्थक होने पर भी यह विशेषता है धनावान् तथा धनी इन दोनों स्थलों में ।

प्रकृत में चेतन वर्ग जीव समुदाय तथा अचेतन जड वर्ग यद्यपि द्रव्य है तथापि इन चेतनाचेतन का परमेश्वर रूप आश्रय के बिना सद्भाव असंभवित है अर्थात् ईश्वर रूप आश्रय के विना इनका सद्भाव संर्वथा हो नहीं सकता हैं। इसलिये ये चेतनाचेतन अपृथक् सिद्ध विशेषण होने से गुण कर्म की तरह स्वबोधक हो कॅर के स्व का आश्रय परमेश्वर का भी बोधक होते है गुणादि की तरह । अर्थात् जिस तरह गुणादिक अपृथक् सिद्ध पदार्थ गुण को समझाते हुए स्वकीय आश्रय द्रव्य के भी बोधक होते हैं उसी तरह प्रकृत में चेतनाचेतन भी अपृथक् सिद्ध विशेषण हैं तो ये भी स्व के बोधक होते हुए स्वाश्रय परमेश्वर के भी वाचक होते हैं। और '**दण्डवान्**' यह दण्डवाला है, इस स्थल में दण्डरूप जो पुरुष का विशेषण है वह तो पृथक् सिद्ध विशेषण है क्योंकि दण्ड का स्वतन्त्र रूप से भी तो ज्ञान होता है अर्थात् जब दण्ड भासित होगा तब पुरुष का विशेषण रूप से ही भासित होगा, ऐसा नियम नहीं है '**रक्तो दण्डः**' लाल दण्डा है इत्यादि स्थल में बिशेष्यरूप से भी भासित होता है, और-'**दण्डपुरुषपर्वताः**' दण्ड है पुरुप है तथा पर्वत है । यहां द्वन्द्व समास होने से दण्डादिक

तत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम् ॥' इत्याद्यनेकश्रुतिभिः । एवं श्रुत्यर्थपोषकैः- 'जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्' 'यत् किञ्चित्सृज्यते येन सत्वजातेनवै द्विज ! तस्य सृज्यस्यसंभूतौ तत्सर्वं वै हरेस्तनुः'' अहमात्मा

बोधकानि तैर्वाक्यैः समानरूपेण ब्रह्मचेतनाचेतनजगतोरुपादानकारणमिति ज्ञायते । तत्र यदि परमेश्वरो जीवरूपेण परिणतः स्यात्तदेश्वरपरिणामरूपस्य जीवस्य जन्यता स्यात्, मृत्परिणामरूपघटादिवत्, तथा तदा 'नात्माश्रुते नित्यत्वाच्चताभ्यः' इति सूत्रविरोधः स्यात् श्रुतिश्चजीवात्मनो नित्यतां दर्शयति न तु जीवस्य जन्यतां प्रतिपादयति । तस्माज्जीवो नोत्पद्यते किन्तु नित्य एव । अपि च सूत्रकारः शङ्कां कृत्वा समाधानं कृतवान्, यदि परमेश्वरः सृष्टिसमयेकस्मैचिज्जीवाय विलक्षणं शरीरं ददाति तथा तत्र सुखं ददाति कस्मैचित् निष्कष्टशरीरं दुःखं च प्रयच्छतीति परमेश्वरे वैषम्यनैर्घृण्यदोषौस्यातामित्याशङ्क्य कर्मसापेक्ष ईश्वरस्तथा करोति नतु कर्मनिरपेक्षस्तथा करोतीत्येवं रूपेण 'वैषम्य-

प्रत्येक प्रदार्थ स्वतन्त्र रुप से ही जाने जाते हैं। इसलिये दण्डवान् इत्यादि स्थल में दण्ड तथा पुरुष में आधाराधेयभाव का बोध कराने के लिये मत्वर्थीय मतुप् प्रत्यय आवश्यक है। अन्यथा दण्ड तथा पुरुष में जो आधाराधेयभाव अनुभवसिद्ध है उसका बाध हो जायगा। अतः शरीर रूप द्रव्य का वाचक जो शब्द है वह आत्मा पर्यन्त का वाचक होता है। यह पर्यवसित हुआ।

प्रत्येक शब्द अर्थात् घटापटादि वाचक सब पद परमेश्वर का वाचक होता है, इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-**'यथा शरीरवाचको देवमनुष्य'** इत्यादि जिस तरह मनुष्यादि शरीरवाचक देव मनुष्यादि शब्द तादृश मनु ादि शरीरावच्छिन्न जीवादिक चेतन रूप जीव को भी समझाता है। इसी तरह सभी स्थावर जंगमादिक पदार्थ ईश्वर का शरीर है इन पदार्थों के भी ईश्वर के प्रकार होने से प्रकारवाची स्थावरादिक पदार्थ स्वकीय प्रकारीभूत परमेश्वर को भी समझाता है। इसलिये सबके प्रकारी परमेश्वर स्थावर जङ्गमादि शरीर वाचक पद के प्रतिपादित होते हैं। अतः परमेश्वर वाचक शब्द को सामानाधिकरण्य भी होता है क्योंकि इन पदों में एक विशेष्य वाचकत्वरूप सामानाधिकरण्य होता है। इन वस्तुओं का प्रतिपादन तत्वमसीत्यादि प्रकरण में किया गया है।

इस प्रकरण का संक्षिप्त अभिप्राय यह है कि पूर्वपक्षवाले कहते हैं कि शरीर वा देव मनुष्यादिक हैं ये सब शब्द स्व प्रकारी जीवात्मा को बतलावें, परन्तु ये मुनष्यादि वाचक शब्द परमात्मा का वाचक कैसे हो सकते हैं अर्थात् सर्व शब्द वाच्यत्व परमात्मा नहीं हो सकता है। इसका उत्तर यह है कि इस संसार में रहनेवाले सभी पदार्थ भगवान् श्रीरामजी का शरीर रूप है क्योंकि

गुडाकेश ! सर्वभूताशयस्थितः । अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ।'' 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।' 'सर्वस्याधारभूतौ च

नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्' इति सूत्रेण समाधानं कृतवान् एवं सृष्टिपूर्वसमये जीवो न विद्यते किन्तु ब्रह्ममात्रमेवावस्थितं भवति, तदा प्रलये यदा जीवो नास्ति तदा जैवीयं कर्मापि न भवति, तदा जीवकर्माधीनो वैषम्यनैर्घृण्यदोषयोः कथमुद्धार इत्याशङ्क्य जीवस्तदीयकर्मप्रवाहोऽनादिरेव । अन्यथा यदि सृष्टिसमये जीवस्योत्पत्तिर्मन्येत तदा कृतप्रणाशाकृताभ्यागमश्च स्यात्, तस्मात् पूर्वकल्पेऽवस्थित एव जीवः स्वकीयशुभाशुभकर्ममादाय पुनः कल्पान्तरादावाविर्भवति इति जीवस्तदीयं कर्म एतदुभयमप्यनादि इत्येव मन्तव्यम् । तस्माज्जीवो नोत्पद्यते न वा विपद्यते इति । प्रलयेऽपि जीवस्य तदीयकर्मणश्चप्रवाहोऽनादिरेवेत्यादिसमाधानं 'न कर्माविभागादिति ब्रह्मसूत्रे कृतवान् । तस्माज्जीवस्य

जगत्सर्वं शरीरं 'ते हे भगवन्, संपूर्ण पदार्थ आपका शरीर है। इत्यादि स्थल में बतलाया गया है, इससे सिद्ध होता है कि संपूर्ण जगत् ईश्वर का शरीर है ईश्वर के प्रति विशेषण रूप बन कर के रहना ऐसा इन पदार्थों का स्वभाव है, क्योंकि-**'स्वभावो दुरतिक्रमः'** ऐसा नियम है। अन्यथा जगदैक्य का वाध हो जायगा। अतः स्थावर जङ्गमात्मक पदार्थों का वाचक शब्द इन पदार्थों की अन्तरात्मा जो परमात्मा हैं उनका भी बोधक होता है। तत्तत् पदार्थ के वाचक शब्द परमात्मा के भी वाचक होते हैं। यह अर्थ युक्ति संगत है। यह सब प्रपञ्च नाम रूप व्याकरण श्रुति का अर्थ करने केसमय में किया गया है। इस पूर्वोक्त विचार से सिद्ध होता है कि-**'तत्वमसि'** इस वाक्य में जीवात्मा का वाचक त्वं शब्द युष्मद् शब्द जीव का अन्तर्यामी ब्रह्म को समझाता है। तथा एतद् वाक्य घटक तत् शब्द जगत्कारणीभूत ब्रह्म का प्रतिपादन करता है। यहां दोनों ब्रह्म वस्तुतः एक हैं, इसलिये इन दोनों में अभेद का कथन किया गया है यह जो अभेद निर्देश ह जीव तथा ब्रह्म में वह शरीरात्ममूलक हैं किन्तु स्वरूपैक्य गूलक नहीं है क्योंकि जीव ब्रह्म का स्वरूप एक नहीं है किन्तु दोनों में शरीरात्मभाव है।

'सदेव सोम्येदमग्रे आसीत्' इत्यादि सद्विद्या के प्रकरण में कहा गया है कि एक सत् ब्रह्म का ज्ञान होने से सकल पदार्थ ज्ञात हो जाता है, ऐसी जो प्रतिज्ञा है उस प्रतिज्ञा का समन्वय इस विशिष्टाद्वैतवाद पक्ष में ही समीचीन रूप से सिद्ध होता है, किन्तु मतान्तर में इस प्रतिज्ञा का समन्वय

त्वावामेव हि मास्ते ! । स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः । सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ । भासकभास्कादीनामावामेव विभासकौ' 'शेषी चाथ निमित्तं चोपादानं जगतोऽस्यहि । महाविष्णु-

तदीयकर्मणश्च प्रवाहः प्रलयकालेऽपि तिष्ठत्येव, अतएवायमनादिरजन्माचेति मन्यते । अयमर्थः 'अकस्मादेव सृष्टिस्वीकारे पूर्वसृष्टिसादृश्यानुपपत्तिः । मुक्तस्यापि पुनः सृष्टिप्रसङ्गो दुर्निवारः । तस्माज्जगतोऽनादित्वमभ्युपेयम् । श्रुतिस्मृत्योरप्यस्यानादित्वमुपलभ्यते 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते ' (श्वे. ४।५) इतिप्रकृतिपुरुषयोरजत्वश्रुतेः । 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' (यजु.) इत्युत्तरसृष्टेः पूर्वसृष्टिसादृश्यश्रवणाच्च जगचोऽनादित्वं सिद्धम् । 'प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि' (गीता) इतिप्रकृतिपुरुषयोस्तत्संसर्गरूपसंसारस्यानादित्वस्मरणात्' (आनन्द-भाष्यम्) इत्यादिरूपेण बहुतरशास्त्रेषु तत्तत्स्थानेवर्णित इतितदीयकर्मविभागेन सृष्टिं

नहीं हो सकता है । इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-'**सृष्टेरादिकाले प्रकृतिरित्यादि** ' प्रलयकाल में परिदृश्यमान महाभूतादिक सकल कार्य वर्ग स्वका परिणामी कारणमूल प्रकृति में तिरोभूत हो जाते हैं । पुनः जब परमेश्वर के सङ्कल्प द्वारा यह मूल प्रकृति, महत्तत्व अहङ्कार पञ्चतन्मात्रा एकादशेन्द्रिय पञ्चमहाभूत रूप अनेकाकार संस्थित विचित्र अनेक प्रकारक कार्याकार से परिणत होती है । अर्थात् सृष्टि के आदिकाल में मूल प्रकृति महत्तत्व अहङ्कार पञ्चज्ञानेन्द्रिय चक्षुरादिक वागादिक पञ्च कर्मेन्द्रि और उभयात्मक मन इस प्रकार से एकादशेन्द्रिय और पांच आकाशादिक महाभूत इस प्रकार अनेक तत्व के रूप में प्रकृति का परिणाम होता है । इन समुदित तत्वो से अनेक ब्रह्माण्ड का प्रादुर्भाव होता है । इन प्रत्येक ब्रह्माण्ड के अन्दर में ऊपर ऊपर भूरादि सात लोक तथा नीचे नीचे अतल वितलादिक सात लोक होते हैं, मिल कर के चतुर्दशभुवन समुत्पन्न होते हैं । इन भुवनों में देव मनुष्य पशु पक्षी और स्थावरात्मक कार्य उत्पन्न होकर के रहते हैं । इनका भेद प्रभेद अनेक प्रकारक है तथा इनकी रचना भी विभिन्न विभिन्न प्रकारक है । इस तरह विभिन्न रूप से जगत् में विद्यमान कार्य समुदाय के रूप में प्रकृति का परिणाम होता है । ये सब कार्य जो विभिन्न रूप से रहनेवाले हैं वे सभी ब्रहारूप ही है क्योंकि इन सब की अन्तरात्मा ब्रह्म हैं, ये सब ब्रह्म से धारित हैं, ब्रह्म से नियम्य है, ब्रह्म का शरीर है । ब्रह्म इनका नियामक धारक तथा इनका शरीर है । इस प्रकार से कार्य मात्र ब्रह्म ही है, तो कारणरूप ब्रह्म का ज्ञान जब ईश्वरोपासना से संपन्न होता है तब कार्यरूप इन सकार्य का भी ज्ञान हो जाता है । जिस तरह मूलकारण मृत्तिका का ज्ञान होने से मृत्तिका का कार्य जितने घट

निराधारो रामोब्रह्माखिलेश्वरः' इत्यादिप्रमाणनयपारावारीणैराप्तत-मैर्वेदार्थविद्भिर्महर्षिभिर्वाल्मीकिपराशरव्यासादिभिर्महापुरुषैः परमपुरुषसर्वेश्वरश्रीरामाख्यब्रह्मण एव सर्वस्यात्मत्वावगमात्, सूक्ष्म-

कुर्वन्नीश्वरो न दोषलिप्तो भवतीति जीवनित्यता सिद्ध्यति न तु जीवो ब्रह्मपरिणामरूप इति । यथा जीवो नित्यस्तदीयकर्मप्रवाहोऽनादिमान् तथा प्रकृतिरपि न सादिरपित्वनादिरेव तथाहि श्रुतिः 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । अजोह्येको जुषमानोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः ' अयमर्थः तेजो जलपृथिवीरूपेण परिणामात् रक्त श्वेतकृष्णारूपवतीं समानानेकप्रजोत्पादयित्रीं जन्मरहितप्रकृतिं स्नेहेन सेवमान एकोऽजन्माजीवस्तत्रानुरक्तो भवन्नवतिष्ठते । तदन्योऽजन्माविरक्तो जीवोभुक्तभोगां तां परित्यजतीति । अनेन प्रकृतिपुरुषयोरजन्यत्वं जगद्रूपेण परिणममानत्वं प्रकतिर्निवेदितं भवति । 'अस्मान्मायीसृजतेविश्वमेतत्तस्मिंश्चान्योमाययासन्निरुद्धः । मायां तु प्रकतिं विद्या-

शरावादिक हैं वे सब ज्ञात हो जाते हैं, उसी तरह कारणरूपब्रह्म का ज्ञान होने से त्रयोविंशति तत्वात्मक सभी कार्य वर्ग विज्ञात होते हैं । इस प्रकार एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की जो प्रतिज्ञा सद्विद्या के प्रकरण में की गई,है वह प्रतिज्ञा विशिष्टाद्वैतवाद में कार्य कारणभाव द्वारा समस्त जड चेतन पदार्थ का ब्रह्म के प्रकार होने से ब्रह्मरूप होने से ब्रह्म का ज्ञान होने से सब पदार्थ का विज्ञान उपपन्न हो जाता है । अर्थात् संपूर्ण चेतनाचेतन रूप जगत् ब्रह्मात्मक है क्योंकि ब्रह्म इस जगत् में अन्तरात्मा के रूप से विद्यमान हैं, यह संपूर्ण जगत् ब्रह्म का शरीर वन कर के रहता है, अत: ये सब ब्रह्म के विशेषण हैं । इस बात को कार्यकारणभाव के द्वारा '**सन्मूलाः सोम्य ! इमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः**' '**ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा**' इत्यादि श्रुति वचनों से सिद्ध किया जाता है । (श्रुत्यर्थस्त्वेवम्-हे सोम्य ! ये सभी उत्पद्यमान प्रजा पदवाच्य पदार्थजात सन्मूलक हैं अर्थात् ये सब पदार्थ सदात्मक ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं, तथा समुत्पद्यान ये सब पदार्थ सदायतन है सत् ब्रह्म ही इनका आयतन है अर्थात् ये सब ब्रह्म से धारित हैं और सत्प्रतिष्ठ है अर्थात् अन्त में प्रलयकाल में सत् ब्रह्म में लीन हो जाने वाले हैं अत: ये सब ब्रह्मात्मक हैं, जिसतरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले पदार्थ पृथिवी से धृत हैं, पृथिवी में प्रलीयमान होते हैं इसलिये पृथिव्यात्मक हैं इसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये) ।

इसप्रकार उक्त श्रुति से कार्य कारणभाव और धार्यधारक भावादिक सम्बन्ध का वर्णन कर के यह श्रुति वाक्य शरीरात्मभाव के आधार पर संपूर्ण जगत् को ब्रह्मात्मक सिद्ध करता है । न तु जगत्

जडचेतनात्मकस्य पदार्थस्य परमपुरुषशरीरतया स्वीकारात् । देहस्य च देहिनं प्रति प्रकाररूपतयैव वस्तुत्वात् शरीरशरीरिणोश्च सत्यपि धर्मभेदे तदुभययोरसंकरेण सर्वशरीरविशिष्टः परमात्मैवेति । एवं क्रमेण परमात्मनो वैभवं प्रतिपाद्य 'तत्त्वमस्यादिश्रुत्या मुख्यवृत्त्या सामाना-

न्मायिनं तु महेश्वरम्' अस्यार्थः मायायाः प्रेरकस्तन्नियन्ता परमेश्वरो विचित्रां सृष्टिं सृजति, तदन्यो जीवस्तदीयमाययामोहितो भवति । अनेकप्रकारकसृष्टिकरणेमायैव हेतुः, तथा तादृशमायायाः प्रेरको भगवानीश्वर एवेत्यवेहि । अनेन परमेश्वरो मायाद्वारेण जगत्सृजति न तु स्वातन्त्र्येण तत् सृजतीति सूचितः ।

'गौरनाद्यन्तवती सा जनित्रीभूतभाविनी' परमेश्वरस्य लीलारसं संपादयन्ती, अत एव गौरूपेयं प्रकृतिराद्यन्तरहिता, इयं च समष्टिसृष्टिं व्यष्टिसृष्टिञ्च संपादयति अर्थात् तदाकारेण परिणामवतीत्यर्थः । एतावता प्रकतिरियं स्वरूपत एव समष्टिव्यष्टिरूपेण परिणमते । भगवद्गीतायां भगवताप्युक्तम्-

तथा ब्रह्म में स्वरूपतः एकता को लेकर के सिद्ध करता है, इस प्रकार प्रकृत मत में एक विज्ञान से सर्व विज्ञान प्रतिज्ञा का उपपादन होता है । मतान्तर में इस प्रतिज्ञा का उपपादन नहीं होता है इस बात को आचार्यजी स्वकीय अक्षरों से बतलाते हैं-'**सेयमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञानप्रतिज्ञा**' इत्यादि । यह एक विज्ञान से जों सर्व विज्ञान की प्रतिज्ञा सद्विद्या के प्रकरण में की गई है, उसका निर्वाह विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में ही हो सकता है अन्यमत में शंकराभिमत अद्वैतवाद में इस प्रतिज्ञा का निर्वाह नहीं हो सकता है क्योंकि मतान्तर में प्रपञ्च तथा ब्रह्म में कार्यकारणभाव सम्बन्ध एवं प्रकार प्रकारीभाव सम्बन्ध को नहीं मानते हैं। वे लोग तो प्रपञ्च विभ्रम को ब्रह्म का विवर्तमानते हैं। श्रुति में तो मृत्तिका घट का दृष्टान्त दे कर के कार्यकारणभावादिक सम्बन्ध का प्रतिपादन किया गया है यदि कदाचित् श्रुति का अभिप्राय विवर्तवाद में होता, तब तो शुक्तिरजत का दृष्टान्तरूप से कथन किया जाता ऐसा तो नहीं किया है। इसलिये विवर्तवाद श्रुति का अभिप्रेत नहीं है अर्थात् परिणामी दृष्टान्त का प्रदर्शन होने से दार्ष्टान्तिक में भी परिणामवाद ही स्थिर होता है। और जब श्रुति तथा युक्तियों से यह सिद्ध होता है कि जब जडचेतन सब पदार्थ ईश्वर का शरीर तथा प्रकार है और ईश्वर इनका प्रकारी शरीरी है ईश्वर-'**सत्यं ज्ञानम्**' '**तत्सत्यं स आत्मा**' इत्यादि श्रुतियों से सत् रूप सिद्ध होता है तब सत्य परमेश्वर का शरीर लक्षण जड चेतन पदार्थ को मिथ्या मानना यह किस तरह से संगत होता है और भी देखिये कि यदि भगवत् शरीर रूप जड़ चेतन पदार्थ मिथ्या हो तब जो प्रकृति तथा जीव

धिकरण्येनाशेषजड़चेतनप्रकारकं परब्रह्मैव प्रतिपादितं भवति । अन्यमते तयोः सामानाधिकरण्यं जघन्ययावृत्त्या यथा कथञ्चिन्निर्वाह्यते । सामानाधिकरण्यं तु विभिन्नविशेषणविशिष्टपदयोरेकस्मिन् विशेष्येपर्यवसानलक्षणकमेवेति तत्त्वम् । प्रकृतप्रसङ्गे जगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्याः-

'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यमादी उभावपि । भूमिरापोऽनलोवायुः खंमनो बुद्धिरेव च । अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा । अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥ जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् । प्रकृतिंस्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ॥ मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'

परस्परं संबद्धौ प्रकृतिपुरुषौ उभावप्यनादीत्युपधारय न विद्यते आदिः कारणं यस्य स अनादिः । अत्रादिपदेन कारणस्यग्रहणं भवति, एतावता कारणप्रतिषेधाद जन्यत्वमुभयत्रापि सूच्यते, यो हि कारणवान् स जायते, यथा घटादिः पदार्थः । यस्य तु कारणमेव नास्ति स कथं केन जन्येत इत्यजन्यत्वादनादिः । कारणरहितोऽपि पदार्थो द्विविधः सर्वदैव भवति कश्चित्, कश्चित् कदापि न भवति यथा आकाशो बन्ध्यापुत्रश्चेति ।

में नित्यता का प्रतिपादन-'**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्**' '**अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे**' इत्यादि श्रुति स्मृतियों में जो नित्यता का प्रतिपादन किया गया है, वह सब असङ्गत हो जायगा, क्योंकि अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्व ही तो मिथ्यात्व है। जिस तरह शुक्तिका में प्रतिभासमान रजत '**नेदं रजतम्**' इस ज्ञान के उत्तर काल में बाधित हो जाने से उत्पादविनाशशाली सिद्ध होने से अनित्य कहलाता है उसी तरह जीव तथा प्रकृति को अनित्य होने से जीव प्रकृति में नित्यता प्रतिपादक श्रुतियों का व्याकोप होगा, तथा श्रुति में अप्रामाणिरत्व भी हो जायगा। और भी देखिये आपके मत में अद्वैतमत म शुक्तिकाध्यस्य रजत के समान जीव को भी अध्यस्त होने से वह भी उत्पादविनाशशाली होगा, तब तो कृतहानि अकृताभ्यागम दोष होगा, तथा शास्त्र में जो मोक्ष के लिये श्रवणमनन निदिध्यासन का विधान किया है ये सब के सब निरर्थक हो जायेंगे, इसलिये मतान्तर में प्रकृत प्रतिज्ञा का निर्वाह नहीं होता है।

परन्तु प्रकृत सिद्धान्त में तो अनेक प्रकारक प्रकृति से लेकर के स्थावरान्त विचित्र रचना वाला अनेक पदार्थ हैं, ये सब ईश्वर के शरीर होने से ब्रह्म ही हैं क्योंकि ब्रह्म इन सब के अन्दर में अन्तरात्मा के रूप में रह कर के इन सब पदार्थों को अपनाये हुए हैं। इस तरह विविधकार्य भी ब्रह्म हैं और कारण भी ब्रह्म हैं, तो कार्य ब्रह्म को जानने से सभी कार्य पदार्थ जाने जा सकते हैं मृत्तिका

'अद्वैतबोधिकाः काश्चित् काश्चिद् द्वैतावबोधिकाः ।
घटकश्रुतयः काश्चिदन्तर्यामिप्रबोधिकाः ॥
अप्रामाण्यं भवेत् तासां विरोधेऽभिमते मिथः ।

ताविमौप्रकृतिपुरुषावनादी सर्वदास्थितिमन्ताविति प्रलयेपि तयोः सूक्ष्मरूपेण सद्भाव एव भवति । पृथिव्यप् तेजोवायुराकाशमनोबुद्धिरहङ्कारा इत्येतेममेश्वरस्यविभिन्ना अष्टौ प्रकृतयः सन्ति, एता यथा स्वं परिणममानाः संसारचक्रं परिचालयन्ति । किमेतावत्य एव प्रकृतय उत एतदतिरिक्तावेति संशये इतोप्यन्यासंसारचक्रसहकारिणीतः उत्कृष्टा चेतनभोग्या चेतनप्रकृतितोभिन्ना चेतनात्मकजीवरूपापि प्रकृतिरस्ति, येनेयमचेतनाभूम्यादिका प्रकृतिधृता सती तिष्ठति । इमां स्वकीयामष्टधाविभक्तां प्रकृतिपरिणमय्यसततं प्रतिकल्पं सर्जयामि । मया प्रेरिताप्रकृतिः सचराचरं जगत्सर्जयतीत्युदाहृतगीतावचनार्थः । एतावता एतदायाति यत् प्रकृतिपुरुषौ परमेश्वरधार्यावीश्वरपराधीनौ, ईश्वरशेषौ च अत एवेश्वरस्य शरीररूपौ, प्रकृतिशब्दः प्रकृतिशरीरधारयितुः प्रकृतेरन्तरात्मरूपस्य परमेश्वरस्य वाचको

को जानने से जिस तरह घट शरावादिक कार्य वर्ग ज्ञात हो जाते हैं। इस तरह से विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त में एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की प्रतिज्ञा का समीचीन रूप से निर्वाह होता है। उक्त प्रतिज्ञा का समर्थन कार्य कारणभाव सम्बन्ध धार्यधारकभाव सम्बन्ध का वर्णन कर के-'**सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः**' इत्यादि श्रुति वाक्य ने शरीरात्मभाव के आधार इस प्रपञ्च जगत् को ब्रह्मात्मकत्व का समर्थन किया है किन्तु दोनों के स्वरूप में एकता है इस आधार को लेकर के नहीं।

इसके पूर्वप्रकरण में कहा गया है कि परमात्मा निर्विकारक होते हुए भी सकल जड़चेतन जगत् के उपादानकारण हैं परन्तु यह सम्भवित नहीं हो सकता है क्योंकि जिस तरह निरवयव आकाश में विकार नहीं हैं तथा निरवयव है तो आकाश का परिणाम नहीं सावयव पदार्थ का ही परिणाम होता है जिसतरह मृत्तिका सावयव पदार्थ है तो उस मृत्तिका का घटपटाद्याकार से परिणाम होता है। प्रकृत में ईश्वर में परिणाम मानें तब तो निर्विकारत्व श्रुति का विरोध होता है, और अन्यत्र '**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्**' इस ब्रह्म सूत्र से तथा-'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**' "**इदं सर्वं**" '**यदयमात्मा**' इत्यादि श्रुतियों से ब्रह्म में जगदुपादानत्व का भी प्रतिपादन किया गया है। ये दोनों परस्पर विरुद्ध पदार्थ एक परमेश्वर में किस तरह से हो सकता है ? इस प्रकार से श्रुतियों में जो परस्पर विरोध आपात दृष्टि से देखने में आता है उसका परिहार करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**स्योदेतत्**' इत्यादि एक उपनिषत् में तो ब्रह्म का स्वरूप से परिणाम होता है इसका ब्रह्म में

विशिष्टाद्वैतिभिस्तासां क्रियतेऽतः समन्वयः ॥
अद्वैतश्रुतयो बोध्या विशिष्टब्रह्मबोधिकाः ।
नान्यश्रुतिमतानां हि तत्त्वानां प्रतिषेधिकाः ॥

भवति । तथा पुरुषशब्दोपि परमेश्वरस्यैव वाचको यो हि जीवस्यान्तरात्मा तथापि जीवविशिष्टोविद्यते । प्रकृतिपुरुषाभ्यां जायमानकार्यस्याप्यन्तरात्मा रमन्तेयोगिनोऽनन्ते इतिव्युत्पत्तिप्रतिपादितो भगवान् श्रीराम एवेति । एतत्सर्वं विष्णुपुराणवचनेन 'व्यक्तं विष्णुस्तथाऽव्यक्तंपुरुषः काल एव च । स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वरः' सिद्ध्यति (अस्यार्थस्तु व्यक्तंजगदव्यक्तंप्रकृतिपुरुषकाल ईश्वरशरीरत्वादीश्वरः । हे ब्रह्मन् ! सृष्ट्यादौ क्षोभयिता ईश्वर एव तथा क्षोभकर्मीभूतप्रकृतपुरुषात्मकः पदार्थोपि परमेश्वर एव । यत ईश्वर एव प्रकृतिं पुरुषं च शरीरत्वेण धारयति 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यादिश्रुत्येश्वरस्य जडचेतनसाधारणकार्यकारणादिसर्वशरीरकत्वंश्राविततत्वात् स च परमात्मासर्वेश्वरः सृष्टेः पूर्वं प्रलयकोलेपि सूक्ष्मप्रकति सूक्ष्मरूपविशेषणेन विशिष्ट एव तिष्ठति । तत्र प्रकृतिवि-

निर्विकारत्व तथा निरवयवत्व प्रतिपादक श्रुति विरोध होने से निराकरण किया गया है अर्थात् ब्रह्म निर्विकार तथा निरवयव हैं इसलिये ब्रह्म में जगदाकार से परिणाम नहीं होता है। और-'**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**' (ब्रह्म जगत् की प्रकृति अर्थात् उपादान कारण भी हैं अन्यथा एक विज्ञान की प्रतिज्ञा है एवं मृत्तिका तथा तदीय कार्य का जो दृष्टान्त रूप से कथन किया गया है वह अनुपयुक्त हो जायगा।) इत्यादि स्थल में एक विज्ञान से सर्व विज्ञान का प्रतिपादन द्वारा ब्रह्म में सर्व जगदुपादान कारणता का भी प्रतिपादन किया गया है। परन्तु यह दोनों प्रकार का जो कथन हैं वह तो परस्पर विरुद्ध है, क्योंकि यदि निर्विकारत्व प्रतिपादक श्रुति के अनुरोध से ब्रह्म को निर्विकार निरवयव मानें तब तो परिणामित्व रूप उपादान कारणत्व नहीं हो सकता है, और उदाहृत सूत्र तथा श्रुति के अनुरोध से उपादान कारणता माना जाय तब तो निर्विकारत्व निरवयवत्व का विरोध होगा ? तो इस प्रकार परस्पर विरुद्ध वात की सम्भावना परमेश्वर में किस प्रकार से हो सकती है। अर्थात् पूर्व पक्षका अभिप्राय यह है कि पर ब्रह्म जगत् सकल स्थावर जङ्गम के उपादान कारण हैं ऐसा कहा गया है, और उपादान कारण वही होता है जो कार्याकार से परिणत हो जिस तरह मृत्तिका द्रव्य घटाकार से परिणत होता है तो वह घट का उपादान कारण कहलाता है। यदि ब्रह्म का स्वरूप ही इस जगत् के रूप में परिणत होता है तो वह ब्रह्म निर्विकार तथा निर्दोष नहीं रह सकता है, और श्रुति गण तो ब्रह्म को निर्विकार एवं निर्दोष बतलाते हैं इसलिये मानना पडेगा कि ब्रह्म स्वरूप से जगत् के रूप में

परं ब्रह्म च तद्वाच्यं त्वद्वाच्यं त्वच्छरीरकम् ।
तत्त्वमसीति वाक्येन तूक्तोऽभेदस्तयोर्द्वयोः ॥
द्वैतश्रुतिसमूहस्तु विद्वद्भिः सम्मतः खलु ।

शिष्टपरमात्मनो विशेषणांशे प्रकृत्याख्ये सर्वोऽपि विकारो भवति, परन्तु विशेष्यांशे परमात्मनि न कोऽपि विकारः पदमादधाति, स तु सर्वदा निर्विकार एव कमलपत्रवदवतिष्ठते तथा पुरुष विशेषणीभूतदण्डे कदाचित् नीलादिविशेषणतावच्छेदकस्यभेदेन दण्डे भेदसंभवेपि विशेष्यांशो दण्डीपुरुषो यथापूर्वमेवावतिष्ठते तथा प्रकृतेप्रकृतिलक्षणविशेषणविशेषणे विकारे विकारस्य विद्यमानत्वेऽपि विशेष्यरूप ईश्वरः सदा निर्विकार एव भवति, श्रुत्या तस्य तथैव प्रतिपादनात्, अतः सः सर्वदा निर्विकार एव भवतीति ।

एवं चेतनविशिष्टे परमात्मनि विशेषणीभूतजीवे दुःखादिसांसारिको दोषो भवति न तु परमात्मनि दुःखादिदोषो नहि दण्डीविशेषणीभूतदण्डे छिद्रादिदोषे जातेऽपि विशेष्ये पुरुषे तादृशो दोषः संचरति वस्तुस्वभावात्, वस्तु स्वभावस्यातिक्रमणासंभवात् । परमात्मा

परिणत नहीं होते हैं, और-'**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**' इस ब्रह्म सूत्र से ब्रह्म जगत् के उपादान कारण सिद्ध होते हैं । [सूत्रार्थ यह है कि ब्रह्म जगत् के उपादान कारण भी हैं क्योंकि श्रुति में यह प्रतिज्ञा वर्णित है कि एक का ज्ञान होने से सर्व पदार्थ जाना जाता है ।] इस प्रतिज्ञा का समर्थन करने के लिये मृत्तिका तथा तदीय कार्य घटादिक कार्य को दृष्टान्त रूप से कथन किया गया है । मृत्तिका पदार्थ ही घट प्रभृतिक पदार्थरूप में परिणत होता है । इसलिये मृत्तिका तथा घटादिक पदार्थ एक ही वस्तु है । मृत्तिका का ज्ञान होने से घटादिक सकल कार्य वस्तु ज्ञात हो जाते हैं, मृत्तिका घट का उपादान कारण है । इसी तरह प्रकृत में ब्रह्म ही जगत् के रूप में परिणत हो जाते हैं तो ब्रह्म और जड चेतन साधारण जगत् एक वस्तु है और एक ब्रह्म को जानने से जगत् संपूर्ण जाना जाता है । इस प्रकार प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त तथा दृष्टान्त के अनुसार ब्रह्म जगत् के उपादान कारण सिद्ध होते हैं । इस बात को '**प्रकृतिश्च**' इत्यादि सूत्र बतलाता है । अब इस में विरोध उपस्थित होता है कि यदि ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मान लिया जाय अर्थात् जगत् के रूप में परिणत होनेवाला है ऐसा मान लिया जाय तब तो वह ब्रह्म निर्विकार एवं निर्दोष नहीं रह सकता है घटादि कार्य में मृत्तिका की तरह । अथ कदाचित् ब्रह्म को निर्विकार एवं निर्दोष मान लें तब वह ब्रह्म जगत् का उपादान कारण नहीं बन सकेगा । ऐसा होने से पूर्व सूत्र तथा श्रुतियों का विरोध होगा, और उपादान कारणत्व एवं निर्दोषत्व निर्विकारत्व परस्पर विरुद्ध धर्म हैं, एवं इससे अतिरिक्त तृतीय कोई प्रकार तो हो नहीं

चिदचिदीशतत्त्वानां पार्थक्येनावबोधकः ॥
आत्मत्वमीश्वरस्याथ चिदचितोश्च देहता ।
सर्वाभिर्विनिवेद्येते घटकश्रुतिभिः किल ॥
वेदान्ततत्त्वविद्भिश्च कार्यकारणभेदतः ।

तु सर्वदा निर्दोषः सर्वनियामकः सर्वदा कल्याणगुणाकर एव भवन् विद्यते । अयमाशयः- विशिष्टे वस्तुनि अंशद्वयं भवति एको विशेषणांशः अपरस्तु विशेष्यरूपोंऽशः । यथा गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तारूपे विशिष्टे वस्तुनि गुणकर्मान्यत्वम् विशेषणं सत्वं तु विशेष्यम् मिलितं दत् विशिष्टम् । प्रकृते तु प्रकृतिविशिष्टे परमात्मनि प्रकृत्यंशो विशेषणं परमात्मा तु विशेष्यांशः मिलितं सत्तदुभयं विशिष्टमिति कथ्यते । एवं जीवविशिष्टे सर्वेशे जीवो विशेषणांशः परमात्मा तु विशेष्यांशः । तत्र विशेषणांशो प्रकृतौ जीवे च परिणामादिसर्वो विकारो भवति विशेष्यांशस्तु परमेश्वरो निर्विकारो निर्दोष एव सर्वदा भवति । तत्रेश्वरो यथोक्तविशेषणरूपेण जगतो जडचेतनादिकस्योपादानकारणं भवति, विशेष्यरूपेण

सकता है । ऐसा कहा है-'**परस्परविरोधे हि न प्रकारान्तरस्थितिः**' तो जब उपादानत्व और निर्विकारत्व परस्पर विरुद्ध हैं तब इन दोनों का ब्रह्म रूप एक अधिकरण में समावेश नहीं हो सकता है. जिस तरह जलत्व वह्नित्व रूप परस्पर विरुद्ध धर्मद्वय का एक जलरूप अधिकरण में अथवा बह्नि रूप अधिकरण में समावेश नहीं होता है, यदि विरुद्ध धर्म द्वय एक अधिकरण में रह जायें तब उनका परस्पर विरोध ही नहीं कहलायेगा, सहानवस्थान का नाम ही तो विरोध है, यदि सहस्थिति मान लिया जाय तब विरोध परिभाषा का विलोप हो जायगा, जिस तरह घटत्व पृथिवीत्व का विरोध नहीं होता है क्योंकि घट रूप एक अधिकरण में दोनों का समावेश होता है । अतः परस्पर विरुद्ध होने से एक ब्रह्म में निर्विकारत्व निर्दोशत्व तथा उपादान कारणत्व का समावेश नहीं हो सकता है । इस तरह पूर्वपक्षवादी का पूर्वपक्ष होता है ।

इस प्रश्न का समाधान आचार्यश्री करते हैं-'**सत्यम्**' इत्यादि । समाधान का उपपादन करने के लिये कहते हैं-'**नहि स्वरूपतो भगवान् जगदाकारेण परिणामवान्**' इत्यादि । भगवान् श्रीरामजी स्वरूप से अर्थात् साक्षात् जगदाकार से परिणामी नहीं बनते हैं जिससे कि निरवद्यत्व निर्दोषत्व निर्विकारता का निराकरण हो । किन्तु प्रकृति पुरुष के द्वारा अर्थात् परंपरया जगत् का उपादान का कारण बनते हैं । इसलिये निर्विकारत्व तथा उपादान कारणत्व ये दोनों वातें घट जाती हैं । अर्थात् सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट परब्रह्म में उपादान कारणत्व माना जाता है । स्वरूप से ब्रह्म का

चिदचिद्भ्यां विशिष्टं तु ब्रह्म च द्विविधं मतम् ॥
स्थूलाचिच्चिद्विशिष्टं हि ब्रह्म कार्यं प्रकीर्तितम् ।
सूक्ष्माचिच्चिद्विशिष्टं तु ब्रह्म कारणमुच्यते ॥

निर्विकार एवं निर्दोषरूपो भवति । अर्थात् उपादानत्वं विकारित्वेनैभवतीति नियम इत्युपादानत्वं विशेषणांशे एवोपक्षीयते विशेष्ये तु निर्दोषत्वंसर्वविकाररहित्यं च ।

[अत्र विशिष्टं शुद्धादतिरिच्यते, इत्येकं मतम् नातिरिच्यते, इत्यपरम्, तत्राद्यमतेनात्रपरिहारः द्वितीयमते तु ईश्वरस्य प्रकृतिविशिष्टपरमात्मनोऽनतिरेके विशेषण गतदोषस्य विशेष्येऽपि विशिष्टादनतिरिक्ते संभवेन परमेश्वरेऽपि विकारादिदोष आपतत्येव यद्यपि तथापि 'विशिष्टे विधीयमानविधीनिषेधौ सति विशेष्ये बाधे विशेषणमुपसंक्रामतः' इति न्यायेन तस्य परिहारात् । अर्थात् यथा क्वचित् शिखावान् गृहस्थो जीवत्येव परन्तु शिखां मुण्डयित्वा परिव्राजकोऽभूत्, तत्र 'शिखिध्वस्तः' इति प्रयोगो भवति । तत्र शिखायाः कर्तनेपि शिखावान् पुरुषस्तु जीवत्येव न तु मृतः तत्र ध्वस्तपदवाच्यो निवाशो न शिखिनि

परिणाम नहीं होता है किन्तु ब्रह्म का विशेषणरूप जो चेतन तथा प्रकृति उसमें परिणाम होता है । परन्तु उसके द्वारा विशेष्य ब्रह्म में भी परिणामित्व का व्यवहार होता है, स्वरूप से ब्रह्म तो अपरिणामी ही रहते हैं । '**रामस्य परिणामो हि चिंदचिद्द्वारको जगत्**' '**स्वरूपे च स्वभावे च विकारः प्रकृतेः खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतो बुधैः । ब्रह्मणस्तु विकारो यत्र स्वरूपस्वभावयोः**' इत्यादिरूप से आचार्यों ने प्रतिपादन किया है। परन्तु यह उत्तर तभी संगत हो सकता है जब कि प्रलयकाल में प्रकृति तथा जीव का सद्भाव सिद्ध हो तब प्रकृति परिणाम द्वारा ब्रह्म में परिणामित्व का कथन संगत हो सकता है। इसलिये प्रथमतः प्रलयकाल में प्रकृति पुरुष का सद्भाव है इस बात पर विचार करना आवश्यक तथा उचित भी है। यदि वस्तुतः देखें तो प्रलयकाल में इन दोनों का सद्भाव रहता है। ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है, ऐसा कहनेवाला जो वाक्य हैं उससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म समान रूप से चेतन पदार्थ तथा अचेतन पदार्थों का उपादान कारण हैं। इससे यदि यह मान लिया जाय कि ब्रह्मजीवरूप में परिणत होता है। (जैसे घट रूप में मृत्तिका का परिणाम होता है तो घट अनित्य होता है उसी तरह ब्रह्म का परिणाम रूप जीव भी अनित्य होगा तब-'**नात्मा श्रुते नित्यत्वाच्च ताभ्यः**' इस ब्रह्म सूत्र से विरोध होता है। (इस सूत्र का अर्थ है कि-आत्मा-जीवात्मा उत्पन्न नहीं होता है-क्योंकि श्रुति में जीवात्मा अजन्मा तथा नित्य कहा गया है, अर्थात् उत्पत्ति प्रकरण में आकाशादि की तरह जीव की उत्पत्ति नहीं सुनी गई है, प्रत्युत श्रुति तो जीवात्मा

अद्वैतं मन्यते प्राज्ञैर्ब्रह्मणोश्चविशिष्टयोः ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तस्तस्माच्छ्रुत्यनुमोदितः ॥
अतएवास्मदाचार्यबोधायनादिसम्मतः ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तो लोकेविजयतेतराम् ॥'

अन्वितो भवति कुतः ? प्रत्यक्षबाधात् किन्तु शिखिनो विशेषणीभूतशिखायामेवान्वेति शिखापगमस्यप्रत्यक्षसिद्धत्वात् । इति शिखीध्वस्त इत्यत्र शिखाविशिष्टे विधीयमानो नाशो विशेष्ये पुरुषे तस्य बाधात्, विशेषणांशे शिखायामेव नाशस्यान्वयो न तु तदीयविशेष्ये पुरुषे तथैव प्रकृते विशिष्टे परमेश्वरे विधीयमानमुपादानत्वं विशिष्ये परमात्मनि नान्वेति किन्तु विशेषणीभूत प्रकृत्याख्ये एवेति तत्रैव प्रकृतौ उपादानत्वं तथोपादानत्वविकारादिरपि भवति न तु विशेष्ये परमेश्वरे तत्र तथात्वेनिर्विकारत्वप्रतिपादकश्रुतिविरोधादित्येतत्सर्वमाकलय्य प्रकृतिविशिष्टे परमात्मनि उपादानकारणत्वमुहाजहार मूल इतिसर्वमनवद्यम्]

अनेन क्रमेव परमेश्वरस्योपादानकारणत्वप्रतिपादकश्रुतीनाम् चिदचिद्विशिष्ट

को नित्य बतलाती है। इससे सिद्ध होता है जीवत्मा उत्पन्न नहीं होती है) इससे जीव नित्य तथा जन्म रहित है ऐसा सिद्ध होता है। और भी देखिये-सूत्रकार ने एक शंका का निराकरण किया है उससे भी सिद्ध होता है कि जीव उत्पाद विनाश रहित है। तथा हि-ब्रह्म जब सब का सर्ग करता है तब किसी को अच्छा शरीर तथा सुख देता है, किसी को खराब शरीर देता है तथा उस को दुःखमय जीवन देता है तो इससे ईश्वर में वैषम्य तथा नैर्घृण्य दोष आता है ये दोनों दोष ईश्वर में अपरिहार्य होता है। इस प्रश्न का उत्तर में सूत्रकार ने कहा कि ईश्वर जो जीव को सुख दुःखादिक फल देते हैं वह जीव का पूर्वकल्पकृत जो शुभाशुभ कर्म है, उसकी अपेक्षा करके, इसलिये सृष्टि के समय में पूर्वकल्पकृत पुण्यपाप के बल से सुख दुःख जीवों को मिलता है, नतु ईश्वर सर्वथा स्वतन्त्र हैं फल देने में अतः ईश्वर में वैषम्य नैर्घृण्य दोष नहीं लगता है। '**वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्**' इस सूत्र में इसका विस्तृत विचार किया गया है जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी कृत आनन्दभाष्य विवरण तथा मेरी हिन्दी टीका में प्रकृत विषय में विशेष विवेचन है अतः विसेषार्थियों को वहीं देखना चाहिये इससे यह सिद्ध होता है एक कल्प से द्वितीयादि कल्प में जानेवाला जीव नित्य है।

एवं इसप्रकार एक शंका होती हो कि सृष्टि के पूर्व काल में जीव तो रहता नहीं है किन्तु निर्विभाग केवल ब्रह्म ही रहते हैं, तो जब जीव नहीं है तब जीवकृत जो शुभाशुभ कर्म है वह किस

(श्रोबाधायनमतादश: १३-२२) इति।

एतादृशं सामानाधिकरण्यादिकं तत्त्वमोर्विशिष्टाद्वैतमते एव संभवति नान्यस्मिन्मतान्तरे इतिपक्षपातविरहितैर्विद्वद्भिरेव विचारणीयमिति संक्षेप:।

सर्वेश्वरस्योपादानकारणत्वप्रतिपादने एव तात्पर्यं न तु केवलस्येश्वरस्य तथात्वेतात्पर्यम्। एवमीश्वरस्य निर्विकारत्वप्रतिपादकश्रुतीनां तात्पर्यन्तु विशिष्टान्तर्गतविशेष्यांशमात्रे निर्विकारत्वप्रतिपादने एव। विशिष्टाद्विशेष्यस्यातिरिक्तत्वनियमात्। अत एवोपादानकारणत्वप्रतिपादनपरकश्रुतीनां परमेश्वरस्य निर्विकारत्वप्रतिपादकश्रुतीनां परस्परं विरोधो न भवति, विषयैक्ये विरोधो न तु विभिन्नविषये। न हि भवति 'घटवद्भूतलं पटाभाववज्जलम्' अनयो: विरोध:। कुत? प्रतियोग्यनुयोग्यादिविषयभेदात्। तद्वदेव प्रकृतेऽपि तासां श्रुतीनां न विरोध:। यत एका हि प्रकृति ईश्वरस्योपादानत्वं बोधयन्तीविशिष्टान्तर्गतविशेषणांशस्योपादानत्वं स्थापयति। अन्या तु विशिष्टगतविशेषस्य निर्विकारतां

तरह रह सकता है? इसका उत्तर '**न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वादुपपद्यते चाप्युपलभ्यते च**' इस सूत्र में कहा कि जीव तथा तदीय कर्म का जो प्रवाह है वह नदी प्रवाह के समान अविच्छिन्न अनादि प्रवाह है। अर्थात् कर्म तथा जीव अनादि है। यद्यपि अनादि है परन्तु प्रलय काल में तो जीव नाम रूपादि विभाग को छोड कर के ब्रह्म में प्रलीन रहता है उस समय में ब्रह्म के स्थूल शरीर रूप से जीव रहता है यह भी नहीं कह सकते हैं, अत: कहना पडता है कि प्रलय काल में भी अत्यन्त सूक्ष्म रूप से जीव का सद्भाव रहता है। अन्यथा कृत हानि अकृताभ्यागम दोष अनिवार्य हो जाता है। इसलिये मानते हैं कि जीव नित्य तथा अनादि है तथा जीव का जो कर्म शुभाशुभ है वह भी अनादि है तथा जब तक कर्म फल नहीं होता है तब तक अवस्थित रहता है ऐसा कहा है '**कदाचित्स्वकृतं कर्म कूटस्थमिव तिष्ठति' मज्जमानश्चसंसारे यावद् दु:खातिगो भवेदिति**' इससे यह निशचित होताा है कि जीव का कर्म अनादि है तादृश कर्म सापेक्ष होकर के ईश्वर जीव को सुख दु:खादिक फल को देता है इसलिये ईश्वर में वैषम्यनैर्घृण्य दोष नहीं लगता है। सूत्रकार के इस निर्णय के अनुसार जीव अनादि तथा नित्य सिद्ध होता है। एतादृश जीवराशि ब्रह्म का परिणाम नहीं हो सकता है, क्योंकि जो परिणाम रूप होता है वह तो सादि तथा सान्त होता है ऐसा देखने में आता है। '**प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादि उभावपि**' (गी.) **इति प्रकृतिपुरुषयोस्तत्संसर्गरूपसंसारस्यानादित्वस्मरणात्**' ऐसा लिखकर श्रीआनन्दभाष्यकार आचार्यपाद ने भी प्रकृत विषय को पुष्ट

卐 इतरप्रतिपादिताभेदश्रुत्यर्थानुपपत्ति: 卐

शाङ्करादिमतेषु 'तत्त्वमस्यादिवाक्यघटकतत्त्वयो: सामानाधिकरण्यं न निर्वहति तथा ब्रह्मण: सदोषतापि भवति।'

ख्यापयतीति। तत्र चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर: कारणम् कार्यमपि चिदचिद्विशिष्ट: परमात्मैव, अत: कार्यं कारणं चैकमेव वस्तु इति कथ्यते। श्रुतीनामेतादृशतात्पर्यस्वीकारे सर्वासां तासां समन्वयो भवतीति न कुत्रापिविरोधगन्धोपीति। ये तु आपातदृष्ट्यैव श्रुतितात्पर्यमधिगन्तुमीहन्ते 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। विभेत्यल्पश्रुताद्वेदोमामयं प्रहरिष्यति' इत्युक्तशास्त्रीयाज्ञामुल्लङ्घ्य महापातकिन इति संक्षेप:। प्रकारवाचक: शब्द: प्रकारिणमपि बोधयतीति देवमनुष्यादिवाचकशब्देदृष्टम् तद्वदिह 'शरीरवाचका: प्रकृतिपुरुषवाचकशब्दा: प्रकृत्यादिप्रकारिणं परमेश्वरं बोधयतीति पूर्वकथितम् तदिह विमृश्यते-शरीरवाचकशब्दस्य यत् प्रकारिबोधकत्वं तत् मुख्या वृत्त्या वाचकत्वं

किया है।

और इस तरह प्रकृति भी अनादि है, यह श्रुति से सिद्ध होता है? '**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वी: प्रजा: सृजमानां सरूपा:। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य:**' अर्थात्-तेज जल तथा पृथिवी के रूप में परिणत होने के कारण पृथिव्यादि सम्बन्धीरक्त शुक्ल तथा कृष्णरूप को धारण करने वाली अपने समानमहत्तत्वादि अनेक प्रकारक प्रजा कार्य को उत्पादन करनेवाली एवं जन्म रहित प्रकृति का प्रेमपूर्वक सेवन अनुव्रजन करता हुआ एक जन्म रहित बद्ध जीव उसमें पडा रहता है, एतदन्य विद्वान् जीव संसार से विरक्त हो कर के प्रकृति का भोग करने के बाद परित्याग कर देता है। इससे सिद्ध होता है कि प्रकृति तथा जीव जन्म रहित हैं। तथा प्रकृति जगत् रूप से परिणत होने वाली है।

'**अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्योमायया संनिरुद्ध:। मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।**' अस्यार्थ:-माया को प्रेरणा देनेवाला परमेश्वर, इस माया के द्वारा इस स्थावर जङ्गम लक्षण संसार को बनाते हैं। इस ईश्वर से भिन्न जीव उसकी माया से मोहित होकर के रहता है गुणत्रयात्मक प्रकृति को विचित्र तथा आश्चर्यमय शृष्टि का कारण होने से माया समझो, और माया प्रेरक को महेश्वर समझना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर साक्षात् जगत् का कारण नहीं है किन्तु प्रकृति-माया के द्वारा इस जगत् की सृष्टि करते हैं। इससे साक्षात् ईश्वर में जगत् कारणत्व का निरास होता है अर्थात् परमेश्वर कर्ता कारण तो हैं परन्तु उपादान कारण स्वविशेषणीभूतभिन्न प्रकृति

卐 सर्वदा सर्वेशश्रीरामस्य चेतनाचेतनविशिष्टत्वसमर्थनम् 卐

ननु 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिश्रुत्या सृष्टेः प्रागवस्थायामेकस्यैव ब्रह्मणः सद्भावः सिद्ध्यति, न तु चेतनाचेतनपदार्थानां सद्भाव आयातीति कथं चेतनाचेतनाभ्यां सहेश्वरस्य

घटाद्यर्थबोधकघटशब्दवत्, अथवा गौणीवृत्त्याबोधकतामात्रं मञ्चाः क्रोशन्तीतिवत् बोधकत्वमिति संशये घटादिपदवद्वाचकत्वं नतु 'मञ्चाः' इत्यादिवत् गौणीवृत्त्या बोधकत्वम्। अर्थात् परमेश्वरशरीरलक्षणप्रकृत्यादिवाचकः शब्दः स्वप्रकारिणं परमात्मानं यद्बोधयति तत् मुख्यया वृत्त्या गौण्यावृत्त्या वेति संशये मुख्यवृत्त्यैव प्रकृत्यादिवाचकाः शब्दाः स्वस्वप्रकारिणं बोधयन्ति नतु गौण्यावृत्त्या परमेश्वरं बोधयन्तीति सिद्धान्तं दर्शयितुं प्रकरणमिदमारब्धमाण उपक्रमते अयंभाव इत्यादि। विचार्य्यविषयंदर्शयति यदाखलुनामरूपविभागमित्यादि।

अयमाशयः-प्रलयो भवतु सृष्टिर्वाभवतु, परन्तु परमेश्वरः सर्वदा चेतनाचेतनाभ्यां

द्वारा होते हैं, इसलिये जगत् का परिणामी कारण ईश्वर है इस बात का निराकरण होता है। '**गौरनाद्यन्तवती सा जनित्रीभूतभाविनी**' परमेश्वर को लीलारस देने के कारण से गौसदृशबनने वाली प्रकृति अनाद्यन्तवती है अर्थात् उत्पाद विनाश रहित है, यह प्रकृति समष्टि सृष्टि तथा व्यष्टि सृष्टि का उत्पादन करने वाली है आकाशादि पृथिव्यन्त महाभूतों का उत्पादन करती है, ऐसा उपर्युत श्रुति का अर्थ है। इस वचन से सिद्ध होता है कि पकृति स्वरूप से समष्टि तथा व्यष्टि सृष्टि के रूप में परिणत होती है। उपर्युक्त इन सब अर्थों का [illegible] थों से भी पुष्टिकरण होता है। इसका प्रतिपादन निम्नलिखित श्लोकों से होता है-

'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभाव[illegible] गी. १३-१९
भूमिरापोऽनलो वायुः खंमनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ गी. ७-४॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥ गी. ७-५॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः। गी. ९-८।
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्॥ गी. ९-१०॥

परस्पर सम्बद्ध प्रकृति एवं पुरुष इन दोनों प्रकृति पुरुषों को अनादि समझो अर्थात् ये दोनों

शरीरात्मभाव इति चेत् सत्यम्। श्रुत्यन्तरेण ब्रह्मणो जगदुपादानत्वं तथा निमित्तत्वमेवं तस्य निर्विकारत्वमपि श्रावितं भवति। नहि निर्विकारत्वे तस्योपादानता परिणामिनः सविकारित्वात्। अत एतत् दोषपरिहाराय सूक्ष्मचेतनाचेतनविशिष्टस्य ब्रह्मणः कारणत्वं तस्यैव

विशिष्ट एव भवन्भवतीतिश्रुतिस्मृतिभ्यामवगतं भवति। तत्र प्रलयकाले चेतनाचेतनपदार्थौ नामरूपाभ्यां परित्यक्तौस्वरूपमात्रेणावतिष्ठमानौ सूक्ष्मदशामनुभवतः। पुनश्चसृष्टिकाले नामरूपादिविभागं प्राप्य स्थूलदशामापन्नौ भवतः स एव जगतः सृष्टिकालः। तत्र नामरूपविभागरहितसूक्ष्मरूपदशाप्राप्तप्रकृतिपुरुषलक्षणशरीरं अन्तरात्मरूपेण वर्तमानः परमेश्वरो जगतः कारणम्। यदा खलु जगत् कारणावस्थामाप्नोति स एव जगतो विलयनकालः। सपरमात्मैव कार्यमिति परमात्मैवकार्यकारणमिति च भवतीति। यद्यपि चेतनमचेतनं च द्रव्यं नित्यं ब्रह्मापि द्रव्यं नित्यमेव, तथापि नित्येष्वपि तेषु विविधाविचित्राश्च दशा भवन्ति, ता अवस्थाश्चेतनाचेतनयोः साक्षादेव जायन्ते ब्रह्मणि च ता अवस्थास्तत् द्वारा जायन्ते।

कारण वर्जित हैं इनका उत्पादक कारण नहीं है प्रागभाव की तरह। इस परिदृश्यमान स्थूल जगत् का कारण बननेवाली पृथिवी जल तेज वायु तथा आकाश आदि के रूप से उभयात्मक मन पञ्च ज्ञानेन्द्रिय पञ्च कर्मेन्द्रियों के रूप से तथा महत्तत्व अहंकार के रूप से आठ प्रकार से विभक्त होकर के वह प्रकृति रहती है। यह आठों प्रकार की प्रकृति मुझ परमेश्वर की है परन्तु यह प्रकृति जडरूपा होने से जघन्य प्रकृति है। चेतन जीव का भोग्य बनने वाली इन अचेतन प्रकृति से भिन्न भी प्रकृति है, वह जीव है, परन्तु जीव चेतन है इसलिये जड प्रकृति की अपेक्षा से यह श्रेष्ठ है क्योंकि यह चेतन प्रकृति अचेतन जगत् का धारक है अर्थात् इस चेतन प्रकृति से जगत् धारित रहता है। यह जीव प्रकृति भी मुझ परमेश्वर की है ऐसा समझो। अपनी प्रकृति को आठ रूपों में परिणत कराकर के मैं परमेश्वर बारंबार अर्थात् प्रतिकल्प में जगत् सृष्टि को बनाता हूँ। मुझ अध्यक्ष से प्रेरित होकर के यह प्रकृति चराचर युक्त इस जगत् का उत्पादन करती है।

इन वचनों से सिद्ध होता है कि प्रकृति और पुरुष परमेश्वर का धार्य है अर्थात् परमेश्वर के अधीन में रहते हैं तथा ईश्वर के शेष हैं और ईश्वर शेषी हैं। अत एव ये सब ईश्वर के शरीर विशेषणरूप हैं। प्रकृति शब्द का अर्थ है कि प्रकृति लक्षण शरीर को धारण करने वाले तथा प्रकृति की अन्तरात्मा बने हुए जो ईश्वर हैं उनका वाचक प्रकृति शब्द है तथा पुरुष शब्द भी उस ईश्वर का वाचक है जो जीवों की अन्तरात्मा बनी हुई है जिसका जीव धार्य शेष एवं शरीरभूत बना हुआ है तथा जीव विशिष्ट

स्थूलचेतनाचेतनविशिष्टस्य कार्यत्वमित्यवगन्तव्यम् । ततश्च प्रलये सूक्ष्मचेतनाचेतनयोः सद्भावः स्थितो भवति, ईश्वरः शरीरतया चेतनादीनां नित्यत्वमजत्वञ्चापि सिद्ध्यति । अन्यथा कृतहान्य-कृताभ्यागमप्रसङ्गात् । तदेतत् सर्वं श्रुत्यर्थपर्यालोचनया सिद्ध्यति ।

एतादृशीं विचित्रामवस्थामादायैव कारणं कार्यं तदुभयमपि ब्रह्म भवति न तु स्वतो भवति काचिदप्यवस्था ब्रह्मणि । नित्येष्वपि द्रव्येषु भवत्येवावस्थाभेद इति, अवस्थाभेदादेव तेषु भेदो जायते । तत्र सूक्ष्मांदशामादाय ब्रह्मणि कारणत्वं स्थूलां च तामादाय कार्यत्वमित्युभयमपि तत्राव्याहतम् । अत्र पुराणवचनमपि प्रमाणयति प्रधानपुंसोरजयोरिति कार्यरूपयोर्जन्मादिविकाररहितयोरपि प्रधानपुरुषयोः कारणमीश्वर इत्यर्थ : । अत्र अजयोरिति कथनात् प्रलयेऽपि तयोः सत्वमवगतं भवति । ननु यदा प्रकृतिपुरुषौ नित्यौ तदातयोः कार्यत्वं कथमिति नाशंकनीयम्, यतो नित्यावपियदापूर्वावस्था परिहाय नूतनामवस्थां गृह्णीतस्तदा कार्यमित्यनेनावस्थयोरेवकारणत्वं कार्यत्वं च, तत्र पूर्वावस्था

है उस ईश्वर का वाचक पुरुष शब्द है। इन प्रकृति पुरुषों के द्वारा बननेवाले जितने कार्य हैं उनकी भी अन्तरात्मा ईश्वर ही हैं।

यह सब अर्थ विष्णु पुराण के वचन से भी सिद्ध होता है वह वचन ऐसा है-

'व्यक्तंविष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभ्यश्च परमेश्वरः ॥'

व्यक्त इन्द्रियादि से परिदृश्यमान ज[illegible] अव्यक्त प्रकृति, पुरुष जीव और काल ये सब ईश्वर हैं क्योंकि ईश्वर ही इन शरीरों को धारण करने[illegible] हैं। इसलिये ये सब ईश्वर ही हैं। हे ब्रह्मन् ! सृष्टि के आदि में प्रकृत्यादिक के अन्दर में क्षोभ-हलन चल[illegible] क्रिया के संपादन करनेवाले ईश्वर ही हैं। तथा क्षोभ्य अर्थात् क्षोभ क्रिया को प्राप्त होने के योग्य क्षोभ क्रिया का कर्म विषयभूत जो प्रकृति पुरुषादिक जगत् है सो भी ईश्वर ही हैं। (जिस तरह '**ग्रामं गच्छति देवदत्तः**' इस स्थल में गमन क्रिया का कर्ता देवदत्त है और गमन क्रिया का कर्म विषय प्राप्य ग्राम है जो कि क्रिया के कर्ता देवदत्त से भिन्न है, उस तरह प्रकृत में क्षोभ क्रिया का कर्ता तथा कर्म भिन्न भिन्न नहीं है किन्तु प्रकृत में जो ईश्वर क्षोभक हैं अर्थात् क्षोभ क्रिया के कर्ता हैं वही क्षोभक अर्थात् क्षोभ क्रिया का कर्म भी हैं इसलिये क्षोभ्य क्षोभक ईश्वर ही कहलाते हैं। यद्यपि परसमवेत क्रिया जन्य फल शालित्व रूप कर्म का लक्षण है तथा इतरकारकाप्रयोज्यत्वे सति स्वेतर सकल कारक प्रयोजकत्व लक्षण कर्तृत्व का लक्षण है सो

तदेतत् स्थितं यत् सूक्ष्मचेतनाचेतनकं ब्रह्म कारणं तदेव च स्थूलाभ्यां ताभ्यां विशिष्टं कार्यमिति स्वीकारे प्रलये सृष्टावपि परेशशरीर भूतयोस्तयोः सद्भावः सिद्ध्यति । अतएव प्रलये तयोः सत्वं तथा

कारणमुत्तरावस्था च कार्यमिति । नन्वेवं यदा प्रकृतिपुरुषावेव कारणं कार्यं च भवतस्तदा ब्रह्मणि तदुभयं न मुख्यमपि तु गौणमेवस्यादिति चेदित्थम् प्रकृतिपुरुषौकारणावस्थौ कार्यावस्थौ वा भवतस्तथापि तौ जातिगुणादिवत् नियतप्रकारतया ब्रह्मणि प्रकारावेव भवतः । यथा जातिगुणौ यदा भवतस्तदाप्रकरणरूपेणैव भवत इति शरीररूपौ तौ नियतप्रकारतया स्वप्रकारिणं कदापि न व्यभिचरत इति प्रकृतिपुरुषकः शब्दो नियमत ईश्वरमेव दर्शयति, यथा देवादिशरीरवाचको देवादिशब्दो देवशरीराद्यवच्छिन्नदैवं जीवं बोधयति स्वशक्तिद्वारा नतुलक्षणया । तथैव प्रकृतेपीति मुख्यतयैव ब्रह्मणि कारणत्वं कार्यत्वमपि व्यवस्थितमिति संक्षेपः ।

शरीरात्मसम्बन्धेन चिदचिद्वैशिष्ट्यं परमात्मनः प्रदर्शितम् । स च शरीरात्मसम्बन्धः किं

एक में घटित नहीं होने से एक ही व्यक्ति एक क्रिया का कर्ता कर्म नहीं बन सकता है क्योंकि अन्यत्र कर्ता तथा कर्म भिन्न भिन्न देखने में आता है। तथापि जिस तरह-'**कुण्डलीसर्पः कुण्डलिनं स्वात्मानमेव बध्नाति**' इस स्थल में जिस तरह बन्धनरूप क्रिया का कर्ता सर्प होता है तथा उस बन्धन रूप क्रिया को कर्म विषय भी सर्प होता है। **यथा वा आत्मानं जानाति देवदत्तः** इत्यादि स्थल में ज्ञान क्रिया का कर्ता भी देवदत्त होता है और उसी क्रिया का अर्थात् ज्ञान क्रिया का कर्म भी होता है इसी तरह प्रकृत में क्षोभ क्रिया का कर्ता भी ईश्वर हैं तथा कर्म भी ईश्वर हैं यह विष्णुपुराण वचन का अभिप्राय है।

क्षोभ्य तथा क्षोभक परमेश्वर हैं यह किस तरह से जाना जाय ? इसके उत्तर में कहा जाता है कि वही परमेश्वर प्रकृति तथा पुरुष को स्वकीय शरीर के रूप में धारण करते हैं। परमात्मा परमेश्वर प्रलयकाल में भी सूक्ष्म प्रकृति तथा सूक्ष्म जीवों से विशिष्ट अर्थात् युक्त होकर के ही रहते हैं। प्रकृति विशिष्ट परमात्मा के जो विशेषण के रूप में रहनेवाली सूक्ष्म प्रकृति है उस प्रकृति का परिणाम होता है अर्थात् सभी तरह का विकार होता है, और प्रकृति विशिष्ट जो परमात्मा हैं उसका विशेष्यरूप से विद्यमान जो परमात्मा हैं उन परमात्मा में किसी प्रकार का विकारादि दोष नहीं लगता है क्योंकि अन्यदीय दोष से अन्य व्यक्ति लिप्त नहीं होता है। इसलिये परामात्मा सर्वदा निर्विकार होकर के ही रहते हैं। इसी तरह जीव विशिष्ट परमात्मा में विशेषण रूप से अवस्थित जो जीव है उस विशेषणांश

परेशस्य निर्विकारत्वनिमित्तोपादानत्वमपि सिद्ध्यति ।

卐 द्रव्यस्यद्रव्यादिकंप्रतिविशेषणत्वसमर्थनम् 卐

'अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेयानिर्गुणानिष्क्रिया गुणाः' इति नियमेन गुणजात्यादीनामेव विशेषणत्वं तथा तादृशगुणजात्यादिकवाचकश-

रूपः ? केन केन प्रकारेण भवति, इतिशरीरात्मनोर्लक्षणप्रतिपादनेन पृथक् सिद्ध्यन-र्हाधाराधेयादित्रैविध्यप्रतिपादनपूर्वकं शरीरात्मभावसम्बन्धं प्रतिपादयितुं शरीरात्मनोर्लक्षणं निरूपयितुं शरीरात्मनोर्लक्षणप्रतिपादनाय प्रकरणमिदमारभमाणो जगदाचार्यः प्राह अमुमेवशरीरात्मभावन्बन्धमधिकृत्येत्यादि योयं परमात्मा सर्वस्यजडचेतनस्य पदार्थमात्र-स्यान्तरात्मा भवति, तत्र शरीरात्मभावसम्बन्ध एव हेतुर्भवति । यतः सर्ववस्तुजातं तस्यशरीरंशेषात्मकं प्रकारभूतं च परमात्मा तु सर्वस्य शरीरीशेषीप्रकारित्वं च भवतीति जडचेतनस्य स ईश्वरस्तदात्मकत्वात् कारणं भवति । एतस्य शरीरात्मभावसम्बन्धस्या भावादेवमतान्तरे जडचेतनतादात्म्यं न घटते इति दर्शनमार्गात् पराहताः स्खलन्तोभिभूता

जीवों में सब प्रकार का सुख दु:खादिक दोष लगता है और विशिष्ट के अन्तर्गत जो विशेष्य के रूप में अवस्थित परमात्मा हैं उन में किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता है इसलिये परमात्मा सर्वदा निर्विकार रूप से ही व्यवस्थित रहते हैं। और उस विशिष्ट प्रतीति के विशेष रूप से विद्यमान जो परमात्मा हैं तादृश परमात्मा नियामक निर्दोष सर्वकल्याण गुणाकर एवं सत्य सङ्कल्पादिमान् हैं। जहां विशिष्ट प्रतिती होती है उस स्थल में दो अंश होता है एक विशेषण अंश तथा दूसरा विशेष्य अंश। प्रकृति विशिष्ट परमेश्वर में प्रकृति विशेषणांश है और ईश्वर विशष्य अशं हैं एवं जीव विशिष्ट परमेश्वर में जीव विशेषणांश है और ईश्वर विशेष्यंश है। यहां विशेषणांश प्रकृति तथा पुरुष में सभी प्रकार का विकार तथा दोष रहता है और विशेष्यांश ईश्वर में किसी प्रकार का दोषादिक नहीं रहता है, ईश्वर निर्विकार निर्दोष बन कर के सर्वदा अवस्थित रहते हैं। जिस तरह-'मालावान् पुरुषः' इत्यादि स्थल में माला के अंश में विशेषणांश में शुष्कतादि सुख आना आदि दोष लगता है परन्तु विशेष्यांश पुरुष में ये सब दोष नहीं लगते हैं किन्तु वह पुरुष यथा पूर्व अवस्थित रहता है। इसी तरह प्रकृत में विशेषणांश प्रकृति जीव में विकारादिक दोष होता है परन्तु विशेष्यांश परमात्मा तो सर्वदा निर्विकार निर्दोष रहते हैं तथा अनन्तकल्याणगुण का निदान बने रहते हैं।

इस तरह पपमेश्वर को उपादान कारणता प्रतिपादन श्रुति तथा ईश्वर को निर्विकार निर्दोष कहने वाली श्रुतियों में परस्पर सामंजस्य हो जाता है क्योंकि उपादान कारणता प्रतिपादक श्रुतियों का

ब्दानामेव स्वबोधकत्वे सति स्वाश्रयबोधकत्वरूपैकार्थवाचकतया सामानाधिकरणत्वम्, न तु द्रव्यस्य विशेषणत्वं तस्य तु सर्वत्रविशेष्य-तयैवभाननियमेन चेतनाचेतनयोर्द्रव्यत्वेन कथं स्वेतरब्रह्मात्मक-द्रव्यंप्रतिविशेषणत्वं कथं वा चेतनाचेतनयोर्ब्रह्मणा शरीरात्म-

भवन्तीति अन्वयव्यतिरेकाभ्यां शरीरात्मभावसम्बन्धोऽकामेनापिस्वीकर्तव्य एवेति ।

स चायं सम्बन्धः प्रकारत्रयेणभवतीति दर्शयितुमाह सचायंशरीरात्मभावः इत्यादि । अत्र पृथक् सिद्ध्यनर्हाधाराधेयभावरूपः प्रथमः । तदित्थम्-अत्र प्रथमं क आत्मा ? शरीरं च किम् ? तयोर्लक्षणं च किमितिप्रश्नः । तदुत्तरं चेत्थम्-ययोर्द्वयोः पदार्थयोर्मध्ये एकमपराश्रितमेवावतिष्ठते, अन्यश्च तदाश्रयोभूत्वा तं स्वस्मिन् अवस्थापयति, तत्राधेय-रूपोभवन् तमाधारं परित्यज्य स्वकीयावस्थानमलभमान आधारं परित्यज्यनैवावतिष्ठते। तत्र यस्तिष्ठति स आधेयो भवति यस्मिंश्च तिष्ठति स आधारः । तत्र जडपदार्थ आधेयं एव, चेतनश्चाधारोधिकरणमिति। यतो जडपदार्थः सर्वदाधारितो भवति, सच चेतनोऽचेतनो वा

चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर को उपादान कारणता का प्रतिपादन करने में तात्पर्य है। एवं ईश्वर को निर्विकार कहने वाली श्रुतियों का विशिष्ट के अन्तर्गत विशेष्यांश ईश्वर में निर्विकारत्व निर्दोषत्व वतलाने में तात्पर्य है। इसलिये श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं होता है। चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर जगत् के कारण हैं और कार्य भी चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर ही हैं। नहीं कहें कि जब कार्य और कारण दोनों ईश्वर ही हैं तब तो आत्माश्रय दोष होगा क्योंकि अगर यदि कार्य ही कारण हैं तब उत्पाद्योत्पादक भाव किस तरह होगा, घट घट का कारण नहीं देखा जाता है ? ऐसा नहीं कहें क्योंकि सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट परमेश्वर कारण हैं और स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर रूप ब्रह्म कार्य हैं, इसमें विशेषणांश जड चेतन में कार्य कारणभाव होता है अर्थात् स्थूल जड चेतन कार्य है और सूक्ष्म जड चेतन कारण है तो दोनों जगह विशेषणांश में कारणत्व कार्यत्व है अर्थात् सूक्ष्म जड चेतन कारण है और स्थूल जड चेतन कार्य है ईश्वर न तो कारण होते हैं न वा कार्यत्व ईश्वर में होता है, इसलिये ईश्वर में निर्विकारत्व सिद्ध होता है केवल विशिष्टांश में विद्यमान जो विशेष्यांश है ईश्वर उस में तो 'मञ्चाः क्रोशन्ति' की तरह उपचार मात्र है। इस विषय में केवलाद्वैत की तरह यहां भी विकार राहित्य ही माना जाता है। निर्दुष्ट परमत का स्वीकार भी दोषाधायक नहीं माना जाता है। इसका विस्तृत विचार इसी प्रकरण में होगा। इसलिये हमारे मत में कारण और कार्य एक ही पदार्थ माना जाता है। उपनिषद् का ऐसा भाव लेनेपर सर्व श्रुतियों में समन्वय सिद्ध होता है। किसी भी श्रुति को कीसी भी श्रुति के साथ विरोध नहीं होता

भावस्तदभावे कथं प्रलये तयोः सूक्ष्मतया स्थितिरितिचेन्न यथोक्त-नियमस्य 'घटवद्भूतलं' 'दण्डवान् पुरुषः' इत्यादौ व्यत्ययदर्शनादर्थात् द्रव्यमपि द्रव्यान्तरं प्रतिविशेषणं भवत्येव । तथा च द्रव्यरूपयोरपि चेतनाचेतनयोर्ब्रह्मविशेषणत्वेन शरीरात्मभावसम्बन्धस्य सिद्धत्वेन

भवतु तयोः शरीरात्मभावः सम्बन्धो भवतीति शरीरात्मभावस्य पृथक्सिद्ध्यनर्हाधाराधेयभाव इति प्रथमं लक्षणम् तथैवाहुरानन्दभाष्यकाराः-'यस्य प्राणः शरीरम्' इतिश्रुत्या प्राणस्य शरीरत्वनिर्देशादाधेयत्वविधेयत्वाङ्गत्वादयस्तस्मिन्फलन्ति । लोकेऽपि शरीरपदेनाधेयत्वादय एव गृह्यन्ते इतितान्येव शरीरपदबोध्यानि' (१।२।२)

शरीरात्मभावस्य द्वितीयं लक्षणमिदम् पृथक् सिद्ध्यनर्हनियन्तृनियाम्यभावरूप एव । ययोर्द्वयोर्मध्ये एकः पदार्थो नियन्त्रयति स नियामको नियन्त्रणकर्ता भवति, यश्चनिन्त्रणकर्मीभूतः स नियाम्यः । तत्र नियामक आत्मा भवति नियाम्यं च शरीरं भवतीति पृथक् सिद्ध्यनर्ह नियम्यनियामकभावः शरीरात्मभावस्य द्वितीयं लक्षक्षं फलितं भवतीति ।

है । जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजीने **'सर्वश्रुतिसमन्वयः'** नामक प्रवन्धमें इस विषय में तात्विक विचार किया है इस विषय में विशेष विचार उसदिव्य प्रबन्ध व्याख्यान में किया जायेगा निबन्धकाय वृद्धिभय से यहां संक्षेप किये हैं अत: विशेषार्थि वहीं देखें । जो लोग आपातमात्र से श्रुत्यर्थ का विचार करते हैं अथवा एक श्रुति को प्रधान कर देते हैं तदितर को गौण बनाते हैं उन व्यक्तियों को यह दोष उपस्थित होता है । जैसे केवलाद्वैतवादी चार महावाक्य को प्रधान मानकर इतर श्रुतियों का अवहेलन कर देते हैं इसलिये उनको भेद श्रुति के साथ विरोध उपस्थित होता है और यह विरोधप्राय: असमाधेय ही होता है । विशेष अन्यत्र देखें ।

इसप्रकार सम्मिलित मूल का भावार्थ बतला कर के मूलस्थ **'सत्यम्'** यहां से ले कर के मूलाक्षर का विवरण किया है । तथाहि-**'सत्यम्'** ठीक आपका कहना है कि निर्विकारत्व तथा परिणामित्व में विरोध होने से तदुभय प्रतिपादक श्रुतियों में विरोध है परन्तु प्रकृत में मैं स्वरूप से ईश्वर का जगदाकारेण परिणाम को नहीं मामता हूं । यदी स्वरूप से ईश्वर जगदाकार से परिणामी हों तब परस्पर विरोध उपस्थित हो ? किन्तु सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर का जगदाकार से परिणाम होता है ऐसा मानता हूं । यथोक्त सूक्ष्म चिदचिद्विशिष्ट परमेश्वर को उपादान मानने में भी **'नात्मा श्रुतेर्नित्यत्वाच्चताभ्य'** इत्यादि ब्रह्म सूत्रस्थ विचार से सिद्ध होता है कि विशेषणीभूत जो सूक्ष्म चेतन है वह नित्य तथा अनादि है, अन्यथा यदि चेतन को नित्य अनादि न मानें तब तो जीव में

प्रलयेऽपि तयोः सूक्ष्मरूपतया सृष्टौ च स्थूलरूपत्वेन ब्रह्मशरीरत्वेन सद्भावो भवत्येव ।

॥ शरीरात्मबोधकपदानामात्मपर्यन्तबोधकत्वम् ॥

अथ यत्रैकं स्वतन्त्रं द्रव्यं द्रव्यान्तरं प्रतिविशेषणरूपेणभासते तदा

शरीरात्मभावस्य तृतीयं लक्षणं पृथक्सिद्ध्यनर्हशेषशेषीभाव एव । स चेत्थम् ययो द्वयोर्मध्ये एक उत्कर्षप्रापको भवति तदतिरिक्तस्तादृशोत्कर्षेणोत्कृष्टो भवति, तत्रोत्कर्षदायकः शेषः, फलाश्रयश्च शेषी भवति । यथा जडपदार्थः उत्कर्षं ददाति चेतनश्च फलेन फलवान् भवति इति । पृथक्सिद्ध्यनर्हशेषशेषिभावः शरीरात्मभावस्य तृतीयं लक्षणं भवतीति । एतत्सर्वं शरीरस्य लक्षणम् नतु न्यायादिसिद्धान्तसिद्धं चेष्टाश्रयत्वादिकं लक्षणम्, क्रियात्मकचेष्टाया जडे दण्डादावपि सत्वेनातिव्याप्तेः । वृक्षादौविलक्षणक्रियारूप-चेष्टाया अभावेन तत्राव्याप्तेः । अव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवदोषरहितस्यैव लक्षणत्वात् । तस्माद्यथोक्तमेवलक्षणं शरीरस्येति सिद्धम् । एवमाप्लृव्याप्ताविदिधातुः, आप्नोति शरीरं व्याप्नोतीत्यात्मेत्यात्मलक्षणम् । यावत्पर्यन्तं शरीरादिकंतिष्ठतितावत् पर्यन्तम् आधेयनियाम्य

कृताभ्यागम दोष होगा । अर्थात् यदि कल्प के आदि में चेतन उतपन्न हो तब तो पूर्व कल्प में जो जीव शुभाशुभ पुण्य किया तथा अपुण्य किया का विनाश हो गया ऐसा माननै से उसने जो कर्म किया उसका विनाश मानिये तो कृत कर्म का विनाश हुआ और यह जो पैदा हुआ वह तो विल्कुल नवीन आया है वह तो पहले नहीं था तब पहले कुछ कर्म किया था नहीं तब इस कल्प में सुख दुःख का अनुभव करता है तो वह बिना कर्म किये ही प्राप्त करता है इस प्रकार अकृताभ्यागम दोष हो जायगा जीव के अनित्यता पक्ष एवं परमेश्वर में वैषम्य नैर्घृण्य दोश भी होगा ? क्योंकि ईश्वर एक को सुखी अपर को दुःखी बनाता है वह स्वेच्छा से करेगा तो यथोक्त दोष लगता है, कर्म सापेक्ष ईश्वर को कहेंगे यह तो हो नहीं सकता है, यह तो तब हो यदि जीव नित्य अनादि हो तथा तदीय कर्म अनादि हो ? अत: जीव नित्य अनादि सिद्ध होता है तदीय कर्म प्रवाद भी अनादि सिद्ध होता है तब ईश्वर में उपर्युक्त दोष नहीं होगा तथा तदीय कर्म प्रवाह भी अनादि सिद्ध होता है तब ईश्वर में उपर्युक्त दोष नहीं होगा तथा जीव में अकृताभ्यागम दोष भी नहीं होगा, इससे तो जीव में नित्यत्व तथा अनादित्व सिद्ध होता है इसी तरह ईश्वर का विशेषणीभूत जो प्रकृति है उसमें भी नित्यत्व तथा अनादित्व सिद्ध होता है निम्नलिखित श्रुति स्मृतियों से-**'अजामेकां लोहितशुक्त कृष्णा वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः । अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।'** (रजोगुण

तयोः सम्बन्धबोधकप्रत्ययादिभेदान्तरस्यावश्यकता भवति दण्डवानित्यादिवत्, प्रकृते द्रव्यरूपस्य चेतनाचेतनपदार्थस्य परमेश्वरप्रकारत्वे प्रकारताबोधकपदाभावात् कथमीश्वरं प्रति तयोः प्रकारत्वं सामाना-

तथा शेषं जडशरीरादिकमाधारोभूत्वा नियामकस्तथा शेषी भवन् व्याप्नोति तेषु व्यापको वसतीत्यात्मेति कथ्यते इत्यात्मलक्षँणमिदं फलति । एवं सर्वात्मना यदाधेयमेव भवति, नियाम्यं तथा शेषरूपेण प्रकारलक्षणमेव भवतीति दतेव शरीरम्, शीर्यते आविर्भवतिरोभावं प्राप्नोति तच्छरीरमिति शरीरपदव्युत्पत्तेरिति । अत्रापि चापृथक्सिद्धत्वं विशेषणं भवत्येवेति एवं क्रमेण इत्यादि, **एवं प्रकारेण जीवस्यापि प्रकृतिविकारभूतपांचभौतिकशरीरेणसहापृथक्सिद्धाधेयादिविशेषणघटितशरीरात्मभावसम्बन्धो ज्ञातव्यः । ततश्च जडचेतनादिवाचकसर्वशब्दवाच्यत्वं मुख्यरूपेण परमात्मा एव भवति । यतः सर्वं जडचेतनात्मकं वस्तु परमात्मनः शरीररूपमेव । तथा शरीरवाचकपदानां शरीरिपर्यन्त-**

सत्वगुण तमो गुण लक्षण पृथिव्यादिक समान रूप प्रजा को उत्पादन करने वाली प्रकृति को जो कि अजा तथा एक है इसके साथ एक अज जीव इसका भोग करते हैं। अन्य जीव भुक्तभोग प्रकृति का त्याग करते हैं।) इस श्रुति से यह सिद्ध होता है कि प्रकृति पुरुष अजन्मा हैं-**'अस्मान्मायी सृजते'** इस प्रकृति के द्वारा ईश्वर इस जगत का निर्माण करते हैं। इत्यादि । **'मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्'** (प्रकृति को माया जानो और मायावान् को मायी समझो) इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है कि प्रकृति स्वरूप से ही विकार रूपा है अर्दात् प्रकृति का स्वरूप से ही परिणाम होता है ऐसा बतलायेंगे। **'गौरनाद्यन्तवती सा जनित्री भूतभाविनी'** अर्थात् भगवान् श्री रामजी को लीलारस देनेके कारण गौ के समान बननेवाली यह जो प्रकृति है वह आदि तथा अन्त शून्य है इसका उत्पाद विनाश नहीं होता है प्रवाह रूप से नित्य है गंगा प्रवाह की तरह । यह प्रकृति समष्टि तथा व्यष्टि सृष्टि का उत्पादक है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रकृति स्वरूप से ही समष्टि तथा व्यष्टि सृष्टि रूप स परिणत होती है

ये सब उपर्युक्त अर्थ स्मृति वचनों से भी अनुमोदित होते हैं। इससे प्रथमतः गीता वचन का उद्धरण देते हैं। **'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि'** अर्थात् प्रकृति-भूतोत्पादिका प्रकृति तथा जड पदार्थका धारक जीव ये दोनों अनादि कारण वर्जित हैं । **'भूमिरापोऽनलो वायुः खंमनोबुद्धिरेव च । अङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।'** अर्थात् इस जगत् का कारण बनने वाली प्रकृति पृथिवी जल तेज वायु आकाश आदि के रूप से मन प्रभृतिक एकादशेन्द्रिय के रूप से महत्तत्व और अहंकार के रूप से आठ प्रकार से विभक्त हो कर के रहती हैं। **'अपरेयमितस्त्वयां**

धिकरण्यं गुणादिवदिति चेत्सत्यम् 'देवदत्तोऽभाग्येन पशुर्जातः, पुण्येन देवो जातः' इत्यादि स्थले द्रव्यरूपस्य देवदत्तशरीरादेस्तदवच्छिन्नदेवदत्तात्मचैतन्यस्य विशेषणत्वं सामानाधिकरण्यं दृश्यते तथैव चेतनाचेतनद्रव्ययोरपि परमेश्वररूपद्रव्यविशेषणत्वं सामानाधिकरण्यं च

वाचकत्वस्य मनुष्य देवादिपदेषु दर्शनात् । यथा प्रकृतिविकारभूतदेवन्मनुष्यादिवन्मनुष्यादिपद स्वावच्छिन्नभोगवत्वसम्वन्धेनतत्तच्छरीरावच्छिन्नदेवमनुष्यादिजीवस्य मुख्यरूपेणैव वाचकं भवति, तथैव जडचेतनस्य सर्वस्यैव वस्तुनः परमात्मशरीरत्वेन तत्तच्छब्देन सर्वत्र परमात्मन एव बोधो भवतीति मुख्यतयापरमात्मन एव वाच्यता भवतीति शरीरात्मनोर्लक्षणमुपपन्नमिति भावः । इतः पूर्वं देवमनुष्यादिदृष्टान्तेन सर्वशब्दवाच्यत्वं परमात्मनो युक्त्या तर्केण व्यवस्थापितम् । तत्र न केवलं तर्कादेवायमर्थः समधिगतो भवति, अपितु श्रुत्यादिबलेनापि प्रकृतएवार्थो ज्ञायते इति श्रुत्यादिकं दर्शयितुमाह अमुमेवार्थं श्रुतिस्मृतीत्यादि **श्रुत्यादि वचनेनाप्यस्यैवार्थस्यसिद्धिर्भवतीतिभावः । तथाहि** सर्वेवेदा इत्यादि, **पद्यते प्राप्यते इति**

प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो, ययेदं धार्यते जगत्' अर्थात् उपर्युक्त आठो प्रकार की प्रकृति जड रूप होने से निम्न कोटिक भगवान् की प्रकृति है । इस चेतन जीव का उपभोग बननेवाली, इस अचेतन प्रकृति से भिन्न भी एक प्रकृति है जिसका नाम जीव है, वह जीव प्रकृति चेतन होने से पूर्वापिक्षया श्रेष्ठ है, इसी जीव प्रकृति के द्वारा अचेतन जगत् धारित रहता है। यह जीव प्रकृति भी भगवत् सम्बन्धिनी ही है। **'प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः'** अर्थात् अपनी प्रकृति को आठ रूप में परिणत करा कर के मैं ईश्वर बारं बारं सृष्टि को करता हू । **'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते स चराचरम्'.** अर्थात् मुझ परमेश्वर रूप अध्यक्ष से प्रेरित हो कर के यह प्रकृति चराचर युक्त जगत् का उत्पादन करती है। इत्यादि वचनों से विदित होता है कि प्रकृति और पुरुष ये दोनों ईश्वर के धार्य हैं ईश्वराधीन हैं एवं ईश्वर के शेषभूत हैं। अतएव ये सब ईश्वर के शरीर हैं। इससे प्रकृति भी ईश्वर का शरीर है इस बात को बतलायेंगे। अतः प्रकृति शब्द भी प्रकृति शरीरक परमेश्वर का ही वाचक है क्योंकि शरीर वाचक शब्द का शरीरी पर्यन्त में पर्यवसान होता है। एवं पुरुष शब्द भी पुरुष अन्तरात्मा रूप से व्यवस्थित तथा पुरुष का प्रकारी रूप जो परमेश्वर हैं तादृश परमेश्वर का ही वाचक है, क्योंकि अवयव वाचक शब्द अवयवी पर्यन्त का बोधक होता है। इसी तरह घट पटादि सकल विकार की भी अन्तरात्मा परमात्मा ही हैं। इस बात का भी पुराणों में उल्लेख है-**'व्यक्तं विष्णु स्तथाऽव्यक्तंपुरुषः काल एव च । स एव क्षोभको ब्रह्मन् ! क्षोभ्यश्च परमेश्वरः ।'** अर्थात् व्यक्त घटादि प्रपञ्च तथा अव्यक्त प्रकृति एवं पुरुष और काल मुहुर्तादि से लेकर परार्द्ध पर्यन्त काल ये

भवत्येव । अयंभावः-यस्य वस्तुनः कमपि द्रव्यविशेषं प्रतिविशेषणस्वरूपेणैव सद्भावो भवति, तत्रापृथक्सिद्धेस्तत्र द्रव्ये प्रकारतयाभानं सामानाधिकरण्यं च तादृगपृथक्सिद्धविशेषणं द्रव्यं भवतु गुणादिर्वाभवतु तत्र नाग्रहः । यत्र तु द्रव्यमेकं पृथक् सिद्धं कारणब-

पदं सर्वस्यापि प्राप्यं परमात्मानमेव सर्वे वेदाः सर्ववेदवचांसि आमनन्ति कथयन्ति परमेश्वरस्यैव वाचकाः सर्वेशब्दा इति 'सर्वे वेदा यत्रैकंभवन्ति' यत्र ब्रह्मणि सर्वेशब्दा एकरूपाः भवन्ति, वाच्यस्य परमेश्वरस्यैकत्वात् वद्वाचकतया एककार्यकारित्वसंबन्धेन सर्वेषामेकरूपत्वमेकार्थवाचकत्वमित्यर्थः । 'एको देवो बहुधा संनिविष्टः' द्योतनाद्देवः एक एव परमात्मा बहुधाऽनेकरूपेण विराजते । अर्थात् सर्वशरीरकोभूत्वा सर्वमाधेयं व्याप्य विराजते, तस्मात् सर्वशब्दवाच्यो भवतीत्येतावता सर्वान्तर्यामितया तथा भवतीति दर्शितम् 'सहैव सन्तं न विजानन्ति देवाः' अर्थात् देवा द्योतनात्प्रकाशमामत्वात्, इन्द्रियाणि

सब पदार्थ ईश्वर ही हैं क्योंकि ईश्वर सब के धारक सब के शरीरी है शरीर तथा शरीरी में तादात्म्य होता है। हे ब्रह्मन् ! सृष्टि के आदि में क्षोभ को पैदा करनेवाले ईश्वर ही हैं। प्रकृति प्रभृति में क्रिया होने से पदार्थ उत्पन्न होता है एतादृश क्रिया का उत्पादक परमेश्वर ही हैं, एवं क्षोभ क्रिया का कर्म भी परमेश्वर ही हैं, अर्थात् क्षोभ क्रिया का कर्म है प्रकृति तथा पुरुष पदार्थ, एतादृश पदार्थ भी परमेश्वर ही हैं क्योंकि वे परमेश्वर सब के धारक सब के शरीरी हैं सब के नियामक हैं। एतादृश परमात्मा का विशेषण रूप जो प्रकृति रूप पदार्थ है उसी प्रकृत्यादिक में विकार होता है, वही अंश परिणत होता है अर्थात् परमेश्वर का विशेषण प्रकृति का परिणाम यह जगत् होता है परमेश्वर के विशेष्यांश में परिणाम नहीं होता है, एवं जीव रूप विशेषणवान् जो परमात्मा हैं उनका विशेषण जीव में सुख दुःख दौर्मनस्य रूप विकार होते हैं किन्तु विशेष्यान्तर्गत विशेष्य अंश परमात्मा में दुःखादिक विकार नहीं होता है। जिस तरह देवदत्त जीवित रहता है उस समय में किसी कारण से यदि तदीय शिखा का नाश हो जाता है तो '**क्षिखी विनष्टः**' यह प्रयोग किया जाता है तो इस प्रतिति में भासमान शिखारूप विशेषण में ही नाश का अन्वय होता है किन्तु उपर्युक्त प्रतीति में जो विशेष्य देवदत्त है उसमें नाश का अन्वय नहीं होता है क्योंकि प्रत्यक्ष से देखा जाता है देवदत्त जीवित है तो जिस तरह विशेषणांश में नाश व्यवहार होता है उसी तरह प्रकृत में भी विशेषणांश प्रकृति में परिणाम होता है तथा विशेषणांश जीव में दुःखादिक विकार होते हैं न तु विशेष्य परमात्मा में परिणाम वा विकार होता है। '**विशिष्टे विधीयमानौ विधिनिषेधौ सति विशेष्ये वाधे विशेषणमुपसंक्रमतः ।**' विशिष्ट में

लात्तदन्यद्द्रव्यस्य विशेषणतामासादयति, तत्रोभयोराधाराधेयभावसिद्धये मत्वर्थीयादिप्रत्ययस्यावश्यकता भवति । प्रकृते चेतनाचेतनयोर्द्रव्ययोरपि परमेश्वरमन्तरेण सद्भावासंभवात्, अपृथक् सिद्धविशेषणतया गुणादिवत्, स्वबोधकत्वे सति स्वाश्रयबोधकत्व-

चक्षुरादीनि सहैव सन्तम्, सर्वान्तर्यामितया सर्वत्र विराजमानमपीश्वरं ज्ञातुं नो प्रभवन्ति । एतावता इन्द्रियावेद्यत्वे सति शब्दैकप्रमाणगम्यत्वं परमेश्वरस्यप्रदर्शितम् परमेश्वरस्य सर्वशब्दवाच्यत्वं पुराणबचनेनापि प्रदर्शितम् । 'न तास्म सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्र साश्वती' तं परमेश्वरं नमस्करोमि, यत्र परमेश्वरे सर्वशब्दानां शाश्वती प्रतिष्ठा, अर्थात् सर्वोपि शब्दः स्ववाच्ये प्रतिष्ठितो भवतीति, एतावता सर्वशब्दवाच्यत्वमीश्वरस्येति । 'कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम्' स परमेश्वरः कार्याणां जडचेतनानां पूर्वं निदानकारणं तथा वचसां सर्वशब्दानामुत्तमं वाच्यम्, अर्थात् सर्वशब्दानां मुख्योवाच्यार्थः पर एव ते तेऽर्थास्तुतेषां गौणार्थ एव । एतावता सर्वशब्दवाच्यता परमेश्वरस्यैव निश्चीयते । 'वेदैश्चस-

विधीयमान जो विधि अथवा निषेध उसका यदि विशेष्यांश में अन्वय होने में यदि बाधक हो तो उस विधिनिषेध का निशेषणांश में ही अन्वय होता है, ऐसा एक न्याय है, इस न्याय से परिणाम वा विकारादिक के अन्वय होने में बाधक है तब उसका अन्वय विशेष्यांश ईश्वर में न होकर के विशेषणीभूत प्रकृति में परिणाम का अन्वय होता है और विशेषणीभूत जीव में ही विकारादिक का अन्वय होता है न तु विशेष्य ईश्वर में होता है, इसलिये ईश्वर सर्वदा अपरिणामी निर्विकार ही रहते हैं। अतः निर्विकारत्व प्रतिपादक तथा परिणामित्व प्रतिपादक श्रुति स्मृतियों में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं होता है, जो व्यक्ति अल्प श्रुत हैं जिनका अन्तः कारण भक्ति प्रपत्ति रहित है उन्हीं व्यक्ति को यह परस्पर विरोध प्रतिभासित होता है। किन्तु भगवान् श्रीरामजी की सेवा में जो परायण हैं उनके लिये कोई भी पदार्थ अगम्य नहीं होता है। श्रीरामजी ने स्वयं श्रीमुख से कहा है-'**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं ममेति ।**'

जिस तरह '**गङ्गायां घोषः**' इस स्थल में मुख्य वृत्ति से गंगा शब्द प्रवाह रूप अर्थ का वाचक होता है और गौण वृत्ति से तीर रूप अर्थ का बोधक होता है इसी तरह प्रकृति पुरुष वाचक शब्द मुख्य वृत्ति से प्रकृति पुरुष को समझायगा और गौण वृत्ति से प्रकृति पुरुष शरीरक परमात्मा को समझायगा तो मुख्य कार्यत्व कारणत्व प्रकृति पुरुष में है और गौण कार्यत्व और कारणत्व प्रकृति पुरुष शरीरक ईश्वर में होगा किन्तु मुख्य रूप से परमेश्वर में कारणत्व कार्यत्व नहीं हो सकता है ? इसका समाधान करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**अयंभावः**' इत्यादि, भाव स्पष्टीकरण करन के

मपि भवति गुणादिवत् । दण्डवानित्यत्र तु दण्डस्य पृथक् सिद्धवि-शेषणत्वेन मत्वर्थीयमतुवादिप्रत्ययस्यावश्यकता, तमन्तरेणाधारा-धेयभावस्यासंभवात् ।

वैरहमेववेद्यः' अज्ञानार्थप्रकाशनपरैः सर्वैरेव वेदैरहमेव परमेश्वर एववेद्यो ज्ञातो भवामि, ये वेदशब्दास्ते सर्वेऽपि परमेश्वरलक्षणार्थस्यैव मुख्यतया वाचकाः । समुदाहृतश्रुतिपुराणादिवचनैः सर्वेशब्दाः सशरीरजीवान्तर्यामिपरमेश्वरस्यैवमुख्यरूपेण बोधका भवन्तीति । यतः सर्वशब्दवाच्यत्वं परमेश्वरस्यैव अतएवोपनिषदि परमेश्वरसंकल्पस्य वर्णनं कृतम् 'हन्ताहमिमास्तिस्त्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्यनामरूपे व्याकरवाणि' अहं परमात्मा सहैव जीवेन पृथिव्यादि तत्वत्रयेष्वन्तः प्रविश्यनामरूपयोर्विस्पष्टतां करिष्ये, अत्र पृथिव्यादिजडपदार्थनिर्मितकार्यवर्गस्तदैवस्थातुं शक्ष्यति यदि जीवस्तंधारयेत् जीवश्च तदैवतान्धारयितुं शक्तः स्याद् यदि स परमात्मना स्वंधृतो भवेत् । अतः परमात्मा

लिये कहते हैं-'**यदा खलु नामरूपेत्यादि**' जब नाम रूप विभाग को छोड कर के प्रकृति तथा पुरुष सूक्ष्मदशा को प्राप्त कर जाते हैं तादृश अतिसूक्ष्म, जो प्रकृति पुरुष, तादृश प्रकृति पुरुष, तादृश प्रकृति पुरुष शरीर वाले ईश्वर होते हैं तब वह ब्रह्म कारणावस्थ कहलाते हैं। एतादृश अर्थात् कारणावस्थ जो ईश्वर तादृश ईश्वर भावापत्ति को ही प्रकृति पुरुष लक्षण संसार की प्रलयावस्थानाम होता है, अर्थात् उस अवस्था को प्रलय कहते हैं। और जव जिस समय में नाम रूप विभाग से विभक्त चिदचित् पदार्थ होते हैं तादृश स्थूल चिदचित् पदार्थ शरीर विशिष्टवाला जो ब्रह्मावस्था है तादृश अवस्था से ब्रह्म के समवस्थान को ही ब्रह्म की कार्यावस्था कहते हैं, एतादृश ब्रह्मदशा को कार्यावस्था कहते हैं। ब्रह्म में कार्यावस्थत्व ही जगत् की सृष्टि कहलाती है। अर्थात् यह साधारण नियम है कि परमेश्वर सर्वदा चेतनाचेतन पदार्थों से विशिष्ट होकर केही रहते हैं यह इनका स्वभाव है। प्रलयकाल में चेतनाचेतन पदार्थ नाम रूप का परित्याग करके अतिसूक्ष्म दशा को प्राप्त कर जाते हैं, और सृष्टिकाल में नाम रूप विभाग को प्राप्त कर के स्थूलदशा में आ जाते हैं। अब यहां नाम रूप विभाग रहित सूक्ष्मदशा को प्राप्त प्रकृति पुरुष शरीरों में अन्तरात्मा के रूप में विद्यमान ब्रह्म ईश्वर जगत् के कारण माने जाते हैं। जगत् जब एतादृश कारणावस्था में पहूँच जाता है तब प्रलय कहा जाता है जगत् का, और जब नाम रूपात्मक विभाग को प्राप्त कर के स्थूल दशा को प्राप्त किये हुए चेतनाचेतन पदार्थों का अन्तरात्मा के रूप में वर्तमान ईश्वर कार्य कहे जाते हैं। ब्रह्म को चेतनाचेतन पदार्थ के द्वारा स्थूलावस्था को प्राप्त होना ही जगत् का सर्ग कहा जाता है। यद्यपि जड़चेतन द्रव्य तथा ब्रह्म रूप द्रव्य नित्य है तथापि उन में अनेक प्रकार की अवस्था समय समय पर होती रहती है इसमें नामरूपात्मक विभाग से शून्य हो जाने का नाम होता है सूक्ष्मावस्था। यह अवस्था चेतनाचेतन द्रव्यों में तो साक्षात् सम्बन्ध

सर्वे शब्दा ब्रह्मणो बोधकाः

यथा शरीरवाचको देवमनुष्यतिर्यगादिशब्दः स्वस्वप्रकारिणं तत्तज्जीवात्मानं बोधयति, तथैव सर्वस्यापि स्थावरजङ्गमात्मकस्य सर्वपदार्थस्य परमेश्वरशरीररूपतया परमेश्वरप्रकाररूपेण स्वकीय

जीवस्यान्तर्यामीभुत्वा जीवेन सह तानन्तः प्रविश्यनामरूपव्याकरणसङ्कल्पमकरोदिति । एवं जडपदार्थस्य वाचकः शब्दो जडपदार्थधारकजीवं बोधयन् जीवस्यान्तर्यामिणं परमात्मानं बोधयितुं एतादृशकार्यकरणाय परमात्मा जीवेनसह जडतत्वेष्वन्तः प्रविश्यनामरूपविषयकल्पमकरोदिति । अनेनोपनिषद्वचनेन सर्वशब्दवाच्यत्वं परमेश्वरश्रीरामस्य सिद्धं भवतीति भावः । मनुरप्याह-

'प्रशासितारं सर्वेषामणीमांसमणीयसाम् ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तु पुरुषं परम् ॥
एनमेके वदत्यग्निं मरुतोऽन्ये प्रजापतिम् ।

से होता है और चेनाचेतन द्रव्य के द्वारा परमेश्वर में रहती है। इसी अवस्था को लेकर के ब्रह्म जगत् के कारण माने जाते हैं एतादृश अवस्था प्रलय काल में मानी जाती है क्योंकि प्रलय काल में ही नाम रूप विभाग नहीं रहता है, और नाम रूप विभांग को प्राप्त करना ही स्थूलावस्था है। यह स्थूलावस्था चेतनाचेतन द्रव्यों में साक्षात्संबंध से रहती है और चेतनाचेतन द्रव्य के द्वारा ब्रह्म में परंपरा सम्बन्ध से रहती है। इस स्थूलावस्था को लेकर के ब्रह्म कार्य भी माना जाता है यह अवस्था सर्ग काल में होती है। द्रव्य के नित्य होने पर भी इन में होने वाली सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था को लेकर क़े वह द्रव्य कारण तथा कार्य माना जाता है। (जिस तरह पूर्वावस्था को लेकर के सूवर्ण द्रव्य कारण तथा कहलाता है और उत्तरावस्था कटक कुण्डलादिक को लेकर के कार्य कहलाता है। सुवर्ण द्रव्य तो दोनों अवस्था में समान रुप से अवस्थित रहता है। यद्यपि सुवर्ण रुप दोनों जगहों में समान रुप रहता है किन्तु मात्र अवस्था जो पूर्वावस्था है, तथा उत्तरावस्था हैं उसके भेद से पूर्वावस्थ कारण कहलाता है तथा उत्तरावस्था को लेकर के कार्य कहलाता है-'**तदेवेदं सुवर्णम्**' यह प्रत्यभिज्ञा तो दोनों काल में समान ही होती है। कुण्डल कटकादि से भेद होने पर भी सुवर्णरूप से अभेद प्रतिभासित होता रहता है।) इसी तरह चेतनादिक द्रव्यों को नित्य होने पर भी भिन्न भिन्न अवस्था को लेकर के सर्ग तथा प्रलय को माना गया है, चेतनादिक द्रव्य को नित्य होने पर भी अवस्था भेद से वही द्रव्यकारण तथा कार्य भी बन जाता है। (यथा पिता से उत्पन्न पुत्र कार्य है। तथा वही पुत्र पुनः स्वपुत्र का कारण भी होता है) इसी अवस्था भेद से द्रव्यनित्य होने पर भी कारण और कार्य दोनों बनता है।

स्वरूपस्य सद्भाव इति सर्वेषां प्रकारी परमेश्वर एव स्थावरज-ङ्गमादिशब्देन प्रतिपादितो भवतीति तत्सामानाधिकरण्येन तेषां शब्दानामीश्वरप्रतिपादनमपि नायुक्तमित्येतत्तत्वं प्रतिपादितं तत्त्वम-सीत्यादिप्रकरणे पूर्वम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥'

अयं हि परमात्मा सर्वेषां जडचेतनपदार्थानां प्रशासकः 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्' इत्यारभ्य 'एतस्यैव खल्वक्षरस्य प्रशासनेगार्गिसूर्याचन्द्रमसौ विधृते तिष्ठतः' इत्यादिश्रुत्या परमेश्वररस्य सर्वप्रकाशकत्वसिद्धेः । अर्थात् परमेश्वरः सर्वस्यान्तर्यामिरूपेण सर्वान्तः प्रविश्य सर्वं शास्तीति । तथा 'अणीयसांजीवानामप्यणीयान् जडपदार्थापेक्षया जीवोऽणुरिति तदन्तः प्रविश्यावस्थितो भवन् अणुरिति जीवो भवति, परमात्मा तु जीवस्याप्यन्तरात्मेति जीवेपि तस्यानुप्रवेश इति सर्वापेक्षया स परमेश्वरोऽणीयान् भवति । 'रुक्माभमिति' परमात्मा सुवर्णवत् देदीप्यमानविग्रहवान् स्वप्रकाशज्ञानमयविग्रहः 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्'

इन दोनों वस्तुओं को श्रीरामानन्दसम्प्रदाय के छठे आचार्य श्रीपराशर ऋषिजी ने बतलाया है- '**प्रधानपुंसोरजयोः कारणं कार्यभूतयोरिति** । अर्थात् कार्यरूप में परिणत होनेवाले उत्पाद विनाश रहित इन प्रकृति और पुरुषों जीवों के कारण परमेश्वर हैं । इस श्रीपराशर वचन में प्रकृति पुरुषों को जन्म रहित कहने से जब कारणावस्थ ईश्वर रहते हैं उस कारणावस्था में भी इन दोनों का सद्भाव रहता है यह सूचित होता है इसी का नाम है इन में अजत्व तथा नित्य का। अब यहां कोई पूर्वपक्षवादी कहते हैं कि-'जव प्रकृति और पुरुष नित्य हैं तब ये दोनों कार्य कैसे होंगे क्योंकि उत्पाद विनाश रहितत्व का नाम होता है नित्यत्व और उत्पादविनाश सहितत्व का नाम है कार्यत्व तो परस्पर विरुद्ध इनमें परस्पर साहित्य किस तरह होगा, यदि नित्य हैं तब कार्यत्व नहीं होगा । अथ यदि ये दोनों कार्य हैं तब नित्य नहीं होंगे ? तथापि नित्यरूप से रहने वाले प्रकृति पुरुषों में जब ये दोनों नवीन अवस्था अर्थात् उत्तरोत्तर अवस्था को प्राप्त करते हैं तब ये दोनों कार्य कहलाते हैं अवस्था जो नवीन होती है तो वह अवस्था कार्य है तो अवस्था के कार्य होने से अवस्थावान में भी कार्यत्व का उपचार होने से अवस्थावान् भी कार्य कहलाते हैं इससे यह फलित होता है कि द्रव्य पदार्थ नित्य होने पर भी पूर्वावस्था को लेकर के कारण कहलाते हैं क्योंकि अव्यवहित नियत पूर्व वृत्तितारूप ही कारणता है। एवं वही नित्य द्रव्य जब उत्तरावस्था को प्राप्त करता है तब कार्य कहलाता है क्योंकि कारणाव्यवहितोत्तरकाल वृत्तितारूप ही कार्य का लक्षण है । अर्थात् अवस्था भेद होने से अवस्थावान् में भी औपचारिक भेद को मान कर के एक ही नित्य द्रव्य में कारणत्व पूर्वावस्था प्रयुक्त होता है।

ॐ विशिष्टाद्वैतानुकूलमेकविज्ञानेनसर्वविज्ञानेतिसमर्थनम् ॐ

सृष्टेरादिकाले प्रकृतिः महत्तत्वाहङ्कारपञ्चतन्मात्रैकादशेन्द्रिय पञ्चमहाभूतरूपमनेकाकारसंस्थितविचित्रमनेककार्यलक्षणेन परिणता भवति । एतत् सर्वं कार्यं ब्रह्मैव, यतः एतेषामन्तरात्मा ब्रह्मैव । तेन

इति श्रुतेः । 'स्वप्नधीगम्यम्' इति अयं परमात्मा स्वाप्निकविशदज्ञानसदृशध्यानैकगम्यः, यदाध्यानं परमकाष्ठापन्नं भवति तदा प्रत्यक्षसमतामाप्नोति तादृशज्ञानगम्यो भवति न तु परोक्षज्ञानविषयो भवति, 'एषोणुरात्मा चेतसावेदितव्यः' इतिश्रुतेः । यद्यपि 'यतोवाचो निवर्तन्तेऽप्राप्यमनसासहेत्यादिवाङ्मनोऽविषयत्वं कथितं तथापि निषेधश्रुतिर-संस्कृतमनोविषया । 'ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना' इत्यादौ प्रत्यक्षसमाना-कारकध्यानगम्यत्वस्य प्रतिपादनात् । सर्वस्य प्रशासकंसर्वापेक्षयातिसूक्ष्मं सुवर्णवद्देदीप्य-मानमंगलमयविग्रहोपेतम् ध्यानमात्रगम्यं परमपुरुषं जानीयात् । ज्ञात्वा च तमुपासीत येन संसारसागरात्सद्य एव समुत्तीर्णोभवेदिति समुदितार्थः प्रथमश्लोकस्येति संक्षेपो

तथा कार्यत्व उत्तरावस्था प्रयुक्त होता है। इस प्रकार प्रकृति पुरुष में नित्यत्व होने पर भी उन दोनों में परस्पर विरुद्ध कारणत्व कार्यत्व का समावेश एक में भी होता है । इसलिये ये नित्यत्व कार्यत्व दोनों प्रकृति पुरुष में होता है । मीमांसको ने कहा भी है कि-'**किन्तु स्वयं क्लेश रूपं कर्म यत् कार्यतां व्रजेत् । फलसाधनता तत्र कारणं तेन कार्यता ।** ' इति । अर्थात् कारण पदार्थ भी कार्यभाव को प्राप्त करते हैं।

पुनः प्रश्नः-जब प्रकृति पुरुष द्वारा परमात्मा में कारणत्व एवं कार्यत्व होता है तब तो साक्षात् कारणत्व और कार्यत्व तो प्रकृति और पुरुष में रहा तब तो परमात्मा में ये कारणत्व कार्यत्व तो गौण रूप से अर्थात् उपचार मात्र से हुआ मुख्य रूप से परमात्मा कारण तथा कार्य तो नहीं बनते हैं ? समाधान-प्रकृति और पुरुष ये दोनों नियत प्रकार के होते हैं गुण जाति की तरह, अर्थात् प्रकृति पुरुष चाहे कारणावस्था में रहें चाहे कर्यावस्था में रहें परन्तु किसी भी अवस्था के समय में ये दोनों परमेश्वर में प्रकार अर्थात् विशेषण रूप से ही रहते हैं, जिस तरह जाति जब रहती है तब व्यक्ति में प्रकार रूप से ही रहती है, यथा वा नीलादिक गुण जब रहता है तब द्रव्य घटादिकों का प्रकार विशेषण बन कर के ही रहने का स्वभाव है, इसी तरह प्रकृत में चाहे प्रकृति पुरुष जब रहते हैं तब ईश्वर में प्रकार विशेषण बन कर के ही रहते हैं । अर्थात् जिस तरह जाति व्यक्ति के प्रति तथा नीलादिक गुण घटादिक द्रव्य के प्रति जब रहता है तब सर्वदा प्रकार वनकर के ही रहता है, उसी तरह प्रकृती पुरुष सर्वदा परमात्मा का प्रकार बन कर के ही रहते हैं । अत एव ये सब पदार्थ नियत प्रकार कहलाते हैं वही पदार्थ नियत प्रकार कहलाता है जो जब रहे तब अन्य पदार्थ का आश्रय लेकर के ही रह सके

ब्रह्मणा धृतम्, अनेन प्रकारेण कार्यमात्रं ब्रह्मैव, कारणमपि ब्रह्मैव। ततश्च कार्यब्रह्मणो ज्ञानात् सर्वं कार्यजातं ज्ञातमेवेतीत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा या सद्विद्याप्ररणे कथिता, सा विशिष्टाद्वैतवादे, कार्यकारणभावद्वारेण समस्तस्य चिदचित्पदार्थस्य ब्रह्मप्रकारतयाब्रह्म

विस्तरस्त्वन्यत्रेति । यस्मादयं परमात्मा सर्वस्यान्तर्यामितयाऽवस्थितस्तस्मादेवकारणात् सर्वशब्दद्वारा वाच्यो भवतीति ।

द्वियीतश्लोकार्यस्त्वयम् एनं परमात्मानम् एके वैदिकशब्दा अग्निनाम्नोदाहरन्ति अन्योहि वेदशब्दस्तं परमात्मानं मरुच्छब्देन प्रतिपादनं कुर्वन्ति तदान्ये प्रजापति शब्देन कथनं कुर्वन्ति, केचनप्राणशब्देन प्रतिपादयन्ति । केचनशब्दस्तं परमात्मानं शाश्वतब्रह्म नाम्ना संगिरन्ति । अयमाशयः-अयं परमात्मा वह्निमरुत् प्रजापतीन्द्रप्राणेषु तदन्तर्यामितया सर्वत्रावस्थितः सर्वस्य शासकत्वात्सर्वस्यान्तरूपत्वादिति । अतएव तेऽग्न्यादिवाचका वह्न्यादिशब्दाः स्वान्तर्यामिणं तथैव बोधयन्ति यथा ब्रह्मवाचकशब्दः शाश्वतं ब्रह्मपरमात्मानं

तथा दूसरे के कार्य के लिये ही रहता हो जैसे जाति व्यक्ति का आश्रय लेकर के ही रहती है तथा व्यक्ति के लिये रहती है तथा जाति से होने वाला फल व्यक्ति को ही प्राप्त होता है, एवं गुण द्रव्य का आश्रय लेकर के ही रहता है तथा द्रव्य के लिये ही रहता है एवं गुण से होनेवाला उत्कर्षापकर्ष फल द्रव्य को ही प्राप्त होता है। एवं शरीर आत्मा का आश्रय लेकर के ही रहता है। शरीर आत्मा को लाभ पहुँचाने के लिये ही रहता है, शरीर से होनेवाला सुखादिक फल आत्मा को हीप्राप्त होता है। इसप्रकार जाति गुण और शरीर ये तीनों दूसरे का आश्रय लेकर ही रहते हैं तथा दूसरे के लिये ही रहते हैं इसलिये नियत प्रकार कहे जाते हैं। जिसतरह व्यक्ति के प्रति नियत प्रकार बननेवाली जाति का वाचक शब्द व्यक्ति पर्यन्त का बोधक होता है, यथा वा जिस प्रकार द्रव्य के प्रति नियत प्रकार बनने वाला नीलादि वाचक नील गुणादि शब्द द्रव्य का वाचक होता है उसी प्रकार परमात्मा के प्रति नियत प्रकार बनने वाले प्रकृति पुरुषों का वाचक शब्द परमात्मा पर्यन्त द्रव्य का वाचक होता है। इसमें देव मनुष्य वाचक शब्द को दृष्टान्त रूप से जानना चाहिये। उसी तरह संपूर्ण चेतनाचेतन पदार्थों को परमेश्वर के शरीर बनकर ईश्वर के प्रति प्रकार बनने के कारण से इन चेतनाचेतनों का वाचक सभी शब्द विशेष्य बनने वाले परमात्मा को स्वशक्ति द्वारा न तु लक्षणा से लेते हैं। इस प्रकार से प्रकृति और पुरुष में कहे जाने वाले कारणत्व तथा कार्यत्व परमात्मा में मुख्यरूप से-गौण रूप से नहीं, रहते हैं, इसलिये परमात्मा को कारण तथा कार्य माना जाता है यह ठीक है। इस प्रकार मूलका भावार्थ होता है। मूल का अक्षरार्थ इस प्रकार होता हो, तथाहि '**यतः ईश्वर प्राकारभूत**' इत्यादि, अतः

रूपत्वात् सेयमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञामतान्तरे नोपपादिता भवति तन्मते ब्रह्मविवर्तत्वात् प्रपञ्चविभ्रमस्येति ।

बोधयतीति मनुवचनेन सर्वशब्दवाच्यत्वं ब्रह्मणः प्रदर्शितम् । वचनान्तरमपि सर्वशब्दवाच्यत्वं ब्रह्मणः प्रदर्शयति तत्राह

'ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणान्सहुताशनान् ।
सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते ।'

ये श्रद्धालवः श्रद्धाभक्तिं पुरस्कृत्य अग्निष्वात्तादिकान् पितृगणान् यजन्ति पूजयन्ति स्वधोच्चारणपूर्वकंयोग्यप्रदेयद्रव्यं प्रयच्छन्ति, तथेन्द्रादिकान् देवान् प्रीणयन्ति ब्राह्मणान् यजन्ति पायसादिना ब्रह्मणान् भोजयन्ति तथा हुताशनं वह्निं पूजयन्ति ते सर्वभूतस्यान्तरात्मानं भगवन्तं विष्णुं व्यापकपरमात्मानमेव पूजयन्ति । यतो विष्णुः सर्वजीवानामन्तरात्मेति पितृगणादीनामुदाहृतदेवानामपि ब्राह्मणान्तानामन्तरात्मेति पूजनसमये उच्चार्यमाणाः

इसलिये ईश्वर में प्रकारभूत अर्थात् विशेषणीभूत सभी अवस्था में अर्थात् प्रलय अवस्था हो अथवा सर्गावस्था, इन अवस्थाद्वय में जो प्रकृति वाचक शब्द तथा पुरुष वाचक शब्द हैं वे सभी प्रकृति वाचक शब्द प्रकृतिपुरुष पुरुष लक्षण जो प्रकार तादृश प्रकार विशिष्ट रूप से समवस्थित परमेश्वर में मुख्यरूप से ही रहते हैं अर्थात् प्रकार वाचक प्रकृति पुरुष शब्द मुख्य रूप से शक्ति द्वारा परमेश्वर को समझाते हैं, किन्तु तादृश प्रकृत्यादि वाचक शब्द गौणी वृत्ति अर्थात् लक्षणा से परमेश्वर को नहीं समझाते हैं जैसे जीवात्मा का वाचक जो देवमनुष्यादिक शब्द हैं वे प्रकृति का परिणामभूत देव मनुष्यादि शरीरावच्छिन्न देवात्मा मनुष्यात्मा का वाचक मुख्य वृत्ति से होते हैं किन्तु गौणी वृत्ति से नहीं होते हैं उसीतरह प्रकृति में भी समझना चाहिये।

तब सभी चिदचित् पदार्थ को परमेश्वर के शरीर होने से परमेश्वर के प्रति प्रकार होने से वे सब प्रकृति पुरुष वाचक सब शब्द मुख्य वृत्ति से अर्थात् शक्ति द्वारा ही परमात्मा के वाचक होते है नतु प्रकृत्यादि वाचक शब्द मुख्या वृत्ति के द्वारा प्रकृत्यादिक पदार्थ को समझाते हुए गौणी वृत्ति से परमात्मा के वाचक होते हैं, इसलिये शब्द मुख्य वृत्ति से परमात्मा के ही वाचक होते हैं, यह सिद्ध हुआ।

जड़ तथा चेतन में शरीरात्मभाव रूप संबन्ध है तथा प्रकृति पुरुष तथा ईश्वर में शरीरात्माभाव सम्बन्ध है, अर्थात् शरीरादिक जड पदार्थों को जीव के साथ तथा प्रकृति पुरुष को ईश्वर के साथ यथोक्त सम्बन्ध जड जीव शरीर है ईश्वर शरीरी है ऐसा पूर्व में कहा गया है। उस में शरीर किसे कहते हैं तथा आत्मा किसे कहते हैं ? अर्थात् शरीर तथा आत्मा का लक्षण क्या है ? ऐसी जिज्ञासा का

ॐ परब्रह्मणोनिर्विकारित्वपरिणामित्वयोरविरोधत्वप्रदर्शनम् ॐ

स्यादेतदेकत्र ब्रह्मणः स्वरूपेण परिणामास्पदत्वं तस्य निर्विकारत्वनिरवयवत्वप्रतिपादकश्रुतिविरोधेनापाकृतम् । 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' इत्यादिनैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञायाः

पितृगणादिवाचकाशब्दाः स्ववाच्यान् वोधयन्तस्तेषां पित्रादीनामन्तरात्मानं श्रीभगवन्तमपि बोधयन्त्येवेति देवादीनां पूजनं भगवतः पूजनमेवेति सिद्धं भवति सर्वशब्दवाच्यत्वं परमेश्वरस्येति संक्षेपः ।

इतः पूर्वं भेदश्रुत्यभेदश्रुतिघटकश्रुतीनां समन्वयं प्रदश्योपायोपेययोर्निवर्त्यस्य च यथावत् स्वरूपं निश्चेतुमुपक्रमते यद्यपि जीवोहि स्वभावतः इत्यादि । अयमाशयः- उपायस्वरूपेमतभेदो हि वेदप्रायण्याभ्युपगन्तृणाम् । एके जीवात्मैक्यज्ञानं तत्वमस्यादि श्रुतिसिद्धमेव हेतुरिति वदन्ति । सिद्धान्तिनस्तु तथा न मन्यन्ते किन्तूपायनिवर्त्ययोर्विषये प्रकारान्तरमेवानुसरन्ति । तत्र प्रथमतो निवर्त्यस्य स्वरूपं विवेचयन्ति । तथाहि सर्वोपि

समाधान करने के लिये शरीर तथा आत्मा का लक्षण बतलाने के लिये कहते हैं-'**अमुमेव शरीरात्म**' इत्यादि, इस शरीरात्मभाव सम्बन्ध को अधिकृत कर के परमात्मा सभी जड़चेतन की अन्तरामा है । इसमें शरीर का क्या लक्षण है तथा आत्मा का क्या लक्षण है ? इस संशय का निराकरण करने के लिये कहते हैं-'**स चायं सम्बन्धः**' इत्यादि । यह शरीरात्मभाव संबन्ध तीन पकार से होता है। उसमें प्रथम लक्षण हैं-'**पृथक् सिद्ध्यनर्हाधाराधेयभावरूप**' शरीर किसे कहें ? आत्मा किसे कहें ? इसका उत्तर यह है कि-'**पृथक् सिद्ध्यनर्ह आधाराधेयभाव**' अर्थात्-जिन दो पदार्थों में से एक दूसरे का आश्रय लेकर के ही रहता हो और दूसरा आधार बनकर के ही उसकी स्थिति को बना कर के रखे उनमें आधेय बनने वाला पदार्थ आधार को छोड कर के नहीं रह सकता हो, उन दोनों पदार्थों में आधार बनने वाला चेतन आत्मा कहा जाता है और उस चेतन के द्वारा सर्वदा धार्य बननेवाला पदार्थ जड शरीरादिक रूप हो अथवा चेतन रूप हो तो वह शरीर कहा जाता है। इन पदार्थों में शरीरात्मभाव सम्बन्ध माना जाता है। यह शरीरात्मभाव का प्रथम लक्षण है, पृथक् सिद्ध्यनर्ह आधाराधेय भाव रूप ।

एवं शरीरात्मभाव का द्वितीय लक्षण है-पृथक् सिद्ध्यनर्ह नियाम्य नियामक भावरूप । अर्थात्-जिन दो पदार्थों में से एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को स्वकीय नियन्त्रण में रखता है दूसरा उसके नियन्त्रण में रहता हो अर्थात् एक नियमन क्रिया का कर्ता हो वह नियामक कहलाता है और जो नियमन क्रिया का कर्म हो वह नियाम्य कहलाता है। उस में नियामक पदार्थ आत्मा होता है और

प्रतिपादनेन ब्रह्मणः सर्वजगदुपादनमपि प्रतिपादितम् । एतदुभयं परस्परविरुद्धम् ? यतो निर्विकारत्वे परिणामित्वं न स्यात् परिणामित्वे च निर्विकारता न स्यादिति कथमिदं परस्परविरुद्धं भगवति संभवतीति

जीवो ज्ञानस्वरूपः ज्ञानं च द्विविधम् धर्मभूतंधर्मीभूतञ्च, तत्र जानामीति ज्ञानं जीवस्य धर्मरूपम्, एतस्यैवान्यत्रवृत्तिज्ञानमिति व्यपदेशः । एतादृशज्ञानस्य धर्मीजीव इतिसधर्मि-ज्ञानरूपः । उभयोर्ज्ञानयोर्धर्मभावेन भेदः । मणिप्रभावत् अत्र निविडतेजोवयवस्य दीपादेर्धर्मित्वं प्रविरलतेजोवयवरूपप्रभाया धर्मत्वम्, तत्रोभययोरेवान्धकारनाशकत्वं साधारणमेव, प्रभाद्रव्यंमणिग्रव्यमनाश्रित्य न तिष्ठति, मणिसत्वासत्वाभ्यां प्रभासत्वासत्वयोर्दर्शनात् । मणिश्चैकत्रैवतिष्ठति प्रभा सर्वत्र प्रसरति परन्तुमणिः प्रभाद्वारेण सर्वं प्रकाशयति स्वयं तु स्वात्मानमेव प्रकाशयति । एवं प्रकृतेऽपि धर्मभूतज्ञानं सर्वं प्रकाशयति धर्मिभूतज्ञानात्मको जीवः स्वात्मानमेव प्रकाशयति । तत्र 'अहमहमिति ज्ञानं जीवघटमहं जानामीति क्रियात्मकं

नियाम्य पदार्थ शरीर कहलाता है। यह पृथक् सिद्ध्यनर्ह नियन्तृ नियाम्यभावरूप शरीरात्मभाव का द्वितीय लक्षण होता है। और शरीरात्मभाव का तीसरालक्षण होता है '**पृथक् सिद्ध्यनर्हशेष-शेषीभावरूप**' अर्थात् जिन दो पदार्थों में से एक दूसरे किसी प्रकार से उत्कर्षादिक विशेषता को प्राप्त करता हो तथा दूसरा उसको किसी न किसी प्रकार से उत्कर्ष प्रभृतिक विशेषता को प्राप्त करने के लिये ही प्रयत्नशील हो, इसमें उत्कर्षादि अतिशय को प्राप्त करनेवाला पदार्थ शेषी कहलाता है और उत्कर्षादि अतिशय को प्राप्त करानेवाला शेष कहलाता है। इसमें अतिशय को प्राप्त करनेवाला चेतन आत्मा है एवं अतिशय प्राप्त कराने के लिये बना हुआ पदार्थ शरीर कहलाता है। यह पृथक् सिद्ध्यनर्ह शेष शेषी भावरूप शरीरात्मभाव का तृतीय लक्षण हुआ ।

'**सर्वमिदमाधेयं प्राप्नोतीत्यादि**' सभी आधेय को व्यापक रूप से प्राप्त करे उसे आत्मा कहते हैं। अर्थात् सभी को व्याप्त करनेवाला जो हो उसे आत्मा कहते हैं अभिप्राय यह है कि जब तक बना रहे तावत् काल पर्यन्त आधेयनियाम्य एवं शेष बन कर रहने वाले द्रव्यों का जो आधार नियामक तथा शेषी बन कर के अपनाता रहता है उसे आत्मा कहते हैं और जो पदार्थ जब तक बना रहे (स्थिर रहे) तावत्काल पर्यन्त आधेय नियाम्य एवं शेष बन कर के दूसरे को छोडने में समर्थ न होता हुआ दूसरों का आश्रय लेकर के ही रहता है, एतादृश द्रव्य शरीर पद का वाच्य कहलाता है अर्थात् एतादृश द्रव्य को शरीर कहते हैं जैसे घटत्वादिक जाति और नीलादिक गुण व्यक्ति तथा द्रव्य को छोडने में असमर्थ होता हुआ व्यक्ति तथा द्रव्य का विशेषण ही बने रहते हैं इसलिये जाति और गुण व्यक्ति तथा द्रव्य

चेत्, सत्यम् नहि स्वरूपतो भगवान् जगदाकारेण परिणामवान् भवति येन तस्य निरवद्यता निराकृता भवेत् किन्तु सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्यैव तस्य ब्रह्मण उपादानता । तत्रापि 'नात्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्चताभ्यः' इत्यादिना विशेषणीभूतसूक्ष्मचेतनस्य नित्यताऽनादिता च 'न

ज्ञानं धर्मरूपम् । अत्र धर्मिभूतज्ञानं सदैकरूपम्, धर्मभूतज्ञानं तु संकोचविकाशशीलम्, सुषुप्तौधर्मज्ञानंसंकोचमासादयति जागरणे विकाशमेति । आत्माऽणुपरिमाणः, धर्मभूतज्ञानं तु असतिप्रतिबन्धके विश्वमात्रं प्रसरति अतएव व्यापकं सत् व्यापकत्वेऽपि संसारदशायां कर्मणः संकोचमाप्नोति जीवः स्वयं न वस्तु प्रकाशकः किन्तु धर्मज्ञानद्वारासर्वप्रकाशकः । धर्मज्ञानं तु स्वरूपं प्रकाशयति तदन्यान् सर्वान् विषयानपि प्रकाशयतीति तदुभययो-वैशिष्ट्यम् । जीवस्य धर्मज्ञानं सर्वत्र प्रसरति, यतोऽपरिच्छिन्नत्वं तस्य स्वभावः स च जैवीयज्ञानस्यापरिच्छिन्नता स्वभावो मोक्षेऽभिव्यज्यते, मोक्षदशायांमुक्तात्मनो धर्मभूतज्ञानम-परिच्छिन्नासंकुचितत्वरूपं विभ्रत्सर्वत्र प्रसरति । अतो मुक्तोजीवः सर्वत्रैवावतिष्ठन् व्यापक इति गीयते, सेयमस्य व्यापकता न स्वतोऽपितु धर्मभूतज्ञानस्यापरिच्छिन्नत्ववदेवस्वभावः,

---

के प्रकार कहे जाते हैं। शरीर जीवात्मा को न छोडता हुआ आत्मा का विशेषण बन कर के ही रहता है अतः शरीर भी प्रकार कहलाता है। यद्यपि जाति और गुण द्रव्य नहीं हैं और शरीर तो द्रव्य है इसलिये द्रव्य का उदाहरण जाति गुण को कहना ठीक नहीं है तथापि आंशिक साधर्म्य लेकर के सादृश्य का कथन किया जाता है। सर्वांश में सादृश्य तो मुखचन्द्रादिक में नहीं रहता है तो चन्द्रवन्मुखम् इत्यादि कथन भी असंगत हो जायगा। आंशिक साधर्म्य तो प्रकृत में भी है। आश्रय को न छोडकर के आश्रय के प्रति विशेषण रूप से ही रहना, यह अंश तो जाति गुण में भी है तथा शरीर रूप द्रव्य में भी है जब तब जाति रहती है तब तक आश्रय को न छोड करके स्वाश्रय में विशेषण रूप से ही रहती है यथा वा नीलादिक गुण जब तक रहता है तब स्वाश्रय द्रव्य में विशेषण रूप से ही रहता है, इसलिये द्रव्य रूप शरीर भी विशेषण आधेय प्रकार शेष कहलाता है और आत्मा आधार अधिकरण शेषी प्रकारी कहलाता है। उपर्युक्त लक्षण ही शरीर का तथा आत्मा का लक्षण है जो सर्वदोष रहित तथा सर्वमान्य है। किन्तु नैयायिकाभिमत शरीर का लक्षण उचित नहीं हैं। इसका विशेष विवेचन अन्यत्र देखें।

जिसतरह जाति गुण व्यक्ति तथा द्रव्य के विशेषण होते हैं उसी तरह शरीर भी जीवात्मा का विशेषण है इसलिये जीवात्मा का जो अपने स्वकीय शरीर के साथ सम्बन्ध है वह इसी प्रकार का

जीवात्मोत्पद्यत कुतः ? अश्रुतेः, तथाऽश्रवणात् । नतादृशी काचिदपि श्रुतिरस्ति यत्र जीवोत्पत्तिः श्रुताभवेत् प्रत्युतः श्रुतिभ्यो नित्यत्वमेवावगम्यते । तथाहि-'अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते' (का.२।२८) 'नजायते म्रियते वा विपश्चित्' (का.२।१८)

रागद्वेषधारणमेव तस्य मलः । सेयं निर्मलता मोक्षे एवाभिव्यज्यते न तु सर्वदा, यतो मोक्षसमये सर्वोऽपिपदार्थो जडचेतनात्मकस्तस्य परमेश्वरस्वरूप एवाभाति, न तत्ररागद्वेषयोः संभव 'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इतिश्रुतेः । पदार्थमात्रस्य भगवत् स्वरूत्वाज्ञानमेवायथार्थज्ञानं तत एव रागद्वेषयोः संभवो भवति । परिच्छेदसंकोच-मलरहितधर्मभूतज्ञानं जीवस्य स्वभावसिद्धम् । एतादृशधर्मभूतज्ञानविशिष्टः सन्नपिजीवात्मा कर्मरूपाविद्याद्वारा वेष्टितो भवति न तु परिकल्पिता विद्ययेति । कर्मैवाविद्या न ततो व्यतिरिक्ता तदुक्तम् 'अविद्याकर्मसंज्ञान्या' इति वचनात् । तत्तत्कर्मानुसारेण जीवस्य धर्मभूतज्ञानं संकुचितं परिच्छिन्नं च भवति । तत्तद्बलाज्जीवो हिरण्यगर्भादा-

---

है, शरीर जब तक रहता है तावत् पर्यन्त जीवात्मा के आश्रय आधार पर ही रहता है जीव के नियन्त्रण में ही रहता है, जीवात्मा को सुख दुःखादि का लाभ प्राप्त कराता रहता है।

जिसतरह शरीरात्मभाव सम्बन्ध शरीर का जीवात्मा के साथ होता है उसी तरह परमात्मा का भी सब चेतनाचेतन पदार्थों के साथ होता है, क्योंकि चेतन अचेतन सभी पदार्थ परमात्मा पर आधारित हैं अर्थात् पदार्थ मात्र का आधार परमात्मा हैं। एवं सब चेतनाचेतन पदार्थ परमेश्वर के नियन्त्रण में रहते हैं और ये सब चेतनाचेतन पदार्थ परमात्मा के लिये लीलारस और भोग रस के प्रापक होते हैं इसलिये चेतनाचेतन पदार्थ ईश्वर के शरीर के है और परमात्मा इन चेतनाचेतन पदार्थों की अन्तरात्मा कहे जाते हैं।

पदार्थ मात्र परमात्मा का शरीर है इसलिये परमात्मा सर्व शरीरक कहे जाते हैं। इसलिये परमात्मा सर्व शरीरक हैं, अतः परमात्मा सर्व शब्द वाच्य होते हैं. जिसतरह देव शरीर वाचक देवादि शब्द से देव शरीरावच्छिन्न जीव देवादि शब्द के वाच्य होते हैं प्रकृत में पदार्थ मात्र परमात्मा का शरीर है तो प्रकृत्यादि वाचक पदों से मुख्य रूप से परमात्मा वाच्य होते हैं। शुद्ध ब्रह्म जगत् के उपादानकारण नहीं हैं किन्तु चिदचिद्विशिष्ट रूप से ब्रह्म जगत् के उपादान कारण हैं और विशेष्य रूप से निर्विकार हैं। जिस तरह बाल शरीर विशिष्ट रूप से जीवात्मा युवक शरीर विशिष्ट का उपादान होता हुआ विशेष्य रूप से निर्विकार रहता है। उसी प्रकार प्रकृत में समझना चाहिये। अर्थात् परमात्मा

'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ' (श्वे.१।९) 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्' (श्वे.६।१३) इत्याद्यनेकश्रुतिभ्य आत्मनोनित्यत्वमेवावगम्यते। तस्मान्नात्मन उत्पत्तिमत्वम्' (आनन्दभाष्यम् २।३। १९) इत्यादिरूपेण भाष्येप्रपञ्चितत्वात्। अन्यथा जीवे कृतप्रणाशाकृताभ्यागमदोषप्रसङ्गात्। यथा परमेश्वरे वैषम्यनैर्घृण्यदोष

रभ्यस्तम्भपर्यन्तविविधदेहेषु प्रविशति, अयं च देहो मनुष्यदेवस्थावरादिभेदेनानेकप्रकारकः। तत्र सर्वत्रापि अवान्तरभेदेनानेकप्रकारकः। एतेषु देहेष्वनेकविधेषु जीवस्यानुप्रवेशो भवति, तत्तद्देहेषु यथा संभवधर्मभूतज्ञानस्यविकाशमाप्नोति। तदप्युक्तम् 'अप्राणिमत्सुस्वल्पासास्थावरेषु ततोधिका' इति। अप्राणिमत्सुजीर्णपाषाणशुष्ककाष्ठादिषु स्वल्पा सा ज्ञानविकाशोऽल्पीयानेव भवति, तदपेक्षया स्थावरेषु जीवितवृक्षादौततोऽधिको ज्ञान विकाशः, तदपेक्षया द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियादावधिको ज्ञानविकाशः। मनुष्यादारभ्य हिरण्यगर्भेषु पूर्वपूर्वापेक्षयाभूयान् ज्ञानविकाशो जायते। अर्थात् शरीरस्य तारतम्येन ज्ञानेपि यथाक्रमं न्यूनाधिकभावो जायते, कर्मानुसारेण जायमानं ज्ञानतारतम्यं देहविशेषद्वारेणैव संपद्यते न तु साक्षात्कर्मणां यतः कर्मसमुत्पाद्य देहं तादृशदेहद्वारेण ज्ञानस्य

इस जगत् प्रपञ्च के चिदचिद्विशिष्ट रूप से उपादान कारण होते हैं उस में विशेषणांश में ही परिणामित्व है और विशेष्य अंश में निर्विकारत्व ही रहता है। इस प्रकार से ब्रह्म में जगदुपादानत्व और निर्विकारत्व में किसी प्रकार का विरोध नहीं होता है क्योंकि उपादानत्व विशेषणांश में है और निर्विकारता विशेष्यांश में रहती है। इसलिये किसी भी प्रकार का विरोध नहीं होता है यह मूल का अभिप्राय है।

इससे पूर्व प्रकरण में देव मनुष्यादि दृष्टान्त के द्वारा (अर्थात्-जिस तरह देवशरीर वाचक देवशब्द तथा मनुष्यादि शरीरवाचक मनुष्यादिक शब्द, देव शरीरावच्छिन्न तथा मनुष्यादि शरीरावच्छिन्न चेतन जीव का वाचक होता है तो इस दृष्टान्त के द्वारा) सर्व शब्द वाच्यता परमात्मा में है, इस बात को युक्ति तथा तर्क द्वारा व्यवस्थित किया गया है। परन्तु परमात्मा में प्रकृति पुरुषादि सर्वपदवाच्यत्व केवल तर्क से ही सिद्ध होता है, ऐसा नहीं श्रुति स्मृति पुराणादि वचन रूप शब्द प्रमाणों से भी सिद्ध होता है इस बात को बतलाने के लिये श्रुति प्रभृति प्रमाण वचनों का कथन करते हैं-'**अमुमेवार्थं श्रुति स्मृति पुराणादीत्यादि**' इस विषय को अर्थात् जिस तरह परमेश्वर ईश्वरादि पद का वाच्य है उसी तरह प्रकृति पुरुषादि सर्व शब्दों से वाच्य होते हैं, इस विषय को श्रुति स्मृति और पुराण वचन भी पुष्ट करते हैं, अर्थात् केवल तर्क युक्तियों से ही ईश्वर में सर्व पद वाच्यता की सिद्धि होती है ऐसा नहीं

श्च स्यात्। तथा परमेश्वरविशेषणीभूतप्रकृतेरपि नित्यताऽनादिता 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येकोजुषमाणोनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः' इत्यादि श्रुत्याप्रकृतिपुरुषयोरजत्वं ख्यापितम्। 'अस्मान्मायी सृजते' मायां तु प्रकृतिं विद्या-

संकोचविकाशं करोति। कर्मसमुत्पादितदेहेषु प्रवेशानन्तरं जीवः तत्तद्देहादावहं ममेदं शरीरं मम देहः काणः कुब्जः स्थूलः कृशो वेत्यभिमानंकरोति। एतादृशाभिमानकारणात्, अनुकूलवस्तु प्राप्तौ सुखं प्रतिकूलवस्तु प्राप्तौ तु दुःखं मन्यते। उपयुक्तदेहाभिमानेन जीवोऽनेकविधंपुण्यं पापं वा कर्मबीजांकुरन्यायेनानादि। ततश्च तादृशकर्मानुसारेण तत्तद्देहेषु सुखं दुःखं सुखदुःखयोरनुभवंकरोति, सोयं सुखाद्युपभोग एवास्य जीवस्य संसारः। एतस्मिन् संसारचक्रे ऽनादिकालादेव बद्धो जीवः प्रवहतिएतादृशसंसारप्रवाहस्य मूलकारणं स्वकर्मैव 'विकारश्चरामो दयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्चनैति। प्रकारेविकारस्तथाचित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म' (श्रौतसिद्धान्तविन्दुः)

किन्तु श्रुत्यादि वचनों से भी यह विषय सिद्ध होता है। कौन से वे श्रुत्यादिक वचन हैं जिन के द्वारा यथोक्त अर्थ को सिद्ध करते हैं? एसादृश शङ्का का निराकरण करने के लिये कहते है-'**तथाहि**' इत्यादि, श्रुति वचन को बतलाते हैं-'**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**' इत्यादि, इसके पूर्व में कहा कि ब्रह्म के सर्व शब्द वाच्यत्व को प्रमाण वचन से स्थिर करते हुए कहा कि श्रुति समुदाय से विदित ज्ञात होता है कि ब्रह्म परमात्मा सर्व शब्दों का वाच्य है। इसमें प्रथम वचन यह है-'**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**' सभी वेद वचन जिस ज्ञेय तथा प्राप्य ब्रह्म का प्रतिपादन कथन करते हैं अर्थात् वेद वचनों से ब्रह्म प्रतिपादित होते हैं। '**सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति**' अर्थात् सभी वेद गण जिस ब्रह्म में एक हो जाते हैं, जिस तरह एक वेद ब्रह्म का प्रतिपादन करता है उसी तरह दूसरे तीसरे सभी वेद ब्रह्म का ही प्रतिपादन कहते हैं इसलिये प्राप्य ब्रह्म में सभी वेद एक मत को प्राप्त करते हैं, जैसे घटरूप कार्य करने में दण्ड चक्र चीवर कुलाल सलिल मृत्तिकाओं में मतैक्य होता है, एक कार्य कारित्व सम्बन्ध से, उसी तरह प्रकृत में सर्व वेद शब्द प्राप्य ब्रह्म का बोधन करने में मतैक्य को प्राप्त करके एक कार्य कारित्व सम्बन्ध से एकीभूत होते हैं। अर्थात् ब्रह्म बोधकता अंश में किसी को किसी के साथ विरोध नहीं है किन्तु मतैक्य होने से सब एक हो जाते हैं। '**एको देवो बहुधा संनिविष्टः**' स्वरूप से परमात्मा एक है परन्तु वही अनेक रूप से भी विराजमान होते हैं। इसलिये परमात्मा सर्व शरीरक हो कर के प्रकाररूप से सब को व्याप्त करते हैं इस प्रकार वाचक सब शब्दों से वाच्य होते हैं। इस तरह इस वाक्य से परमात्मा को सर्व शब्द वाच्य होने में सर्वान्तर्यामित्व कारण

न्मायिनं तु महेश्वरम्' इत्यादिना प्रकृतिरेवस्वरूपेण विकारात्मिका इति दर्शयिष्यति । 'गोरनाद्यन्तवती सा जनित्री ।' 'प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि' 'भूमिरापोऽनलो वायुः खंमनोबुद्धिरेव च । अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा । अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

इत्याचार्योक्तेः । तादृशं कर्मैव निवर्त्यम् । एतस्य कर्मणो विनाश आवश्यकः कर्मणि विनष्टे तन्मूलकसंसारस्य सुतरामेव विनाशात्, कारणाभावस्यकार्याभावसाधकत्वस्यान्यत्र व्यवस्थापनात्, वह्न्यभावे धूमाभाववत्, यथा वा कपालाभावे घटाभाववत् स्तंभाभावे गृहावस्थानाभाववदिति । संसारविमोक्ष एव मोक्षरूपः परमपुरुषार्थः, एतदर्थमेव जीवस्यप्रयासः फलवानिव भवतीति । जीवस्यै तादृशसंसारविमोक्षो भगवतः शरणागत्यैव भवति नान्यथा शरणागतिरेव प्रपत्तिः 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं ममेति भगवतो रामस्य वचनात् । सेयं प्रपत्तिः अङ्गप्रपत्तिः स्वतन्त्रप्रपत्तिरितिभेदेन द्विधा । तत्र यो भक्तो भक्तियोगद्वाराऽराध्यं श्रीराममवाप्तुमिच्छति तत्राङ्गप्रपत्तिः । अर्थात् भक्त्या भगवन्तमाराधयतीतियावत् । सेयं भक्तिर्नवधा भिद्यतेऽ-

---

रूप से कथन किया गया है। '**सहै वसन्तं न विजानन्ति देवाः**' देवमनुष्यतिर्यगादि का अन्तर्यामी बन कर एक साथ में (एक ही शरीर में) रहने वाले परमात्मा को इन्द्रियादिक देव गण नहीं जान सकते हैं '**न संदृशेतिष्ठतिरूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसासह**' '**न यत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति**' इत्यादि श्रुतियों में बतलाया गया है कि परमात्मा-प्रत्यक्षादि प्रमाण से नहीं जाने जाते हैं, किन्तु परमात्मा धर्माधर्म की तरह केवल शब्द प्रमाण से ही जाने जाते हैं। इस वाक्य से परमात्मा में अन्तर्यामित्व का कथन किया गाया है। पुराणों के वचनों से भी परमात्मा में सर्व शब्द वाच्यत्व सिद्ध होता है। '**नताः स्म सर्व वचसां प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती**' [तं परमात्मानं वयं नताः प्रणताः स्मोभवामः, यत्र परमात्मनि सर्व वचनानां शाश्वती स्वाभाविकी प्रतिष्ठा स्थितिर्भवति यदा खलु सर्वोपि शब्दो वस्तुभूतं परमात्मानमेववाच्यतया स्वीकरोति तदेव प्रतिष्ठा स्थितिरिति] उस परमतत्व परमात्मा को हम लोग नमस्कार करते हैं जिस परमतत्व में सभी शब्दों की शाश्वत स्वाभाविक प्रतिष्ठा होती है, अर्थात् सभी शब्द स्वकीय वाच्यार्थ में प्रतिष्ठित होते हैं, परमात्मा सर्वदा सर्व शब्दों का वाच्यार्थ है। '**कार्याणांकारणं पूर्व वचसां वाच्यमुत्तमम्**' अयमर्थः परमेश्वर कार्यों का जायमान सभी पदार्थ से पूर्व है अर्थात् कारण है, जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन सब का मूलकारण है। इसलिये वचनों का सभी शब्दों का उत्तर वाच्यार्थ है। यद्यपि घट

जीवभूतां महाबाहो ययेदंधार्यते जगत् 'प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य' 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते' इत्यादि । एतेन प्रकृतेरपि परमेश्वरशरीरत्वंदर्शयति इति प्रकृतिशब्दोऽपि प्रकृतेरात्मभूतेश्वरवाचकः । एवं पुरुषशब्दोऽपि पुरुषात्मभूतस्य पुरुषप्रकारिरूपस्येश्वरस्य वाचकः ।

धिकारिभेदात्, एतस्या अवान्तरभेदोभजनप्रकारश्च यथा सम्प्रदायं बोद्धव्यो ग्रन्थगौरवभयानेह प्रतन्यते । यश्च साधकोऽनपेक्ष्यैव भक्तिं भगवन्तं प्राप्तुमिच्छति, तत्र स्वतन्त्रप्रपत्तिः । प्रपत्तिशब्दपर्यायः शरणागतिः । इयं च प्रपत्तिरत्यावश्यकी, यतस्तत्वे एव परमपुरुषार्थ प्राप्तिस्तदभावेतदभावादित्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रपत्तिकारणताया व्यवस्थापनादिति यद्यपिजीवोहि इत्यारभ्य संसारविनाशोभगवत्प्रपत्यैव भवति न तु ज्ञानादिनेती त्यन्तग्रन्थस्यभावः । मुक्तौहेतुस्तु भक्त्यपरपर्यायं तैलधारावदविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तञ्चसाधनदीपिकायामाचार्यवर्यैर्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यैः 'रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात् ।' इति । ऊचुश्च तथैव भगवन्तः श्रीदेवानन्दाचार्यचरणा अपि 'त्वदीयास्मृतिस्तारिकामृत्युसिन्धोस्तथाविस्मृति पातिकातत्र

पटादि शब्दों का वाच्य तो कंबुग्रीवादिमान् पदार्थ होते हैं परन्तु परमात्मा सब की अन्तरात्मा हैं अतः प्रत्येक पद का मुख्य वाच्य तो परमात्मा ही होते हैं और पदोंका स्वकीय अर्थ तो गौणवाच्य हैं, अन्यथा उत्तमपद का कथन निरर्थक हो जायगा। '**वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः**' सभी वेदों से कर्म उपासन ज्ञान काण्डादिकों का जो जो वेद है उन सब के द्वारा मैं ईश्वर ही वेद्य हूँ, जानने के योग्य हू। इस तरह गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने इसका स्वयं प्रतिपादन किया है। पूर्वोक्त श्रुति तथा पुराण स्मृतियों के वचनों से सिद्ध होता है कि सभी शब्द शरीर युक्त जो जीवात्मा तादृश जीवात्मा से विशिष्ट होने वाले अन्तर्यामी परमात्मा के वाचक होते हैं प्रत्येक सब्द, इसलिये सभी शब्दों का उत्तम वाच्य ईश्वर ही हते हैं। अतएव उपनिषद् में इस प्रकार परमेश्वर के संकल्प का वर्णन किया गया है कि '**हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविस्य नामरूपे व्याकरवाणि**' हम परमात्मा इस जीवात्मा को साथ में लेकर के पृथिवी जल तथा अग्नि इन तत्वत्रय में प्रविष्ट होकर के नामरूपों का विभाग करेंगे, पृथिवी जल और अग्नि प्रभृतिक जड पदार्थों से नियमित कार्य समुदाय में स्थिर रह सकेंगे यदि जीवात्मा इन का धारक न बने, जीब इन सब कार्य वर्ग का धारण करने में तभी समर्थ हो सकता है जब जीव स्वयं सर्वधारक परमात्मा से धृत रहे। अत एव परमात्मा जीव का अन्तर्यामी बन कर के जीवात्मा को अपने साथ में लेकर के पृथिव्यादि तत्वत्रयों में प्रविष्ट हो कर के नाम रूपों

एवमेव तत् तद्विकाराणामपि परमेश्वर एवात्मा । तदपि कथितम् 'व्यक्तंविष्णुस्तथाऽव्यक्तं पुरुषकालएव चेत्यादि ततश्चैतादृशपरमात्मवि- शेषणीभूतप्रकृत्यात्मकविशेषणे विकारो भवति स चांशः परिणमते न

चैव । परं योगिनां हार्दमालम्बनं त्वां श्रये राघवं सच्चिदानन्दरूपम् । '(गीतानन्दभाष्यम् २।१२) इत्याचार्योक्तेः ।

जीवः संसारान्निवृत्तोभवतुतदर्थम् इत्यादि, जीवो हि अनादिकर्मबलेनादिकालात्संसारे प्रवहतीति विचार्य्यानादिकर्मनिवृत्त्यासंसारनिवृत्तिर्जायताम् ततः शास्त्रप्रथमतः, देहेन्द्रियमनोबुद्धिभ्योभिन्नात्मस्वरूपमुपदिशति, तदभावेदेहाद्यभिन्नजीवस्वरूपज्ञानव- तामधिकारिणां पारलौकिकक्रियासुमोक्षे च प्रवृत्तिरेव न स्यात् । तस्माद्देहाद्यतिरिक्त मात्मस्वरूपमुपदिशति शास्त्रम् ।

ननु कथमात्मनो देहातिरिक्तत्वं संभवति प्रत्यक्षादिविरोधात् । तथाहि 'अहं गच्छामि, स्थूलोहं कृशोहमिहैवास्मि सदने जानानः' इत्यादिप्रतीत्यादेहादिधर्मसामानाधिकरण्येन

के विभाग करने का सङ्कल्प करते हैं । अतएव घटादि जड पदार्थों का वाचक घट पटादि शब्द, घटादि जड पदार्थों को धारण करनेवाले तत्तत् जीव [illegible] बतलाते हुए जीव का अन्तर्यामी परमेश्वर का वाचक बने इसलिये परमात्मा ने जीव को लेकर उन घटादि जड पदार्थों में प्रविष्ट होकर के नामरूप के विभाग करने का संकल्प किया । अत एव एतादृश संकल्प करने का प्रयास भी सफल होता है । इस छान्दोग्यीय उपनिषद् वचनों से सिद्ध होता है कि परमेश्वर सर्व शब्द वाच्य होते हैं । अतः परमेश्वर में सर्वपद वाच्यता श्रुति सिद्ध है । मनुस्मृति में भी कहा है-

'प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणीयसाम् । रुक्माभंस्वप्नधीगम्यं विद्यात्तु पुरुषं परम् ॥
एनमेके बदत्यग्निं मरुतोऽन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शास्वतम् ॥'

परमेश्वर सब जडाजड पदार्थों के अन्दर में प्रवेश कर के तथा अन्तर्यामी के रूप से उन वस्तुओं में अवस्थित होकर के सभी के उपर में शासन करते हैं अर्थात् सब के शासक बनते हैं ! [**एतस्यैवाक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावा पृथिवी विधृतेतिष्ठत**' इसी अक्षर महापुरुष के प्रशासन से जड चेतन सब पदार्थ अवस्थित रहते हैं] और ये परमात्मा अति सूक्ष्म होने के कारण से अणु से भी अणु है । अर्थात् जीवत्मा '**एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य**' '**वालाग्रशतभागस्य**' इत्यादि श्रुति से सिद्ध होता है कि सूक्ष्म है, यह जीवत्मा सभी जड पदार्थों के अन्दर में प्रविष्ट होकर के रहता है इसलिये जीव अचेतन पदार्थ की अपेक्षा से सूक्ष्म कहे जाते हैं महत् में प्रविष्ट होनेवाला तदपेक्षया

त विशेष्यभूत ईश्वरे परिणामो भवति 'रामस्य परिणामोहि चिदचिद्द्वारको जगत्' (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ६।४४) 'स्वरूपे च स्वाभावे च विकारः प्रकृतेः खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतो बुधैः । ब्रह्मण-

---

चैतन्यस्यप्रतीतिदर्शनात्, पृथिव्यादिसंघातस्य एव जीवः । न तु तदतिरिक्तो जीवः । तदतिरिक्तत्वे देहादिभ्यो निष्कृष्टोजीवो दृश्येत, न तु दृश्यते तस्मान्न देहाद्यतिरिक्तो नवाऽनुमानेन तदतिरिक्तो भवति, अव्यभिचरितलिङ्गाभावात् नवा प्रमाणान्तरेण तदभावात् शब्दप्रमाण- स्यान्योन्याश्रयग्रस्तत्वेनाप्रामाण्यात् । न च शरीरस्य चैतन्ये प्रत्येकंपृथिव्यादौ चेतनाया अभावात् पृथिव्यादिसमुदायात्मकदेहे कथं चैतन्यमिति वाच्यम् ? प्रत्येके चेतनाया असद्भावे तदीयविलक्षणसंघातात्मकशरीरादावपिचेचना सद्भावस्य संभवात्, यथाप्रत्येकमोदना- दौमदशक्तेरभावेपिसमुदितौदनपिष्टकादीनां संघातेमदशक्तेर्दर्शनात्, यथावा प्रत्येकवनस्यव- नस्पत्यादौ विलक्षणगुणाभावेपि वनस्पतिसमुदायस्यसंघाते विलक्षणगुणप्रादुर्भावस्य दर्शनात् 'वयस्थानागरासंगादंगानां हन्ति वेदनाम्,, तथैव प्रत्येकभूते चेतनाया अभावेपिभूत-

---

सूक्ष्म होता है, और उन जीवों में भी व्यापक हो कर के रहने वाले परमेश्वर उन जीवों से भी सूक्ष्म हैं परमेश्वर से बढकर अन्य कोई सूक्ष्म नहीं है इसलिये परमात्मा परम सूक्ष्म कहलाते हैं । और परमात्मा रुक्म सुवर्ण सदृश हैं अर्थात् दिव्य मंगल शरीर से युक्त हैं वह परमात्मा परमभोग्य हैं । अत एव भक्त को सुवर्ण वर्ण सदृश वर्ण वाले देखने में आते हैं, और वह परमात्मा प्रताप संपन्न हैं इसलिये शत्रुओं के जो ईश्वर के शरीर तथा कार्य में ईर्ष्या असूया करने वाले हैं उनको मध्याह्न सूर्य के समान अति असह्य देखने में आते हैं । और वह परम पुरुष स्वप्नधीगम्य हैं, अर्थात् स्वप्नज्ञान सदृश ज्ञान से जाने जाते हैं ! स्वप्न कालिक ज्ञान प्रायः प्रत्यक्ष ज्ञान की तरह विस्पष्ट होता है एतादृश स्वप्न ज्ञान के सदृश जो ज्ञान है वह अत्यन्त विशद होकर के प्रत्यक्ष ज्ञान के समान आकार वाला होता है, एतादृश ज्ञान से परमात्मा प्राप्त होते हैं । अथवा स्वाप्निक ज्ञान से परमात्मा प्राप्त हैं, भक्तों की भक्ति से सन्तुष्ट होकर के परमात्मा स्वप्न में भक्तों को स्वकीय अमोघ दर्शन देते हैं ऐसा अनेकों दृष्टान्त लोक सिद्ध है । एतादृश परमात्मा को जानना चाहिये । इस श्लोक में कहा गया कि परम पुरुष सब पदार्थों के अन्दर में अन्तर्यामी बनकर के विद्यमान रहते हैं इसलिये सर्व शब्दों के वाच्य होते हैं यह परमात्मा सर्वान्तर्यामी हैं अतः सर्व शब्द वाच्य होते हैं ।

इस परमात्मा को कोई कोई वेद वाक्य अग्नि शब्द से कथन करते हैं, कोई वेद वाक्य तो मरुत् शब्द से कथन कहते है और एतदन्य कोई वाक्य प्रजापति ब्रह्मा अथवा दक्ष प्रभृति शब्द से

स्तुविकारो यन्नस्वरूपस्वभीवयोः'(परिणामविमर्शः ११।१२) इत्याचार्यप्रवरोक्तेः । तथा जीवे लक्षणविशेषणवति परमात्मविशेषणांशे जीवे दुःखादयो विकारा भवन्ति न तु विशेष्ये तस्मिन् परमेश्वरे । यथा

समुदायात्मकदेहेन्द्रियादौ चैतन्यसंभवेनशरीरादिकमेवात्मा न ततो व्यतिरिक्तो जीवः ।अन्यथा शरीरान्निष्कृष्टो जीवो दृश्येत न तुदृश्यते ततो न जीवो देहाद्यतिरिक्त इति प्रश्नः ।

यदि देहादिकमहं पदगम्यं न देहव्यतिरिक्तो जीवस्तदा 'योहं बाल्ये पितरावन्वभूवं स एव स्थविरे प्रणप्तृननुभवामि' इतिप्रतिसन्धानं न स्यात् बालशरीरवृद्धशरीरयोर्भेदात् अन्यदृष्टस्यान्येनस्मरणासंभवात् ।तस्माद् येषु व्यावर्तमानेषु यदनुवर्तते इति तत्तेभ्यो भिन्नमिति नियमः शरीरेषु व्यावर्तमानेष्वपि अहं बुद्धिः सर्वत्रानुवर्तते इतिदेहाद्भिन्नोऽहंपदगम्यो जीवः । यथा कुसुमेषु व्यावर्तमानेष्वपि सूत्रबुद्धिः सर्वत्रानुवर्तते इति कुसुमसूत्रयोर्भेदवत् । न वा अहं पदगम्यत्वमिन्द्रियाणाम्, इन्द्रियविनाशेऽपि 'योहमद्राक्षं स एवेदानीं स्पृशामीति प्रत्ययदर्शनात् । किंच शरीरादीनामात्मत्वेपारलौकिकफलक्रियारूपयागादौ प्रेक्षावतां प्रवृत्तिरेव न स्यात् । यतः शरीरविनाशस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वेन शरीरोत्तरकालिकफलजनककर्मणिप्रवृत्तिर्न स्यात् । कृतप्रणाशाकृताभ्यागमदोषश्चापद्येत । तस्मान्न शरीरादिरूपो

कथन करते हैं, दूसरे वेद वाक्य इन्द्र महेन्द्रादि शब्द से कथन करते हैं और कोई वेद वाक्य तो प्राण पद प्रतिपाद्य कहते हैं और उपिषत् वेद वाक्य तो इस परमात्मा को शास्वत ब्रह्म कहते हैं। इस कथन का अग्नि मरुत् प्राणादिक में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं क्योंकि परमात्मा सब के शासक हैं- **'भयादस्याग्निस्तपतिभयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्चवायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः'** इन श्रुतियों से सिद्ध होता है कि परमात्मा सब के शासक हैं। अतः यह परमात्मा अग्न्यादिक सब में प्रविष्ट होकर अन्तरात्मा के रूप में सर्वत्र विद्यमान रहते हैं अतः अग्नि प्रभृति देवों का वाचक जो शब्द हैं वे परमात्मा के वाचक होते हैं, जिस तरह परमात्मा वाचक ईश्वर ब्रह्म प्रभृतिक शब्द परमात्मा के वाचक होते हैं। इस प्रकार से मनुस्मृति में कहा कि परमात्मा सर्व शब्द से वाच्य होते हैं। केवल मन्वादि स्मृतियों से हो उपर्युक्त अर्थ सिद्ध नहीं होता है किन्तु स्मृत्यन्तरीय वचन से भी सिद्ध होता है कि परमात्मा सर्व शब्द वाच्य हैं तथाहि-**'ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणान् सहुताशनान् । सर्वभूतान्तरात्मनं विष्णुमेव यजन्ति" अयमर्थात् अग्निष्वात्तादि'** पितृगण इन्द्रवरुणादिदेव गण तथा अग्नि का एवं ब्राह्मणका पूजन करते हैं अर्थात् स्वाहाकार प्रयोग सहित संस्कृत अग्नि में प्रदेय द्रव्यों के आहूति द्वारा देवता का आराधन करते हैं तथा केवल सुवर्ण अन्न

जीवत्येव देवदत्ते तद्विशेषणाशिखानाशेशिखी विनष्ट इति प्रतीतौ विशेषणशिखायामेव नाशान्वयो न तु विशेष्येदेवदत्ते, अतः प्रत्यक्षवाधात् । प्रकत श्रुतिस्मृतिविरोधात् तत्तद्विशेषणांशे एव परिणामादयो न तु विशेष्ये परमेश्वरे इति न श्रुतिस्मृत्यादेः परस्परं विराधः ।

जीवः किन्तु शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिविषयेभ्योविभिन्नः परलोकयात्राविर्वाहको जीवः मोक्षार्थं कृतप्रयत्नश्चेत्येवं क्रमेण देहातिरिक्तं जीवं गमयति 'अग्निहोत्रंजुहूयात् स्वर्गकामः' 'आत्मानमुपासीत' इत्यादिस्वर्गमोक्षविधायकं शास्त्रम् । यदि शरीराद्यतिरिक्तो जीवो न भवेत् तदा कोही स्वस्यात्मा यागादिक्रियाजनककर्मणि मोक्षाय चोपासनादावधिकृतः स्यात्, तस्मादस्ति शरीरातिरिक्तो जीव इतिप्रथमतोऽवबोधयति शास्त्रम् ।

यथा देवादिशरीररहितोजीव एवं सर्वोऽपि जीवो ज्ञानाकारो यत्र कुत्रापि देहे भवतु तत्स्वरूपं तु ज्ञानरूपमेव, यत्र कुत्रापि देहे वसेत् सर्वत्र देहगतधर्मरहितो ज्ञान स्वरूप एव भवति । सर्वोऽपि जीवो ज्ञानाकारः शरीरगतभेदरहितश्च । अनेन प्रकारेण जीपस्वरूपमुपदिशत्, शास्त्रसर्वजीवानां समानतामप्युपदिशति । एतादृशोपदिष्टो जीवः पारलौकिककर्मणि प्रविष्टो भवति, यथाशास्त्रं कर्मकृत्वा शुभाशुभफलमपि प्राप्नोतीति ।

वस्त्रादि प्रदान द्वारा ब्राह्मणों का पूजन करते हैं, वे पुरुष सर्व जीवों की अन्तरात्मा जो भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम अयोध्याधिपति श्रीरामजी का ही यजन पूजन करते हैं, क्योंकि भगवान् श्री रामचन्द्र सर्वभूतों की अन्तरात्मा होने के कारण उन अग्न्यादि देव गण पितृ गण तथा ब्राह्मण आदि की भी अन्तरात्मा हैं। यजन पूजनादिक करने के समय मे पितृगण देवगण प्रभृतिकों के वाचक जो जो अग्न्यादिक शब्द वोले जाते है वे शब्द पितृगण प्रभतिक अर्थको बतलाते हुए पितृगणादिक की अन्तरात्मा भगवान् श्री राम जी को बतलाकर के उन में पर्यवसित होते है। इसलिये पितृ यजन ब्राह्मणादिक का जो पूजन है वह भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का ही यजन पूजन हो जाता है । इस में कारण निर्देश पूर्वक श्रीरामजी भगवान् को पितृ प्रभृति शब्दों का वाच्य कहा गया है। उपर्युक्त इन प्रमणों से सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीरामजी सर्व शब्द के वाच्य है। [illegible] विषय को मूलकार अपने शब्दों से बतलाते है-**'इत्यादिना सर्वशब्दवाच्यत्वं परमेश्वरस्यैव'** इत्यादि उपर्युक्त श्रुति स्मृति पुराणादिक प्रामाण के द्वारा सिद्ध किया जाता [illegible] जो कोई भी शब्द है उन शब्दों के द्वारा परमेश्वर श्रीरामजी ही वाच्य होते हैं।

ॐ मुख्यवृत्याब्रह्मणिकार्यकारणत्वयोः समर्थनम् ॐ

अयंभावः-यदाखलुनामरूपविभागंविहाय प्रकृतिपुरुषौ सूक्ष्मदशामापन्नौ भवतस्तादृशसूक्ष्मप्रकृतिपुरुषशरीरकं ब्रह्म तदाकारणाव-

आत्मनः शरीरभिन्नतां समानाकारतां चोपदिश्य जीवो भगवतः शेषभूतः, अर्थात् भगवदर्थं भगवन्तं प्रसादयितुं भगवतः सुखोल्लासायैवयथोक्तस्वरूपं प्राप्तवान्, इतिभगवच्छेषत्वमेव जीवस्यसारतमो धर्मः। एवं जीवात्मा भगवति शेषिण्येवाश्रितस्तन्नियाम्यश्च, भगवांश्च जीवानामन्तर्यामी, अतो जीवो ज्ञानाकारो भगवच्छेषरूपश्चाभवत् भगवदात्मकतां प्राप्नोति। अनेन प्रकारेण यो भक्तः स्वं भगवच्छेषंभगवदात्मकतां जानाति तस्य परमेश्वरानुभवाय तदीयकैंकर्याय बलवतीच्छा जायते। एतादृशभक्तस्यकल्याणाय भगवत्स्वरूपं तथा भगवत्प्राप्त्यर्थं साधनमप्युपदिशति शास्त्रम्, श्रीपरमेशो नित्यनिर्दोषो नतं परमेश्वरं कोऽपि दोषः कदापि संस्पृशति 'अपहतपाप्मेतिश्रुतेः। स भगवान् सर्वदा मङ्गलमयविग्रहः सर्वदोषापहारकः, मङ्गलमयविग्रहवत्वात् सकलेतरविलक्षणपरमेश्वरे अनन्ताः कल्याणगुणाः

इसके पूर्व में सर्व श्रुतियों का समन्वय किस प्रकार होता है, इस बात पर विचार किया गया है, इसके आगे उपाय क्या है? उपाय से निवर्त्य क्या है? इस विषय पर विचार करने के लिये उपक्रम करते हैं। इस विषय में अद्वैतवादी लोग कहते हैं कि-'**तत्त्वमसि**' '**अहं ब्रह्मास्मि**' इत्यादि वाक्य जनित जीव ब्रह्म का जो ऐक्य ज्ञान है वही मोक्ष का उपाय है-'**तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' '**तरति शोकमात्मवित्**' इन श्रुतियों से यह सिद्ध होता है। और इन ज्ञान से निवर्त्य होता है, संसार तो मिथ्या है, जिस तरह शुक्ति के अज्ञान से जाय मान रजत शुक्ति ज्ञान से बाधित हो जाने से मिथ्या होता है, यहां शुक्तिरूपाधिष्ठान ज्ञान बाधक होता है, मिथ्या भूत रजत बाध्य होता है। इसी तरह प्रकृत में बाधक है ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान तो मोक्ष का उपाय है तादृश ऐक्य ज्ञान और निवर्त्य है मिथ्या संसार। कोई विद्वान् तो कहते हैं कि भगवत् प्रपत्ति मोक्ष का साधन है और कर्म संज्ञक अविद्या है निवर्त्य संसार का कारण जो कर्म वही निवर्त्य है। इस तरह उपाय और निवर्त्य स्वरूप के उपर विचार करने के लिये आचार्य उपक्रम करते हैं-'**यद्यपि जीवो हि स्वभावतः**' इत्यादि। यद्यपि जीवात्मा स्वभाव से ही परिच्छेद संकोच राग द्वेषादि मलरहित ज्ञान स्वरूप हैं-तथापि कर्म रूप जो अविद्या उससे आच्छादित स्वरूपवाला होकर के तादृश कर्म के अनुकूल धर्म ज्ञान के संकोच को प्राप्त करके हिरण्यगर्भ से लेकर के तृण वनस्पति पर्यन्त अनेक विचित्र शरीरों में प्रवेश कर के तादृश शरीरोचित ज्ञान प्रसर ज्ञान के तारतम्यरूप से ज्ञान विकाश को प्राप्त कर के

स्थमिति गीयते। एतादृशब्रह्मरूपापत्तिरेव जगतः प्रलयावस्थेति। अथ यदा नामरूपविभागविभक्तं चिदचिद्वस्तु भवतस्तादृशस्थूलचिदचिद्वस्तुशरीरकं ब्रह्म कार्यावस्थमिति च कथ्यते। ब्रह्मण एतादृशभावे

सन्ति, ते च गुणानिरतिशयाः नित्याः भक्तमात्रानुभवगोचराः। परमेश्वरस्वरूपं सर्वदा चेतनाचेतनपदार्थस्वकीयसंकल्पानुसारेण विविधकर्मणि सर्वदा प्रवर्तयति। स भगवान् सर्वपदार्थस्य धारयिता नियामकः सर्वशेषी अन्तरात्मा च। एतादृशभगवत्स्वरूपप्राप्तिरेव परमपुरूषार्थरूपो मोक्षः। तादृशभगवत् स्वरूपप्राप्तये परमेश्वरोपासनमेव साधनम्। इति शास्त्रवर्णितयोगसहितमुपासनं विधेयम्। उपासनं च प्रत्यक्षसमानाकारकंतैलधारावदविच्छिन्नप्रेमयुक्तं ध्यानमेव तदेतत् 'सकृत्प्रत्ययं कुर्याच्छब्दार्थस्य कृतत्वात् प्रयाजादिवत् (बो.वृ) इत्यादिना पूर्वपक्षमुपन्यस्य समाहितम् ' सिद्धन्तूपासनशब्दात्' (बो.वृ.) इति वेदनमेवोपासनमित्युक्तं' वेदनमुपासनंस्यात्तद्विषये श्रवणात्' (बो.वृ.) इति। उपासनन्तु ध्रुवानुस्मृतिरूपमित्यभिहितम् 'उपासनं स्याद् ध्रुवानुस्मृतिर्दर्शनान्निर्वचनाच्च' (बो.वृ.) इति। साच ध्रुवानुस्मृतिः साधनसप्तकादेवेतीत्युदीरितम् 'तल्लब्धिर्विवेकविमोका-

तत्तत् शरीरों में '**अहम्ममेदं शरीरम्**' एतादृश अभिमान के अनुकूल शुभाशुभ इष्टानिष्ट विधि प्रतिषेध कर्म को संपादन करता हुआ तादृश कर्म के अनुकूल सुख दुःखादि का अनुभवरूप संसार प्रवाह में घूमता रहता है। यह इस का अनादि काल से आता हुआ संसार है। अर्थात् कर्म कारण से जायमान संसार है इस संसार का कारण जीव का प्राच्य कर्म है वह निवर्त्य है।

इस ग्रन्थ का अभिप्राय यह है संपूर्ण शास्त्र का समन्वय कर के उपाय तथा निवर्त्य के विषय में विशिष्टाद्वैत का सिद्धान्त निम्न प्रकार से होता है कि-इसमें प्रथमतः निवर्त्य का स्वरूप निरूपण करता हूं। सभी जीवात्मा ज्ञान स्वरूप हैं इन प्रत्येक जीवों का एक एक ज्ञान है जो जीवात्मा का धर्म विशेषण है इसलिये इस ज्ञान को धर्मभूत कहते हैं अर्थात् ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो धर्मिज्ञान होता है जो कि जीव स्वरूप है और दूसरा धर्म ज्ञान जिसे क्रियारूप घटादि ज्ञान कहते हैं, इसी को वृत्ति ज्ञान भी कहते हैं। इन दोनों ज्ञानों में एक धर्मी बनकर रहता है दूसरा धर्म बनकर के रहता। इस में धर्मिधर्मभाव के कारण भेद होता है। जिस तरह मणि और प्रभा ये दोनों तेजो द्रव्य हैं, मणि और प्रभा ये दोनों अन्धकार के नाशक हैं इसलिये तेजो द्रव्य हैं। उसमें एकत्र अवस्थित निबिड तेजो द्रव्यमणि प्रदीप हैं और प्रविरल तेजोऽवयव जो प्रसरणशील द्रव्य है वह प्रभा है। इसमें धर्मी है मणि और प्रदीप और प्रभा हैं धर्म क्योंकि प्रभामणि का आश्रय लेकर के ही रहती है और मणि तथा दीप

एव पपञ्चजातस्य सृष्टिरिति । एतदेव वस्तु श्रीपराशरपरमर्षिणापि कथितम् 'प्रधानपुंसोरजयोः कारणं कार्यभूतयोः' इति । का लक्षणयोरजयोरपिप्रधानपुरुषयोः कारणमीश्वर एवेत्यर्थः । अतः

भ्या क्रियाकल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः सम्भवान्निर्वचनाच्च' (बो.वृ.) इति (१।१।१) इत्या दरूपेण बहुप्रपञ्चितमानन्दभाष्यकारेणेतितत एव ज्ञातव्यम् । वर्णाश्रमादिधर्माः श दयश्च तादृशोपासनस्याङ्गभूताः । अनेन प्रकारेण शास्त्रं भगवत्स्वरूपप्राप्तये वर्णितमुपासनं विदधातीतिभावः । मूलाक्षरार्थस्तु स्वयमेवोहनीयो विवेकिभिः । 'सत्यं ानन्दं ब्रह्म' 'प्रज्ञानं ब्रह्म' इत्यादिश्रुत्या परमात्मनो ज्ञानानन्दमयत्वं व्यवस्थितमेव । न्तुगतप्रकरणेन जीवानामपि ज्ञानानन्दमयत्वं ज्ञानाकारतया सर्वजीवानांसमत्वमपि व्य स्थापितवानाचार्यः प्रतिज्ञामात्रेण तत्र साधकं हेतु वचनं नोपन्यस्तवान् । न च

जहा ाते हैं वहां प्रभा जाती है और दीप के बुझ जाने पर प्रभा नष्ट हो जाती है । मणि स्वकीय स्वरूप ात्र का प्रकाशक होता है और प्रभा स्व को प्रकाशित करती हुई प्रकाश्य का प्रकाशन करती है, तथा णि स्वल्प परिमाणवान् है प्रभा का प्रमाण वृहत् है । प्रभा में संकोच विकाश होता है मणिप्रदीप ं कोच विकाश नहीं होता है। इसी तरह प्रकृत में धर्मीभूत ज्ञान तथा धर्म ज्ञान में समझना चाहिये। आत्मा र धर्मभूत ज्ञान ये दोनों द्रव्यरूप है क्योंकि दोनों स्वयं प्रकाश है। इसमें-'**अहम्**' ऐसा जानने में ाला पदार्थ आत्मा है और '**जानामि-जानामि**' इत्यादि रूप से क्रियारूप में प्रतीत होने वाला र्थ धर्मभूत ज्ञान है। ज्ञान द्रव्य होने पर भी उसमें संकोच विकाश लक्षण क्रिया होती है, विकाशादि शिष्ट ज्ञान क्रिया के रूप में भासित होता है। इन से आत्मा धर्मी है और धर्मभूत ज्ञान धर्म है क्योंकि यह धर्मभूत ज्ञान अहमर्थ आत्मा का आश्रय लेकर के ही रहता है और आत्मा जहां जाती है वहां साथ जाता है। जीवात्मा तथा आत्मा का जो धर्मभूत ज्ञान है ये दोनों ही स्वयं प्रकाश ज्ञान द्रव्य है फिर भी इन दोनों में यह भेद अन्तर है कि आत्मा सर्वदा एक रूप बनी रहती है आत्मा में संकोच विकाश नहीं होता है और धर्मभूत जो ज्ञान है वह विकारी है उस में संकोच तथा विकाश समय समय पर होता रहता है जैसे सुषुप्ति काल में धर्मभूत ज्ञान अत्यन्त संकुचित हो जाता है और जागरितावस्था में विकसित होकर के रहता है। एवं जीवात्मा अणुपरिमाण वाली है और धर्मभूत विज्ञान को अगर कोई प्रतिबन्धक न हो तो वह समस्त विश्व में भी व्याप्त हो जाता है, ऐसा इसका स्वभाव है । '**बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च' एषोणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः**' इत्यादि श्रुति जीव के अणुत्व में प्रमाण हैं। काय व्यूह काल में योगी का ज्ञान सर्वत्र व्याप्त हो जाता है इसलि धर्म ज्ञान

ईश्वरप्रकारभूतसर्वदशावस्थजीवप्रकृतिवाचका ये शब्दास्ते सर्वेऽपि प्रकृतिपुरुषात्मकप्रकारविशिष्टतया समवस्थिते परमेश्वरे मुख्यरूपेणैव वाचकत्वेन वर्तन्ते नतु गौणीवृत्त्या । जीवात्मवाचकदेवमनुष्यपशुमृ-

प्रतिज्ञामात्रेण वस्तुनः सिद्धिर्भवति । तथासतिसर्वत्र सर्ववस्तुनः सिद्धिप्रसङ्गात् । प्रतिज्ञायाः पुरुषाधीनत्वात् । तदुक्तम् 'न केवलं प्रतिज्ञा हि वस्तूनां साधिका मता' इतिप्रतिज्ञोत्तरं हेतुर्वक्तव्य इतिजीवानां ज्ञानानन्दमयत्वे सर्वस्य जीवेनसह समानतां साधयितुं पुराणादि-स्मृतिवचनं साधकतयोपन्यासायोपक्रमते सर्वोपिजीवः स्वभावतयेत्यादि । ननु यदि जीवः सर्वोप्यानन्दादिमानेव तदा कथमहं दुःखीत्यादिव्यवहारो जायते ? तत्राह यदस्मिन् दुःखादिकं दृश्यते इत्यादि ।

अयंभावः-यत्र यत् परिदृश्यते तत् प्रकारद्वयेन दृष्टं भवति स्वभावत उपाधिबलाच्च तत्र यथा जले यत् शैत्यं तत् जलस्य स्वाभाविको धर्मः । तत्रैव जले कदाचिदौष्ण्यम-

को एक प्रकार से व्यापक है ऐसा कहा जाता है, परन्तु इस प्रकार व्यापक होने पर भी संसार काल में कर्म द्वारा संकुचित होकर के रहता है। आत्मा जीव स्वयं प्रकाश होने पर भी खद्योत की तरह स्वकीय स्वरूपमात्र का प्रकाशक होती है परन्तु विषय को आत्मा प्रकाशित नहीं कराती है किन्तु धर्मभूत स्वकीय ज्ञान द्वारा विषय को आत्मा प्रकाशित कराती है, जिस तरह प्रदीप स्वप्रभा द्वारा घटादि विषय का प्रकाशन करता है उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये । अर्थात् बाह्य विषय को प्रकाशित कराना तो धर्मभूत ज्ञान का कार्य है यह अनुभव द्वारा सिद्ध है। यही विशेषता धर्मज्ञान में हैं। आत्मा में भी एक विशेषता है वह यह है कि स्वयं प्रकाशरूप आत्मा अपने लिये प्रकाशित है, इसे ही प्रत्यक् तत्व कहते हैं और धर्मभूत ज्ञान तथा बाह्य विषय ये दोनों आत्मा के लिये प्रकाशित होते हैं अपने लिये नहीं । इस प्रकार से आत्मा तथा तदीय धर्मभूत ज्ञान में आंशिक समत्व तथा अंशतः वशिष्ट्य भी है। धर्मभूत विज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि असंकुचित होकर के सर्वत्र प्रसरित होवे। यद्यपि प्रदीप प्रभा में संकोच नहीं होता है तथापि प्रभा का प्रसरण सीमित होता है परन्तु धर्मभूत ज्ञान का विकाश प्रसरण सार्वत्रिक होता है, ज्ञान में सर्वत्र प्रसरण होने की क्षमता है क्योंकि अपरिच्छिन्न होकर के रहना, यह धर्मभूत ज्ञान का स्वभाव है, प्रभा का ऐसा स्वभाव नहीं है, प्रभा तो परिच्छिन्न है और धर्मभूत ज्ञान तो अपरिच्छिन्न वस्तु है । जैवीय धर्मभूत ज्ञान का एतादृश स्वभाव मोक्ष काल में अभिव्यक्त होता है संसार काल में अभिव्यक्त नहीं होता है क्योंकि संसार काल में कर्म से प्रतिबद्ध रहता है, मोक्ष काल में मुक्त पुरुषों का धर्मभूत विज्ञान असंकुचित तथा अपरिच्छिन्न होकर के सर्वत्र

गादिपदवत्। ततश्चसर्वचिदचिद्वस्तुनः परमेश्वरशरीररूपत्वेन परमेश्वरप्रकारत्वात् ते पुरुषप्रकृतिवाचकाः शब्दा मुख्यवृत्त्या परमात्मन एव

प्यनुभूयते तदौष्ण्यं न जलस्य स्वाभाविकमपि तु वह्निसंबन्धादनुभूतं भवति। तत्र यावत्पर्यन्तं जले वह्निसंबन्धस्तावदेवोष्ण्यानुभवोभवति, अपगते वह्निसंबन्धे कालान्तरे शैत्यमेवतस्य स्वभावसिद्धत्वात्। तद्वत् प्रकृते यावदेवजीवप्राकृतिककर्मसंबन्धस्तदातत्र जीवे कर्मबलाद् दुःखादीनामनुभवो भवति, भगवदुपासनया कर्मबन्धेऽपगते स्वाभाविकज्ञानानन्दाजीस्वरूपेणदीवोऽवतिष्ठते। प्रकृतिसंसर्गे जीवस्यदुः खादिकंतदभावे न दुःखाद्यनुभव इत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्राकृतिक एव दुःखादिर्नतुस्वाभाविको धर्मोजीवस्य। तस्मात् स्वभावतो जीवोदुःखादिरहितो ज्ञानानन्दस्वभावश्चेति। परोपाधिकोपि धर्मोयावदुपाधिरनुवर्तते तदभावेनानुवर्तते, इत्यत्र जलोष्ण्यस्फटिकाकाशादीनि बहून्युदाहरणानि सन्तीति

फैल जाता है क्योंकि कर्मरूप प्रति बन्धकका अभाव हो गया है और प्रतिबन्धक का अभाव कार्य का जनक होता है, जिस तरह प्रतिबन्धक चन्द्रकान्तमणि का अभाव दाहरूप कार्य का जनक होता है, उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये।

धर्मभूत ज्ञान को सर्वत्र व्याप्त रहने के कारण से मुक्त जीव का सर्वत्र सर्वदा अवस्थान माना जाता है। जिस तरह धर्मभूत विज्ञान का परिच्छेद संकोच रहित होकर के रहना स्वभाव है उसी तरह निर्मलता अर्थात् सर्वदोष रहितत्व भी स्वभाव है धर्मभूत ज्ञान का। रागद्वेष को धारण करना ही धर्मभूत ज्ञान में मालिन्य है एतादृश निर्मलता रूप स्वभाव मोक्षकाल में अभिव्यक्त होता है संसार काल में तिरोभूत रहता है, क्योंकि मोक्ष काल में सब पदार्थ परमेश्वरात्मक प्रतीत होते हैं इसलिये मोक्ष समय में रागद्वेष की संभावना नहीं रहती है-'**तत्र को मोहः, कः शोकः**' '**ततो न विजिगुप्सते**' इत्यादि श्रुति कहती है। पदार्थ मात्र को ईश्वरात्मक नहीं समझने पर ही अयर्थाथ ज्ञान से रागद्वेष की उत्पत्ति की संभावना होती है। असंकुचित अपरिच्छिन्न तथा निर्मल धर्मभूत विज्ञान जीवों का स्वभावसिद्ध है अर्थात् यथोक्त ज्ञानवत्व जीव को स्वाभाविक है। एतादृश सर्व विलक्षण धर्मभूत विज्ञान से युक्त भी जीवात्मा कर्मरूप अविद्या से आच्छादित स्वरूप वाली हो जाती है। नहीं कहें कि यदि अविद्या से जीव का स्वरूप अच्छादित हो जाता है, तब तो केवलाद्वैत मत में आपका भी प्रवेश हो जाता है क्योंकि वे लोगमानते हैं कि वस्तुतः जीव ब्रह्म स्वरूप ही है किन्तु जीव और ब्रह्म के बीच में अज्ञान मायारूप आवरण से जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है तब अविद्या में विद्यमान विक्षेप शक्ति से जीव में कर्तृत्व भोक्तृत्वादिरूप अनेक प्रकारक प्रपञ्च होता है। जगद्गुरु श्रीतुलसीदास जी ने भी इसका अनुमोदन किया है-'रामलखन विच सियसोहहि कैसे। ब्रह्म जीव विच माया जैसे।'

वाचकाः, नतु प्रकृतिवाचका मुख्यवृत्त्यातंतमर्थवाचका गौणीवृत्त्या परमात्मनो बोधका इति सर्वशब्दा मुख्यवृत्त्या परमात्मन एव वाचकाः।

॥ शरीरात्मनोर्लक्षणम् ॥

अमुमेव शरीरात्मभावसम्बन्धमधिकृत्य परमात्मा सर्वस्यान्तरात्मा

स्वयंमनीषयोद्धावनीयानि ज्ञातव्यानि चेति। दुःखादिकंजीवस्यौपाधिको धर्मो न तु स्वभाविक इत्यत्रपुराणवचनं प्रमाणतयोदाह्रियते "निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः। दुःखाज्ञानमलधर्माः प्रकृतेस्ते न चात्मनः। अयमाशयः- अयमहं पदवाच्ये जीवात्मा स्भावत, आनन्दमयोज्ञानमयोज्ञानमयोऽमलः रागद्वेषादि सर्वमलरहितश्च। अत्र मयट्शब्दः प्राचुर्यार्थको नतुविकारार्थकः येनकदाचिद्विकारित्वं जीवं भवन् आनन्दमयस्वरूपात्कदाचित्प्रतिहीयेत। ननु यथाऽहंसुखी इतिवत् 'अहं दुःखं जानामि' इत्यादिप्रत्ययदर्शनात् दुःखादिमयत्वमपि जीवेऽनुभूयते इतिकथमानन्दमयत्वं विज्ञायते तत्राह दुखाज्ञानेत्यादि यद्यपि

श्रीवाल्मीकि जी ने भी कहा है-'**अग्रे यास्याम्यहं वीर पश्चात्त्वं लक्ष्मणो भव। आवयोर्मध्यगासीताछायेवात्म परात्मनोरिति।**' इसप्रकार से केवलाद्वैतमत में आपका प्रवेश हो जायगा, ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योकि यहां अविद्या शब्द से '**सदसद्भ्यामनिर्वचनीया**' एतल्लक्षणलक्षित अविद्या का ग्रहण नहीं किया जाता है किन्तु शुभाशुभ क्रिया से जायमान जो पुण्यपाप लक्षण कर्म है तादृश कर्म का ग्रहण किया जाता है। स्वरूप का आवरण करने से कर्म में भी अविद्या पद का प्रयोग किया गया है, क्योंकि शास्त्र में कहा है कि-'**अविद्या कर्मसंज्ञान्या**' ('कर्मरूपैवाविद्या सा चान्या सर्वतो विलक्षणा, अर्थात् अद्वैताभिमत अविद्यातो भिन्न कर्मरूपैव नतु तदभिमता-'**सदसद्भ्यां भिन्न अनिर्वचनीया, परन्तु कर्मलक्षणैवाविद्येति समुदाहृत शास्त्रवचनस्याभिप्रायः।**) इस शास्त्र के बल से सिद्ध होता है कि कर्मरूप ही अविद्या है, एतादृश कर्मरूप अविद्या से जीव का धर्मभूत ज्ञान आक्रान्त हो जाता है। तदनन्तर उन उन कर्मो के अनुसार जीव का सर्व विलक्षण जीवों का धर्मभूत ज्ञान संकुचित हो जाता है, तब ये जीव हिरण्यगर्भ ब्रह्मा जी से लेकर कर्मानुसार वीरुध वनस्पति पर्यन्त अनेक प्रकारक विचित्र शरीरों में प्रवेश करते हैं। ये शरीर देव मनुष्य तिर्यक् तथा स्थावरभेदों से अर्थात् जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिद् इत्यादि प्रकार से वे शरीर अनेक हैं, एतादृशानेक विचित्र शरीरों में जीव कर्मानुसार प्रविष्ट हो जाते हैं। उन शरीरों में यथा योग्य जीव ज्ञान विकाश को प्राप्त करते हैं अर्थात् पाषाणादिक में अत्यन्त कम

भवति। स चायं शरीरात्वभावः, पृथक्सिद्ध्यनर्हाधाराधेयभावरूपेण, नियन्तनियम्यभावरूपेण, शेषशेषिभावरूपेण च भवति ततश्च सर्वात्मनाऽधारतया नियन्तृतया शेषितया च सर्वमाधेयं प्राप्नोति व्यापकतयेत्यात्मा।

दुःखादिमत्वं रागद्वेषादिमत्वं च जीवे कदाचित् दृश्यते तथापि दुखादयो धर्मा न स्वाभाविकाः किन्तु परोपाधिकाः। यतो यावत् प्रकृतेः संबन्धो भवति तावत् तथा प्रतीतिर्जायते प्रकृति संबन्धवियोगे न भवति तथा प्रतीतिरित्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रकृतेरेव ते दोषा न तु जीवे ते स्वाभाविकास्ते धर्माः जलौष्ण्यप्रतीतिवत्। तदयमर्थः यथा जले उष्णतायाः प्रतीतिरुष्णवह्निसंबन्धात्। तदभावे न तथा प्रतीतिस्तथा वह्निसंबन्धविरहे कालान्तरे स्वाभाविकंशैत्यमेवानुवर्तमानमनुभूयते इति तदौष्ण्यवह्नेः न स्वाभाविको धर्मो जले च तत्संबन्धादौपाधिकः। यथा वाऽतिस्वच्छेस्फटिकमणौ जपाकुसुमसान्निध्यात् आरुण्य प्रतीतिरौपाधिकि उपाधिविगमे स्फटिकमणौस्वाभाविकस्वच्छताया एवानुभवात्। तथैव

ज्ञानमात्रा होती है, वनस्पति में उससे कछु अधिक ज्ञान होता है, तिर्यक् अण्डजादिक में ज्ञान अधिक होता है इस प्रकार से ब्रह्मा में जा कर के अतिशायित ज्ञान का विकाश रहता है। अतएव कहा है कि- '**अप्राणिमत्सु स्वल्पा सा स्थावरेषु ततोधिका**' अर्थात् अप्राणी जो बिल्कुल प्राणरहित पाषाणादिक हैं उन में ज्ञान की मात्रा अति अल्प होती है। तदपेक्षया स्थावरों में ज्ञान का विकाश आधिक होता है आगे आगे यथा योग्य ज्ञान का विकाश होता है, इससे सिद्ध होता है कि शरीर के तारतम्यन्यूनाधिकभाव से ज्ञान के संकोच विकाश में भी तारतम्य होता है। कर्म शरीर का सम्पादन कर के उस देह के द्वारा ज्ञान के संकोच विकाश को उत्पन्न करता है। जब उन देहों में जीवात्मा प्रविष्ट हो जाती है तब उन देहों में '**अहं मम**' इत्यादि अभिमान करती है-मैं हूँ, मेरा यह शरीर है, मैं कर्ता हू, मैं काणा या कुब्ज हूं एतादृश अभिमान करती है देह को अहंरूप से तथा ममरूप से समझ कर के आसक्त यह आसक्ति अभिमान का कार्य है। इस अभिमान के अनुसार जीवात्मा सुख तथा दुःख को अपना समझती है जो इस अभिमान के अनुकूल हो उसे सुख मानती है तथा इस अभिमान के जो प्रतिकूल होता है उसे दुःख समझती है।

उपर्युक्त कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार के पुण्य तथा पाप कर्म को करती हैं। यह कर्म बीजांकूरवत् अनादि है। एतादृश कर्मों के अनुसार जीव सुख दुःख का भोग करता है और सुख दुखोपभोग का ही तो नाम संसार है। इस संसार प्रवाह में अनादि काल से बद्ध जीव बहता रहता है जिस प्रकार समुद्र में पडा हुआ तृण काष्ठादि सर्वदा समुद्र में बहता रहता है उसी प्रकार से जीव

तथा सर्वात्मनाऽधेयतया नियाम्यतया शेषतया चापृथक्सिद्धं प्रकारभूतं शरीरमिति च भवति। एवं क्रमेण जीवस्यापि स्वशरीरसम्बन्धो भवति।

प्रकृते यावदेव प्राकृतिककर्मसंबन्धस्तावदेव दुःखादिमलानुभवो भवति कर्मसंबन्धाभावे तदभावोऽतस्तस्य दुःखादेर्जीवे प्रतीतिरौपाधिकीतिनिश्चीयते। तस्मात् दुःखाज्ञानमलाः प्रकृतेरेव भवन्ति किन्तु जीवात्मनस्ते धर्मा न भवन्तीति समुदाहृतशास्त्र वचनस्याभिप्रायः। अनेनैतत् सिद्धं यत् जीवात्मानः स्वभावतो न दुःखादिमन्तः। दुःखादिकंयत्कदाचित्संवेदितं भवति तदन्यसंपर्कादेवेति।

तदेवं जीवस्य स्वभावतो ज्ञानानन्दादिमयत्वं शास्त्रवचनेन संसाध्य संप्रतिजीवानां परस्परसाम्यं प्रतिपादयितुमाह विद्याविनयसंपन्ने इत्यादि। आत्मानात्मनोः विवेकबुद्धिरेव पण्डा तादृशी पण्डा बुद्धिर्विद्यते येषां ते पण्डिताः ते पण्डिताः देवादिप्रकृत संबद्धस्यात्मनस्तत्रात्यन्तविषमाकारे वर्तमानं जीवं समानरूपेणैवं पश्यन्ति विद्यासम्पन्ने विनयादिसम्पन्ने ब्राह्मणत्वदेवत्वजात्यवच्छिन्नशरीरे यादृशं ज्ञानादिमन्तंपश्यन्ति साक्षात्

संसार में पडा हुआ घटीयंत्र न्याय से घूमता रहता है। इन सब का कारण विचित्रानेक कर्म समुदाय ही है। वास्तव में यही कर्म निवर्त्य है अतः इस कर्म का नाश आवश्यक कर्तव्य है, यदि कर्म नष्ट हो जाय तब तो कर्म का कार्य संसार अवश्यमेव नष्ट हो जायगा और संसार से मुक्त हो जाना ही तो मोक्ष है, क्योंकि बन्धन निवृत्ति ही तो परम पुरुषार्थ है। '**तरति शोकमात्मवित्**' यहां शोक शब्द का अर्थ है संसार, अतः संसार निवृत्ति ही मोक्ष है। भगवान् श्रीरामजी की शरण में जाने पर ही जीव संसार से छुटकारा पा सकता है अन्यथा नहीं। '**यमैवैष वृणुते तेन लभ्यः**' इत्यादि श्रुति कहती है। इस शरणागति को प्रपत्ति कहते हैं। यह प्रपत्ति दो प्रकार की होती है-अङ्ग प्रपत्ति और स्वतन्त्र प्रपत्ति। उस में भक्ति योग द्वारा साधक भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् की शरणागति को स्वीकार करता है उसे अङ्ग प्रपत्ति कहते हैं। यह भक्ति नौ प्रकार की होती है, इन नौ का लक्षणोदाहरण शास्त्र तथा सम्प्रदाय के द्वारा जानिये। और जो साधक भक्ति योग के विना ही भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा करता है उसे स्वतन्त्र प्रपत्ति कहते हैं। शरणागति मोक्ष में साधक है, इसमें भगवान् श्रीरामजी का वाक्य ही प्रमाण है-'**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम**' इति संक्षेपः। इन सब विषयों को आचार्यजी ने '**यद्यपि जीवो हि स्वभावतः**' यहां से लेकर '**भगवत्प्रपत्यैव न तु ज्ञानादिना**' इत्यन्त मूलाक्षरों से बतलाया है। इस प्रकरण का अक्षरार्थ तो इस प्रकार से होता है-जीवात्मा यद्यपि स्वभाव से ही परिच्छेद संकोच तथा मलादि रहित ज्ञान स्वरूप है तथापि कर्मरूप अविद्या से आच्छादित स्वरूप वाली हो जाती है तब तादृश कर्म के

तथैव ब्रह्मणः सर्वशरीरकत्वात् सर्वशब्दवाच्यता च सिद्धा भवति ।

॥ ब्रह्मणः सर्वशब्दवाच्यत्वंसप्रमाणसमर्थनम् ॥

अमुमेवार्थं श्रुतिस्मृतिपुराणादिवचनान्यपि पुष्णन्ति । तथाहि 'सर्वेवेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यंचरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्' सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति । इति

कुर्वन्ति दिव्यदृष्ट्या ततो हीने गोत्वाद्यवच्छिन्नपवित्रपशौ ततोपि हीने हस्तिनि कुंजरत्वादिकदेहे ततोपि हीने शुनि कुक्कुरादिके सर्वथा सर्वहीनेश्वपाके चाण्डालादावपि तादृशमेवात्मानं पश्यन्ति । यतस्ते पण्डिताः आत्मनः स्वाभाविकस्वरूपविज्ञाने चतुराः । अर्थात् हीनमध्यमोत्तमशरीरेषु विचित्रेष्वप्यवस्थितं जीवतत्त्वं समानरूपेणैव साक्षात्कुर्वन्ति न तु देहभेदाद्भिन्नं भिन्नमनुभवन्ति । तत्र शरीरभेदेपितेषु स्थितमात्मतत्वं ज्ञानानन्दादिमयत्वेन समानमेवानुभवन्ति । एतादृशानुभवस्य फलविशेषमपि शास्त्रं दर्शयति इहैवतैर्जितः सर्ग इत्यादि, एतच्छरीरावच्छेदेनास्मिंलोकेवर्तमान एव सर्गोजितः । अर्थात् संसारवियुक्तो भवति ।

अनुकूल ज्ञान संकोच को प्राप्त कर के हिरण्यगर्भ ब्रह्मा से लेकर तृणादि पर्यन्त विचित्रानेक शरीरों में प्रविष्ट होकर तादृश शरीरोचित ज्ञान विकाश को प्राप्त करती हुई तत् तत् शरीरो में अहं ममाभिमान करती है तव तादृश अभिमान के अनुकूल शुभाशुभ कर्म का अनुष्ठान कर के तादृश कर्मोंचित सुख दुःखोपभोग लक्षण अनादि प्रवाह को प्राप्त करती है इस अनादि प्रवाह को ही संसार कहते हैं, इस संसार को जीव कर्म बल से प्राप्त करता है। इस जीव का एतादृश जो संसार है इस संसार की निवृत्ति भगवान् की प्रपत्ति अर्थात् भगवान् की शरणागति से ही होती है किन्तु ज्ञानादिक से संसार निवृत्ति नहीं होती है. क्योंकि संसार का मूलकारण जो कर्म है उसका विनाश भगवान् की कृपा से होती है तब कर्मरूप कारण के अभाव होने से कार्य लक्षण संसार का अभाव हो जाता है तथा साकेत की प्राप्ति होती है इसी का नाम है मोक्ष, कर्म बन्धन निवृत्ति पूर्वक भगवान् की प्राप्ति इति।

'जीवः संसार निवृत्तो भवतु तदर्थं शास्त्रमित्यादि' जीव एतादृश संसार से छुटकारा पावे इस अभिप्राय में मे शास्त्र सर्व प्रथम जीव को देवादि शरीरों से भेद का प्रतिपादन करता है तथा सभी जीव ज्ञान स्वरूप है तथा सब जीव समान हैं ऐसा शास्त्र प्रतिपादन करता है । एतादृश जीव भगवान् का शेष है इसलिये भगवत् स्वरूप है इस बात का भी प्रतिपादन शास्त्र करता है । इसके अनन्तर भगवान् के स्वरूप का प्रतिपादन करता है । भगवान् हेय का प्रत्यनीक कल्याण गुण हैं सकल स्वेतर विलक्षण हैं अनवधिक निरवधिक कल्याण

'एको देवो बहुधा निविष्टः' 'सहैवसन्तं न विजानन्ति देवाः' 'पुराणवचनमपि 'न ताः स्मः सर्ववचसां प्रतिष्ठा यत्रशाश्वती' वाच्ये हिवचसः प्रतिष्ठाः 'कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम्' 'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'

एतदन्यत्सर्वं यथामूलमेव ज्ञातव्यमितिसंक्षेपः ।

ननु भवतु जीवो ज्ञानानन्दस्वरूपः परस्परं ज्ञानत्वेन समानश्च तावता प्रकृते किमायातम् ? एतदेवायातं यत् एतादृशस्वरूपो जीवः परमेश्वरस्य शेषरूपः परमेश्वरनियाम्यः परमेश्वराधारश्च तावताभगवच्छेषतायामेव तस्य कल्याणं भवतीत्यादिकं समर्थयितुं तथा मोक्षोपायविषये प्रमाणं दर्शयितुञ्चोपक्रमते वेदस्मृतीतिहासपुराणेषु इत्यादि । तस्य ज्ञानानन्दमयस्य जीवस्येतिहासादौ इत्थं प्रतिपादितं यत् योयंजीवो यथोक्तलक्षणः स शेषिरूपस्य शेषरूपः । अर्थात् वेदस्मृतीतिहासपुराणेषु जीवात्मा परमेश्वरस्य शरीरं

गुण के सागर हैं तथा स्वकीय सङ्कल्प के द्वारा समस्त चिदचित् पदार्थों से विशिष्ट होने से सब पदार्थ के अन्तर्यामी हैं, इस वात का भी शास्त्र प्रतिपादन करता है। एतादृश भगवान् की प्रपत्ति शरणागति ही संसार सागर का विनाश कर के भगवद्धाम प्राप्तिरूप मोक्ष को प्राप्त कराती है इसलिये भगवान् की उपासना का भी शास्त्र प्रतिपादन करता है । अयंभावः-जीव संसार से विमुक्त हो जाय इसके लिये शास्त्र देहेन्द्रिय मन बुद्धि इन सब से अतिरिक्त आत्म स्वरूप का प्रतिपादन करता है। अन्यथा यदि देहादिक को ही आत्मा माना जाय तव तो ऐहिक स्त्री पुत्रादि फल को प्राप्त करने की ही सब को इच्छा होगी परन्तु पारलौकिक फलों की प्राप्तेच्छा नहीं होगी क्योंकि शरीर को ही आत्मा मानने वाला जीव तो यही समझता रहेगा कि मैं तो शरीररूप हूं शरीर की उत्पत्ति होने से मेरा उत्पाद हुआ है शरीर के विनष्ट होनें पर तो मेरा विनाश हो जायगा तो मैं तो आगे रहनेवाला नहीं हूं और स्वर्गादिक पारलौकिक फल जो शरीर विनाश के बाद मिलता है यह समझकर पारलौकिक फल जनक यागादिक क्रियाओं में कोई प्रवृत्त नहीं होगा इसलिये शास्त्र सर्व प्रथम शरीरादि से भिन्न आत्म स्वरूप का उपदेश देते हुए बतलाता है कि जीवात्मा शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि तथा प्राणों से प्रकृति तथा प्रकृति के कार्य से जीव सर्वथा भिन्न है, ये इन्द्रादिक देव हैं, यह देवदत्त यज्ञदत्त मनुष्य है पण्डित साधु हैं इत्यादिक भेद प्रकृति के कार्य देह में ही होता है किन्तु आत्मा में नहीं होता है, आत्मा तो इन सब भेदों से रहित है, जीवात्मा ज्ञानाकार है, ज्ञान ही आत्मा का स्वरूप है, कर्म के बल से जीवात्मा चाहे किसी भी देह में रहे किन्तु देह गत सर्व धर्मों से रहित होकर ज्ञानस्वरूप से बना रहता है। सर्व शरीरों में सर्तमान सभी जीव परस्पर समान हैं क्योंकि सभी जीव ज्ञानाकार हैं तथा शरीर वृत्ति भेद से सर्वथा रहित हैं।

'हन्ताहमिमास्तिस्त्रोदेवताऽनेन जीवेनात्मनाऽनुप्रविश्यनामरूपेव्याकरवाणि' इतिश्रुतिः। मनुरप्याह-प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणीयसाम्' 'रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तुपुरुषं परम्' 'एनमेके वदत्यग्निं मरुतोऽन्ये

तनुरित्यादिशब्दैर्वर्णनं कृत्वा तदभेदं च निर्दिश्य जीवात्मा परमेश्वरस्य शेषो नियाम्यः परमेश्वराश्रितश्चेति, यत् शरीरं तदेतादृशमेवभवतीतिनियमः। यथेदं शरीरं जीवस्य तत् जीवस्यशेषरूपमेव, यत् इदं जीवशरीरं जीवाय निर्मितम् तथेदं शरीरं जीवस्य नियाम्यम्, यतो जीवस्येच्छयैव सर्वं कार्यं करोति तदीयं शरीरम्। तथेदं शरीरं जीवे आधारितम् यतो जीवात्मसंबन्धाभावे तदीयं शरीरं तदैव विनश्यति सति संबन्धेस्थीयते। जीवात्मापि परमेश्वरस्य शरीररूप इति जीवपरमेश्वरस्यशेषो नियाम्यस्तदाधारश्चेति। तथा प्रागुक्तदिशा जीवपरमेश्वराभिन्नश्चेति। एवं स्पेण श्रुत्यादिभिः समर्थितमिति ग्रन्थाशयः।

इस प्रकार से शास्त्र शरीरातिरिक्त जीवात्मस्वरूप का उपदेश देता हुआ जीवों में परस्पर समानता का भी वर्णन करता है-'**विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः**' इति। इन् वस्तुओं को बराबर जानकर के पारलौकिक फल के. .स करने के लिये '**स्वर्गकामो दर्शपौर्णमासाभ्यां यजेत**' '**आत्मानमुपासीत**' इत्यादि प्रतिपादित साधन में प्रवृत्त होता है, तथा कालान्तर में लोकान्तर में इहलोक में वा तादृश फल को प्राप्त करती है। अन्यथा यदि इहलोक परलोक यात्रा का निर्वाहक देहातिरिक्त जीव न हो तब तो इन क्रियाओं में प्रवृत्ति किसी की भी नहीं होगी, शास्त्र लोक सब अस्त व्यस्त हो जायेंगे और इसके आगे यह भी शास्त्र बतलाता है कि जो यह शरीरातिरिक्त जीवात्मा है पुरुषोत्तम श्रीरामजी का शेष है अर्थात् ये जीव सब के सब भगवान् के लिये ही हैं, जीवात्माओं को तदर्थही एतादृश स्वरूप प्राप्त हुआ है। किसी न किसी प्रकार से भगवान् के काम में आना जीवात्मा का स्वरूप है। भगवान् श्रीरामजी के सुख प्रयोजक कार्य करने से ही जीवात्मा देदीप्यमान होता है। भगवान् का शेष बन कर के रहना जीवात्मा का सारतम धर्म है। जीवात्मा भगवान् पर आधारित है अर्थात् भगवदाश्रित है, तथा भगवान् का नियाम्य, शेष है, और भगवान् इसके अभ्यन्तर में अन्तार्यामी के रूप से अवस्थित रहते हैं अतः यह जीवात्मा भगवदात्मक बन जाती है। उपर्युक्त प्रकार से जो भक्त साधक अपने को भगवदात्मक एवं भगवत् शेषता को जानता है उसे भगवान् को प्राप्त करने की भगवान् स्वरूप का अनुभव करने की एवं भगवान् के सुखोल्लासार्थ अनेक प्रकार के कैंकर्य करने की इच्छा होने लगती है। उस प्रकार भगवान् की प्राप्ति में बलवती इच्छा रखनेवाले

प्रजापतिम्। इन्द्रमेकेपरे प्राणमपरेब्रह्मशाश्वतम्' इति अन्यत्रापि स्मृत्यन्तरे प्रतिपादितम् 'ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणान् सहुताशनान्। सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते' इति तथैव 'स्वया च प्रभया सर्वान्

तथा परमेश्वरश्रीरामप्रपत्तिमन्तरेण जीवः कदापि मोक्षं न लभते संसारबन्धनादपगतोपि न भवतीत्येतद्दर्शयितुमाह दैवीह्येषागुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते इति। अर्थात् लीलारसे प्रवृत्तः परमेश्वरः, अतो मायां विस्तारयामास, अत इयं माया दैवीति कथ्यते, तथेयं गुणमयी सत्वरजस्तमोगुणात्मिका, विचित्राश्चर्यकार्यकरणात् प्रकृतिरित्यपि मायापि कथ्यते। अस्या अतिक्रमणमतीव दुष्करम्, इयं च परमेश्वरस्वरूपस्याच्छादिका अतस्तं परमेश्वरंबद्धजीवो न पश्यति। सर्वथा माययाऽवृतोजीवः संसारमेव बहुमनुते बन्धनिवृत्तिविषयिणीच्छापि न कस्यचिदपि भवति। नन्वेतादृशमहत्वशालिन्याः मायायाः संतरणं कथम्? तदभावे मोक्षश्च कथंस्यात्? इत्याशङ्कायाः समाधानायोत्तरार्द्धमाह

साधकों का कल्याण करने के लिये शास्त्र भगवान् के स्वरूप को बतला कर के भगवान् की प्राप्ति में जो साधन है तादृश साधन का भी प्रतिपादन करता है। भगवान् के स्वरूप का इस प्रकार से वर्णन किया गया है-भगवान् स्वरूप से नित्य निर्दोष है, कोई भी दोष भगवान् का स्पर्श भी नहीं करता है। '**न मां कर्माणि लिम्पन्ति नमे कर्मफले स्पृहा। इति मां योभिजानाति**' इत्यादि। प्रत्युत गवान् का स्वरूप सब दोष को नष्ट करनेवाला है। एवं भगवान् का स्वरूप मंगलमय भी है, इसलिये भगवान् का स्वरूप स्वेतर सब पदार्थों से अत्यन्त विलक्षण सिद्ध होता है भगवान् में इस प्रकार का अनन्त कल्याण गुण विद्यमान हैं जो उत्कर्ष की चरमसीमा में प्राप्त हुए हैं। एवं भगवान् का स्वरूप समस्त चेतन तथा अचेतान पदार्थ समुदाय को स्वकीय सङ्कल्प के अनुसार विचित्रानेक कर्मों में प्रवृत्त कराता है। वह भगवत्स्वरूप समस्त जड चेतन पदार्थों का धारक है नियामक एवं सब का शेषी है अतएव सब की अन्तरात्मा हैं। एतादृश भगवत्स्वरूप की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष है। एतादृश मोक्ष को प्राप्त करने के लिये भगवान् की जो उपासना है वही हेतु साधन है। शास्त्र प्रतिपादित अंग के साथ तादृश उपासना का अनुष्ठान करना चाहिये। तेल धाराके समान अविच्छिन्न प्रेम युक्त प्रत्यक्ष समानाकारक स्मृतिधारा का ही नाम उपासना है इस उपासना का वर्णाश्रमादि धर्म तथा शमदमादिक अंग हैं। इस प्रकार से शास्त्र भगवत्स्वरूप प्राप्ति के लिये साधनोपासना का भी वर्णन करता है। इस विषय पर विशेष विवरण श्री सम्प्रदाय के पूर्वाचार्य निबन्धानुसार ही करना चाहिये ऐसा श्रीआचार्यजी का भाव है।

'**सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म**' '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' अर्थात् ब्रह्म परमेश्वर सत्य ज्ञान और आनन्द स्वरूप है

यतश्चावृत्य तिष्ठति । श्रीमद्रामस्ततश्चैव सर्वात्मत्वेन सम्मतः । विश्वरूपस्य ते राम ! विश्वेशब्दा हि वाचकाः, इत्यादिना सर्वशब्दच्यत्वं परमेश्वरश्रीरामस्यैव भवतीति श्रुतिस्मृतिपुराणादिभ्योऽवगम्यते ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते इति । यो हि जीवो मम प्रपत्तिमाश्रयति स जीव एतादृशीं तर्तुमशक्यामपि मायां सुखेन तरति, यथा कश्चिन्नदीसंतरणकामो नावमारुह्य सुखेन नदीं तरति, तथैव संसारसंतरणकामनावान् प्रपन्नो ममशरणागतिलक्षणं नौकामधिष्ठाय सुखेन मायानदीं संतीर्य्य साकेतसुखमनुभवतीति । यतो भगवान् अपारदयालुः संशरणे आगतं सर्वमेव मायाबन्धनाद्विमोच्य समुद्धरति मामुद्धरेन्नवेति संशयोऽयुक्तः । 'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं ममेति सर्वेश्वर श्रीरामोक्तेः । अमुमर्थं वेदोऽपि पुष्णाति तमेवविदित्वा इत्यादि । अस्यार्थः तं मायापतिं परमात्मानं विदित्वा ज्ञात्वा अर्थात् परमेश्वरस्योपासनं द्विविधां प्रपत्तिं च कृत्वा अतिमृत्युं मोक्षमेति प्राप्नोति । इतोऽन्यः पन्था मार्गोऽयनाय मोक्षाय न विद्यते, अत्र परमेश्वरज्ञानपदेन पारमेश्वरीयोपासन

ब्रह्म परमेश्वर ज्ञान स्वरूप है, यहां ज्ञान पद उपलक्षण है इससे आनन्दमय तथा सकल मल रहित हैं, इन श्रुतियों से परमेश्वर ज्ञानमय आनन्दमय और हेय सर्बमल रहित हैं यह बात तो सिद्ध ही है । परन्तु गत प्रकरण से आचार्यपाद ने जीव को भी ज्ञानमय आनन्दमय और सर्व मल रहित है इस बात का भी प्रतिपादन किया है प्रतिज्ञामात्र से परन्तु इसमें हेतु का प्रतिपादन नहीं किया है और केवल प्रतिज्ञा से साध्य की सिद्धी नहीं हो सकती है यदि प्रतिज्ञामात्र से साध्य की सिद्धि सर्वत्र होगी क्योंकि प्रतिज्ञा तो पुरुषाधीन है, ऐसा कहा है-'**न केवलं प्रतिज्ञा हि वस्तूनां साधिका मता**' अर्थात् केवल प्रतिज्ञा वस्तुओंकी साधिका नहीं हो सकती है अपितु हेतुं उदाहरणादि के द्वारा प्रतिज्ञा सिद्ध होती है । अतः प्रतिज्ञा के बाद हेतु का उपन्यास होना आवश्यक है । अतः जीव ज्ञानमय आनन्दमय है और सभी जीवों को सभी जीवोंके साथ ज्ञानमयत्वादि रूप से समानता है, इस बात को सिद्ध करने के लिये पुराण वचन और स्मृति वचनों को प्रामण रूप से उपस्थित करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**सर्वोपि जीवः स्वभावतः**' इत्यादि, सभी जीव स्वभाव से अर्थात् स्व स्वरूप से तो ज्ञानाकार आनन्दाकार और सब मल रहित हैं, यदि जीव स्वरूप से उपर्युक्त स्वभावरूप वाले हैं तब मैं देव हूं मैं मनुष्य तिर्यगादि रूप हूं, मैं दुःखी हूं, मैं विकारी हूं इत्यादि रूप से जो इसमें दुःखादि मल का प्रतिभास होता है वह किस तरह से उपपन्न होगा इस प्रश्न का समाधान करने के लिये कहते हैं-'**यदस्मिन्दुःखादिकं दृश्यते**' इत्यादि मैं देव हूं इत्यादि प्रतीतियों से जीवात्मा में दुःखादि मल का प्रतिभास हो और ज्ञानानन्दादिमयत्व का प्रतिभास नहीं होता है वह तो प्रकृति के सम्बन्ध से जायमान जो शुभाशुभ पुण्य पापरूप कर्म हैं तादृश कर्म के बल से परोपाधिक प्रतिभास होता है। अर्थात्

॥ जीवस्यसंसारकारणमपवर्गहेतुश्चनिरूपणम् ॥

यद्यपिजीवो हि स्वभावतः परिच्छेदसंकोचमलादिरहितज्ञानस्वरूपस्तथापिकर्मरूपाविद्याच्छादितस्वरूपस्तादृशकर्मानुकूलज्ञानसंकोचमवाप्यहिरण्यगर्भादितृणपर्यन्तविचित्रानेकशरीरेषु प्रविष्टः तादृश-

शरणागत्योरपि ग्रहणं भवति तेनोपासनशरणागतिभ्यामेव मोक्षो भवतीति । तथा परमेश्वरोपासनया संतरणमपि भवति तत्राह विद्वान् नामरूपाद्विमुक्तः अयमर्थः-विद्वान् परमेश्वरोपासनशरणागतिविशिष्टोऽधिकारी नामरूपजनकमायया विमुक्तो भवति, अर्थात् परमेश्वरशरणगतिमवाप्य तदीयकृपयादुष्करामपि मायानदीं सुखेन तरति । यत्रेदमुक्तंभवति- 'आशानामनदी मनोरथजलातृष्णातरङ्गाकुला रागग्राहवती वितर्कविहगाधैर्यद्रुमध्वंसिनी । मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्तातटी तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः।' यथा भगवदुपासनमुपासकस्यावश्यकं तथैव भगवत्प्रपत्तिरपीति । एभिरुपर्युक्तवचनैरतत्

जीव में जो मलादि प्रतिभान होता है वह स्वरूप प्रयुक्त नहीं है किन्तु औपाधिक है अर्थात् उपाधि सत्ता के व्याप्य है जब तक उपाधि का सम्बन्ध रहता है तब तक ही जीव में दुःखादि मल का प्रतिभास होता है और उपाधि के हट जाने से तत्प्रयुक्त मल का भी विनाश हो जाता है और स्वकीय धर्म जो ज्ञानानन्दमयत्वादिक हैं उन धर्मों का पुनः अविर्भाव हो जाता है । इसमें अनुरूप दृष्टान्त बतलाते हैं- '**जपाकुसुमोपाधिकस्फटिकमणिवद् वह्निसंबद्धजलवद्वेति**' अर्थात् जिस, तरह स्फटिक मणि स्वभाव से अत्यन्त स्वच्छ होता हुआ भी यदि स्फटिक के समीप में जपाकुसुम अर्थात् लालफूल अथवा अपराजिता आदि कालेफूल यद्वा पीले फूल को रखदिया जाय तब उन पुष्पो के संबन्ध से स्फटिक रक्त पीत और कृष्ण रूप से प्रतिभासित होता है और तादृश पुष्पों के सम्बन्ध के अभाव में रक्तादि गुणवत्वेन स्फटिक का प्रतिभास न होकर '**स्फटिकः स्वच्छः**' ऐसा ही प्रतिभास होता है तो यहां जिस तरह रक्तादि गुणयोगित्व स्फटिक में परोपाधिक है उसी तरह प्रकृत में पुण्यपापादि रूप कर्म के सम्बन्ध से जीव में भी परोपाधिक दुःखादि मल का प्रतिभास होता है किन्तु स्वभाविक नहीं ।

यथा वा-जिस तरह जल में स्वाभाविक शीत गुण रहता है परन्तु वह्नि संयोग होने से जल में भी उष्णता की प्रतिति होने लगती है तब तक जब तक वह्नि का सम्बन्ध रहता है उस के हट जाने के बाद जल में औष्ण्य नहीं रहता है किन्तु स्वाभाविक शीतता का अनुभव होता है तो अन्वय व्यतिरेक से सिद्ध होता है कि औष्ण्य वह्नि का धर्म है परन्तु वह्नि संबन्ध से जो जल में प्रतिभास होता है वह वह्नि

शरीरोचितज्ञानप्रसरमवाप्य तत्तच्छरीरेऽभिमानं कृत्वातदनुकूलकर्माणि कुर्वन् तदुचितसुखाद्युपभोगलक्षणमनादिप्रवाहं प्राप्नोति सोऽस्य संसार एतादृशलक्षणकः । अस्यजीवस्यैतादृशसंसारविनाशो भगवत्प्रतिपत्त्यैव

सिद्ध्यति यत् परमेश्वरशरणागतिमन्तरेण मोक्षो न भवतीति संक्षेपः ।

योहि यत्कार्य करोति समधिष्ठायैव करोतीतिनियमः, नहि कुलालो दण्डादीननधिष्ठाय करोति । दूरानेकदेशस्थितपदार्थसार्थस्य विदूरेस्थितत्वात् कथं भगवान् स्थावरजङ्गमात्मकं विचित्रानेकमनधिष्ठाय कर्तुं शक्नोतीति शङ्कां समाधातुं विलक्षणान्यत्रादृष्टं भगवतः शक्तिमत्वं विद्यते, तादृशीशक्तिरन्यत्रादृष्टापि भगवति विद्यते इति निवेदयितुमुपक्रमते मया ततमिदं सर्वमित्यादि मया परमेश्वरेण अव्यक्तमूर्तिना प्रमाणान्तरेणादृष्टस्वरूपेणापि, इदं सर्वं जगत् जायमानं पदार्थमात्रम् ततं व्याप्तं विलक्षणशक्तिमत्वेनान्यत्रादृष्टेन सत्यसङ्कल्पादिना परिगृह्य अन्तरवहिरवस्थितो भूत्वा परिगृहीतम् अत एव मत्स्थानि सर्वभूतानि मयि परमेश्वरे

लक्षण परोपाधिक है। इस तरह प्रकृत में प्रकृति में दुःख अज्ञानानन्दादिक धर्म समुदाय स्वाभाविक है और प्रकृति के सबन्ध से जो उन धर्मों का जीव में प्रतिभास होता है वह परोपाधिक है, ऐसा अन्वय व्यतिरक से सिद्ध होता है । अर्थात् जीव में ज्ञानान्दादिक स्वाभाविक है और दुःखादि मल का जो प्रतिभास होता है वह प्राकृतिक कर्म संबन्धरूप परोपाधिक है यह सिद्ध होता है ।

इन वस्तुओं को सिद्ध करने के लिये पुराण वचन का उद्धरण देते हैं-'**निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः । दुःखाज्ञानमलाधर्माः प्रकृतेस्ते न चात्मनः**' । इति । अर्थात्-यह आत्मा जीव निर्वाणमयानन्दमय ज्ञानमय और निर्मल हैं अर्थात् प्राकृतिक शरीरादि संपर्क जनित सकल मल से स्वाभावतः रहित है। दुःख अज्ञान तथा मल प्रकृति का धर्म है। आत्मा के ये सब धर्म नहीं हैं, अर्थात् ये दुःखादिक आत्मा के स्वाभाविक धर्म नहीं हैं। यदि दुःखादिक जीवात्मा का स्वाभाविक धर्म हो तब तो आत्मा इन सब धर्मों से कदापि वियुक्त नहीं हो, धर्म से रहित होकर के धर्मी का अवस्थान नहींहोता है, जिस तरह जल तब तक रहता है जब तक जल में शैत्य रहता ही है, शैत्य से वियुक्त जल नहीं होता है। प्रकृत धर्म जीव का स्वाभाविक मान लें तो जीव को मोक्ष नहीं होगा और '**निरंजनः परमं साम्यमुपैति**' इस श्रुति का बाध हो जायगा । अतः ये सब प्रकृति सम्बन्ध के कारण समुत्पन्न जो शुभाशुभ कर्म हैं तादृश कर्मो से दुःख अज्ञानादिक उत्पन्न होते हैं, अतः इन गुणों की उत्पत्ति होने में प्रधान कारण प्रकृति का सम्बन्ध ही होता है । प्रकृति सम्बन्धरूप उपाधि के कारण आत्मा में ये दुःखाज्ञानादिक प्रतिभासित होते हैं। और प्रकृति सम्बन्ध के नाश हो जाने पर आत्मा में इन सब धर्मो

न तु ज्ञानादिनेति । जीवः संसारान्निवृत्तो भवतु तदर्थं शास्त्रं प्रथमतो देवादिशरीरभिन्नत्वज्ञानमात्रस्वरूपत्वं सर्वजीवानां समतां च प्रतिपादयति, तादृशं जीवस्वरूपं भगवतः शेषभूतमिति भगवत्स्वरूपतां च प्रतिपादयति, तदनुभगवतः स्वरूपं हेयप्रत्यनीककल्याणगुणाक

सर्वाण्यपिभूतानि स्थितानि न तु मदन्यत्र विद्यमानानि । अहं परमेश्वरस्तेषु भूतेषु अवस्थितः स्थितो भवामि, यथा जलं घटादौ स्थितं भवति नाहं तद्वत्, आधाराधेयभावेनावस्थितः । यथा जलं घटेऽवस्थितं घटं न तथाहं भूतेषु स्थितः, किन्तु सर्वस्यानियामकत्वात्सर्वतो विलक्षणेनावस्थितः । एवम् 'अपाणिपादो जवनोगृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः । न तस्य वेद्यं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यंपुरुषं महान्तम्' 'न तस्य कार्यं करणं च दृश्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इत्यादिप्रमाणेन तथा 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत्' इत्याद्यनेकप्रमाणेन विलक्षणसत्यसङ्कल्पादिगुणयोगात् परमेश्वरः सर्वं जगदुत्पादयतीति न तदैश्वर्यविष-

---

का अभाव हो जाता है। जिस तरह वह्नि के सम्बन्ध से जल मे उष्णता आ जाती है उष्णता जल का स्वाभाविक धर्म नहीं है उसी तरह प्रकृति संबन्ध के कारण आत्मा में दुःख अज्ञान आदि आ जाते हैं परन्तु ये आत्मा के स्वभाविक धर्म नहीं हैं किन्तु परोपाधिक हैं । एवं जिस प्रकार वह्नि सम्बन्ध से जल में उष्णता के आनेपर जल का जो स्वाभाविक धर्म शैत्य है वह अभिभूत हो जाता है और उष्णता के दूर हो जाने से जल में शैत्य स्वयमेव अभिव्यक्त हो जाता है उसी तरह प्रकृति संबन्ध से आत्मा में दुःकादिक मलों के आने से आत्मा के जो आनन्दादिक स्वाभाविक धर्म हैं वे सब अभिभूत हो जाते हैं और प्रकृति सम्बन्धाभाव से दुःखादिक के हट जाने पर आत्मा के आनन्दादिक स्वाभाविक धर्म अभिव्यक्त हो जाता हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि दुःख अज्ञानादिक पदार्थ प्रकृति का जो सम्बन्ध है तत्प्रयुक्त ही आत्मा में प्रतीत होता है और प्रकृति के सम्बन्ध नहीं रहने से नहीं प्रतीत होता है इसलिये दुःख अज्ञानादिक प्रकृति जनित कर्म का स्वाभाविक है किन्तु ये सब गुण आत्मा के स्वाभाविक नहीं हैं परन्तु आत्मा का स्वाभाविक धर्म तो ज्ञानआनन्द और निर्मलता है। जिस तरह जपाकुसुम के सम्पर्क से स्वाभाविक में जो रक्तता है वह जपाकुसुम में स्वाभाविक है स्फटिक में परोपाधिक है, स्फटिक में तो स्वच्छता ही स्वाभाविक धर्म है, इसी तरह प्रकृत में समझना चाहिये। ऐसा '**निर्वाणमय**' इत्यादि पुराण वचन का अर्थ होता है ।

'**एवं ते सर्वेऽपि जीवाः**' इत्यादि, इसी तरह अर्थात् जिस तरह आत्मा दुःख

सकलेतरविलक्षणमनवधिकातिशयकल्याणगुणसागरं स्वसङ्कल्पकृतचिदचिद्वस्तुविशिष्टतया सर्वस्यान्तरात्मकतां च प्रतिपादयति । ततश्चैतादृशभगवतः प्रपत्तिरेव संसारमुच्छिद्य भगवन्तं प्रापयतीति तदीयोपासनं विदधाति ।

येविपरीततर्कावसरः ।

यदुक्तं पूर्वप्रकरणे भगवतो विचित्रैश्वर्यविषये तमेवार्थंदृढयितुं श्लोकमिमं प्रमाणतयोदाहर्त्तुं प्रक्रमते भगवतोविलक्षणैश्वर्य इत्यादि एकत्वेसतिनानात्वं नानात्वेसति चैकता। अचिन्त्यंब्रह्मणोरूपं कस्तद्वेदितुमर्हतीति । अयमर्थः-अयंश्लोको भेदाभेदवादिभिः स्वपक्षे भेदाभेदवादेप्रमाणितः । तथाहि परमात्मास्वरूपत एकरूपो भवन्नपि अनेकः । एवमनेकरूपो भवन्नप्येकः । अनेनप्रकारेण ब्रह्मजगतोर्भेदाभेदः । एतादृशं ब्रह्मणोरूपमचिन्त्यं तद्वेदितुं न

अज्ञानादिमान् नहीं है किन्तु स्वभावतः ज्ञानमय आनन्दमय और निर्मल हैं इसी तरह इन आत्मओं में ज्ञानाकाररूपतया परस्पर समानता ही है किन्तु मैं देह रूप हूं, इस प्रकार शरीर धर्म का मैं काणा हूं कुब्ज हूं इस इन्द्रिय धर्म का तथा यह पंडित है, यह मूर्ख है इत्यादिक अन्तः करण धर्म का जो परस्पर वैधम्य प्रतिभास होता है वह प्राकृतिक शरीरादिकों का संबन्ध प्रयुक्त परोपाधिक प्रतिभासित वैधर्म्य है । स्वरूप से तो सब आत्मा ज्ञान आनन्दमयाकार होने से समानाकारक ही हैं । इस बात को गीता में भगवान् स्पष्टरूप से बतलाये हैं-'**विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः**' इति । अर्थात् मूल प्रकृति देव मनुष्य तिर्यक् और स्थावर इत्यादि देहादिक के रूप से पारिणाम को प्राप्त करती हैं, ये सब देहादिक प्रकृति परिणाम अर्थात् कार्यरूप हैं । इन शरीरें से कर्म बल से जीवात्मा सम्बद्ध होती है जिस तरह ऋजु वक्रादि विभिन्न प्रकारक काष्ठ समुदाय से वह्नि सम्बद्ध होती है । शरीर के साथ संबन्ध होने से शरीरगत देवत्व मनुष्यत्वादिक धर्मो का आत्मा में प्रतिभास होता है, जिस प्रकार जपाकुसुम फूल की अरुणिमा का स्फटिक में प्रतिभास होता हैं । '**अरुणः स्फटिकः**' इति । यथा वा जिस तरह काष्ठगत ऋजु वक्रादि धर्मों का अग्नि में प्रतिभास होता है । वस्तुतः तो देवत्व मनुष्यत्वादिक धर्म आत्मा में नहीं रहता है आत्मा को उन शरीरों का संबन्धमात्र होता है जिस तरह ऋजुत्व वक्रत्व वह्नि का धर्म नहीं है अग्नि का तो केवल तादृश उन काष्ठों के साथ सम्बन्धमात्र रहता है । इसीतरह आत्मा शरीर सम्बन्ध के होने के कारण से होनेवाले सुख दुःखादिक औपाधिक धर्म हैं किन्तु आत्मा का स्वाभाविक ये सब धर्म

॥ जीवानांज्ञानानन्दत्वादिनिर्वचनम् ॥

सर्वोऽपिजीवः स्वभावतो ज्ञानानन्दरूपोनिर्मलश्च, यदस्मिन् दुःखादिकं दृश्यते तत् प्रकृतिसंबन्धजनितकर्मबलादेवेति सः परो

कोऽपिज्ञातुं शक्नोतीति । तदेतस्यमतं न समीचीनम्, यत एतादृशभेदाभेदस्य घटपटादौ घटत्वपटत्वाभ्यां भेदस्य द्रव्यत्वेन चाभेदस्य ज्ञातुंसरलतया अचिन्त्यमितिविशेषणं नानुकुलंस्यादित्यादिक्रमेणार्थः प्रकृतश्लोकस्य नोपयुक्त इति प्रकारान्तरेण श्लोकं व्याख्यातुमाह अत्र प्रशासनकर्तृत्वेन इत्यादि । अयं श्लोको भगवत आश्चर्यरूपवान् प्रतिपादयति नतु भेदाभेदम् । वस्तुतो भगवानेकरूप एव, किन्तु जडचेतनपदार्थेषु तदीयान्तरात्मतया तदन्तः प्रविश्य तं जडचेतनपदार्थ शरीरतया धारयतीति विचित्रानेकशरीरंधारयन् तेभ्यश्च विचित्रानेकशुभाशुभकर्मकारयन्ननेकरूपवानिव भवतीति एतदेवैकरूपेव्यवस्थितस्य परमात्मनोऽनेकरूपता । एवं स्वकीयाल्पांशेन विचित्रानेकेषु

नहीं हैं, आत्मा का तो स्वाभाविक स्वरूप ज्ञानानन्दमय है । सभी प्रकार के शरीरें में विद्यमान जीवात्माओं का स्वरूप ज्ञानानन्दमयादिक एक प्रकार का है उसमें परस्पर भेद नहीं है भेद प्रत्ययतो शरीरादि उपाधिकृत औपाधिक है,, अग्नि में ऋजु वक्रादिक तथा स्फटिक में अरुणिमा के समान अन्योंपाधि प्रयुक्त ही है ।

एतादृश आत्मस्वरूप का विचार करने में जो समर्थ हैं वे पण्डित कहलाते हैं अर्थात् आत्मविचार विषयक यावद् ज्ञानवान् का नाम है आत्मविषयक पण्डित । ये पण्डित लोग विभिन्न प्रकारक शरीर को धारण करनेवाले कर्माधीन जीवात्मा के उपर जब विचार करते हैं तब वे लोग विवेकपूर्वक इस बात को समझते हैं कि आत्माओं में प्रतिभास मान भेद शरीर भेद प्रयुक्त है परन्तु यह भेद आत्मा में नहीं है किन्तु सब शरीरों में अवस्थित जीवात्मा तो ज्ञानानन्दमय स्वरूप हैं उन आत्माओं में सर्वथा समानता है परन्तु सब आत्माओं में तो व्यक्ति भेद है अतः स्वरूप से एकता नहीं हैं, सर्वथा समता मानने में आपत्ति है-'**सर्वे आत्मानः समर्पिताः**' इत्यादि श्रुति से व्यक्ति भेद का समर्थन होता है । स्वरूपैक्य माननेपर उपर्युक्त अनेक श्रुतियों का बाध हो जायगा । देखने में तो कोई ब्राह्मण विद्या तथा विनय सम्पन्न देखने में आता है कोई ब्राह्मणत्व जाति मात्र से ब्राह्मण है ऐसा देखने में आता है । गुण की दृष्टि से देखा जाय तो इनमें वैषम्य का प्रतिभास होता है । कोई हाथी है तो कोई घोडा है इनमें आकारों की बिषमता है, कोई कुत्ता है तो कोई चाण्डाल श्वपच है, यहां इनकी आजीविका में विषमता है । इस प्रकार से अनेक प्रकारक विषमता जो जीव में

पाधिकः, जपाकुसुमोपाधिकस्फटिकमणिवत् वह्निसंबद्धजलवद्वेति, तदुक्तम्-'निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः' इति । एवम् ते

प्रविष्टोऽपि स्वरूपत एक एवाद्वितीय एवेति । इत्येवमनेकरूपेणावस्थितस्य परमेश्वरस्य नानारूपतेति । नानात्वेसति चैकता इत्यस्यायमर्थः स्वकोयस्वल्पांशेन सर्वाश्चर्यमयानेकविचित्रे जगति प्रपञ्चे तेषामन्तरात्मतया तदन्तः प्रविश्य सर्व पदार्थजातं धारयन्ननेकरूपेण दृष्टो भवति यः परमेश्वरः स तु स्वत एकएव अद्वितीय एव, न तत्सदृशस्ततोधिको वा कश्चित् 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' इतिश्रुतेः समाभ्यधिकविवर्जितः 'नेदं यशोरघुपतेः सुरयाञ्चयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः' इत्यादिरूपेणश्रीबादरायणोक्तेश्च । तथामनुष्यैः पूज्यत्वात् ब्रह्मादिदेवानामप्यधिदैवः

देखने में आता है ये सब शरीर विषमता मूलक वैषम्य है परन्तु आत्मा में वैषम्य नहीं है क्योंकि इन विषम शरीरों में वर्तमान आत्मा तो एक समान है सब जीव ज्ञानानन्दमय स्वरूप हैं। सब में समानता है इस बात को आत्म स्वरूप में पण्डित लोग ही समझ पाते हैं। प्रकृति संबन्ध रहित जीवात्माओं का स्वरूप समान है एतादृश अर्थ उपर्युक्त श्लोक का होता है।

"**एतादृशसमता दर्शनस्य**" **इत्यादि** एतादृश सम दर्शन का फल विशेष को शास्त्र ने वर्णन किया है- "**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः । निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्मात् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥**" अर्थात् यह जो सम दर्शन है वह कालान्तर में फलदायक होता है, इतना ही नहीं किन्तु संसार में साधन का अनुष्ठान के संपादन करने के समय में भी साधक को मोक्ष की समानदशा में प्राप्त करा देता है मोक्ष में सब प्रकार के दुःख क्लेश निवृत्त हो जाते हैं परन्तु समदर्शी पुरुष को तो संसारावस्थान काल में भी बहुत प्रकार के क्लेश जाल निवृत्त हो जाते हैं। इस संसार में रहते समय में भी वे संसार को जीत जाते हैं, जिनका मन जीवात्माओं की समता में दृढ़ प्रतिष्ठित रहता है। इस बात को सभी मानते हैं कि ब्रह्म ज्ञान से संसार का संतरण हो जाता है- "**तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**" "**तरतिशोक मात्मवित्**" इत्यादि ।

कर्मद्वार मूलक प्रकृति का संबन्धरूप दोष से सर्वथा रहित हो जाने पर अत एव परस्पर में सदृश होकर के रहनेवाली सब जीवात्माएं ब्रह्म हैं। एतादृश आत्माओं की सदृशता में वर्तमान साधक को ब्रह्म में ही अवस्थित मानना चाहिये। एतादृश साधक संसार को जीत जाते हैं, इस में किसी प्रकार के संशय को अवकाश नहीं है। "**निर्दोषं हि समं ब्रह्म**" इस श्लोक के तृतीय चरण के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है। इस का अभिप्राय यह है कि देव मनुष्य पशु

सर्वेऽपि जीवाः परस्परं समाना एव नतु तेषांस्वरूपे वैधर्म्यम् । तदुक्तम् 'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनिचैव श्वपाके च पण्डिताः

'तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम्' इत्युक्तेस्तस्य परमेश्वरस्य सर्वश्रेष्ठत्वम् उत्कर्षस्य चरमकाष्ठामवाप्तः सन्नसंख्येयहेयप्रत्यनीकानन्तकल्याणगुणाना सागर इव सागरः । जगत आदिकारणं तद्ब्रह्म एतस्य सर्वाश्चर्यमयरूपं ज्ञानिनामपि चेतस्याश्चर्यं विदधाति । एतादृशवैलक्षण्यविशिष्टः परमात्मा श्रीरामो यथा लीलाविभूतौ विद्यमानब्रह्मादीनां स्वभावतः स्वामी तथैवलीलाविभूत्यपेक्षयाऽत्यधिकभोगविभूतौ तथा तत्र निवसतासंख्य-मुक्तपुरुषाणां नित्यसूरीणां च नित्यसिद्ध एव स्वामी भवति । तदुक्तम् 'तदक्षरे परमेव्योमन्' यः साधकः हृदयगुहामवस्थितं परमात्मानं प्रत्यक्षसामानाकारज्ञानेन समनुचिन्तयति स परमपदंप्राप्य ब्रह्मणासहैव सर्वकल्याणगुणमनुभवति, विनाशरहितपरमाकाशाख्ये परमपदे परंब्रह्म व्यवस्थितमित्यर्थकवेदेत सर्वोत्तमदिव्यलीलात्मकपरमपदस्य स्वामी परमात्मैवनान्य इति सिद्धं भवति ।

तिर्यगादि शरीरो से जो कि प्रकृति के परिणाम रूप हैं, उन शरीरों के साथ संबन्ध रखना यह महा दोष है, एतादृश दोष से रहित हो कर के स्व स्वरूप में अवस्थित प्रत्येक जीवात्मा परस्पर समान हैं इन सब जीवों का स्वरूप ज्ञानानन्दमय है। इस प्रकार उपर्युक्त यह गीता का वचन उपाधि रहित जीव स्वरूप के सादृश्य का वर्णन करता है। इन उपर्युक्त प्रमाण समुदाय से सिद्ध हो जाता है कि जीवात्मा प्राकृतिक शरीरेन्द्रिय प्राण मन और बुद्धियों से अति विलक्षण है ज्ञानानन्द स्वरूप है और सभी जीवों में पूर्ण रूप से सादृश्य भी है। इन सर्व विषयों का पूर्णरूप से आचार्यजी ने विचार किया है-'**प्राकृतिक मनुष्य तिर्यगादि संपर्क लक्षण दोष रहित**' इत्यादि प्रकरण से समझना चाहिये। यद्यपि प्राकृतिक सर्व दोष से रहित जीवों में ज्ञानानन्द रूप से समानता का स्वीकार करने पर केवलाद्वैत से इस मत में कुछ विलक्षणता तो नहीं आती है मतैक्यापत्तिरूप दोष होते हुए सा प्रतीत होता है। इष्टापत्ति मानें तब तो सिद्धान्तान्तर प्रणयन का प्रयास निरर्थक होता है ? तथापि वे केवलाद्वैत पक्षवादी जीवमात्र को स्वरूपतः एक मानते हैं, सदृश नहीं मानते हैं, सादृश्य तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्वरूप होने से भेद घटित सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सब समान जीव हैं-नतु स्वरूपः एक स्वरूप हैं अर्थात् सब जीवों के स्वरूप में तादात्म्य नहीं है किन्तु सब का स्वरूप तो भिन्न रहता है पार्थक्य प्रयोजन प्रकृति सम्बन्ध रूप दोष का अभाव होने से सामान्य ज्ञानानन्द रूप से समानता होती है परन्तु स्वरूप से एकता नहीं होती है। और भी देखिये-इनके मत में जीव ब्रह्म में सर्वथा अभेद माना गया है और ब्रह्म को निर्गुण मानते हैं परन्तु मेरे सिद्धान्त में ब्रह्म को अनन्त

समदर्शिनः ' विषमाकारतया परिदृश्यमानेष्वपि तेषु तेषु जीवेषु पण्डिताः समत्वदर्शिन एव भवन्ति तदत्राहुर्जगद्विजयिनोऽस्मद्गुरवोमहामहोपा-

भगवतो महिमा विलक्षणः सः स्वसदृशः स्वयमेव 'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपम' इति लोकोक्तेः । स एक एवाद्वितीयः समाभ्यधिकवर्जितः 'नेदंयशोरघुपतेः सुरयाञ्चयात्त-लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः' (भा.९।११।२०) इति श्रीव्यासोक्तेः । अचिन्त्यं ब्रह्मणो रूपंकस्तद्वेदितुमर्हति इति एतादृशब्रह्मस्वरूपं चिन्तयितुमशक्यम् । तत्सदृशविलक्षणयोग्यता नान्यत्र विद्यते, लोकेदृश्यते एकस्वभावः पदार्थः पदार्थान्तरस्वभावं नासादयति वह्निजलवत् । ब्रह्म तु सर्वविजातीयत्वात् सर्वस्वभावकमिति तत्र सर्वशक्तिमत्वं सर्वकार्यकारित्वमपि घटते, नहि परमात्मा कस्यापि सादृश्यमनुकरोति सर्वविलक्षण एवेति सर्वशक्तिमत्वं तत्रावश्यं मन्तव्यम् ।

कल्याण गुण गणक मानते हैं जो कि श्रुति स्मृति पुराण वचनों से सिद्ध होता है तथा **एवञ्चाखिलश्रुतिस्मृतीतिहासपुराणसामञ्जस्यादुपपत्तिवलाच्चविशिष्टाद्वैतमेवास्य ब्रह्ममीमांसाशास्त्रस्य विषयो नतु केवलाद्वैतम्** (१।१।१) इत्यादिभाष्यकारीयवचनों से अनुमोदित है । इत्यादि अनेक युक्तियों अन्यत्र देखें । यहां तो दिग्दर्शन मात्र कराया गया है ।

उपर्युक्त विषय-इसके पूर्व में विस्तृत रूप से विचारित हो गया है कि वेद स्मृति इतिहास और पुराणों में जो यह स्वभावतः ज्ञानानन्द स्वरूप वाली जीवात्मा भगवान् का शरीर और तनु इत्यादि शब्दों से वर्णन कर के तथा-' **तत्त्वमसि** ' इत्यादि शब्दों से उक्तरूप से अभेद का निर्देश कर के यह भी बतलाया गया है कि जीवात्मा भगवान् का शेष है तथा नियाम्य है और परमेश्वर पर आधारित है क्योंकि जो शरीर होता है वह यथोक्त रूपवाला ही होता है जिस तरह यह पाञ्चभौतिक शरीर जीवात्मा का शेष है नियाम्यादिक होता है और वह शरीर कर्म सम्पादित होता है, उस शरीर की प्राप्ति ही संसार है, इस संसार का निवृत्तिरूपयोग भगवान् की उपासना से होता है, इन सब बातों का विचार करने के लिये कहते हैं कि-'**वेदस्मृतीतिहासपुराणेषु**' इत्यादि। वेद श्रुति स्मृति इतिहास पुराणों में ज्ञान आनन्द स्वरूप जीवात्मा परमात्मा का शेष है नियाम्य है तथा परमेश्वर पर आधारित हैं। तथा जीवात्मा में भगवान् का शरीर तनु इत्यादि शब्द के द्वारा भगवान् से जीव का अभेद भी निर्देश किया गया है इन सब बातों का कथन पूर्व में किया गया है। अर्थात् जो जिसका शरीर होता है वह उसका शेष होता है नियाम्य होता है तथा तदाधारित भी होता है जिस तरह जीव का यह शरीर जीव का शेष है जीव का नियाम्य होता है जीवाधारित भी होता है इसी तरह परमेश्वर का शरीर रूप जीव

ध्यायपदविका जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यवेदान्तकेसरिणः ' अत्र हि भगवतासमदर्शिनमुद्दिश्यपाण्डित्यं विधीयते ये समदर्शिनस्ते एव पण्डिता इति । यद्वापण्डितमुद्दिश्यसमदर्शित्वं वीधीयते पण्डितैः

अयमर्थो वचनान्तरेणापि सिद्ध्यति शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः । यतोऽतोब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्याभावशक्तयः । भवन्ति तपतां श्रेष्ठ ! पावकस्य यथोष्णता इति । अर्थात् हे ऋषिश्रेष्ठ ! पदार्थमात्रस्यशक्तिरचिन्त्यैव न सा तर्केणापनेया यथा वह्नेरौष्ण्यं वह्निव्यतिरिक्ते पदार्थत्वहेतुना नानुमेयम् प्रत्यक्षादिबाधात् । एवं परब्रह्मणि नान्यथा अनुमेयमागममात्रगम्यत्वात्तस्य अनुमानगम्ये दृष्टान्तापेक्षानागमगम्ये तदावश्यकता यदातु प्राकृतवस्तुनि स्वभाववैलक्षण्यादन्यधर्मोनान्यत्र संक्रमयितुं योग्यस्तदाकाकथा सर्वविसजातीये परमात्मनि । शास्त्रेण तु परमात्मा विचित्रानन्तशक्तिमत्तयैव सिद्धो भवति । नही शास्त्रावगतोऽर्थस्तर्केणापनेतव्यः । 'नैषातर्केणमतिरपनेया' इतिश्रुतेः । अचिन्त्याखलु

परमेश्वर का शेषादिरूप है । इससे सिद्ध होता है जीवात्मा को परमात्मा का शरीर कहने से जीवात्मा में परमेश्वर शेषत्वादिक स्वभावतः सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवात्मा भगवान् का शेष है शेष होना ही जीवात्मा का सारभूत धर्म है तथा शेषत्व के ज्ञान से जीवात्मा का कल्याण है। इस तरह जीव में परमात्मा शेषत्व का निरूपण कर के मोक्षोपाय के विषय में विचार करने के लिये कहते हैं-

"तथा दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।"

'भगवान् की प्रपत्ति-शरणागति के बिना जीव मुक्त नहीं हो सकता है इस बात को समझाने के लिये आचार्यपाद ने '**दैवी ह्येषा गुणमयी**' इत्यादि वचन को प्रमाण रूप से उद्धृत किया है । अर्थात्-प्रकाश शील होने से परमेश्वर देव हैं क्योंकि भगवान् सर्वदा लीलारस में प्रवृत्त रहते हैं ईश्वर से यह माया विस्तारित हुई है इसलिये यह माया दैवी कहलाती है। (देवस्येयमिति दैवी, यह इसका निर्वचन है।) परमेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह दैवी माया गुणमयी है अर्थात् सत्व गुण रजो गुण तथा तमो गुण से सदायुक्त है। तथा यह प्रकृति-सदा विचित्र अनेक कार्य का उत्पादन करने वाली है, इसलिये इसे माया कहते हैं, एतादृश माया का अतिक्रमण करना तथा इससे छुटकारा पाना अशक्य है, सभी जीव इसमें फंसे रहते हैं और जीवमात्र भगवान् को विस्मृत कर के इसी माया को परमभोग्य मानते हैं इसलिये इस माया से छुटकारा पाने के लिये किसी की इच्छा भी नहीं होती है। (जीस तरह जिसने धृत को नहीं देखा, उसका रसास्वाद नहीं किया हो वह तिल तेल को ही मीठा समझता है।) एतादृश माया से छुटकारा पाने का उपाय क्या है ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् कहते हैं-'**मामेव ये**

समदर्शिभिर्भाव्यमित्यर्थोऽस्तु । सर्वथाहि समदर्शित्वे तात्पर्यम् । तत्रापि ज्ञानैकाकारेणैवात्मा समतया सर्वात्रावतिष्ठत इति बुबोधयिषया-

ये भावा न तांस्तर्केण योजयेदिति स्मृतेः । यत्नेनानुमितोप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः । अभियुक्ततरैरन्यैरन्यथैवोपपाद्यते' इत्यादिना 'तर्काप्रतिष्ठानादिति सूत्रे शुष्कतकस्यानादेयत्वं प्रतिपादितम् । तस्माच्छास्त्रगम्येऽर्थे तर्क परिहायशास्त्रमात्रेणैव स अर्थोव्याख्येयः । शास्त्रं तु ब्रह्मणः सर्वविलक्षणत्वं प्रतिपादयति, अतोविरुद्धस्वभाववत्वमपि स्वीकृत्य ब्रह्मणो विचित्रानन्तमत्वप्रतिपादकमेव 'एकत्वे सति नानात्वं नानात्वे सति चैकतेतिश्लोको ब्रह्मणो विचित्रशक्तिमत्वमेकत्वं नानात्वमेव बोधयति यथाव्याख्यातमस्माभिर्नतुप्रकृते भेदाभेदवादस्यावसर इतिसंक्षेपः ।

गतप्रकरणे परमतनिराकरणपूर्वकस्वमतंप्रदर्शन् योऽर्थोनिर्धारितः स श्रुतिसमूहैस्त-

प्रपद्यन्ते' इत्यादि उत्तरार्द्ध वाक्य । भगवान् कहते हैं कि जो पुण्यशाली जीव मेरे परमेश्वर की शरण में आते हैं वे ही जीव इस दुस्तर माया को पार कर जाते हैं । जिस भगवान् की आज्ञा से यह भयङ्कर माया बन्धन जीव को कष्ट दे रहा है तादृश परमेश्वर के द्वारा ही यह माया हट सकती है अन्यथा नहीं, क्योंकि भगवान् सत्य संकल्प हैं भगवान् का बन्धक संकल्प ही सत्य है ऐसा नहीं किन्तु मोक्ष कारण संकल्प भी ध्रुव सत्य होता है । भगवान् की शरण में जाने पर भगवान् शरणागत जीव को मुक्त करने के लिये संकल्प करते हैं तथा वह सङ्कल्प सत्य है अतः भगवान् की शरण में जाने पर जीव का कल्याण ही कल्याण है । भगवान् अकारण दयालु हैं, सब के उपर दया करते हैं । इसमें गीध सुग्रीव आदि दृष्टान्त है। भगवान् का प्रतिज्ञा वचन है कि-'**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।**' इस वचन से सिद्ध होता है कि परमेश्वर की शरण में जाने पर ही जीव को मोक्ष होता है इसके बिना मोक्ष की आशा दुराशा ही है । इसमें वेद वचन प्रमाण हैं-'**तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' अर्थात् समस्त चिदचिद्विशिष्ट तथा सर्वशेषी सर्वनियामक और सर्वाधार परमात्मा को-मैं परमात्मा का शेष हूं, नियाम्य हूं तथा परमात्मा पर आधारित हूं और परमात्मा का शेष बनने पर ही मेरा सर्व प्रकारक कल्याण होगा, इस तरह से परमात्मा को जान कर के ही अतिमृत्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं जीव गण अर्थात् यथोक्त ब्रह्म ज्ञान हो मोक्ष का कारण है । इस ब्रह्मज्ञान को छोड कर के अतिरिक्त कोई मोक्ष कारण नहीं है । अर्थात् '**विदित्वा**' इस पद का अर्थ होता है कि यथोक्त ब्रह्म ज्ञानवान् मोक्ष को प्राप्त करता है तो यहां ज्ञानवान् को उद्देश्य करके मोक्ष का विधान किया गया है तो यहां ज्ञानवान् उद्देश्य है और मोक्ष विधेय हैं तो

समुपक्रान्तोऽयंश्लोकः । तथा च सविशेषणेविधिनिषेधोविशेषणमुपसंक्रामतः सतिविशेष्ये बाध इति दर्शनस्य स्वाभाविकत्वात्तद्विशेषणतावच्छेदकस्यैव विधाने बोधनवा तात्पर्य, साम्यञ्चतत्प्रतियोगिवैषम्यञ्चुक्तेष

थाशिष्टद्वारा स्वीकृततदीयव्याख्यानग्रन्थेषु महता परिश्रमेण सर्वसमन्वयपूर्वक एवावधारितः तत्रेदानीमध्ययनेऽनेकाः श्रुतयः सन्ति तत्र प्रतिपादिता अर्था अप्यनेका एतादृश्यः श्रुतयोप्यनेकाः यासामध्ययनं नेदानीं भवती तासु प्रतिपादितापदार्था इतिहासपुराणादिभ्यामेवावधार्यते । आसां व्याख्यानमप्यनेकप्रकारकमेव । तत्र महता प्रयत्नेन सर्ववचनानां समन्वयोध्यायन् पूर्वोक्त एवार्थः सिद्धान्तसिद्ध इत्याभाति । ता अनेकाः श्रुतयः काः ? इति दर्शयितुं तासां च व्याख्यानं कर्तुं प्रक्रमते एतावताप्रकरणेन इत्यादि । तत्रानेकश्रुतिवाक्यानिजगदुत्पत्तिप्रलयपरकाणि तत्र सर्गोऽनेकपार्थानां स च नियतक्र मानुसारेणैव एवं प्रलयोऽनेकानां नियतक्रमेणैव । तत्र सृष्टिप्रलययोरूपपादकंशास्त्रमेवप्रमाणं

विधेय में उद्देश्यावच्छेदक प्रयोजकत्व का लाभ होता है तो यहां इद्देश्यतावच्छेदक ज्ञान प्रयोजकत्व मोक्ष में लब्ध होता है । इसलिये एतादृश ज्ञान में अवच्छेदक विधया कारणत्व सिद्ध होता है यथा-धनवान् सुखी' इस स्थल में धनवत् को उद्देश्य कर के सुख का विधान किया जाता है तो सुखरूप विधेय में उद्देश्यतावच्छेदक धन प्रयोज्यत्व होने से यावत्कालपर्यन्त धन रहता है तावत्काल पर्यन्त सुख होता है, तो इस तरह उद्देश्यतावच्छेदक प्रयोज्यत्व तथा उद्देश्यतावच्छेदक कालावच्छिन्नत्व भी विधेय में भासित होता है । अतः धन प्रयोज्य सुख धन काल में ही होता है अन्य काल में धन व्यतिरेक रहने पर सुख लाभ नहीं होता है । इसी तरह प्रकृत में मोक्ष उद्देश्यतावच्छेदक ब्रह्म ज्ञान प्रयोज्य है तथा ब्रह्मज्ञान काल में ही होता है, इस प्रकार से ब्रह्मज्ञान में अवच्छेदक विधया कारणत्व मोक्ष को होता है । और कारण के विना कार्य नही होता है यह नियम है, अतः श्रुति ब्रह्म ज्ञान में कारणता का विधान कर के आगे कहती है-'**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' अर्थात् ब्रह्म ज्ञान के अभाव में अन्य कोई दूसरा कारण मोक्ष का नहीं है अर्थात् मोक्ष ब्रह्म ज्ञान रूप कारण के अभाव में नहीं होता है जिस तरह वह्नि रूप कारण के सद्भाव में ही धूम होता है और वह्नि के अभाव से धूमाभाव हो जाता है कारणाभाव है व्याप्य उससे कार्याभाव व्यापक की सिद्धि हो जाती है उसी तरह प्रकृत में ब्रह्म ज्ञानाभाव रूप व्याप्य से मोक्षाभाव रूप व्याप्याभाव सिद्ध हो जायगा व्यापक का अभाव व्याप्य के अभाव का साधक होता है, यह अन्यत्र सिद्ध किया गया है । इसलिये '**नान्यः पन्था**' इत्यादि श्रुति खण्ड सार्थक है, यथोक्त अभिप्राय से यह पद सार्थक है । इस प्रकार से एतादृश

पदार्थेषु सद्गुरुशास्त्रसेवनाभ्यासजनितज्ञानदृष्ट्या सम्पादनीयम्'(गी. ५।१८) इति । एतादृशसमतादर्शनस्यफलमपि दर्शितं शास्त्रे 'इहैवतैर्जित: सर्गोयेषां साम्ये स्थितं मन: । निर्दोषं हि समंब्रह्म

न तदन्यत् । शास्त्रन्त्वनेकप्रकारेण क्रमं प्रतिपादयति, क्वचित्तेज: प्रमुख: सर्गप्रलय:, क्वचिदाकाशप्रमुख: । अतोऽत्र सर्वश्रुतीनां विचार्य्यैव समन्वय: प्रतिपादनीय: तत्र भेदनिषेधिका: श्रुतय इमा: । तथाहि नेहनानास्तिकिञ्चनमृत्यो: स मृत्युमाप्नोति य इहनानेवपश्यति अस्मिन्निति‍ीह, इह ब्रह्मणि नानाकिञ्चन वस्तु नास्ति, इह ब्रह्मणि नाना वस्तु सामान्यस्य निषेध: प्रतिपादितो भवति, यो हि नानावस्तु सामान्यं पश्यति स साधक: मृत्यो: सकाशान्मृत्युं मरणं प्राप्नोति, भेददर्शने महानयं दण्ड उदीरित: । एतावता वस्तुसामान्यनि-

---

अभिप्राय को लेकर के जगदाचार्यजी ने मोक्ष के प्रति ब्रह्म को कारणता प्रदर्शन करने के लिये- 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्य: पन्था विद्यतेऽयनाय' इस श्रुति का उद्धरण दिया है।

ब्रह्मज्ञान का जो कारण कहा है यहां ब्रह्मज्ञान से परमेश्वरोपासन विवक्षित है- '**न्यायचर्चेयमीशस्यमननव्यपदेशभाक् । उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता**' इत्याद्यनुरोध से । यह युक्त भी है क्योंकि '**निदिध्यासितव्य:**' इस स्थल में मनन के अनन्तरकाल में उपासना का कथन किया है तथा उपासना के बाद ही ब्रह्म साक्षात्कार संभवित है अन्यथा नहीं। अत: ब्रह्मज्ञान उपासना का उपलक्षक है तथा ब्रह्मज्ञान परमेश्वर प्रपत्ति-शरणागति का भी उपलक्षक है। '**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।**' इस भगवद्वाक्य से सिद्ध होता है कि उपासक को भी शरणागति आवश्यक है यह प्रपत्ति दो प्रकार की होती है अङ्ग प्रपत्ति और स्वतन्त्र प्रपत्ति इसमें भक्ति सहित प्रपत्ति को अङ्गप्रपत्ति कहते है, और तद्रहित प्रपत्ति को स्वतन्त्र प्रपत्ति कहते है । इस प्रकार से शरणागति को मोक्ष के प्रति कारणत्व होता है। प्रपत्ति के अभाव में मोक्ष की संभावना नहीं है इसलिये ज्ञानमात्र के कारणतावादी को भी शरणागति का स्वीकार करना आवश्यक है यदि वे लोग मोक्ष की इच्छा रखते हों तब । अन्यथा उनकी इच्छा रुचीनां वैचित्र्यादिति ।

जिसतरह ब्रह्म ज्ञान में मोक्ष कारणता का विधायक '**तमेव विदित्वा**' इत्यादि श्रुति है उसी तरह श्रुत्यन्तर भी है इस अभिप्राय से कहते हैं '**तरति शोकमात्मवित्**' सनत्कुमार कहते हैं हे नारद ! जो साधक आत्मवित् यथोक्त ब्रह्म को जानता है वह साधक शोकपदवाच्य संसार का तरण कर जाता है। यहां भी आत्मवित् को उद्देश्य कर के संसारतरण का विधान किया है तो उद्देश्यतावच्छेदक रूप

तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता:' इति प्राकृतिकमनुष्यतिर्यगादिसंपर्क-लक्षणदोषरहिततया समानरूपेण ज्ञानानन्दादिना सर्वमात्मवस्तु-तुल्यरूपेणैव स्थितमित्यर्थ: ।

षेधप्रतिपादनादर्थतो ब्रह्मण्यभेद: स्थितोभवतीति समुदाहृतश्रुत्यर्थ: । यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत् तत्केन कं विजानीयात् यस्यामवस्थायामस्य साधकस्य सर्ववस्तुजातं ब्रह्मस्वरूपमेव जातं नास्तिकर्त्रादिकारकभेद: तस्यामवस्थायां स साधक: केन करणं कं कर्मीभूतं पश्येत्, ब्रह्मव्यतिरिक्तं कं पदार्थं कर्मतया आकलयेत् केन वा कं जानीयात्, अर्थात् नैव पश्येन्नवा विजानीयात् विषयतया प्रत्यक्षे तादात्म्येन वस्तुत: कारणत्वेन तत्र कारकभेदस्यैक्यज्ञानेन प्रत्यस्तमितत्वेन करणकर्मणोरभावात् । अनेन प्रकारेणानेकानि श्रुतिवचनानि भेदनिषेधद्वारेणाभेदप्रतिपादकानि सन्ति तथा ब्रह्मण: सगुणप्रतिपादकमपि

से ब्रह्मज्ञान में कारणत्व सिद्ध होता है। इसी तरह वाक्यान्तर भी ब्रह्मज्ञान में नामरूपात्मक संसार विमोक में ब्रह्मज्ञान मोक्ष में कारणता का विधायक वाक्य हैं जिसका उद्धरण दिया हैं-'**विद्वान् नामरूपाद्विमुक्त:**' अर्थात् विद्वान् ब्रह्मज्ञानी लोग नामरूपात्मक इस संसार से विमुक्त हो जाते हैं। इससे भी बतलाया गया कि ब्रह्मज्ञान से संसार का विमोक होता है। इस प्रकार संक्षेप से इस प्रकरण का विवरण किया गया है। विशेष जिज्ञासु स्वयं इस पर अधिक विचार करें। अथवा स्थलान्तर में देखें।

परमेश्वर सर्वशक्ति से युक्त हैं तथा परमेश्वर की नियमन शक्ति अत्यन्त विलक्षण है इस बात को बतलाने के लिये गीतावचन को प्रमाणरूप से बतलाते हैं-'**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित: । न च मत्स्थानिभूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् । भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावन: ।**' अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि यह जो स्थावर जङ्गममय संपूर्ण जगत् संसार है वह मुझ परमेश्वर से व्याप्त है मैं अपना जो विलक्षण स्वरूप है उसको नहीं प्रकाशित करता हुआ सम्पूर्ण इस जगत् को व्याप्त करता हूं। अर्थात् इस जगत् का धारण नियमन करने के लिये और उस जगत् को स्वकीय अभिमत उपयोग में लाने के लिये मैं अन्तर्यामी बन कर जगत् के अभ्यन्तर और बाहर व्याप्त हो कर के रहता हूं। हमसे जगत् के व्याप्त होने पर ही इस जगत् की स्वरूप स्थिति तथा नियमन हो सकता है, अत: संपूर्ण चेतन तथा पदार्थ मेरा ईश्वर का आश्रय प्राप्त कर के ही स्वकीय स्थिति को प्राप्त कर रहे हैं। जिस तरह यह शरीर जीवात्मा का आश्रय प्राप्त कर के ही अपनी स्थिति को प्राप्त कर के रहता है, उसी तरह संपूर्ण जगत् मेरा शरीर है, इसलिये

ꆜ जीवस्य ब्रह्मशेषत्वादिनिर्वचनम् ꆜ

वेदस्मृतीतिहासपुराणेषु तस्य ज्ञानानन्दस्वरूपस्य जीवात्मनः परमेश्वरसर्वशेषिश्रीरामशेषत्वं परमेश्वरनियाम्यत्वं परमेश्वराधारत्वं तथा

वचनं भवति। यः सर्वज्ञः ससर्ववित् यस्य ज्ञानमयंतपः यः परमात्मा स्वरूपतः सर्वं जानाति, तथा प्रकाररूपेणापि जानाति, धर्मिरूपेण प्रकाररूपेण च सर्वविषयकज्ञानवान् सामान्यरूपेण विशेषरूपेण च सर्वविषयकज्ञानवान् तथा यस्यपरमेश्वरस्य तपः ज्ञानमयात्मकमेवेति श्रुत्यर्थः । एतावता परमेश्वरे गुणवत्त्वमाविष्कृतमिति । सर्वाणिरूपाणिविचिन्त्यधीरोनामानिकृत्वाऽभिवदन् यदास्ते अर्थात् धीरः परमेश्वरसर्वाणिरूपाणि विचिन्त्य सर्वरूपाणि सृष्ट्वा सर्वं समुत्पाद्येत्यर्थः तेषामुत्पाद्यमानवस्तूनां भिन्नभिन्नरूपेण नामकरणं कृत्वाअभिवदन् व्यवहारं कुर्वन्नास्तेस्थित इत्यर्थः । सर्वेनिमेषाजज्ञिरे

मेरी सत्ता के अधीन इनकी स्वरूप स्थिति है। इनकी स्वरूप स्थिति बनी रहे, इसलिये मैं ईश्वर इस संपूर्ण जगत् में व्याप्त होकर के रहता हूं। मुझ परमेश्वर से जगत् का उपकार होता है। मेरे बल से सत्ता को प्राप्त करते हैं इसलिये ये परमेश्वर के द्वारा धृत हैं। परमेश्वर से जगत् उपकार प्राप्त करता है जिस तरह उसी तरह मैं परमेश्वर इन से कुछ भी उपकार को नहीं प्राप्त करता हूं, क्योंकि मेरी स्थिति प्रपञ्चाधीन नहीं है परन्तु प्रपंच स्थिति मदधीन है, मदीय स्थिति के विषय में यह समस्त जगत् कुछ भी उपकार नहीं करता है और यह संपूर्ण जगत् मेरा परमेश्वर का आधार लेकर के ही स्थित रहता है, इसलिये यह संपूर्ण जगत् मुझ पर स्थित है। मैं इस जगत् का आधार हूं परन्तु कुण्डवदर के समान आधाराधेयभाव नहीं है किन्तु मै स्वकीय संकल्प द्वारा धारण करता हूं। मेरे सङ्कल्परूपयोग को देखो। एतादृश सङ्कल्प अन्यंत्र किसी भी जगह देखने को नहीं आता है, यह सङ्कल्प मेरा असाधारण है अर्थात् इतर व्यावृत्ति हैं अतः मैं सर्व विलक्षण हूं। एतादृश सर्व विलक्षण मेरा सङ्कल्प जगत् का उत्पादन धारण तथा नियमन करता है, अतः मैं ईश्वर सर्वशक्ति संपन्न हूं। मेरा ऐसा एश्वर्य नियमन सामर्थ्य अत्यन्त विलक्षण है। संकल्प मात्र से इस विश्व का धारण और नियमन कह कर के यह सिद्ध किया कि यह संपूर्ण जगत् भगवान् का शरीर है भगवान् विश्व की अन्तरात्मा हैं क्योंकि शरीर का धारण और नियमन आत्मा के सङ्कल्प से होता है ऐसा लोक सिद्ध है। इससे यह सिद्ध हुआ अि जड चेतन साधारण जगत् भगवदात्मक है।

इसी बात का पुनः कथन करते हुए भगवान् ने कहा है कि-'**विष्टभ्याहमिदं**

परमेश्वरशरीरतनुशब्देन परमेश्वराभेदेन च प्रतिपादितमितिदिक् । तथा 'दैवीह्येषा गुणमयी मम मायादुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।' इत्यादिवतनैर्यथोक्तस्पस्य जीवात्मनः स्वकम

विद्युतः पुरुषादधि विद्युत्सदृशवर्णवात् देदीप्यमानः परमात्मा तस्मात्सर्वेनिमेषाः समुत्पन्नाः इत्यर्थः। अपहतपाप्मविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिधित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः अयं परमात्मा सर्वपापरहितस्तथाजन्मजरामृत्युशोकबुभुक्षापिपासादिप्राकृतसर्वधर्मविवर्जितः, स्थायी अनेकभोग्यपदार्थवान् सत्यसङ्कल्पवांश्चेतर्थः समुदाहृतश्रुतिवचनेन, जगतिविद्यमानसकलहेयगुणानां निषेधः प्रतिपाद्यते, तथा परमात्मासर्वोत्कृष्टनिखिलकल्याणगुणानां निधिरित्यपि प्रतियाद्यते । तथा स परेशः सर्वज्ञो नामरूपयोः कर्ता सर्वाधारश्चेत्यपिनिवेद्यते एतावता भगवति कल्याणगुणवत्त्वं निवेदितं भवतीति ।

अनेकाः श्रुतयः, ब्रह्मसृष्टमिदं जगदनेकाकारकमिति प्रतिपाद्य तेषु जगत्सु

कृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत्' अर्थात्-यह संपूर्ण जड चेतन कारणावस्था में सूक्ष्म बनकर तथा कार्यावस्था में स्थूल बनकर विचित्रानेकरूप से प्रतिभासित होता है, इस एतादृश जगत् को देखकर सभी व्यक्ति आश्चर्यचकित हो जाते हैं इसकी चिन्ता मन से भी अगम्य है। मैं परमेश्वर इस जगत् में अत्यन्त सूक्ष्म रूप से इसकी अन्तरात्मा बनकर अबस्थित रहता हूं। मेरा स्वरूप अति विशाल है मेरे स्वरूप के शतांश सहस्त्रांश में से एक अंश के समान है। एतादृश अतिसूक्ष्म रूप अंश से मैं इस जगत् में अन्तर्यामी के रूप से प्रविष्ट होकर समस्त जगत् को स्वकीय विलक्षण सङ्कल्प से धारण कर के अवस्थित हूं अर्थात् मेरे अधीन रहनेवाली अनन्त महाविभूतियों से संपन्न अपरिमित अनन्त कल्याण गुणगण का सागर मैं इस विश्व रूप को धारण करके आश्चर्य रूप में अवस्थित रहता हूं। इस प्रकार से भगवान् ने स्वकीय ऐश्वर्य की विलक्षणता का विस्तृत रूप से कथन किया है।

इसके पूर्व प्रकरण में कहा है कि भगवान् विलक्षण शक्ति ऐश्वर्यादिमान् हैं और स्थावर जंगम सकल पदार्थ की अन्तरात्मा हैं इसलिये संपूर्ण जगत् भगवान् का शरीर है शेष है और भगवान् सब से शेषी हैं। इसी बात के पुष्ट करने के लिये कहते हैं-'**एकत्वे सति नानात्वं नानात्वे सति चैकता। अच्चिन्त्यं ब्रह्मणो रूपंकस्तद्वेदितुमर्हति**।' यद्यपि भेदाभेदवादी ने स्वमत की स्थापना करने के लिये इस श्लोक का उद्धरण किया है और इसका ऐसा अर्थ किया है-'ब्रह्म स्वभावतः एक होते हुए अनेक हैं एवं अनेक होते हुए एक हैं, इस तरह से ब्रह्म जगत् से भिन्नाभिन्न हैं, ब्रह्म का यह रूप अच्चिन्त्य है एतादृश ब्रह्म को कौन जान सकता है अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान होना अति दुष्कर है, परन्तु

कृतविविधविलक्षणगुणमयप्रकृतिसंसर्गलक्षणसंसाराद्विमोक्षो भवति नत्वन्यथा मोक्ष इति समर्थितम् 'तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय''तरतिशोकमात्मवित्''विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः' इत्यादिभिः।

एकाकारतामैक्यमपि प्रतिपादयन्ति । तथाहि सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति ब्रह्मसृष्टं सर्वं जगत् ब्रह्मरूपमेव यतो ब्रह्मणा त्वेदं समुत्पादितं तेनैव परिरक्षितं ब्रह्मण्येवलीयते इत्यर्थः । एकःसन् बहुधा विचचारः एकः सन्नपि परमात्माऽनेकरूपाण्यादाय विचरति अथवा तथा ज्ञायते इत्यर्थः । अनेन प्रकारेणेदं श्रुतिवचनमित्थं वक्ति यद् ब्रह्मनिर्मितमिदं जगत् अनेकाकारकमपि ब्रह्मात्मकत्वादेकमेवेति ।

ब्राह्मसर्वेभ्यो भिन्नं सर्वस्यशासको नियन्ता सर्वस्वामी परमात्मनैवेदं प्रणास्यम् इत्यपि कानिचिद्वचनान्युदाहरन्ति । तथाहि पृथगामानं प्रेरितारं च मत्वा साधकोहि जीवः, जीवं परमात्मानं नैकरूपमपितु तौ विभिन्नावितिमत्वा मोक्षभाग् भवतीत्यर्थः । भोक्ताभोग्यं

उपर्युक्त श्लोक का ऐसा अर्थ युक्त नहीं है क्योंकि भेदाभेदवादियों के मत में तो एतादृश भेदाभेद घटपटादिक पदार्थ में भी माना गया है तो यह भेदाभेद अचिन्त्य किस तरह से हो सकता है अर्थात् घटत्व पटत्व से भेद तथा द्रव्यत्वरूप से जो अभेद है वह तो अचिन्त्य नहीं है अपितु सुज्ञेय है। यहां तो अचिन्त्य रूप का वर्णन करने का तात्पर्य है। इसलिये भेदाभेदवादी का मत ठीक नहीं। इसका अर्थ जगदाचार्यजी निम्नरूप से करते हैं-यह श्लेक भगवान् की विचित्ररूपता का वर्णन करता है भेदाभेद का नहीं। तथाहि-'**एकत्वे सति नानात्वम्**' भगवान् तो स्वरूपतः एक ही हैं परन्तु वह भगवान् बिचित्र अनेक प्रकारक जड चेतन वस्तुओं में अन्तरात्मा के रूप से तदन्तः प्रवेश कर के उन जड चेतन वस्तुओं को शरीर रूप से धारक बनते हैं। अत एव भगवान् विचित्रानेक शरीरवाले हो करके विचित्र अनेक रूप से देखने में आते हैं, और तत्तत् शरीर के रूप में निर्मित जड चेतनों से अनेक प्रकारक शुभाशुभ कर्म कराते हुए अनेकरूपवाले परमात्मा बन जाते हैं, यह है स्वभावतः एक रूप से प्रतिष्ठित परमेश्वर की अनेक रूपता।

नानात्वे सति थैकरूपतेति-इसप्रकार स्वकीय अत्यन्त अल्प अशं से जायमान सर्वाश्चर्यमय अनेकरूपवाल संसार में अन्तरात्मा के रूप में उन में प्रवेश करके इस समस्तरूप को धारण करते हुए परमेश्वर अनेकरूप से देखने में आते हैं परन्तु वह भगवान् तो एक रूप तथा अद्वितीय अर्थात् स्वयं तो समाभ्यधिक वर्जित हैं सर्वश्रेष्ठ हैं, उत्कर्ष की चरमसीमा को प्राप्त किये हुए भगवान्

॥ ब्रह्मणोविलक्षणशक्तिमत्वनिर्वचनम् ॥

'मया तत मिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥ नच मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।'

प्रेरितारं च मत्वा **अत्र भोक्ता जीवः कर्मपरतन्त्रत्वात्, भोग्यो जडपदार्थः, सर्वेषां प्रेरकश्च परमेश्वर इति तत्वत्रयं विभिन्नं नत्वेकमिति ज्ञात्वेत्यर्थ उक्तश्रुतेरिति । 'प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेयेति' प्रजाया जायमानायाः पतिः स्वामी परमेश्वरः कामनां कृतवान् यदहं प्रजाः सृजेय, प्रजाः समुत्पादयामि, सर्वसृष्टिं करिष्ये इत्यर्थः ।** पतिंविश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम् **अयं परमात्मा समस्तस्यापि जगतः स्वामी स स्वयमेवेश्वरः शाश्वतमङ्गलकर्ता तथाऽच्युतश्च यः कदाचिदपि स्वस्वरूपात् च्युतो न भवतीत्यर्थः ।** तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं दैवतानां परमं च दैवतम् **ईश्वराणां लोके सर्वलोकानां शासकतयेश्वरत्वेन प्रसिद्धानां**

अनन्तानंत हेय प्रत्यनीक कल्याण गुण के सागर हैं, और लोक में ईश्वर रूप में प्रसिद्ध ब्रह्मादिदेवों के भी अधिदेव हैं तथा संपूर्ण जगत् के कारण हैं पुरुषोत्तम श्रीरामादि पदवाच्य हैं, इनका माहात्म्य वेद वर्णित है अत्यधिक महिमा से युक्त होने के कारण सर्वाश्चर्यमय नीलमेघ श्याम द्विभुज हैं इसलिये आश्चर्यमय हैं योगी लोग भी इनको आश्चर्यम रूप से ही देखते हैं। एतादृश वैलक्षण्य विशिष्ट भगवान् श्रीरामजी जिस तरह इस लीलाविभूति एवं एतदन्तर्गत ब्रह्म प्रभृति जीवों के स्वाभाविक स्वामी नियामक हैं उसी तरह लीला विभूति की अपेक्षा से तीन गुणा अधिक भोग विभूत तथा तदन्तर्गत संख्यातीत भक्त मुक्त पुरुष तथा नित्यसूरियों के भी नित्य सिद्ध जीवों के भी स्वामी नियामक हैं। श्रुति ने भी '**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्**' '**तदक्षरे परमे व्योमन्**' अर्थात्-जो साधक हृदय गुहा में अवस्थित परब्रह्म का प्रत्यक्ष समानता के प्राप्त ज्ञान से उपासना करता है वह मोक्ष साकेत धाम को प्राप्त कर के वहां परब्रह्म के साथ परमेश्वरीय सर्व कल्याण गुणों का अनुभव करता है- अविनाशी-नित्य परमपद में भगवान् सर्वदा अवस्थित रहते हैं। इसप्रकार से कहा है। भगवान् के समान अथवा उनसे अधिक कोई नहीं है, वे तो एक अद्वितीय समाभ्यधिक रहित तथा दिव्य मंगलमय शरीरधारी हैं। ईदृश विश्वरूप को लेकर के नानारूप से देखने में आते हैं। इसमें '**वायुर्यमोग्निर्वरूणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च**' इत्यादि समाप्त्यन्त विश्वरूपाध्याय गीता में कहा है। वस्तुतः एतादृश परमात्मा स्वरूपतः एक अद्वितीय हैं। '**अचिन्त्यं ब्रह्मणोः रूपं कस्तद्वेदितुमर्हति**' अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से ब्रह्म का स्वरूप अचिन्त्य है। एतादृश विलक्षण योग्यता ब्रह्म व्यतिरिक्त में नहीं है। ब्रह्म व्यतिरिक्त पदार्थों में एक स्वभाव एक शक्ति और एक रूप ही देखने

अत्र विलक्षणसर्वशक्तिसंपन्नत्वेन विलक्षणमैश्वर्यपरमेश्वरस्येति विज्ञापितम्। एवम् 'विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत्' इति संख्यातीतं महाश्चर्यरूपंस्थात्वरजंगमात्मकमिदं जगत्, अनन्तांशेनात्मस्वपतया तदन्तः

ब्रह्मशिवादीनामपि शासकतया महेश्वरः देवानामिन्द्रादीनामपि देव उपास्यो सर्वेश्वरपरमात्मा श्रीराम एवसर्वमहेश्वरो देवाधिदेवश्चेत्यर्थः। सर्वस्यवशीसर्वस्येशानः सर्वं यदार्थजातं वशेऽधि-कारेतिष्ठति यस्य तादृशः परमात्मा तथा सर्वस्यपदार्थजातस्येशानो नियामक इति समुदीरितिश्रुत्यर्थः।

अनेन प्रकारेणानेकानि श्रुतिवचनानि कथयन्ति यत् परमात्मा सर्वेभ्यो भिन्नः सर्वस्य नियामकत्वात्सर्वेश्वरः सर्वस्य स्वामी चापि भवतीति। अन्यं च श्रुतिवचन ब्रह्मभिन्नसर्वपदार्थेन सह ब्रह्मणः शरीरात्मभावसम्बन्धं प्रतिपादयति तथाहि अन्तः प्रविष्टः

में आता हैं, जैसे अग्नि जलादिक में यथा अग्नि में तापकत्व रहता है वह तापकता जल में नहीं है, जल में शैत्य है तो वह शैत्य वह्नि में नहीं है। ब्रह्म स्वेतर सब पदार्थों से विसजातीय हैं इसलिये ब्रह्म में सर्वशक्ति सभी प्रकार की योग्यता तथा सर्वरूपत्व रहता है। अत एव ब्रह्म समस्त जड चेतन की अन्तरात्मा बन करके विचित्र अनन्त नानारूप को धारण करते हुए भी गुण विभूति और धाम को लेकर विचार करने से एक अद्वितीय तत्व सिद्ध होते हैं। इसमें एक एक बात अनन्त अपरिमित आश्चर्य रूप हैं। इस प्रकार ब्रह्म में अनेकत्व-नानात्व और एकत्व विना किसी विरोध से समन्वित हो जाते हैं। ब्रह्म के पदार्थान्तर का सादृश्य लेकर किसी प्रकार की शंका उचित नहीं हैं क्योंकि अनुमानगम्य वस्तुओं की सिद्धि करने में दृष्टान्तादियों की आवश्यकता पड़ती है, और यथा दृष्टान्त पदार्थ सिद्ध होता है, शास्त्र प्रतिपादित वस्तु में तो शास्त्रमात्र प्रमाण है। ब्रह्म स्वर्ग अपूर्वादिक की तरह वेदैक समधिगम्य है, इसलिये ब्रह्म के स्वरूपशक्ति प्रभृति में किसी के सादृश्यादिकों की आवश्यकता नहीं है! ब्रह्म का साधक उपनिषत् प्रमाण हैं इस प्रमाण के आगे प्रमाणान्तरों का विरोध विरोधाभास सिद्ध होता है। इसलिये उपनिषत् प्रमाण के अनुसार परब्रह्म विभिन्न स्वभाव तथा विचित्र शक्तियो से युक्त सिद्ध होता है।

उपर्युक्त अर्थ का साधक विष्णु पुराणोक्त वचन भी होता है। तथाहि

'शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्याभावशक्तयः॥
भवन्ति तपतां श्रेष्ठ! पावकस्य यथोष्णता॥'

प्रवेशं कृत्वा सत्यसङ्कल्पेन संधार्य्यमहाविभूतिसंपन्नेऽपरि-मितकल्याणगुणसागरो महाश्चर्यभूतः स्थितोहमिति। एतावता अन्यत्रापरिदृश्यमानविलक्षणगुणसंपन्नो जगदहं विधारयामीति। तदनेन विलक्षणैश्वर्यवत्वं प्रख्यापितं भवति।

शास्ता जनानां सर्वात्मा एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः यस्य पृथिवीशरीरम् यस्यापशरीरम् यस्य तेजः शरीरम् यस्याव्यक्तं शरीरम् यस्याक्षरं शरीरम् यस्य मृत्युः शरीरम् यस्यात्माशरीरम्। अयमर्थः योऽयं परमात्मा सर्वनियामकः स जीवस्यान्तः प्रविश्य सर्वं शास्ति यस्मात् तस्मादयं सर्वस्यान्तरात्मेति। एतादृशो निर्दोषोऽन्तर्यामी, परमेश्वरस्तवात्मेति। एवं यस्य परमात्मनः पृथिवी जलतेजोऽव्यक्ताक्षरमृत्युजीवात्मानः शरीरम्। एतावता ब्रह्मव्यतिरिक्तानि यानि चेतनाचेतनवस्तूनि तानि सर्वाणि ब्रह्मणः शरीरं ब्रह्मचैतेषामात्मा इत्यनयोः शरीरात्मभावसंबन्धः फलितो भवति। एतत्तुल्यानि बहूनि वाक्यानि सन्ति, तेषामर्थाः परस्पराविरोधेनैवकरणीयाः, येन कुत्रापि विरोधो न भवेत्, एकानुरोधेन परस्याप्रामाण्यं

अर्थात् हे तपस्विश्रेष्ठ! पदार्थ मात्रों की शक्ति अचिन्त्य है, इसका तर्क के द्वारा अन्यथा समझना ठीक नहीं है जिस तरह अन्यत्र विद्यमान भी औष्ण्य प्रकाशकत्व वह्नि में माना जाता है उसी तरह अन्यत्र अविद्यमान सर्व शक्तिमत्वादिक धर्म को मानना चाहिये, क्योंकि ब्रह्म स्वेतर सकल पदार्थ से विजातीय हैं इसलिये इसी ब्रह्म में शास्त्र प्रमाण से अनन्त शक्तिमत्व सिद्ध होता है, अतः विचित्र शक्ति युक्त होने से परब्रह्म परमविस्मय जनक माने जाते हैं। अतएव अक्रूरजी ने श्रीकृष्णजी से कहा है-

'जगदेतन्महाश्चर्यं रूपं यस्य महात्मनः।
तेनाश्चर्यवरेणाहं भवता सह संगतः॥' इति।

अर्थात् यह आश्चर्यमय जगत् जिस महात्मा का रूप है, वह आप (श्रीकृष्ण) आश्चर्यों में श्रेष्ठ हैं। हे कृष्णदयानिधे! आपसे मिलकर मैं धन्य हो गया। इसलिये आचार्यश्री के वचन से यह सिद्ध किया गया कि '**एकत्वे सति नानात्वम्**' यह श्लोक में अत्याश्चर्यमयरूप वाले सर्व शरीरक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की सर्व संपन्नता तथा अद्वितीयत्त्व का वर्णन किया जाता है किन्तु भेदाभेदवाद का साधक '**एकत्वे सति नानात्वम्**' यह श्लोक नहीं है।

इससे पूर्व प्रकरण में जिन जिन पदार्थों का कथन किया उन पदार्थों का स्थिरीकरण करने के लिये भेदाभेद सगुणनिर्गुणादि प्रकाशक परस्पर विरुद्ध अनेक श्रुतियों के समन्वय का प्रतिपादन

॥ एकत्वेसतिनानात्वमितिनिर्वचनम् ॥

भगवतो विलक्षणैश्वर्यविषये वक्ष्यमाणश्लोकोऽपिभवति 'एकत्वे सति नानात्वं नानात्वे सति चैकता । अचिन्त्यं ब्रह्मणोरूप कस्तद्वेदितुमर्हति'

न समीचीनम् । सर्वसमन्वये मुख्यार्थबाधोपि न भवेत् । केचन अभेदश्रुतिं पुरस्कृत्यान्यं समुपेक्षमाणा तत्त्वमस्यादिवाक्यानां मुख्यार्थं परित्यज्य लक्षणावृत्तिं च स्वीकृत्य भेदादिसर्वान्यश्रुतीनां बाधमेवेच्छन्ति, तन्नयुक्तम् सर्ववाक्यानां प्रामाणिकत्वेनैकस्यापि बाधस्यान्याय्यत्वात् । विशिष्टाद्वैतमतानुसारेण सर्वश्रुतीनां समन्वयं कृत्वा तासामर्थकरणे न कुत्रापि दोषो मुख्यार्थपरित्यागोलक्षणादिदोषापत्तिर्वा । तथाहि ब्रह्मनिर्दोषताप्रति-पादकवचनानान्त्विदं तात्पर्यम् । चिदचिद्विशिष्टे ब्रह्मणि त्रयः पदार्थाः निविष्टाः चिद्वस्तु जडवस्तु तथा ब्रह्म च, तत्राद्यं द्वयं विशेषणं ब्रह्म च विशेष्यम् । तत्र विशेषणे विकारो भवति । तत्राचेतने स्वरूपस्वभावपरिणामरूपो विकारो भवति, तथा चेतनात्मक विषेषणेस्वभावपरिणामरूपो विकारो जायते, ब्रह्मलक्षणविशेष्ये तु न कोऽपि विकार

करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**एतावता प्रकरणेन सर्वश्रुतीनाम्**' इत्यादि । परमतनिराकरणपूर्वक स्वमत व्यवस्थापन परक पूर्वप्रकरण में सर्वश्रुतियों का पूर्वाचार्य कृतव्याख्यान के अनुसार परस्पर में समन्वय का प्रदर्शन किया गया है । उसमें कोई कोई श्रुति तो पदार्थों की उत्पत्ति और प्रलय में परस्पर में विरोध हैं, और कोई श्रुति तो उत्पत्ति प्रलय के क्रम में विवदमान हैं, और कोई कोई श्रुति तो ब्रह्म के स्वरूप में तथा भेद अभेद में परस्पर विवदमान हैं । इन सब श्रुतियों का समन्वय करने के लिये इस प्रकरण का आरंभ किया जाता है । तथाहि-'**निरवद्यं निरञ्जनम्**' ब्रह्म सकलदोष से रहित हैं । '**विज्ञानमानन्दं ब्रह्म**' ब्रह्म विज्ञान तथा आनन्दस्वरूप हैं । '**निष्कलं निष्क्रियं शान्तमिति**' ब्रह्म विकार रहित सर्वकलारहित क्रिया रहित हैं तथा शान्त हैं । इसमें निर्गुण शब्द से ज्ञानस्वरूप ब्रह्म हैं, यह बतलाया जाता है, इत्यादिक अनेक श्रुतिया हैं । एवं ब्रह्म में सर्व भेद रहितत्व का प्रतिपादन करनेवाली ये श्रुतियां हैं-'**नेह नानास्ति**' '**मृत्युः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति**' अर्थात् इस ब्रह्म में अनेक पदार्थ नहीं है जो इस ब्रह्म में अनेक पदार्थ को देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है । '**यत्रत्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत्केन कं पश्येत्केनकं विजानीयात्**' अर्थात्-जिस अवस्था में इस साधक को सब कुछ पदार्थ आत्मस्वरूप ही हो गया, उस अवस्था में वह साधक किस करण से चक्षुरादिकों से किस ज्ञातव्य वस्तु को देखेगा, किस करण से किन वस्तुओं को जानेगा अर्थात् आत्मैकत्व बुद्धि से क्रिया कारक फल भेद विनष्ट होगया तब कौन कर्ता किस करण से किस

अत्र प्रशासनकर्तृत्वेनैकरूपभवन्नपि विलक्षणजडचेतनपदार्थेषु तदन्तरात्मत्वेन प्रविश्य विचित्रप्रकारो भवन् तेभ्यो विलक्षणकर्मकारयन्

इति ब्रह्म सर्वदा विकाररहितमेवावतिष्ठते । तदाहुराचार्याः-'स्वरूपेच स्वभावे च विकारः तकृतेः खलु । स्वभाव एव जीवस्य विकारः स्वीकृतोबुधैः । ब्रह्मणस्तुविकारोयन्न स्वरूपस्वभावयोः इति । अतो निर्विकारश्रुतिर्मुख्यार्थमादायैव समन्विता भवति, लक्षणयाऽर्थान्तरकरणप्रयासो न भवति, एवमनेकंश्रुतिवचनंब्रह्मणि गुणनिषेधं करोति, तत्र हेयप्राकृतदुर्गुणानामेवनिषेधे तेषां तात्पर्यं न तु कल्याणगुणानां निषेधे तत्र तेषामौदासीन्यात् । अनेन प्रकारेणनिर्गुणता प्रतिपादकानां मुख्यार्थतैव भवति तत्र लक्षणवृत्तिस्वीकारस्यावश्यकतैव न भवति । नेहनानास्तिकिञ्चन इत्यादीनां भेदनिषेधे न तात्पर्यं किन्तु परिदृश्यमानं सर्वचेतनाचेतनं ब्रह्मणोदेहरूपं ब्रह्मविशेषणं च एकमेव ब्रह्मसर्वस्यात्मभूतं सत् अनेकशरीरमादायावतिष्ठते अब्रह्मात्मकमनेकवस्तु नास्त्येव यद्दृश्यते तत्सर्वं ब्रह्मात्मकमेवेति ब्रह्मभिन्नस्यानेकस्यनिषेधोऽत्र तु सर्वब्रह्मात्मकं ब्रह्म तत्र

ज्ञातव्य पदार्थ को जानेगा ये सब भेद दर्शन साध्य हैं और यहां तो अभेद दर्शन से भेद सब विनष्ट हो गया है । यहां किम् शब्द आक्षेपार्थक है । ये उपर्युक्त श्रुतियां ब्रह्म में सर्व गुणादि वस्तुओं का प्रतिपादन करती हैं । अब ब्रह्म में सगुणवत्व का प्रतिपादन करने वाली निम्नलिखित श्रुतियां है-'**यः सर्वज्ञः स सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः**' अयमर्थः जो परमात्मा सर्व वस्तु विषयक सामान्य ज्ञानवान् हैं वह सर्वपदार्थ विषयक विशेषज्ञानवान् हैं अर्थात् परमेश्वर स्वरूप से भी सब वस्तुओं को जानते हैं तथा प्रकाररूप से भी सर्व पदार्थ को जानते हैं । जिसका ज्ञानमय तप है । '**सर्वाणि रूपाणि विचिंत्यधीरो नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते**' अर्थात् भगवान् परमेश्वर धीर सब रूपों कि सृष्टि करके अर्थात् पदार्थ मात्र को उप्पन्न करके उन पदार्थों का परस्पर भिन्न भिन्न नाम रख करके उनका अभिवदन रूप व्यवहार करते हैं । '**सर्वेनिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि**' अर्थात् विद्युत की तरह देदीप्यमान रूपवाले स्वयं प्रकाशात्मक परमपुरुष से निमेष कला काष्ठादिक उत्पन्न हुए हैं । '**अपहत पाप्माविजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः**' अर्थात् यह परमात्मा अपहतपाप्मा है अर्थात् इनमें किसी प्रकार का पाप कर्म नहीं रहता है तथा जन्म जरामृत्यु शोक बुभुक्षा तथा पिपासादिक संसार धर्मों से रहित हैं, स्थायी अनेक प्रकारक भोग्य पदार्थों से युक्त हैं तथा सत्य सङ्कल्पादि अनन्त कल्याण गुणवालें हैं । इस मन्त्र के पूर्वार्द्ध से समस्त प्राकृतिक दुर्गुण जो त्याज्य हैं उन दुर्गुणों से परमात्मा को रहित बतला कर के तदनन्तर परमात्मा को अति उत्कृष्ट अनन्त कल्याण

नानात्वमनेकनामरूपतां प्राप्नोति । तथास्वकीयाल्पाल्पांशेन तु अत्याश्चर्यमयमनेकरूपं जगत् विष्टभ्यनानारूपेण स्थितो भवन्

ब्रह्माश्रितमेवेति न नाना पदार्थस्य स्वतन्त्रस्यकस्यचित् प्रतिषेधः कृतो भवति येन प्रकृतश्रुतिविरोधः स्यादिति । यच्च श्रुतिवचनं चेतनाचेतनाभ्यां ब्रह्मणि वैलक्षण्यं तथा सर्वविलक्षणत्वसर्वपतित्वकल्याणगुणाकरत्वसत्यसङ्कल्पत्वादीन् गुणान् ब्रह्मणि विदधाति तत्सर्वं तथैवेति ।

सत्यं ज्ञानमानन्दंब्रह्म प्रज्ञानंब्रह्म इत्यादिश्रुतिब्रह्मणो ज्ञानानन्दस्वरूपतां न बोधयति किन्तु ज्ञानाद्याश्रयतामेव बोधयति, कल्याणगुणाद्यनेकगुणबोधकश्रुत्यनुरोधात् । अन्यथा गुणवत्वबोधकवाक्यं पीड्येत । अमुमेववचनजातं दृष्ट्वा केचन ज्ञानादिरूपतामेव ब्रह्मण इति वदन्ति, तन्नयुक्तम्-यतः अनेकश्रुतिवचनेन ज्ञानानन्दाद्यनेकगुणवत्वस्य निवेदितत्वात् । इत्थं श्रुतिः प्रतिपादयति यत् ब्रह्मचेतनाचेतनसर्वपदार्थभिन्नंसर्वकल्याणगुणानामाधारः

गुण का सागर बतलाया गया है, तथा परमात्मा को सर्वज्ञ नाम रूप व्याकरण के कर्ता तथा सब पदार्थ जड चेतन के आधार परमात्मा है, यह भी बतलाया गया है।

एवं अनेक श्रुति वाक्य ऐसे भी हैं जो ब्रह्म से सृष्ट संसार को अनेक आकार प्रकार वाला बतला कर के उन सृज्यमानों में एकत्व-अभेद काभी प्रतिपाद करते हैं। तथाहि-'**सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति**' यह सृज्यमान सब जड चेतन पदार्थ ब्रह्म रूप ही है क्योंकि यह जायमान पदार्थ समुदाय ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है ब्रह्म से पालित होता है तथा प्रलयकाल में ब्रह्म में ही लीयमान हो जाते हैं। '**एकः सन् बहुधा विचचारः**' परमात्मा स्वरूप से एक रूप होते हुए भी अनेकरूप से देखने में आते है अथवा परमात्मा एक रूप होतें हुए भी अनेकरूप से विचरण करते हैं। इसप्रकार के अनेक श्रुति वचन है जो कि यह संसार ब्रह्म से उत्पादित है तथा अनेक आकार प्रकार वाले होने पर भी ब्रह्म तादात्म्यापन्न होने से एक हैं अर्थात् इन सब में एकता भी है। यथा व्यक्ति रूप होने से घटादिक द्रव्य अनेक रूप से प्रतिभासित होने पर भी द्रव्यदृष्टि को लेकर सब एक कहलाते हैं, उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये। अर्थात् व्यक्ति रूप से संसार अनेक रूप से प्रतिभासित होने पर भी ब्रह्मोत्पादित होने से ब्रह्मदृष्टि से एकता को प्राप्त करते हैं।

और बहुत से श्रुति वचन इस तरह के हैं जो कि यह बतलाते हैं कि ब्रह्म सब से भिन्न हैं सब के नियामक शासक हैं तथा सब के स्वामी हैं और इतर सब पदार्थ ब्रह्म के शासन में रहनेवाले हैं तथा ब्रह्म की स्वकीय संपत्ति हैं जो कि लीला विभूत में सहायक होते हैं। '**पृथगात्मानं प्रेरितारं च**

निरतिशयासंख्येय हेयप्रत्यनीककल्याणगुणकः सर्वेश्वरः परब्रह्मभूतः पुरुषोत्तमो नीलजीमूतप्रभः सहस्त्रकिरणोरामाभिधः परमव्योमस्थः 'यो वेदनिहितं गुहायां परमे व्योमन्' 'तदक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादिश्रुतिप्रतिपादित एक एवावस्थितो भवतीति ।

सर्वस्येश्वरः सर्वस्य स्वामी सर्वस्योत्पत्त्यादिकारणंनिर्दोषोनिर्विकारः सर्वस्यात्मा च । तस्मात् परमात्मा यथोक्तगुणानां सर्वेश्वरत्वादिनामाधार इत्यकामेनापि मन्तव्यमेव । नत ज्ञानानन्दस्वरूपत्वं ब्रह्मणः किन्तु तयोराधाराधेयभाव एव उपर्युक्तानेकश्रुतिबलात् । 'सत्यं ज्ञानमित्यादि' श्रुतेरभेदे न तात्पर्यमपितु ज्ञानानन्दादिकंपरस्य स्वरूपनिरूपको धर्मो यथा घटादिद्रव्याणां घटत्वादिजातिः । घटत्वादिजातिपरिज्ञाने सत्येव घटादिस्वरूपं निरूपितं भवति नान्यथा तन्निरूपणम्, तथैव प्रकृते ज्ञानाद्यसाधारणधर्मे ज्ञाते एव ब्रह्मापि ज्ञायते नान्यर्थस्यातो ब्रह्मणः स्वरूपको धर्मो नतु ब्रह्मणा ज्ञानादीनां तादात्म्यम् । एव स्वरूपनिरूपकधर्मवाचकः शब्दस्तं बोधयन् तदाश्रयमपि बोधयति, यथा गोत्वधर्मस्य

मत्वा' जो साधक पुरुष हैं वे भोक्ता जीवात्मा को तथा जीव के प्रेरक परमात्मा को परस्पर भिन्नरूप से जानकर के मोक्ष को प्राप्त करता है। एवम्-'**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा**' अर्थात् भोक्ता भोग का कर्ता जीव भोग्य भोग क्रिया का कर्म जड पदार्थ तथा इन सब के प्रेरक परमेश्वर इन तीनों तत्वों को अर्थात् जड चेतन और परमेश्वर जो कि सब के प्रेरक हैं उन सबों को जान करके। '**प्रजापति-रकामयत प्रजाः सृजेयेति**' प्रजापति अर्थात् प्रजाओं के स्वामी परमेश्वर ने यह कामना की अर्थात् संकल्प इच्छा की कि हम प्रजाओं को बनावें अर्थात् मैं प्रजा की सृष्टि करु। '**पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतं शिवमच्युतम्**' अर्थात् परमात्मा समस्त स्थावर जङ्गम जगत् के स्वामी है अपने लिये आप ही ईश्वर हैं इन का अन्य कोई भी ईश्वर नहीं हैं, ये शाश्वत सर्वदा विद्यमान रहनेवाले है मंगल करनेवाले हैं तथा अच्युत हैं अर्थात् स्वकीय स्वरूप तथा स्वभाव से च्युत विनष्ट होनेवाले नहीं हैं अर्थात् उत्पाद विनाश रहित हैं। '**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं दैवतानां परमं च दैवतम्**' अर्थात् भगवान् परमात्मा लोक में ईश्वर रूप से प्रसिद्ध ब्रह्मा विष्णु और रुद्रों के भी ईश्वर शासक होने से महेश्वर हैं और लोक में देवतारूप से पूज्य इन्द्र वरुण देवों के भी अधिदेव होने से परमदेव हैं। '**सर्वस्यवशी सर्वस्येशानः**' परमात्मा सभी स्थावर जंगम पदार्थों को अपने अधिकार में रखनेवाले हैं तथा सब के ऊपर शासन करनेवाले हैं। इसप्रकार अनेक श्रुति वचन यह बतलाते हैं कि परमात्मा सब से भिन्न हैं सब के ऊपर शासन करनेवाले ईश्वर हैं तथा सब के स्वामी पालन करनेवाले हैं। यह जड चेतन साधारण प्रपञ्च

यद्यपि अत्यत्रैकस्मिन् पदार्थे एकस्वभावके एकशक्तियुक्ते स्वभावान्तरसंबन्धो स्यान्तरशक्त्यन्तरयोगश्च न दृष्टचरो जलादिके ऽपि ब्रह्मणोरामाख्यस्य सर्ववस्तुविलक्षणतया सर्वस्वभावत्वसर्व

गोस्वरूपनिरूपकस्यवाचको गोशब्दस्सदृशं गोत्वं बोधयत् तदाश्रयीभूतव्यक्तिमपि बोधयत्येव। तथैव ब्रह्मस्वरूपनिरूपकज्ञानादिधर्मवाचको ज्ञानादिशब्दो ज्ञानानन्दादिकंबोधयन् तदाश्रयीभूतं ब्रह्मापि बोधयतीति सिद्धं ज्ञानादिगुणविशिष्टं ब्रह्मेति। अथवा ब्रह्मस्वरूपं स्वप्रकाशात्मकं सर्वेषामनुकूलं चेति ज्ञानानन्दपदेन ब्रह्मणः कथनं भवतीति। अपि च '*सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म*' इत्यत्र ज्ञानशब्दो ज्ञानादिमान् परमेश्वर इत्येवार्थः। अर्श आदित्वान्मत्वर्थीयाच् प्रत्ययः। अन्यथा आनन्दशब्दस्यनित्यपुंलिङ्गत्वेन आनन्दमिति प्रयोगो न स्यादपितु 'आनन्दः' इति प्रयोगः स्यात्। केचित्तु ब्रह्मणि आनन्दोदुःखाभावे औपचारिकः दुःखाभावे सुखीसंवृत्त इत्यादिवत्। '*असुखम्*' इति श्रुतेः। 'तत्त्वमसि' सर्वं खल्विदम् इत्यादावभेदप्रतिपादनस्य तात्पर्यं तु यत् चेतनाचेतनपदार्थस्य परमेश्वरोऽन्तर्यामी स एवेश्वरो

भगवान् के शासन में रहनेवाले तथा भगवान् की स्वकीय वस्तु है।

एवं इन श्रुति वचनों से विभिन्न बहुत श्रुति वाक्य है जो कि ब्रह्म व्यतिरिक्त सर्ववस्तु तथा ब्रह्म में शरीरात्मभाव सम्बन्ध को बतलाते हैं अर्थात् जड चेतन सकल पदार्थ भगवान् का शरीर प्रकार तथा विशेषण है और भगवान् उन सब के विशेष्य और शेषी हैं। तथाहि-'**अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम् सर्वात्मा**' '**एष ते आत्माऽन्तर्यामी अमृतः**' '**यस्य पृथिवी शरीरम्**' '**यस्यापः शरीरम्**' '**यस्य तेजः शरीरम्**' '**यस्याव्यक्तं शरीरम्**' '**यस्याक्षरं शरीरम्**' '**यस्य मृत्युः शरीरम्**' '**यस्यात्मा शरीरम्**' **एतेषामयमर्थः**' परमात्मा जीवों के अन्दर प्रविष्ट होकर के (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। इस स्मृत्यन्तरं से भी सिद्ध है।) जीवों के ऊपर में शासन करते हैं। इसलिये ईश्वर जड चेतन सब की आत्मा हैं। यहीं निर्दोष सर्वदोष रहित परमात्मा तुम्हारी अन्तर्यामी आत्मा है। जिस परमात्मा का पृथिवी जड तेज अव्यक्त अक्षर प्रकृति जड वर्ग और चेतन जीवात्मा शरीर है। इत्यादि उपर्युक्त वचनों से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म से भिन्न जितने जड चेतन पदार्थ हैं वे सब के सब परब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म उन सब की शरीरी आत्मा हैं। इन श्रुतियों से प्रपञ्च तथा ब्रह्म में शरीरात्मभाव सम्बन्ध सिद्ध होता है।

इसप्रकार अनेक श्रुति वाक्य परस्पर विरुद्ध रूप से प्रतिभासित होते हैं इन में से अभेद प्रतिपादक श्रुति के अनुरोध से यदि भेद प्रतिपादक श्रुति का तथा भेद प्रतिपादक श्रुति के अनुरोध

शक्तियुक्तत्वविलक्षणानेकरूपत्वं तथा पुनस्तस्यैवानन्तापरिमित विलणाश्चर्ययोगे नैकरूपतापि संभवेदेव। अनुमानगम्यवस्तुनि दृष्टान्तदृष्टसाधर्म्ययोगोऽपेक्षितो नत्वागमगम्ये वस्तुनि दृष्टान्तस्यानुरोधः

जगतः कारणमिति तयोरभेद एव।

'तत्त्वंपदोक्तयोरैक्यं परान्तर्यामिणोः खलु। तत्त्वमसीतिवाक्ये हि नक्यं जीवेशयोर्मतम्। सूक्ष्मचिच्चिद्विशिष्टोहि रामोविश्वस्यकारणम्। स्थूलचिच्चिद्विशिष्टश्च श्रीरामोजगदात्मकः अभेदश्चानयोर्यस्मात्कार्यकारणब्रह्मणोः विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तः संमतो वैदिकैस्तत ॥८६॥ ये जना हि विशिष्टस्यविशिष्टत्वनिरासकाः। खण्डयन्ति स्वयं ते च स्वस्य बुद्धिविशिष्टताम्' इत्याद्याचार्योक्तेः (श्रीरामानन्दवेदान्तसारः) अनेन प्रकारेणाभेदनिर्देशस्तत्त्वमादिपद-योर्मुख्यार्थता भवति लक्षणाश्रयणमपिनेति विशिष्टाद्वैतमते सर्वसमञ्जसमिति संक्षेपः।

ननु सर्वश्रुतिवाक्यानां समन्वयकरणात् अद्वैतपक्षो द्वैतपक्षो द्वैताद्वैतपक्षेषु कतमः

से अभेद प्रतिपादक श्रुति का तथा सगुण प्रतिपादक वाक्य से निर्गुणत्व प्रतिपादकों का एवं निर्गुत्व प्रतिपादक वचनों के अनुरोध से सगुणता प्रतिपादक वचनों के अर्थ का त्याग कर दिया जायगा तब तो श्रुतियों में परस्पर विरुद्धार्थ प्रतिपादकता होने से एक में सर्वथा अप्रामाणिकत्व हो जायगा परन्तु वेद वाक्यों को अप्रामाणिक मानना तो अनुचित हैं।

आचार्य शंकर के मत में निर्गुणत्व प्रतिपादक एवम् अभेद प्रतिपादक श्रुतियों को अग्रसर एवम् अबाध्य मानकर सगुण श्रुति और भेद श्रुति को बाधित मानना पडता है परन्तु श्रुतियों में विरोध उपस्थित कर के उनको बाधित मानना अथवा व्यावहारिक प्रातिभासिक और पारमार्थिक इस प्रकार अप्रामाणिक तीन सत्ता को मानना ठीक नहीं है। एवं शंकर के मत में '**तत्वमसि**' इस श्रुति के अर्थ करने के समय में तत् पद तथा त्वं पद का जो मुख्यर्थ है उसको छोड कर के लक्षणा जघन्य वृत्ति का स्वीकार कर के अर्थान्तर का प्रतिपादन करना भी ठीक नहीं हैं, एवं भेदाभेदवादियों के मत में भी ब्रह्म में निर्दोषता प्रतिपादक श्रुति से विरोध उपस्थित होता है तथा तत् पद त्वं पद में एक जगह लक्षणा मान कर के अर्थान्तर करना पडता है अर्थान्तर का अनुसारण करना यह सब ठीक नहीं है।

इसलिये कोई भी श्रुति क्यों न हो, मुख्यार्थ का भी परित्याग न करना पडे एवं लक्षणा का भी अनुसरण न करनापडे इसलिये आचार्यजी पूर्वाचार्यों के व्याख्यान के अनुसार व्याख्यान करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**अत्रानेकरूपाणां परस्परविरुद्धार्थेत्यादि**'। यहां अनेक प्रकारक परस्पर

स्वर्गादिवदिति दृष्टान्ताभावात् सर्वशक्त्यादिमत्वमेकानेकरूपवत्त्वे च भगवति न विरुद्धम् । यथाह-'शक्तय: सर्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचरा: । यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्याभावशक्तय:- भवन्ति तपसां श्रेष्ठ !

श्रुतिसंमत: कस्यपक्षस्य समर्थनं क्रियते ? एतस्य प्रश्नस्य समाधानाय प्रक्रमते इत्थं च सर्वश्रुतेरित्यादि इतरसिद्धान्तद्वारा प्रतिपादित अभेदभेदाभेदपक्षयोर्भेदश्रुत्या विरोधो भवतीति न तौ पक्षौ श्रुतिसंमतौ । यत्राभेदभेदभेदाभेदयोर्भेदश्रुत्या न विरोध: स पक्ष: संमानितो भवति तथाहि एक एव परमेश्वर: सर्वं चेतनाचेतनं शरीरीकृत्य ताभ्यां विशिष्टो भूत्वा सर्वस्यान्तर्यामिरूपेण सर्वत्रावस्थितो नास्त्येतादृशस्तदन्य: कश्चिदिति क्रमेणाद्वैतपक्ष: समर्थितो भवति । स एव परमेश्वर: स्वरूपत एकरूपोपि नानाविधजडचेतनविशेषणाभ्यां विशिष्ट: सन्ननेकरूपेण व्यवस्थित इव भवतीति क्रमेण भेदाभेदपक्षौ श्रुतिसमन्वयतया समर्थितौ भवत: । अचेतनचेतनपदार्थयो: परमेश्वरस्य च स्वरूपभेद: स चायं स्वरूपभेद: शाश्वत इति क्रमेणवादोऽपि वेदान्तवेद्यतया समर्थितो भवति । सर्वेऽपि पक्षा बिलक्षणरूपेण वेदबोधिता एवेति । शंकरादिमतप्रतिपादितोऽभेदपक्ष: भेदाभेदपक्षश्चभेदश्रुत्या विरुद्ध

विरुद्धार्थ का प्रतिपादक वाक्यों का परस्पर में विरोध नहीं हो इसप्रकार से प्रयत्न करना चाहिये । तथा उन वचनों का व्याख्यान करना चाहिये । इस प्रकार से बोधायन वृत्तिकार भागवान् श्रीपुरुषोत्तमाचार्यजी से लेकर महामहोपाध्याप जगदगुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरघुवराचार्य प्रभृति पूर्वाचार्यो ने इन श्रुतिवाक्यों का व्याख्यान किया है जिससे पूर्वापर किसी भी श्रुति वाक्यों में विरोध नहीं होता है तथा अविरोध पूर्वत विवक्षित अर्थ की सिद्धि भी होती हैं । किस श्रुति वाक्य का कैसे अर्थ होने पर विरोध नहीं होता है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं '**अविकारता प्रतिपादक वेद वाक्य मित्यादि** ।' जो श्रुति वाक्य ब्रह्म को निर्विकार बतलाने उन वचनों का यह तात्पर्य है कि चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म में तीन पदार्थ हैं -चित्-चेतन अचित्-जडवर्ग और ब्रह्म । इसमें जड चेतन ब्रह्म में विशेषण हैं । ब्रह्म इन दोनों विशेषणों के विशेष्य हैं ये तीनों मिल कर के विशिष्ट कहलाता हैं । इसमें विशेषण वननेवाले चेतन और अचेतन में विकार होता है, ब्रह्म में विकार नहीं होता है । उसमें भी अचेतनरूप विशेषण मेंतो स्वरूप स्वभाव परिणामात्मक विकार होता है अर्थात् अचेतन स्व स्वरूप तथा स्वभाव से परिणत होता है एवं चेतन रूप बिशेषण में स्वभाव परिणाम रूप विकार होता है अर्थात् चेतन जीव का स्वरूप विकृत नहीं होता है किन्तु स्वभाव का परिणाम होता है अर्थात् जीव का जो स्वभाव है तादृश स्वभाव में अन्यथाभाव होता है इसलिये जीव में विकार होता है ऐसा कहा जाता है, परन्तु चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म

पावकस्य यथोष्णता । '' अयमाशय: लोके वह्न्यादौया शक्तिदृश्यते तदन्यत्र न दृश्यते तथापि तद्विजातीये जलादौ शैत्यगुणसम्बन्धो भवत्येव । एवं सर्ववस्तुविसजातीये श्रीरामे ब्रह्मणि सर्वपदार्थविसजातीयेविलक्षणे

इति तौ पक्षौ न मान्यौ भवत: । मन्मते तु विलक्षणरूपेण समन्वयस्य प्रतिपादनेन न कुत्रापि कस्यापि विरोधो भवतीतिदिक् ।

अथ अद्वैतंद्वैतं द्वैताद्वैतश्चेति त्रितयमपि शास्त्रप्रतिपादितमित्येतत् त्रितयमपि स्वीक्रियतेऽस्माभिरित्येतत्पूर्वप्रकरणे कथितम् तत्राद्वैतसमुपतिष्ठते । ननु जीवपरेश-योरैक्यज्ञानमेव 'तत्त्वमसि' 'तस्य तावदेव चिरम्' इत्यादिश्रुत्या मोक्षकारणतया प्रतिपदितमिति कथं त्रयाणामद्वैतादीनां मोक्षकारणत्वमद्वैतज्ञानमेव मोक्षकारण-मित्यादिशङ्कायाः समाधानायोपक्रमते ननु तत्वमसि तस्यतावदेवचिरमित्यादि हे श्वेतकेतो त्वमेव तदध्यसि यावत्पर्यन्तमारब्धशरीरपातो न भवति तावदेवपरममोक्षे विलंबो जायते, जाते च शरीरपाते विदेहमोक्षोऽधिगतो भवतीति, अद्वैतज्ञानस्य मोक्षकारणत्वश्रवणेन तदेव मोक्षसाधनम् उपासनादिकं कार्यब्रह्मलोकसाधकमेवेति, नैतद् युक्तम् ऐक्यज्ञानस्य मोक्षकारणत्वमिति 'तत्त्वमस्यादि' वाक्यं न स्पष्टरूपेणप्रतिपादयति किन्तु कुसृष्टिकल्पनया

पदार्थ में विशेष्य कहलानेवाला जो ब्रह्म है उस ब्रह्म में किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता है ब्रह्म सर्वदा निर्विकार रहता है । इसलिये ब्रह्म को निर्विकार कहना ठीक ही है । अतएव निर्विकारता प्रतिपादक श्रुति वाक्य मुख्यार्थ को लेकर के ब्रह्म में समन्वित होता है, लक्षणा वृत्ति का आश्रय लेकर के उन वाक्यों का अर्थान्तर करने की कोई भी आवश्यकता नहीं होती हैं । जो अर्थ शब्द शक्ति के द्वारा शब्द श्रवणोत्तर काल में अवगत होता है उसे मुख्यार्थ कहते हैं यथा-'**गङ्गायां घोष:**' इस वाक्य में प्रथमत: गङ्गा पद द्वारा प्रवाह रूप ही उपस्थित होता है इसलिये गङ्गापद का मुख्य अर्थ प्रवाह ही कहलाता है । जहां मुख्यार्थ का ग्रहण करने में प्रमाणान्तर का विरोध होने से अर्थान्तर का स्मरण करके वाक्यार्थ बोध होता है यथा तीर का बोध करते हैं वहां उसे लाक्षणिक पद कहते हैं । प्रकृत में शक्ति द्वारा ब्रह्म में निर्विकारता का प्रतिपादन होने से शक्यार्थ ही मुख्यवृत्ति से प्राप्त हो जाता है इसलिये अर्थान्तर की कल्पना नहीं करनी पडती है तथा निर्विकारता प्रतिपादक वाक्य का विरोध नहीं होता है ।

और जो वाक्य ब्रह्म को निर्गुण बतलाते हैं उन वाक्यों को गुण सामान्याभाव के प्रतिपादक करने में तात्पर्य नहीं हैं किन्तु उन वाक्यों का तात्पर्य है कि प्राकृत जो दुर्गुण हैं उन गुणों का निषेध

सर्वसमत्वशङ्का नोचिता । अतोविचित्रानन्तशक्तियुक्तं ब्रह्मैवेति यथाह- 'जगदेतत्महाश्चर्यरूपं यस्य महात्मनः । तेनाश्चर्यवेरेणाहं भवताकृष्णसंगतः' इति ।

सोऽर्थः प्रतिपादितो भवति, अग्रे मोक्षफलस्य श्रुतत्वात् भेदज्ञानस्य मोक्षकारणत्वं स्पष्टरूपेण शब्देन प्रतिपादितं भवति, तथा च तद्वचनम् पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा इत्यादि (जीवात्मानं तत्प्रेरकतदन्तर्यामिणंच भिन्नतया परिज्ञाय तादृशभेदज्ञानेन परमात्मनोऽनुग्रहं प्राप्य मोक्षभाग् भवति साधक इत्यर्थः ।) एतावता जीवात्मनः परमात्मनश्च भेदज्ञानमेव साक्षात् मोक्षसाधनमभेदज्ञाने मोक्षकारणता कल्पनीयैव । ननु यदि भेदज्ञानस्य कारणता मन्यते तदा अभेदज्ञानपरकवाक्यविरोधः प्राप्तो भवति तस्मात् भेदज्ञानं मिथ्याभेदविषयकमिति चेत् उभयोर्विषयभेदस्वीकारेण समाधानस्यानायाससिद्धत्वात्, तथाहि सचाविरोध इत्थमित्यादि तत्त्वमसीत्येदं तात्पर्यम्, अयं जीवोऽन्तर्यामीरूपेणावस्थितस्य ब्रह्मणः शरीरमिति तेन कारणेन जीवात्मविशिष्टं परब्रह्मैव तत्त्वमसीति वाक्यघटकत्वं शब्देन प्रतिपाद्यते ।

करने में तात्पर्य है किन्तु श्रुति सिद्ध जो अहेय अनन्त कल्याण गुण समुदाय हैं एतादृश कल्याण गुणों का निषेध करने में तात्पर्य नहीं है अर्थात् निर्गुण शब्द का अर्थ है विशेषाभाव किन्तु सामान्याभाव नहीं है कतिपय दुर्गुणनिष्ठ प्रतियोगिताक अभाव रूप अर्थ है न तु गुणत्व लक्षण सामान्य धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव हैं। इस तरह निर्गुणत्व प्रतिपादक श्रुति वाक्य भी मुख्य वृत्ति को लेकर ब्रह्म में समन्वित होती है इसमें लक्षणावृत्ति के आश्रयण करने की कोई भी आवश्यकता नहीं होती है। एवम् 'नेह नानास्ति किंचन' 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादिक जो नानात्व भेद का निषेध करनेवाला श्रुतिवचन हैं, उनका तात्पर्य यह है कि कितने चेतन पदार्थ तथा अचेतन जड पदार्थ हैं वे सब ब्रह्म के शरीर हैं अर्थात् ब्रह्म के विशेषण हैं, ब्रह्म एक ही हैं, ये ब्रह्म इन सब पदार्थों की आत्मा हैं इसलिये ब्रह्म विश्वरूप से देखने में आते हैं वस्तुतः ब्रह्म एक ही है जो कि अनेक रूपों से देखे जाते हैं। तो इस में अब्रह्मात्मक नानात्व का निषेध किया जाता है किन्तु ब्रह्मात्मक नानात्व का निषेध नहीं किया जाता है यहां सब परतंत्र हैं ब्रह्मात्मक हैं, स्वतन्त्र अनेक पदार्थ नहीं। स्वतन्त्र अनेक पदार्थ का खण्डन करने में उक्त श्रुति का तात्पर्य है इसलिये यथोक्त श्रुति में कोई विरोध नहीं होता है।

एवं जो श्रुतिवाक्य परमात्मा को चेतनाचेतन पदार्थों से विलक्षण बतलाते हैं उन वाक्यों का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म जड चेतन सब पदार्थ से विलक्षण हैं एवं सर्व विलक्षणत्व सर्वस्वामित्व

॥ अनेकश्रुतिष्वविरोधप्रदर्शनम् ॥

एतावता प्रकरणेन सर्वश्रुतीनां समस्तपूर्वाचार्यकृतव्याख्यानुसारेण समन्वयः प्रदर्शितः । तत्र काचनश्रुतय उत्पत्तिप्रलये विवदमानाः काचनतदीयक्रमादिषु तथा ब्रह्मस्वरूपभेदादिषु तथा भूताः सन्ति ।

अनेन प्रकारेण जीवविशिष्टं परब्रह्मणा सह जगत् कारणीभूतपरब्रह्मणोऽभेदोऽवगन्तव्य इति 'पृथगात्मानम्' इत्यस्यप्रतिपाद्योविषयोऽयम्, परमेश्वरस्य शरीररूपेण वर्तमानजीवात् तादृशतदीयशरीरलक्षणजीवस्याप्यन्तरात्मतयावस्थितः परमात्माऽतीवविलक्षणः । कुतः ? यतः सर्वस्यान्तरात्मतया व्यवस्थितः परमात्मासर्वदा सर्वथा सकलदोषरहितः सर्वदा परस्यस्वभावादेव सर्वविकारादिदोषवर्जित इति श्रुतेः। तथा स सर्वात्मा परमेश्वर उत्कर्षस्य चरमकाष्ठां प्राप्तः तथा सत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वादिकानन्तकल्याणगुणानामाकरः । जीवात्मा तु नैतादृशः, कुतः ? तस्य विकारित्वश्रवणात् । इत्थं च प्रकारेणानेन परमेश्वरशरीररूपेण परिणतजीवस्य तथा जीवस्याप्यन्तरात्मतयाऽवस्थितपरमेश्वरस्य भेदः, शरीरात्मनोः परस्परभेदस्य देवमनुष्यादिस्थले दर्शनात् । इत्थमुभयोर्भेदः । अयमेव 'पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा' इत्यादिश्रुतिवचनस्य प्रतिपाद्यो विषयः । यथोक्तश्रुतिवचनयोस्पर्युक्तप्रकारेण

कल्याण गुणाकरत्वादि अनन्त कल्याण गुण के सागर हैं। इस बात को बतलाने में तात्पर्य रखते हैं, इसलिये पूर्वापर का विरोध नहीं होता है। एवं 'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म' यह श्रुति वचन ब्रह्म को ज्ञानस्वरूप तथा आनन्द स्वरूप बतलाते हैं। इस वचन का आश्रय लेकर शंकरानुयायी लोग ब्रह्म केवल ज्ञानानन्द स्वरूप हैं ज्ञानादिगुणों के आश्रय नहीं है, ऐसा कहते हैं परन्तु सो युक्त नहीं है क्योंकि अनेक श्रुति वचनों से ब्रह्म में ज्ञानादिक अनेक गुण की सिद्धि होती है श्रुति कहती है कि ब्रह्म जड चेतन सब पदार्थों से भिन्न है सर्वकल्याण गुण के आधार है सब के ईश्वर है सब के स्वामी है इत्यादि वचनों के अनुसार ब्रह्म में सर्वेश्वरत्व निर्दोषत्व निर्विकारत्व सर्वात्मत्वादिक गुणों को मानना आवश्यक है, अन्यथा सर्वेश्वरत्वादिगुणप्रतिपादक श्रुति वाक्यों का वैयर्थ्य हो जायगा ब्रह्म को ज्ञान स्वरूप आनन्द स्वरूप प्रतिपादक वचन के अनुरोध से गुण प्रतिपादक वचनों का अनादर करना उचित नहीं है। 'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादि ज्ञानादि स्वरूपता प्रतिपादक वचनों का तात्पर्य यह है कि ज्ञान आनन्दादिक ब्रह्म का स्वरूप निरूपक धर्म हैं। जिस धर्म के द्वारा धर्मी के स्वरूप का निरूपण हो उसे स्वरूप निरूपक धर्म कहते हैं। जिस तरह घटादिक पदार्थों का स्वरूप धर्म घटत्वादिक जाति होते हैं क्योंकि घटत्वादि जातियों का ज्ञान होने पर ही घटादि व्यक्ति जाने जाते हैं और घटत्वादिक

तासां सर्वासां समन्वयायायमारंभः । तथाहि 'निरवद्यं निरञ्जनम्' 'विज्ञानमानन्दम्' 'निर्विकारं निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निर्गुणमित्यादिकाः । निर्गुणं ज्ञानस्वरूपं ब्रह्म' इत्यादिकाः । 'नेह नानास्ति किञ्चन मृत्योः स

तात्पर्यस्वीकारे प्रतिपाद्यार्थयोः परस्परं विरोधाभावेन तयोर्वचनयोरापातदृष्ट्या विरुद्धतया प्रतिभासमानयोरपि विषयभेदस्य व्यवस्थापनेन विषयैक्यप्रयुक्तप्राप्तविरोधस्योपशान्तत्वेन समन्वयस्याबाधनात् । यथा 'मा हिंस्यात् सर्वाणिभूतानि' 'अग्निष्टोमीयं पशुमालभेत' इत्यनयोः श्रुतिवचनयोरापाततो विरोधदर्शनेपि क्रतूपकारकत्वपुरुषदोषजनकत्वरूपविषयभेदमास्थायोभयोर्विषयभेदव्यवस्थापनेन विरोधोपशमात्समन्वयः । विषयैक्ये हि विरोधो भवति, विरोधे सति बलीयसादुर्वलस्य बाधो भवति । न तु विषयभेदे विरोधः विरोधाभावे च बाध्यबाधकाभावः इत्थमेव प्रकृते 'तत्त्वमसि' 'पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा' इत्यादिश्रुति वचनयोर्विषयभेदव्यवस्थयाविरोधः समाहितः ।

का ज्ञान नहीं होने से घटादि व्यक्ति का ज्ञान नहीं होता तो इस प्रकार से अन्वय व्यतिरेक द्वारा सिद्ध होता है कि जाति व्यक्ति का स्वरूपनिरूपक अर्थात् व्यक्ति स्वरूप का निर्वाहक जात्यादिक धर्म हैं इसलिये य स्वरूप निरूपक धर्म कहलात हैं। इसी तरह प्रकृत में ज्ञान तथा आनन्दादिक धर्म ब्रह्म का स्वरूप निरूपरक गुण हैं क्योंकि ज्ञान आनन्दादिकों का ज्ञान होने से ही ब्रह्म को समझा जाता है और आनन्दादिक को जाने बिना ब्रह्म को नहीं जाना जा सकता है, इसलिये ज्ञान आनन्दादिक ब्रह्म का स्वरूप निरूपक धर्म हैं, धर्म धर्मों में रहता है, जो जिसमें रहता है वह उससे भिन्न कहलाता है जिस तरह गृह में रहनेवाला देवदत्त गृह से भिन्न है तथा गृहाश्रित है इसी तरह ब्रह्म में रहनेवाला ज्ञानादिक गुण ब्रह्म भिन्न है तथा ब्रह्माश्रित हैं। इससे ब्रह्म तथा तदीय ज्ञान में आधाराधेयभाव होता है और आधाराधेय स्थल में उन दोनों में भेद रहता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञानादिक ब्रह्म से भिन्न गुण है ब्रह्माश्रित होकर ब्रह्म का स्वरूप निरूपक हैं। अतः ज्ञान शब्द से ब्रह्म का कथन किया गया है।

और शब्दों में ऐसा स्वभाव देखा जाता है कि स्वरूप धर्मों का वाचक जो शब्द है वह स्वरूप निरूपक धर्म का प्रतिपादन अर्थात् कथन करता हुआ स्वरूप धर्म का आश्रय जो पदार्थ है उसका भी वाचक होता है अर्थात् धर्म को समझाता हुआ आश्रयीभूत धर्मी का भी बोधक होता है। यथा गोत्वरूप स्वरूप निरूपक धर्म का वाचक गवादि शब्द गोत्व को समझाता हुआ गोत्व का आश्रय गवादि व्यक्तिरूप स्वाश्रय को भी समझाता है, अन्यथा गवादि शब्दों से व्यक्तियों का भान नहीं होगा। उसी

मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येत् केन कं विजानीयादित्यादिकाः । नानात्वस्य भेदस्यनिषेधिकाः । 'यः सर्वज्ञः स सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः' 'सर्वाणि रूपेणि विचिन्त्यधीरो

विरोधाभावे चोभयोः समन्वयः, समन्वये परस्परं जाते नैकस्याप्यप्रामाणिकत्वम् । तदनेन क्रमेणाद्वैतं वेदान्तवेद्यं, द्वैतं द्वैताद्वैतमपि तथा दतेतत्सर्वं विशिष्टाद्वैतवादे समाहितं भवति नान्यमते । तदत्रानुसन्धेयः सर्वश्रुतिसमन्वयाख्यो जगद्गुरु-श्रीश्रुतानन्दाचार्यानुगृहीतोदिव्यप्रबन्धः 'अद्वैतबोधिकाः काश्चित् काश्चिद्द्वैतस्यबोधिकाः । घटकश्रुतयः काश्चिदन्तर्यामिप्रबोधिकाः । अप्रामाण्यं भवेत्तासां विरोधेऽभिमतेमिथः । विशिष्टाद्वैतिभिस्तासां क्रियतेऽतः समन्वयः । अद्वैतश्रुतयोबोध्याविशिष्टब्रह्मबोधिकाः । नान्यश्रुतिमतानां हि तत्त्वानां प्रतिषेधिकाः । परं ब्रह्म च तद्वाच्यं त्वद्वाक्यं त्वच्छरीरकम् । तत्त्वमसीति वाक्येन तूक्तोऽभेदस्तयोर्द्वयोः । द्वैतश्रुतिसमूहस्तुविद्वद्भिः सम्मतः खलु ।

तरह प्रकृत में ज्ञान आनन्द को समझाने के लिये प्रयुज्यमान ज्ञानानन्दादिक शब्द ज्ञान आनन्द को समझाता हुआ ज्ञान आनन्द का आधारभूत ब्रह्म को भी समझाता है। इससे यह सिद्धि होता है कि ब्रह्म ज्ञान गुण वाला है तथा आनन्दादि है नतु गुणवाला है नतु ज्ञान स्वरूप तथा आनन्द स्वरूप ब्रह्म है, क्योंकि-'**सत्यं ज्ञानमानन्दम्**' इस श्रुति में जो आनन्द शब्द है वह अर्शादिक मत्वर्थीय अच् प्रत्ययान्त है उसका अर्थ है ज्ञानाश्रय तथा आनन्द का अधिकरण ब्रह्म है। अन्यथा यदि ब्रह्म और आनन्द में '**नीलो घटः**' के समान अभेद माना जाय तब तो ब्रह्म पद नपुसंक है तब उसका विशेषण आनन्द को भी नपुंसक होना चाहिये परन्तु ऐसा न हो कर के आनन्द शब्द नित्य पुलिंग है तब '**आनन्दः**' ऐसा प्रयोग होना चाहिये इसलिये आनन्द शब्द अधिकरणार्थक मान करके जो नपुंसक में प्रयुक्त होता है इससे सिद्ध होता है कि वह अधिकरणार्थक ही है, अतः ज्ञानान्द तथा ब्रह्म में आधाराधेय भाव है ज्ञानानन्द विशेषण हैं और ब्रह्म विशेष्य है और इस तीनों में भेद भी है तो जिस तरह गोत्वादि जाति को बतलाने वाला गवादि शब्द गोत्वादि विशेषण को समझाता हुआ गोत्वाश्रयीभूत गवादिक व्यक्ति रूप तदाधार को भी बतलाता है इसी तरह ब्रह्म के विषय में प्रयुक्त ये ज्ञान शब्द तथा आनन्द शब्द ज्ञान तथा आनन्द का बोधक होता हुआ ज्ञानान्द का आश्रयरूप ब्रह्म को भी समझाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि पर ब्रह्म ज्ञान गुण वाले तथा आनन्द गुण के अधिकरण द्रव्य हैं न तु ज्ञान तथा आनन्दत्मक गुण स्वरूप हैं। अथवा-'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इस श्रुति का यह अर्थ है कि 'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति' 'तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा

नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते'' 'सर्वेनिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि' 'अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासस्सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इतिसर्वसंसारे हेयत्वेनावगतं सर्वगुणं निराकृत्य नित्यनिरतिशयसर्वकल्याणगुणगणं सर्वज्ञत्वं सर्वनामरूपव्याकरणं

चिदचिदीशतत्त्वानां पार्थक्येनावबोधकः । आत्मत्वमीश्वरस्याथ चिदचितोश्चदेहता ।
सर्वाभिर्विनिवेद्येते घटकश्रुतिभिः किल । वेदान्ततत्त्वविद्भिश्च कार्यकारणभेदतः ।
चिदचिद्भ्यांविशिष्टं हि ब्रह्म च द्विविधं मतम् । स्थूलचिच्चिद्विशिष्टं हि ब्रह्म कार्यं प्रकीर्तितम् ।
सूक्ष्मचिच्चिद्विशिष्टं तु ब्रह्म कारणमुच्यते । अद्वैतं च मतं श्रौतं ब्रह्मणोश्चविशिष्टयोः ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तस्तस्माच्छ्रुत्यनुमोदितः । अत एवास्मदाचार्यबोधायनादिसम्मतः ।
विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तो लोके विजयते तराम् ।' इति ।

इतः पूर्वं द्वैताद्वैतवादिना कथितं यत् 'भोक्ताभोग्यम्' इत्यादिश्रुत्या ब्रह्मपरमात्मा भोक्तृजीवभोगजडपदार्थस्तथेश्वररूपेणत्रिधाऽवस्थित इत्येवं त्रिधाऽवस्थित इत्यर्थतोद्वै-

सर्वमिदं विभाति' इत्यादि श्रुति से सिद्ध होता है कि ब्रह्म स्वयं प्रकाशरूप है तथा सर्व प्राप्य होने से सब के अनुकूल है (**सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम्**) यह सुख का लक्षण है। इसलिये ज्ञान तथा आनन्द शब्द से ब्रह्म का व्यवहार होने से ब्रह्म में ज्ञान तथा आनन्दपद बोध्यत्व होता है न तु ज्ञान तथा आनन्दात्मक है क्योंकि द्रव्य गुण का स्वरूप नहीं हो सकता है। आत्मा को ज्ञान स्वरूप मान कर के ब्रह्म में जो अन्य अनन्त कल्याण गुण का प्रतिपादक अनेक श्रुति वाक्य हैं उनका अनादर करना उचित नहीं है।

एवं '**तत्त्वमसि**' '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' '**तज्जलान्**' इत्यादि श्रुति वाक्यों में जो ब्रह्म के साथ चेतनाचेतन जगत् का अभेद प्रतिपादन किया जाता है उक्त श्रुति वाक्यों का तात्पर्य यह है कि जड चेतन पदार्थों का अन्तर्यामी जो परमात्मा है तथा जगत् का कारणीभूत 'यतो वा **इमानि** भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुति सिद्ध है वह ब्रह्म एक है न तु '**यः पृथिव्यांतिष्ठन्**' इत्यादि श्रुति सिद्ध जो अन्तर्यामी ब्रह्म है तथा श्रुति सिद्ध जो जड़चेतन साधारण सकल जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलय के कारण ब्रह्म है इन में परस्पर भेद है किन्तु एक है ऐसा कहने में तत्त्वमस्यादि वाक्य का तात्पर्य है। क्योंकि जड चेतन साधारण जगत् तथा अनेक जीवों का प्रतिपादक जो शब्द है वह जड चेतन तथा जीव को बतलाते हुए इन सब का अन्तर्यामी तक का प्रतिपादन करते हैं क्योंकि शरीर वाचक शरीरी पर्यन्त [illegible] होते हैं ऐसा देव मनुष्यादि बोधक शब्द देवाद्यवच्छिन्न आत्मा तक का बोध कराता है ऐसा

सर्वाधारतां च काचिच्छ्रुतयः प्रतिपादयन्ति । एवं 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति' 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' एक सन् बहुधा चचारः' इत्यादिकाः श्रुतयो ब्रह्मजातं चराचरमनेकप्रकारमिति प्रतिपाद्य तेषां

ताद्वैतवाद एव श्रुत्यर्थपर्यालोचनया व्यवस्थितो भवतीति द्वैताद्वैतमतनिराकरणायोपक्रमते भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा इत्यादिग्रन्थेन । **अयमाशयः नेयंश्रुतिर्द्वैताद्वैतमनुमोदतेऽपितु ब्रह्मणोरूपत्रयेणावस्थानमात्रं** सूचयति । तच्चरूपत्रयमित्थम् तदिदं ब्रह्मप्रकृतितत्का-र्यजडपदार्थमात्रस्य भोग्यस्य अन्तर्यामीभूत्वाऽवस्थितम्, तथा भोक्तुर्जीवस्याप्यन्तर्यामिरू-पेणावस्थानम्, तथा स्वकीयरूपेणाप्यवस्थानमित्येवं क्रमेण त्रिधावस्थानं ब्रह्मणः । एवं ब्रह्मणः शरीररूपेणावस्थितस्य जडपदार्थस्यायं स्वभावो यत् स ब्रह्मशरीररूपो भोग्यपदार्थः सदाऽचेतनरूप एव भवति, तथा परमार्थसत्य एव नासत्यः, तथा जीवस्येश्वरस्य च प्रयोजनसंपादनार्थमेव भवति सर्वथा विकारी च । अयं स्वभावोऽचेत-नजडभूतभोग्यवर्गस्य । जीवात्मानोर्भोक्तुः स्वभावस्त्वयम्, सर्वमलरहितापरिच्छिन्नज्ञा-

देखने में आया है। इस प्रकार से ये अभेद निर्देश तत् तथा त्वम् इन दोनों पदों के जो मुख्यार्थ हैं वे अन्तर्यामी तथा जगत् कारण रूप में अभेद का प्रतिपादन करते हैं। अतः जो जो पद चेतनाचेतन साधारण जगत् तथा ब्रह्म में भेद का प्रतिपादन करते हैं उनके साथ कोई भी विरोध नहीं होता है किन्तु भेद तथा अभेद प्रतिपादक सब वचनों में एक वाक्यता की सिद्धि होती है। अर्थात् इस प्रकार श्रुतियों का अर्थ करने से सब श्रुतियों का समन्वय होता है। किसी किसी के साथ विरोध होने की संभावना नहीं रहती है। इस प्रकार से सर्व श्रुतियों का समन्वय विशिष्टाद्वैत पक्ष में ही होता है किन्तु अभेदवाद में अथवा भेदाभेद वाद में नहीं होता है-'**परंब्रह्म च तद्वाच्यं त्वद्वाच्यंत्वच्छरीरकम् । तत्त्वसमीतिवाक्येन तूक्तोऽभेदस्तयोर्द्वयोः**' इत्यादिरूप से सर्व श्रुतियों का निर्विरोध समन्वय प्रकार जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ने 'सर्वश्रुतिसम्न्वयः' नामक स्वनिबन्ध में किया है विशेषविवेचन तद्व्याख्यान प्रसङ्ग में ही करूंगा। अतः विशेषार्थि वहीं से पीपासाशान्त करें। उनके शंकरादिके मतो में तो कहीं भेद श्रुति का बाध होता है तो किसी के मत में अभेद श्रुति का बाध होना अनिवार्य हो जाता है। इस तरह हमारे पूर्वचार्य बोधायन महर्षि सदृश महर्षि लोगों ने इस विशिष्टाद्वैत मत को अपना कर के सर्वश्रुतियों का समन्वय किया है जो कि निर्दुष्ट तथा सर्व शास्त्र संमत है इति संक्षेपः। इस के पूर्व प्रकरण में सर्व श्रुतियों के समन्वय का प्रतिपादन किया है, इसमें पूर्व पक्षवादी कहते है कि आपने जो सर्वश्रुति का समन्वय किया है इससे अद्वैत पक्ष सिद्ध हुआ अथवा द्वैताद्वैत मत सिद्ध

जगतामैक्यविधत्वं च दर्शयन्ति । 'पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' 'प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेयेति' नानन्दस्वभावतो भवन्नपिकर्मरूपाविद्या संपादितज्ञानसंकोचविकाशात्मकविकारवान् भवति, तथा भोग्यजडपदार्थेन सदा संबद्धः परमात्मोपासनया मोक्षभागी चेति । परमात्मापि रूपत्रयेणावस्थितः, भोग्यस्यान्तर्यामीरूपेण भोक्तुर्जीवस्याप्यन्त-र्यामीरूपेण तथा स्वरूपतः सकलकल्याणगुणाश्रयतया चेत्येवं क्रमेण परब्रह्मणः त्रिविधावस्थानं भवति, तदेवंज्ञातव्यमयमर्थ एव भोग्यश्रुतेः । न तु द्वैताद्वैतस्यात्रावसर इति निर्गलितोर्थः । अक्षरार्थस्तु न तिरोहितः । अनेन प्रकारेणाचार्यधुरिणेन भेदाभेदज्ञानमेवमोक्षसाधनं नान्यदिति मतं निराकृतम् ।

केवलाद्वैतिभिरित्थं प्रतिपाद्यते यत् जीवेश्वरयोरैक्यज्ञानमेव निर्गुणब्रह्मरूपपरम मोक्षस्य कारणम्, उपासनादिरूपं भेदज्ञानं तु सगुणब्रह्मप्राप्तिलक्षणमोक्षस्य कारणम् । इय सद्विद्यानिर्गुणब्रह्मविद्यैव यतोऽस्यां 'तत्त्वमसीत्यादिना जीवब्रह्मणोरैक्य-

---

हुआ, आप किस मत का समर्थन करते हैं ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये उपक्रम करतें है-'**इत्थं च सर्वश्रुतेरित्यादि**' सर्व श्रुतियों के समन्वय को बतलाकर के आपके अभेदमत को स्थिर किया अथवा भेदपक्ष को अथवा भेदाभेद मत का समर्थन किया ? इसके उत्तर में कहते है कि मैं ने सर्व पक्ष को वेद प्रतिपादित गोने से विलक्षण रूप से सभी मतों का समर्थन किया है, अर्थात् अपेक्षा के भेद से सब मत का समर्थन हो जाता है। अन्य सिद्धान्तियों के द्वारा वर्णित जो अद्वैत तथा द्वैताद्वैत उसे भेद श्रुति द्वारा विरोध होने से अयुक्त है। भेद श्रुति से विरोध रखनेवाले अभेद तथा भेदाभेद स्वीकरणीय नहीं है क्योंकि अभेद भेद तथा भेदाभेद सब वेद प्रतिपादित हैं, उनमें परस्पर विरोध का सद्भाव नकर के अपितु समन्वय पूर्वक जो अभेद भेदाभेद तथा भेद है उनका समर्थन किया जाता है। समन्वय कर के अविरोध प्रकार को बतलाते हैं-'**स्वरूपत एकेश्वरः**' इत्यादि । स्वरूप से एक ही परमेश्वर चेतन तथा अचेतन सब पदार्थ को स्वकीय शरीर बना कर के तथा उन चेतनाचेतनों से विशिष्ट होता हुआ उनका अन्तर्यामी के रूप में सर्वत्र विद्यमान हैं ऐसा दूसरा कोई भी पदार्थ नहीं है ऐसा मानने से अद्वैत मत का समर्थन होता है। एतादृश परमेश्वर एक होता हुए अनेक जडचेतन विशेषणों में विशिष्ट होकर परस्पर विभिन्नरूपों से अवस्थित रहते हैं। इस दृष्टि से भेदाभेद वाद का भी समर्थन हो जाता है। प्रकृति से लेकर स्थावरान्त जड पदार्थ तथा चेतन और ईश्वर में परस्पर भेद है यह स्वरूप भेद शाश्वत नित्य है, इनका यह भेद मोक्ष में भी विनष्ट नहीं होता है। इस प्रकार से भेदवाद का भी

'पतिं विश्वस्यात्मेश्वरं शाश्वतम् शिवमच्युतम्' तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवानां परमं च दैवतम्' 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः' इत्यादिकाः प्रतिपादनात् । एतन्मतं दूषयितुं तथा सद्विद्यायामुपास्यं सगुणमेव ब्रह्म तथा सगुणब्रह्मप्राप्तिरेव परममोक्ष इत्यादिकं दर्शयितुं प्रक्रमते छान्दोग्ये सद्विद्यायामित्यादि अयमर्थः सर्वमोक्षसाधनं ब्रह्मविद्याद्वारेणप्राप्यंवस्तु सगुणब्रह्मैव भवति, यतः सर्वस्यां ब्रह्मविद्यायां गुणयुक्तस्यैव ब्रह्मण उपासनं भवतीति । एतावता निर्गुणब्रह्मविद्या तथा निर्गुणब्रह्मभावापत्तिर्मोक्ष इति एतदुभयमप्यप्रामाणिकमेवेति फलितम् । अनेन सर्वब्रह्मविद्यायां विकल्पोपि फलितः । यतः सर्वब्रह्मविद्याया एकमेव फलं सगुणब्रह्मप्राप्तिरूपं तत् सद्विद्यया शाण्डिल्यादिब्रह्मविद्ययापि सगुणब्रह्मभावापत्तिरेव फलम्, तदा एकयैव तत्फलप्राप्तिसंभवे विद्यान्तरानुष्ठानं न कर्तब्यम् । यथा

समर्थन हो जाता है। अन्यवादियों के द्वारा वर्णित जो अभेद तथा भेदाभेद है वह तो भेद प्रतिपादक श्रुति वाक्यों से विरुद्ध है इसलिये पूर्व मत द्वय सर्वथा त्याज्य हैं। इस प्रकार से सर्व श्रुतियों का यदि समन्वय किया जाये तब अद्वैत द्वैत मत तथा द्वैताद्वैत मत सब भेद प्रतिपादिन दोने से प्रामाणिक हैं तथा मान्य हैं अन्यथा नहीं। यह प्रकार नहीं। यह प्रकार विशिष्टाद्वैत मत में ही समर्थित होता है। ऐसा श्रीबोधायन प्रभृति समस्तपूर्वाचार्यों की मान्यता है, जो कि सर्वथा अकाट्य है वेदेतिहास पुराणस्मृति आकरग्रन्थ समर्थित होने से।

उपनिषद् में अद्वैत द्वैत द्वैताद्वैत ये तीनों वाद परस्पर अविरुद्ध रूप में वर्णित हैं, इसलिये मैं उन्हीं रूपों में तीनों का वर्णन करता हूं ऐसा सिद्धान्तवादी ने इससे पूर्व प्रकरण में कहा है। इस पर अद्वैतवादी कहते है कि-'**तत्त्वमसि**' '**तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्ये**' (हे श्वेतकेतो! तुम वही जगत् कारण ब्रह्म हो। साधक जीव तो तब तक ही विलम्ब रहता है मोक्ष में जब तक इस शरीर से छुटकारा नहीं पाता है शरीर पात के बाद तुरन्त विदेह मोक्ष को प्राप्त कर जाता है) इस वाक्य से यह ज्ञात होता है कि जीव ब्रह्म में अभेद ज्ञान ही मोक्ष का साधन है। इसलिये प्रश्न का समाधान करने केलिये उपक्रम करते है-'**ननु तत्त्वमसि**' इत्यादि '**तत्त्वमसि**' हे श्वेतकेतो ! तुम ब्रह्म रूप हो, उस साधक को तब तक ही मोक्ष प्राप्ति में विलम्ब होता है जब तक इस शरीर का विनाश न हो जाय, इस शरीर के विनाशोत्तर काल में मुक्त हो जाता है। इत्यादि श्रुतियों से जीव तथा ब्रह्म में अभेद का प्रतिपादन होने से अभेद ज्ञान ही तत्व ज्ञान है और एतादृश तत्वज्ञान ही मोक्ष का साधन है किन्तु भेद ज्ञान मोक्ष का साधन नहीं है अर्थात् उपर्युक्त श्रुतियों से सिद्ध होता है कि जीव

श्रुतयः काश्चित् परमात्मनः पदार्थमात्राद् भेदं तथा सर्वस्येशितव्यत्व परमेश्वररत्वं च प्रतिपाद्य तस्य च सर्वेश्वरस्य तथा सर्वस्य शेषत्वं पतित्वं

'व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वायजेत' इत्यत्र व्रीहिकरणकयागेन यत्फलं तदेव यवकरण-कयागेनापि, इतिनोभयोरनुष्ठानम् । अपितु स्वेच्छया यस्य कस्यचिदेकस्यैवेति तत्र तयोर्यागयोर्विकल्पः, एवमेव प्रकृतेऽपि । अयमेव विकल्पप्रकारः ।

तत्र प्रकारद्वयेव ब्रह्मानन्तं स्वरूपतोगुणतश्च । तत्रदेशकालवस्तुद्वारा जायमान परिच्छेदराहित्यात्परमेश्वररहित इति स्वरूपकृतानन्तः । यद्वाध्वंसादिप्रतिया-गिराहित्यमेवानन्त्यं ब्रह्मणः । नहि ब्रह्मणः प्रागभावोध्वंसोत्यन्ताभावो भेदो वा भवति त्रिकालेसत्वात् सर्वव्यापकत्वादिति स्वरूपकृतमानन्त्यंब्रह्मणः । ब्रह्मानन्तक-ल्याणगुणयुक्तमिति गुणत आनन्त्यं ब्रह्मणः । तत्र ब्रह्मापरिच्छिन्नमनन्तकल्याणगुणकं

तथा ब्रह्म में अभेद ज्ञानवान् व्यक्ति ही मुक्त होता है जीव ब्रह्म में एकत्व ज्ञान ही परम पुरुषार्थ मोक्ष का हेतु है । निर्गुण ब्रह्म बन जाना ही परम पुरुषार्थ है । उपासना प्रभृतिक जो उपाय हैं वे तो सगुण ब्रह्म रूपी निम्न कोटिक मोक्ष का साधन है और एक्य ज्ञान मोक्ष का साधन होने से श्रुतियों का अद्वैत में ही तात्पर्य है द्वैत में तात्पर्य नहीं यह अद्वैती की तरफ से प्रश्न होता है । इस प्रश्न का समाधान करने के लिये कहते हैं-'**सत्यम्**' इत्यादि, यह अद्वैत का कथन ठीक है परन्तु '**पृथगात्मानं पेरितारं च मत्वादि**' श्रुत्यन्तर के वचन से साक्षात् भेद ज्ञान को ही मोक्ष कारणत्व का श्रुत होने से भेद ज्ञान ही मोक्ष का कारण सिद्ध होता है किन्तु अभेद ज्ञान को मोक्ष कारणता की सिद्धि नहीं होती है । अर्थात् सद्विद्या के प्रकरण में-'**तत्त्वमसि**' कह कर जीव तथा ब्रह्म में अभेद का वर्णन है परन्तु मोक्ष साधनता का प्रतिपादन करनेवाला स्पष्ट वचन नहीं है परन्तु आगे चल करके मोक्ष रूप फल का वर्णण होने के कारण इस अभेद प्रतिपादक वचन से मोक्ष कारणता का आक्षेप होता है, और भेद ज्ञान में मोक्ष कारणता का प्रतिपादक वचन स्पष्ट रूप में मोक्ष कारणता का विधान करता है । '**पृथगात्मानं प्रेरितारम्**' इत्यादि, अर्थात् जीवात्मा तथा प्रेरक को भिन्न भिन्न समझ कर के उस भेद ज्ञान के कारण परमात्मा की प्रीति-अनुग्रह का विषय बनकर साधक पुरुष मोक्ष प्राप्त करता है । इससे सिद्ध होता है कि भेद ज्ञान ही साक्षात् मोक्ष का कारण है अभेद ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है अभेद ज्ञान में मोक्ष जनकत्व कल्पनीय है तथा भेदज्ञान में मोक्ष कारणत्व कण्ठोक्त है । इस पर अभेद वादी पुनः शंका करते हैं जिस आचार्य जी बतलाते हैं 'न **चैकता प्रतिपादकवचनविरोध**' इत्यादि. नहीं कहे कि अभेद प्रतिपादक '**तत्त्वमसि**' इस वचन के साथ विरोध होने से भेद प्रतिपादक वचन

च सर्वेश्वरे प्रतिपादयन्ति । एवम् 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा' 'एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृतः यस्य पृथिवी शरीरमस्यापः शरीरम् यस्य तेजः शरीरम् यस्याव्यक्तं शरीरम् यस्याक्षरं शरीरम् यस्य मृत्युः शरीरम् यस्यात्मा शरीरम्' इत्यादिकाः श्रुतयः परमात्मभिन्नस्य समस्तपदार्थस्य

चेति ज्ञान मेवानन्तत्वादीनामनुसन्धानम् । अनन्तत्त्वानुसन्धानेन सामान्यरूपेण सर्वकल्याणगुणानामनुसन्धानं सम्पन्नं भवति । प्रत्येकब्रह्मविद्यायां सामान्यसत्य-त्वादिगुणव्यतिरिक्तविशेषगुणा अप्यनुसंधातव्या भवन्ति । यथा सद्विद्यायां जगत्कारणत्वादिको विशेषगुणोप्यनुसन्धीयते । एवं प्रत्येकब्रह्मविद्यायां विभिन्नो गुणो विशेषरूपोऽनुसंधेयो भवति, सत्यत्वादिकसामान्यगुणस्तु सर्वविद्यासाधारणः । अतो ब्रह्मविद्यामात्रेगुणविशिष्टमेव, ब्रह्मोपास्यं भवति तत्फलं च सगुणब्रह्मप्राप्तिरेव । अनेन प्रकारेण फलैकस्मिन् पर्यवसानात् ब्रह्मविद्यायां विकल्प आस्थीयते, एकोपा-

का अर्थ सगुण ब्रह्म प्रापकत्व ही है, ऐसा कहना ठीक नहीं है--अर्थात् अभेद ज्ञान को मोक्ष कारणत्व कहिये क्योंकि भेद ज्ञान को मोक्ष प्रतिपादक वचन में तो '**तत्त्वमसि**' से विरोध होता है अतः जो वचन भेद ज्ञान को मोक्ष कारण कहता है तो यह वाक्य मिथ्याभूत भेद को बतलाता है तथा तादृश भेद ज्ञान से सगुण ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष मिलता है और अभेद ज्ञान से परम मोक्ष की प्राप्ति होती है ? इस के उत्तर में कहते हैं-'**इति न वाच्यम्**' ऐसा कहना ठीक नहीं हैं क्योंकि अभेद ज्ञान में मोक्ष साधनता की सिद्धि कल्पना से की जाती है अर्थात् उसमें कारणता आक्षेप लभ्य है और भेद ज्ञान में मोक्ष कारणत्व स्पष्ट रूप से '**अमृतत्वमेति**' इस शब्द से प्रतिपादित है । इसलिये अभेद ज्ञान को कारणता नहीं है किन्तु भेद ज्ञान को ही मोक्ष कारणता है ।

भेदज्ञान मोक्ष का कारण है अथवा अभेद ज्ञान मोक्ष का कारण है ? इस बात को स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं--'**अयंभावः**' तुल्य बलयोर्द्वयोरित्यादि, इस प्रकरण का भावार्थ ऐसा है कि तुल्य बलवाले परस्पर विरुद्ध दो वचनों की विषय व्यवस्था कर के अविरोध का सम्पादन करना चाहिये, अन्यथा परस्पर विरोध होने से दोनों अप्रामाणिक हो जायेगे यहां दोनों प्रमाण वेद रूप हैं इनका अप्रामाणिक होना तो ठीक नहीं हैं अतः अभेद प्रतिपादक तथा भेद प्रतिपादक वचनों की विषय व्यवस्था इस प्रकार से बनती है तथाहि-अभेद परक '**तत्त्वमसि**' इत्यादि वचन का इस अर्थ के वतलाने में तात्पर्य है कि जीवात्मा अन्तर्यामी के रूप में अवस्थित

जडाजडस्य परमात्मनः शरीरात्मभावं प्रतिपादयन्ति । अत्रानेकरूपाणां परस्परविरुद्धार्थप्रतिपादकवाक्यानामविरोधस्परस्परं यथासंभवेत्तथैव प्रयतनीयं व्याख्यानं च तथैव कर्तव्यम् । प्रतिपादितञ्च बोधायनवृत्ति-

सनेनैव फलप्राप्तौ तदर्थं विद्यान्तराश्रयणस्यायुक्तत्वात् । सद्विद्यायां जगत्कारण-त्वादिधर्मविशिष्टब्रह्मणोऽनुसंधानं भवति, परन्तु जगत्कारणत्वादिगुणानां पार्थक्ये-नानुसंधानं न भवति, विशिष्टस्यानुसन्धाने विशेषणविधयागुणानामप्यनुसन्धानस्य संभवेन पार्थक्येन तदनुसन्धानस्यानतिप्रयोजनकत्वात् । दहरविद्यायां तु अपहतपाप्मत्वा दिकल्याणगुणानां पार्थक्येनाप्यनुसन्धानस्य संभवात् । यद्यप्येतावान् उभयोर्विद्य-योर्भेदस्तथापि तादृशभेदसत्वेपि सर्वब्रह्मविद्यायामनुसन्धेयानन्तकल्याणगुणा-नामनुसन्धानसमये तादृशानन्तकल्याणगुणविशिष्टब्रह्मानुसन्धानस्यापि संपन्नत्वात्

परमेश्वर का शरीर होने के कारण जीवात्मा विशिष्ट परब्रह्म ही '**तत्त्वमसि**' वाक्य घटक त्वम् शब्द से प्रतिपादित होता है। इस तरह जीव विशिष्ट परमेश्वर तथा जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलय के कारण ब्रह्म में अभेद को जानना चाहिये। यह '**तत्त्वमसि**' वाक्य का प्रतिपाद्य विषय हैं, और '**पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा**' इत्यादि वाक्यों का वाच्यः-प्रतिपाद्य विषय यह कि परब्रह्म का शरीर बनकर रहनेवाले जीव से उस जीव की भी अन्तरात्मा बनकर व्यवस्थित रहनेवाले जो ब्रह्म हैं तादृश परमात्मा तादृश जीव से अत्यन्त विलक्षण अर्थात् भिन्न हैं क्योंकि परमात्मा नित्य निर्दोष हैं अर्थात् परमात्मा में किसी भी समय में कोई दोष नहीं रहता है वह सर्वदा सर्व दोष रहित हैं और परमात्मा उत्कर्ष की चरमसीमा को प्राप्त किये है एवं सत्य कामत्व सत्य सङ्कल्पत्वादिक हेय प्रत्यनीक अनन्तकल्याण गुण समुदाय के महासागर हैं, और जीवात्मा तो एतादृश गुण गण विशिष्ट नहीं है इस तरह परमात्मा का शरीररूप जीवा में तथा एतादृश जीव के अन्तरात्मारूप परमेश्वर में परस्पर भेद है। यह '**पृथगात्मानम्**' इत्यादि श्रुतिवाक्य का प्रतिपाद्य विषय होता है। इस प्रकार से तात्पर्य को मानने से किसी को किसी के साथ विरोध न होने से सब श्रुति वचनों का समन्वय हो जाता है। इस तरह आचार्यजी ने सर्व का पृथक् पृथक् तात्पर्य मान कर के सब के समन्वय को सिद्ध किया है। विशेष विवरण तत्तन्निबन्ध व्याख्यान में अन्यत्र देखें।

'**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सव प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्**' इस श्रुति से भोक्ता जीव भोग्य जड पदार्थ तथा प्रेरक ईश्वर इन तीन रूपों से ब्रह्म परमात्मा त्रिविध सिद्ध होते हैं। इससे द्वैताद्वैत वादियों का श्रुति से भेदाभेद सिद्ध होता है इसलिये भेदाभेद ज्ञान ही मोक्ष का कारण है

कारभगवच्छ्रीपुरुषोत्तमाचार्यप्रभृतिमहामहोपाध्यायायजगद्गुरु-श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यान्तवृत्तिकारादिभिः पूर्वमेवयदविकारता पतिपादकवेदवाक्यम् स्वरूपपरिणामस्य पतिपादनेन मुख्यार्थतां भजन्ति ।

ततश्चानन्तकल्याणगुणविशिष्टब्रह्मणः प्राप्तिर्भवतीति, सद्विद्यायां तु अनन्तत्वादि-गुणानामनुसन्धानसमये तादृशगुणविशिष्टब्रह्मानुसन्धानमपि संपद्यते एव । अनेन प्रकारेण सामान्यरूपेणानुसन्धानात् तादृशगुणविशिष्टब्रह्मप्राप्तिरूपफले न कश्चिद् भेदो भवतीति दहरविद्यासद्विद्ययोर्विकल्पः सिद्ध्यति । इत्थंसर्वब्रह्मविद्यायां विकल्पं दर्शयित्वा छान्दोग्यसद्विद्यायामपि सगुणमेव ब्रह्मोपास्यं भवति ततस्तादृशोपासनाबलेन सगुणब्रह्मणः प्राप्तिरेव मुख्यं मोक्षरूपं फलं भवति । न तु निर्गुणब्रह्मणः समुपासनं न वा निर्गुणब्रह्मप्राप्तिः फलं मोक्षः । अत उपासनया भेददर्शनेन मोक्षो न भवतीति कथनं तत्वज्ञशिरोमणिसमस्तास्मत्पूर्वाचार्यव्याख्यानप्रतिकूलत्वात् सर्वथैवानादर-

अतः भेदाभेद में ही श्रुति का तात्पर्य है। ऐसा जो मत है उन मतों का खण्डन करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा**' इत्यादि, '**भोक्ता भोग्यम्**' इत्यादि श्रुति से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म के तीन रूप हैं इन तीन रूपों से ब्रह्म की स्थिति बतलाई गई है न तु इस श्रुति से भेदाभेद का प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपाद्य तीन रूपों का कथन करते हैं '**भोग्य लक्षणस्य**' इत्यादि ग्रन्थ से। ब्रह्म भोग्य जड पदार्थ का अन्तर्यामी बनकर के रहने का, भोक्ता जीव के अन्तर्यामी बन कर के रहने का, तथा अपने स्वरूप से रहना, ये तीन स्वभाव ब्रह्म के हैं। एवं परब्रह्म के शरीररूप से अवस्थित भोग्य जड पदार्थ का स्वभाव यह है कि-ये जब रहते हैं तब जड अचेतन होकर के ही रहते हैं तथा सत्य रूप हैं परन्तु मिथ्या नहीं हैं शुक्ति रजत की तरह एवं ये सब अन्य प्रयोजनक होते हैं स्वेतर चेतन के लिये होते हैं अर्थात् चेतन जो जीव वर्ग तथा ईश्वर के लिये भोग्य बने रहते हैं, एवं सर्वदा विकार शील रहते हैं यह अचेतन जड भोग्य पदार्थ का स्वभाव है। एवं जीवात्मा जो भोक्ता है उसका स्वभाव इस प्रकार का है कि-वह अतिनिर्मल अपरिच्छिन्न ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप होता हुआ भी '**अविद्या कर्म संज्ञान्या**' इस नियम के अनुसार कर्म रूप अविद्या के बल से स्वकीय ज्ञान में अनेक प्रकारक संकोच विकाश को प्रदीप की तरह प्राप्त करता है। जीवात्मा जो कि भोक्ता हैं वे सर्वदा जड भोग्य पदार्थों से सम्बद्ध रहते हैं असबद्ध कभी भी नहीं तथा परमात्मा की उपासना से मोक्ष को प्राप्त करते हैं नतु ज्ञानमात्र से मुक्त होते हैं इत्यादि स्वभाव जीव का है।

निर्गुणप्रतिपादकास्तु प्राकृतहेयगुणनिराकरणपरकतयानेतव्याः ।

भेदप्रतिपादकशब्दास्तु एकपरमात्मनः शरीररूपेण प्रकारभूतं सर्वं जडचेतनात्मकं वस्तु इतिसर्वस्यात्मरूपेण सर्वप्रकारकं ब्रह्मैवनान्यदिति संगिरन्ति । सर्वविलक्षणत्वं सर्वपतित्वसर्वेश्वरत्वसर्वकल्याणगुण-

---

णीयमिति संक्षेपः ।

अथान्तर्यामिप्रकरणे परमात्मा सर्वप्राणिजातस्यान्तरात्मा सर्वनियामकः सर्वप्रेरकश्चेत्यादिकं कथितम् । तथा 'ईश्वरः सर्नभूतानांहृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' इत्यादिगीतादावपि परमेश्वरस्य सर्वप्रेरकत्वं प्रतिपादितम् । अभ्युपगम्यते च तथा सर्वैरप्याचार्यादिभिः परन्तु तन्नयुक्तम् कुतः विधिप्रतिषेधशास्त्राणां 'स्वर्गकामो यजेत' 'न कलंजं भक्षयेदित्यादिनां वैयर्थ्यं स्यात् । यो हि स्वतन्त्रः कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्तः सविधिशास्त्रेणोदिष्ट इष्टे कर्मणि प्रवर्तते

एवं परमात्मा भी तीन रूपों से अवस्थित रहते हैं वे तीन रूप इस प्रकार के हैं तथाहि भोग्य जो प्रकृत्यादि जड पदार्थ हैं उन सब का अन्तर्यामी बन कर के रहना, एवं भेग्य का भोक्ता जो जीव चेतन वर्ग हैं उन सब का भी अन्तर्यामी वन कर के रहना, तथा स्व स्वरूप से हेय प्रत्यनीक अप्राकृतिक असंख कल्याण गुण सर्वज्ञत्व सत्य सङ्कल्प सत्यकामत्वादिक गुणों का आधार बन कर के रहना । इस प्रकार जो परब्रह्म को रूपत्रय से अवस्थान है एताद्दशरूपत्रयावस्थानावस्थित जो परब्रह्म हैं वे ज्ञातव्य हैं। यह अर्थ '**भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्व प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्**' इस श्रुति का अर्थ है। परन्तु उदाहृत यह श्रुति भेदाभेद बाद को नहीं बतलाती है, किन्तु ब्रह्म की जो त्रिविध स्थिति है तादृश त्रिविध स्थिति का वर्णन करती है। आचार्यजी ने इस तरह से प्रकृत मन्त्र का अर्थ कर के भेदाभेदवादियों का खण्डन कर दिया। वे भेदाभेदवादी लोग कहते हैं कि भेदाभेदज्ञान ही मोक्ष रूप परमपुरुषार्थ का कारण है, इसलिये यथोक्त श्रुति का भेदाभेद में ही तात्पर्य मानना चाहिये ऐसा जो मानते थे उसका इस मूल ग्रन्थ से निराकरण किया गया है।

शंकर मतानुयायियों ने कहा था कि जोव तथा ब्रह्म का जो एकत्वज्ञान है वही निर्गुण ब्रह्म रूप परममोक्ष (विदेह मोक्ष) में कारण है और भेद जो है उससे परमभोक्ष प्राप्त नहीं होता है परन्तु भेद ज्ञान से विशिष्ट लोकान्तर की प्राप्ति ही होती है। छान्दोग्य में जो सद्विद्या है वह निर्गुण ब्रह्म विद्या है सगुण ब्रह्म विद्या नहीं है क्यों कि उसमें नौवार 'तत्त्वमसि' कह कर के तत्पदवाच्य ब्रह्म

निधित्वसत्यकामत्वसत्यादिबोधकशब्दो मुख्यार्थतया स्वार्थमेव निवेदयति । ब्रह्मणो ज्ञानानन्दमात्रनिवेदकः शब्दः सर्वेभ्यो विभिन्नस्य सर्वकल्याणगुणाश्रयीभूतस्य परमेश्वरस्य सर्वेश्वररूपस्य सर्वशेषिणः

निवर्तते च निषेधवाक्येनानिष्टकर्मकरणात् । इह तु जीवः सर्वथा परमेश्वरपरतन्त्रः स कथं स्वेच्छया कुत्रचित्पवर्तितं निवृत्तिं कर्तुं वा प्रभवेदिति प्रवर्तकवाक्ययोः सर्वथैव वैयर्थ्यमापतति । न हि राजादिभिः सर्वसमर्थैः कारागारे प्रक्षिप्तो मनुष्या कस्यचिदप्याप्तस्य वाक्योपदेशादपि कुत्रचित् प्रवर्तते नवा निवर्तते तत्कस्य हेतोः ? पराधीनत्वात् तदिह प्रकृतिपराधीनत्वस्य जीवमात्रे स्वीकारेण कारागारे प्रक्षिप्तपुरुषवत् पराधीनत्वेन निगडस्थपुरुषवत् प्राणिजातस्य पराधीनत्वेन शास्त्रोपदेशश्रवणस्य तदनुकूलानुष्ठानकारणासंभवेन प्रवर्तकनिवर्तकवाक्यानां वैयर्थ्यस्पष्टमापद्येत । किञ्च जीवस्य प्रवर्तयित्वे परमेश्वरस्य सर्वथा स्वातन्त्र्ये परमेश्वरे वैषम्यनिर्दयत्वादिका दोषा

तथा त्वं पदवाच्य जीव में एकत्व का वर्णन किया गया है इसलिये ऐक्य ज्ञान मोक्ष का कारण है उपासनाजनित भेद ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है।

इस मत का खण्डन करने के लिये तथा सद्विद्या में सगुण ब्रह्म की ही उपासना है तथा तादृश उपासना से सगुण ब्रह्म प्राप्ति ही परम मोक्ष है निर्गुण ब्रह्म भावापत्ति मोक्ष है यह सब कथन कल्पनामात्र है, इस बात को पूर्वाचार्यों के मत से निराकरण करने के लिये प्रक्रम करतै हैं '**छान्दोग्ये हि सद्विद्यायाम्**' इत्यादि छान्दोग्योपनिषत् षष्ठाध्याय की सद्विद्या में सगुण ब्रह्म ही उपास्य रूप से प्रतिपादित होते है और सगुण ब्रह्म की जो प्राप्ति होती है वही परम मोक्ष है क्योंकि जिसकी उपासना की जाती है उस स्थल में उसकी ही प्राप्ति होती है ऐसा नियम है। अतः सगुण ब्रह्म भावापत्ति का नाम ही परम मोक्ष रूप फल तादृश उपासना का है किन्तु जो लोग कहते है कि-यह जो सद्विद्या है निर्गुण ब्रह्म विद्या है तथा तादृश निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति ही परम मोक्ष रूप फल यथोक्त ब्रह्म विद्या का फल है, परन्तु यह उनका कथन ठीक नहीं है। (अर्थात् आचार्यजी कहते हैं की सद्विद्या निर्गुण ब्रह्म भाव रूप मोक्ष है ये दोनों बातें अप्रमाणिक हैं अर्थात् केवल कल्पना जनित है। '**तत्त्वमसि**' एतद्वाक्य घटित जिस सद्विद्या को पूर्वपक्षियों ने निर्गुण ब्रह्म विद्या कहा है उस सद्विद्या में उपास्य ब्रह्म सगुण हैं तथा उस ब्रह्म विद्या का सगुण ब्रह्म प्राप्ति ही फल है।) इसलिये छान्दोग्य की सद्विद्या निर्गुण ब्रह्म विद्या नहीं है न वा

सर्वाधिकरणस्य सर्वोत्पत्तिमतामुत्पत्तिस्थितिविनाशकारणीभूतस्य तस्य सर्वदोषविवर्जितस्य तथा सर्वविकाररहितस्य सर्वात्मभूतस्य परब्रह्मणः परेशस्य स्वरूपनिरूपको धर्मः सर्वमलविरोधि आनन्दलक्षणज्ञानमेवेति

आपद्येरन् । यदि कदाचित् शुभाशुभकर्मसापेक्षत्वं परमेश्वरस्य स्वीक्रियेत, तत्रापि यथोक्तदोषस्यानतिवृत्तेः । एवं परमेश्वरस्य प्रवर्तकत्वे स्वीकृते प्रवृत्तिनिवृत्ति-कारणयोर्द्वेषरागयोरपि परमेश्वरे समावेशसंभवेन तस्य परमेश्वरस्य दोषवत्व हेयशरीरादिमत्वमपि प्रसज्येत । न चैतदिष्टं परेशस्य सर्वदोषराहित्यश्रवणात् । शरीरादिमत्वे 'अपाणिपादोजवनोगृहीता' इत्यादिश्रुतिव्याकोपः प्रसज्येत । इत्यादिशङ्कां निराकर्तुं सिद्धान्तहृदयं दर्शितुं चोपक्रमते पूर्वप्रकरणेप्राणिमात्रस्य परब्रह्मान्तर्यामित्यादि । 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्' 'यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरोयं विज्ञानं न वेद' इत्यादि । अन्तर्यामिश्रुतिनिकरैः परमात्मा-

---

उस विद्या में निर्गुण ब्रह्म उपास्य है न वा निर्गुण ब्रह्म भावापत्ति मोक्ष है किन्तु सद्विद्या सगुण ब्रह्म विद्या है तथा उससे सगुण ब्रह्म भावापत्ति रूप मोक्ष ही परम मोक्ष है।

क्योंकि आनन्दभाष्यकारादि समस्त पूर्वाचार्यों ने इसी तरह से इस प्रसङ्ग का व्याख्यान किया है। जब ब्रह्म विद्या के द्वारा प्राप्त होने वाला सगुण ब्रह्म प्राप्तिरूप फल एक ही है, तब इन ब्रह्म विद्याओं में से एक किसी का अनुष्ठान करना ही पर्याप्त है क्योंकि सब का फल एक ही है। जिस तरह-'**व्रिहिभिर्वा यजेत यवैर्वा यजेत**' इस स्थल में व्रीहि करणक याग से जो स्वर्गरूप फल प्राप्त होता है वही स्वर्गरूप फल यव करणक याग से भी प्राप्त होता है तो उस स्थल में यजमान की इच्छा पर निर्भर रहता है कि वह व्रीहि से याग करे अथवा यव से याग करे फलांश में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार प्रकृत में चाहे सद्विद्या का अनुष्ठान करे अथवा शाण्डिल्यादिक विद्या का अनुष्ठान करे सब में सगुण ब्रह्म प्राप्तिरूप फल में समानता है, इसी को विकल्प कहते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि सभी ब्रह्मविद्या में ब्रह्म स्वरूप का अनुसन्धान करना चाहिये, और ब्रह्म का अनुसन्धान करने के समय में ब्रह्म को सत्य ज्ञान आनन्द तथा निर्मल समझ कर के उपासन करना चाहिये। सत्यत्व ज्ञानत्वादिक धर्म सभी ब्रह्म विद्या में अनुसन्धान करने के लायक है क्योंकि इन सत्यत्वादि धर्मों का अनुसन्धान करे बिना ब्रह्म रूप धर्मों अनुसंधान का असंभव हो जायेगा। इसलिये सत्यत्वादिक

स्वप्रकाशकत्वात्तदीयस्वरूपमपि ज्ञानमेवेति । ऐक्य--अभेदप्रतिपादकाः शब्दास्तु शरीरात्मभावेन सामानाधिकरण्ये च मुख्यवृत्त्यैव स्वार्थबोधका न तु लक्षणयैकार्थबोधका इत्येवं क्रमेण सर्वश्रुतीनां समन्वयो

सर्वस्य जडचेतनसाधारणजगतोऽन्तर्यामी भवतीति सिद्ध्यति । श्रुतिप्रमाणेन सर्वस्य कारयितृत्वं परमेश्वरस्यैव सिद्ध्यति न तु जीवीयप्रवृत्यादावपिकारणत्वमिति दर्शयितुमाह श्रुतिरपिसर्वस्यकारयितृत्वमित्यादि । श्रुतिमुदाहरति एषएव साधुकर्मकारयतीत्यादि एष एव परमात्मा तं जीवं साधुकर्मशुभादृष्टप्रयोजकंयागादिकर्मकारयति यम् जीवविशेषम् एभ्योवर्तमानलोकेभ्य उन्निनीषति, ऊर्ध्वं स्वर्गादित आरभ्यसाकेतान्तलोकं प्रतिनेतुं गमयितुमिच्छति । तथा एष एव परमात्मा तथा क्रूरादिकर्मप्रवृत्तमभक्तम्, असाधु अशोभनं हिंसादिजनकंकर्मकारयति अशुभकर्मणि प्रेरयति, यमभक्तं नरकादौ पातयितुमिच्छतीति

धर्मों के आकलन के बिना धर्मों का अनुसन्धान असंभवित हो जाता है अत एव ये सत्यत्वादिक धर्म ब्रह्म के स्वरूप निरूपक धर्म कहलाते हैं अर्थात् ये सब धर्म ब्रह्म के स्वरूप के निरूपण करने वाले हैं ऐसा माना गया है। इसमें अनन्तत्व धर्म का तात्पर्य यह है कि ब्रह्म दो प्रकार से अनन्त हैं, स्वरूप से तथा गुण से। ब्रह्म में देशकृत काल कृत तथा वस्तु कृत परिच्छेद नहीं है अर्थात् त्रिविध परिच्छेद रहितत्व ब्रह्म में अनन्तत्व है इसी का नाम है स्वरूप कृत आनन्त्य। ब्रह्म अनन्त कल्याण गुणों से युक्त हैं, इस का नाम है गुण कृत आनन्त्य। ब्रह्म को अपरिच्छिन्न तथा आनन्त्य कल्याण गुण युक्त समझना यही ब्रह्म में अनन्तत्व का अनुसन्धान है। अनन्तत्व के अनुसन्धान में सामान्य रूप से सर्व कल्याण गुणों का अनुसन्धान अर्थतः हो जाता है। यह तो हुआ सर्व विद्या साधारण ब्रह्म सामान्य गुणों का अनुसन्धान, और सामान्य साधारण गुणों से अतिरिक्त सभी ब्रह्म विद्या में विशेषरूप से विभिन्न गुणों का भी अनुसन्धान होता है, ये प्रत्येक ब्रह्म विद्या में अनुसन्धेय असाधारण गुण कहलाते हैं। जिस तरह छान्दोग्य की सद्विद्या में जगत् कारणत्वादिक गुणों का अनुसन्धान होता है। इसी तरह प्रत्येक ब्रह्म विद्या में विभिन्न विभिन्न गुणों का अनुसन्धान होता है। प्रत्येक ब्रह्म विद्या में कथित गुण उसका असाधारण गुण है और सत्यत्व ज्ञानत्वादिक सर्व विद्या साधारण अर्थात् सामान्यगुण है। इस तरह सभी ब्रह्म विद्या में किसी न किसी गुण से युक्त ब्रह्म का ही अनुसन्धान

भवतीत्यतो न किञ्चिदनुपपन्नम् ।

ψ अद्वैतादीनां प्रकारान्तरेणवेदवेद्यत्वनिर्वचनम् ψ

इत्थं च सर्वश्रुत: समन्वयप्रदर्शनेनाभेदपक्षोऽनुमोदितो भेदपक्षो वा भेदाभेदो वेति ? सर्वोपिपक्षो वेदप्रतिपादितत्वात् समर्थित एव ।

तथा प्रवृत्तिनिवृत्त्यादौ यत्साधारणं कारणं शरीरन्द्रियादिकं तेन सहित एवोत्पन्नः । उत्पादितश्च तादृशसर्वसामग्री सहितः । तथा चैतादृशसामग्रीविशिष्टस्य जीवराशेर्योगक्षेमनिर्वाहाय तादृशजीवानामाधारस्वरूपोभूत्वा 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यादिश्रुत्यनुमोदिततदन्तः प्रविश्यानुमन्तृरूपेण सर्वप्राणिजातस्य तदितरस्य च नियामको भवन् सर्वान् नियमयति सर्वस्य शेषिरूपोऽपि भवति । ततश्च परमेश्वरप्रदत्तसर्वशक्तिमान् जीवः सर्वत्रप्रवृत्तो भवति, निवृत्तश्चापि स्वेच्छयैव न तु परमेश्वरेच्छया प्रवर्तते वापि, तस्मात् परमेश्वरे न कोऽपि दोषो भवति, न वा विधिप्रतिषेधशास्त्राणामानर्थक्यशङ्कापि समुन्मीषति । परमात्मा तु एवं कुर्वतस्तान् पश्यनुदासीन एव भवतीति न कोपि दोषः समापततीति 'विकारश्च रामोदयाब्धिस्तथात्वे दयाशून्यतां पक्षपातञ्चनैति । प्रकारे विकारस्तथाचित्र सृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्यकर्म' इत्याचार्योक्तेः ।

एष एव साधुकर्मकारयति इतिश्रुतौ परमात्मा जीवान् शुभाशुभकर्मकारयतीति कथनं न सर्वजीवविषयकमपितु विशिष्टम् । अर्थात् यो जीवविशेषः परमेश्वरस्य सर्वदा अनुकूलो भूत्वाऽवतिष्ठते सर्वदा परमेश्वरानुकूलमेव तदाश्रमाचरणं करोति तस्य तादृशानुकूलाचरणेन

इसप्रकार एक सगुण ब्रह्म प्राप्तिरूप फल में पर्यवसान होने से सभी ब्रह्म विद्या में विकल्प माना जाता है ।

एवं सद्विद्या में भी जगत्कारणत्व तथा अनन्तत्वादि गुण विशष्ट सगुण ब्रह्म की ही उपासना होती है तथा तादृश ब्रह्म प्राप्ति ही मोक्ष है, नतु सद्विद्या में निर्गुण ब्रह्म की उपासना है नवा निर्गुण ब्रह्म भावापत्ति मोक्ष है । अत एव जो कोई कहते थे कि छान्दोग्यीय सद्विद्या निर्गुण ब्रह्म विद्या है तथा इससे निर्गुण ब्रह्म भाव प्राप्ति ही परम मोक्ष है एतादृश कथन युक्ति तर्क रहित है तथा पूर्वाचार्य वचन से विरुद्ध होने से सर्वथा अमान्य है । इन सब विषयों को उपसंहार रूप से बतलाते हैं–'एतावता एतदेव फलति यत्' इत्यादि, इस पूर्व विचार से यह फलित होता है कि यह छान्दोग्य की सद्विद्या है वह सगुण ब्रह्म विद्या है और इसमें सगुण ब्रह्म अर्थात् अनन्तत्वादि साधारण

तत्र सर्वशरीरकतया व्यवस्थितं ब्रह्मैवेत्यभेदपक्षः समर्थितः । स्वरूपतः एकैवेश्वरोऽनेकजडचेतनवस्तुप्रकारमनेकरूपेण व्यवस्थित इतितृतीयः

सुप्रसन्नस्तस्य कल्याणायानुकूलमार्गे प्रवृत्तये तस्मै सुबुद्धिं दत्त्वा आत्मकल्याणकार्ये प्रवर्तयति न तु सर्वं तथा प्रेरयतीति, यस्तु परमेश्वरस्य प्रतिकूलो भवति तथा सर्वदैव तदीयप्रतिकूलमेवाचरति तस्य तादृशप्रतिकूलाचरणं दृष्ट्वाऽप्रसन्नो भवन् तस्मै क्रूरबुद्धिं प्रदाय ततस्तादृशमेवकर्मकारयति येन सदा स दुर्गतोभवतीति । तस्मात् भक्ताभक्तविषयकमेव 'एष एव साधुकर्मकारयतीत्यादिवचनं नतु सर्वसाधारणविषयकं ततो न कोऽपि दोष इति ।'

अमुमेवार्थं पुष्णाति गीतावचनमपि तेषां सततयुक्तानामित्यादि । अर्थात् ये सर्वदा भगवदनुकूलो भूत्वा प्रेमपूर्वकं परमेश्वरमाराधयन्ति तान् तादृशबुद्धियोगमहं ददामि येन प्राप्तबुद्धियोगेन ते भक्ताः झटिति मां सर्वनियामकं सर्वप्राप्यं मामुपयान्ति भगवद्धामसाकेतमनुविशन्ति जरामरणविनिर्मुक्तं नित्यसुखात्मकमिति । आद्यश्लोकद्वयेनानुकूलभक्तविषयकभगवत्कर्तव्यं प्रदर्शयन्नन्तिमश्लोकेन प्रतिकूलाचरणकर्तरि तद्विपरीतफलमदर्शयत् ।

गुण विशिष्ट तथा जगत्कारणत्वादिक असाधारण गुणविशिष्ट सगुण ब्रह्म ही उपास्य हैं एवं एतादृश उपासना से सगुण ब्रह्म भावापत्तिरूप मोक्ष ही फल है, नतु जीव उस का जो अभेद दर्शन है वह मोक्ष का साधक है क्योंकि–'तत्त्वमसि' इस वाक्य के अभिप्राय को बोधायन वृत्तिकारानुयायी आनन्दभाष्यकारादि समस्त पूर्वाचार्यों ने उपर्युक्त प्रकार से व्याख्यान किया है । अतः पूर्वाचार्य वचन विरुद्ध होने से निर्गुण ब्रह्म भावापत्तिरूप मोक्ष है यह बात अप्रामाणिक तथा अमान्य है ।

आचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी के सिद्धान्त में कहा है कि परमेश्वर जीव मात्र के अन्तर्यामी हैं और जीव परमेश्वर से नियन्त्रित हैं अर्थात् परमेश्वर की प्रेरणा से ही कार्य करते हैं स्वतन्त्ररूप से कुछ भी नहीं करते हैं । ऐसा अगर मान लिया जाय तो 'स्वर्गकामो जयेत' 'नेक्षतोद्यन्तमादित्यं नास्तयन्तं कदाचन' इत्यादि विधिनिषेध का अधिकारी कोई नहीं मिलेगा ? क्योंकि जो व्यक्ति स्वतन्त्र बुद्धिवाला हो उसे कह सकते हैं कि 'तुम इस काम को करो' और 'अमुक काम को न करो' परन्तु यहां तो स्वतन्त्र बुद्धिवाला कोई है ही नहीं किन्तु जीव ईश्वराधीन हैं ईश्वर प्रेरित हो कर के ही कार्य करते हैं। ऐसा अभियुक्तों ने कहा है-' अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो

पक्षः समर्थितः । जडचेतनपदार्थपरमेश्वरस्य स्वरूपतो भिन्नस्वीकाराद् भेदात्मको द्वीतीयपक्षो वेदान्तवेद्यतया समर्थितः ।

षयकमेव 'एष एव साधुकर्मकारयतीत्यादिवचनं नतु सर्वसाधारणविषयकं ततो न कोऽपि दोष इति ।'

अमुमेवार्थं पुष्णाति गीतावचनमपि तेषां सततयुक्तानामित्यादि । अर्थात् ये सर्वदा भगवदनुकूलो भूत्वा प्रेमपूर्वकं परमेश्वरमाराधयन्ति तान् तादृशबुद्धियोगमहं ददामि येन प्राप्तबुद्धियोगेन ते भक्ताः झटिति मां सर्वनियामकं सर्वप्राप्यं मामुपयान्ति भगवद्धा-मसाकेतमनुविशन्ति जरामरणविनिर्मुक्तं नित्यसुखात्मकमिति । आद्यश्लोकद्वयेनानुकूल-भक्तविषयकभगवत्कर्तव्यं प्रदर्शयन्नन्तिमश्लोकेन प्रतिकूलाचरणकर्तरि तद्विपरीत-फलमदर्शयत् ।

एतावता प्रकरणेन शास्त्रप्रतिपादितजीवादिपदार्थस्य स्वरूपादिकं पर-

---

अधिकारी कोई नहीं मिलेगा ? क्योंकि जो व्यक्ति स्वतन्त्र बुद्धिवाला हो उसे कह सकते हैं कि 'तुम इस काम को करो' और 'अमुक काम को न करो' परन्तु यहां तो स्वतन्त्र बुद्धिवाला कोई है ही नहीं किन्तु जीव ईश्वराधीन हैं ईश्वर प्रेरित हो कर के ही कार्य करते हैं। ऐसा अभियुक्तों ने कहा है-'**अज्ञोजन्तुरनीशोयमात्मनः सुखदुःखयोः । ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा**' अर्थात् प्रत्येक जीव परमेश्वर प्रेरित हो कर के ही स्वर्ग नरक में जाते हैं, अपनी इच्छा से नहीं क्योंकि स्वयं वे अज्ञानी हैं। इससे सिद्ध होता है कि सब ईश्वर परतन्त्र हैं तव स्वतन्त्र कोई नहीं मिलने से विधि तथा निषेध शास्त्र सर्वथा निरर्थक हो जाता है ? एतादृश शंका का निराकरण करने के लिये प्रक्रम कहते हैं-'**ननु प्राणिमात्रस्य परमात्माऽन्तर्यामीत्यादि ।**'

पूर्वपक्ष-सभी चेतनाचेतन जगत् के परमात्मा अन्तर्यामी तथा नियामक हैं ऐसा अपने सिद्धान्त में कहा गया है । इसमें '**यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरः**' '**यो विज्ञानेतिष्ठन् विज्ञानादन्तरः**' इत्यादि समस्त अन्तर्यामी ब्राह्मण को प्रमाण रूप से बतलाया गया है तो जब परमात्मा ही सर्वान्तर्यामी सर्व नियामक-प्रेरक हैं तब तो '**स्वर्गकामोऽग्निष्टोमेन यजेत**' (स्वर्गकामनावान् पुरुष अग्निष्टोम याग करे) इत्यादि विधि शास्त्र तथा '**न कलञ्जं भक्षयेत्**' (कलञ्ज भक्षण नहीं करना) यहां कलञ्ज शब्द का अर्थ है '**विषाक्तेनैव वाणेन हतौयौ मृगपक्षिणौ । तयोर्मांसं कलञ्जं स्यात् शुष्कमांसमथापि वा**' विषभावित बाण के द्वारा मारा गया जो पशु तथा पक्षी उनका

॥ मोक्षप्रतिपादकश्रुत्योर्विषयव्यवस्थापनम् ॥

ननु 'तत्त्वमसि' 'तस्यतावदेवचिरं यावन्नविमोक्ष्ये' इत्यादि श्रुत्या जीवब्रह्मणोरभेदस्य प्रतिपादनेनाभेदज्ञानमेव तत्त्वज्ञानं तेनैव च मोक्षो न तु भेदज्ञानं मोक्षसाधनमिति चेत्सत्यम् 'पृथगात्मानं प्रेरितारं च

मात्मस्वरूपतदीयकतिपयगुणनिरूपणमधिगतम् । सर्वेषां प्राप्ययथोक्तगुणविशिष्टः परमात्मैवेत्यपि प्रतिपादितम् संप्रति भगवत्प्राप्तौ क उपायः 'विज्ञानं केवलम् कर्म वा भक्तिर्वेति संशये तन्निर्णयाय सिद्धान्तानभिमतपक्षं निरस्य अनन्याभक्तिरेव भगवत्प्राप्तेरुपाय इति दर्शयितुं प्रसङ्गादन्यदपि वक्तुमुपक्रमते सोऽयं परमकृपालुः परमपुरुषः इत्यादि ।

सोऽयं यथोक्तगुणविशिष्टः परमात्मा न केवलज्ञानादिना लभ्यते परन्तु भगवत्कृपया संप्राप्ततदीयानन्यायाभक्तिरूपया प्राप्तो भवतीत्यर्थः । 'रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसम्' इतिसदाचार्योक्तेः । ननु कथमेतादृशीभक्तिरुदेतीति दर्शयितुमाह-यो हि काम्यनिषिद्धकर्मवर्जनेत्यादि । अत्रेयं प्रक्रिया, यो हि साधकः काम्यनिषिद्धकर्मवर्जनपूर्वकं निष्कामकर्मानुष्ठानेन विधूतजन्मजन्मान्तरकृतपापराशिर्भवति यदा, तत्र ज्योतिष्टोमादिकं काम्यं कर्म ब्रह्महननादिकं निषिद्धं कर्म तद्रहितो यदा भवति निष्कामभावेन नित्यादिकर्म

जो मांस उसको कलञ्ज कहते हैं, अथवा सूखा हुआ जो मांस उसे कलञ्ज कहते हैं । विषाक्त मांस के भक्षण से सद्यः मरण हो जायगा, इससे विषाक्त मांस के भक्षण का निषेध किया है । एवं सूखे हुए मांस का भक्षण भी हितप्रद नहीं होता है, आयुर्वेदकार ने कहा है '**शुष्कमांसाः स्त्रियोवृद्धा वालार्कस्तरुणंदधि । प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ।**' अथवा साधारण व्यक्तियों में कलञ्ज शब्द का अर्थ-लशून प्याज में है। इत्यादिक जो विधिनिषेध शास्त्र हैं वे सब निरर्थक हो जायेगें, क्योंकि जो अपने से कार्य करनेवाला नहीं है वही किसी के उपदेश से हित कार्य में प्रवृत्त होता है और किसी के उपदेश से अनिष्ट कार्य से निवृत्त होता है, परन्तु सभी पुरुष परमेश्वर के अधीन हैं, परमेश्वर की इच्छा से ही प्रवृत्त निवृत्त होते हैं तव शास्त्र क्या करेगा ? क्योंकि स्वतन्त्र अधिकारी तो कोई है ही नहीं तो इस स्वतन्त्र अधिकारी को लाभ नहीं होगा तब तो शास्त्र निरर्थक हो जायगा ।

श्रुति भी कहती है कि प्रत्येक प्राणियों को कार्यकरानेवाले परमात्मा ही है अर्थात् जीव स्वतन्त्र नहीं किन्तु परमात्मा के अधीन है, परमात्मा से प्रेरित हो कर के ही शुभाशुभ कर्म को

मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति' इत्यादिश्रुत्यन्तरवचनेन साक्षादभेदज्ञानस्यैव मोक्षकारणत्वश्रवणेन तदेव मोक्षकारणं नत्वभेदज्ञानं मोक्षकारणम्। न चैकताप्रतिपादकवचनविरोधेनभेदज्ञानस्य सगुणब्र-

करोति तदा तस्य सर्वपापराशिर्विनष्टो भवति। ततस्तस्य साधकस्य मनसि विरक्तिर्ज्ञानं चोत्पद्यते, भगवत् प्राप्तौ समुत्कष्ठा च भवति 'विरक्तिः (ज्ञानम्) उत्पद्यते पुंसां क्षयात्पा पस्य कर्मणः' इति वचनात्। अन्यत्रापि कथितम् 'नित्यनैमित्तिकैरेवकुर्वाणो दुरितक्षयम्। ज्ञानं च विमलीकुर्वन् अभ्यासेन तु पाचयेत्। अभ्यासात् पक्वविज्ञानः कैवल्यं लभते नरः' इति। तदनन्तरं स साधको मोक्षसाधननिष्पत्तये भगवतः शरणे गच्छति, ततः स आचार्यशरणं प्राप्य उपदेशं तस्मात् श्रृणोति। ततो गुरूपदेशेन तस्याधीतानधीत सर्वशास्त्रार्थस्य ज्ञानं यथार्थरूपेण भवति। ततश्च सर्वप्रकारकः संशयो भ्रमश्च निवर्तते तत्र भ्रमो द्विप्रकारकः धर्मभ्रमो धर्मिभ्रमश्च। तत्र शङ्खे पीतता भ्रमोधर्मभ्रमः तेन शङ्खं धर्मिणं नान्यथाऽवगच्छति किन्तु श्वेतगुणस्थानेपीतिमानं जानाति स च धर्मभ्रमोरजोगुणस्य कार्यम्। यत्र तु धर्मिणमन्यथा जानाति-यथा-इदं रजतमित्यत्र शुक्तिकां शुक्तिकात्वेन न गृह्णाति किन्तु रजतरूपेण जानाति, तदत्र शुक्तिकां तादात्म्येन रजतं जानातीत्यत्रान्यथा भूतं

करते हैं। श्रुति का उदारण देते हैं-'**एष एव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषति एष एवासाधु कर्म कारयति तं यमधोनिनीषति**' इति। अर्थात् यह परमेश्वर ही उन जीवों से शुभ कर्म करवाते हैं, जिन जीवों को प्रत्यक्ष दृष्ट दुःखमय लोकों से उन्नत लोक में ले जाना चाहते हैं। इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि जीव पराधीन हैं। इन जीवों से परमेश्वर ही पुण्य पाप कर्म करवाते हैं। ऐसी स्थिति में यह दोष होता है कि अपनी इच्छा से प्रवृत्त होने एवं स्वेच्छा से निवृत्त होने वाले अधिकारि नहीं प्राप्त होने से '**स्वर्ग कामो यजेत**' इत्यादि प्रवृत्ति निवृत्ति शास्त्र निरर्थक हो जाते हैं क्योंकि स्वतन्त्र कोई अधिकारी प्राप्त नहीं होता है, और शास्त्र को निरर्थक मान लिया जाय तब तो वेद का जो स्वतः प्रामाण्य है सो तो सर्वथा विलुप्त हो जायगा। परन्तु यह बात वेद प्रामाण्यवादी के लिये सर्वथा अनभिमत है। जब वेद ही अप्रामाणिक है तब वेद मूलक क्रिया कलाप अस्त व्यस्त हो जायगा। तथा मोक्ष वार्ता तो अति दूर हो जायगी। परमेश्वर को सर्व प्रेरक मानने से अनुकूल अधिकारी की प्राप्ति नहीं होने से विधि तथा प्रतिषेध शास्त्र निरर्थक हो जायगा, यह दोष बतला कर के सर्वप्रेरक परमेश्वर को मानने से परमेश्वर में वैषम्यादिकभी दोष होता है, इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं कि-'**किंचेश्वरस्यैव सर्व प्रेरकत्वे तस्मिन्**' इत्यादि, और भी देखिए ईश्वर को सर्व प्रेरक मानने से विधिनिषेध शास्त्र का

ह्यप्रापकत्वमिति वाच्यम्, ऐक्यज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वं कल्पनया सिद्ध्यति, भेदज्ञानस्य मोक्षकारणत्वं तु स्पष्टतया शब्देन 'अमृतत्वमेती' त्यनेन ज्ञायते। अयं भावः तुल्यबलयोर्द्वयोः प्रमाणयोर्विरोध विषयभेदप्रतिपादनेनाविरोधः कर्तव्यः। सचाविरोध इत्थम् सर्वस्यान्त-

धर्मिणमन्यथारूपं रजतं जानातीति सोयं धर्मिभ्रमः। सोयं भ्रमस्तमोगुणस्य कार्यरूपः। एतादृशोभ्रमः संशयश्च गुरूपदेशेन ज्ञानशास्त्रसूक्ष्मार्थस्य कदाचिदपि न भवतीति। अनेन प्रकारेण गुरूपदेशेन साधकस्य स्वस्वरूपपरमेश्वरस्वरूपादिशास्त्रप्रतिपादितस्तथावगतस्यात्मविशेषगुणोऽतिशयरूपेण विकसितो भवति। स चात्मगुणः शमदमादिलक्षणः। तत्र शमो नाम अन्तरिन्द्रियनिग्रहः। दमो बाह्येन्द्रियनिग्रहरूपः, बाह्येन्द्रियाणि पञ्चरूपादि बाह्यविषयप्रकाशकानि। एवं तपः प्रभृत्यादिकोऽपि आत्मगुणरूप एव। तत्र तपो नाम धर्मशास्त्रविहितः कृच्छ्रचान्द्रायणादिव्रतविशेषरूपः। शरीरवाङ्मनसां शुद्धिकरणं शौचम्।

वैयर्थ्य दोष होता ही है तथा सर्वदोष रहित भगवान् में वैषम्य नैर्घृण्य दोष भी होता है क्योंकि यह परमात्मा सर्वान्तर्यामी सर्व प्रेरक किसी जीव से शुभ कर्म करवाते हैं तथा किसी जीव से पाप कर्म करवाते हैं तो इससे परमेश्वर में विषमता दोष होगा। एवं जिस जीव से पाप कर्म करवा करके नरकादि लक्षण अधोगति में डालते हैं तो उस जीव के प्रति निर्दयत्व होगा परन्तु भगवान् तो जीव मात्र के सुखदुःखादि की प्राप्ति में साधारण कारण हैं सब के लिये समान हैं तो इस प्रकार से वैषम्य तथा निर्घृणत्व होगा जिस प्रकार अंकुरोत्पत्ति में पर्जन्य वर्षण द्वारा उपकारक होने से सर्व साधारण कारण हैं इसी तरह परमेश्वर भी वस्तुमात्र-जीवमात्र के प्रति समान हैं तो एतादृश ईश्वर में विषमता तो ठीक नहीं है, क्योंकि पर्जन्य कहीं वर्षा करता है कहीं वर्षा नहीं करता है तथा कही वर्षा से उपकार होता है और वर्षा से अपकार भी होता है? परन्तु मेघ तो सब के लिये समान है। इसी प्रकार ईश्वर तो सब के लिये समान हैं तो इस परमेश्वर में वैषम्यादिक दोष होता है। इसलिये शुभाशुभ कर्मों में ईश्वर को प्रेरक मानना यह अनुचित है। इसलिये ईश्वर प्रेरक सर्व नियामक नहीं हैं। इस स्थिति में ईश्वर सर्व प्रेरक हैं नियामक हैं यह कथन सर्वथा अयुक्त है। यहां तक हुआ पूर्व पक्षी के अभिप्राय का वर्णन इस दोष का उद्धार करने के लिये कहत हैं-'**इति चेत्सत्यम्**' इत्यादि, अर्थात् आपात दृष्टि से देखने से तो आपका कथन युक्त प्राय ज्ञात होता है, परन्तु विचार पूर्वक देखने से तो परमेश्वर सर्वान्तर्यामी सिद्ध होते ही हैं। किस तरह ईश्वर सर्व प्रेरक हैं? इस बात का स्पष्ट करने के लिये कहते हैं-'**परमेश्वरो हि सर्वान्तरात्मावित्यादि**' परमेश्वर

र्यामिरूपेण तिष्ठितस्य परमेश्वरस्य शरीरतया जीवात्मनः प्रकारत्वेन जीवप्रकारकं परब्रह्मैव 'तत्त्वमसीतिवाक्यघटकत्वमिति शब्देन प्रतिपादितं भवतीति ज्ञातव्यम् 'परंब्रह्मच तद्वाच्यं त्वद्वाच्यं त्वच्छरीरकम्'

क्षमा दुःखसहनशक्तिः । ऋजुत्वमकौटिल्यम् । भयाभयस्थानविवेकौ । भगवत्कृपाप्राप्त एव भयाभयविवेकस्थानं ज्ञात्वा निर्भयो भवति । दया-परदुःखासहनशीलता । अहिंसा कस्मिन्नपि देशे काले पात्रे वा जीवस्यापीडनम् । एते आत्मगुणाः साधकस्य गुरूपदेशेन प्राप्तशास्त्रार्थस्य प्रादुर्भूता भवन्ति । एतादृशः साधकः शास्त्रप्रतिषिद्धानि कर्माणि परित्यजति तथा वर्णाश्रमनियमानुसारेण नित्यनैमित्तिकसन्ध्यावन्दनादिकर्माणि परमेश्वराराधनमेवेति कृत्वाऽनुतिष्ठति ।

ततः स साधकः परमेश्वरचरणे आत्मानमात्मीयपदार्थजालं समर्पयति तदाहुर्जगद्गुरवः श्रीगङ्गाधराचार्याः ।

'श्रृणोमिसीतापतिचित्रसत्कथां वदामिसीतापतिकीर्तिमक्षयाम् ।

श्रीरामजी सृष्टि के आदि काल से प्रवृत्ति तथा निवृत्ति में साधारण कारण शरीर तथा इन्द्रियादिकों का निर्माण कर देते है, तथा उन जीवों में ज्ञानेच्छा प्रवृत्यादिक शक्ति भी जीव में दे देते हैं। ऐसा कर के उन जीवों का निर्वाह अर्थात् योग क्षेम के लिये जीवों का आधार बन कर के तथा जीवों के अन्दर में प्रविष्ट होकर के अनुमन्तारूप से प्राणियों को नियन्त्रण करते हुए सर्व पदार्थों के शेषी बन कर के सर्वदा अवस्थित रहते है, तो ईश्वर से प्राप्त ज्ञानेच्छादि शक्ति वाला जीव समुदाय स्वेच्छा से स्वयमेव प्रवृत्यादिक कार्य को करते हैं। स्वेच्छा से सब कार्य को करते हुए जीव को देखते हुए परमेश्वर स्वंय सर्वथा सर्वदा उदासीन हो करके ही रहते हैं। इसलिये प्रवृत्ति निवृत्ति शास्त्र सार्थक होता हैं। शास्त्र में वैयर्थ्य नहीं होता है। यह तो सत्यं से लेकर एतन्तमूलका अक्षरार्थ हुआ भावार्थ तो यह है कि-परमेश्वर ने सभी जीवों को जानने की इच्छा करने की तथा प्रवृत्ति करने की शक्ति को दे रखी है। तथा जीवों को ज्ञानेच्छा और प्रयत्न करने की क्षमता सर्वदा वर्तमान रहे परमेश्वर की ऐसी नित्य इच्छा भी है। इसलिये जीवो में यह ज्ञानादिक शक्ति सर्वदा विद्यमान रहती है। एवं परमेश्वर जीवों को प्रवृत्ति करने के लिये शक्ति भी दिये हुए हैं। एवं जीव को ज्ञानादिकों का साधारण कारण जो शरीर तथा इन्द्रियादिक है, उसका भी प्रदान किया है। इन शरीरेन्द्रिय ज्ञानेच्छादिकों के बल से जीव किसी भी कर्म में प्रवृत्त हो सकता है तथा किसी अशुभादिक कर्मों से निवृत्त भी हो सकता है, अर्थात् प्रवृत्यादिक में जीव स्वतन्त्र है। इन सब साधारण कारण को देकर परमेश्वर चाहते हैं कि जीव जबचाहे तब प्रवृत्ति निवृत्ति करे, अगर जीव

इत्याचार्योक्तेः । ब्रह्मप्रकारभूतजीवान् जीवस्यात्मतयाऽस्थितस्य परमात्मनो निखिलदोषराहित्येन सत्यसङ्कल्पादिगुणाश्रयत्वेन च यत्पार्थक्यं तदनुसन्धेयमिति 'पृथगात्मानमिति वाक्यस्यविषयः । तथा

स्मरामिसीतापतिदिव्यविग्रहं वृणोमि सीतापतिभक्तिमुत्तमाम् ॥१॥
व्रजामिसीतापतिदिव्यमन्दिरं तथा च सीतापतिसत्प्रपन्नताम् ।
युनज्मि सीतापतिचिन्तनेमनस्तनोमिसीतापतिदाससङ्गतिम् ॥२॥
अवैमिसीतापतिमञ्जुबन्धुतां तथा च सीतापतिदिष्टभोग्यताम् ।
ततश्च सीतापतिनित्यधामदां करोमि सीतापतिभक्तिमुत्तमाम् ॥३॥
करोमिसीतापतिपाददासतां नमामि सीतापतिपादपङ्कजम् ।
पठामि सीतापतिकाव्यसंहतिं जपामि सीतापतिमन्त्रभूपतिम् ॥४॥
करोमि सीतापतिविग्रहार्चनं तथा च सीतापतिमूर्तिदर्शनम् ।

को आवश्यकता पडे तब जीव की सहायता भी की जाय। इसलिये जीव को जो साधन दिया गया है, उन साधनों को सफल बनाने के लिये जीव का आधार बनकर के जीव के अभ्यन्तर में प्रविष्ट होकर के जीव के अनुमन्ता होते हुए जीव के ऊपर परमेश्वर नियन्त्रण रखते हैं अर्थात् जीव के नियन्ता बने रहते हैं। इस तरह परमेश्वर आंशिक नियमन करते हुए जीव के आधार तथा जीवों के स्वामी बन कर के रहते हैं, और जीव शरीरादिक साधन को प्राप्त कर के स्वकीय इच्छा से शुभाशुभ कर्मो में प्रथमतः प्रवृत्त होता है उस प्राथमिक प्रवृत्ति के समय में परमेश्वर उदासीन हो करके रहते हैं अर्थात् उपेक्षक बन कर के रहते हैं तब प्रथम प्रवृत्ति के फल स्वरूप द्वितीय प्रवृत्ति में परमेश्वर स्वकीय अनुमति देकर प्रवृत्ति में शिथिलता को हटा कर के उसको जीव को फलतक पहुंचा देते हैं, इसी को परमेश्वर का अनुमन्तृत्व कहते हैं। सामान्य रूप से परमेश्वर शास्त्र द्वारा अहित कर्म से निवृत्त होने के लिए उपदेश देते हैं परन्तु उस उपदेश को मानना अथवा नहीं मानना यह तो जीव की इच्छा पर आधारित है, जो जीव शास्त्र से निषेधाज्ञा को समझ कर के पाप कर्म से निवृत हो जाते हैं उनके विषय में निषेध शास्त्र सफल होता है, और जो जीव शास्त्र के द्वारा सत्कर्म भगवद् भजनादिक करने में भगवान् की आज्ञा को जान कर के शुभ कर्म में प्रवृत्त होता है उस जीव के विषय में विधिशास्त्र सफल होता है। कदाचित शास्त्र की आज्ञा के उल्लङ्घन करने वाले व्यक्ति के विषय में विधिनिषेध शास्त्र उपयोगी न भी बने परन्तु आज्ञापालक जीव के विषय में तो सफल होता ही है। यदि किसी भी जीव के विषय में सफल नहीं होता तब शास्त्र में

सति न कस्यापि वाक्यस्य परस्परं विरोधो भवतीत्येवं द्वैतवाक्यस्याद्वैत-वाक्यस्य समन्वयं कृत्वाद्वैतमद्वैतं तदुभयं च वेदान्तवेद्यमिति।

गुणाब्धिसीतापतिनामकीर्तनं परेशसीतापतिपादवन्दनम् ।।५।।

भजामि सीतापतिमेव केवलं रटामि सीतापतिमेव केवलम् ।

श्रयामि सीतापतिमेव केवलं प्रयामि सीतापतिमेव केवलम् ।।६।।'

इत्यादिरूपेण भगवन्तं नमस्करोति वन्दते नमस्करोति, भगवत्सेवार्थमेव कर्माणि कुरुते, भगवत् कीर्तनं तद्गुणश्रवणंध्यानार्चनादिकमेवसततं करोति । ततस्तस्य साधकस्य भगवत् चरणे भक्तिर्जायते, ततो भगवान् प्रसीदति, ततस्तस्य भक्तस्य मनसि विद्यमानं तमोपि विनश्यति प्रेमप्रकाशश्च जायते, ततश्च भगवत्कृपया स साधकः परमप्राप्तोभवतीति भगवद्भक्तिरेव मोक्षसाधिकेति स्थितम्, विशेषतोऽयमर्थः सत्सम्प्रदायानुसारेणैव सद्गुरुसेवया ज्ञातव्यः सम्प्रदायावगममन्तरेण विलक्षणार्थस्य ज्ञानासंभवादिति संक्षेपः ।

ततो विशुद्धान्तःकरणस्य साधकस्य भक्तियोगसम्पादनेऽधिकारः प्राप्तो भवति, कृतप्रायश्चित्तस्य साधकस्य वाजपेयादावधिकारवत् । ततश्चताद्दशः साधकः ऐकान्तिकात्यन्तिकभक्तियोगे प्रवृत्तो भवति, स एवैकान्तिको भक्तियोगो भगवन्मात्र

आनर्थक्य दोष होता, ऐसा तो है नहीं परन्तु आज्ञा मननेवाले के विषय में तो शास्त्र सफल बनता है इसलिये विधि निषेध शास्त्र में वैयर्थ्य दोष नहीं होता है इस प्रकार से शास्त्र में जो कि प्रवर्तक निवर्तक हैं उन में आनर्थक्य दोष का निराकरण कर दिया।

उपनिषद् में जो कहा गया है कि भगवान् ही जीवों से पुण्य पाप कर्म करवाते हैं तो इसमें ईश्वर में वैषम्यादिक दोष होता है । इसका निराकरण करने के लिये कहत हैं कि '**एष एव साधुकर्मकारयतीत्यादि**' यह जो श्रुति है वह जीवमात्र के कारयितृत्व विषयक नहीं है। किन्तु भक्त अभक्त पुरुष विषयक है सर्व साधारण पुरुष विषयक नहीं है इसका अभिप्राय यह है कि जो जीव व्यक्ति परमेश्वर के अत्यन्त अनुकूल होकर के रहता है कभी भी भगवान् का प्रतिकूलाचरण नहीं करता है किन्तु अनुकूल आचरण ही करता है, ताद्दश व्यक्ति के अनुकूल आचरण से खुश प्रसन्न होकर के परमात्मा उस अनुकूलाचरण के फलस्वरूपउस व्यक्ति को आत्मकल्याण के मार्ग में प्रवृत्ति करने के लिये सद्बुद्धि का प्रदान करते हैं। (क्योंकि प्रवृत्ति में प्रथमतः ज्ञान को कारणत्त्व है।) तथा उस व्यक्ति को कल्याण कार्य भगवद् भजनादिक में प्रवृत्त-प्रेरित करते है । भगवान् किसी से सत्कर्म कराते हैं ऐसा जो कहा गया है वह इन व्यक्तियों के विषय में अर्थात् अनुकूलाचरण करने वाले व्यक्तियों के विषय में कहा गया है किन्तु सर्व साधारण व्यक्तियों के विषय में नहीं कहा गया है. और जो भगवान् के प्रति सर्वदा अत्यन्त प्रतिकूल होकर के ही रहता है तथा सर्वदा भगवान् के

॥ भोक्ताभोग्येत्यादिश्रुतिनिर्वचनम् ॥

'भोक्ताभोग्यं प्रेरितारं च मत्वा' इत्यत्र भोग्यलक्षणस्य सकलजडपदार्थस्य प्रकृतितत्कार्यस्याचेतनत्वं पारमार्थिकत्वं प्रतिक्षण-

विषयकोनान्यविषयकः । आत्यन्तिकस्तु स भक्तियोगो यो हि फलानुभवसमये विनष्टो न भवति, अपितु फलानुभवकालेऽपि तिष्ठत्येव, कार्यस्योपादानकारणवत्, यथा मृज्जातघटात्मकफलानुभवकालेऽपि मृत्तिका नो याति किन्तु स्थितैव भवति तद्वत् प्रकृतेऽपि, एताद्दशभक्तियोगेन भगवान् श्रीरामः प्राप्तो भवति न प्रकारान्तरेण प्राप्यते इति प्रकृतप्रकरणवचनस्याशयः ।

भक्तियोगे ज्ञानयोगकर्मयोरुभयोरप्यावश्यकता विद्यते इति दर्शयितु श्रुत्यादिवचनान्युदाहरति-तदाह श्रुतिरित्यादि । 'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह । अविद्ययामृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते' इति । अयमर्थः-सद्गुरुणोपदेशमवाप्य विद्याम्

प्रतिकूल आचरण ही करता रहता है तो ताद्दश व्यवहार के ताद्दश प्रतिकूलाचरण से भगवान् अप्रसन्न हो कर के ताद्दश व्यवहार के फल स्वरुप उस व्यक्ति को क्रूर बुद्धि का प्रदान कर के उस व्यक्ति को क्रूर कर्म में हिंसादिक कार्यों में प्रवृत्त कराते हैं। एताद्दश प्रतिकूलकारी व्यक्तियों के विषय में उपनिषद् में कहा गया है कि भगवान् असत्कर्म करने में प्रवृत्त करा देते हैं किन्तु उपनिषद में ताद्दश कथन सर्व व्यक्ति विषयक नहीं है किन्तु भगवान् के प्रति प्रतिकूलाचरण करने वाले व्यक्तियों के विषय में कहा गया है। इसलिये श्रुति में जो भगवान् को सर्वप्रेरक कहा है-उसका अभिप्राय यह है कि भक्त को शुभ कर्म में प्रवृत्त कराते हैं तथा अभक्त को अशुभकर्म में प्रवृत्त कराते हैं अतः वैषम्यादिक दोषों का समावेश नहीं होता है।

इस विषय का प्रतिपादन भगवान् ने गीता में किया है, इस चीज को बतलाने के लिये कहते हैं-'**तदुक्तं गीतायां भगवता कृष्णेन**' इति. उपनिषत् के अभिप्राय का वर्णन जो आचार्यपाद ने किया है उसको पुष्ट करने के लिये कहते हैं यथोक्त श्रुति का यथोक्त व्याख्यान मैंने किया है वह मेरा कल्पना मूलक नहीं है किन्तु इसी आशय का वर्णन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भी गीता में किया है

'तेषां सतत युक्तानानां भजता प्रीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।।
तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः । नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।
तानहं द्विषत क्रूरान् संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।'

जो सरलाचरण करनेवाले भक्त हम परमेश्वर में [illegible] मिलकरके रहने की इच्छा रखते

विकारित्वमित्यादिस्वभावः । भोक्तुर्जीवस्य स्वभावतः सकलमलरहितज्ञानानन्दस्वभावस्यापि कर्मलक्षणाविद्याकृतज्ञानसंकोचविकाशः, भोग्यरूपाचेतनसम्बन्धः परमात्मोपासनया मोक्षभागी चेत्यादि-

ब्रह्मोपासनात्मिकामङ्गिरूपाम् कर्मविद्ययोः परस्परविरोधं निरस्य विद्याऽविद्ययोरङ्गाङ्गिरूपयोः सहानुष्ठानयोग्यं ज्ञात्वाऽनुतिष्ठति स विद्याङ्गभूतनिष्कामकर्मानुष्ठानेन विद्योत्पत्तिप्रतिबन्धकपूर्वकालिकदुरितकर्मलक्षणमृत्युं तीर्त्वा विनाश्य प्राप्तब्रह्मोपासनलक्षणया विद्यया अमृतं ब्रह्मभावमश्नुते आसादयति मुक्तो भवतीति । मन्त्रेऽस्मिन् अविद्यापदेन विद्याभिन्नं वर्णाश्रयादिविहितं शुभकर्मकथितं भवति, तादृशकर्मणां विद्येतरत्वात् । तथा विद्यापदेनभक्तिरूपप्राप्तमनुध्यानं लक्षितं भवति, एतादृशानुध्यानमेव ब्रह्मोपासनमित्याचार्योक्तेः ।

हैं तथा मेरे परमेश्वर के भजन पूजनादिक कार्यों में सर्वदा संलग्न रहते हैं यादृश महानुभाव व्यक्तिया को हम परिपाक दशा में प्राप्त उस बुद्धियोग का प्रदान करते है तादृश बुद्धियोग के द्वारा वे भक्तलोग हम को प्राप्त कर जाते हैं। हम उन भक्तों के उपर अनुग्रह कृपा करने के लिये उनलोगों की अन्तः करण वृत्ति में अवस्थित होकर के स्वकीय अपहत पाप्मत्वादिक कल्याण गुणों का परिचय करा करके मेरे परमेश्वर के विषय में होनेवाले देदीप्यमान ज्ञानरूप प्रदीप से ज्ञान का विरोधी पूर्व पूर्वतर जन्मान्तरार्जित कर्म रूप अज्ञान से होने वाले विषय में आसक्ति रूप अन्धकार को नष्ट कर देते हैं । और हम परमेश्वर से सदा द्वेष रखनेवाले अशुभ अतिक्रूर नराधम को संसार में असुरयोनियों में गिरा देते हैं मै उनको क्रूर बुद्धि देकर उसके द्वारा अतिक्रूर हिंसादि कार्य करा कर आसुरयोनि तक पहुचा देता हूं। प्रथम दो श्लोक में तो भगवान् ने अनुकूल व्यक्ति को क्या करते हैं इस बात को बतलाया तथा तृतीय श्लोक में प्रतिकूल व्यक्ति के विषय में कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर अतिन्याय कारी हैं, भगवान् न्यायकारी तो हैं ही साथ साथ अतिदयावान् भी हैं, क्योंकि पूर्वकालिक अनेक जन्मों से सर्वदा पाप करनेवाला अपराधी जीव भी उन पाप कर्मों से निवृत्त होकर क्षमा की प्रार्थना करता है भगवान् की शरण में जाता है तो भगवान् उनके अनन्त अपराध को भूल कर के उन के कल्याण मार्ग को परिष्कृत कर देते हैं भगवान् अयोध्या पति की ऐसी प्रतिज्ञा है '**सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ।**' इति। पूर्वोक्त इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि जीव भगवान् के अधीन होकर के भी किस प्रकार विधि निषेध में अधिकारी होता है अतः उक्ताशङ्कावसर प्रकृत में नहीं है इसके पूर्व प्रकरणों में सर्व भक्त प्राप्य जो भगवान् हैं उनके स्वरूप का गणादिकों

स्वभावः, एतादृशभोक्तृभोग्ययोरन्तर्यामित्वरूपेणावस्थितिः । तथा स्वरूपतोऽसंख्येयकल्याणगुणाधिकरणतयाऽवस्थानमिति परमेश्वरस्य त्रिविधावस्थानमित्यादिस्वभावः । अयमेवार्थः प्रकृतश्रुतेर्नतु द्वैताद्वैतमतप्रतिपादकत्वम् ।

मन्त्रेऽस्मिनविद्याशब्दः कर्मवाचकस्तत्र प्रमाणं दर्शयति-इयाज सोऽपि सुबहून् यज्ञान् ज्ञानव्यपाश्रयः । ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्तुं मृत्युमविद्ययेति । स राजा जनकः शास्त्रजनितज्ञानं प्राप्य ब्रह्मप्राप्त्युद्देशेन ब्रह्मज्ञानप्रोप्तौ प्रतिबन्धकपूर्वकालिकानेककर्मराशीन्, अविद्याविद्यांगभूतनिष्कामकर्मणा विनाशयितुमनेकविधान् यज्ञान् बाजपेयादिकान् कामनाविरहितान् संपादयामासेत्यर्थः । अनेन वचनेन ब्रह्मविद्याङ्गतया कर्माणि कर्तव्यानीत्येवव्यञ्जितम् ।

वेदान्तेऽपि ब्रह्मज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वं प्रतिपादितम्, तथाहि-तमेव विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय **तं परमात्मानम्, एवं शास्त्रक्रमेण विद्वान्** जानन् साधकः, **इहैव, एतस्मिन्नेव जन्मनि, अमृतो ब्रह्मप्राप्तो भवति, एतदन्यो ब्रह्मज्ञानव्यतिरिक्तः प्रकारो**

का तथा जीवादिक कतिपय पदार्थों का निरूपण किया गया। इसके बाद सर्वेश्वर श्रीसीतानाथजी किसको प्राप्त होते हैं तथा भगवत् प्राप्ति का उपाय-कारण क्या है ? तथा किस को किस प्रकार से प्राप्त होते हैं तो अब उपाय तथा अधिकारी प्रभृति कतिपय साम्प्रदायिक तत्वों का इतरमत निराकरण पूर्वक विचार करने के लिये आचार्यजी उपक्रम करते हैं '**सोयं परम कृपालुः परम पुरुषो ब्रह्म भूतः श्रीसीतानाथोध्यानादि**' इत्यादि वह यह परम कृपालु परमपुरुष ब्रह्म स्वरूप सर्वेश्वर श्रीसीतानाथ स्वकीय अनुध्यान स्वरूप अनन्य भक्ति के द्वारा ही लब्ध प्राप्य होते हैं। अधिकारी विशेष का कथन करने के लिये कहते हैं '**यो हि काम्य निषिद्ध**' इत्यादि जो अधिकारी काम्य कर्म ज्योतिष्टोमादिक तथा कलंज भक्षणादिक निषिद्ध कर्मो का परित्याग पूर्वक निष्काम कर्म का अनुष्ठान करने से पूर्वजन्म कृत पापकर्म का नाश हो जाने से अन्तः करण में निर्मलता हो गई है जिसको ऐसा अधिकारी गुरुके समीप में जा कर के गुरु से उपदेश को प्राप्त कर के तदनन्तर भगवान् के ध्यान अर्चनादिकों से भगवान् की भक्ति तो प्राप्त करता है। इस भक्ति के द्वारा एतादृश भक्तिमान् अधिकारी से परमात्मा प्राप्त होते हैं। तो परमात्म प्राप्ति का उपाय भक्ति है किन्तु भक्ति भिन्न केवल ज्ञान केवल कर्म समुचित ज्ञान मोक्ष का उपाय नहीं है।

इस का सम्प्रदाय सिद्ध भावार्थ तो ऐसा होता है- तथाहि यद्यपि केवलाद्वैती आदि के मत का खण्डन न करते हुए संक्षेप से उपाय स्वरूप का प्रतिपादन जगदाचार्यजी ने किया है तथापि

ψ सद्विद्यायाः सगुणत्वनिर्वचनम् ψ

छान्दोग्ये सद्विद्यायां सगुणमेव ब्रह्मसमुपास्यं तथा सगुणब्रह्म प्राप्तिरेव परममोक्षरूपं फलम् । न तु सद्विद्यानिर्गुणब्रह्मविद्यातथा तादृशब्रह्मप्राप्तिर्वामोक्षः । इत्थमेवानन्दभाष्यकारप्रभृतिपूर्वाचार्यै व्याख्यातम् । एतावता एतदेवफलति यत् सगुणैव सद्विद्या सगुणं ब्रह्मैवोपास्यं सगुणब्रह्मप्राप्तिरेव मोक्षः ।

मार्गोऽयनाय मोक्षप्राप्तये न भवति, अर्थात्-यदि मोक्षो भवति तदा ब्रह्मज्ञानेनैव भवति न तु तदतिरिक्तप्रकारेणेति, अर्थात् यथा तन्तुव्यतिरेकण पटो न भवति, यदि भवति तदा तन्तुभिरेव जायते, तद्वत् प्रकृते ब्रह्मज्ञानमेव मोक्षसाधनम् । (अर्थात्-यथा 'धनवान् सुखीत्यादि स्थले धनवन्तमुद्दिश्य सुखस्य विधानं क्रियते तत्रोद्देश्यतावच्छेदकोभूतधनप्रयो- ज्यत्वं सुखरूपविधेये प्राप्यते, उद्देश्यतावच्छेदकप्रयोज्यत्वस्य विधेये लाभो भवतीति व्युत्पत्ते । तत्र तथा धनसुखयोः कार्यकारणभावोऽर्थात् प्राप्यते इति न धनाभावे सुखं किन्तु धनसद्भावे एव सुखम् । तद्वत् प्रकृते विद्वान् इत्यत्र ज्ञानस्योद्देश्यतावच्छेदकतया तज्जन्यत्वं मोक्षे व्यवस्थितमिति भवति ब्रह्मज्ञानमोक्षयोः कार्यकारणभावः । अतः श्रुतौ

विस्तार पूर्वक उपाय स्वरूप के प्रतिपादन करने के लिये उपक्रम करते हैं '**सोऽयं परम कृपालुः**' इत्यादि । अधोलिखित प्रकार का अधिकारी अनन्य भक्ति के द्वारा परमपुरुष परमात्मा को प्राप्त करता है। वह अधिकारी कौन है ? इसके उत्तर में कहते हैं '**योऽहि काम्य निषिद्ध कर्म**' इत्यादि जो साधक निष्कामभाव से फलेच्छा रहित हो करके शुभ कर्म का अनुष्ठान करता है तादृश कर्मानुष्ठान से उसका अनेक जन्म कृत पाप कर्म का विनाश हो जाता है। तब उस साधक को संसार सागर से अनभिरति संज्ञक वैराग्य हो जाता है तथा श्रीचरण की प्राप्ति की प्रवल इच्छा उदित होती है। तब वह साधक मोक्ष का साधन निर्विघ्न संपन्न हो इसलिये श्रीचरण की शरण में जाता है तथा भगवान् के अभिमुख हो जाता है। तदनन्तर वह साधक आचार्य गुरु की शरण में जाता है, तथा जा कर के नियमानुसार सदुपदेश का ग्रहण करता है। तब उस साधक को आचार्योपदेश से अधीत अनधीत सकल शास्त्रार्थ ज्ञान यथार्थरूप से भ्रम संदेह रहित होकर के हो जाता है। अर्थात् शास्त्र के अर्थ में संदेह भ्रम नहीं रहता है। भ्रम दो प्रकार का होता है, धर्मभ्रम तथा धर्मिभ्रम जैसे 'पीतः शङ्खः' यहां धर्म का भ्रम है अर्थात् शंख श्वेत होता है पर कामला रोग ग्रस्त पुरुष को पीला दिखता है यहां पीलापन मात्र का भ्रम है शङ्ख का तो यथार्थ ज्ञान ही

ψ ब्रह्मणः प्रेरकत्वेप्रवृत्तशंकासमापनम् ψ

पूर्वप्रकरणे प्राणिमात्रस्य परब्रह्मान्तर्यामी तथा परमेश्वरः सर्वस्यैव नियामको भवतीत्यपि कथितम् । ततश्च 'स्वर्गकामोयजेत' 'न कलंजं भक्षयेत्' इत्यादिविधिप्रतिषेधशास्त्रं निरर्थकं स्यात् । यतो योहि बुद्ध्या

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति स्थितमिति संक्षेपः ।) तथा य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति यः साधकः एनं जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानभूतं हेयप्रत्यनीकसकलानन्तकल्याणगुणाकरं मोक्ष दंशरण्यं विदुर्जानन्ति ते साधका अमृता ब्रह्मभावं प्राप्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् यो हि साधको ब्रह्मवित् अर्थात् ब्रह्मज्ञानवान् भवति प्रत्यक्षसमानाकारकानुध्यानबलात् मुक्तो भवतीत्यर्थः । यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद यः साधकोऽनुध्यानेन परमात्मानं वेद विजानाति स मुक्तो भवतीत्यर्थः । ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति योहि साधको ब्रह्म परमात्मानं स्वरूपतो गुणतो वेद सामान्यतो विजानाति स साधको

होता है। एवं शुक्ति का में जो रजत भ्रम होता है वह धर्मी का भ्रम है, यहां शुक्ति का रूप धर्मी के बदले रजतरूप धर्मी जाना जाता है। एतादृश उभयप्रकारक भ्रम साधक को नहीं रहता है। परन्तु साधक गुरुजी के उपदेश से शास्त्र के सूक्ष्म अर्थ को अथार्थ रीति से जान कर के स्व स्वरूप तथा पर स्वरूप लक्षण अर्थ को मन में निश्चित कर लेता है। तब साधक को प्रतिदिन शमदमादिक आत्मगुण विकसित होने लगता है। तथाहि अन्तर इन्द्रियनिग्रह को शम कहते हैं और चक्षुरादिक पांच ज्ञानेन्द्रिय तथा वाक् पाण्यादिक पांच कर्मेन्द्रिय के निग्रह को दम कहते हैं, उक्त साधक को बाह्य आभ्यन्तर निग्रह लक्षण आत्मगुण विकसित हो जाता है । तथा यथोक्त शास्त्र विहित चान्द्रायण तथा कृच्छ्र प्रभृति तप करता है। शौचः वह मन वाणी तथा शरीर को शुद्ध रखता है। क्षमा-दुःख सहने की शक्ति रखता है। आर्जव-सर्वदा सीधा सादा रहता है। कुटिलता नहीं रखता है। '**भयस्थान विवेक**' भगवान् की आज्ञा का लंघन करना तथा भगवदपचार इत्यादि भयस्थान है, इससे डरते रहना चाहिये, इस बात को यथोक्त साधक खूब जानता है। अभयस्थान विवेक भगवान् सदा सब का रक्षक है एतादृश ज्ञान से अभय प्राप्त होता है, जो परमेश्वर के अनुग्रह का पात्र बन जाता है वह अभय का पात्र बन जाता है इस बात को यथोक्त साधक यथावत् समझ लेता है। दया-वह साधक परकीय दुःख के उद्धार के लिये सदा प्रयतमान रहता है। अहिंसा वह किसी भी प्राणियों का वध वा दुःखजनक व्यापार नहीं करता हैं। शमादिक अनेक अहिंसान्त अनेक आत्मगुण उस साधक को उत्पन्न होता है। (इस स्थिति में विद्यमान साधक को अभिलक्ष्य कर के जगद्गुरु श्रीतुलसीदासजी ने कहा है कि 'सिमिट सिमिट जल भरहि तलावा । जिमि

कार्यं करोति स कस्यांचिदुपदेशात्कुत्रचित्प्रवर्तते निवर्तते च कुतश्चित् । इह तु सर्वोऽपि परमेश्वरपरतन्त्रः परमेश्वरेच्छयैव प्रवर्तते निवर्तते चेति तस्य शास्त्रं किंकरिष्यतीति विधिनिषेधशास्त्रं निरर्थकं स्यात् । श्रुतिरपिस र्वस्य कारयितृत्वं परमेश्वरस्यैव वदति । 'एष एव साधुकर्मकारयति तं

दुभयवाक्ययोरैकमत्यं स्थापयितुं मोक्षसाधनं ध्यानविशेषलक्षणमेव ज्ञानं न तु सामान्यज्ञानं मोक्षसाधनमिति । अग्रिममन्त्रोध्याने विशेषाकारतां प्रतिपादयतीति दर्शनायाह नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम् अस्यायमर्थः-अयमात्मा परमेश्वरः प्रवचनेन प्रेमरहितकेवलश्रवणेन नलभ्यः प्राप्तो न भवति, न वा मेधया वहुना श्रुतेन वा लभ्यो भवति किन्तु यमधिकारिविशेषं वृणुते स्वीकरोति, अर्थात् यं प्रति स्वस्वरूपमाविष्कर्तुमिच्छति । तदग्रे एव स्व स्वरूपं प्रकाशयति यद्यपि प्रकृतवचनेन 'नायमात्माप्रवचनेन' 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इत्यादिश्रुत्या प्रतिपादितश्रवणमनननिदिध्यासानां यत् मोक्षोपायत्वं तन्निषेधतीवाभाति, तथापि 'नायमात्मा

में स्वकीयात्मीय पदार्थों को समर्पित करके भगवान् से निवेदन करता है कि मैं तथा मेरा कहे जाने वाला पदार्थ समुदाय वस्तुतः मेरा नहीं है ये सब आपका है और मैं भी आपका ही दास हूं इनकी रक्षा से होनेवाले जो फल है उसका प्रधान भोक्ता आप ही हैं मैं नहीं हूं।

इस साधक को शास्त्र से भगवत्तत्व प्रभृति के समझते समय से लेकर श्रीभगवान् के चरण कमल में भक्ति स्थिर रहती है। साधनानुष्ठान के बढनेवाली भगवान् की भक्ति से प्रेरित होकर के वह साधक भगवान् की स्तुति करता रहता है, श्रीराम का गुणानुवाद करना उसका स्वभाव बन जाता है, वह भगवान् का स्मरण नमस्कार वन्दन सतत करता रहता है एवं भगवान् के लिये पुष्पवाटिका आदि के लिये उद्योग करने में उस साधक को विलक्षण आनन्दानुभव होता है। भगवन्नाम का कीर्तन भगवान् के कल्याण गुणों का श्रवण प्रवचन श्रीचरण का निरन्तर ध्यान अर्चन तथा प्रणाम आदि करने में वह अपने को कृतकृत्य तथा कृतार्थ समझता है। इस प्रकार वह साधक भगवत् भक्ति से प्रेरित होकर साधनानुष्ठान करता रहता है उसके ऊपर परमकारुणिक पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामजी प्रसन्न हो जाते हैं। परम पुरुषानुकंपा के प्रभाव से इस भक्त साधक के मन में अनादि भव परंपरा से रहनेवाला जो रजो गुण तमोगुण स्वरूप गाढान्धकार है वह अन्धकार सर्वदा के लिये विनष्ट हो जाता है। तब मन का मालिन्य विनष्ट हो जाने पर उस साधक का मन प्रेम प्रकाश से ओत प्रोत हो जाता है मेघ मुक्त शरत्कालिक चन्द्रबिम्ब की तरह। इसके बाद वह साधक निर्मल मन से श्रीभगवान् के

यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषति' इति । किञ्चेश्वरस्यैव सर्वप्रेरकत्वे तस्मिन् सर्वदोषविरहिते भगवति वैषम्यनैर्घृण्यदोषादयोऽपि भवेयुरतो न परमेश्वरः सर्वनियामक इतितस्य तथाकथनमयुक्तमितिचेत्सत्यम् परमेश्वरो हि सर्गादौ सर्वजीवानां प्रवृत्तिनिवृत्तिसाधारणकारणं शरीरेन्द्रियादिकं

प्रवचनेन' इत्यादिवचनेन प्रेममिश्रितध्यानस्यैव मोक्षोपायता प्रतिपादिता भवति, प्रेममिश्रितध्यानमेव भक्तिः। प्रकृतवचने तु प्रेमामिश्रितश्रवणादीनामेव निरासः क्रियते । अर्थात् प्रेमपूर्वककृतध्यानेनैव परमात्मा प्रादुर्भवति, यतः प्रेमसहितध्यानस्यैव भक्ति रूपत्वं भक्तेश्च मोक्षोपायता सर्वतन्त्रसिद्धा 'रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैवमुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात्' इति 'रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निश्रेयसम्' इति सदाचार्योक्तेश्च । प्रेमरहितश्रवणमनननिदिध्यासनानां तु न मोक्षजनकत्वम् । लोकेपि दृश्यते एको हि प्रेमवान् तदपरं प्रेमवन्तमेवाश्रयति न तु प्रेमविरहितमाश्रयति तद्वत् प्रकृते प्रेमी एव साधकः प्रेमविशिष्टभगवन्तमाराधयति आराध्य तं प्राप्नोति न तु प्रेमरहित आराधयति प्राप्नोति वेतिभावः । प्रेममिश्रितध्यानमेवभक्तिः, एतादृशभक्तेरेव भगवत्प्राप्तौ कारणतेतीममर्थं

दिव्यात्म स्वरूप का निरन्तर अनुसन्धान करने लगता है, इसी अनुसन्धान को योगी लोग समाधि कहते हैं यह समाधि यम नियम प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यानान्त योगाओं से सिद्ध होता है। यह जो दिव्यात्म स्वरूप की अनुसन्धानरूपीस्मरण धारा है वह प्रेम रस से युक्त स्मरण धारा है किन्तु घटपटादि लौकिक शुष्क पदार्थ स्मरण धारा के समान शुष्क स्मरण धारा नहीं है। प्रेमरसाप्लुत यह स्मरण संतान साधक को अतिप्रिय भासित होता है साधक इसको कभी भी परित्यागने की इच्छा ही नहीं करता है मनोऽनुकूल होने से, क्योकि साधक को भगवान् का दिव्यात्मस्वरूप अर्थात् अलौकिक भगवान् का विग्रह अत्यन्तप्रिय लगता है अतएव उस दिव्यात्म स्वरूप धारा भी अतिप्रिय लगती है। (जिस तरह मधुरस्वभाव वाला जो गुड है उससे मिश्रित गोधूमचूर्ण भी ब्राह्मणों को अतिप्रिय लगता है।) यथोक्त स्मरण सन्तानक्रमिकरूपसे बढते बडते इतना विशद बन जाता है कि स्वरूप से परोक्ष रूप होने पर भी प्रत्यक्ष के समान रूप को धारण कर लेता है। (जिस तरह विधुर पुरुष को कामिनी का स्मरण सन्तान कामिनी के प्रत्यक्ष रूप में परिणत हो जाता है) यथा वा गुंजापुंज में वानर को अग्नि प्रत्यय अति अभ्यस्यमान होने पर प्रत्यक्ष रूप में कदाचित् परिणत हो जाता है। उसी तरह प्रकृत में श्रीविग्रह का स्मरण सन्धान बढ़कर के प्रत्यक्ष समानाकारक बन जाता है। योगाङ्ग ध्यान के बाद होनेवाले इस प्रेमरस मिश्रित प्रत्यक्ष समानाकारवाली अतिविशद समाधिरूपिणी पराभक्ति

विदधाति तत्र ज्ञानेच्छाप्रवृत्तिशक्तिमपि करोति एवं कृत्वा तन्निर्वाहाय जीवानामाधारोभूत्वा जीवानामन्तः प्रविश्या-नुमन्तृरूपेण प्राणिनांनियन्त्रणं कुर्वन् सर्वेषांशेषिरूपेणावस्थितो भवति । ततश्च परमेश्वरप्राप्तशक्तिर्जीवः

भगवान् श्रीकृष्णो गीतायामर्जुनं प्रति व्याजहार तथाहि-

पुरुषः स परः पार्थ ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
भक्त्यात्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोर्जुन ! ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ! ॥
भक्त्यामामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः ।
ततोमां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् । इति ।

हे पार्थ ! कुन्तीपुत्र अनेन सम्बोधनेन भगवान् अर्जुनोपरिप्रेमप्रकर्षमव्यञ्जयत् । कुन्ता हि श्रीकृष्णास्य पितृष्वसा आसीत् । तत्पुत्रत्वात् समवयस्कत्वाच्च तदुपरितस्य तत्वमिति । हे अर्जुन ! स परः पुरुषः परमात्मा स्वरूपतो गुणतश्च सर्वोत्कृष्टः अनन्यया

के द्वारा हीं श्रीपुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामजी प्राप्त होते है । समाधि प्राप्त करने तक जो भगवान् का अर्चन पूजनादिक वस्तु हैं वे सब अङ्ग माने जाते हैं, और समाधिनिष्ठ पुरुष के द्वारा समाधि से उठने के बाद जो किया जाता है-भगवदर्चनादिक कर्म हैं वे सब अङ्गीकोटि में आ जाते हैं। प्रेमी साधक अत्यन्त प्रिय लगने के कारण इस समाधि को उपाय न समझ कर के स्वयं प्रयोजन बुद्धि से संपादन करता है उपर्युक्त समाधिरूप साधना ही भगवत् प्राप्ति का उपाय है । इस प्रकार से '**सोऽयं परम कृपालुः परमात्मा**' यहां से लेकर '**तेन लभ्यो भवति परमात्मा**' इत्यन्त ग्रन्थ का अभिप्राय है। इसप्रकार आचार्यजी ने भगवत् प्राप्ति के उपाय के विषय में अपना अभिप्राय अभिव्यक्त किया ।

मोक्ष साधन का संचय करने में वर्णाश्रमोचित कर्म का अनुष्ठान अत्यावश्यक है यह बात उपनिषद् वचन से सिद्ध होता है इस वस्तु को बतलाने के लिये आचार्यजी कहते हैं '**विद्यां चाविद्यां चेत्यादि**' '**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।**' अस्यार्थ : सद् गुरु के द्वारा सदुपदेश को प्राप्त करके जो साधक ब्रह्मोपासनरूप अंगीविद्या को एवं उसका अंग कर्मरूपी अविद्या का जो परस्पर विरोध है तादृश विरोध को दूर कर के इन दोनों का अङ्ग तथा अङ्गी के रूप में अनुष्ठान करने के योग्य समझता है वह साधक विद्या का अङ्ग बना हुआ निष्काम कर्म से विद्योत्पत्ति में विरोधी पूर्वकालिक अशुभकर्मरूपी मृत्यु को पार कर के प्राप्त हुई विद्या अर्थात् ब्रह्मोपासना से अमृत अर्थात् अमृतपदवाच्य ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। उपर्युक्त मन्त्र में अविद्या शब्द वर्णाश्रमोचित कर्म का बोधक है क्योंकि अविद्या घटक जो नञ्पद है वह भेदार्थक

प्रवृत्यादिकं सर्वं करोति स्वयमेव, एवं कुर्वन्तं जीवं परमात्मापश्यन् स्वयं तूदासीन एवावतिष्ठते । अतो विधिप्रतिषेधकं शास्त्रं सार्थकतां भजते । 'एष एव साधुकर्म' इत्यादिश्रुतिस्तुभक्ताभक्तविषया न तु सर्वसाधारणपुरुषविषया । तदुक्तं गीतायां भगवता-तेषां सततयुक्तानां

सर्वोत्कृष्टभक्त्यैव लभ्यो भवति नान्येनोपायेन प्राप्यो भवतीति । हे अर्जुन अहं परमात्मा अनन्यभक्तिद्वारेणैव शास्त्रजनितज्ञानेन ज्ञातुं शक्यः, यथार्थरूपेण मदीयसाक्षात्कारोऽपि अनन्यभक्त्यैव प्राप्यो भवति साधकस्य पराभक्त्यैवमदीयसाक्षात्कारो भवति तेन च साक्षात्कारो भवति तेन च साक्षात्कारेण साधकस्य सर्वमेव वस्तुविदितं भवति । स्वरूपं स्वरूपं चादाय यदहं तथा गुणं विभूतिं चादाय यावानहमस्मि तत्सर्वं साधकस्यास्मिन् साक्षात्कारे विदितं भवति, अयं च साक्षात्कारः परज्ञानमिति शब्देन कथितो भवति । अर्थात् अयमेव साक्षात्कारः परज्ञानपदप्रतिपाद्यः । परज्ञानप्राप्तेरनन्तरं साधकस्य पराभक्तिरतिदृढा भवति यया स भगवन्तं प्राप्नोति, इयमेवदृढाभक्तिः परमभक्तिपदेन गीयते, अनयैव पराभक्त्या साधकोमां प्रविशति मां प्राप्नोति । इयं भक्तिज्ञानवि-शेषरूपाऽतिप्रिया यां परित्यज्य नान्यत् प्रियतरं भवति स्वेतरेषु वैराग्यं जनयन्ति स्वयं प्रयोजनरूपाऽतीवेष्टा । एतादृशी पराभक्तिर्यस्य साधकस्य भवति स एव साधको भगवता

है विद्या भिन्न का नाम होता है अविद्या, अविद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान उससे भिन्न जिस तरह संशय विपर्यय है तो संशय विपर्ययादिक ज्ञान अविद्या बोध्य है उसी तरह गुणात्मक विद्या से भिन्न वर्णाश्रमविहित कर्म भी है इसलिये वर्णाश्रम विहित कर्म विद्या भिन्न होने से अविद्या पद बोधित होता है। एवं मन्त्र घटक विद्या शब्द से भक्ति रूप को प्राप्त किया हुआ जो ध्यान है उसकी विवक्षा होती है। इसी ध्यानरूपी भक्ति को ब्रह्मोपासन शब्द के कथन होता है ।

मन्त्रस्थ अविद्या शब्द वर्णाश्रम का वाचक है यह केवल तर्क तथा उपपत्ति के द्वारा ही सिद्ध होता है ? ऐसा नहीं किन्तु शास्त्र वचन से भी सिद्ध होता है इसबात को बतलाने के लिये शास्त्र वचन को उद्धृत करते हैं-'**इयाज सोऽपि सुबहून् ज्ञानयज्ञव्यपाश्रयः । ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्त्तुं मृत्युमविद्यया ॥**' अयमर्थः-शास्त्रजनित परोक्ष ज्ञान को प्राप्त करके वह राजा विदेह जनक ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मविद्या का विरोधी जो पूर्वकालिक संख्यातीत असुभ कर्म हैं उन विद्या विरोधी प्राचीन कर्मों को अविद्या से अर्थात् विद्या का अङ्ग बना हुआ जो निष्काम कर्म है उन कर्मों के द्वारा विनष्ट करने के लिये बहुत यज्ञों को किया । इन वचनों से सिद्ध होता है कि निष्काम यागादिक कर्म

भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजं तमः ।

वरणीयोभवति तथा स एव साधकः परमात्मानं प्राप्नोतीति गीतावचनार्थः ।

एतदुक्तं भवति, पराभक्त्यापूर्णरूपेण परमात्मना ब्रह्मणः साक्षात्कारो भवति, सोयं ब्रह्मसाक्षात्कारः परज्ञानशब्देन गीयते । परज्ञानेन परमभक्तिरुत्पद्यतेपरमभक्ति प्राप्तस्य साधकस्य परब्रह्मप्राप्तमेव भवति । एतस्य परमभक्तिरूपज्ञानविशेषस्य मूलकारणं स एव भक्तियोगो यः प्रतिदिनमनुक्षणं वर्द्धमानो भवति, तथा ज्ञानपूर्वकक्रियमाणकर्मणा सम्पद्यते । ज्ञानपूर्वकं यत् कर्मक्रियते तदेव निष्कामकर्म इति कथ्यते तदुक्तं श्रीपराशरपरमर्षिणा 'वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् । विष्णुराराध्यते पंथानान्यस्तत्तोषकारक इति । एतस्यायमर्थः-वर्णाश्रमाचारवतावर्णा ब्राह्मणादय आश्रमाः ब्रह्मचर्याश्रमादयश्चतुर्थान्ताः तत्र विद्यमानेनतदनुष्ठानं सम्पादयता पुरुषेणाधिकृतेन साधकेन परः पुमान् सर्वजगत्कारणः

ब्रह्मविद्या के अङ्ग होने से अवश्य अनुष्ठेय है अर्थात् निष्काम भाव से यागादिक कर्म का अनुष्ठान मुमुक्षु के लिये भी परमावश्यक है।

उपनिषदों में स्थल स्थल पर ब्रह्म ज्ञान को मोक्ष साधनरूप से कथन किया गया है उन वचनों को क्रमिक उद्धृत करने के लिये कहते हैं-'**तमेवं विद्वान्नित्यादि**' '**तमेवं विद्वान मृत इह भवति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' अस्यार्थः-सर्वजगत् का कारण उस परमात्मा को अपरोक्षरूप से जाननेवाला साधक इह-एतत् शरीरावच्छेदेनैव अमृत हो जाता है अर्थात् संसार बन्धन से परित्यक्त हो कर के मुक्त हो जाता है साकेत धाम को प्राप्त करता है मोक्ष के लिये ब्रह्म ज्ञान से भिन्न अन्य कोई साधन नहीं है अर्थात् और ब्रह्म ज्ञान के नहीं होने से मोक्ष नहीं मिलताहै और ब्रह्म ज्ञान के नहीं से मोक्ष नहीं मिलता है इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक से सिद्ध होता है कि मोक्ष का साधन ब्रह्मज्ञान है ब्रह्मज्ञानेतर अन्य कोई मोक्ष का साधन नहीं है। '**य एनं विदुरमृतास्ते भतन्ति**' अर्थात् जो इस परमात्मा को जानता है वह अमृत हो जाता है अर्थात् सन्सार बन्धन से विमुक्त हो जाता है। '**ब्रह्म विदाप्नोतिपरम्**' अर्थात् ब्रह्मवित् ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म को प्राप्त कर जाता है यद्यपि ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म को प्राप्त करता है अर्थात् मुक्त हो जाता है इस वचन से ब्रह्मज्ञान मोक्ष का साधन है ऐसा तो सिद्ध नहीं होता है क्योंकि साधनता बोधक तृतीया वा पञ्चम्यादि विभक्ति नहीं है, जैसे '**दण्डेन घटः**' दण्ड से घट होता है '**धूमादग्निमान्**' धूम से वह्नि जाना जाता है, इन दोनों स्थल में दण्ड तथा धूम में कारणता बोधक तृतीया पञ्चमी विभक्ति है उस तरह प्रकृत में कारणकता बोधक पद नहीं है। तब किस तरह

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥ इति॥

श्रीसीतानाथः सर्वस्य शेषी आराध्यते । यथोक्तपुरुषेण स्ववर्णाश्रमोचितकर्मकुर्वता समाराधितो भवति । एतदन्यः वर्णाश्रमोचितधर्मं विहाय अन्यो मार्गो भगवतो अयोध्याधिपतेः सन्तोषकारको न भवति, अर्थात्-यदि वर्णाश्रमोचितकर्मद्वारा परमात्मन आराधनं करोति तदैव भगवान् जगन्नियन्ता प्रीतो भवति नान्यप्रकारेण क्रियमाणकर्मद्वारा तस्य प्रीतिर्जायते । एतेन केवलज्ञानादीनामाराधनमार्गत्वं निराकृतम् ।

अमुमेवार्थं भगवान् कृष्णोऽपि पुष्णाति-

स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।

कहते है ब्रह्मज्ञान मोक्ष का कारण है तथापि ब्रह्मज्ञानी को उद्देश्य कर के यहां मोक्ष का विधान किया जाता है, यहां ब्रह्मज्ञानी उद्देश्य है उद्देश्य के अंश में रहनेवाला ब्रह्मज्ञान उद्देश्यतावच्छेदक है। और एक नियम है उद्देश्यता वच्छेदक प्रयोज्यत्व विधेय में भासित होता है तथा उद्देश्यतावच्छेदक कालावच्छिन्त्व भी विधेय में भासता है तो यहां उद्देश्यतावच्छेदक ब्रह्मज्ञान जन्यत्व का विधेय मोक्ष में सिद्ध होता है तथा ब्रह्मज्ञान कालावच्छिन्नत्व भी मोक्ष में व्यवस्थित होता है। अत एव इसके पूर्व में आचार्यजी ने कहा है कि अनन्याभक्ति मोक्ष का आत्यन्तिक उपाय है अर्थात् आत्यन्तिक उपाय उसको कहते हैं जो फलानुभवकाल में रहता है तो मोक्षकाल में भी ब्रह्मज्ञान का सद्भाव सिद्ध होने से मोक्ष तथा ब्रह्मज्ञान में एक कालावच्छिन्नत्व भी प्राप्त होता है। इस प्रकार से ब्रह्म ज्ञान में मोक्ष जनकत्व सिद्ध होता है अतः ब्रह्मज्ञान मोक्ष कारण है यह व्यवस्थित होता है। जिस तरह '**धनवान् सुखी**' (धनवान् पुरुष सुखी होता है) इस स्थल में धनवान् को उद्देश्य कर के सुख का विधान किया जात है तो यहां उद्देश्यतावच्छेदक है तो तादृश धनात्मक उद्देश्यतावच्छेदक प्रयोज्यत्व अर्थात् जन्यत्व सिद्ध होता है। तथा उद्देश्यतावच्छेदक धनीय वर्तमान कालावच्छिन्नत्व का सुखरूप विधेय सुख में लाभ होता है अत एव धन की वर्तमानता में ही सुख होता है धन के अभावकाल में सुख नहीं होता है। इसीप्रकार से प्रकृत में भी समझना चाहिये अर्थात् मोक्षरूप विधेय में उद्देश्यतावच्छेदक ब्रह्मज्ञान प्रयोज्यत्व तथा ब्रह्मज्ञान कालावच्छिन्नत्व का बोध होने से मोक्ष जनकत्व ब्रह्मज्ञान में लाभ होता है। इसी तरह '**तरति शोकमात्मवित्**' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता हो कि आत्मज्ञान मोक्ष का जनक सिद्ध होता है विस्तृत विचार अन्यत्र देखें।

॥ मोक्षोपायप्रपञ्चनम् ॥

सोयं परमकृपालुः परमपुरुषो ब्रह्मभूतः श्रीसीतानाथोध्या नादिलक्षणतदीयानन्यभक्त्यैव लभ्यो भवति । यो हि काम्यनि

स्वकर्मणातमभ्यर्च्यसिद्धिं विन्दतिमानवः ॥

अयमर्थः-स्वकर्मनिरतो मनुष्यः यस्य मनुष्यस्य स्ववर्णाश्रमोचितं यत् यत् कर्म सन्ध्यावन्दनादिकं तदन्यद्वा कर्मतादृशं कर्म अनुतिष्ठन् तदाचरणं कुर्वन् यथा येन प्रकारेण सिद्धिं प्राप्तो भवति तत्त्वं मत्तः परमेश्वरात् शृणु श्रुत्वाचावधारय । यतः सर्वशक्तिसमन्वितपरमेश्वरात् भूतानां जडचेतनपदार्थानाम् प्रवृत्तिर्भवति अर्थात्-उत्पत्तिस्थितिलयादिव्यापारो भवति । तथा येन परमेश्वरेण परिदृश्यमानं सर्वं जगत् कार्यजातं ततं व्याप्तम् । तादृशम् इन्द्रादिसर्वेषामन्तरात्मानम् भगवन्तं परमपुरुषम् स्वकर्मणा स्वाश्रमोचितकर्मानुष्ठानेनाभ्यर्च्यसमाराध्य मनुष्यः सिद्धिं प्राप्तो भवतीति । अनेन प्रकारेणेदं फलति यत् उपर्युक्तप्रकारेण सम्पत्स्यमानभक्त्यैव भगवान् परब्रह्मरूपोऽयोध्याधिपतिः

एवं 'स योह वै तत्परमं ब्रह्म वेद' जो साधक उस परब्रह्म को जानता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है । 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' जो साधक ब्रह्म को जानता है अर्थात् प्रत्यक्ष समानाकारक स्मृत्यात्मक ज्ञान विशेष से विषयीकृत करता है वह साधक ब्रह्म हो जाता है अर्थात् परब्रह्म की परमसमता को प्राप्त करता है मुक्त हो जाता है । यहां ज्ञाता तथा ज्ञेय में नीलो घटः की तरह तादात्म्य नहीं है क्योंकि जीव तथा ब्रह्म में अत्यन्त तादात्म्य प्रमाणान्तर से बाधित है किन्तु ब्रह्मज्ञान हो जाने पर जीव ब्रह्म के परमसमत्व को प्राप्त कर जाता है । श्रुत्यन्तर में भी कहा है-'निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति' ब्रह्मकृपा प्राप्त जीव निरञ्जन सर्वदुःख रहित होकर के समता को प्राप्त कर जाता है । तादात्म्य पक्ष में उपर्युक्त श्रुत्यन्तर का बाध भी होगा । इसलिये परब्रह्म को जाननेवाला परम समता को प्राप्त कर जाता है, ऐसा अर्थ करना ही उचित है । 'तमेवं विद्वानमृत' यहां से लेकर के 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' एतत् पर्यन्त वचनों से यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मज्ञान मोक्ष का साधन है । परन्तु इस में इतना ध्यान रखना चाहिये कि मोक्ष का साधन जो ज्ञान है वह ध्यानरूप ज्ञान है ऐसा समझना चाहिये अर्थात् ब्रह्मज्ञान मोक्ष साधन है वह प्रत्यक्ष समानाकारता को प्राप्त किया हुआ ध्यानरूप ज्ञान है, क्योंकि 'निदिध्यासितव्यः' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि ध्यान ही मोक्ष का साधन है । यद्यपि ज्ञानध्यान दोनों एक ही वस्तु है तथापि ज्ञान सामान्यरूप है और ध्यान ज्ञान विशेष रूप है । इस प्रकार से ज्ञानध्यान में सामान्य विशेषभाव से श्रवणमननात्मक ब्रह्मज्ञान सामान्य ज्ञान है और ध्यान विशेषज्ञान है तो यह विशेष ज्ञान साधन है किन्तु सामान्य ज्ञान मोक्ष का साक्षात् साधन नहीं

षिध्दकर्मवर्जनपूर्वककृतनिष्कामकर्मनाशितपापराशिरन्तः करणनैर्मल्येन गुरुसमीपं गत्वा प्राप्तोपदेशः तदनुध्यानार्चनादिना संप्राप्तभक्तिस्तेन लभ्यो भवति परमात्मा । तदाह श्रुतिः-'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह । अविद्ययामृत्युंतीर्त्वाविद्ययाऽमृतमश्नुते ।'' इयाज सोपि सुबहून् यज्ञान्

प्राप्यो भवति, न तु केवलज्ञानेन प्रकारान्तरेण वा प्राप्तो भवतीति जगदाचार्येण व्यवस्थापितम् । मूलाक्षरार्थस्तु न तिरोहितः ।

शिष्टकृतव्याख्यानविभूषितश्रुतिनिकरेणोपेयस्वरूपं निरूप्य श्रीबोधायनपुरुषोत्तमाचार्यादिकृतव्याख्यानमपि व्यक्तार्थवेदसमुदायादेवोपायस्वरूपस्येति निष्कर्षः कृतः । तावता वेदबाह्यानां तत्सदृशानां कुदृष्टीनां मतानि निराकृतानि भवन्तीति दर्शयितुं प्रक्रमते श्रीमद्बोधायने त्यादि । श्रीबोधायनो हि श्रीव्यासस्य प्रशिष्यस्तथा व्यासकृतब्रह्मसूत्रस्यवृत्तिकर्ता च, तथान्ये वेदान्तवाक्यस्य व्याख्यानकर्तारः पूर्वाचार्याः एभिः कृतव्याख्यानसुव्यक्तार्थकवेदसमुदायैरुपायस्वरूपस्य निर्द्धारणं तथोपायस्वरूपस्यापि निर्द्धारणं

है परन्तु ध्यान द्वारा साधारण साधन है समान्य कारण को विशेष में पर्यवसान करना चाहिये । इससे इन दोनों में सामञ्जस्य स्थापित होगा इन दोनों में विरोध उपस्थित करना उचित नहीं होगा । जिस तरह-'द्रव्यं दक्षिणा' इस स्थल में सामान्य द्रव्य वाचक द्रव्य शब्द का द्रव्य विशेष सुवर्ण में पर्यवसान किया जाता है उसी तरह प्रकृत में सामान्यरूप से कथित मोक्ष साधन ब्रह्मज्ञान का ध्यान लक्षण बिशेष ज्ञान में पर्यवसान किया जाता है ।)

'नायमात्मा' इत्यादि श्रुति वचन से ध्यान में एक प्रकार की विशेषता प्राप्त होती है इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं-'नायमात्मा प्रवचनेनेत्यादि नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तंनूस्वाम्' अयमर्थः श्रुतेः-यह आत्मा परपुरुष श्रीसीतानाथ उस मनन से लब्ध नहीं होते हैं जो मनन प्रवचन का कारण एवं कार्य है एवं वह परमात्मा मेधा अर्थात् ध्यान से भी प्राप्त नहीं होते हैं एवं बहुत श्रवण से भी प्राप्त करने के योग्य नहीं हैं, परन्तु परमात्मा जिसको चाहते हैं-जिसके ऊपर कृपा करते हैं उस भगवत् कृपा पात्र साधक से परमात्मा प्राप्त होते हैं । यद्यपि समुदाहृत श्रुतिवचन से 'श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' इत्यादि श्रुत्यन्तर प्रतिपादित श्रवणादिकों का निराकरण होता है ऐसा प्रतिभासित होता है तथापि यह श्रुतिवचन प्रेममिश्रितध्यान को मोक्षोपायत्व का प्रतिपादन करता है, क्योंकि प्रेम मिश्रित ध्यान हीभक्ति है । और जिस श्रवण मनन निदिध्यासन का खण्डत प्रतिभासित होता है वे सब प्रेम

ज्ञानव्यपाश्रयः । ब्रह्मविद्यामधिष्ठाय तर्तुं मृत्युमविद्यया ।' इति । 'तमेव विद्वान् अमृत इह भवति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।' 'य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति' 'ब्रह्म विदाप्नोतिपरम्' 'योह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ।' इत्यादि । अत्र वेदनशब्देनोपासनाध्यानमेव कथितम्,

कृतम् । एतत्पर्यन्तनिर्णयकरणादेतद्विरुद्धोपायोपेयस्वरूपनिर्णयकर्तारो वादिनो निरस्ताः । यतस्तन्मतम्, तर्कश्रुतितिरुद्धम् । इमे वादिनो द्विप्रकारकाः वेदबाह्याः कुदृष्टयश्च तत्र केचन चार्वाकबौद्धमताः वेदप्रामाण्यमनंगीकुर्वन्तः सर्वथा हेयाः । तथा केचनात्यल्पश्रद्धालवा वेदे यथा कणादकपिलाक्षपादपतञ्जलिप्रभृतयः । अन्ये कुदृष्टयस्तत्समा एव । यद्यप्येते कुदृष्ट्यो वेदे श्रद्धाशीलास्तथापि स्वकपोलकल्पनया वेदार्थं कुर्वन्तो वेदबाह्यसदृशा एव कुदृष्टौ शंकरभास्करयादवादीनामाचार्याणां समावेशः । एतेषां कुदृष्टीनां वेदबाह्यसदृशत्वं मनुना कथितं तदाह या वेदबाह्याः स्मृतयः इत्यादि । मनुवाक्यस्यायमर्थो वेदाप्रामाण्यवादिनां ये स्मृतिग्रन्थाः, तथा वेदप्रामाण्यवादिनां शंकरादीनां यानि कुत्सितदर्शनानि सन्ति सर्वाणि मरणानन्तरं निष्फलानि, यतो रजोगुणतमोगुणमूलकत्वात् । येषां रजस्तमोभ्यामसंस्पृष्टं सत्वं स्वाभाविकोगुणस्तेषामेव वेदेरुचिस्तथा यथार्थरूपेण वेदार्थपरिज्ञानमपि जायते

रहित श्रवणादिक है उन सब का खण्डन किया जाता है। यह बात इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध से स्पष्ट होता है उत्तरार्ध में कहा है कि जिसको परमात्मा चाहते हैं उसको परमात्मा प्राप्त होते हैं जिस पर प्रेम करते हैं परमात्मा किस पर प्रेम करते हैं ? तो जो साधक परमात्मा पर प्रेम स्नेह रखता है उस साधक के ऊपर परमात्मा भी प्रेम रखते हैं क्योंकि प्रेम संयोगादिक की तरह द्विष्ठ है लौकिक प्रेम की तरह। (यथा पिता पुत्र के उपर प्रेम रखता है तो पुत्र भी पिता के ऊपर प्रेम करता है।) इससे यह फलित होता है कि जो व्यक्तिपरमात्मा को प्राप्त करना चाहता है वह साधक परमात्मा के ऊपर प्रेम करे प्रेम पूर्वक संपाद्यमान श्रवण मनन और ध्यान से परमात्मा प्राप्त हो सकते हैं और प्रेम रहित श्रवण मनन और ध्यान से परमात्मा को प्राप्त करना सर्वथा असंभवित है। अतः इस मन्त्र में श्रवण मनन और ध्यान का जो निराकरण किया है वह प्रेम रहित श्रवण मनन और ध्यान का खण्डन किया गया है। और अन्यत्र-'**श्रोतव्यो मन्तयो निदिध्यासितव्यः**' इत्यादि शास्त्रान्तर में जो श्रवण मनन और ध्यान का जो मोक्षोपाय रूप से कथन-प्रतिपादन किया गया है वह प्रेम रहित श्रवण मनन और ध्यान का निराकरण किया गया है और शास्त्र में जो श्रवणादिकों का विधान है वह प्रेम मिश्रित श्रवण मनन और निदिध्यासन का विधान है। अर्थात् प्रेम रहित श्रवणादिकों का खण्डन किया गया है और

'निदिध्यासितव्यः' इत्यनेन समानार्थत्वात् । 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुस्वाम्' भक्तिरूपप्राप्तानुध्यानेनैव लब्धो भवति, न केवलं

नान्येषाम् । तत्सर्वं मत्स्यपुराणे कथितम् । तद्वचनमुदाहरति संकीर्णाः सात्विकाश्चैव इत्यादिश्लोकचतुष्टयम् । एतेषां मात्स्यवचनानामयमर्थः हिरण्यगर्भस्य ब्रह्मण एकं दिनं कल्पपदेन कथितं भवति । ते च कल्पा अनेकविधा भवन्ति, संकीर्णागुणत्रयैः, सात्विकाः सत्वप्रधानाः, राजसाः रजः प्रधानास्तामसाश्च । सत्वादिगुणप्रधानककल्पेषु हिरण्यगर्भब्रह्मण्यपि सत्वादिगुणा आधिक्येन समुपलभ्यन्ते । तत्तत्कल्पेषु सात्विकादिब्रह्मणोमुखेन सात्विकादिपुराणानि निर्मितानि भवन्ति । सात्विककल्पे सात्विकब्रह्ममुखनिर्गतसात्विकादिपुराणेषु सात्विकदेवस्य वर्णनं भवति । एवं राजसतामसकल्पेराजसप्रकृतिब्रह्ममुखान्निर्गतपुराणे राजसादिदेवानां माहात्म्यं वर्णितं भवति । तथाहि वचनम् अग्नेः शिरस्य माहात्म्यं तामसेषु निगद्यते इत्यादि । तामसकल्पे तामसब्रह्मणा निर्मिततामसपुराणे शिवस्याग्निदेवस्य च महिम्नोवर्णनम् । तथा राजसकल्पेनिर्गतराजसपुराणे हिरण्यगर्भस्याधिकमाहात्म्य वर्णनमुपलभ्यते । एवं सात्विककल्पे आविर्भूतसात्विकपुराणे भगवतो विष्णोरधिकमाहात्म्यमुपलभ्यते, एतेष्वेव कल्पेषु योगसिद्धा परांगतिं प्राप्नुवन्ति । तथा

प्रेममिश्रित श्रवणादिकों का विधान है। इस प्रकार से साधक तथा बाधक दोनों श्रुतियों में परस्पर सामञ्जस्य होता है, । किसी प्रकार का कोई भी विरोध नहीं होता है। इस श्रुति का सारांश यह है कि साधक को प्रेम मिश्रित ध्यान ही करना चाहिये क्योंकि प्रेम मिश्रित ध्यान का ही नाम भक्तियोग है। अर्थात् जो साधक मुमुक्षु वेदान्त विहित ज्ञान विशेषरूप ध्यान आदि का सम्पादन करता है यदि तादृश साधक को इस ध्यान में अनवच्छिन्न-अपार प्रेम होता हो तो उस ध्यान आदि से भगवान् प्राप्त हो सकते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में इस अर्थ विषय को कहा है-'**पुरुषः स परः पार्थ ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया । भक्त्यात्वनन्ययाशक्य अहमेवं तिधोऽर्जुन ! ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ! भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः । ततोमां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।**' इति । अयमर्थः-हे पार्थ ! वह सर्व जगदुपादान परमपुरुष परमात्मा अनन्यभक्ति से लभ्य होते हैं अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति अनन्य भक्ति के द्वारा होती है। हे अर्जुन ! अनन्या भक्ति के द्वारा ही एतादृश इस शास्त्र के द्वारा जाने जा सकते है अच्छी तरह से यथार्थरूप से मेरा साक्षात्कार अपरोक्ष ज्ञान भी अनन्यभक्ति द्वारा ही प्राप्त होसकता है। यथार्थरीति से मुझ परमेश्वर में प्रवेश भी

वेदनेन मेधया वेति केवलप्रवचनादेर्निषेधदर्शनात् । तदाहुर्भाष्यकाराः तथाहि 'सकृत्प्रत्ययं कुर्याच्छब्दार्थस्य कृतत्वात्प्रयाजादिवत्' (बो.वृ.) इत्यादिना पूर्वपक्षमुपन्यस्य समाहितम् 'सिद्धन्तूपासनशब्दात्' (बो.वृ.)

संकीर्णकल्पे मिलितसत्वादिगुणविशिष्टे कल्पे ब्रह्ममुखनिर्गतसंकीर्णपुराणं सरस्वत्याः पितृणां च बाहुल्येन माहात्म्यमुपवर्णितम् मत्स्यपुराणवर्णितार्थानां समर्थनमित्थं भवति । तत्राह अयमाशयः इत्यादि । अस्मिन् ब्रह्माण्डे समुत्पन्नः प्रथमो जीवो हिरण्यगर्भो ब्रह्मैव अतएव स आदिजीवः आदिक्षेत्रज्ञश्च कथितो भवति । अतएवोक्तम् 'स वै शरीरीप्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत' (स एव हिरण्यगर्भ एव प्रथमः शरीरीकरणकलेवरवान् स च पुरुषशब्देनापि कथ्यते सर्वेषां भूतानामादिकर्ता स्वेतरसर्वेजीवानामुत्पादक स तादृशो ब्रह्मा अग्रे भूतोत्पत्तेः पूर्वमजायतसमुत्पन्नो जात इत्यर्थः ।) तस्यादिजीवस्य कस्मिंश्चिद्दिने सत्वगुणोद्रेकः कुत्रचिद्दिने रजसः कदाचित्तमस उद्रेको भवति । तदुक्तं गीतायाम् न तदस्तिपृथिव्यां वा इत्यादि । भूलोके मनुष्यादिषु द्युलोके देवेषु किं बहुना हिरण्यगर्भादारभ्यस्थावरपर्यन्तजीवेषु नास्ति कश्चित्तादृशो जीवो यो हि सत्वादिगुणैर्विवर्जितो भवेत् सर्वोऽपि गुणान्तर्गत एव न तु गुणत्रयविवर्जितो भवति इत्याशयः । वेदान्तेपि कथितं तदाह यो ब्रह्माणं विदधाति इत्यादि । अर्थात् सर्वकारणः परमेश्वरः सर्वप्रथमं हिरण्यगर्भमादिजीवं सृजति, तदनु तं वेदराशिमुपदिशति पूर्वं सृष्टेरारम्भकाले एवेत्यर्थः । अनेनेदं सिद्धं यत् भगवत् द्वारेण ब्रह्मणः सृष्टिरिति एवं स हिरण्यगर्भो बाह्यजीवान्तरवत्

अनन्यभक्ति के द्वारा ही हो सकती है अर्थात् मुझ परमेश्वर की प्राप्ति भी अनन्याभक्ति के द्वारा ही बन सकती है । पराभक्ति के द्वारा साधक को मेरा मुझ परमेश्वर का साक्षात्कार प्राप्त होता है । उस मेरे साक्षात्कार में सब कुछ विदित हो जाता है । स्वरूप तथा स्वभाव को लेकर हम जो कुछ है गुण और विभूति को लेकर हम जितने हैं यह अर्थ उस साधक को इस मदीय साक्षात्कार में स्पष्ट रूप से प्रतिभासित विदित हो जाता है । इसी साक्षात्कार को पूर्ण ज्ञान कहते हैं ! परज्ञान प्राप्त होने के बाद साधक की भक्ति इतनी बढ जाती है कि श्रीपरमेश्वर को प्राप्त किये बिना रहा न जाता है । इसी भक्ति को परमभक्ति कहते हैं । इस परमभक्ति के द्वारा ही साधक मुझ परमेश्वर में प्रवेश कर जाता है अर्थात् मुझ परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है । यह परम भक्ति वह ज्ञान विशेष है जो साधक को परम प्रिय लगता है इस ज्ञान विशेषरूप परमभक्ति को छोड़कर एतदन्य दूसरा प्रयोजन देखने में नहीं आता है जो स्वयं प्रयोजन भाव से होता रहता है तथा जो अपने इतर समस्त पुत्र वित्त कलत्रादिक पदार्थों में वैराग्य को

इति । वेदनमेवोपासनमित्यप्युक्तं 'वेदनमुपासनं स्यात्तद्विषये श्रवणात्' (बो.वृ.) इति । उपासनन्तु ध्रुवानुस्मृतिरूपमित्यभिहितं 'उपासनं स्याद्ध्रुवानुस्मृतिर्दर्शनान्निर्वचनाच्च (बो.वृ.) इति । सा च ध्रुवानुस्मृतिः

वेदशास्त्राधीनः । अतएव तस्मै वेदमुपदिदेश अतो ब्रह्मापि जीव एव, अर्थात् जीवकोटावेवहिरण्यगर्भस्य समावेश इति । स ब्रह्मा सात्विकदिनेषु बहुपुराणानां प्रवचनं कृतवान् तथाऽनेकदिनेषु तामसेषु तेषु तामसपुराणानां प्रवचनं कृतवानिति । एषु पुराणेषु परस्परं विरोधे समुपस्थिते सात्विकपुराणमेव यथार्थं सात्विकात्, एतद्विरोधिराजसादिपुराणमयथार्थं जघन्यत्वात् । एतत्सर्वं निर्णेतुं सात्विको ब्रह्मा मत्स्यपुराणे उपर्युक्तान् अर्थानुदाजहार । अयमेव निष्कर्षः ।

सात्विकादिगुणानां किं किं कार्यमिति दर्शयितुं गीतावचनमुदाहरति सत्वात्संजायते ज्ञानम् इत्यादि । सत्वात्-सत्वगुणोद्रेकज्ञानं यथार्थज्ञानं जायते-समुत्पद्यते इत्यर्थः रजसो

उत्पन्न करता है । इस प्रकार का भक्तिरूपापन्न साधन विशेष जिस साधक को होगा, वही परमात्मा का वरणीय होता है तथा वही साधक परमात्मा को प्राप्त कर सकता है । इस प्रकार का अर्थ **'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः'** इत्यादि श्रुति वचन का है ।

परा भक्ति के द्वारा पूर्णरूप से परब्रह्म श्रीसीतानाथ का साक्षात्कार होता है इस साक्षात्कार को परज्ञान शब्द से कथन किया जाता है । पर ज्ञान से परमभक्ति पैदा उत्पन्न होती है, परम भक्ति में पहुचने पर परब्रह्म को प्राप्त किये बिना साधक को रहा नहीं जाता है । इस परमभक्तिरूप ज्ञान विशेष का निदानकारण अर्थात् मूल कारण वह भक्ति योग है जो प्रतिदिन अभ्यास करने से बढता जाता है तथा ज्ञानपूर्वक जो कर्म किये जाते हैं उन कर्मों से सम्पन्न होता है । जो कर्म ज्ञान पूर्वक किया जाता है उसको निष्काम कर्म कहते हैं । इस बात को भगवान् पराशर ऋषि ने कहा है **'वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेणपरः पुमान् । विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः'** इति ।

तदयमर्थः:-वर्णाश्रम विहित धर्म का नित्य नैमित्तिक तथा निष्काम कर्म का आचरण अनुष्ठान करनेवाला जो पुरुष है उस पुरुष के द्वारा वह परमपुरुष श्रीविष्णु अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र आराधित होते हैं । इससे भिन्न अर्थात् वर्णाश्रम धर्म को छोडकर अन्य दूसरा कोई ऐसा मार्ग नहीं है जिससे श्रीभगवान् संतुष्ट हों । संपूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिये मृत्यु लोक में अवतीर्ण भगवान् श्रीकृष्णजी ने गीता में कहा है कि-

'स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु । यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा समभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥'

साधनसप्तकादेवेत्युदीरितम् । तल्लब्धिर्विवेकविमोकाभ्यासक्रिया-कल्याणानवसादानुद्धर्षेभ्यः सम्भवान्निर्वचनाच्च (बो.वृ.) इति । (श्रीआनन्दभाष्यम् १।१।१)

रजोगुणात्लोभः समुत्पद्यते अर्थात् तदैवलोभो मनसि सम्पद्यते यदाहि रजोगुणस्याविर्भावो मनसि जायते, तथा तमोगुणस्य समुद्रेके प्रमादमोहौ जायेते, अनवधानं विपरीतज्ञानं तथा ज्ञानाभावप्रमा च जायते इति । 'प्रवृत्तिं च निवृत्तिं चेत्यादि, या बुद्धिरभ्युदयसाधनं निवृत्तिधर्मं तथा मोक्षसाधनं निवृत्तिधर्मं सम्यग् विजानाति तथा देशकालावस्थाविशेषेषु किं कर्तव्यं किं न कर्तव्यमिति निर्णयो येन भवति, शास्त्रमर्यादोल्लङ्घनंभयस्थानं तथा शास्त्राज्ञापरिपालनमभयहेतुरिति या बुद्धिर्वेत्ति तथा संसारस्य वास्तविकस्वरूपंमोक्षस्य वास्तविकस्वरूपं या बुद्धिर्यथावत् जानाति सा सात्विकबुद्धिरिति । यया बुद्ध्या मनुष्यः उपर्युक्तं प्रवृत्तिधर्मं निवृत्तिधर्मं तथा तयोर्विरुद्धमधर्ममशुभं कर्मतदीयस्वरूपं च समीचीनरूपेण न विजानाति तथा धर्मज्ञैर्देशकालावस्थाविशेषेषु किं कर्तव्यं किं न कर्तव्यम्, एतत् तत्वं यथार्थतो न जानाति सा बुद्धिराजसीति कथ्यते । तथा या बुद्धिस्तमोगुणावृतासती अधर्ममधर्मप्रयोजकं कर्म च धर्ममिति जानाति । तथा सर्वानेवार्थान् यथास्वरूपकान् तद्विपरीतानेव विजानाति सा बुद्धिस्तामसीति । एभिरुपर्युक्तगीतावचनैरयमर्थः फलति

अर्थात् स्व स्व कर्म में सदा संलग्न मनुष्य जिस प्रकार सिद्धि को प्राप्त करता है उस बात को मुझ से हे अर्जुन ! तुम सुनो । जिस भगवान् से इन जड चेतन पदार्थों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयादिक व्यापार होते हैं तथा जिस भगवान् से यह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् जायमान पदार्थ व्याप्त रहता है; इन्द्र वरुणादिक देवताओं की भी अन्तरात्मा परमपुरुषोत्तम उस भगवान् की स्वकर्म से आराधना कर के मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है । इन सब विचारों से सिद्ध होता है कि परब्रह्म श्रीरामचन्द्रजी उपर्युक्त क्रम से सम्पन्न होने वाली भक्ति के द्वारा ही प्राप्त होते हैं अर्थात् भगवत् प्राप्ति का उपाय भक्ति ही है । केवल ज्ञानादिक मोक्षोपाय नहीं है ।

साधनसम्पन्न मुमुक्षु लोग किस पदार्थ को प्राप्त करते हैं, जिसकी प्राप्ति होने पर मुमुक्षु कृतार्थ होते हैं ? इस जिज्ञासा के उत्तर में इसके पूर्व में आचार्य जी ने कहा है कि मैं स्वरूप के द्वारा आदृत व्याख्या ग्रन्थ के अनुसार प्राप्य श्रीरामजी के वास्तविक स्वरूप का निष्कर्ष सिद्धान्त के रूप में किया गया हैं । तदनन्तर उस प्राप्य परमेश्वर की प्राप्ति का जो उपाय कारण है तादृश उपाय स्वरूप का अर्थात् भक्ति ही भगवत्स्वरूप प्राप्ति में असाधारण कारण है ऐसा निश्चित किया । तदनन्तर

卐 बाह्यमतानामनादरणीयत्वनिर्वचनम् 卐

श्रीमद्बोधायनपुरुषोत्तमाचार्यश्रीदेवानन्दाचार्यश्रीपूर्णानन्दाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यप्रभृतिकशिष्टपुरुषप्रणीतवेदान्तव्याख्यानेन

यत् यस्मिन् दिने कल्पे ब्रह्मणि सत्वगुणस्योद्रेको विद्यते ब्रह्मणा तत् दिने यत् पुराणं कथितं तत्सात्विकं पुराणं यथार्थं सर्वथाप्रमाणभूतम् सर्वथासर्वदाऽवाध्यम्, एवं यस्मिन् दिने ब्रह्मणिरजोगुणस्याभिवृद्धिर्विद्यते तद्दिने ब्रह्मणा निर्मितंपुराणं राजसमिति तन्न यथार्थमर्थात् अप्रमाणम्, तथा तमोगुणस्याभिवृद्धिदिने ब्रह्मणानिर्मितं यत्पुराणं तत् तामसमिति तत् सर्वथाऽप्रमाणरूपम्, एवंचाप्रमाणभूतराजसतामसपुराणेन सात्विकपुराणस्य न बाधोन्यूनबलत्वात् बलवता दुर्बलस्य बाधो भवतीति लोके दर्शनात् । ब्रह्मणः सर्वपुराणानधिगत्यपुराणकर्तारो महर्षयः पुराणानां निर्माणं कृतवन्त इति विष्णुपुराणव-

जगदाचार्यजी कहते हैं कि उपाय स्वरूप का निर्णय भी शिष्ट पूर्वाचार्यों के ग्रन्थानुसार ही किया हूं । इससे अवैदिक तथा कुदृष्टियों के मत का खण्डन हो जाता है इत्यादि विषयों का प्रतिपादन करने के लिये उपक्रम करते हैं '**श्रीमद्बोधायन पुरुषोत्तमाचार्य प्रभृतीत्यादि**' परमपूज्य बोधायनऋषि वेदव्यास महर्षि के प्रशिष्य हैं, इन श्रीबोधायन महर्षि ने वेदव्यास के ब्रह्मसूत्रनामक ग्रन्थ के उपर वृत्तिनामक व्याख्यान ग्रन्थ का सम्पादन किया है, भगवान् बोधायन श्रीपुषोत्तमाचार्यकृत विशिष्टाद्वैतार्थ प्रतिपादक महावृत्ति के आधार पर जगद्गुरुश्रीदेवानन्दाचार्य जगद्गुरुश्रीपूर्णानन्दाचार्य जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्य यतिराज जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्य प्रभृति साम्प्रदायिक शिष्ट पूर्वाचार्यों ने जिस वेद भाग की वेदान्त व्याख्याओं का सम्पादन किया तथा उनका स्वीकार किया है उन व्याख्या ग्रन्थों से वेद राशि का वास्तविक अर्थ अत्यन्त स्पष्ट होता है वेदार्थ में संशय विपर्यय नहीं रहता है । इस तरह शिष्टकृत व्याख्या ग्रन्थों के अनुसार सुव्यक्तार्थक श्रुति समुदाय से पूर्वकथित भक्ति लक्षण उपाय स्वरूप का निर्णय हो जाता है । वेद वाक्य भक्ति लक्षण उपाय स्वरूप को ही बतलाते हैं ।

अभी तक उपेय स्वरूप एवं उपायभक्ति स्वरूप का जो निर्णय किया है, इसके विपरीत उपाय स्वरूप तथा उपेय स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले जो वादी समुदाय हैं उन सब वादियों का मत परास्त हो जाता है क्योंकि उन वादियों का जो कथन है वह तर्क तदा वेदों से अतिविरुद्ध है । उपर्युक्त वादी दो प्रकार के हैं एक तो वेद बाह्य हैं, इन वेद बाह्य में भी दो प्रकार हैं-एक तो वेद प्रामाण्य को सर्वथा नहीं मानते हैं जैसे चार्वाक जैन तथा बौद्ध और द्वितीय वे हैं जो आंशिक वेद को मानते हैं अर्थात् वेद पर अत्यल्प श्रद्धा रखते हैं जैसे कणाद अक्षपाद

सुव्यक्तार्थकश्रुतिसमुदायसमर्थितोयमुपायमार्गः । एतावता चार्वाक-बौद्धकणादाक्षपादजैनकपिलपतञ्जलिप्रभृतीनां वेदबाह्यानां तथा वेदावलम्बिनामपि कुदृष्टीनां शङ्करयादवादीनां मतानि निरस्तानि भवन्ति । यथा वेदबाह्या यथावस्थितपदार्थविपर्ययमतिकास्तथैव वेदावल-

चनाज्ज्ञायते । तथा हि विष्णुपुराणवचनम्-

कथयामि यथा पूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः ।

पृष्टः प्रोवाचभगवानब्जयोनिः पितामहः । इति ।

अस्यार्थः-पूर्वकालेदक्षप्रभृतिमहर्षिभिः पृष्टः पितामहो भगवतो नारायणस्य नाभिकमलोद्भवो यथा प्रतिपादनं कृतं तथैवाहं कथयामि । अनेनेदमायाति यत् हिरण्यगर्भब्रह्मणः सकाशात् पुराणार्थान् श्रुत्वादक्षादिकामहर्षयः तत्तत्पुराणानां निर्माणं कृतवन्त इति । एतेषु सात्विकादिपुराणेषु परस्परं विरोधे समुपस्थिते सात्विकपुराणस्य सर्वथा प्रमाणत्वात्, तदितरयो राजसतामसयोरेव बाधः स्यात् । तथा च सात्विकपुराणे यत् कथितं तदेवाचरणीयम्, न तु राजसतामसोक्तार्थस्यग्रहं कर्तव्यं तथा तदनुकू-

कपिल तथा पतञ्जलि। चार्वाक प्रभृति तो सर्वथा वेद को नहीं मानते हैं और कणादादिक वेद में अत्यल्प श्रद्धा रखते हैं। द्वितीय वादी कुदृष्टिक हैं ये यद्यपि वेद पर पूर्ण आस्था श्रद्धा रखते हैं तदापि वेदों का स्व कपोल कल्पित व्याख्यान करते हैं क्योंकि इनका दृष्टिकोण दूषित है। इसमें शंकराचार्य भास्कराचार्य तथा यादवप्रकाशाचार्य हैं एवं इनके अनुयायी प्रभृतिक हैं। वेद बाह्यवादी की अपेक्षा कुदृष्टिक अच्छे हैं क्योंकि वेद बाह्य तो सर्वथा वेद को नहीं मानते हैं और कुदृष्टिक तो वेद प्रामाण्य को तो मानते हैं परन्तु ये कुदृष्टि कपोल कल्पित वेदार्थ करने से अपने लक्ष्य से च्युत हो जाते हैं इसलिये इनको वेद बाह्य वादी समत्व कहा गया है। अत एव मनुमहाराज ने इस कुदृष्टियों को वेद बाह्य के साथ में गणना किया है तथा तदीय सादृश्य भी कहा है, इसमें कारण यह है कि ये लोग वेद प्रामाण्य को मानते हुए भी इनकी बुद्धि तत्वरहित तथा पुरुषार्थ मोक्ष के विषय में अत्यन्त विभ्रान्त हो गई है मनुस्मृति में मनुमहराज ने कहा है-

'या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः ।

सर्वास्तानिष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥' इति ॥

अस्यार्थ :-जो वेद बाह्य स्मृति है अर्थात् वेद को जो लोग प्रमाण नहीं मानते हैं उनका जो वेद बाह्य स्मृति ग्रन्थ हैं जैसे चार्वाक् का, बृहस्पतिसूत्र तथा जयराशिभट्ट का जो तत्वोपल्वव ग्रन्थ

म्बिनोऽपि विपर्यस्तदृष्टिका एव, तथा चोक्तम् मनुना 'या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्चकाश्च कुदृष्टयः । सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ।' इति । वेदार्थयथार्थज्ञानं वेदार्थेरुचिश्च तेषामेव भवति येषां

लाचरणमपि न कर्तव्यम्, राजसतामसापेक्षया सत्वस्यसात्विकगुणस्य चाधिकबलत्वादिति विशेषोऽन्यत्र द्रष्टव्यः ।

ननु पुराणानां पुरुषनिर्मितत्वेन तेषु विरोधे प्रसक्ते सात्विकपुराणस्य प्रमाणत्वेन तस्यैव प्रावल्यम् । तेन तदितरयोराजसतामसयोर्बाध इति व्यवस्था संभवति, परन्तु वेदस्यत्वपौरुषेयत्वेन तेषु परस्परविरोधे समुपस्थिते कस्य प्रामाण्यं कस्य च बाधकत्वं केषांचाप्रामाण्यं बाध्यत्वम्, यत उभयोरप्यपौरुषेयत्वेन समानबलवत्वात्, नह्येकत्रैकस्य प्रामाण्यं बलवत्वं च तदपरस्याप्रामाण्यं दुर्बलत्वं वा वक्तुं शक्यम् । अपौरुषेयवा-क्यतयोभयोः समानत्वादित्याकारिकाशङ्कामपनेतुं प्रक्रमते परस्परविरुद्धापौरुषेयवाक्येषु इत्यादि । अयमाशयः-पुराणं तु दक्षादिपुरुषनिर्मितम्, एषु सात्विकादिभेदभिन्नेषु यदि

है, बौद्धों का पिटक एवं तत्वसंग्रह धर्मविन्दु प्रभृतिक जैनों का भगवतीसूत्र ठाणांग तथा सूत्राकृतांग प्रभृतिक। कणाद का वैशेषिकसूत्र भाष्यवृत्ति प्रभृति, अक्षपाद का न्यायसूत्र भाष्य प्रभृतिक, कपिल का सांख्यसूत्रभाष्य तत्त्वकौमुदी प्रभृति पतञ्जलि का योगसूत्र भाष्य मणिप्रभा प्रभृतिक स्मृतिग्रन्थ है, तथा वेद प्रमाण को माननेवालों का जो कुत्सिव दर्शन है भाष्य आदि ये सब मरणोपरान्त निष्फल हैं अर्थात् कुछ भी फल देने वाले नहीं हैं क्योंकि सब स्मृति ग्रन्थ तमोगुण तथा रजोगुण के बल पर अवस्थित विद्यमान हैं आधार को अशुद्ध होने से तदधिष्ठित ये सब स्मृति ग्रन्थ भी अव्यवस्थित हैं।

रजोगुण तथा तमो गुण से अस्पृष्ट सर्वोत्तम तत्वगुण जिन महानुभावों का स्वाभाविक गुण बन जाता है उसी व्यक्ति विशेष को वेदों में तथा वेदावलंवि ग्रन्थों में स्वाभाविक रुचि उत्पन्न होती है तथा संशय विपर्ययादि रहित यथार्थ रूप से वेदार्थ का परिज्ञान भी होता है किन्तु सकल साधारण व्यक्ति को न वेद में रुचि होती है न वा वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान ही होता है। इस बात को मत्स्यपुराण में कहा है-

'संकीर्णाः सात्विकाश्चैव राजसास्तामसास्तथा ।

यस्मिन् कल्पे तु मत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा ॥

तस्य तस्य तु महात्म्यं तत्तत्स्वरूपेण वर्ण्यते ।

अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्यते ॥

राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ।

रजोगुणतमोगुणाभ्यां विरहितं सत्वमात्रं स्वाभाविको गुणः। तदुक्तं मत्स्यपुराणे-'संकीर्णाः सात्विकाश्चैवराजसास्तामसस्तथा' इति। तत्र ये केचन बाह्यदृशास्तेसंकीर्णाः केचन सत्वप्रायाः केचन रजः प्रायाः,

परस्परं विरोधः समुपस्थितो भवेत्तदा सात्विकस्य पुरुषनिर्मितस्य याथार्थ्यम् प्रामाण्यं बाधकत्वं च अथ सात्विकभिन्नयो राजसतामसयोरयथार्थत्वमितिमत्वा तेषां विरोध उपशमयितव्यः। परन्तु परस्परविरुद्धवेदवाक्येषु परस्परविरोधे कथं स विरोधउपशमयितव्यः। तत्र कस्यचिद्वेदवाक्यस्य प्रामाण्यं कस्यचिदप्रामाण्यमिति वक्तुं न शक्यते, यतस्तदुभयोरप्यपौरुषेयत्वेन भ्रमप्रमादकरणादिपुरुषदोषानाघ्रातत्वात्। तदाऽपौरुषेयवेदयोः परस्परविरोधे स विरोधः कथं समनीय इति पूर्वपक्षाशयः। उत्तरयति तत्रापितात्पर्यनिर्णयेनाविरोधसंभवादितीति तत्रापि अपौरुषेयवाक्येऽपि परस्परं विरुद्धरूपेण प्रतिभासमानेऽपि तात्पर्यनिर्णयेन अर्थात् तदुभयोरविरुद्धार्थतात्पर्यवत्वेनाविरोधादिति। अयंभावः-परस्परविरुद्धतया प्रतीयमानयोर्वेदवाक्ययोस्तात्पर्यं परस्परविरुद्धार्थेषु न

सात्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकम् हरेः॥
तेष्वेवयोगसंसिद्धा गमिष्यन्ति पराङ्गतिम्।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते॥ इति॥

अस्यार्थः-जो यह विष्णु के नाभिकमल में समुत्पन्न हिण्यगर्भ ब्रह्माजी हैं उनका जो एक दिन है वह कल्प शब्द से कहा जाता है ये कल्प अनेक होते हैं क्योंकि एक वर्ष में ३ सौ ६५ दिन होते हैं, एक दिन में ४ हजार बार सत्यादिक चारों युग हो जाते हैं इसी प्रकार ४ हजार युग की रात भी होती हैं, एक हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का ब्रह्मा के प्रमाण से सौ वर्ष का आयुकाल होता है। सौ बर्ष के वाद दूसरे ब्रह्मा होते हैं और प्रथम ब्रह्मा अपने कार्य काल को समाप्त कर के परमपद को प्राप्त कर जाते हैं। ऐसा कहा है-

'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदमिति॥'

जो यह ब्रह्मा का एक दिन नामक कल्प कहा गया है वे अनेक प्रकार के होते हैं तथाहि कोई तो संकीर्ण कहलाते हैं जिसमें सत्वगुण रजो गुण तमो गुण का संकर रहता हैं। कई एक ब्रह्म कल्प सात्विक हैं इनमें सत्वगुण का आधिक्य रहता है। एवं कितने ब्रह्म कल्प राजस हैं, इनमें रजोगुण की प्रधानता रहती है। और कई ब्रह्म कल्प तामस कहलाते हैं, इन में तमोगुण की प्रधानता रहती है। सात्विक राजस और तामस कल्पों में ब्रह्ममें सत्वरजः प्रभृति गुण अधिक मात्रा में रहते हैं

केचन तमः प्रायाः एवं प्रकारेण ब्रह्मणो दिवसात्मककल्पस्य विभागं कथयित्वा सत्वरजस्तमोमयानां पदार्थानां माहात्म्यवर्णनं तत्तत्कल्पकथितपुराणेषु सत्वादिगुणवता ब्रह्मणा सम्पाद्यते, तथोक्तम्-'कस्मिन् कल्पे तु यत् प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा। तस्य तस्य तु माहात्म्य तत् तत्स्वरूपेण

मन्तव्यम्, अपितु परस्परमविरुद्धार्थेष्वेव तात्पर्यं तयोर्वाक्ययोर्मन्तव्यम्। एवं सति परस्परमविरुद्धार्थेषु तात्पर्यस्वीकारेण तयोर्वाक्ययोरविरोधसंभवात्। एवमेव विरुद्धार्थतया प्रतिभासमानवेदवाक्यस्थलेषु स्वीकर्तव्यमिति निर्णयोऽकारिमूलकारेण। याद्दशवेदवाक्यानां विरोधो नास्ति तेषां प्रामाण्यं सुव्यवस्थितमेव तत्र न किंचिद्वक्तव्यमवशिष्यते। यानि तु वेदवाक्यानि विरुद्धानि तानि यदि कर्मकाण्डान्तर्गतानि तदा तत्प्रतिपादितार्थयोर्विकल्पः स्वीकार्यः। यथा 'ब्रीहिभिर्यजेतयवैर्वायजेत' इत्यत्रयदेव-ब्रीहिकरणकयागेन लभ्यते तदेवफलं यवकरणकयागेनापि प्राप्तं भवेदिति तत्रेच्छाविकल्पः। अर्थात् तत्र यजमानेच्छैवनियामिका, यवेन यागं कुर्यात् ब्रीहिभिर्वायागं

। सात्विकादि कल्पों में सात्विकादिरूपों को धारण करने वाले ब्रह्मा के मुख से जो जो पुराण निकलते हैं वे वे पुराण भी तत्तत् कल्प के अनुसार सात्विक राजस और तामस बन जाते हैं। सात्विक प्रभृति कल्पों में सात्विकि ब्रह्मा के मुख से निकला हुआ सात्विक पुराणों में सात्विक देवों के महिमा या महात्म्य का वर्णन है। इसी तरह राजस तथा तामस कल्पों में राजस तथा बने हुए ब्रह्मा के मुख से निर्गत पुराणों में राजस एवं तामस देवों के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। इन सब का विवरण इस प्रकार है कि तामस कल्पों में निर्मित तामस पुरणों में अग्नि देव तथा शिव जी के महात्म्य का वर्णन विशेषरूप से वर्णन विशेषरूप से किया गया है राज कल्पों में निर्गत राजस पूराणों में ब्रह्माजी के महात्म्य का प्रधान रूप से वर्णन पाया जाता है। सात्विक कल्पों में आविर्भूत सात्विक पुराणों में भगवान् श्रीविष्णु के माहात्म्य का विशेषरूप से विवरण प्राप्त होता है। इन कल्पों में ही योगसिद्ध पुरुष परागति को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करते हैं। और जो संकीर्ण कल्प है (जिसमें सत्व रजस्तमस का समभाग होने से सांकर्य है, इस संकीर्ण कल्प में ब्राह्माजी के मुख से कथित संकीर्ण पुराणों में सरस्वती बाग् देवता, एवं अग्निष्वात्तादि अर्यमान्त पितरों के माहात्म्य का विशेषरूप से विबरण प्राप्त होता है मत्स्य पुराणोक्त विषयों का वर्णन किया जा सकता है) इस ब्रह्माण्ड में सर्व प्रथम उत्पन्न होने वाले हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी प्रथम जीव शरीरवान् हैं, ऐसा कहा है

'स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते'।

वर्ण्यते । विशेषरूपेणापि पुराणे कथितम्-'अग्नेः शिवस्यमाहात्म्यं तामसेषु प्रकीर्त्यते । राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः । सात्विकेषु च कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः । तेष्वेवयोगसंसिद्धा गमिष्यन्ति पराङ्गतिम् । 'संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणाम्' इत्यादि । अयमाशयः-ब्रह्मा हि

कुर्यात्, फलस्योभयप्राप्तिसमानत्वादिति विकल्पाश्रयणेन तत्र विरोधपरिहारस्तथोभयोः प्रामाण्यमपि सुव्यवस्थितमेव । यदि विरुद्धार्थप्रतिपादकं वेदवाक्यं वस्तुतत्वज्ञापकं तदा वस्तुनि विकल्पस्तु न संभवति, नहि घटादिपदार्थः पुरुषेच्छया कदापि पटो भवति पटो वा घटो भवति किन्तु घटो घट एव यतो वस्तुन एकरूपत्वात् तत्र तादृशवाक्यं विरुद्धमर्थं न प्रतिपादयति तत्प्रतिपादने तदीयतात्पर्यस्याभावात् परन्तु अविरुद्धार्थप्रतिपादने एव तयोस्तात्पर्यं मन्तव्यमिति कृत्वा तादृशवेदवाक्ययोरविरुद्धार्थ एव कर्तव्यः । तेन तत्रोभयोः प्रामाण्यस्य निर्वाहात् । एवं कृते सति न कुत्रापि वेदवाक्यानां विरोध आपतति, सर्वेषामपौरुषेयत्वात्प्रामाण्यं निर्वहति । अनेनप्रकारेण सर्ववेदवाक्यानामविरुद्धार्थे तत्तदीयतात्पर्यमुपवर्ण्यसर्वेषां प्रामाण्यं व्यवस्थापनीयं न कुत्रापि विरोधमुद्भाव्याप्रामाण्यं

आदिकर्ता स भूतनां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ इति ॥

अतएव ये ब्रह्माजी आदिक्षेत्रज्ञ जीव कहलाते हैं । इस ब्रह्माजी को किसी किसी दिन से सत्वगुण किसी दिन में रजो गुण एवं किसी दिन में तमेगुण बढ जाता है। क्योंकि गीता में श्रीकृण ने कहा है-

'न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तंयदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैरिति ॥

अयमर्थः-पृथिवी में अर्थात् भूलोक में मनुष्य प्रभृति में तथा दिव-द्युलोक में देवताओं में विशेष क्या कहना है ब्रह्माजी से लेकर के तृणादि स्थावर पर्यन्त सभी जीवराशियों में एतादृश जीव कोई भी नहीं है जो प्राकृतिक इन सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण से वंचित हो अर्थात् जो कोई भी प्राणी हैं वे सब के सब सत्वादिक गुणन्यतम गुण से ओतप्रोत हैं। इस ब्रह्माण्ड में जो कोई जीव हैं वे सब इन तीनों गुणों से युक्त ही रहते हैं, गुणत्रय शून्य होकर के नही रहते हैं। और उपनिषदों में भी इस प्रकार मे वर्णन किया गया है-

'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्राहिणोति तस्मै' अर्थात् जो परमात्मा सर्वप्रथम ब्रह्माजी को उत्पन्न करते हैं, तथा ब्रह्मा को उत्पन्न कर के उस ब्रह्मा को वेद का उपदेश देते हैं। इस

सर्वप्रथमो जीवस्तस्यकेषुचिदिवसेषु सत्वगुणस्याधिक्यं भवति, कस्मिंश्चिद्दिनेरजस आधिक्यम्, कस्मिंश्चिद्दिने तमो वर्द्धितं भवति । तथा चोक्तं श्रीकृष्णेनगीतायाम्-'न तदस्तिपृथिव्यां वा दिविदेवेषु वा

प्रदर्शनीयमिति ।

अथेतः पूर्वं जगदाचार्येण व्यवस्थापितं यत् वेदान्तसिद्धान्ते भगवान् श्रीसीतानाथ एव परमात्मा सर्वेश्वरः स एव मुमुक्षुभिर्ध्येयः प्राप्यश्च, अन्ये ब्रह्मशिवादिका अनीश्वरा एव । एवं वेदेष्वेवाथर्वशिखादिषु शिवस्येश्वरत्वं मुमुक्षुप्राप्यत्वंध्येयत्वं च निगद्यते । तदेतदुभयं कथं संभवति विरोधात् । न चोभयोरेवेश्वरत्वमस्तु ? अनुभवविरोधात्, शास्त्रविरोधाच्च । न च सिद्धे सर्वेश्वरतत्वे विकल्पः संभवति, विकल्पस्य सिद्धेऽनवकाशात्, क्रियास्वेव विकल्पप्रसरात् प्रयत्नसाध्ये वस्तुनि विकल्प इदं कर्तव्यमिदं वा कर्तव्यम् न तु सिद्धे तथा विष्णुर्वा परेशः शिवो वेति । किन्तु सर्वेश्वर एक एव तदत्र परस्परश्रुतिविरोधदर्शनात्, कथं विष्णोः परत्वमपितु शिवस्यैव तथा भवतु ? एतादृशसंशयं निराकृत्य 'राम एव परंब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो

वचन से यह स्पष्ट होता है कि भगवान् परमात्मा के द्वारा ब्रह्माजी की सृष्टि होती है, और ब्रह्माजी वेद शास्त्र के अधीन होकर के ही इतर जीवों की तरह चलनेवाले हैं, अत एव ब्रह्माजी को सृष्टि के आदि में ही वेद का उपदेश दिया गया है। इससे यह फलितार्थ होता है कि ब्रह्माजी भी एक जीव विशेष ही है एतादृश जो ब्रह्माजी है उन्होंने सात्विक कल्पों में बहुत पुराणों का प्रवचन किया अर्थात् उपदेश दिया हैं एवं राजस तथा तामस (दिनों) कल्पों में भी बहुत से राजस तामस पुरोणों का प्रवचन किया है । सात्विकादि कल्पों में ब्रह्मा निर्मित सात्विक राजसादि पुराणों में यदि परस्पर विरोध उपस्थित हो तब उस स्थल में ऐसा निर्णय करना चाहिये कि सात्विक दिन कथित सात्विक पुराण ही यथार्थ है सर्वथा प्रमाणरूप हैं जो कि सात्विक ब्रह्मा के दिन में सात्विक ब्रह्मा से उच्चरित होकर के सात्विक हैं। इन सात्विक पुराण से विरोध रखने वाले जो राजस तामस दिनोच्चरित राजस तामस पुराण हैं वे अयथार्थ अप्रामाणिक हैं। एतादृश निर्णय देने के लिये सत्वदिनावच्छिन्न सात्विक ब्रह्माजी ने सात्विक श्रीमत्स्य पुराण में उपर्युक्त विषयों का विस्तृतरूप से प्रतिपादन किया है। इससे उपर्युक्त निष्कर्ष ही निकलता है। सत्व गुण राजस तामस गुण क्या क्या कार्य करते हैं अर्थात् इन गुणों से कौन कार्य उत्पन्न होते हैं ? इस बात को श्रीभगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने युद्ध प्रस्ताव में कहा है-

सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।

पुनः । सत्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः ।' इति । तथा 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्राहिणोति तस्मै ।' इत्यादिश्रुतेः । ब्रह्मणोहिरण्यगर्भस्यापि जन्यत्वेन शास्त्राज्ञा पराधीनतया च जीवत्वमेवेतरजीववन्निश्चीयते । सत्वगुणाधिकदिवसेषु तदितररजस्तमः

ब्रह्मतरकम्' इत्याद्यथ-वंणीयप्रामाण्याच्छ्रीरामाख्यविष्णोरेव परमसिद्धान्तसिद्धं सर्वेश्वरत्वञ्च प्रतिपादनाय प्रक्रमते गत प्रकरणेन विष्णोरेव इत्यादि । तत्र शिवस्यैव सर्वेश्वरत्वप्रतिपादनाय तस्यैव सर्वापेक्षया प्रतिपादकाथर्वशिखोपनिषदं श्वेताश्वतरोपनिषदं च दर्शयति प्राणेत्यादि 'प्राण मनसि सह करणै र्नादान्ते परमात्मनि सम्प्रतिष्ठाप्यध्यायीत्तेशानं प्रध्यायितव्यम् । सर्वमिद ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सर्वे सम्प्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैः । न कारणं कारणानां धाताध्याता । कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरः शंभुराकाशमध्ये ।' अस्यार्थः-मनसि लीनैरिन्द्रियैः सह जीवात्मानम् प्रणवस्थार्धमात्रावसाने परमात्मनि सम्प्रतिष्ठाप्ये शानेशिवे साधको ध्यायीत, शिवस्यध्यानं कुर्यादित्यर्थः ।ईशान एवात्र ध्यातुं योग्यः । सम्पूर्णं चराचरं जगत् ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्राः समुत्पन्ना भवन्ति शिवादेव । तथेशानादेव

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी ॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽवृता ।
सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

अर्थात्-सत्वगुण से ज्ञान अर्थात् यथार्थज्ञान तद्वति तत्प्रकारकत्वरूप उत्पन्न होता है अर्थात् जिस समय में जिसके अन्तः करण में सत्वगुण का उद्रेक रहता है उस समय में उस व्यक्ति को यथार्थज्ञान ही होता है अयथार्थज्ञान नहीं होता है क्योंकि उस पुरुष के अन्तः करण में यथार्थ ज्ञान का कारण सत्व गुण विद्यमान रहता है और अयथार्थ ज्ञान का कारण तमोगुण नहीं रहता है। एवं रजोगुण से लोभ नामक कार्य उत्पन्न होता है अर्थात् लोभरूप कार्यरजोगुण का है। एवं तमोगुण से प्रमाद मोह तथा अज्ञान होते हैं अर्थात् अनवधान विपरीत ज्ञान तथा ज्ञान का अभाव उत्पन्न होता है अर्थात् संशय विपर्यय तथा ज्ञानाभाव की प्रमाको उत्पत्ति होती है।

प्रायेषु दिवसेषु हिरण्यगर्भेण ब्रह्मणा यानि पुराणानि कथितानि तेषां परस्परं विरोधे सति सात्विकदिनकथितसात्विकपुराणमेव प्रमाणम् । तद्विरोधितदन्यद्राजंसतामसपुराणं सर्वथान्यूनबलकमेवेति प्रबलेन दुर्बलस्य बाध इति बाधितवदयथार्थमितिपुराणनिर्णयायैवेदं सत्वनिष्ठेन

पञ्च भूतैः सहैव श्रोत्रादिकानि सर्वाणीन्द्रियाणि च समुत्पद्यन्ते तत एवेशानात् । ब्रह्मादयोध्याताश्च कारणस्य कारणं न भवति । सर्वस्य कारणं सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरः शम्भुरेव हृदयाकाशमध्येध्येयः ।

अस्मिन् अथर्वशिखावाक्ये ईशानस्यध्यानं कथितम्, ईशानशब्दश्च शिवस्य वाचकः, एवं शम्भोरपिध्यानं कथितम् । शम्भुशब्दोपि शिवस्यैव वाचकः । अत्राग्रेध्यानस्य मोक्षकारणत्वं प्रतिपादितम्, ब्रह्मध्यानेन मोक्षो भवतीति सर्वश्रुतिसम्मतः सिद्धान्तः । अनेनेदमायाति अत्र श्रुतिवाक्ये ईशानशम्भुशब्दाभ्यां यस्य शिवस्य ध्येयत्वं प्रतिपादितं तदेव परं ब्रह्मेति सिद्ध्यतीति ।

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्ति निवृत्ति कार्य अकार्य भय अभय तथा बन्ध और मोक्ष को यथावत् जानती है उसका नाम सात्विक बुद्धि होता है अर्थात्-जो बुद्धि स्वर्गादि का साधन यागादिक प्रवृत्ति धर्म को तथा भक्त्यादिक मोक्ष साधन निवृत्तिधर्म को यथावत् जानती है। तत्तत् देश काल तथा अवस्था विशेष में क्या कर्तव्य क्या कर्तव्य नहीं है इस बात का जिस बुद्धि के द्वारा निर्णय किया जाता है, शास्त्राज्ञा उलंघन करना भयस्थान है और शास्त्राज्ञा का पालन करना अभंय का कारण है इस विषय को जो बुद्धि जानती है एवं बन्ध पद वाच्य संसार के वास्तविक स्वरूप को तथा मोक्ष के वॉस्तविक रूप को जो बुद्धि यथावत् जानती है उसको सात्विक बुद्धि कहते हैं। यथा धर्ममधर्ममित्यादि, जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य पूर्वकथित प्रवृत्ति धर्म तथा निवृत्ति धर्म को तथा इन धर्म के प्रतिद्वन्द्वि अधर्म को यथावत् नहीं जान सकता है, एवं धार्मिक व्यक्ति को देशकाल अवस्था विशेष में क्या करना चाहियें क्या नहीं करना चाहिये इस तत्व को जो बुद्धि नहीं जान सकती है अर्थात् इन सब वस्तुओं को यथावत् जानने में असमर्थ रहती है एतादृश बुद्धि को राजस बुद्धि कहते हैं।

जो बुद्धि तमो गुण से आच्छादित होकर के धर्म को अधर्म समझती है तथा अधर्म को धर्म कर्तव्य बुद्धि विषय समझती है एवं सभी पदार्थों का जैसा प्रतिनियत स्वरूप है उससे विपरीत अन्यथा स्वरूप से समझती है (जिस तरह मण्डूक वशाञ्जन से लिप्त नेत्र वाला पुरुष सभी वस्तु को

हिरण्यगर्भेण कथितमिति निश्चीयते। सत्वादीनां कार्याणि श्रीकृष्णेन-गीतायां कथितम्-'सत्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च। प्रमादमोहौ

श्वेताश्वतरोपनिषदः प्रथममन्त्रे पुरुषस्यविष्णोःश्रेष्ठत्वं प्रतिपाद्य द्वितीयमन्त्रे तदन्यस्य ततोपि श्रेष्ठत्वं प्रतिपादयन् विष्णोर्भिन्नस्य सर्वश्रेष्ठत्वं प्रतिपादयति-

'यस्मान् परं नामरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्॥'

अस्यार्थः-यस्मात् नारायणशब्दाभिहितश्रीरामात् परमपरं वा तत्वान्तरं नास्ति यस्मात् अणीयः सूक्ष्मः ज्यायो महान् वा पदार्थान्तरं नास्ति यश्च दिवि वैकुण्ठे वृक्षवत् स्तब्धोऽनमन् तिष्ठति तेन पूरुषपदवाच्येन विष्णुना सर्वमिदं पूर्णम् व्याप्तमिति। 'ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्। य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवार्पयन्ति ततः तस्मात् पुरुषान्नारायणात् यदन्यत् श्रेष्ठतरं तत्वम् तत् रूपदोषाभ्यां विरहितम् एनं नारायणभिन्नं तत्वं ये जानन्ति ते मुक्ता भवन्ति, अथ ये तत्तत्वं न जानन्ति ते दुःखभाजो भवन्ति इत्यर्थः। अस्मिन् मन्त्रे नारायणादपि श्रेष्ठतरस्य तत्वान्तरस्य वर्णनं भवति। तत्तत्वान्तरं किमिति जिज्ञासायायामाह'-

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः॥ इति॥

सर्प ही सर्प समझता है यथा वा कामला रोगग्रस्त व्यक्ति सब पदार्थ को पीला ही देखता है उसी तरह जिस बुद्धि से पदार्थ मात्र को विपरीत रूप से देखता है।) उस बुद्धि को तामस बुद्धि कहते हैं इससे सात्विक राजस तामस करण से यथावत् कार्य का दिग्दर्शन कार्य का दिग्दर्शन कराया गया है विशेष अन्यत्र देखें।

इन वचनों से यह सिद्धि होता है कि सत्व गुण का उद्रेक रहता है उस दिन कल्प में ब्रह्माजी के द्वारा कथित पुराण यथार्थ है क्योंकि वह सात्विक है रजोगुण की अभिवृद्धि के दिन कल्प में ब्रह्माजी से कथित पुराण यथार्थ नहीं है एवं तमोगुण की अभिवृद्धि के दिन में तामस ब्रह्माजी से कथित तामस पुराण सर्वथा अयथार्थ है लेशतः भी तामस पुराण में प्रामाण्य नहीं हैं। अर्थात् सात्विक दिनोक्त पुराण सर्वथा यथार्थ प्रामाणिक हैं राजस दिन प्रतिपादित राजस पुराण कथञ्चित् प्रामाणिक है तमोपेक्षया, सत्वापेक्षया अयथार्थ है। तामस दिनोच्चरित तामस पुराण तो सर्वथैव अयथार्थ होने से आमान्य है इसमें लेशतः भी प्रामाणिकत्व नहीं है ऐसा जानना चाहिये।

ब्रह्माजी सभी पुराणों का प्रथमतः प्रवचन करते हैं, तदनन्तर पुराण प्रतिपादित अर्थ को प्राप्त

तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।' प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ! सात्विकी। यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ! राजसी।' अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः

अस्यार्थः-स शिवो मुखमस्तकग्रीवादिभिः सर्वथासम्बद्धः सर्वप्राणिगुहायामवस्थितः सर्वव्यापकः सर्वैश्वर्यसम्पन्नश्च तस्मात् सर्वव्यापकः शिव एवेति। अयं मन्त्रो नारायणादपि श्रेष्ठतरं तत्वं शिवनाम्ना कथयति। अनेनैतत् सिद्धं यत् शिव एव परंब्रह्म तदेव सर्वेभ्यः परतत्वम् नतु नारायणादिपरतत्वंध्येयं चेति।

श्वेताश्वतरेऽपरोपि मन्त्रः-

'यदा तमस्तन्नदिवा न रात्रिर्नसन्न चासच्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृतापुराणी॥'

अस्यार्थः-यदा तमो मात्रं मूलप्रकृतिरेवासीत् नो रात्रि नैव दिनम् यदा न मूर्तप्रपञ्चोऽमूर्तप्रपञ्चो वा तदा शिव एव केवलो बभूव, सचाविनाशीसूर्यमण्डले

करके पुराण कर्ता महर्षिलोग पुराणों का निर्माण करते हैं। यह बात विष्णु पुराण के प्रारभं में वर्णित जो प्रसंग है उससे इस अर्थ की पुष्टि होती है।

कथयामि यथा पूर्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः।
पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥

अर्थात् पूर्वकाल में दक्ष प्रभृति प्रजापतियों ने प्रश्न किया, उनके प्रश्नों का भगवान् के नाभिकमल से प्रसूत हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ने जैसा उत्तर दिया वैसा ही मैं आपलोगों से कहूंगा। इस वचन से सिद्ध होता है कि ब्रह्माजी से पुराण के अर्थों को सुनकर के ही दक्षादिमहर्षियों ने पुराणों को वनाया अर्थात् निर्माण किया है। अब इन पुराणों में परस्पर यदि विरोध उपस्थित हो तब उनमें सात्विक पुराण की ही मान्यता होगी राजस तामस पुराण को प्रामाणिक नहीं माना जायगा, इसलिये परस्पर विरोध नहीं होता है।

अब यह पूर्वपक्ष होता है कि पुराण सब तो पुरुष दक्षादि निर्मित हैं तो इन पुराणों में यदि विरोध उपस्थित हो तब सात्विक पुराण को प्रामाणिक मानकर और राजस तामस को अयथार्थ मानकर विरोध का समाधान किया जा सकता है परन्तु परस्पर विरुद्ध अपौरुषेय वेद वाक्य के विषय में विरोध का समाधान किस तरह होगा? क्योंकि वहां किसी वेद वाक्य को तो अयथार्थ कह नहीं

सा पार्थ ! तामसी । पूर्वकालिकपुराणकर्तार आचार्याः ब्रह्मणः सकाशात्पुराणार्थान् समधिगम्यैव सर्वाणि पुराणानि व्यातेनुः । तथाचोक्तम्-'कथयामि यथापूर्वंदक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः । पृष्टः प्रोवाच भगवा

स्थितोरमणीयो भजनीयश्च, अतएव सृष्टिसमये जीवानां ज्ञानस्रोतो बहतीति । अयं मन्त्रः प्रलयकाले पदार्थमात्रस्यासद्भावं प्रतिपाद्य केवलशिवस्य सद्भावं प्रदर्शयन् तस्य शिवस्य ब्रह्मत्वं साधयति । प्रलयकाले ब्रह्ममात्रस्य सद्भाव इति सर्वमान्यः सिद्धान्तः । एतावता प्रलयकालेष्यवस्थितः शिवः परब्रह्मेति सिद्धम् । उपर्युक्तवचनेन शिवस्यैव परमब्रह्मत्वं सिद्ध्यति न तदन्यस्य । भवद्भिस्तु विष्णोरेव तथात्वं साध्यते तत्कथमुभयोः न विरोधः सति विरोधे कथं तत्वसाधनमिति पूर्वपक्षाशयः ।

इतः पूर्वमथर्वशिखादिकतिपयश्रुतिषु कतिपयवचनं पुरस्कृत्येशानस्य ब्रह्मत्वं व्यस्थापितं नारायणस्य च परतत्वं निराकृतं पूर्वपक्षे । तदस्योत्तरं दातुमाह अत्रोच्यते इति अत्र यद्वक्तव्यं तत् न केवलं वेदान्तबलेनैव व्यवस्थापयितुं शक्यं किन्तु पूर्वमहर्षि प्रणीतस्मृतिपुराणेतिहासाद्युपबृंहितवेदबलेनापि व्यवस्थाप्यम् । अयं वेदराशिः स्मृत्याद्युपबृंहणेन सुव्यक्तमर्थं बोधयति ततश्च तादृशवेदबलेन परमकारणस्य निर्णयो जायते

सकते हैं क्योंकि सभी वेद वाक्य अपौरुषेय होने से यथार्थ ही हैं। इस पूर्व पक्ष का निराकरण, करने के लिये उपक्रम करते है। '**परस्परविरुद्धाऽपौरुषेयवेदवाक्येषु**' इत्यादि। परस्पर विरुद्ध अपौरुषेय वेद वाक्य में विरोध का समाधान किस तरह होगा ? ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि वहां अपौरुषेय वेद वाक्य में भी तात्पर्य निर्णय से अविरोध हो सकेगा । अर्थात् परस्पर में विरुद्ध के समान प्रतिभासित होने वाले वाक्यों का तात्पर्य परस्पर विरुद्ध अर्थ के विषय में नहीं माना जाता है किन्तु परस्पर अविरुद्ध अर्थों में उन वाक्यों का तात्पर्य माना जाता है और परस्पर अविरुद्ध में तात्पर्य होने से विरोध का समाधान हो जयगा। यहां मूल का अभिप्राय ऐसा है कि जो वेद वाक्य परस्पर में विरोध नहीं रखते हैं वे तो सम्पूर्णरूप से प्रमाण हैं। जो वेद वाक्य परस्पर विरुद्ध देखने में आते हैं तो यदि वे कर्म काण्ड वाक्य हैं तब उनके प्रतिपाद्य अर्थों में विकल्प कर देना चाहिये ब्रीहि यव करणक याग की तरह। यदि वस्तुतत्व को कहने वाले वेद वाक्य हैं तब उनको परस्पर विरुद्ध अर्थ बतलाने में तात्पर्य नहीं है किन्तु अविरुद्ध अर्थ के बतलाने में तात्पर्य है ऐसा मानकर के विरोध का समाधान हो जाने से वेदमात्र का प्रामाण्य सुव्यवस्थित रहता है। इति संक्षेपः ।

इसके पूर्व प्रकरण तक के प्रकरणों में आचार्यजी ने कहा है कि वेदान्त सिद्धान्त में भगवान्

नब्जयोनिः पितामहः । इतिपरस्परविरुद्धापौरुषेयवाक्येषु कथमविरोध इति चेत् तत्रापि तात्पर्यनिर्णयेनाविरोधसंभवात् ।

॥ शिवस्यपरत्वशङ्का ॥

गतप्रकरणेन श्रीरामाख्यविष्णोरेव सर्वपरत्वं व्यवस्थितं तन्न युक्तम्-अथर्वशिखादिषु शिवस्यैव परतत्वतया व्यवस्थानादिति तदनयो

यत् सर्वेश्वरभगवान् श्रीराम एव परंब्रह्म तदेव जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानम् 'राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः । राम एव परंतत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्' 'इदं सत्यमिदं सत्यं सत्यमेतदिहोच्यते । रामः सत्यं परब्रह्म रामात् किञ्चिन्नविद्यते' इत्यादिश्रुतिस्मृत्युक्तेः । **न तु शिवब्रह्मादिकाः परमकारणम् एतत्सर्वं बोधयितुमुपक्रमते** वेदेषु निष्णातमहर्षिग्रथितेत्यादि । **नामरूपाभ्यां व्याकृतस्य चराचरस्य किं कारणं तत् दर्शयितुं व्याससूत्रमुदाहरति** जन्माद्यस्ययतः अस्यानेकविधस्य जगतो जायमानपदार्थमात्रस्य यतः सर्वज्ञात् सर्वेश्वरात् जन्मादिर्भवति, जन्मस्थितिप्रलया भवन्ति तन्मूलकारणं ब्रह्म इति ब्रह्मणो लक्षणम् । अमुमेव लक्षणं **श्रुतिवचनेन पुष्णाति** यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति

श्रीसीतानाथ ही सर्वेश्वर परब्रह्म परमात्मा माने जाते हैं वे ही ध्येय प्राप्य तथा मोक्ष प्रद हैं, यह सर्व वेदान्त का समन्वय करने पर फलित होता है तदितर ब्रह्मा प्रभृतिक सब जीव अनीश्वर हैं। परन्तु वेद में किसी किसी स्थल में श्रीशिवजी को भी ईश्वर ध्येय तथा प्राप्य बतलाया है तथा तज्ज्ञान को मोक्ष का कारण भी कहा है। अब यहां संशय होता है कि किसको ईश्वर माने ? शिवाजी को अथवा विष्णु को माने ? इस में किसी एक को ही ईश्वर मान सकते हैं दोनों को नहीं क्योंकि जगत् में दो ईश्वर नहीं हो सकते शासक एक होता है एक बन में एक ही सिंह राजा होता है दो नहीं। ईश्वर में विकल्प नहीं हो सकता है क्योंकि ईश्वर सिद्ध वस्तु है जैसे घट कभी घट है कभी पट है ऐसा नहीं होता। कर्तव्य वस्तु जो पुरुष प्रयत्नाधीन है उसमें विकल्प होता है यथा '**यवैर्यजेत ब्रीहिभिर्वा**' यहां पुरुषेच्छाधीन होने से विकल्प होता है। सिद्धनें विकल्प नहीं होता है । अब इन दोनों को मानने में दोनों वचन का विरोध होता है तब विष्णु को परमेश्वर कैसे मानते हैं । अपितु शिवजी ही ईश्वर हैं ? इस शंका को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं '**गत प्रकरणेन विष्णोरेवेत्यादि** ।' जिस वचन से शिवजी परमतत्व सिद्ध होते हैं उस अथर्व शिखोपनिषद् वचन का उद्धरण देते हैं पूर्वपक्षी 'प्राणम्' इत्यादि ।

विरोधः कथं परिहरणीयः । तथाहि-'प्राणं मनसि सह करणैर्नादान्ते परमात्मनि सम्प्रतिष्ठाप्यध्यायीतेगानं प्रध्यायीतैवं सर्वमिदम् ब्रह्मविष्णु-रुद्रेन्द्रास्ते सर्वे सम्प्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैः । न कारणं

तद्विजिज्ञासस्वतद्ब्रह्म यस्मात् सर्वशक्तिसमन्वितात् परमपुरुषात् श्रीसीतानाथात्, इमानि सर्वभूतानि चराचराणि जायन्ते समुत्पद्यमानानि भवन्ति, समुत्पन्नानि यद्बलेन प्राणधारणं स्थितिं लभन्ते, पुनश्च प्रलयकाले यस्मिन् लीयमानानि भवन्ति एतादृशं यत् कारणं तस्य विजिज्ञासा कर्तव्या तदेव ब्रह्मेतिश्रुत्यर्थः । एतावता यत् जन्मादिकारणं तदेव ब्रह्मेति ब्रह्मणो लक्षणं वेदेन प्रतिपादितम् भवतीति । एतदेव लक्षणं ब्रह्मणः सृष्टिप्रलयप्रकरणे छान्दोग्यस्य षष्ठाध्याये सम्यग् रूपेणावगतं भवति । सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम् हे सोम्यश्वेतकेतो ! इदं परिदृश्यमानं नामरूपाभ्यांविभक्तमग्रे सृष्टेः पूर्वकाले प्रलये एकमेवाद्वितीयमासीदित्यर्थः । अत्र वाक्ये जगत उपादानत्वजग-न्निमित्तत्वजगदन्तर्यामित्वप्रतिपादनमुखेन सत्पदेन कारणीभूतं ब्रह्मप्रतिपादितं भवतीति । अनेन प्रकारेण परमकारणस्य सत्पदवाच्यतां प्रतिपाद्य तस्यैव परमकारणस्य

'प्राणं मनसि सह करणैर्नादान्ते परमात्मनि संप्रतिष्ठाप्यध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम् । सर्वमिदं ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैः न कारणं कारणानां धातध्याता । कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्य संपन्नः सर्वेश्वरः शंभुराकाशमध्ये ॥' अस्यार्थः-मन में वृत्ति द्वारा प्रलीयमान चक्षुरादिक ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय के साथ साथ प्राण अर्थात् जीवात्मा को प्रणव ओंकार के अर्धमात्रा के अवसान में परमात्मा में प्रतिष्ठित स्थित कर के ईशान शिवजी का ध्यान करना चाहिये। ईशान पद वाच्य शिवजी ही ध्येय पदार्थ हैं। तथा यह संपूर्ण चराचर जगत् ब्रह्मा विष्णु रुद्र तथा महेन्द्रादिक इसी ईशान से उत्पन्न होने हैं, एवं पृथिव्यादि पंच महाभूतों के साथ साथ उभय प्रकारक ज्ञानेन्द्रिय तथा वागादिक इन्द्रियगण इसी ईशान से उत्पन्न होते हैं । धाता ब्रह्मा तथा ध्याता ध्यान करनेवाला साधक भी कारणों का कारण नहीं हैं, इन सब का कारण बननेवाले सब प्रकार के ऐश्वर्य से सर्वदायुक्त सर्वेश्वर शंभु भगवान् हृदयाकाश के बीच अन्तर में ध्यान करने के लायक हैं । इस वाक्य में जो अथर्वशिखा का मन्त्र है इसमें शंभु शिव को ही ध्यान करने के लिये कहा गया है ईशान शब्द शिव का वाचक है तथा शंभु शब्द भी शिव का ही वाचक है । इसी उपनिषद् में आगे चलकर के कहा है कि यह ईशान का ध्यान मोक्षप्रद है ब्रह्मध्यान से मोक्ष होता है यह बात सर्व श्रुति संमत हैं

कारणानां धाताध्याता । कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरः शम्भुराकाशमध्येयः' 'यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मादणीयो न

ब्रह्मपदप्रतिपाद्यत्वं भवतीति दर्शयितुं शाखान्तरीयं वचनमुदाहरति ब्रह्म वा इदमेकमग्रे आसीत् इदं जगत् अग्रे सर्गस्यपूर्वं प्रलयकाले एव ब्रह्मरूपमेवासीदभवदित्यर्थः । एतावता यत् जगत्कारणं छान्दोग्ये सत्पदवाच्यमिति प्रतिपादितं तद्ब्रह्मैव अर्थात् ब्रह्मैव परमकारणम् । स्वयं सर्वव्यापकमन्यस्य बर्द्धकं यत् तद्ब्रह्म एतेन जगत्कारणं न परमाणुस्तस्य सूक्ष्मत्वेन व्यापकत्वाभावात् ।

यदिदं जगत्कारणं सत्ब्रह्मपदाभ्यां कथितं तत् चेतनमचेतनं वेति संशयं निराकर्तुं परमकारणे चेतनत्वमवबोधयितुं शाखान्तरीयं वचनमुदाहरति-आत्मा वेत्यादि इदं जगत्प्रलयकाले आत्मरूपेण वर्तमानमासीत् आत्मव्यतिरिक्तं वस्त्वन्तरं न तदासीदित्यर्थः ।

'तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति' 'तरतिशोकमात्मवित्' इत्यादि । इससे यह फलित होता है कि अथर्वशिखोपनिषद् में ईशान तथा शंभु शब्द से जिस शिवजी को ध्येयतत्व कहा गया है वह शिवतत्व ही परब्रह्म है तदन्य कोई भी परब्रह्म नहीं है अपितु शिवजी ही परमब्रह्म सिद्ध होते हैं ।

इसी तरह श्वेताश्वतर उपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्रों से भी सिद्ध होता है कि शिवजी नारायणादि देवों से भी श्रेष्ठ हैं उस में प्रथम मन्त्र में पुरुष पद वाच्य विष्णु को सर्व श्रेष्ठ बतलाया जाता है-

'यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किञ्चित् ।
वृक्ष इवस्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥'
'ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।
य एतद्विदुरमृतास्तेवन्ति अथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥'
सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥ इति ।

अर्थात् जिस नारायण पुरुष से अन्य दुसरा कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं है तथा जिस नारायण से बढकर अतिसूक्ष्म कोई भी पदार्थान्तर नहीं है एवं जिस पुरुष की अपेक्षया वृद्धि प्राप्त अन्य कोई पदार्थान्तर नहीं है जो पुरुष दिवि-द्युलोक वैकुण्ठ लोक में वृक्ष के समान स्तब्ध निश्चल है अर्थात् वृक्ष जिस तरह किसी के सामने झुकता नहीं है, उसी तरह जो पुरुष निश्चल है। एतादृश नारायण पुरुष से यह संपूर्ण विश्व व्याप्त है। इस प्रकार से इस प्रथम मन्त्र में नारायण पुरुष के माहात्म्य का वर्णन

ज्यायोऽस्ति कश्चित् । वृक्ष इवस्तब्धोदिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् । ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति । अथेतरे दुःखमेवापियन्ति । 'सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।

अत्र सत्पदाभ्यां यत्कारणं प्रतिपादितं तदात्मरूपमेव, आत्मा च चेतन एव नाचेतन इति परमकारणेऽचेतनत्वं प्रतिषिध्य शाखान्तरीयवचनेन चेतनत्वं परमकारणे व्यवस्थापितम् ।

ननु तत् जगत्कारणं चेतनतत्त्वं जीवो वा परेशो वा यत उभयोरपि चेतन पदवाच्यत्वादिति संशयं निराकर्तुं शाखान्तरीयं महोपनिषद्वचनमुदाहरति एकोह वै नारायण आसीन्नब्रह्मानेशानो नेमेद्यावा पृथिवी न नक्षत्राणीति तदा प्रलयकाले एको नारायण एवासीत् तदानासीत् ब्रह्मा नासीत् ईशानः शिवः पृथिवी द्युलोकादयो नासन् न वा नक्षत्रादिकान्यासन् इत्यर्थः । एतावता ज्ञायते यद् सूत्रोपर्युक्तश्रुत्यादिना सत ब्रह्म आत्मादिपदबोधितो नारायणो

किया गया है । इस प्रकार नारायण के महत्त्व का वर्णन कर के द्वितीय मन्त्र में कहते हैं कि उपर्युक्त पुरुष नारायण से जो अत्यन्त श्रेष्ठतर तत्व है वह सर्वश्रेष्ठतत्व रूपस्पर्शादिरहित है तथा सभी हेय दोषो से रहित है जो उपासक इस परतत्व का साक्षात्कार ध्यान द्वारा करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं अर्थात् संसार दुःख से विनिर्मुत हो जाते हैं और जो व्यक्ति इश परम तत्व को नहीं जानते हैं वे लोग सर्वदा दुःख को प्राप्त करते हैं अर्थात् नारायण से भी उत्कृष्ट जो परमतत्व है उसका ज्ञान ही मोक्षप्रद है अन्य का ज्ञान मोक्षप्रद नहीं है प्रत्युत संसार गर्त में गिरानेवाला है । इस द्वितीय मन्त्र में यह बतलाया कि प्रथम मन्त्र प्रतिपादित नारायणादि तत्वापेक्षया कोई पदार्थान्तर श्रेष्ठ है ।

वह तत्व कौन है ? जो नारायणापेक्षा श्रेष्ठ है ? इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिये तृतीय मन्त्र का अवतरण होता है-'**सर्वाननशिरोग्रीव**' इत्यादि ।

वह द्वितीय मन्त्र वर्णित शिवजी शंभु भगवान् मुखमस्तक और ग्रीवाओं से युक्त हैं प्राणी मात्र के हृदयाकाश के मध्य में विराजमान रहते हैं वे शिव सर्व व्यापक हैं षड् गुणैश्वर्य से सर्वदा सुशोभित हैं इसलिये सर्वगत सर्व व्यापक हैं । 'इस तृतीय मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि नारायणादिकों से श्रेष्ठरूप से प्रतिपाद्यमान जो परमतत्व है वह भगवान् शंभु है वही परब्रह्म सर्वेश्वर है तथा ध्येय मोक्षप्रद है । एतदन्य नारायणादि परब्रह्म सर्वेश्वर नहीं हैं न वा ध्येय तथा मोक्षप्रद हैं । श्वेताश्वतर में यह भी मन्त्र उपलब्ध है-

'यदातमस्तन्नदिवा न रात्रि र्न सन्न चासच्छिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ॥'

अस्यार्थ-जिस समय में केवल-अन्धकार था अर्थात् मूल प्रकृति ही थी, दिन रात का

सर्वव्यापी च भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः' 'यदातमस्तन्नदिवा न रात्रिर्नसन्नासच्छिव एव केवलः । तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृतापुराणी' इत्यादि । भवद्भिश्च पूर्वं विष्णुरेव परंब्रह्म इति

जगत्कारणम्, नेमे ईशानादयः कारणं च प्रलयकालेप्यवतिष्ठते, अन्यथा जायमानपदार्थपूर्ववृत्तित्वाभावेन तस्मिन् कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वरूपं कारणत्वमेव न स्यात् ईशानादयश्च न प्रलयावस्थायिनस्तेषामुत्पत्तिश्रवणात् । किं च नारायणशब्दः संज्ञाशब्दत्वाद् व्यक्तिविशेषस्य वाचकः ततश्च 'भवान् नारायणोदेवः' शेषी चाथनिमित्तं चोपादानं जगतोऽस्य हि । महाविष्णुर्निराधारो रामोब्रह्माखिलेश्वरः । रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्देचिदात्मनि । इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते । राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः । राम एव परंतत्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम् । अनयोनरवृन्दस्य तस्मान्नारायणो हि सः । सर्वत्र व्यापकत्वात्सविष्णुत्वेन प्रभाष्यते । विश्वरूपस्य ते राम ! विश्वे शब्दा हि वाचकाः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रतिपादितदिशा श्रीरामाख्यनारायण एव जगत्कारणं ब्रह्मेति । यद्यपि- 'जन्माद्यस्य यतः' इति 'यतो वेत्यादिश्रुतिभिः सामान्यरूपेण सत्ब्रह्म आत्मादिपदेन कथितं जगत्कारणं विभिन्नश्रुतिषु प्रतिपादितम् तथापि यथा मीमांसायाम्-'पशुना यजेत' इत्यत्र लोमलाङ्गूलावच्छिन्नः पशुस्तु छागादतिरिक्तोन्योऽपि ततस्तेनापियागकरणं प्राप्तम्, परन्तु- 'अजैर्यष्टव्यम्' 'छागस्यवपाश्च' इत्यादिमन्त्रप्रतिपादितपशुविशेषरूपछागस्य पशुविशेषस्य ग्रहणं कृत्वा ते ते पशुविशेषछागेनैव यागः सम्पाद्यते, तत्र पशुसामान्स्यछागरूपपशुविशेषे

व्यवहार सत् पृथिवी जल और रजोरूप मूर्तप्रपञ्च नहीं था और असत् वायु आकाश लक्षण अमूर्त प्रपञ्च भी नहीं था उस समय में केवल एक श्रीभगवान् शिवजी मात्र थे । यह शिवजी महाराज सर्वथा नाशरहित हैं एवं आदित्य मण्डल में अवस्थित रमणीय एवं भजनीय वस्तुतत्व यही शिवजी हैं, इन शिवजी से सर्गकाल में जीवों का ज्ञान स्मण सदा से होता आरहा है । यह श्रुति वचन शिवेतर अन्य पदार्थों का प्रलयकाल में विनाश प्रतिपादन करके केवल शिवजी का उसकाल में सद्भाव का प्रतिपादन करता है । और प्रलयकाल में ब्रह्म एक ही रहता है ऐसा सव वेदान्ती मानते हैं । प्रलयकाल में सब का विनाश हो जाने पर भी सर्वदा अवस्थित शिवजी परब्रह्म हैं ऐसा सिद्ध होता है । और सिद्धान्त में तो आपलोग विष्णु को परब्रह्म सिद्ध करते हैं श्रुतिवाक्य के बल से, तब दोनों श्रुतिवाक्यों में परस्पर विरोध होता है तब समन्वय किस प्रकार से होगा तथा विरोध होने से विष्णु में परब्रह्मत्व नहीं होता है किन्तु शिवजी की परब्रह्मत्व की सिद्धि होती है । ऐसा पूर्वपक्षी का अभिप्राय है ।

व्यवस्थापितमित्युभयोर्विरोधः कथं परिहरणीय इति चेत्-

ꁾ शिवपरत्वशंकानिराकरणम् ꁾ

अत्रोच्यते-वेदेषु निष्णातमहर्षिग्रथितस्मृतिपुराणेतिहासादिभिः

नित्यानन्देचिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। राम एव परंब्रह्म राम एव परंतपः। राम एव परंतत्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्। अनयोनरवृन्दस्य तस्मान्नारायणो हि सः। सर्वत्र व्यापकत्वात्सविष्णुत्वेन प्रभाष्यते। विश्वरूपस्य ते राम! विश्वे शब्दा हि वाचकाः' इत्यादिश्रुतिस्मृतिप्रतिपादितदिशा श्रीरामाख्यनारायण एव जगत्कारणं ब्रह्मेति। यद्यपि-'जन्माद्यस्य यतः' इति 'यतो वेत्यादिश्रुतिभिः सामान्यरूपेण सत्ब्रह्म आत्मादिपदेन कथितं जगत्कारणं विभिन्नश्रुतिषु प्रतिपादितम् तथापि यथा मीमांसायाम्-'पशुना यजेत' इत्यत्र लोमलाङ्गूलावच्छिन्नः पशुस्तु छागादतिरिक्तोन्योऽपि ततस्तेनापियागकरणं प्राप्तम्, परन्तु-'अजैर्यष्टव्यम्' 'छागस्यवपाश्च' इत्यादिमन्त्रप्रतिपादितपशुविशेषरूपछागस्य पशुविशेषस्य ग्रहणं कृत्वा ते ते पशुविशेषछागेनैव यागः सम्पाद्यते, तत्र पशुसामान्यछागरूपपशुविशेषे एव पर्यवसानम्। तद्वत् प्रकृते 'सदेव सोम्येत्याद्यनेकश्रुत्या सामान्यरूपेणोपस्थितं वस्त्वेव जगत्कारणविशेषरूरेण गृह्यते 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्त्वं

सिद्धान्त में तो आपलोग विष्णु को परब्रह्म सिद्ध करते हैं श्रुतिवाक्य के बल से, तब दोनों श्रुतिवाक्यों में परस्पर विरोध होता है तब समन्वय किस प्रकार से होगा तथा विरोध होने से विष्णु में परब्रह्मत्व नहीं होता है किन्तु शिवजी की परब्रह्मत्व की सिद्धि होती है। ऐसा पूर्वपक्षी का अभिप्राय है।

इसप्रकार का जो प्रश्न है उसका उत्तर देने के लिये उपक्रम करते हैं-**'अत्रोच्यते'** इत्यादि, अब यहां पूर्व वर्णित प्रश्न का उत्तर दिया जाता है। केवल वेद से वेदार्थ सुस्पष्ट नहीं होता है किन्तु वेद में निष्णात पारंगत पूर्वाचार्य महर्षिलोग हैं उन लोगों से निर्मित जो स्मृति पुराण इतिहासादिक सात्विक ग्रन्थ हैं उन ग्रन्थों के सहकार से सुव्यक्त है अर्थ जिनका ऐसा जो वेदराशि वे वेदराशि भगवान् श्रीसीतानाथजी को जो कि नारायण विष्णु प्रभृति शब्दों से प्रतिपादित होते हैं उन्हीं को वेद जगत् का कारण ब्रह्मरूप में प्रतिपादन करते हैं। किस प्रकार वेद से भगवान् प्रतिपादित होते हैं? इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं तथाहि **'जन्माद्यस्य यतः'** इत्यादि। अर्थात् वेदज्ञानवान् प्राचीन विद्वानों के द्वारा संपादित स्मृति पुराण और इतिहासादिरूपी वाक्य तथा मीमांसा से सहकृत होनेवाले अर्थात् सुस्पष्ट अर्थ को बतलाने वाले वेदगण सर्वेश्वर श्रीराम को ही जगत् जन्मादि का कारण कहते हैं। जगत् का जन्मादि कारण कौन है? ऐसी जिज्ञासा के उत्तर में सूत्रकार कहते हैं-

सुव्यक्तार्थकाः वेदा भगवन्तं श्रीसीतानाथं विष्णुनारायणादि पदप्रतिपाद्यमेव जगत्कारणमिति प्रतिपादयन्ति। तथाहि-'जन्माद्यस्य यतः' इतिसूत्रम्।'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जानाति जीवन्ति

श्रीरामो ब्रह्म तारकम्।' 'एको ह वै' इत्यादीतरबाधसहकृतश्रुत्येति। तस्मात् श्रीरामाख्यनारायण एव जगत्कारणं परं ब्रह्म, तस्यैव विजिज्ञासा प्रकृता स एव मुमुक्षुप्राप्यस्तज्ज्ञानं भक्तिरेव मोक्षोपायो न तु शिवादयो ब्रह्मपदबोध्याजगत् कारणं न वा तदीयभक्त्यादिकंमोक्षोपाय इति। विशेषोऽवधातव्योऽन्यश्रीसाम्प्रदायिकव्याख्यानग्रन्थेभ्य इति संक्षेपः।

तैत्तिरीयारण्यकस्य षष्ठप्रश्नरूपेण नारायणोपनिषदः पाठः, ततोपि सवेश्वरश्री रामस्यैव परमब्रह्मत्वं सर्वकारणत्वं च सिद्ध्यतीति दर्शयितुमुपक्रमते अपिच इत्यादि। स एव परमतत्वं नान्य इति। वक्ष्यमाणप्रकारेण वर्णनमिति दर्शयति यमन्तः समुद्रे इत्यादि, 'यमन्तः समुद्रे कवयोऽवयन्ति' सूक्ष्मतत्वस्य दर्शनशीला महापुरुषा जगतः कारणीभूतं परमतत्वं श्रीरामं समुद्राभ्यन्तरेशेषशय्यायां शयानं जानन्ति शेषे शयनशीलो 'त्वंहि नारायणः

'जन्माद्यस्य यतः' इस सूत्र से ब्रह्म का लक्षण कहा गया, अर्थात् जो जगत् के जन्मादि का कारण है वह ब्रह्म हैं। इसी लक्षण को श्रुति भी कहती है-**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** इत्यादि। जिससे भूतों की उत्पत्ति स्थिति होती है तथा जिसमें प्रलयकाल में प्रलय होता है उसकी जिज्ञासा करो वह ब्रह्म है ऐसा लक्षण कहा गया है। अव संशय होता है कि ऐसा कौन है? इसका उत्तर सृष्टि प्रलय प्रकरण से ज्ञात होता है। यह प्रकरण सद्विद्या में-छान्दोग्य के षष्ठाध्याय में कहा है-**'सदेव सोम्येदमग्रे आसीत् एकमेवाद्वितीयम्'** हे श्वेतकेतो! यह जगत् सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में नामरूप विभागराहित्य को प्राप्त करके अद्वितीय सत् बन करके था। इस वाक्य में जगत् का जो मूलकारण है वह सत् शब्द से कहा गया है। वह परम कारण सत् 'एक' पद से उपादान कारण 'अद्वितीय' पद से निमित्त कारण तथा 'जगत् सत् था' इस कथन से अन्तर्यामी कहा गया है।

यद्यपि सत् पद से जडतत्व, जीव, तथा परमात्मा इन तीनों का बोध हो सकता है तब सत् पद ब्रह्म का ही बोधक है ऐसा निश्चय नहीं होता है? इस शंका का निराकरण करने के लिये शाखान्तरीय वचन बतलाते हैं **'ब्रह्म वा इदमग्रे आसीत्'** अर्थात् यह जगत् काल में एक ब्रह्म के रूप में था। इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि जो जगत् कारण पहले सत् पद से कहा गया है वह ब्रह्म है जो बडा हो तथा सब को बढानेवाला हो वह ब्रह्म कहलाता है। इससे परमाणु में जगत्

यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति सद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म' अनेन जगतो जन्मादिकारणं परंब्रह्मावगतं भवति । तत्सद्विद्याप्रकरणे ज्ञातव्यम् । 'सदेवसोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इति ॥ एतदेवान्यत्र 'ब्रह्म

श्रीमान् त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । त्वं प्रभुः सर्वदेवानां पुरुषस्त्वं सनातनः' श्रीमद्रामायणे (७।७६।२९) श्रीअगस्तिवचनेन तत्रैव 'विष्णुं त्रिभुवनेशानं मुहुर्मुहुरपूजयन् । त्वंगतिपरमेशानपूर्वजो जगतः पिता । रक्षार्थं सर्वभूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' (७।८५।१७-१८) इत्यादीन्द्रादिवचनेन तथा 'संक्षिप्यहि पुरा लोकान् मायया स्वयमेव हि । महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः । पद्मेदिव्येऽर्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्यमामपि । प्राजापत्यं त्वया कर्म मयि सर्वं निवेशितम् । ततस्त्वमसिदुर्धर्षात् तस्माद् भावात्सनातनात् । रक्षांविधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' (७।१०४।४-७-९) इत्यादिरूपेण ब्रह्मणोक्तदिशा श्रीराम एवेति श्रीमद्रामायणलोकयोः प्रसिद्धि एतावता सिद्ध्यति यत्

कारणता का निराकरण होजाता है क्योंकि परमाणु अति सूक्ष्म है । इतना निश्चय होने पर भी पुनः संशय होता है कि वह कारण पदार्थ चेतन है अथवा अचेतन है । क्योंकि जड प्रकृति भी तो बडी है तथा स्वकार्य को बढाती है । इसका समाधान करने के लिये पुनः शाखान्तरीय वचन का उद्धरण देते हैं-'**आत्मा वा इदमेक एवाग्रे आसीत् नान्यत् किंचनमिषत्**' अर्थात् यह जगत् प्रलय सृष्टि पूर्वकाल में एक आत्मा के रूप से बना था। आत्मा को छोड कर के क्रियाशील अन्य कोई भी पदार्थ नहीं था । चेतन ही आत्मा कहा जाता है । इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि जो वह जगत् उत्पत्यादिकी का कारण सत् तथा ब्रह्म शब्द से कहा गया है वह आत्मा है अनात्मा नहीं है अर्थात् चेतन है। इससे जड में जगत्कारणत्व का अर्थात् अभिन्न निमित्तोपादानत्वरूपकारणता का निराकरण होता है। जगत्कारण पदार्थ में सत्व ब्रह्मत्व और चेतनत्व विशेषण देने पर भी संशय होता है कि एतादृश चेतन जगत् का कारण है परन्तु चेतन तो जिस प्रकार परमात्मा है उसी तरह चेतन जीव भी तो है उसमें भी जगत् कारणत्व सिद्ध होता है परन्तु वह तो प्रत्यक्ष तथा श्रुतिआदि वाधित है। इसमें जीव को व्यावृत्त कर के परमात्मा सर्वेश्वर सीतानाथजी में जगत्कारणता को सिद्ध करने के लिये महोपनिषद् वचन का उद्धरण देते हैं '**एकोह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मानेशानो ने मे द्यावापृथिवी न नक्षत्राणि ।**' अर्थात् सर्ग के पूर्व प्रलयकाल में एक श्रीरामरूप नारायण ही थे, उस प्रलय में सब के अभाव काल में चतुर्मुख हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी नहीं थे शिवजी ईशान भी न थे, एवं यह द्यु लोक अन्तरिक्ष लोक तथा पृथिवी लोक नहीं थे, नक्षत्र तारा ग्रहण भी नहीं थे।

वा इदमेकमेवाग्रे आसीदिति शाखान्तरे ब्रह्मशब्देन कथितम् । पुनश्चशाखान्तरे'आत्मा वा इदमेक एवाग्रे आसीत् नान्यत् किंचनमिषत्' इति । पुनरपि शाखान्तरे 'एकोह वै नारायण आसीन्न ब्रह्मानेशानो

भगवान् **श्रीराम** एव तत्प्रकरणे वर्णितः । तदग्रे प्रतिपादितम् 'सर्वेनिमेषाजज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधिः' तत्र निमेषाः कालस्यावयवाः । इदमुपलक्षणम् सर्वे जायमानाः पदार्थाः, विद्युत् एव देदीप्यमानपुरुषादेव संजातः' इत्यर्थः । अयं विद्युत्प्रभो भगवान्नेव । एवम् 'आदित्य**वर्णतमसस्तुपारे**' सूर्यवत् प्रकाशमानः प्रकतेः संबन्धरहितः स एवेत्यर्थः । एतावता सर्वमिदं **प्रकरणं** तस्यैवेति निश्चीयते । अतः परम् 'नैनमुर्ध्वं न तिर्यं च न मध्ये परिजग्रभत् । न **तस्येशेकश्चन** तस्य नाम महद्यशः ॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥'

अयमर्थः-सर्वेश्वरश्रीरामादुर्ध्वप्रदेशे न कश्चिज्जानाति तिर्यक् प्रदेशेऽपि न जानाति **तथामध्यप्रदेशेऽपि न जानाति**, यतः परमात्मनो व्याकत्वेन तत्प्रदेशाभावात् तस्य परमात्मनः

इस महोपनिषद् वाक्य से सिद्ध होता है कि पूर्व कथित जगत्कारण श्रीरामाख्य नारायण ही हैं क्योंकि जो प्रलयकाल में भी अवस्थित रहते हैं इस श्रुति वाक्य में नारायण से इतर का निराकरण कर के **नारायणमात्र का** प्रलयकाल में अवस्थान बतलाया गया है इससे नारायण भगवान् ही जगत के कारण हैं। यह नारायण शब्द विशेष व्यक्ति का वाचक है संज्ञा शब्द होने से देवदत्तादि शब्द की तरह तो यह नारायण पद जिस अर्थ में संज्ञा के रूप में प्रयुक्त है वही अर्थ इस पद का मुख्यार्थ है। **सो अर्थ सर्वेश्वर** श्रीरामाख्य श्रीनारायण है तो ऐसा सिद्ध होता है कि भगवान् नारायण ही जगत् के कारण है तदिर ईशानादिक जगत् के कारण नहीं हैं। ये ही नारायण भगवान् सत् ब्रह्म आत्म इत्यादि विभिन्नपदों से तत्तत् उपनिषदों में कहे गये हैं । यद्यपि सत् ब्रह्मादिक पद सामान्यवाचक हैं तथापि छागपशुन्याय से श्रीरामनारायण पद कथित विशेष अर्थ में सामान्य शब्द का पर्यवसान करके नारायण भगवान् को ही जगत् कारण समझना चाहिये क्योंकि- '**रामएव परंब्रह्म रामएव परंतपः । रामएव परंतत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम् ॥**' इत्यादि श्रुतियों के बल से । इस श्रुति का अर्थ अन्यत्र किया गया है ।

'पशुना यजेत' पशु से याग करो ऐसा मीमांसा में पशुकरणक याग का विधान है लोमवल्लागूलावच्छिन्न में पशुपद की शक्ति है अर्थात् प्रायः चार पैर वालों को पशु कहते हैं तो यह

नेमेद्यावा पृथिवी न नक्षत्राणि' इत्यादिस्थले सत् ब्रह्मात्मादिशब्दराशिभिरितरव्यावृत्तिद्वारेण 'इत्यादि इत्यादिस्थले सत् ब्रह्मात्मादिशब्दराशिभिरितरण्यावृत्तिद्वारेण सर्वेश्वरश्रीरामाख्यविष्णुपर

कश्चित् शास्ता नास्ति । विस्तृता च भगवत्कीर्तिः । 'यस्मामलं नृपसदस्सुयशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयोदिगिभेन्द्रपट्टम् । तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये' (भागवत ९।११।२१) इति श्रीशुकदेवचार्योक्तेः तस्य परमात्मनोरूपं न कस्यचिच्चक्षुर्विषयतामासादयति, अत एव तं परमात्मानं न कोऽपि चक्षुषा विजानाति, तदीयरूपस्यालौकिकत्वेन लौकिकचक्षुषा गुहीतुमशक्यत्वात् । ननु तर्हि परमात्माऽदृश्यः परमाणुवत्स्यात् असत् वा वन्ध्यापुत्रवत्स्यात्तत्राह '*हृदामनीषेत्यादि*, अयं परमात्मा भक्तिधृतिमनोभिरेवावगतो भवति । यः साधको यथोक्तरूपं भगवन्तं श्रीमन्तंसीताकान्तं विजानाति स संसारगर्ताद्विमुक्तो भवतीत्यर्थः । तदाहुः श्रीरामानन्दसम्प्रदायाचार्या

पशु सामान्यतः पशु वाचक है, सामान्य शब्द है-'**अजैर्यष्टव्यम्**' '**छागस्य वपायाः**' इत्यादिक मन्त्रों में जो याग में विनियुज्यमान याग शब्द है सो पशु विशेष का बोधक है तब यहां संशय होता है कि किस पशु से याग करें। इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है छागरूप पशु से याग करना क्योंकि सामान्य वाचक पशु पद को छागपद प्रतिपादित पशु विशेष में पर्यवसान मानना चाहियें । इस तरह सामान्य शब्द को विशेषपदोक्त विशेष में पर्यवसान करके दोनों शब्दों के द्वारा उस विशेष को वाच्य मानना । यही छाग पशु न्याय है। प्रकृत में सत् ब्रह्म आत्मादिक समान्य शब्द बोध्यत्व को विशेष श्रीरामचन्द्र पदोक्त अर्थ में पर्यवसान करके सिद्ध होता है सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही जगत् के कारण हैं प्राप्य हैं उनकी भक्ति मोक्षप्रद है। ईशानादिक सदादिपद प्रतिपाद्य नहीं है क्योंकि ईशानादिकों को इन्द्रादि जीव की तरह महोपनिषद् में निराकरण किया है।

जगत्कारणता प्रतिपादक जो वचन समुदाय हैं-'**यतो वा इमानि भूतानि**' '**सदेव सोम्येदम्**' '**ब्रह्म वा इदमेकमग्रे**' '**आत्मा वा इदमेक**' '**एको ह वै नारायण**।' '**राम एव परंब्रह्म रामएव परंतपः । रामएव परंतत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्**' इत्यादि वाक्यों की एकवाक्यता करने से सर्वेश्वर श्रीराम ही परब्रह्म हैं, इस बात को पूर्व प्रकरण से सिद्ध करके वे ही परतत्व हैं इस बात को पुनः पुष्ट करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**अपि च**' इत्यादि । और भी देखिये सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ही परमतत्व हैं इसमें नारायणोपनिषद् भी प्रमाण है । तथाहि-'**यमन्तेसमुद्रेकवयोवदन्ति**' तैत्तिरीय आरण्यक में छटे प्रश्न के रूप में नारायणोपनिषत् परिपठित

मकारणतया प्रतिपादितो भवतीतिनिश्चीयते । तथैव 'श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः । मन्वन्तरसहस्त्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥१॥ ततः प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीरामः प्राहशङ्करम् । वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ! ॥२॥ इति । अथ सच्चिदानन्दात्मा श्रीराममीश्वरः प्रपच्छ

गीतार्थचन्द्रिकायाम्- 'तथाहि भक्तेरनन्यत्वमत्र प्रयोजनान्तरनिरपेक्षत्वमेव । एवं च सद्गुरुमुखाद्वेदान्तशास्त्रश्रवणेनादौ प्राप्यस्य भगवत्स्वरूपस्ययाथात्म्यानुभवो जायते । अयञ्चानन्यभक्ते : प्राथमिकफलम् । अनन्तरमेतज्ज्ञानविशिष्टोत्कटदिदृक्षयोपास्यस्वरूपसाक्षात्कारो जायते । एतत्साक्षात्कारजननी भक्तिरेवपरभक्तिपदेनाभिधीयतेसाम्प्रदायिकैस्ततश्चसाक्षात्कारानुभवविशिष्टपरभक्त्याभगवत्सायुज्यमवाप्यते । सायुज्यफलिकेयमेव च परभक्तिपदेनव्यपदिश्यते । एतद्भक्तिसहकृतानामेव वेदानुवचनादीनां भगवद्दर्शनप्रयोजकत्वं 'तमेतं वेदानुवचनेनेति' श्रुत्यावगम्यते । ये तु केवलज्ञानेन सायुज्यमाहुस्तेषामयमसङ्गत एवेतिध्येयम् (११।५४) एतावता परमपुरुषश्रीरामस्य

है उससे भी सिद्ध होता है कि वे ही परब्रह्म हैं । '**यमन्तः**' इत्यादि । अर्थात् अतिसूक्ष्मतत्व का दर्शन शील पूर्वकालिक महर्षि लोग जगत् कारण रूप जो तत्व है तादृश तत्व को समुद्र के अभ्यन्तर में सर्वेश्वर श्रीरामजी को ही शेष शय्या पर श्रीनारायण रूप से सोतेहुए देखे । भगवान् श्रीराम ही श्रीलक्ष्मीनारायण क्षीरोदशायी हैं ऐसा श्रीरामायण इतिहास पुराण तथा लोक में प्रसिद्ध है इससे सिद्ध होता हैं कि भगवान् श्रीसीताराम ही इस प्रकरण में वर्णित हैं। एवं-'**सर्वेषानिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि**' ये निमेष अर्थात् काल का अवयव विशेष विद्युत् वर्ण सदृश पुरुष विशेष से उत्पन्न हुए । एवं '**आदित्यवर्णं तमसस्तु पारे**' इत्यादि वचनों से यह सिद्ध होता है कि यह प्रकरण परम ब्रह्म श्रीराम को ही कहनेवाला प्रकरण है अतः इससे सिद्ध होता है कि श्रीराम परब्रह्म हैं । इसी प्रकरण मे आगे चल करके कहा है-

'**नैनमुर्ध्व न तिर्यचं न मध्ये परिजग्रभत् ।**
न तस्येशेकश्चन तस्य नाम महद्यशः ॥'
'**न सनन्शेतिष्ठातिरूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।**
हृदामनीषा मनसाभिर्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥'
अद्भ्यः संभूतो हिरण्यगर्भ इत्यष्टौ'

अयमर्थ :-इस परब्रह्म परमात्मा को ऊर्ध्व प्रदेश में किसी ने नहीं देखा, तिर्यक् प्रदेश में

मणिकर्ण्यां मत्क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः । म्रियते देही तज्जन्तोर्मुक्ति-र्नाऽतोवरान्तरम् ॥३॥ इति । अथ सहोवाच श्रीरामः । क्षेत्रेऽत्र तव देवेश ! यत्रकुत्रापि वा मृताः । कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ता सन्तु न चान्यथा

सर्वापेक्षया श्रेष्ठत्वं प्रतिपाद्य ततः 'न तस्येशेकश्चन' इत्यादिना संभावितश्रेष्ठतरस्य निराकरणं कृत्वा तदनन्तरं तस्मिन्नेव प्रकरणे 'अद्भ्यःसंभूतोहिरण्यगर्भ इत्यष्टौ' इतिकथयित्वा अनेन प्रकरणेन सह 'अद्भ्यः संभूतः' इत्यनुवाकं तथा 'हिरण्यगर्भः' इति ऋचमष्टकं मिलित्वा पठनीयमित्यवोचत् । 'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्चपत्न्यौ' इत्यनुरोधात् । प्रकृतप्रकरणप्रतिपाद्यः सर्वेश्वरश्रीरामः एव नान्यः ।

भगवान् सर्वेश्वरश्रीराम एव परमतत्वं तदेवोपास्यं नान्ये शंभुरादय इति तत्र तैत्तिरीयनारायणोपनिषदः प्रामाण्यं 'यमन्तः समुद्रे कवयो वनन्ति' इत्यादिना प्रदर्श्य तदनुनारायणानुवाके श्रीरामपदाभिधेयनारायणस्यैव परमत्वं प्रपञ्चितमिति दर्शयितुमुपक्रमते

किसी ने नहीं देखा एवं मध्य प्रदेश में भी किसी ने नहीं देखा क्योंकि परमात्मा सर्व व्यापक हैं और व्यापक पदार्थों का ऊर्ध्वादि प्रदेश नहीं होता है। एवं उस परमात्मा का कोई शासक नहीं हैं, इससे सिद्ध होता है कि श्रीरामनारायण रूप परम पुरुष से श्रेष्ठ बनेवाला किसी व्यक्त्यन्तर का निषेध सिद्ध होता है।

इसके वाद उस प्रकरण में 'अद्भ्यः संभूतो हिण्यगर्भ इत्यष्टौ' यह कह करके वतलाया है कि इस प्रकरण के साथ 'अद्भ्यः संभूतः' इस अनुवाक् को तथा 'हिरण्यगर्भः' इत्यादि आठ ऋचा-मन्त्र को मिला कर के पढना चाहिये। इस प्रकार इस प्रकरण के साथ जिस 'अद्भ्यः संभूतः' इस अनुवाक् को मिलाने के लिये कहा गया है वह अनुवाक् परम पुरुष का वर्णन करता है। अतः इस नारायणोपनिषत् प्रकरण से सिद्ध होता है कि श्रीरामरूप नारायण तत्त्व ही सब से श्रेष्ठतत्व हैं, ये ही परमब्रह्म हैं, तदितर दूसरा कोई परमतत्व नहीं है।

तैत्तिरीय नारायणोपनिषद् में 'यमन्तः समुद्रे कवयो वदन्ति' इत्यादि प्रकरण से श्रीरामरूपनारायण भगवान् ही परतत्व हैं इस वात को सिद्ध करके तदनन्तर नारायणानुवाक् से भी भगवान् श्रीरामरूपनारायण को ही परतत्व सिद्ध करने के लिये उपक्रम करते हैं-'तत्रेत्यादि' नारायणानुवाक में भगवान् नारायण को अर्थात् सर्वव्यापक श्रीरामजी को ही परब्रह्मत्व विस्तारपूर्वक प्रतिपादित किया गया है। 'सहस्त्रशीर्ष देवम्' यहां से नारायणानुवाक् का प्रारंभ होता है। किसी किसी वेदशाखा में परतत्व का प्रतिपादन करने के लिये 'अक्षरः, शिवः, शंभुः, परब्रह्म,

॥४॥ अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये । अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥५॥ क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव ! । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६॥ त्वत्त्वा वा

तत्रपूर्वोक्तेत्यादि अयंभावः-नारायणानुवाके विस्तररूपेण श्रीरामरूपनारायण एव परमतत्वमिति पूर्वप्रकरणप्रतिपादितोऽर्थो विस्तारशः प्रतिपादितः । 'सहस्त्रशीर्षं देवम्' अनेन प्रकृतानुवाकस्यारंभो भवति । वेदशाखायां परतत्वप्रतिपादनाय 'अक्षरम्' 'शिवः' 'शम्भुः' 'परब्रह्म' 'परज्योतिः' 'परतत्वम्' 'परायणः' 'परमात्मा' इत्यादिका अनेके शब्दाः प्रयुक्ताः सन्ति । अस्मिन् नारायणानुवाके तु ते सर्वेऽपि शब्दाः श्रीनारायणे एव प्रयुक्ताः सन्ति । तेन विभिन्नशाखायां प्रयुज्यमाना इमे शिवादिशब्दा नारायणे एवाभिहिता इति ज्ञायते । यत एभिः शब्दैः प्रतिपाद्यमाना ये गुणास्ते सर्वे परेतत्वे विद्यन्ते एव । अपि च विभिन्नोपनिषदि ब्रह्मादिशब्देभ्य उपास्यतत्वस्यैव निर्देशः कृतः । अस्मिन्नारायणानुवाके तेभ्यः शब्देभ्यो ईश्वरस्य निर्देशं कृत्वा सर्वब्रह्मविद्यासूपास्यं तत्वं तदेवेति सूचितम् । एकः

परज्योतिः, परायणः, परमात्मा' इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है। परन्तु इस नारायणानुवाक में उन अक्षर शिवादि शब्दों को श्रीरामनारायण के विषय में प्रयोग कर के यह दिखाया जायगा कि विभिन्न शाखा में इन शिवादि शब्दों से भगवान् नारायण विष्णु ही प्रतिपादित होते हैं क्योंकि अक्षरादि शब्दों के द्वारा प्रतिपादित जो जो गुण होते हैं वे सब गुण इन में उपलब्ध होते हैं। विभिन्न उपनिषदों में शिवादि शब्दों से उपास्य तत्व का निर्देश किया गया है। इस नारायणानुवाक में शिवादि शब्दों से नारायण का निर्देश कर के यह सिद्ध किया कि सर्वत्र उपास्य तत्व वे ही है।. इसलिये आगे कहा कि-'स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः' इत्यादि कहकर ब्रह्मा शंभु इन्द्रादि से ब्रह्मा शिवा तथा इन्द्रादि सब दोवों की अन्तरात्मा भगवान् ही हैं। तथा ब्रह्मादिक जो देव हैं वे सब उनके बिभूति हैं उन्हीं सर्वेश्वर के अधीन हैं श्रीरामजी ही इन में व्याप्त रहते हैं अन्य सव उन के व्याप्य हैं वेही इन के आधार हैं ये सब आधेय हैं विष्णु इन सब का नियामक हैं ये सब नियाम्य हैं परब्रह्म सब के स्वामी हैं और ये सब उन के शेष हैं ये सब श्रीरामरूप नारायणात्मक हैं क्योंकि वे इनकी आत्मा हैं ये सब 'सजत्सर्वं शरीरन्ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्' के अनुसार श्रीरामचन्द्रजी के शरीर हैं इत्यादि विशेषताओं का वहां पर वर्णन किया गया हैं। अतः श्रीरामस्वरूपक नारायण ही परत्व हैं उपास्य हैं अन्य देव वाचक शब्द भी उन्ही को ही यौगिक वृत्ति से समझाते हैं। अथर्वशिखोपनिषत् वाक्य से सिद्ध होता है कि भगवान् शंकर ही परम कारण हैं तथा ध्येय हैं

ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् । जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥७॥ मुमुर्षोर्दक्षिणेकर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् । उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं समपक्तो भविता शिवेति ॥८॥ श्रीरामाचन्द्रे-

---

श्रीरामाख्यनारायण एव तत्तद्विद्यायां विभिन्नशब्देन वर्णितो भवति ।

तस्यादौ, एतदर्थं प्रतिपाद्य अग्रिमभागेऽयमर्थः साधितो भवति यत् भगवन्तं परित्यज्य ये चेतनाचेतनाः पदार्थाः सन्ति से सर्वेऽपि ब्रह्मस्यैवाधीनाः, तत्र सर्वत्र व्याप्तो दुग्धे घृतवत् इमे सर्वेपदार्थाः श्रीरामे व्याप्याः स एषामधिकरणं नारायणे एते आधारिताः । स एषां नियामकः स एवैतेषां स्वामी एते तस्य शेषाः शेषी च सः सर्वेश्वरश्रीरामाख्यनारायण एतेषामात्मा, इमे पदार्थास्तस्य शरीररूपाः । इत्यादिवैशिष्ट्यं कथयित्वा 'स ब्रह्म स शिवः सेन्द्रः' इत्यादिना सर्वान्तर्यामित्वं तस्य प्रतिपादिम् । तथा ब्रह्माशिवेन्द्रादिकाः सर्वेश्वरस्य विभूतयस्तदधीनाश्च । अयञ्चेत्थं साधयति । परत्वनिर्णयायैव प्रवृत्तोनुवाको नान्यत्

ऐसा पूर्वपक्ष में कहा गया था उसका खण्डन करने के लिये कहते हैं कि अथर्वशिखोपनिषद्वाक्य का भी तात्पर्य श्रीराम के श्रेष्ठत्व प्रतिपादन करने में ही है किन्तु शिव को सर्वकारणत्व तथा ध्येयत्व को बोधन करने में तात्पर्य नहीं है। इत्यादि बात को समझाने के लिये इस प्रकरण का आरंभ करते हुए कहते हैं-'**अथर्वशिखोपनिषद्**' इत्यादि । अथर्वशिखो पनिषद् वाक्य का भगवान् के श्रेष्ठत्व बोधन करने में ही तात्पर्य है किन्तु तदितर की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने में तात्पर्य नहीं हैं । अथर्वशिखोपनिषत् वाक्य यह है कि '**प्राणं मनसि सह करणैर्नादन्ते परमात्मनिसंप्रतिष्ठाप्यध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्**' अर्थात् मन में अन्तः करण में वृत्ति द्वारा लीयमान चक्षुरादि करणों के साथ मुख्य प्राण को अथवा जीवात्मा को परमकारणीभूत परमात्मा में सं प्रतिष्ठित करे इस तरह इन सब को नादान्त में परमात्मा में प्रतिष्ठित कर के ध्येयतत्व जो ईशान हैं उनका साधक ध्यान करें । यह ध्येयतत्व ईशानपदवाच्य परमात्मा ही हैं क्योंकि- '**सर्वस्यवशी सर्वस्येशानः**' (सब जिसके वश में हैं और जो सब के ऊपर नियमन करने वाला है ।) इस वाक्य से परमात्मा को ही ईश्वर कहा गया है एतादृश परमात्मा नारायण है क्योंकि- '**आत्मा नारायणः परः**' यह कहकर नारायणानुवाक में नारायण को ही परमात्मा कहा है यहां सर्वत्र नारायणपद से श्रीसीतानाथ का ही ग्रहण करना चाहिये '**विश्वं भरं महाविष्णुं नारायणमनायम् । पूर्णानन्दैकविज्ञानं परं ज्योतिः स्वरूपिणम् ॥ मनसा संस्मरन् ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् । ॐ यो वे श्रीरामचन्द्रः स भगवान्**' इत्यादि रूपसे श्रुति अन्य अनेकस्थलों में प्रतिपादन करती

णोक्तंयोऽविमुक्तं पश्यति स जन्मान्तरीतान्दोषान्वारयतीति स जन्मान्तरितान्पापान्नाशयतीति । अथ हैनं भरद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मन्त्रैः स्तुतः श्रीरामः प्रीतो भवति । स्वात्मानंदर्शयति तान्नोब्रूहि

किञ्चनवस्त्वन्तरं प्रतिपादयति ।

किञ्चान्यत्रोपनिषद्यपि परब्रह्मैव सर्वेषामन्तरेति 'एष सर्वभूतान्तरात्मा' इत्यादिना प्रतिपादितम् । अपि च 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्याद्युपनिषद्वाक्यद्वारा श्रीसर्वेश्वरस्यैव परतत्वं परंब्रह्मसर्वान्तरात्मेति च प्रतिपादयति श्रुतिः । 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्याद्युपनिषद्वाक्यं परब्रह्मणस्तस्यैवोपासनं विधत्ते नान्यस्य । परब्रह्म तु सर्वदेवविशेषः श्रीराम एव नतु शिवादीति तस्यैवोपासनम् तस्मात् मोक्षार्थमुपासनविधायकवचनेषु नान्यस्य देवस्य कुत्रापि ग्रहणं संभवतीति संक्षेपः ।

अथ अथर्वशिखोपनिषदि कतिपयवाक्यं शिवस्य सर्वकारणत्वं ध्येयत्वं च प्रतिपादयतीति भाति, तादृशवाक्यस्यार्थं प्रकाश्य तस्यापि सर्वेश्वरश्रीरामस्यैव

है इसलिये । '**पतिं विश्वस्य**' '**न तस्येशेकश्चन**' अर्थात् वह सब का प्रतिपालक है तथा उसका नियन्त्रण करनेवाला कोई अन्य नहीं है वही सब का नियमन करता है । इससे यह सिद्ध होता है कि वेही सब का शासक है । इस प्रकार अथर्वशिखोपनिषद् वाक्यों में सर्व कारणभूत श्रीराम के ध्यान का ही प्रतिपादन किया है तथा भगवान् ही ध्येयतत्व हैं यह भी सिद्ध होता है । सर्वेश्वर श्रीरामजी ही ध्येय हैं यह बात-'**सर्वमिदं ब्रह्म विष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सर्वे संप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैः**' अर्थात् यह संपूर्ण जड चेतन प्रपञ्च तथा ब्रह्मा विष्णु रुद्र और इन्द्रादि देव पञ्चभूतों के साथ उत्पन्न होते है । अर्थात् ये सब जन्य हैं इसलिये ध्येय नहीं हैं । यह इस उपनिषद् वाक्य से सिद्ध होता है ।

यह अथर्व शिखोपनिषद् वाक्य आगे कहता है कि कारणों का जो कारण है वह पैदा नहीं होता है, यह कह कर के उसके आगे ध्येयतत्व का निष्कर्ष बतलाता है कि-'**कारणं तु ध्येयः सर्वैश्वर्यसम्पन्नः सर्वेश्वरः शंभुराकाशमध्ये ध्येयः**' अर्थात् कारण चेतनाचेतन सकल प्रपञ्च का कारण बननेवाले सब प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न सर्वेश्वर सब के ऊपर नियमन करने वाले शंभु मोक्षपद का दाता भगवान् हृदयाकाश के मध्य में ध्येय हैं । यद्यपि अन्यत्र करनेवाले शंभु मोक्षपद का दाता भगवान् हृदयाकाश के मध्य में ध्येय हैं । यद्यपि अन्यत्र शंभु शब्द संहारकारक शिव का बोधक है तथापि **शं कल्याणं मोक्षलक्षणं भवित यस्मात् स शंभुः** इस व्युत्पत्ति से नारायणानुवाक

भगवन्निति । सहोवाच याज्ञवल्क्यः श्रीरामचन्द्रेणैवंशिक्षितो ब्रह्मापुनरेतयागाथया नमस्करोति- विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम् । परिपूर्णानन्दविज्ञं परंब्रह्मस्वरूपिणम् । मनसा संस्मरन्ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् । ॐ योहवै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत्परं

परमकारणत्वं सर्वध्येत्वमिति च दर्शयितुमुपक्रमते अथर्वशिखोपनिषदः इत्यादि, विचारणीयं च वाक्यम् 'प्राणं मनसि सहकरणैर्नादान्ते परमात्मनि संप्रतिष्ठाप्यध्यायीतेशानं प्रध्यायितव्यम्' मनसि लीनमिन्द्रियेण सह प्राणं मुख्यप्राणं जीवात्मानं वा नादान्ते परमात्मनि संप्रतिष्ठाप्य तं ध्येयत्वमीशानंध्यायीत तदीयध्यानं कुर्यात् इत्यर्थः । एवं क्रमेण ध्येयतत्वमीशान उपर्युक्तः परमात्मैव 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशान' इतिकथयित्वा सर्वस्येश्वमुपनिषद्वाक्यं वक्ति । स च परमात्मा सर्वेश्वरः श्रीरामात्मकनारायण एव, यतः 'आत्मानारायणः, परः' इत्युक्त्वा नारायणानुवाको नारायणस्यैव परमात्मत्वमवोचत् । अपि च 'पतिंविश्वस्य न तस्येशेकश्चन' इत्यादिवाक्ये तस्यैव सर्वपतित्वं सर्वशासकत्वं तथा तस्यान्यः शासको नास्तीति कथयित्वा

स्वकीय प्रकरण के बल द्वारा शंभु शब्द से भगवान् को समझाता है भगवान् मोक्षरूप फल को देते है इसलिये शंभु कहलाते है । इस अनुवाक में अनेक वार '**विश्वसम्भुवम्**' इत्यादि स्थल में भगवान् में शंभु शब्द का प्रयोग किया है, वह यौगिकार्थ को लेकर के भगवान् श्रीराम में घटता है अतः अथर्वशिखोपनिषद् वाक्य से भी ध्येयरूप में भगवान् का ही प्रतिपादन होता है शिवाजी का प्रतिपादन नहीं होता है । यद्यपि रूढि के बल से शंभु शब्द झटिति शिव को समझाता है तथापि यह नारायमानुवाक का जो प्रकरण है उस के बल से अथर्वशिखोपनिषद् वाक्य सर्वेश्वर श्रीराम का ही ज्ञापक सिद्ध होता है ।

पुराण में भी भगवान् के विषय में शंभु शब्द का प्रयोग योगवृत्ति से उपलब्ध होता है यथा '**इति नारायणः शंभु र्भगवान् जगतां पतिः । संदिश्य विवुधान् सर्वानजायत यदोः कुले ॥**' इति अर्थात् इस प्रकार चराचर जगत् का स्वामी सर्वनियामक सर्वशेषी भगवान् तथा शंभु अर्थात् मोक्ष सुख को देनेवाले श्रीअयोध्याधिपति भगवान् ने सब देवताओं को आदेश देकर अर्थात् हे इन्द्रादिक देव ! आपलोग गोकुल में जाकर के मनुष्यादि रूप को धारण करके रहें तदनन्तर मैं भी वहां कृष्णरूप से अवतार लूंगा, यह कह कर के अनन्तर भगवान् स्वयं यदुकुल में कृष्णरूप से अनतीर्ण हुए अर्थात् यदुकुल में अवतार ग्रहण किया । इस पुराण वचन में शंभु शब्द से भगवान् का निर्देश किया गया है किन्तु शिव का ग्रहण नहीं हो सकता हैं क्योंकि यदुकुल में शिव

ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मैवै नमोनमः । इत्यादिकासप्तचत्वारिंशन्मन्त्राः । तथा 'रमन्ते योगिनोऽनन्तेसत्यानन्दे चिदात्मनि । इतिरामपदेनासौ परंब्रह्माभिधीयते' इत्यादिरूपेण श्रीरामतापनीयोपनिषत्प्रतिपादितदिशा

उपर्युक्तवाक्यं तस्यैव ध्यानं कर्तव्यमितिवदन् तस्यैव ध्येयत्वं कथयति ।

किं च स एव ध्येयः तथा च श्रुत्यन्तरम् 'सर्वमिदं ब्रह्माविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सर्वेसंप्रसूयन्ते सर्वाणि चेन्द्रियाणि सहभूतैरिति । अयमर्थः-सर्व चेदं जडचेतनप्रपञ्चजातम् ब्रह्माविष्णुमहेशेन्द्राः तथा पञ्चमहाभूतैः सहेन्द्रियाणि समुत्पद्यन्ते इति । एवं च समुत्पद्यमाना ब्रह्मरुद्रादयो न ध्येया अपि तु सर्वकारणरूपो मूलपुरुष एव ध्येय इति तत्रत्यप्रसङ्गेन सिद्ध्यति न तु जायमानानां ध्येयत्वमिति । ननु सर्वेश्वरस्योपास्योपास्यत्वेशिवस्य चानुपास्यत्वे 'कारणं तु ध्येयः-शंभुराकाशमध्ये' अस्य वचसः का गतिरिति चेदत्रोच्यते अत्रापि सर्वेश्वररूपनाराणस्यैवोपास्यत्वेन प्रतिपादादनात्, चेतनाचेतनप्रपञ्चसमुदायस्य कारणसर्वनियमनकर्ता सर्वैश्वर्यसंपन्नः शंभुः स एव हृदयाकाशेध्येयः । शं मोक्षसुखं भवति, अस्मादिति शंभुरिति व्युत्पत्त्या शंभुशब्दो यौगिकवृत्त्या सर्वेश्वरश्रीरामास्यैव वाचको नतु शिवस्यातो न शिवस्य ध्येयत्वम् 'शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये' इत्यागमक्तेः । अयं च स्थलान्तरे नारायणे प्रयुक्तः । 'विश्वशंभुवम्' इति श्रुतौ । कि ञ्चान्यत्र पुराणेऽपि- 'इति नारायणः शंभुर्भगवान् जगतां पतिः संदिश्य विवुधान्सर्वानजायत यदोः कुले ॥

का जन्म प्रकरण बाधित है । जिस तरह इस पुराण वचन में शंभु शब्द से भगवान् का ही निर्देश है उसी तरह अथर्वशिखोपनिषद् में शंभु शब्द से भगवान् का निर्देश कर के तादृश भगवान् का ध्यान करने के लिये कहा गया है ।

यहां परब्रह्मरुद्रादि देवों क साथ जो विष्णु का जन्म कहा गया है वह इन्द्रादि की तरह विष्णु भगवान् का जन्म नहीं होता है किन्तु अवतार होता है अर्थात् इन्द्रादिकों का जन्म तो वास्तविक जन्म है शरीरादिक के साथ प्रथमक्षण संबन्धरूप है और विष्णु का तो अवताररूप जन्म है गीता में कहा है-

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेतिसोऽर्जुन ! ॥'

वेद में भी कहा है-'**अजायमनो बहुधा विजायते**'

'अग्निर्यथैकोभुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।

सर्वेश्वरश्रीराम एव सर्वेशः सर्वोपास्यो जगद्योनिश्चेति प्रतिपाद्यते 'ब्रह्मशब्दश्च महापुरुषादिपदवेदनीयनिरस्ताखिलदोषमनवधिकातिशयासंखेयकल्याणगुणगणंभगवन्तं श्रीराममेवाह' (ब्र.सू.१।१।१)

अयमर्थः- 'विश्वंभरं महाविष्णुं नारायणमनामयम् ।पूर्णानन्दैकविज्ञानं परं ज्योतिः स्वरूपिणम् ॥ मनसा संस्मन् ब्रह्मातुष्टाव परमेश्वरम् ॥

ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्' इत्यादिरूपेण श्रुत्युक्तदिशा नारायणो मूर्तित्रयादन्यश्चराचरजगतः कारणं सर्वैश्वर्यादिगुणसंपन्नो भगवान् सीतानाथः शंभुर्मोक्षदाता, भगवान् षड्विधैश्वर्यसंपन्नः कर्तुमकर्तुं समर्थः, जगतां त्रिजगतांस्वामी सर्वशेषी, सर्वान् इन्द्रप्रमुखादिकान् विबुधान् देवान् जीवकोट्यन्तर्गतान् सन्दिश्य समादिश्यः पूर्वं भवन्तः गोकूले गत्वा मनुष्यरूपेण जन्मग्रहणं कुर्वन्तु तदनु अहं सर्वशरणापन्नजनरक्षाव्रति श्रीसीतानाथोऽपि तत्रैवागमिष्यामि इत्येवं प्रकारेणादेशं तान् कृत्वा, पश्चात् स्वयमपि सर्वैश्वर्यसंपन्नो यदुकुलेऽप्राकृतशरीरग्रहणं कृतवानिति . अत्रपुराणश्लोके शंभुपदेन मूर्तित्रयाद्न्यस्यैव श्रीसीतानाथस्यनिर्देशं कृतवान् भगवान् व्यासः । इत्थमेव प्रकृतेऽथव

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव' ॥

इत्यादि वेदवचनों से ऐसा कहा जाता है कि भगवान् जीव के समान जन्म नहीं लेते हुए अनेक जन्म अर्थात् अवतार लेते हैं। भगवान् विष्णु जगत् में श्रीसीतानाथ के प्रथम अवतार हैं इस विष्णु के द्वारा श्रीसीतानाथ जगत् का पालन पोषन करते हैं भगवान् का अवतार होता है, इसमें स्वयं ब्रह्माजी का वचन प्रमाण है-

'ततस्त्वमसि दुर्धर्षात् तस्माद् भावात्सनातनात् ।
रक्षांविधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान् ॥'

अर्थात् श्रीब्रह्माजी भगवान् श्रीसीतानाथजी से कहते हैं कि हे भगवन् ! आधिकारिक हमलोगों को उत्पन्न करने के बाद दुर्धर्ष स्वरूप से स्थित आप भी प्राणिमात्र की रक्षा करने के लिये उस सनातन श्रीसीतानाथ स्वरूप से विष्णुत्व को प्राप्त किये हैं । इस से यह सिद्ध होता है कि श्रीविष्णु भगवान् श्रीसीतानाथ के अवतार है । जिस तरह विष्णु भगवान् का अवतार है उसी तरह ब्रह्मा रुद्र तथा इन्द्रादिक देव भी भगवान् के अवतार हैं ऐसा नहीं कहना क्योंकि ब्रह्मादिक को भगवान् के अवतार होने में शास्त्र वचन प्रमान नहीं है। इसलिये ब्रह्मादिक भगवान् के अवतार नहीं हैं, इन देवों का तो मनुष्यादिवत् जन्म होता है, और प्रमाण वचन उपलब्ध होने से

इतिभाष्यकारवचनाच्च तदेव सर्वेशसर्वकर्तृत्वेननिरुच्यते न तु शिवब्रह्मादिकादेवावेदैर्जगत्कारणया प्रतिपादिता भवन्तीति ।

शिखोपनिषदिमूर्तित्रयादन्यस्य श्रीसीतापतेरेव ग्रहणम् । यद्यपीह जीवान्तरवत् विष्णोरपि जन्मश्रूयते तथापि जीवान्तरवत् न विष्णोर्जन्म, अपि तु विलक्षणमेव तज्जन्मजगतः परिपालनेच्छया श्रीसीतानाथस्य प्राथमिको विष्णुरूपेणावतारोऽवतारी च श्रीसीतानाथः । 'महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः । रक्षां विधाश्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' इत्यादिरूपेण ब्रह्मणोक्तेः । तस्येतरजीवापेक्षया न जन्मापितु अवतारमात्रम्-तदुक्तंगीतायां भगवता स्वयमेव-

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पूनर्जन्म नैतिमामेति सोऽर्जुन !' इति ।

यथारुद्रादीनां जन्म तथा माहाविष्णो र्जन्म न भवति किन्तु तस्यावतार एव तथाहि-

विष्णु अवतार हैं ।

अयंभावः-अथर्वशिखोपनिषद् वाक्य शिवजी को ध्येय नहीं बतलाता है अपि तु भगवान् को ही ध्येयत्व का प्रतिपादन करता है। यतः अथर्वशिखोपनिषद् आरंभे-**'कश्च ध्येयः'** कौन ध्येय हैं ? ऐसा प्रश्न है । इसके उत्तर में कहा गया है कि-**'कारणं तु ध्येयः'** कारण का ध्यान करना चाहिये । ऐसा उत्तर दिया । इस उत्तर वाक्य का तात्पर्य है कि कार्यपदार्थ का ध्यान नहीं करना चाहिये किन्तु उस कारणतत्व का ध्यान करना चाहिये जो शास्त्र में कारणरूप से प्रसिद्ध है। यह वाक्य यह नहीं बतलाता है कि अमुक पदार्थ जगत् का कारण है किन्तु इस बात को बतलाता है कि जो जगत् कारणरूप में प्रसिद्ध है उसी का ध्यान करना चाहिये । परम कारण का प्रतिपादन करने के लिये प्रवृत्त नारायणावुवाक में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि श्रीरामरूपात्मक नारायण भगवान् ही जगत् के मूल कारण हैं तथा शंभु शब्द के वाच्य भी हैं । इस प्रकार से नारायणानुवाक प्रभृति प्रकरणों में जो भगवान् जगत् के परमकारण एवं शंभु शब्द वाच्यरूप से प्रसिद्ध हैं तादृश भगवान् का ध्यान करने के लिये अथर्वशिखोपनिषत् में कहा गया है ।

एवं अथर्वशिखोपनिषत् वाक्य शिवजी की जगत् कारण सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त नहीं न वा शिवजी के ध्यान का विधान करने के लिये प्रवृत्त है किन्तु शास्त्र में जो जगत् कारण रूप से प्रसिद्ध है तादृश जगत् कारण के ध्यान का विधान करने के लिये प्रवृत्त है और जब सब कारण वाक्यों का समन्व करते हैं तो भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ही जगत् कारण सिद्ध होते हैं । इस तरह शंभु पद वाच्य भगवान् के ध्यान का विधान करने के लिये प्रकृत्त उपनिषत् प्रवृत्त है। इससे यह

卐 सर्वेश्वरश्रीरामस्यपत्वनिर्वचनम् 卐

अपि च 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्' 'यमन्तः समुद्रेकयो वदन्ति' 'नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत् । न तस्येशेकश्चन तस्य नाममहद्यशः । न

'तद्गस्त्वमसिदुर्धर्षात्तत्माद्भावात्सनातनात् । रक्षांविधास्यन् भूतानांविष्णु त्वमुपजग्मिवान् । इतिमूर्तित्रयादन्यस्य भगवतः सकाशात् गृहीतजन्मब्रह्मा भगवन्तं श्रीरामं कथयति हे भगवन्, दुर्धर्षस्त्वमसि अस्मानुत्पादयित्वा मदुत्पादितसर्वभूतानां रक्षणाय विष्णुरूपेणावतरितोसि इत्यर्थः । एतावता देवतान्तरवत् महाविष्णोर्जन्म न किन्तु अवतार एवेति ब्रह्मादिका अपि अवतारस्त्मा एवेति तु न शङ्कनीयम्तत्पोषकशास्त्रवचनाभावादिति । अयंभावः-अर्थर्वशिखोपनिषद्वाक्यम् न शिवस्य ध्येयत्वं प्रतिपादयति किन्तु परमकारणतया प्रसिद्धस्य श्रीसीतानाथस्यैव तथात्वं विदधातियतस्तदारंभे- 'कोध्येयः' इति प्रश्नः । 'कारणं तु ध्येयः' इत्युत्तरम् । अर्थात् कार्यं न ध्येयमपितु कारणमेव ध्येयम् ।

सिद्ध हुआ कि भगवान् ही जगत् के मूलकारण हैं उन्हीं का ध्यान करना चाहिये ।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में-**ततो यदुत्तर तरम्** इत्यादि मन्त्र में आया है उसप्रकरण में इसमन्त्र सेपूर्व मन्त्र में बतलाया है कि सर्वेश्वर श्रीराम सर्वश्रेष्ठ कहकर इस द्वितीय मन्त्र में उन से भी पर सर्व श्रेष्ठ शिवजी को बतलाया जा रहा है तब श्रीरामजी को सर्वश्रेष्ठ किस तरह आप मानते हैं ? इस शंका का समाधान करने के लिये कहते हैं कि इस द्वितीय श्वेताश्वतर वचन का भी श्रीरामात्मक नारायण के परत्व बोधन करने में ही तात्पर्य है अन्यथा प्रथम द्वितीय मन्त्र में विरोध होगा जिसका समाधान अशक्य हो जायगा । इन सब बातों को प्रश्न तथा उत्तर रूप से समझाने के लिये आचार्यश्री उपक्रम करते हैं-'**यद्यपि, ततो यदुत्तर तरम्**' इत्यादि, यद्यपि '**ततो यदुत्तरतरम्**' '**सर्वाननशिरोग्रीवः**' इत्यादि श्वेताश्वतर वचन से श्रीसीतानाथ रूप पुरुष से अतिरिक्त श्रीशिवजी में परत्व ज्ञान होता है तब आप किस तरह कहते हैं कि भगवान् सर्वश्रेष्ठ हैं तथा वहीं ध्येय हैं ? इस प्रश्नका समाधान करने के लिये कहते हैं कि-'**तथापि यस्मात् परं नापरमित्यादि** ।' यहां आचार्यश्री का अभिप्राय यह है कि श्वेताश्वतर के प्रकरण में-'**ततो यदुत्तरतरम्**' यह द्वितीय मन्त्र है और '**सर्वाननशिरोग्रीवः**' इत्यादि तृतीय मन्त्र हैं । इन दोनों मन्त्रोकें पूर्व में-'**यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित्, यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति कश्चित् । वृक्ष इव स्तब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥**' यह मन्त्र पढा गया है ।

संदृशेतिष्ठतिरूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदामनीषामनसाभिक्लृप्तो य एनं विदुरमृतास्ते भवन्ति' इत्याद्यनेकश्रुतिसामञ्जस्यात् सर्वेश्वरश्रीरामस्य तदितरापेक्षया सर्वतः परत्वं कथित्वा 'न तस्येशे' इत्यादिना तत्तत्वान्तरं निराकृत्य 'सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः

उक्तवाक्यस्य तात्पर्यमित्थम्-कार्यजातस्य ध्यानं न कर्तव्यमपितु कारणतत्वस्य ध्यानं कर्तव्यम् नेदं वाक्यममुकपदार्थः कारणमिति वक्ति किन्तु यत्तत्वम् कारणरूपेण शास्त्रे प्रसिद्धं तस्यानुध्यानं कर्तव्यम् । परमकारणस्य प्रतिपादनाय प्रवृत्तवाक्ये स्पष्टरूपेण कथितं यत् श्रीसीतानाथ एव जगतः परमकारणं शंभुपदवाच्यश्चेति, तस्मात् भगवानेव परमकारणं ध्येयोऽपि स एव । एवं च न शिवस्य परमकारणत्वे ध्येयत्वे वाथर्वशिखोपनिषद्वाक्यस्य तात्पर्यं किन्तु नारायणानुवाकप्रतितभगवत एव परमकारणत्वं ध्येयत्वमपीति सर्वसंक्षेपः ।

'ततो यदुत्तरतरम्' इत्यादिश्वेताश्वतरवचनमादाय पुरुषपदवाच्यसर्वेश्वरश्रीरामादपि कश्चिदन्यः श्रेष्ठ इतिपूर्वपक्षे कथितं तन्मतं निराकर्तुं श्वेताश्वतरवचनस्यापि श्रीसीतानाथपरत्वे एव तात्पर्यं दर्शयितुमुपक्रमते यद्यपि ततो यदुत्तरतामित्यादि ततोयदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् ।

अस्यार्थः-जिसपर पुरुष को छोड कर के दूसरा कोई पदार्थ श्रेष्ठ नहीं है जिस पुरुष से बढकर अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं है जिस पुरुष की अपेक्षया अधिक बडा पदार्थ नहीं हैं जो पुरुष द्युलोक में अर्थात् श्रीसाकेत लोक में वृक्ष के सामान सुख दुःखादि उपाधि से रहित होकर के अवस्थित है तादृश पर पुरुष से यह संपूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है । इस मन्त्र में पुरुष श्ब्द '**पुरुषान्न परः किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः**' '**पुरुष एवेदं सर्वम्**' '**उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः परमात्मेत्युराहृतः**' '**वन्दे महापुरुषते चरणारविन्दम्**' इत्यादि अनुशासन के अनुरोध से सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का वाचक है ऐसा सब वादी लोग मानते हैं इसमें किसी को विवाद नहीं है । इस प्रथम मन्त्र से सिद्ध होता है कि पुरुष पदवाच्य श्रीरामजी से भिन्न किसी भी पदार्थ का किसी भी प्रकार से श्रेष्ठत्व नहीं है । आगे इसी मन्त्र का अवयव है कि-'**यस्मान्नाणीयो न च ज्यायोऽस्ति कश्चित्**' अर्थात् जिस पुरुष को छोड कर दूसरा कोई भी पदार्थ सूक्ष्म नहीं है तथा श्रेष्ठ नहीं है किन्तु सर्वापिक्षया पुरुष ही सूक्ष्म तथा श्रेष्ठ है । पुरुष में सूक्ष्मत्व तथा श्रेष्ठत्व तथा श्रेष्ठत्व इसलिये है कि सर्वव्यापक होने से सूक्ष्म है और सब का नियामक होने से शासक होने से सर्वश्रेष्ठ है । इस प्रथम मन्त्र खण्ड से यह वतलाया गया कि पुरुष पद से प्रतिपादित श्रीरामजी को छोड कर अन्य कोई भी पदार्थ किसी भी प्रकार श्रेष्ठ नहीं होता है ।

सर्वेश्वरस्तथा। षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावतः ॥१३॥ सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेवहि मास्ते । स्वे महिम्निस्थिता-वावामन्याधारो न चावयोः ॥१४॥ सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च

पुरुषस्त्वन्यः' 'वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्' इत्यादिश्रुतिस्मृतिसामन्जस्यात् पुरुषपदेन सर्वेश्वरश्रीरामस्य ग्रहणमित्युभयसंमतम्। अनेनेदमायाति यत् पुरुषादन्यः श्रेष्ठो नास्ति तथा 'यस्मान्नाणीयो न च ज्यायोस्ति कश्चित्' अनेन मन्त्रावयवेन पुरुषव्यतिरिक्तस्य सूक्ष्मत्वश्रेष्ठत्वञ्चनिराकरोति पुरुषएव सूक्ष्मः श्रेष्ठश्चेति। अनेन प्रकारेण यदा पुरुषस्य सर्वश्रेष्ठत्वं प्रतिपादितं तदा तादृशपुरुषापेक्षया ततोऽतिरिक्तस्य कस्यचित् श्रेष्ठत्वं कथमिवाग्रिममंत्रेण प्रतिपादयितुं शक्येत । यत एवं स्वीकारे पूर्वोत्तरमन्त्रयोः स्पष्टमेव विरोधः स्यात् । स चाशक्यसमाधेय इति । ननु तर्हि-'यदुत्तरतरम्' इत्यादिद्वितीयोत्तरमन्त्रस्य का गतिरितिशङ्कायामाह नन्वेवं तर्हि ततो यदुत्तरमित्यादिवचनस्य कोभिप्रायः इत्यादि । 'तमेव विदित्वेत्यादि' 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।' (प्रकृतेः परं विद्यमानमादित्यवत्प्रकाशमानं महान्तं व्यापकंपुरुषं जानामि, योहि साधक एतादृशं पुरुषं जानाति स संसारसागरमतिक्रामति, परभक्त्यपरपर्यायज्ञानात् भिन्नस्तत्प्राप्तये मार्गान्तराभा-

प्रतिपादन करेगा, ऐसा माने तब पूर्वोत्तरमन्त्र में विरोध हो जायगा जिसका समाधान करना अशक्य हो जायगा।

पूर्व मन्त्र के साथ विरोध होगा, इस भय से यदि द्वितीय मन्त्र पुरुष व्यतिरिक्त में श्रेष्ठता का प्रतिपादन नहीं कर सकता है, तब द्वितीय मन्त्र की क्या गति होगी ? इस जिज्ञासा का समाधान करने के लिये कहते हैं '**नन्वेवं तर्हि ततो यदुत्तरम्**' इत्यादि यदि ऐसा हैं '**ततो यदुत्तरतरम्**' इत्यादि द्वितीय मन्त्र का क्या अभिप्राय होगा। इसका समाधान करने के लिये कहते हैं-'**इदमीय प्रकरणस्यारम्भे**' इत्यादि इस प्रकरण के आरंभ अर्थात् उपक्रम में यह मन्त्र आया है कि-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

अस्यार्थः मैं इस बात को समीचीनरूप से जानता हूं कि प्रकृति के पार अर्थात् विरजानदी के उस पार दिव्यधाम श्रीसाकेत में रहनेवाले आदित्य के समान देदीप्यमान शरीरवाले उस

सर्वशेषिणौ । नित्यलीलाविभूत्योस्तच्चावां नाथौ श्रुतौश्रुतौ ॥१६॥ आवां तो हि यतःकश्चिन्नाधिको न च यत्समः । सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा ॥१९॥ सर्वेशसर्वशक्तिश्च श्रीरामः सर्वकारणम्' ॥३८॥ इत्याद्यनेकस्थले श्रुत्युपवृंहणीभूतवशिष्ठसंहितादौ प्रतिपादना-

वादित्यर्थः ।) अस्मिन् मन्त्रे परमपुरुषज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वं तथा तदतिरिक्तस्य चामार्गत्वं प्रतिज्ञातम्। अस्याः प्रतिज्ञायाः समर्थनाय-'यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्' इत्यारभ्य 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' एतदन्तमन्त्रेण दर्शितं यत् स पुरुषः सर्वापेक्षया श्रेष्ठ इति । तदनन्तरं या पूर्वं प्रतिज्ञा कृता । यस्या समर्थनं पूर्वमन्त्रे कृतं तदुपसंहारः कृतः । 'ततो यदुत्तरमित्यादिमन्त्रस्यायमर्थः, यस्मात् पुरुषतत्वं सर्वतः श्रेष्ठम्, ततः स पुरुषः कर्मकृतप्रकृतरूपादिरहितः, यत्रेदमुच्यते- 'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यतिकश्चनैनम् 'अस्थूलमनणु अह्रस्वम्' इत्यादि । तथा प्राकृतशरीरसम्बन्धा-

महापुरुष जगत् कारण सर्वेश्वर श्रीरामजी को जान कर के ही साधक अतिमृत्यु को प्राप्त करता है अर्थात् संसारसागर का अतिक्रमण कर जाता है, यानि मुक्त होता है, यथोक्त महापुरुष को प्राप्त करने के लिये तदीय ज्ञान व्यतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इस उपक्रम मन्त्र में दो वस्तु की प्रतिज्ञा की गई है, एक तो परम पुरुष का ज्ञान मोक्ष का साधक है तथा द्वितीय प्रतिज्ञा यह है कि उसको छोडकर अन्य उपाय मार्ग नहीं है अर्थात् अन्य असत् मार्ग है क्योंकि उपायान्तर से मोक्ष नहीं प्राप्त होता है। इस उपक्रम मन्त्र से प्रतिपादित दोनों प्रतिज्ञा की समर्थन करने के लिये '**यस्मात्पंर ना परमस्ति किञ्चित्**' यहां से लेकर के '**तेनेदं पूर्वं पुरुषेण सर्वम्**' एतदन्त मन्त्र से यह बतलाया गया कि वह परम पुरुष सब प्रकार से सभी पदार्थों से अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसके बाद- '**ततो यदुत्तरतरम्**' यह द्वितीय मन्त्र '**वेदाहमेतम्**' इत्यादि मन्त्रोक्त उभय प्रकारक प्रतिज्ञा का, जिस प्रतिज्ञा का समर्थन '**यस्मात्परं नापरमस्ति**' इत्यादि प्रथम मन्त्र से समर्थन हो चुका है तादृश प्रतिज्ञा द्वय का उपसंहार किया जाता है '**ततो यदुत्तरतरम्**' इस द्वितीय मन्त्र से । '**ततो यदुत्तरतरम्**' इस द्वितीय मन्त्र का अर्थ यह है कि जिस कारण से सर्वेश्वर पुरुष तत्व प्रथम मन्त्र से सर्व श्रेष्ठ रूप से सिद्ध हो गया है, उस कारण से सर्वश्रेष्ठ बना हुआ पुरुषतत्व कर्मप्रयुक्त प्रकृति सम्बन्ध से रहित होने से प्रकृति जनित रूप से सर्वथा रहित तथा अनामय है अर्थात् प्राकृत शरीर द्वारा होनेवाले जो सुख तथा दु:ख प्रभृति कई दोष हैं उनसे रहित हैं जो साधक एतादृश सर्वश्रेष्ठ पुरुषतत्व को रूप से जानते हैं वे साधक मुक्त हो जाते हैं और जो साधक एतादृश सर्व श्रेष्ठ

त्सर्वेश्वरश्रीराम एव परमकारणमितिदिक् ।

श्रीरामस्यैवपरत्वमन्येषाञ्चविभूतित्वनिर्वचनम्

तत्र पूर्वोक्तदिशा नारायणानुवाके तथा 'ज्ञानशक्तिबलैश्वर्य वीर्यतेजांसि षड्गुणाः । भगत्वेनेरिताः सन्ति श्रीरामेभगवान् स तत् ।

विद्यमानमादित्यवत्प्रकाशमानं महान्तं व्यापकंपुरुषं जानामि, योहि साधक एतादृशं पुरुषं जानाति स संसारसागरमतिक्रामति, परभक्त्यपरपर्यायज्ञानात् भिन्नस्तत्प्राप्तये मार्गान्तराभावादित्यर्थः ।) अस्मिन् मन्त्रे परमपुरुषज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वं तथा तदतिरिक्तस्य चामार्गत्वं प्रतिज्ञातम् । अस्याः प्रतिज्ञायाः समर्थनाय-'यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्' इत्यारभ्य 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' एतदन्तमन्त्रेण दर्शितं यत् स पुरुषः सर्वापेक्षया श्रेष्ठ इति । तदनन्तरं या पूर्वं प्रतिज्ञा कृता । यस्या समर्थनं पूर्वमन्त्रे कृतं तदुपसंहारः कृतः । 'ततो यदुत्तरमित्यादिमन्त्रस्यायमर्थः, यस्मात् पुरुषतत्वं सर्वतः श्रेष्ठम्, ततः स पुरुषः कर्मकृतप्रकृतरूपादिरहितः, यत्रेदमुच्यते- 'न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यतिकश्चनैनम् 'अस्थूलमनणु अह्रस्वम्' इत्यादि । तथा प्राकृतशरीरसम्बन्धा-

द्वारा होनेवाले जो सुख तथा दुःख प्रभृति कई दोष हैं उनसे रहित हैं जो साधक एतादृश सर्वश्रेष्ठ पुरुषतत्व को रूप से जानते हैं वे साधक मुक्त हो जाते हैं और जो साधक एतादृश सर्व श्रेष्ठ पुरुषतत्व को नहीं जानते हैं वे लोग दुःखमय संसार को प्राप्त करते हैं। परन्तु **'ततोयदुत्तरतरम्'** इसका अर्थ यह नहीं है कि सर्वेश्वर रूप पुरुषतत्व से कोई तत्वान्तर रूप रहित तथा दोषरहित है, किन्तु यही अर्थ ही कि उपर्युक्त कारण से सर्वश्रेष्ठ बननेवाला पुरुषतत्व ही प्राकृत रूप रहित तथा दोष रहित हैं, इस पुरुष को जानने वाले को मोक्ष प्राप्त होता है तथा इस पुरुष को जो जाननेवाले नहीं हैं उनको दुःखमय संसार प्राप्त होता है । इस प्रकार यह द्वितीय-**'ततो यदुत्तर तरम्'** मन्त्र पूर्व कथित दोनों प्रतिज्ञाओं का उपसंहार करता है। यदि इस मन्त्र का ऐसा अर्थ न किया जाय तो प्रथम तथा द्वितीय मन्त्र में परस्पर विरोध हो जायगा, जिसका समाधान अशक्य हो जायगा। पूर्वपक्षी के मतानु सार मन्त्र में परस्पर विरोध हो जायगा, जिसका समाधान अशक्य हो जायगा। पूर्व पक्षी के मतानु सार **'ततो यदुत्तरतरम्'** यह उत्तर मन्त्र यह बतलाता है कि प्रथम मन्त्र कथित उस पुरुषतत्व से श्रेष्ठतर बननेवाले शिवतत्व बननेवाले शिवतत्व को जाननेवाले साधक ही मोक्ष को प्राप्त करेंगे, तदन्य सभी दुःखमय संसार में ही पडे रहेगें, इस तरह पूर्वपक्षी के मतानुसार अवश्य ही विरोध होगा, जिसका समाधान अशक्य है, परन्तु आचार्यश्री ने तो दोनों

श्रीरामेभगवच्छब्दोमुख्यवृत्त्याप्रवर्तते । गौण एव स चान्यत्र षड्विधैश्वर्यलेशतः ।' इत्याद्युक्तेश्च भगवतः श्रीरामस्य परब्रह्मत्वं

ज्जायमानसुखदुःखादिसम्बन्धरहितः । एतादृशं पुरुषं यो विजानाति स मुक्तो भवति, अन्ये दुःखभाजो भवन्तीति, 'ततो यदुत्तरतरम्' इत्यादेर्मन्त्रस्य नायमर्थः । यत् परपुरुषश्रीरामात् श्रेष्ठतरं किञ्चित् रूपादिरहितम् । किन्तु पूर्वोक्तयुक्त्या सर्वश्रेष्ठं पुरुषतत्वमेव प्राकृतरूपादिरहितम् तथा प्राकृतदोषरहितं चेत्येवार्थः । एतादृशं सर्वश्रेष्ठं तत्वं विजानन् मुक्तो भवति तदन्ये संसारदुःखभाजो जायन्ते । अनेन प्रकारेणायमन्त्रः पूर्वोक्तामेव प्रतिज्ञामुपसंहरति । इत्थमेव द्वयोर्मन्त्रयोरर्थः करणीयोऽन्यथा पूर्वोत्तरमन्त्रयो विरोधोऽशक्यसमाधेय एव स्यात् । तथाहि पूर्वमन्त्रेण पुरुषतत्वज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वं तदन्यस्याभावत्वं च सिद्ध्यति, पूर्वपक्षानुसारेण तु उत्तरमन्त्रेण पुरुषतत्वापेक्षया श्रेष्ठशिवतत्वज्ञानवानेव मुच्यते तदन्यो दुःखायते इतिपूर्वपक्षानुसारेण पूर्वोत्तरमन्त्रयोर्विरोधो नैवपरिहितो भवति । मूलानुसारेणार्थकरणेपूर्वोत्तरमन्त्रयोर्विरोधो न भवति तस्मान्मूलकारमतमेवसाधीयः । अनेन

मन्त्रों का अर्थ किया है तदनुसार पूर्वोत्तर मन्त्रों में परस्पर सामञ्जस्य अबाधित रहता है। इस प्रकार से **'ततो यदुत्तरतरम्'** यह द्वितीय मन्त्र पर पुरुषतत्व के श्रेष्ठत्व का वर्णन करते हुए पूर्व कथित दोनों प्रतिज्ञाओं का उपसंहार करता है, ऐसा मानना ही समीचीन है-

एवं-'सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥'

वह भगवान् शिव सब तरह के मुखमस्तक और ग्रीवा-कण्ठों से युक्त हैं सर्व भूतों की हृदयगुहा में रहनेवाले हैं वे सर्वव्यापक हैं तथा षड्विध ऐश्वर्य से युक्त हैं इसलिये शिवजी सर्वव्यापक हैं। यह तृतीय मन्त्र अन्य से शिवजी को श्रेष्ठ बतलाता हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीशिवजी ब्रह्म तथा परतत्व है अन्य नहीं।

इस मन्त्र में घटकरूप से जो शिवपद है वह भी भगवान् श्रीरामजी का ही वाचक है क्योंकि वे परपुरुष सर्वमगल करनेवाले होने से शिव कहलाते हैं, अन्यत्र भी कहा है-**'लाभस्तेषां जयस्तेषा कुतस्तेषां पराजयः । येषामिन्दीदलश्यामो हृदयस्थोजनार्दनः ॥'** इति एवं विष्णुसहस्रनामस्तोत्र में **'सर्वः, शर्वः शिव, स्थाणुः'** यह कहकर के यह शिव शब्द विष्णु का नाम है ऐसा कहा गया है इसलिये शिवशब्द महाविष्णु का वाचक है। एवम् नारायणानुवाक् में **'शाश्वतं शिव, मच्युतम्'** यह कहकर के भगवान् में शिवशब्द का प्रयोग किया गया है। और भी देखिये-**'सर्वाननशिरोग्रीवः'** यह कहकर के-**'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्'**

सविस्तरं प्रतिपादितम्। 'सहस्रशीर्षं देवम्' इत आरभ्य 'स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोक्षरः परमः स्वराट्' एतदन्तम्। सर्वोपनिषत्सु परत्व प्रतिपादनेच्छया प्रयुक्ताः, अक्षरशिवेशानशंभुपरंब्रह्मपरज्योतिः

प्रकारेण 'ततो यदुत्तरतरम्' अयंमन्त्रः पुरुषस्य श्रेष्ठतां वर्णयन् 'वेदाहमेतमित्यादिनाकृतां प्रतिज्ञामुपसंहरति। तस्मात् उत्तरपक्षिणा योऽर्थः कृत उभयोर्मन्त्रयोः स एवार्थः साधीयान् न तु पूर्वपक्षः समीचीन इति। एतदग्रे तृतीयोमन्त्रः श्वेताश्वतरोपनिषदि सोऽपि श्रीसीतानाथमेव प्रतिपादयति शिवादिपदघटितोऽपि। तथाहि-

'सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतःशिवः।' इति

अयमर्थः-स शिवः सर्वाननशिरोग्रीवः अनेकप्रकारकमुखग्रीवाकण्ठैः संबद्धः सर्व भूतगुहाशयः सर्वसत्वानां हृदयाकाशे वर्तमानः, सर्वव्यापकः सर्वैश्वर्यसंपन्नो यस्मात् तस्मादेव कारणात् सर्वव्यापक इति। अयं शिवपदघटितस्तृतीयो मन्त्रः परपुरुषश्रीरामस्यैववाचकः शिवशब्दस्य मंगलकारिणि सर्वविशुद्धे शक्तत्वात् स सर्वस्य मङ्गलं करोति परमशुद्धश्च तस्मात् शिवशब्दो भगवतो बोधकः। एवं विष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रे 'सर्वः शर्वः शिवः

इत्यादि पुरुषसूक्त का वाक्य है उसके अर्थ का संग्रह किया गया है तथा इस तृतीयमन्त्र में भगवान् पद देकर के पुरुष का ही वर्णन किया गया है। इन सब कारणों से यह सिद्ध होता है कि शिव पद घटित प्रकृत मन्त्र भगवान् पुरुष पदवाच्य श्रीराम का ही वर्णन करता है शिवजी का वर्णन नहीं करता है। एवम् इस मन्त्र के वाद **'महान् प्रभुर्वैपुरुषः सत्वस्यैव प्रवर्तकः,'** यह कहकर सत्व के सागर के होने के कारण सत्वगुण का प्रकाशन करने वाले महाप्रभु परपुरुष श्रीरामजी का ही वर्णन किया गया है क्योंकि भगवान् श्रीसीतानाथ ही सात्विक देवरूप से प्रसिद्ध हैं। इसप्रकार प्रथम तथा तृतीय मन्त्र में पुरुष का ही वर्णन है तो शिवपद घटित द्वितीय मन्त्र में भी मङ्गलकारी परमपुरुष भगवान् का ही वर्णन है। इस तरह से श्वेताश्वतर उपनिषद् वचन भी नारायणपरक सिद्ध होता है।

जिस तरह **'ततोयदुत्तरतरम्'** इत्यादि श्वेताश्वतरीय वचन से भगवान् में ही परमश्रेष्ठत्व सिद्ध होता है उसी तरह **'न सन्न चासच्छिव एव केवलः'** इत्यादि मन्त्र यद्यपि शिव महेश्वरादि पद घटित हैं तथापि प्रकरण के बल से यौगिकार्थ को लेकर के नारायण का श्रेष्ठत्व बतलाने में ही तात्पर्य रखते है इसलिये ये दोनों मन्त्र सर्वेश्वर के ही बोधक है किन्तु शिव महेश्वर पद से लोक प्रसिद्ध देवों का बोध नहीं होता है। शिवादि देव तो इन्द्रियादि देवों के समान उनकी विभूति मात्र

परतत्वपरायणपरमात्मसदात्मादिसर्वे शब्दाः सन्ति तान् सर्वानेव यौगिकवृत्त्या भगवति सर्वेश्वरे श्रीरामे प्रयुज्य तदतिरिक्तस्य सर्वस्यैव जडाजडस्य तदायत्ततां तद्व्याप्यतां तदाधारतां तन्नियाम्यतां तच्छेषतां तत्स्वरूपतां च कथयित्वा ब्रह्मादिदेवानामपीन्द्रादिसमानाकारकतया

स्थाणुः' इतिकथयित्वा भगवतो विष्णोरपि शिव इति नाम व्यक्तंतस्मात् शिवपदघटितोपि तृतीयमन्त्रो भगवन्तं परमपुरुषमेव बोधयति न तु शिवं बोधयति, तस्मात् श्वेताश्वतरवचनेन नास्ति कोऽपि विरोधः। न चायं नारायणे शिवशब्दप्रयोगोऽन्यत्राद्दृष्टचरः, नारायणानुवाके- 'शाश्वतं शिवमच्युतम्' इतिकथयित्वातत्र शिवशब्दस्य प्रयोगदर्शनात्। अपि च श्वेताश्वतरीयतृतीयमन्त्रे 'सर्वाननशिरोग्रीवः' इति वदत् 'सहस्त्रशीर्षापुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्' इतिपुरुषसूक्तवाक्यार्थस्यापि संग्रहः कृतः। तथा भगवानित्यत्र भगवत् पदप्रयोगं कृत्वा परपुरुषस्यैव वर्णनं कृतवान्। एभिः कारणैः शिवपदघटितोऽपि श्वेताश्वतरीयतृतीयो मन्त्रो भगवन्तमेव वर्णयामास न तु शिवमिति। किञ्च प्रकृतमन्त्रस्य पश्चात् 'महान् प्रभुर्वैपुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः' इति उक्त्वा सत्वगुणाश्रितस्य महापुरुषस्य वर्णनं कृतवान्,

होने से तन्नियम्य तथा तत् शेषरूप हैं। इत्यादि वस्तुओं को समझाने के लिये उपक्रम करते हैं- **'यद्यपि न सन्नचासच्छिव एव केवलः'** इत्यादि यहां पर पूर्वपक्षवादी हैं शैव, उनका ऐसा अभिप्राय है कि जिस तरह **'एकोह वै नारायण आसीत्'** इस कारण वाक्य में भगवान् नारायण को समस्त चराचर जगत् का कारण कहा गया है उसी तरह-**'यदा तमस्तन्नदिवा न रात्रिर्नसन्न चासच्छिव एव केवलः'** (अर्थात् जिस समय में केवल मूलप्रकृति ही थी दिनरात नहीं थे अर्थात् रात दिन का व्यवहार नहीं था, सत् पृथिव्यादि तेजोन्तमूर्तप्रपञ्च नहीं था, तथा असत् वायु आकाशरूप अमूर्त प्रपञ्च भी नहीं था, उस समय में केवल सर्व कल्याण कारक शिवतत्व था। अन्यत्र भी कहा-

'तदास्तिमितगंभीरं न तेजो न तमस्ततम्।
अनाख्यमनभिवक्तं सत् किञ्चिदवशिष्यते॥ इति'

इस मन्त्र से शिवजी जगत्कारणतत्व सिद्ध होते हैं क्योंकि शिवजी प्रलयकाल में भी रहते हैं। और भी देखिये नारायणोपनिषद् में कहा है **'यः परः स महेश्वरः'** यहां महेश्वर पद प्रतिपाद्य श्रीशिवजी सो सर्वत्र ब्रह्मविद्या में उपास्य माना गया है। इन सब कारणों से सिद्ध होता हैं कि

तस्य विभूतित्वं कथितम् । अत्र प्रकरणे नान्यस्य कस्यापि वस्त्वन्तर स्यापि वस्त्वन्तरस्य विधानमपि तु केवलपरतत्वस्यैव विधानम् । अस्मिन् वाक्ये प्रतिपादितस्य सर्वापेक्षयोत्कृष्टतया वर्तमानस्य परमात्मनोऽन्यत्र वाक्यान्तरेषु 'ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्' इत्यादिस्थलेषूपासनमात्रं प्रतिपाद्यते।

प्रतिपादितम् । तथैव 'यदा तमस्तन्नदिवा न रात्रिर्नसन्नचासच्छिव एव केवलः' अस्मिन् कारणवाक्ये शिवस्य कारणत्वप्रतिपादनात्सशिव एव कारणं प्रलयकालवृत्तित्वात् । अपि च नारायणोपनिषदि 'यः परः स महेश्वरः' इतिकथनेन शिवस्यैव सर्वश्रेष्ठत्वं कुतोनेति शैवप्रश्नमाकलय्य प्राह न सन्नचासच्छिव एव केवल इत्यादि । अस्मिन् मन्त्रे शिवशब्देन श्रीरामचन्द्र एवोक्तो भवति नतु शिवः । यतः सामान्यरूपेणकारणतत्वोपस्थापकं सर्व कारणवाक्यम् विशेषरूपेणकारणतत्वोपस्थापक 'एको ह वै' इति वाक्येन सहैकवाक्यतापन्नं सत् सर्वेश्वरमात्रं कारणं प्रतिपादयति, शिवादयस्तुतद्विभूतिरूपा एव इत्यपि प्रतिपादितमिति ततो न शिवादिः कारणमुपास्यो वेति, किन्तु सर्वेश्वर एवोपास्यो जगत् कारणमिति चेति । एभिः कारणैः 'शिवः एव केवलः' इत्यत्र शिवशब्दो श्रीरामात्मकनारायणस्यैव वाचक इति निश्चित्य तस्यैव जगत्कारणत्वमिति । एवम्

'न सन्न चासच्छिव एव केवलः' इस वाक्य से सर्वेश्वर श्रीरामजी का ही प्रतिपादन होता है शिवजी इस मन्त्र से प्रतिपादित नहीं होते हैं क्योंकि सामान्यरूप से कारणतत्व का प्रतिपादन करनेवाले सभी कारणवाक्य विशेषरूप से कारणतत्व के प्रतिपादन करनेवाले **'एको ह वै'** इस कारण वाक्य क साथ समन्वय को प्राप्त करके एक मात्र ब्रह्मको ही जगत् का कारण बतलाते हैं। नारायणानुवाक से ही सब ब्रह्मविद्या में उपास्य सिद्ध किये गये हैं। ब्रह्मा तथा शिव प्रभृति की सृष्टि तथा विनाश होता है ब्रह्म के द्वारा यह बात शास्त्र समधिगत है शिव तथा महेश्वर शब्द का तो व्युत्पत्ति के बल से अनेक अर्थों में प्रयोग होता है। अतः शिव शब्द को ब्रह्म श्रीरामजी का वाचक मान करके **'न सन्नचासच्छिव एव केवलः'** इस वाक्य से ब्रह्म का ग्रहण करके उसको सर्वजगत का कारण मानना ही युक्ति संगत है।

एवं-'**तद्वेदादौस्वरः प्रोक्तोवेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।**
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥'

प्रणव ओंकार को स्वर कहते हैं यह स्वयं मन्त्र है और इसी स्वर के सम्बन्ध से तदितर भी मन्त्र कहे जाते हैं। यह प्रणव वेद के आदि तथा अन्त में रहने वाला है। इससे सिद्ध होता है कि प्रणव

ॐ अथर्वशिखोपनिषदि श्रीरामपरत्वनिर्वचनम् ॐ

अथर्वशिखोपनिषदः सर्वेश्वरश्रीरामबोधकत्वे एव तात्पर्यं न तु शिवादीनां ध्येयता बोधकत्वे तात्पर्यम् । यतः 'प्राणं मनसि सहकरणैः' एतद्वाक्यं सर्वस्य कारणीभूते परपात्मनि चक्षुरादिकारणप्राणादिक

यद्वदादौस्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥

प्रणव ओंकारः स्वर इत्युच्यते स च प्रणवोमन्त्रः, तत्संबन्दादेव मन्त्रान्तरेऽपि मन्त्रत्वम् स च प्रणवो वेदस्यादौ वेदोत्पत्तेः पूर्वं तथा वेदान्ते वेदस्यलयकालेऽपीति, अतः स प्रणवो वेदस्यकारणं घटमृत्तिकावत् प्रणवादेव वेदस्योत्पत्तिः तथा वेदस्य प्रणवे एव लयः 'ओंकारप्रभवा वेदाः' इत्यादि वचनात् । वेदकारणरूपस्य प्रणवस्य कारणमकारः तस्मिन्नकारे लीनोभूत्वा अकारस्यरूपं धारयतः प्रणवस्यार्थात्-अकारमात्रस्य यो हि वाच्योऽर्थः स एव महेश्वरोमहान् ईश्वर इति मन्त्रार्थः । अकारस्यवाच्योऽर्थो भगवान् विष्णुरेव 'अकारोविष्णुवाचकः' इति वचनात् विष्णुर्नारायणश्चैक एव न तयोर्भेदः । अनेन प्रकारेणायं प्रकृतोमन्त्रो नारायणमेव महेश्वरमितिब्रुते न तु शिवम्, अन्यथा 'न तस्येशेकश्चन' इति मन्त्रविरोध आपद्येत । तस्मान्नारायण एव महेश्वर इति सिद्ध्यति न तु शिवः प्रकृते महेश्वरपदवाच्य इति । एतत्सर्वं अपि च इत्यादि प्रबन्धेन प्रदर्शितमिति 'यद्वेदादौस्वरः

वेद का कारण है क्योंकि प्रणव वेदोत्पत्ति (प्रकट) के पूर्व में भी रहता है तथा वेद के लय के वाद में भी व्यवस्थित रहता है। **'ओंकार प्रभवा वेदाः'** इससे सिद्ध होता है कि प्रणव से वेद की उत्पत्ति तथा प्रलय होता है इसलिये प्रणव वेद का बीज कारण कहलाता है। प्रणव का कारण अकार है, अकार में लीन होकर अकाररूप को धारण करनेवाला इस प्रणव का वाच्य जो अर्थ है वह महेश्वर अर्थात् महान् ईश्वर है। **'तस्य वाचकः प्रणवः'** इति। **'अकारो विष्णु वाचकः'** इस प्रमाण से अकार का वाच्य विष्णु है। इसप्रकार **'यः परः स महेश्वरः'** यह मन्त्र नारायण का ही वाचक है शिव का वाचक नहीं है। यदि शंकर को महान् ईश्वर मानें तब तो-**'न तस्येशेकश्चन'** इससे विरोध होगा। अतः यह मन्त्र ब्रह्म को ही महान् ईश्वर बतलाता है। उपर्युक्त मन्त्र का भावार्थ यह है कि समस्त वेद का प्रकृति मूलकारण प्रणव ओंकार है प्रणव का मूलकारण अकार है प्रणवोत्पादित वेद प्रणव में प्रलीयमान हो जाता है तथा अकार से उत्पादित प्रणव अकार में लीन हो जाता है तब अकार मात्र अवशिष्ट रह जाता है एतादृश अकार का वाच्य जो अर्थ है वह महेश्वर हैं। सर्ववाचक शब्दक शब्द का परम मूलकारण अकार है तथा सभी वाच्य अर्थों का मूलकारण भगवान् हैं इन दोनों मूलकारणों

विश्वं विकारजातं प्रविलाप्य तादृशं च परपकारणं परमात्मानं 'सर्वस्येशानं ध्यायीत' इतिपरब्रह्मस्वस्वरूपस्यैवानुध्यानं प्रतिपादयति। ततः 'पतिविश्वस्य' 'न तस्येशेकश्चन' इत्यनेन च परमकारणस्य तस्यैव सर्वेशानत्वं प्रतिपादितं

प्रोक्त' इत्यादिमन्त्रस्य तात्पर्यार्थस्त्वयम् समस्तवेदस्य मूलकारणं प्रणवः प्रणवस्य च मूलकारणमकारः, प्रणवाज्जातो वेदः प्रणवे एव विलीयते अकाराज्जातः प्रणवोऽन्तेऽकारेप्रलीयते अतोऽकारमात्रमवशिष्यते, तादृशाकारस्य वाच्योयोऽर्थः स महेश्वरः। सर्ववाचकशब्दानां मूलकारणमकारः तथासर्ववाच्यार्थानामूलकारणं नारायणः अनयोर्मूलकारणयोर्वाच्यवाचकभाव एव सम्बन्धः 'तस्यवाचकः प्रणवः' इतियोगसूत्रोक्तेः। वाच्यवाचकयोस्तादात्म्यस्यान्यत्रव्यवस्थापनादितिभावः। अमुमर्थं गीतायांकृष्णोऽर्जुनायाह 'अहं कृत्स्नस्यजगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्तिधनंजय !।' (७।६) अर्थात्-हे धनंजय ! हे अर्जुन ! अहमेव श्रीकृष्णोऽस्य चराचरजगत-उत्पत्तिस्थितिलयकारणम्, अहमेव सर्वापेक्षया श्रेष्ठो मदन्यः कश्चित् श्रेष्ठतरोनास्ति। एवम् 'अक्षराणामकारोस्मि' अक्षराणांवर्णसमाम्नायानां सर्वस्यकारणं सर्वस्मात् श्रेष्ठोऽकारोऽहमेवास्मि। एतेन वाचकवाच्ययोरकारेश्वरयोर्वाच्यवाचकभावः संबन्धः

में वाच्य वाचकभाव सम्बन्ध है इस में अकार वाचक है तथा सर्व वाच्य का कारण पर ब्रह्म श्रीराम वाच्य हैं। अतः भगवान् श्रीराम शब्द वाच्य पदार्थ मात्र का कारण हैं ऐसा सिद्ध हुआ। इस बात को गीता में भगवान् ने अर्जुन को कहा है-'**अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा। मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय !।।**' अर्थात् हे धनंजय ! मैं इस चराचर जगत् का उत्पत्ति कारण तथा प्रलय का कारण हूँ, मैं ही सर्वश्रेष्ठ हुं-**मुझ से** अतिरिक्त कोई भी पदार्थ श्रेष्ठतर नहीं है। **अक्षराणामकारोस्मि**' अर्थात् मैं अक्षरों में वर्ण समाम्नाय मैं अकार हूं। इस कथन से भगवान् श्रीकृष्ण तथा परतत्व ब्रह्म में वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध का निर्देश किया है। एवम् '**अ इति ब्रह्म**' इस श्रुति वाक्य से भी वाच्य भाव सिद्ध होता है। '**अकारो वै सर्वावाक्**' यह श्रुति वाक्य अकार सभी शब्दोंका कारण है ऐसा बतलाता है। इस वाक्य में कार्य कारण भाव के बल से अकार तथा तदितर सभी शब्दों में अभेद सिद्ध होता है मृत्तिका तथा घट के समान। इस से पर ब्रह्म श्रीराम तथा नारायणादिक में एकत्व सिद्ध होता है। एतादृश श्रीसीतानाथ को महेश्वर कहकर '**यः परः स महेश्वरः**' यह मन्त्र श्रीसीतानाथ को दहर विद्या में उपास्य बतलाता है। दहर विद्या के विशेष जानकारी के लिये '**दहर उपपत्तेः**' इस ब्रह्मसूत्र के जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजी का आनन्दभाष्य

भवतीति। अत एव 'सर्वैश्वर्यसंपन्नः सर्वेश्वरः शंभुराकाशमध्ये ध्येयः' इति अथर्वशिखोपनिषद्वाक्यमपि शंभुपदबोध्यस्य सर्वजगत् कारणस्य ध्यानं विदधाति, न तु शिवस्य ध्यानं दर्शयति, यतः शिवादीनां सर्वकारणत्वाभावात्। 'कश्चध्येयः' इत्यारभ्य 'कारणं तु ध्येयः' इति

स्पष्टीकृतः। तथा 'अ इति ब्रह्म' अनेन श्रुतिवाक्येनापि अकारब्रह्मणोर्वाच्यवाचकभाव एवसंबन्धः प्रकाश्यते। 'अकारोवै सर्वावाक्' इतिश्रुतिरकारः सर्वशब्दानांकारणमिति वक्ति। अस्मिन् वाक्ये कार्यकारणभावबलेन अकारे तदितरसर्वशब्दे चाभेदः प्रतिपाद्यते। एवं च अकारवाच्ये ब्रह्मणि तथाऽकारवाच्ये विष्णावभेदः कथितः। एतादृशाकारवाच्यपदं प्रयुज्यतस्यैव दहरविद्यामुपास्यत्वं 'यः परः स महेश्वरः' इति मन्त्रोब्रवीति। अन्यत्सर्वं मूलोक्तदिशैवावगन्तव्यमिति संक्षेपः।

अथयेयं दहरविद्यातत्राकाशपदवाच्यपुरुषान्तर्निहितशिवतत्वस्यैव

तथा जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र का भाष्य विवरण के साथ मेरी हिन्दी टीका को देखें ?। इस मन्त्र में महेश्वररूप से वर्णित नारायण के विषय में नारायणानुवाक बतलाता है कि नारायण ही सर्व श्रेष्ठ तत्व है। यह अनुवाक परतत्व का निर्णय करने के लिये प्रवृत्त है अन्य वस्तु को नहीं बतलाता है। स्तावकादि वाक्यों में जहां अन्य देवता का कथन है और ब्रह्म के असाधारण धर्म का भी उल्लेख तब उस स्थल में ब्रह्म का ही बोध होता है देवतान्तर का बोध नहीं होता है इस बात को '**शास्त्र दृष्ट्या तूपदेशोवामदेववत्**' इस सूत्र में सूत्रकार ने कहा है इस विषयपर विषय विवेचन इस सूत्र के जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामप्रपन्नाचार्यजीयोगीन्द्रकृत श्रीरघुवरीयवृत्ति विवरण में तथा मेरी सारबोधिनी में देखिये। इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि शिवमहेश्वरादि पद घटित भी मन्त्र समुदाय शिव महेश्वर का यौगिक अर्थ को लेकर के पर ब्रह्म को ही परतत्वरूप से प्रतिपादन करते हैं किन्तु शिवजी का प्रतिपादन नहीं करते हैं। जिस तरह '**आकाशस्तल्लिङ्गात्, तथा प्राणः**' इत्यादि सूत्रों में आकाश प्राणादिक पदों से पर ब्रह्म को ही परतत्वरूप से बतलाया गया है किन्तु आकाशादि पद से आकाश में परतत्व की सिद्धि नहीं होती है, उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये। इस विषय पर विस्तृत विचार अन्यत्रकरूंगा स्वतन्त्ररूप से विस्तार भीति से यहां विरत होता हूं।

छान्दोग्य में जो दहर विद्या कही गई है उस में भगवान् से श्रेष्ठ में शिवजी का कथन है तथा शिवतत्व ही सर्वापेक्षया श्रेष्ठ है तथा शिवतत्व ही जिज्ञास्य एवं उपासनीय है भगवान् सर्वापेक्षया श्रेष्ठ

कार्यस्य ध्येयत्वं निराकृत्य कारणमात्रस्यैव ध्येयत्वप्रतिपादनेन सर्वाराध्यश्रीरामस्यैव परमकारणत्वं शंभुपदवाच्यत्वं च तत्र प्रतिपादितमिति तस्यैव परमकारणत्वं नान्यस्येति ।

विजिज्ञाससितव्यत्वमुपास्यत्वञ्चेति शिवतत्वमेव परमिति शैवमतम् प्रदूष्य तत्राकाशपदवाच्यपरमपुरुषान्तर्गततदीयगुणाष्टकस्य विजिज्ञासितव्यत्वंध्येयत्वं तथा परमपुरुषस्यापि तथात्वमर्थाद् विजिज्ञासितव्यत्वमुपास्यत्वमिति तदुभयमुपास्यं न तु तदतिरिक्तशिवादितत्वस्य तथात्वमिति दर्शयितुमुपक्रमते यत्तुअथयदिदमस्मिन् इत्यादि । 'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरेदहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्त आकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वावविजिज्ञासितव्यम्' परमपुरुषो हि समुपासनाय शरीरे निविष्टः, एतत् षाट्कौशिकं शरीरं परमपुरुषस्य निवासस्थानमिति व्यपदिश्यते अत्र नवद्वाराणि इतिपुरसदृशमिदं शरीरम्, अत्र शरीरेऽत्यल्पं हृदयकमलंविद्यते तदन्तः सूक्ष्माकाशस्तत्रनिहितं यत्तत्वं तस्यैव श्रवणादिकंकर्तव्यम् तदेवोपासनीयं च । यो ये हृदयान्तर्गतः सूक्ष्माकाशः स च परमपुरुष एव यत आ समन्तात् काशते इत्याकाश इति व्युत्पत्या सर्वव्यापको भूत्वा

नहीं हैं एतादृश जो शैवों की शंका है उसका निराकरण कर के आकाशपद वाच्य परमपुरुष के मध्य में क्या वस्तु हैं । इसका उत्तर देते हुए कहेंगे कि भगवान् के अन्दर में निहित गुणाष्टक हैं वे परम पुरुष की तरह जिज्ञासनीय है तथा उपासनीय है इस बात को समझाने के लिये उपक्रम करते हैं 'यत्तु' इत्यादि, अर्थात् दहर विद्या में शिवजी भगवान् से श्रेष्ठ तथा उपास्य सिद्ध होते हैं दहर विद्या का प्रकरण इस तरह हैं-'**अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म, दहरोऽस्मिन्नन्तरे आका- शस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्ठव्यं तद्वावविजिज्ञासितव्यम्**' (अर्थात् सभी का उपास्य वनने के लिये परब्रह्म इस षाट्कौशिक शरीर में विद्यमान रहते हैं । यह शरीर ब्रह्म का निवासस्थान होने से ब्रह्मपुर कहलाता है इस शरीर में नौ द्वार हैं इसलिये यह शरीर पुर नगर के सदृश है इस शरीर में दहर छोटा हृदय कमल है, यह ब्रह्म का निवास करने के लिये गृह है । इस हृदय कमल के अन्दर में दहर छोटा सा आकाश है इस स्वल्पाकाश के मध्य में जो निहिततत्व है उसका श्रवणमनन करना चाहिये तथा उसका ध्यान अर्थात् उपासन भी करना चाहिये ।) यहां आकाशपद सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का बोधक है क्योंकि **आ समन्तात् काशते इत्याकाशः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार सर्वव्यापक होकर के प्रकाशमान होने के कारण परमपुरुष आकाश पद वाच्य होते हैं । और इस आकाश के विषय में कहा है '**आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता**' अर्थात् आकाशनामरूप का निर्वाहक है । पुरुष

卐 श्वेताश्वतरोपनिषदोऽपिपरपुरुषेनिर्वचनम् 卐

यद्यपि 'ततो यदुत्तरतरम्' 'सर्वाननशिरोग्रीवः' इत्यादिना श्वेताश्वतरवचनेन श्रीसीतानाथात्पुरुषादतिरिक्तस्यशिवस्य परत्वं ज्ञायते इति कथं तस्य सर्वश्रेष्ठत्वमित्युक्तम् । तथापि-'यस्मात्परं नापरमस्ति

प्रकाशमानत्वादाकाशपदवाच्यः । अयमाकाशः 'आकाशो ह वै नामरूपयोर्निर्वहिता' इत्यादिश्रुत्यानामरूपयोर्निर्बाहकः । एवम् 'सर्वाणि रूपाणिविचिन्त्यधीरोनामानि कृत्वा' इत्यादिश्रुत्या परमपुरुषस्य नामरूपकर्तृत्वं प्रतिपादितम्, इति सोयमाकाशः पुरुषसूक्ते वर्णितः परमपुरुष एव । एतस्याकाशस्यमध्येनिहितं तत्वमेव श्रवणीयं मन्तव्यं तथा समुपास्यमिति कथितम् । तत्राकाशपदवाच्यपरमपुरुषान्तर्गतकीदृक् तत्वमिति पर्यनुयोगे शिवतत्वमेव श्रेष्ठः इति शैवमतानुयायिनां पूर्वपक्षः ।

अत्राह तत्र इत्यादि । अयमाशयः-अतः परम् 'दहरोऽस्मिन्नन्तरे आकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाविजिज्ञासितव्यम्' इति प्रश्नस्योत्तरं स्वयमेव श्रुतिराह 'यावान् वाऽयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदये आकाशः' यथा बाह्याकाशो व्यापकः तथा परमपुरुषरूपान्तराकाशोपिव्यापक इति व्यापकत्वादुभयोः साम्यमेवेति श्रुतिर्वदतीति

सूक्त में भी कहा है-'**सर्वाणिरूपाणि विचित्यधीरो नामानि कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते**' इसमें परमपुरुष श्रीरामजी को नामरूपोपलक्षित पदार्थ मात्र का कर्ता है, ऐसा कहा है । इससे सिद्ध होता है कि आकाश पद वाच्य श्रीरामजी हैं वह नामरूप का निर्वाहक कर्ता है । इसके आगे श्रुति कहती है कि इस दहराकाश के अन्दर विद्यमान तत्व का श्रवण मनन तथा ध्यान-उपासन करना चाहिये ।

अब यहां जिज्ञासा होती है कि दहराकाशपदवाच्य तत्त्व के अभ्यन्तर वर्ती अति सूक्ष्म पदार्थ क्या होगा । इस पर शैव लोग कहते हैं कि तादृश तत्त्व के मध्य के निहित पदार्थ शिवतत्व है इस दहराकाश वाच्य तत्त्व के अन्दर में रहनेवाले तत्त्व के नियामक जो शिवतत्व है उसका उपासन करना चाहिये । इससे यह सिद्ध होता है कि शिवतत्व अन्य से श्रेष्ठतर है ।

इसप्रकार का जो शैवों का प्रश्न है उसका उत्तर देने के लिये कहते हैं '**तत्र** इत्यादि, अर्थात् इस प्रश्न का उत्तर तो श्रुति ने स्वयं कर दिया है परन्तु जिनको श्रुति के पूर्वापर का ज्ञान नहीं है तथा आनन्दभाष्य कारादिक महापुरुष निर्मित ग्रन्थों का अध्ययन नहीं है वे लोग एतादृश कुतर्कों का उत्थान करते हैं । आगे उपनिषद् में '**दहरोऽस्मिन्नन्तर आकाशः किं तत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं**

किंचिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चत्' यस्मात् परम् यतो भिन्नं किञ्चिदपि परं नास्ति । अर्थात् केनापि प्रकारेण पुरुषभिन्नस्यपरत्वं नैवविद्यते । अणीयस्त्वं सूक्ष्मत्वम् ज्यायस्त्वंसर्वेश्वरत्वं सर्व व्यापकत्वादिति । पुरुषव्यतिरिक्तस्यसूक्ष्मत्वं ज्यायस्त्वं च नास्तीति ।

हृदयकमलान्तर्गतः परमपुरुषसर्वेश्वरश्रीराम एव नान्यः तादृशाकाशे द्यावापृथिव्योरन्तः समाहितत्वम् 'उभे अस्मिन् द्यावा पृथिवी' इत्यादिना सर्वाधारत्वं परमपुरुषस्यकथितम् । अत्राकाशे किं निहितमत्र श्रुतिराह 'अस्मिन् कामाः समाहिता' अर्थात् दहराकाशपदवाच्यपरमपुरुषे कल्याणगुणानिहिता ते च के ? इतिजिज्ञासायामाह 'एष आत्माऽपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोको विजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' इति । पापजराराहित्यादयाः सत्यसङ्कल्पान्ता अष्टौ कल्याणगुणा भगवति निहिताः यथा परमपुरुष उपासनीयस्तथा तदीया अष्टौ गुणा अपि पृथक् पृथक् समुपासनीयाः । अयमर्थः- दहराकाशवाच्ये किं निहितम् ? दहराकाशेपरमपुरुषे जगत्स्त्रष्टृत्वजगदाधारत्वजगन्नियामकत्वजगत्स्वामित्वमपहतपाप्मत्वलक्षणं गुणाष्टकंनिहितमित्युत्तरश्रुतेः ।

यद्वाववविजिज्ञासितव्यम्' (अर्थात् हृदय कमल के अन्दर में रहनेवला जो आकाश है सो तो अत्यन्त छोटा है इस के अन्दर में क्या रह सकता है जिसका श्रवण मनन तथा उपासना किया जाय अर्थात् अति स्वल्प इस आकाश के अन्दर में कुछ नहीं रह सकता है । श्रुति में किं शब्द आक्षेपार्थक हैं । ऐसा प्रश्न का आशय है । इस प्रश्न के उत्तर में आगे श्रुति कहती है कि-'यावान् वाऽयमाकाशस्तावान् एषोऽन्त हृदये आकाशः' अर्थात् वाहर में दिखनेवाला भूताकाश जितना बडा है उतना बडा ही हृदय कमल के अन्दर में रहनेवाला आकाश है । आर्थात् हृदयाकाश अत्यन्त छोटा नहीं है किन्तु बहुत बडा है क्योंकि अन्तहृदयाकाश परमब्रह्मरूप है और ब्रह्म तो सर्वव्यापक है इससे श्रुति ने परमपुरुष में अपार महत्त्व का वर्णन किया है । इसके आगे पुनः श्रुति कहती है 'उभे अस्मिन् द्यावाभूमी समाहिते' इस वाक्य से यह कहा गया कि आकाशपद वाच्य जो यह परम पुरुष सर्व व्यापक है वह संपूर्ण चराचर जगत् का कारण हैं इसलिये द्यावा पृथिव्योपलक्षित सकल जगत् का आधार हैं तथा उस परम पुरुष में संपूर्ण जगत् निहित हैं । यह कहने के बाद उस सूक्ष्माकाश वाच्य में क्या निहित है ? इस प्रश्न के आगे श्रुति स्वयं कहती है कि-'अस्मिन् कामाः समाहिताः' अर्थात् इस दहराकाश वाच्य परम पुरुष में काम निहित है अर्थात् भक्तों से अभिलषणीय अपहतपाप्मत्वादिक सत्य सङ्कल्पान्त आठ कल्याण गुण निहित है वे कल्याण गुण निहित है वे कल्याण गुण ये आठ

नन्वेवं तर्हि 'ततोयदुत्तरमित्यादिवचनस्य कोऽभिप्रायः ? इदमीयप्रकरणस्यारंभे 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था' इत्यादिना यथोक्तपुरुषज्ञानस्य मोक्षकारणतातदतिरिक्तस्यामार्गतां च प्रतिज्ञाय 'यस्मात्परम्' 'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्' एतदन्त प्रकरणेन

अयमर्थः श्रुत्यैव पुष्टो भवति 'अथ य इहात्मानमनन विद्य व्रजन्त्येतांश्चसत्यान् कामान् तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीति ।

ननु अथर्वशिखोपनिषदि 'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सर्वे संप्रसूयन्ते' इतिमन्त्रे शिवेन्द्रादिभिः सह विष्णोरप्युत्पत्तिः श्रूयते । विष्णुश्रीरामयोरभेद इतिविष्णोरुत्पत्ति कथनात्कथं तस्य सर्वापेक्षया परत्वं ध्येयत्वं चेति शैवप्रश्ननिराकरणा यविष्णोरुत्पत्तिर्नभवति लोकोपकाराय स्वेच्छया अवतारग्रहणं भवति तदेवजन्मतस्येत्यादिकंदर्शयितुमुपक्रमते यद्यपिपरमकारणीभूतस्य इत्यादि, अयंभावः- अथर्वशिखोपनिषदि 'कारणं तु ध्येयः' इत्यादिना प्रकरणेन जगत्कारणस्य ध्यानमात्रमादिशति

हैं 'एष आत्माऽपहत पाप्मा विजरोविमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' अर्थात् यह परमात्मा परम पुरुष पापजरामृत्युशोकवुवुक्षा तथा पिपासा इन दोषों से रहित हैं तथा अप्राकृतिक नित्यभोग्यपदार्थवान् हैं तथा सत्य सङ्कल्प वाले हैं इनका जो सङ्कल्प है वह अमोघ है ।

'एष आत्माऽपहतपाप्मा' इत्यादि उपर्युक्त श्रुति ने अपहतपाप्मत्वादिक आठ कल्याण गुणों का वर्णन कर के यह बतलादिया कि ये आठ गुण परमपुरुष में निहित हैं । जिस तरह दहराकाशपदवाच्य परमात्मा का ध्यानोपासन करना चाहिये, उसी तरह परमात्मा में निहित इन कल्याण गुणों का भी पृथक् रूप से उपासन करना चाहिये । इसी बात को बतलाने के लिये श्रुति ने 'तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्' यह कह कर के इस बात को बतलाया है इस दहराकाश पदवाच्य परम पुरुष में निहित कल्याण गुणों का ध्यान करना चाहिये । अर्थात् इस दहराकाश पद वाच्य परमेश्वर में क्या निहित है ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रुति ने कहा कि दहराकाश परमात्मा में जगत् स्रष्टृत्व जगदाधारत्व जगत् नियन्तृत्व जगत्स्वामित्व तथा अपहतपाप्मत्वादिक कल्याण गुण रहते हैं परमात्मा से पार्थक्येन इन गुणों का उपासना करना चाहिये, इससे यथा परमात्मा उपासनीय हैं उसी तरह तदीय तदन्तर्निहित

पुरुषस्य श्रीसीतानाथस्य सर्वापेक्षया परत्वं कथितं यस्मात्पुरु-षतत्वमवात्तरात्तर ततायदुत्तरतर पुरुषतत्वं तदेवारूपमनामयम् 'य एतद्विदुरमतास्त भवन्ति । अथतरदुःखमवापियन्ति' इत्यादिना पुरुषज्ञानस्य माक्षकारणत्व तदतिरिक्तस्यामार्गतायाश्चोपसंहारः कृतः ।

न तु जगत्कारणं किमिति दर्शयति । अमुक एव जगत् हेतुरिति निर्णयस्तु जगत् कारणताप्रतिपादकवाक्यसमूहैः सहैकतापन्नो नारायणानुवाको जगत्कारणतांदर्शयति जगत्कारणस्य ध्यानमात्रमथर्वशिखोपनिषद्वाक्यं नियमयति सर्वश्रुतिवाक्यसमन्वये न तु तस्यैव परत्वं सिद्धयति । गीतादिस्मृतिपुराणादिग्रन्थेभ्यो यथा जीवस्य जन्मग्रहणं भवति तथैव सर्वजगत्कारणस्य परेशस्यापि जन्म भवतीति ज्ञायते । इयांस्तु विशेष उभयत्र यत् परेशस्तु स्वस्वभावमत्यजन्नेवजन्मगृह्णाति जीवस्तुं स्वभावं हित्वा जायते । परमात्मनः शरीरमप्राकृतिकंजीवस्य शरीरं तु प्राकृतिकं प्रकृत्या संपादितम्, परेशस्तुस्वेच्छया जायते जीवस्तुकर्मपराधीनः । भगवतो जन्मग्रहणं लोकोपकाराय, जीवस्य तु शुभाशुभ-

कल्याण गुण भी समुपासनीय हैं यही '**तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्**' का अभिप्राय है । इसप्रकार श्रुति ने स्वयमेव इस प्रश्न का परिहार किया है ।

अभिप्राय यह है कि दहराकाशपदवाच्य वह परम ब्रह्म को जो कि लीला के रूप में समस्त चराचर जगत् का उत्पाद संरक्षण तथा प्रलय को करते रहते हैं । एतादृश परमात्मा के अभ्यन्तर में रहने वाले अपहतपाप्मत्व प्रभृतिक आठगुण रहते हैं जो कि उत्कर्ष की परम काष्ठा को प्राप्त किये हुए हैं एतादृश दहराकाशपद वाच्य परमात्मा तथा तादृश परमात्मा के कल्याण गुणाष्टक इन दोनों का उपासन साधक को करना चाहिये, यह '**अस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्**' इस श्रुति का तात्पर्य पूर्वापर प्रकरण से अवगत होता है । इस प्रकरण में अर्थात् दहर विद्या के प्रकरण में तो शिवजी की उपास्यता का कोई अवसर नहीं है । इस प्रकरण में तो जगत् कारण श्रीसीतानाथ तथा उनका जो गुणाष्टक है उसका वर्णन तथा उन दोनों में उपास्यत्व का कथन है । यह विषय अग्रिम श्रुति वचन से विल्कुल स्पष्ट हो जाता है '**अथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येतांश्च सत्यान् कामान् तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति**' अर्थात् जो भक्त साधक इस दहराकाश पदवाच्य परमात्मा तथा इन सत्य कल्याणा गुणों का उपासन कर के पर लोक में जाते हैं उन भक्त साधकों को भुरादि सभी लोकों में स्वेच्छानुसार संचरण आवागमन होता है उनकी इच्छाओं का विघात कभी भी कहीं भी नहीं होता है। उपर्युक्त इस वचन में दहराकाशपदवाच्य परमात्मा तथा उनके कल्याण गुणों की उपासना का स्पष्ट

अन्यथोपक्रमसंहारयोर्विरोधः 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः' 'वन्दे महापुरुषते चरणारविन्दम्' इत्यादिवेदोपबृंहणभूतस्मृतिवचनविरोधश्च स्यादिति ध्येयम् । कथं तर्हि शिवादिपदस्य पुरुषभगवति प्रयोगः । शुद्धिगुणादियोगेन शिवपदस्य पुरुषेऽपि प्रयोगेन विरोधपरिहारात् ।

कर्मफलोपभोगायेति । तदुक्तमभियुक्तैः 'जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा' इति । अर्थात् जगदुपकाराय भगवान् लीलाभूमिमवतरति न तु तदीयजन्मकारणं शुभाशुभंकर्मतस्मिन् तदभावात् । अत एव जीवस्य जन्म इति कथ्यते भगवतस्तु तदवतारमात्रम् । एतादृशवैशिष्ट्यसद्भावादेव भगवतो जन्मतदवतार इति व्यपदिश्यते । अयमर्थः सर्वप्रथमं 'रक्षांविधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्' इत्यादिरूपेण श्रीमद्रामायणप्रतिपादितदिशा सर्वेश्वरश्रीरामब्रह्मशिवयोर्मध्ये विष्णुरूपेणावतरति, अतः स एव त्रिमूर्तिपदव्यपदेश्यो भवति । अनेन क्रमेण त्रित्वसंख्यां पूरयितुं स्वेच्छया जगद्धिताय तन्मध्येऽवतरति, एतावता ब्रह्मशिवयोः प्रतिष्ठा महती जाता। भगवत एतादृशावतार एव 'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्तेसर्वे संप्रसूयन्ते' इतिश्रुतौ वर्णितः तत्र ब्रह्मशिवादीनां मुख्यमेव जन्मेति तज्जन्म एव श्रीरामाख्यविष्णोस्त्ववतारः । एवं परेशो न केवलं त्रिमूर्तावेवावतरितः किन्तु

निर्देश प्राप्त होता है। अन्तिम श्रुति वाच्य के अनुसार '**अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे**' इत्यादि श्रुति का भी ऐसा ही अर्थ करना चाहिये ।

उत्तर ग्रन्थ का संक्षिप्त भावार्थ यह है कि यहां दहराकाशपदवाच्य परमेश्वर ब्रह्म श्रीसीतानाथजी ही हैं उन में निहिततत्व उनका कल्याण गुणाष्टक है किन्तु परमेश्वर के अभ्यन्तर में निहिततत्व शिवजी नहीं हैं इसलिये दहरविद्या प्रकरण से उन से श्रेष्ठत्व शिवजी में सिद्ध नहीं होता है अतः दहर विद्या प्रकरण से जो शिवतत्व को श्रीरामतत्व से श्रेष्ठ का प्रयास किया था वह प्रयास सर्वथा निष्फल हैं ।

अब यहां शैव सम्प्रदायवाले पुनः प्रश्न करते हैं । वे लोग कहते है कि विष्णु तथा श्रीराम आदिसब तो एक ही तत्व हैं अर्थात् ये सब अभिन्न हैं, तो इसमें विष्णु की उत्पत्ति होती है ऐसा '**ब्रह्म विष्णुरुद्रेन्द्रास्ते संप्रसूयन्ते**' (अर्थात् ब्रह्माजी भगवान् विष्णु रुद्र तथा इन्द्रादिक देवों का जन्म होता है ।) यह बात अथर्वशिखोपनिषत् के मन्त्र में कहा गाया है अर्थात् जिस तरह ब्रह्मा रूद्रादिक देवों का जन्म होता है उसी तरह विष्णु का भी जन्म होता है तो नारायणादिक का भी जन्म सिद्ध होता ही है ऐसा मानना आवश्यक होगा, इस स्थिति में श्रीरामादिक को परब्रह्म कहना कहां तक युक्त होगा ?

'शाश्वतं शिवमच्युतम्' इत्यादौ पुरुषेऽपि शिवादिपदप्रयोगस्तथा 'महान्प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः' 'सर्वः' 'शर्वः शिवः स्थाणुः' इत्यादावपि ।

महेन्द्ररूपेण देवे कृष्णरूपेण भुवोभारावताराय वसुदेवगृहे मनुष्ये वेदोद्धारायमत्स्ये पृथिव्या उद्धाराय वराहपशौ । एवम् तस्य तस्योपकाराय स्वेच्छया तत्र तत्रावतारग्रहणमकरोत् 'वासुदेवादिमूर्तीनां चतुर्णां कारणं परम् । चतुर्विंशतिमूर्तीनामाश्रयः शरणं मम । महदादिस्वरूपेण संस्थितः प्राकृते पदे । ब्रह्मादिदेवरूपैश्च श्रीरामः शरणं मम । (बृहद्ब्रह्मसंहिता) 'वासुदेवतया रामःकंसादीनवधीत् खलु । तस्मै श्रीकृष्णरूपाय श्रीरामाय नमो नमः । हेतुरिच्छावतारे साधुत्राणादित्रयं फलम् । सर्वावताररूपाय श्रीरामाय नमो नमः (श्रीबोधायनमतादर्शः) इत्याद्यागमोक्तेः । एतावता स्वस्य स्वेच्छाचारित्वं स्वकीयं माहात्म्यञ्चाभिव्यञ्जयामास 'सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः' 'सर्वेषामवताराणा-मावामेवावतारिणौ' (वशिष्ठसंहिता) इत्यागमोक्तेः । एवमनेकेऽवतारा भगवतो भवन्ति, तत्र विष्णुरूपेण प्राथमिकोऽवतारः, अयमेवावतारः 'ब्रह्मविष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सर्वेसंप्रसूयन्ते' इति श्रुतौदर्शितः । एतावता मूलत्वे भगवति श्रीरामे न कापि बाधा जायते ।

इसप्रकार का जो शैव का प्रश्न है उसका उत्तर देने के लिये उपक्रम करते हैं-**'यद्यपि परम कारणीभूतस्य'** इत्यादि, यद्यपि परम कारणरूप सर्व श्रेष्ठ जो भगवान् महाविष्णु है उनका भी कार्य स्वरूप जो ब्रह्मा शिव प्रभृतिक देव हैं उनके साथ उत्पत्ति प्रकरण में जन्म का श्रवण होता है, तथापि विष्णु का जो जन्म ग्रहण है वह ब्रह्म शिवादिकों की संख्यापूर्त्यर्थ जगत कल्याण को दृष्टि में रख करके स्वेच्छा से अवतार ग्रहणरूप है किन्तु जीव की तरह मुख्य जन्म ग्रहण नहीं है। यद्यपि से लेकर के मूलग्रन्थ का अभिप्राय यह है कि अथर्वशिखोपनिषत् में **'कारणं तु ध्येयः'** (कारण का ध्यान करना चाहिये) यह कह कर के कारण के ध्यान मात्र का प्रतिपादन किया गया है, किन्तु जगत् का कारण कौन है इसका कथन तो नहीं किया है, तब जगत् कारणता प्रतिपादनपरक-**'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते'** इत्यादि जगत्कारण प्रतिपादक वाक्यों का नारायणानुवाक के साथ समन्वय-एक वाक्यता करने से यही सिद्ध होता है कि श्रीरामचन्द्रजी ही जगत् का कारण परतत्व हैं, अब जगत्कारणीभूत श्रीराम का ही ध्यान करना इस बात को अथर्व शिखोपनिषत् वाक्य बतलाता है। गीता स्मृति पुराणादि वचनों से ज्ञात होता है कि सर्वकारणीभूत परम पुरुष भी जन्म लेते हैं, जिस तरह जीव का जन्म होता है, उसी तरह भगवान् भी जन्म लेते हैं। परतु इन दोनों के जन्म में इतना भेद है जो ध्यान देने के योग्य है। तथाहि भगवान् स्वकीय स्वभाव जो समग्र ऐश्वर्य रूपादिक है उन

॥ शिव एवकेवलः परः समहेश्वर इत्यादीनांश्रीरामपरत्वम् ॥

एतेन 'न सन्नचासच्छिव एवकेवलः' 'यः परः स महेश्वरः' इत्यादिशैवमतमपिनिरस्तम् । अपि च न तस्येशेकश्चन' इत्यादिना विवर्जितसमाभ्यधिकभावस्यपरमपुरुषस्य 'अणोरणीयान्' इत्यनुवाके

सृष्टिस्थितिप्रलयप्रतिपादकप्रकरणेषु परमपुरुषस्यैव कारणत्वं प्रतिपादितमिति तस्यैव ध्येयत्वं नान्यस्यशिवादेरिति 'शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये' (वशिष्ठसंहिता) 'ध्येयंसदापरिभवघ्नम्' (भागवतः) इत्याद्यनेकशास्त्रालोडनेनज्ञायते । इत्यलंपल्लवीतेन ।

ननु शैवा हि संगिरन्ति यदथर्वशिर उपनिषदि रुद्रस्थानं गतेभ्यो देवेभ्योरुद्रः स्वकीयमैश्वर्यं विस्तृतरूपेणप्रदर्शितवान् इति रुद्र एव सर्वेभ्यः श्रेष्ठो न ततोतिरिक्तः श्रेष्ठ इति तस्यैवोपासनमायाति न तु तदतिरिक्तस्येत्याकारकशैवानां प्रश्नंनिराकर्तुं स्वमतं च सूत्रभाष्यकारपुराणादिवचनैर्दर्शयितुमुपक्रमते यद्यप्यथर्वशिरउपनिषदि इत्यादि 'देवा ह वै स्वर्गलोकमगमन् ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानिति, सोऽब्रवीत् अहमेकः प्रथममासं वर्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तोव्यतिरिक्त इति' (कदाचिदेकदा इन्द्रादयो देवाः स्वर्ग

स्वभावों का परित्याग न करते हुए जन्म ग्रहण करते हैं क्योकि मत्स्य कूर्म वराह नृसिंहादिक अवतारों में ऐश्वर्य का अनुव्रजन होता है ऐसा पुराणादि ग्रन्थों से विदित होता है। और जीव स्वकीय स्वभाव का परित्याग कर के जन्म ग्रहण करता है। तथा भगवान् का श्रीविग्रह शरीर अप्राकृतिक है, अर्थात् प्रकृति के विकार से जायमान नहीं होता है और जीव का जो षाट् कौशिक शरीर है वह प्राकृतिक होता है अर्थात् प्रकृति जनित पृथिवी जलादि का विकाररूप होता है, अतएव विनाशी होता है अपूर्वोत्पाद वाला होता है। एवं भगवान् जो जन्म लेते है वह स्वेच्छा से होता है अर्थात् भगवान् के जन्म में पराधीनता नहीं रहती है किन्तु लोकोपकार के लिये स्वेच्छा मूलक है और जीव शुभाशुभ कर्म पराधीन होकर के जन्म ग्रहण करता है। और परमात्मा के जन्म ग्रहण का प्रयोजन लोककल्याण है अर्थात् भगवान् जन्म ग्रहण कर के भक्तों का तो उपकार करते ही हैं उत्पथगामी को शिक्षा भी देते हैं। अत एव अभियुक्तों ने अन्यत्र भी कहा है-**'जगतामुपकाराय न सा कर्म निमित्तजा'** (अर्थात् श्रीभगवान् संपूर्ण जगत् के उपकार करने के लिये जन्म ग्रहण कहते हैं परन्तु भगवान् के जन्म ग्रहण में शुभाशुभ कर्म कारण नहीं है) यद्यपि कार्यमात्र के प्रति कर्म कारण है इस प्रकार से कर्म तथा कार्य में कार्यकारण भाव व्यवस्थित है, तथापि यह नियम लौकिक कार्य विषयक है अर्थात् लौकिक कार्य के प्रति शुभाशुभ कर्म निमित्त कारण होता है। भगवान् का जन्म अप्राकृतिक

समस्तवेदराशेराद्यन्तरूपत्वेन वेदकारणोंकारस्य मूलकारण 'अपदवाच्यतयामहेश्वरत्वं कथयित्वादहरपुण्डरीकमध्यस्थिताकाशान्तरवृत्तितयासमुपास्यत्वं प्रतिपादितम् । अर्थात् समस्तस्य वेदराशेरोंकारः प्रकृतिमूलकारणं कथितः । तथा प्रणवस्य मूलकारणं प्रकृतिरकारः

लोकंरुद्रलोकंगतवन्तः तत्र गत्वा एकाकिनमासीनं रुद्रन्तेऽपृच्छन् को भवानिति, तदुपश्रुत्य स रुद्रो देवानब्रवीत् एक एवाहं सृष्टेः प्रथमं पूर्वमासम्, इदानीमपि तिष्ठाम्येक एव पुनः प्रलये एक एव भविष्यामि, मदतिरिक्तोऽन्यः कश्चिन्नास्ति एतावता 'एकमेवाद्वितीयमिति श्रुत्यर्थ उपक्षिप्तः इति मन्त्रार्थः) एवं क्रमेण रुद्रः स्वकीयमैश्वर्यं देवेभ्यो वर्णयामास, एतावतारुद्र एव परतत्वपरंब्रह्म इति सिद्ध्यति । ततो रुद्रादतिरिक्तः सर्वेश्वरो नास्तीति प्रश्नाशयः । अमुं प्रश्नमुत्तरयितुं प्राह तदपिसोन्तरादन्तरं प्राविशदित्यादि । 'सोन्तरादन्तरं प्राविशत् दिशश्चान्तरं प्राविशत्' सः परमात्मा सर्वेश्वरः शरीराभ्यन्तरवर्त्ति प्राणाद्यन्तरवर्तिजीवात्मनि वर्तते तथा दिशादिजडपदार्थान्तर्गतजीवात्मनि प्रविश्य वर्तते, अतः सर्वोऽपि पदार्थः परमपुरुषात्मक एवेति सर्वत्रान्तर्यामिरूपेणावस्थितोयः परमात्मा स

है इसलिये यहां वह पूर्वोक्त नियम लागू नहीं होता है ।

इस उपर्युक्त प्रकार से वैशिष्ट्य रहने के कारण से ही भगवान् के जन्म को अवतार कहते हैं । वह परम पुरुष सब से पहले ब्रह्मा तथा महेश के मध्य में अवतार लेते हैं । भगवान् का विष्णु रूप से प्रथम अवतार हुआ, इसलिये ये तीनों ब्रह्मा विष्णु महेश त्रिमूर्ति शब्द से व्यवहृत होते हैं । इसतरह तीन संख्या की पुर्ति करने के लिये परम पुरुष श्रीसीतानाथ जीने स्वेच्छा से चराचर जगत् का कल्याण करने के लिये ब्रह्मा और महेश के मध्य में अवतार लिया है । ब्रह्मा महेश के मध्य में अवतार लेकर उस परम पुरुष में अपने सौलभ्य को अभिव्यक्त किया और ब्रह्मा महेश को स्व समान बनाकर ब्रह्मा महेश की प्रतिष्ठा को बढा दिया । सर्वेश्वर श्रीरामजी का जो एतादृश ब्रह्मा महेश के मध्य में विष्णुरूप से अवतार हैं, इसी का वर्णन '**ब्रह्मा विष्णुरुद्रेन्द्रास्ते सर्वे संप्रतूयन्ते**' इस श्रुति में किया गया है । इस श्रुति में जो ब्रह्मा तथा महेश का जन्म कहा गया है वह तो मुख्य ही जन्म है इतर जीव की तरह । और इस श्रुति में परम पुरुष का जो जन्म कहा गया है वह जन्म नहीं है किन्तु अवतार है । उस परम पुरुष ने त्रिदेवों में अवतार लिया इतना ही नहीं किन्तु भगवान् ने देवताओं की संख्या को पूर्ण करने के लिये उपेन्द्र के रूप से लीलावतार के धारण किया है । एवं चन्द्रवंश में उत्पन्न क्षत्रियों में एक संख्या को बढ़ाने के लिये तथा पृथिवी के भार को हटाने के लिये वसुदेवजी के घर में लीलावतार को धारण किया । इस प्रकार से मत्स्य वराहादि के रूप में भगवान् का अनेक अवतार होता

इतिप्रणवस्य कार्यविकारोवेदराशिः सस्वप्रकृतिभूते प्रणवे विलीनः प्रणव ओंकारोप्यकारस्य विकाररूप इतिस्वप्रकृतावकारे लीन इतितादृशस्य प्रणवभूतस्याकारस्य यः परोवाच्यः स एव महेश्वर इति सर्ववाचकजातप्रकृतिभूताकारवाच्यः, सर्ववाच्यजातप्रकृतिभूतो विष्णुरिति तथोक्तं गीतायां भगवता-

ममाभ्यन्तरेप्यन्तर्यामिरूपेण वर्तते यथा जगद् ब्रह्मात्मकंतथाहं रुद्रोऽपि ब्रह्मात्मक एवेति श्रुत्यर्थः । अनया श्रुत्येदमावेदितं भवति यत् रुद्रः स्वस्यान्तर्यामिणमनुसन्धाय यथोक्तरूपेण रुद्रोव्याजहारः । तस्मात् रुद्रद्वारावर्णितैश्वर्यं रुद्रान्तर्यामिण एव तदैश्वर्यं न तु रुद्रस्य स्वकीयमैश्वर्यमिति न रुद्रः संर्वोत्कृष्टः किन्तु रुद्रस्य योऽन्तरात्मा परमपुरुषः स एव सर्वश्रेष्ठ इति तस्यैव ध्येयत्वमिति ।

अमुमर्थं सूत्रकारोऽपि 'शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववदिति ब्रह्मसूत्रे प्रतिपादितवान् तत्र प्रतर्दनविद्यायामिन्द्रः प्रतर्दनं प्राह-'मामुपास्व' अस्यायमभिप्रायः, मामुपास्व-अर्थात् मदन्तर्यामिण उपासनं कुरु । तदत्रान्तर्यामिण उपासने एवेन्द्रस्याभिप्रायो न तु इन्द्रस्योपासनेऽभिप्रायः । एवमेव प्रकृतरुद्रवाक्येऽपि परमपुरुषानुप्रवेशस्यैव वर्णनम् उपर्युक्तसूत्रानुसारेणरुद्रोहिस्वात्मान्तर्यामिण ऐश्वर्यं वर्णयामास न तु स्वस्यैश्वर्यं वर्णितवान्

है परन्तु भगवान् का जन्म कहीं नहीं होता है । इसी बात को गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा है कि- **'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः । त्यक्त्वा देहं पुन र्जन्म नैति मामेति सोर्जुन ! ॥'** जब भगवान् के दिव्य जन्म तथा कर्म को जो जाननेवाले हैं उनका जन्म नहीं होता है तब भगवान् का जन्म होता है यह कहना तो सर्वथा असंभवित है । इस तरह भगवान् के अनेक अवतार हैं जिन में एक विष्णुरूप में भी अवतार है इसी की चर्चा-'**ब्रह्मा विष्णुरुद्रेन्द्रास्ते**' इस श्रुति में है । एतावता मूलतत्व श्रीसीतानाथ के परत्व श्रेष्ठत्व में कोई क्षति नहीं होती है । सृष्टि प्रलय प्रकरण में श्रीसीतानाथ ही परतत्व के रूप में बतलाये गये हैं । '**सर्वेषामवताराणामवतारीरघूत्तमः**' '**रक्षांविधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवान्**' इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है ।

एक समय में देवतालोग रुद्र लोक में गये वहां उनको रुद्र से वातचीत हुई उसमें देवताओं को रुद्र ने अपने माहात्म्य का वर्णन किया । उस अथर्वशिर उपनिषद् वाक्य से सिद्ध होता है कि रुद्र ही सर्वश्रेष्ठ तथा ध्येय हैं । इस प्रकार का जो शैवों का प्रश्न है उनका निराकरण कर के परम पुरुष सर्वेश्वर श्रीसीतानाथजी को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये उपक्रम कहते हैं- '**यद्यपि अथर्वशिर**

'अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।
मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ! ॥'

'अक्षराणामकारोस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च' इति । 'अ' इति

ततो न रुद्रस्यपरत्वं सिद्ध्यति, किन्तु परमपुरुषस्यैवैश्वर्यं प्रसाधितं भवति रुद्रवाक्यादिति परमपुरुष एव सर्वेभ्यः श्रेष्ठः समुपास्यश्च भवतीत्युत्तरप्रकरणस्याभिप्रायः ।

यथा रुद्रवाक्येन रुद्रान्तर्यामिण एवैश्वर्यवर्णनं फलितं तथैव प्रह्लादवाक्येनापि परमपुरुषस्यैवैश्वर्यं सिद्ध्यतीति दर्शयति ।

'सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातन ॥' इति ।

अस्यार्थः-अनन्तः, त्रिविधपरिच्छेदरहितो भगवान् परमपुरुषः सर्वगः सर्वत्र गच्छति विद्यते इति सर्वगः सर्वव्यापकः, यस्मादयं सर्वव्यापकस्तस्मात् अहमपि भगवत्स्वरूपो मत्सकाशादेव सर्वं चराचरं जगत् जातम्, अहमेव सर्वपदार्थरूपः सनातन इति सिद्ध उत्पादविनाशरहित इत्यर्थः, एतादृशे मयि प्रलयकाले सर्वं जडचेतनात्मकं वस्तुनिहितं स्थापितमिव वर्तते, एतावता 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति श्रुत्यर्थः प्रकाशितः, अर्थात् सर्वपदार्थानामुत्पत्तिस्थितिप्रलयामत्त एव भवन्तीति ।

उपनिषदि' इत्यादि 'देवा हि स्वर्गं लोकमगमन् गत देवा रुद्रमपृच्छन्, को भवानिति, सोऽब्रवीत् अहमेकः प्रथममास, वर्तामि च, भविष्यामि च नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति' (कदाचित् इन्द्रादि देव गण स्वर्गलोक में अर्थात् रुद्रलोक में गये थे उस रुद्र लोक में विराजमान रुद्रदेव से उन देवों ने प्रश्न किया कि आप कौन है ? तब रुद्र देव ने उत्तर दिया कि मैं अकेला पहले जगदुत्पत्ति के पूर्व काल में था, अभी भी अकेला ही रहता हूं, आगे भविष्य में भी अकेला ही रहूंगा, मुझ से अतिरिक्त कोई नहीं है ।) इस प्रकार रुद्र ने स्वकीय ऐश्वर्य का विस्तार पूर्वक वर्णन किया । इससे सिद्ध होता है कि रुद्र देव ही परतत्व पर ब्रह्म हैं विष्णु आदि ये सब परतत्व परब्रह्म नहीं हैं ? इस तरह शैवों का प्रश्न है ।

इसका उत्तर देने के लिये कहते हैं-'तदपि सोन्तरादन्तरं प्रविशत्' इत्यादि, रुद्र ने जिस महात्म्य का वर्णम किया है वह माहात्म्य रुद्र का नहीं है किन्तु रुद्र का अन्तर्यामी जो श्रीसीतानाथ हैं उनके ऐश्वर्य का वर्णम है । इस बात को स्पष्ट करने के लिये कहते हैं-'सोन्तरादन्तरं प्राविशत्'

ब्रह्मेति श्रुतेः । 'अकारो वै सर्वावाक्' इति च वाचकसमुदायस्याकारः प्रकृतिः वाच्यसमुदायस्य च ब्रह्मप्रकृतिरिति । तस्मात् परब्रह्मणोऽकारवाच्यत्वकथनादकारवाच्यो ब्रह्मपदाभिलप्यः श्रीराम एव महेश्वरपद-

प्रकृतपौराणिकश्लोके 'सर्वगोऽनन्त' इतिहेतोः कथनात् 'अहमस्मिपरमात्मेति कथितम् । अस्यायमभिप्रायः सर्वोपि जडचेतनानामात्मा तदनेनक्रमेण स परमात्मा सर्वं व्याप्य तिष्ठति । अतः सर्वोऽपि नडचेतनपदार्थः परमात्मनः शरीरं तदेकदेशरूप इत्यर्थः, तथा परमात्मा च सर्वेषां जडचेतनवाचकः शब्दः सर्वशरीरकं परमात्मानं प्रतिपादयति । यथा मनुष्यशरीरवाचको देवदत्तयज्ञदत्तादिशब्दो देवदत्तशरीरावच्छिन्नं देवदत्तचेतनपर्यन्तं बोधयति यथा देवादिशरीरवाचकोदेवादिशब्दो देवादिशरीरावच्छिन्नचेतनं देवमपि बोधयति, शरीरवाचकपदानां शरीरिपर्यन्तबोधकत्वात्, तथैव प्रकृतेऽहमिति अस्मत् शब्दो वक्तुर्जीवस्यान्तर्यामिशरीरी, तत्पर्यन्तं बोधयतीति अहमिति बुद्धिकाल सर्वशरीरकपरमात्मपर्यन्तस्यानुसंधानं कर्तव्यमेव परमात्मपर्यन्तस्यानुसन्धानं कृत्वा यदि 'अहमित्यस्मच्छब्दस्य प्रयोगः क्रियते तदा अहं परमात्मेति कथनं सर्वथोचितमेव । अहमस्मीत्यादि अहं बुद्धौ परमात्मानं सन्निवेश्य यदि समुपासनं करोति तदा

'दिशश्चान्तरं प्राविशत्' (सर्वान्तर्यामी परमपुरुषः अन्तरात् शरीरान्तरवर्त्ति प्राणादितोऽपि यदन्तरं मध्यनिविष्टं जीवतत्वं तत्र प्रविश्य तिष्ठति तथा दिसा प्रभृति जडपदार्थस्यान्तरे वर्तमानम् यत् जीवतत्वं तत्रापि प्रविष्टः) अर्थात् इस मन्त्र से रुद्र देव कहते हैं कि हे देव ! वह परमात्मा सर्व जगत् का कारणीभूत परम पुरुष शरीर के अभ्यन्तर वर्त्ति जो प्राणादिक तत्व हैं उन प्राणादितत्वों के अभ्यन्तर में रहनेवाले जीवात्मा में भी प्रविष्ट हो कर के रहते हैं तथा इस जगत् में रहनेवाले जो दिशा आदि जडपदार्थ हैं उन पदार्थों के अन्दर में रहने वाले जीवात्मा में भी प्रवेश कर के रहते हैं अतः पदार्थ ब्रह्मात्मक है इससे रुद्र ने यह बतलाया कि जगत् के अन्तः प्रविष्ट हो करके रहनेवाले परमात्मा मुझ रुद्र के अन्दर में भी विद्यमान हैं जिस तरह जगत् ब्रह्मात्मक है उसी तरह मैं रुद्र भी ब्रह्मात्मक हूं, तो उपर्युक्त वचन से स्पष्ट हो जाता है कि अपने अन्तर्यामी का अनुसंधान कर के रुद्र ने इन प्रकार कथन किया है । रुद्र द्वारा वर्णित ऐश्वर्य अन्तर्यामी परमात्मा का है किन्तु रुद्र का स्वकीय ऐश्वर्य नहीं है क्योंकि देवताओं का प्रश्न अन्तर्यामी विषयक था और रुद्र ने अपने अन्तर्यामी की महिमा का वर्णन करके देव प्रश्नों का उत्तर दिया । इस बात को श्रुति ने स्पष्ट रूप से बतलाया । सूत्रकार ने 'शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्' इस सूत्र के द्वारा उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन किया है । प्रकृत

बोध्यो न तु शिवादिः 'राम एव परंब्रह्म रामएव परंतपः । राम एव परंतत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्' (श्रीरामोपनिषद्) यज्ञकर्ता यज्ञभोक्ता यज्ञभर्त्ता महेश्वरः । अयोध्यामुक्तिदः शास्ता श्रीरामः शरणं मम (बृहद्ब्रह्मसंहितास्थनारायणकृतशरणागतिः) इत्यादिश्रुतिस्मृत्युक्तेः स एव

तस्याहंग्रहोपासनमिति संज्ञा भवतीति ।

यतः-सर्वावस्थावस्थितजडचेतनपदार्थेषु अन्तर्यामिरूपेण परमात्मनोऽवस्थानं निराबाधमेव । सोयं परमात्माकारणावस्थायां सूक्ष्मजडचेतनपदार्थानामन्तर्यामितयाऽवतिष्ठते, यथा स एव परमात्मा कार्यावस्थायां नामरूपप्रविभागावस्थायां स्थूलचेतनाचेतनामन्तर्यामितयाऽवतिष्ठते सर्वोऽपि पदार्थः परमपुरुषादेवोत्पद्य तत्रैवावस्थितो भवतीति । स्वकीयाहं बुद्ध्या न जीवमात्रं जानीयात् किन्तु जीवान्तर्यामिणं परमात्मानमपि ज्ञात्वाऽहं बुद्ध्या परमात्मानमुपासीतेति ।

सूत्रकारोऽयमर्थः 'आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च' इति सूत्रे प्रतिपादितवान् भक्तो हि साधकः परमात्मानम् आत्मेति ज्ञात्वा परमात्मोपासनं कुर्यात् शास्त्रो हि

रुद्र वाक्य में परमात्मा के अनुप्रवेश का वर्णन है, यहां उपर्युक्त सूत्र के अनुसार यह सिद्ध होता है कि रुद्र ने स्वकीय अन्तर्यामी के ऐश्वर्य का वर्णन किया है, इससे रुद्र में सर्वापेक्षया परत्व सिद्ध नहीं होता हैं किन्तु अन्तर्यामी का परत्व है । प्रह्लाद ने भी ऐसा ही बतलाया है-

'सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थतः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥'

अर्थात् अनन्त भगवान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक हैं अतः मैं प्रह्लाद भी ब्रह्मात्मक हूं, मुझ से मदन्तर्यामी से ही सब जड चेतन पदार्थ उत्पन्न हुआ है, मैं ही सब कुछ हूं सर्वस्वरूप हूं और सनातन उत्पाद व्यय रहित मुझ में सब पदार्थ निहित हैं अर्थात् प्रलयकाल में सब पदार्थ मुझ में मदन्तर्यामी में प्रलीयमान हो जाते हैं इससे-'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति अत्प्रयन्त्यभिसंवियन्ति**' इस श्रुति का जो अर्थ है उसका इसमें अनुवाद किया गया है । जीव परमेश्वर का शरीर है और शरीर शरीरी में तादात्म्य होने से मैं सर्वात्मक हूं अर्थात् मेरा जो शरीरी है वह सर्वात्मक है, यह समझकर के अपने में मैं सर्वात्मक हूं ऐसा प्रयोग किया गया है । जिस तरह राजा के गौरव से राजा का मन्त्री भी अपने में राजोचित व्यवहार करता है उसी तरह जीव भी स्व स्वामी परमेश्वर में सर्वात्मकता है तो उस सर्व स्वरूप में व्यवहार कर के 'मुझ में सब निहित है' ऐसा कहा है ।

'सहस्त्रशीर्षं देवम्' इतिकेवलपरतत्वविशेषप्रतिपादकेन नारायणानुवाकेन सर्वेभ्यः परत्वं प्रतिपादितम् । अनन्यपरेण शास्त्रेण प्रतिपादितं वस्तुपरतत्वमन्यपरेषु सर्ववाक्येषु येन केनापि शब्देन प्रतिपादितंसत्तदेवावगम्यते इति 'शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववदितिसूत्रे

जीवात्मपरमात्मनोः शरीरात्मभावसम्बन्धं दर्शयित्वा अहं बुद्धौ परमात्मानमनुसन्धाय परमात्मानमुपासीतेति प्राह । यथा प्रदर्शितस्थलेषु अहं बुद्ध्या परमात्मोपासनमवोचत्, तथैव अथर्वशिर उपनिषदि रुद्रोऽपि अहं बुद्ध्या परमात्मानमाकलय्य परमात्मनो माहात्म्यमेव देवेभ्यो वर्णयामास नतु स्वकीयमाहात्म्यमवोचदितिदिक् ।

अथ अथर्वशिरउपनिषदि रुद्रेण यत्स्वमाहात्म्यं वर्णितं तदैश्वर्यं न रुद्रदेवस्य किन्तु रुद्रान्तर्यामिणः परमपुरुषस्येति कथितं किन्तु हेतुस्तत्र न प्रदर्शितः । न च प्रतिज्ञामात्रेण वस्तुनः सिद्धिर्भवति तथा सति सर्वस्य सर्वत्रसिद्धिप्रसङ्गादिति हेतोरस्मन्यासोऽवश्यमेवकरणीयः । तदुक्तम्-'सम्भावितः प्रतिज्ञायां पक्षः साध्येत हेतुनेति । तदिदहेतुप्रदर्शनायोपक्रमते 'भगवान्नारायणापरपर्यायः' इत्यादि, न वयं वचनमात्रेण रुद्रस्य न स्वकीयमैश्वर्यमपितु तदन्तर्यामिण इति प्रतिपादयामः । किन्तु महाभारतादिवचनप्रामाण्यात्तथा स्वीकुर्म इति तद्वचनमुदाहरति-

अर्थात् उपर्यपक्त कथन का अभिप्राय यह है कि समस्त जड चेतन पदार्थ परमात्मा का शरीर है परमात्मा सब की आत्मा है । इस प्रकार वह सब को व्याप्त करके रहता है । अतः सभी घटपटादि तथा चेतनावाचक शब्द समुदाय सर्व शरीर धारी परमात्मा का प्रतिपादन करते हैं-'**अहम्**' अर्थात् 'मैं' यह अस्मत् शब्द भी वाक्ता जो जीव तादृश के अन्तर्यामी का प्रतिपादन करता है । मैं ऐसा समझने के समय में परमात्मा पर्यन्त को अनुसन्धान में लेना चाहिये, परमात्मा पर्यन्त को अनुसन्धान में लेंकर यदि अहं शब्द का प्रयोग किया जाय तब 'मैं वह परमात्मा हूं' यह कथन सर्वथा उचित है । अहं बुद्धि में परमात्मा पर्यन्त को लेकर जो उपासना की जाती है, उसको अहं ग्रहोपासन करते हैं । यानि यह परमात्मा सर्वावस्थान में विद्यमान चेतनाचेतन पदार्थ में अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहते हैं वह परमात्मा कारणावस्था में अर्थात् प्रलयकाल में सूक्ष्म चेतनाचेतन पदार्थों का अन्तर्यामी के रूप से अवस्थित रहते हैं तथा कार्यावस्था सर्गकाल में स्थूल चेतनाचेतन पदार्थों का अन्तर्यामी बन करके रहते हैं । सब पदार्थ परमात्मा से ही समुत्पन्न हो करके परमात्मा में ही अवस्थित रहता है, परमत्मा ही अनेक रूप में विद्यमान रहते हैं । इसलिये स्वकीय अहं बुद्धि को जीव मात्र में सीमित

सूत्रकारेण कथितम् । सोयं ब्रह्मरूपः परमपुरुषः स्थलविशेषेब्र-ह्मशिवादिपदेनापि समवगतो भवति न तत्र ब्रह्मशिवादीनां परत्वमपि तु ब्रह्मण एव परत्वम् । अनन्यपरके नारायणानुवाके शिवादीना-

'तवान्तरात्मा मम च ये चान्ये देहसंज्ञिताः ।
सर्वेषां साक्षिभूतोसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचिदिति ॥'

महाभारते ब्रह्मरुद्रसम्वादे रुद्रम्प्रति ब्रह्मणो वचनम् तस्यार्थः हे रुद्र ! रोदनात् रुद्रः, रुद्रो हि प्रलयकाले सर्वान् रोदयति तस्मात्सरुद्रः । अथवा बर्हिषि भागेरजतदक्षिणादानात् रुद्रो रुरोद 'सोरोदीत् तद्रोदीत् तद्रुस्यरुद्रत्वमिति' श्रुतेः । तस्माद् बर्हिषिरजतं न देयमिति । हे रुद्र ! तव रुद्रस्य मम ब्रह्मणो हिरण्यगर्भस्यान्ये च ये देहधारिणो जीवास्तेषां सर्वेषामन्तरात्मा पुरुषो यो विद्यते एक एव नतु जीववदनेकः सचान्तर्यामी सर्वस्य साक्षी द्रष्टा अर्थात् स सर्वदा सर्वं पश्यति परन्तु सर्वद्रष्टारं साक्षिणं केनचिदपिकरणेन कदाचिदपि कोऽपि न पश्यति 'न सन्दृशेतिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यतिकश्चनैनम्'

न कर के जीव के अन्तर्यामी परमात्मा पर्यन्त पहूंचा कर के अहं बुद्धि से परमात्मा का ही उपासन करना चाहिये। इसी को अहंग्रहोपासन कहा है। प्रकृत विषय में सूत्रकार श्रीसम्प्रदाय के सातवें आचार्य की सम्मति वतलाते हैं-

'**आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च**' इत्यादि, **सूत्रार्थोऽयम्**, भक्तसाधक परमात्मा को आत्मा अर्थात् अहं पदबोध्य समझकर उपासन करें । यद्यपि अहं पद से तथा '**अहम्**' इत्याकारक ज्ञान से जीवात्मा जाना जाता है किन्तु परमात्मा स्वभावतः अहंपद तथा ज्ञान से नहीं जाना जाता है अपितु परमात्मादि पद से स्वभावतः जाना जाता है तथापि पदार्थमात्र को ब्रह्मात्मक होने से सर्वपदाच्यत्व होता है इसलिये जीव वोधक '**अहम्**' पद से भी परमात्मा का ग्रहण करके तादृश परमात्मा का उपासना करना चाहिये । इसे प्रतीकोपासना कहते हैं जिस तरह शालिग्राम शिला में शालिग्राम शिलात्मक पदार्थ में विष्णु ग्रहण किया जाता है उसी तरह जीवरूप अधिष्ठान में परमात्मा का ग्रहण करके अहंपद से परमात्मोपासन होता है । अभिप्राय यह है कि शास्त्र जीवात्मा तथा परमात्मा में शरीरात्मभाव को समझा कर के परमात्मोपासन करना चाहिये ऐसा कहता है । इस विवेचन से यह स्पष्टरूप से सिद्ध हो जाता है कि अथर्वशिर उपनिषद् में रुद्र देव ने '**अहम्**' इत्याकारक बुद्धि में स्वकीय अन्तर्यामी परमात्मापर्यन्त का अनुसंधान कर के उस अन्तर्यामी परमात्मा के माहात्म्य का वर्णन किया है। परन्तु उपर्युक्त ऐश्वर्य माहात्म्य रुद्रदेव का स्वकीय नहीं

मिन्द्रादिसमानतया परमपुरुषविभूतित्वप्रतिपादनात् । यथा क्वचित् प्राणाकाशादिपदेन बह्मप्रतिपादितं भवति तत्र प्राणाकाशादेर्नपरत्वं किन्तु ब्रह्मण एवेतिदिक् ।

'यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसासह' 'अगृह्यो नहि गृह्यते' इत्यादि श्रुतेः । इत्थं हि ब्रह्मारुद्रं प्रत्यवोचत् ! अनेनेदमायाति यत् परमपुरुषो भगवान् ब्रह्मणोरुद्रस्य तदन्यसर्वजीवानामन्तर्यामी भवति, नतु तस्य कश्चिदन्य आत्मेति । तत्रैव महाभारते त्रिपुरसंहारप्रकरणे-

'विष्णुरात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं सविषेहे महेश्वरः ॥'

तदयमर्थः-अपरिमिततेजसोऽतुलितपराक्रमस्य महेश्वरस्य भगवान् विष्णुः सर्वव्यापकश्रीराम आत्मा, तदात्मा भगवान् विष्णुरेव कुतः ? विष्णोः सर्वशेषित्वेन तदात्मकत्वात्सर्वस्येति । अस्मादेव कारणात् परमपुरुषाधिष्ठितत्वादेव महेश्वरो धनुषः प्रत्यञ्चा

हैं किन्तु परमात्मा का है। इसलिये अथर्वशिर उपनिषद् वचन से रुद्रदेव में सर्वश्रेष्ठत्व परमपुरुषत्व की सिद्धि नहीं होती है किन्तु नारायणानुवाक में वर्णित प्रकार से भगवान् परमपुरुष श्रीसीतानाथ में सर्वश्रेष्ठत्व तथा उपास्यत्व की सिद्धि होती है। प्रकृत विषय में विशेष विवेचन मेरे आनन्दभाष्य विवरण आदि अन्य ग्रन्थों में देखें। अथर्वशिर उपनिषद् में रुद्र ने देवों के सामने जो माहात्म्य का वर्णन किया वह रुद्र का स्वकीय ऐश्वर्य का वर्णन नहीं हैं किन्तु रुद्र वा अन्तर्यामी भगवान् परमपुरुष विष्णु है उनके ऐश्वर्य का वर्णन किया है ऐसा कहा परन्तु रुद्र का विष्णु अन्तर्यामी है इसमें कारण का कथन तो नहीं किया अतः इस विषय में महाभारतादि वचनों को प्रमाणरूप से कथन करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**भगवान्नारायणापरपर्याय**' इत्यादि नारायण विष्णु प्रभृति अपर पर्याय है जिनका ऐसा जो भगवान् श्रीसीतानाथ है वे रुद्रदेव ब्रह्मा तथा तदन्य जीवमात्र के अन्तर्यामी हैं इस बात को महाभारत के ब्रह्मरुद्र संवाद में ब्रह्मा ने शिव को कहा है '**तवान्तरात्मा मम च ये चान्ये देह संज्ञिताः' सर्वेषां साक्षिभूतोसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्** इति ! अर्थात्-हे रुद्र ! आपका हमारे तथा अन्यदेहधारी जितने प्राणी हैं उन सबका अन्तर्यामी भगवान् एक हैं और वे सभी के साक्षी द्रष्टा एक हैं, उनको कोई भी कहीं भी नहीं जान सकता है क्योंकि विग्रह अलौकिक है इसलिये प्राकृत चक्षुषादि प्रमाण से नहीं जाने जाते हैं। इस महाभारतीय वचन प्रमाण से सिद्ध होता है कि भगवान् परमेश्वर श्रीसीतानाथ ब्रह्मा रुद्र तथा अन्यान्य जीवमात्र के अन्तर्यामी हैं यह प्रमाण है। एवं

॥ व्योमातीतशिवतत्त्ववादनिराकरणम् ॥

यत्तु-'अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तर आकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वावविजि

संस्पर्शने समर्थोऽभवत् । अनेनवाक्येन विष्णुर्महेश्वरस्यान्तरात्मेति सिद्ध्यति तथा तत्रैव ब्रह्मशिवयोर्विषये उक्तम्-

'एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ स्मृतौ ।
तदादर्शितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥'

अर्थात्-ब्रह्मशिवौ एतौ द्वावपि सर्वदेवेषु यमकुवेरादिषु मध्ये श्रेष्ठावग्रगण्यौ तत्र ब्रह्माविष्णोः प्रसादगुणेन जातो महेश्वरश्चतदीयक्रोधाज्जातः । एतौ द्वावपि विष्णु प्रदर्शितमार्गमधिष्ठायैव स्वकीयं स्वकीयसर्गप्रलयकार्यकर्त्तारौ भवतः अर्थात् भगवतो विष्णोः कृपयैव स्वकार्यं कुरुतस्तावुभावपीति । एतावता ब्रह्मशिवौ विष्णोः शरीरस्थौ भगवान् विष्णुश्च तयोः शरीरी अनयोरन्तर्यामीति, एभिरुपर्युक्तवचनैरुभयोः

महाभारत में त्रिपुर संहार के प्रकरण में कहा गया है वह भी प्रमाण है-तथाहि-

'विष्णुरात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः ।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं सविषेहे महेश्वरः ।' इति ॥

अर्थात् अपरिमित प्रभावशाली भगवान् रुद्र की आत्मा-अन्तर्यामी भगवान् श्रीविष्णु हैं इसलिये भगवान् शङ्करजी उस धनुष की ज्या-प्रत्यञ्चा का स्पर्श कर सके अर्थात् विष्णु प्रदत्त धनुष के द्वारा त्रिपुर का संहार कर सके, संहार करने में समर्थ हुए। इस वचन से भी सिद्ध होता है कि विष्णु शङ्करजी के अन्तर्यामी हैं एवं महाभारत में ब्रह्मा तथा शिवजी के विषय में यह भी कहा गया है कि-

'एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौस्मृतौ ।
तदा दर्शित पंथानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥' इति ॥

अर्थात् ब्रह्मा तथा शङ्करजी ये दोनों देवताओं में श्रेष्ठ हैं, उन दोनों में से ब्रह्माजी भगवान् के प्रसाद से प्रसन्नता अंश से तथा शंकरजी भगवान् के क्रोध से उत्पन्न हुय हैं, ये दोनों भगवान् से प्रदर्शित जो मार्ग है उस मार्ग के द्वारा चलते हुए सृष्टि तथा प्रलय को करते रहते हैं। इन वचनों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा और शिव ये दोनों भगवान् परम पुरुष के शरीर हैं और सर्वशेषी भगवान् इन सब का अन्तरात्मा अन्तर्यामी हैं। एतादृश अन्तर्यामी परमात्मा को लक्ष्य में रख कर के ही अथर्वशिर उपनिषद् में श्री:द्रजी ने स्वकीय अन्तर्यामी के माहात्म्य का वर्णन किया है नतु अहंपद से स्वकीय

ज्ञासितव्यम्' इत्यत्र यौगिकार्थमादाय आकाशपदेन जगत्कारणीभूतं तत्वं प्रतिपाद्य तन्मध्ये विद्यमानस्य सूक्ष्मतरस्य तत्वान्तरस्यान्वेष्टव्यत्वंध्येयत्वं च प्रतिपादितं भवति । तत्राकाशपदवाच्यपरब्रह्म

शरीरशरीरिभावे व्यवस्थिते सति अथर्वशिर उपनिषदिरुद्रोदेवस्वान्तर्यामिणं लक्षीकृत्य अहं पदेन तस्य परमात्मन एव माहात्म्यवर्णनमकरोन्नतु स्वमहिम्नो वर्णनं कृतवान्, जीवस्याव्यापकतयाताद्दशमाहात्म्यस्यासम्भवात् सर्वावतारिश्रीसीतापतेः स्वरूपनिर्धारण-परकागममवतारयन्नाह तथैवागमे इत्यादि । अन्यत्र प्रपञ्चितप्रायोऽयंविषय इतिदिक् ।

इत्थंहि निमित्तोपादानभेदसिद्धान्तं शैवाः प्रतिपादयन्ति 'उपादानं तु भगवान् निमित्तं तु महेश्वरः' इति तन्मतम् अर्थात् यथा घटकार्यस्योपादानंमृद्द्रव्यं निमित्तकारणं तु कुलालश्चेतनः उभौ च भिन्नौ न त्वेकोऽनुभवविरोधात् तद्वदिहापि जगत उपादानकारणं भगवान् निमित्तकारणं तु महेश्वरः । निमित्तकारणाधीनमुपादानं भवति निमित्तस्य चेतनतया स्वतन्त्रत्वेन तदधीनत्वात् कुलालाधीनमृद्वत् । एवं च प्रकते उपादानस्य भगवतः

माहात्म्य का वर्णन किया गया है किन्तु भगवान् के ऐश्वर्य का वर्णन किया है।

जिस तरह घटादिकार्य के प्रति उपादान कारण है मृत्पिण्ड और निमित्तकारण अर्थात् कर्तारूप कारण चेतन कुलाल है क्योंकि इतर सकल कारण कर्ता से प्रयोज्य होता है, तो उपादान कारण एवं निमित्तकारण में भेद रहता है तथा उपादानकारण कपालादिक कर्ता के अधीन रहते हैं। इसी तरह प्रकृत में **'उपादानं तु भगवान् निमित्तं तु महेश्वरः'** इस नियम के अनुसार जगत् कार्य के प्रति भगवान् विष्णु नारायणापर पर्याय उपादान कारण होते हैं तथा भगवान् शंकर जगत् कार्य के प्रति निमित्त कारण अर्थात् कर्तारूप कारण है। एवं जिस तरह लोक में कर्ता के अधीन उपादान कारण होता है उसी तरह प्रकृत में कर्ता कारण शंकर के अधीन विष्णु भगवान् है। इससे जगत् का उपादान कारण एवं निमित्त कारण परस्पर विभिन्न ही होते हैं परन्तु सिद्धान्ती ने तो इन दोनों कारणों में अभेद मानकर के अभिन्न निममित्तोपादान सिद्धान्त को स्वकीर किया है यह तो विल्कुल गलत है। और उपर्युक्त प्रकार से विष्णु को शंकरजी के अधीन में रहने से शंकर ही सर्वश्रेष्ठ तथा ध्येय हैं विष्णु श्रेष्ठ ध्येय नहीं ? इस पूर्व पक्ष के उत्तर में कहेंगे कि भिन्नोपादान निमित्तकारणवाद-**'जन्माद्यस्य यतः'** इत्यादि व्यास सूत्र तथा-**'सदेव सोम्येदमग्रे आसीत्'** इत्यादि अनके श्रुति विरुद्ध होने से अमान्य है। क्योंकि सूत्रकार के इन सूत्रों के द्वारा तथा उपर्युक्त श्रुति के द्वारा तो अभिन्न निमित्तोपादान कारणवाद ही स्थिर होता है। अतः सूत्र श्रुति विरोध होने से शैवों का कथन ठीक नहीं हैं। इस बात को बताने के लिये उपक्रम करते हैं **'शैवा हि निमित्तकारणोपादानकारणयोर्भेदमिच्छन्ति'**

श्रीरामत्वादतिरिक्तस्य नामरूपादिनिर्वाहस्य कर्तुश्च शिवतत्वस्यान्वेष्टव्यत्वमुपास्यत्वं च दहरविद्यायां ज्ञायते नत सर्वेश्वरश्रीरामस्यातो ब्रह्मतत्त्वादतिरिक्तस्य परत्वं सिद्ध्यतीति । तन्न भावानवबोधात् अस्य प्रश्नस्य श्रुतिरेवोत्तरं ददाति 'दह

परमपुरुषस्य नियामकतया चेतनः शङ्कर एव श्रीरघुनाथात् श्रेष्ठोध्येयश्चेति शैवमतं प्रदूष्य शङ्करात् श्रेष्ठत्वं भिन्ननिमित्तोपादानभूतस्य सूत्रश्रुतिविरुद्धत्वं च्र दर्शयितुं प्रक्रमते-

शैवाहि निमित्तकारणोपादानकराणयोर्भेदमित्यादि । जन्माद्यस्ययतः उपादाननिमित्तयोर्भेदस्वीकर्ता अवैदिको यतः श्रुतौ ब्रह्मसूत्रे च निमित्तोपादानयोरभेदस्यैव प्रतिपादनात् । अस्य विभक्तनामरूपकस्य स्थूलस्य जडचेतनजगतो जन्मस्थितिप्रलयकारणं ब्रह्मेति प्रथमसूत्रार्थः । अस्य जगत उपादानं सूक्ष्मचेतनाचेतनविशिष्टं ब्रह्म यतस्तदेवब्रह्म जगदाकारेण परिणमते तदेवब्रह्म संकल्पादिविशिष्टं भवत् जगतो निमित्तकारणं भवतीति सूत्रकारो जगतो निमित्तोपादानयोरभेदमेव प्रदर्शितवान् । तथा प्रकृत्यधिकरणे 'प्रकृतिश्च

इत्यादि, अर्थात्-शैव लोग निमित्त कारण तथा उपादान कारण में भेद मानते हुए कहते हैं कि जगत् का उपादान कारण ब्रह्म से जगत् का निमित्त कारण शङ्कर श्रेष्ठ है तथा शङ्कर ही ध्येय हैं।

इस पर आचार्यजी कहते हैं उपादन कारण तथा निमित्त कारण में भेद माननेवाले शैव लोग अवैदिक हैं क्योंकि वेद तथा सूत्रों में तो उपादान कारण तथा निमित्त कारण में अभेद का प्रतिपादन किया गया है। इस बात को बतलाने के लिये तथा शैवमत का खण्डन करने के लिये कहते हैं- **'तन्न युक्तम्'** इत्यादि यह भेद कारण वाद युक्त नहीं है क्योंकि इन दोनों कारणों में अभेद प्रतिपादन **'जन्माद्यस्य यतः'** **'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा'** इत्यादि व्यासप्रणीत सूत्र से विरुद्ध होने से शैवमत अयुक्त है। अर्थात् इन व्यास सूत्रों से तो अभिन्न निमित्तोपादान कारण वाद ही सिद्ध होता है। इस स्थिति में भिन्न निमित्तोपादान कारण वाद को किस तरह वैदिक लोग मान सकते हैं ? इसलिये शैव पक्ष युक्त नही हैं। अर्थात् सूत्रकार ने **'जन्माद्यस्य यतः'** इस सूत्र से यह सिद्ध किया है व्याकृतनामरूप से परिदृश्यमान इस जगत् का उत्पादस्थिति तथा विनाश जिस कारण विशेष से सिद्ध होता है वह ब्रह्म है-अर्थात् इस जगत् का जन्म स्थित्यादिक का जो उपादान कारण तथा निमित्त कारण है वह ब्रह्म हैं। इस जगत् का उपादान कारण सूक्ष्म जड़चेतन से विशिष्ट ब्रह्म है क्योंकि एतादृश ब्रह्म अर्थात् सूक्ष्म चेतनाचेतन विशिष्ट ब्रह्म ही जगदाकार से परिणाममान होते हैं। और यही ब्रह्म सङ्कल्प विशिष्ट होकर के परिदृश्यमान अर्थात् विभक्त नामरूपवाला जगत् कारण भी बनता है। (अर्थात् ज्ञान इच्छा

रोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यम् यद्वाव विजिज्ञासितव्यम्' इति प्रश्ने कृते 'यावान् वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदये

प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधादिति सूत्रेणाप्युभयोर्निमित्तोपादानयोरभेदमेव समर्थितवान् । अर्थादेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञायाः मृदादिदृष्टान्तस्य च बाधो न भवतु तस्मात् जगतो निमित्तकारणं ब्रह्मैवोपादानमपि तदेव । यत उपादानमेवकार्यरूपेण परिणमते, कार्यद्रव्यं कारणद्रव्यान्नातिरिक्तम् । उपादानज्ञानेन कार्यं ज्ञातमेव भवति मृद्घटवत् । यदि कदाचिदुपादाननिमित्तयोर्भेदो भवेत्तदोपादानज्ञानेन निमित्तकारणज्ञानं कथमिवस्यादित्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञा बाधिता भवेत् । नहि घटे ज्ञाते पटो ज्ञातो भवति तत्कुतः ? उभयोर्भिन्नत्वादिति तस्माज्जगन्निमित्तोपादानयोरभेद एव नतु भेद इति भेदसिद्धान्तो न युक्तः अपि चोपादानकारणनिमित्तकारणाभेदप्रतिपादकश्रुतिविरोधादप्युभयोर्भेदप्रतिपादकसिद्धान्तोऽनादरणीय एव । तथाहि सदेवसोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वतीयम् अर्थात् हे सोम्य ! इदं जगत् सृष्टेः पूर्वं प्रलयकाले सद्रूपमेवासीत् । तथैकत्वावस्थापन्नमासीद् यदिदानीं बहुत्वावस्थमभवत् तथोपादानकारणाभिन्नंनिमित्तकारणं भिन्नं चेति । अनेन वाक्येन

कृतिमान् ही तो कर्ता होता है इसलिये उपर्युक्त ब्रह्म सङ्कल्प विशिष्ट हो करके जगत् का निमित्त कारण बनते हैं।) इस सूत्र से सूत्रकार व्यासजी ने जगत् के उपादान कारण तथा निमित्त कारण में अभेद सिद्ध किया।

और भी देखिये यह तो जन्माधिकरण में अभेद का प्रतिपादन किया, प्रकृत्यधिकरण में भी **'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्'** इत्यादि सूत्रों से व्यास जीने उपादान कारण तथा निमित्त कारण में एकत्व को सिद्ध किया है, जगत् का निमित्त कारण ब्रह्म ही जगत् की प्रकृति अर्थात् उपादान कारण भी है। इसमें हेतु बतलाते हैं-**'प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्'** अर्थात्-एक विज्ञान से कारण के ज्ञान होने से सकल कार्य के विज्ञान होने की प्रतिज्ञा होने की प्रतिज्ञा तथा मृत् पिण्डादिक दृष्टान्त का बाध न हो इसके लिए ऐसा मानना चाहिये कि इस नाम रूपात्मक जगत् प्रपञ्च का निमित्त कारण बनने वला ब्रह्म जगत् का उपादान कारण भी बनते हैं क्योंकि उपादान कारण ही तो कार्याकार से परिणत होता है कार्य द्रव्य कारण द्रव्य से भिन्न नहीं होता है (क्योंकि मृत् द्रव्य से अतिरिक्त वस्तु की उपलब्धी घट में नहीं होती है अर्थात् कारण ही कार्य होता है देशकाल तथा अवस्था विशेष को लेकर के।) एवं कारण द्रव्य के जानने से तदभिन्न कार्य का ज्ञान अयत्न सिद्ध हो जाता है। जिस तरह कारणीभूत द्रव्य का ज्ञान होने से मृत्तिका का कार्य जितने घट शराव उदञ्चनादिक हैं वे सब ज्ञान होते हैं इसी तरह प्रकृत में जगत् कारण ब्रह्म का ज्ञान होने से ब्रह्म का परिणाम रूप समस्त जगत्

आकाशः' इत्यादिप्रकरणेन आकाशशब्दप्रतिपादितपरमतत्वस्य पुरुषस्यानवधिकमहत्त्वं समस्तजगतः कारणत्वेनसकलजगत आधारत्वं कथयित्वा 'तस्मिन् कामाः समाहिताः' इत्यादिना अपहतपाप्मत्वादा-रभ्यसत्यसङ्कल्पत्वपर्यन्तगुणाष्टकं तस्मिन् समाविष्टमितिपरब्रह्मवत्

सदात्मकब्रह्मणः प्रलयकाले एकत्वावस्थासर्गकाले च बहुत्वावस्थासिद्धा एतावता ब्रह्मणो जगदुपादानत्वं सिद्ध्यति । तथा 'अद्वितीयमितिनिमित्तकारणत्वं च सिद्धम्' ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्ष आसीद् यतोद्यावा पृथिवीनिष्टतक्षुः । ब्रह्माध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयत् अर्थात् यथा वनस्थं वृक्षं विविधविचित्रस्तंभादिरूपेणपरिणामयितातक्षा प्रासादादीनां निर्माणं करोति, तथैव पृथिव्यादिसंपूर्णजगतो निर्माणमभवत् । अत्र जगदुत्पत्तौ वनमिवाधारकारणं ब्रह्म वृक्षवदुपादानकारणमपि ब्रह्मैव तक्षावदधिष्ठाता निमित्तकारणमपि ब्रह्मैव यतो गृहस्थानीयजगतोर्निर्मितिरिति । एतावता सर्वकारणत्वं ब्रह्मण एव फलति नतु घटादिवद् विभिन्नकारणजन्यत्वं जगत इति ।

'सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि । न तस्येशेकश्चन तस्य नाममहद् सयः ।

अर्थात्-विद्युत्सदृशवर्णवान् कालविशिष्टात् अर्थात् कालशरीरकात् परमपुरुषात्

कार्य विदित हो जाते हैं। एक विज्ञान से सर्व का विज्ञान हो जाता है, एतादृश इस प्रतिज्ञा से चराचर जगत् का उपादान कारण (जिसको न्यायभाषा में समवायि कारण कहा गया है।) ब्रह्म परमपुरुष सिद्ध होते हैं। मृत् पिण्ड दृष्टान्त से भी यही समझा गया कि मृत् पिण्डरूप घटादि उपादान का विज्ञान हो जाने से उस मृत् पिण्ड से होनेवाले जो घट शराव प्रभृतिक कार्य वर्ग हैं वे सब से सब विज्ञात हो जाते हैं उनको जनाने के लिये प्रयासान्तर करने की आवश्यकता नहीं रहती है। यदि घटादिकार्यवत् का निमित्त कारण कोई अन्य पदार्थ होता तब तो उपादान कारण को जानने से वह नहीं ज्ञात होता तब एक विज्ञान से सर्वज्ञानरूप प्रतिज्ञा में बाधा पडती इसलिये ब्रह्म को ही निमित्त कारण भी माना जाता है तथा उपादान करण भी माना गया ऐसा अर्थ-'**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा**' इत्यादि सूत्र का होता है ।

इन विचारों से यह सिद्ध हुआ कि परिदृश्यमान जो स्थूल जडाजडात्मक जगत् है उसका जो निमित कारण तथा उपादान कारण है वे दोनों अभिन्त हैं । (यद्यपि घटपटादि लौकिक कार्य का उपादान कारण तथा निमित्त कारण भिन्न भिन्न होते हैं जैसे घट का उपादान कारण सजातीय अवयव द्वय होता है अथवा परिणामवाद में परिणामी

परमपुरुषीयगुणाष्टकस्यापि ततः पार्थक्येन विजिज्ञासितव्यत्वध्ये-यत्वप्रतिपादनेच्छया 'तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यमित्युक्तं श्रुतावेव । अर्थात्

सर्वे निमेषाः कालावपवाः जज्ञिरे समुत्पन्नाः । अनेन कालशरीरकब्रह्मण उपादानकारणत्वं सिद्ध्यति तथा तादृपुरुषस्य शासकान्तराभावादेव तस्य पुरुषस्य निमित्तकारणत्वम-प्यायाति, यतस्तस्यान्यः कश्चित् शासको नास्ति, यद्यन्यस्तस्य शासको भवेत्तदा तदेव निमित्तकारणं स्यादिति । नेह नानास्ति किञ्चन सर्वस्यवशी सर्वस्येशानः अर्थात् नात्रानेकः कश्चनपदार्थो विद्यते ब्रह्मकार्यत्वात्सर्ववस्तुब्रह्मात्मकमेव । एतावता ब्रह्मणो जगत्कार्यं प्रत्युपादानकारणत्वं सिद्ध्यति । तत् ब्रह्म सर्वं स्ववशे स्थापयति सर्वस्यायं शासकः । चेतनत्वात्ससर्वस्य नियामकत्वात् तद् ब्रह्मसर्वस्य निमित्तकारणमिति फलति ।

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् उतामृतत्वस्येशानः नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय तरति शोकमात्मवित् अर्थात्-एते वर्तमानभूतभविष्यपदार्थाः पुरुषात्मका एव । एतावता ब्रह्मणि उपापाननिमित्तोभयकारणत्वमायाति, तथा अयमेव पुरुषो मोक्षदाता एतज्ज्ञानवानेव संसारं तरति एतावता परमपुरुषश्रीराम एव मोक्षदातेति सिद्ध्यति । अर्थात् जगतो यत् उपादानकारणं निमित्तकारणं तज्ज्ञानवानेव मत्तो भवति ब्रह्मप्राप्तये उपायान्तरं

मृत्तिकादि द्रव्य होता है तथा इन उपादान कारण का अधिष्टाता चेतन अपरोक्षज्ञान चिकीर्षा तथा कृतिमान् पुरुष कुलालादिक निमित्त कारण होता है अर्थात् प्राय उपादान कारण जड कार्य का जड ही कारण होता है और निमित्त कारण चेतन कुलालादिक होता है तो इन उपादान कारण तथा निमित्त कारण परस्पर विभिन्न ही होते हैं इसलिये प्रकृत में भी उपादान कारण किसी जड वस्तु को मानना चाहिये क्योंकि कार्य जो जगत् है वह जड है तो उपादान कारण भी जड ही होगा और ईश्वर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जो कि उपादान के अधिष्ठाता है वह निमित्त कारण हैं इस प्रकार से उपादान तथा निमित्त में तो भेद ही सिद्ध होता है इन दोनों कारण में अभेद तो प्रत्यक्ष तथा युक्ति बाधित है तथापि प्रकृत में निमित्त कारण तथा उपादान कारण में जो अभेद माना गया है। वह श्रुति के बल से जो कि-'**सदेव सोम्येदमग्रे**' इत्यादिक आगे बतलाई जायगी) जो शैव लोग निमित्त कारण तथा उपादान कारण में भेद सिद्धान्त को मानते हैं वे वेदार्थज्ञाता वेद व्यासजी के पूर्वकथित ब्रह्म सूत्रों से प्रतिकूल होने के कारण से सर्वथा अनादरणीय है। अर्थात् प्रकृत विषय में शैव सिद्धान्त को नहीं मानकर वेदानुयायी श्रीरामानन्दाचार्यजी के सिद्धान्त को ही मानना उचित है।

यह शैवसिद्धान्त ब्रह्मसूत्र विरुद्ध होने से अनादरणीय है इतना ही नहीं किन्तु श्रुति विरुद्ध होने से भी अनादरणीय है इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं कि-'अपि च सदेव

'किं तदत्र विद्यतेऽस्यप्रश्नस्य अस्मिन् परमपुरुषे सर्वस्यापिपदार्थजातस्य स्रष्टृत्वमाधारत्वं सर्वनियामकत्वंशेषित्वमपहतपाप्मत्वादिकाविल-क्षणकमनीयगुणा अपि विद्यन्ते इत्युत्तरमिति।

अयंभावः-न केवलं दहरविद्यायामाकाशपदवाच्यं ब्रह्ममा

नास्तीति। एभिः श्रुतिवचनैः सूत्रवाक्यैश्च ब्रह्मण उभयविधकारणत्वं सिद्ध्यति। तस्माद् ब्रह्मजगत् उपादानकारणं निमित्तकारणं च भवति नतु उपादानकारणमन्यत् तदन्यच्च निमित्तकारणमिति। एवं च ब्रह्मण उभयविधकारणत्वस्य श्रुतिसूत्रैः साधनात् उपर्युक्तश्रुतिसूत्रविरोधात् उपादानकारणनिमित्तकारणयोर्भेदं ये इच्छन्तितन्मतं सर्वथैव त्याज्यम्-

'उपादानं निमित्तं च सर्वस्यैकोहि राघवः। ऊर्णनाभिर्यथा तन्तोर्मन्यते कारणद्वयम्। उपादानत्वमेतस्य विश्वस्य ब्रह्मणि किल। 'सदेवसौम्येदमग्र' इत्यादि श्रुतिसम्मतम् ॥३७॥ न ब्रह्मनापिविष्णुश्च नोतदासीन्महेश्वरः। तदासीद् भगवान् रामः सूक्ष्मचिदचिच्छरीरकः। उपादानतया रामे विकारः संभवेन्नन्। मैवं विशिष्टरामस्यमतः

सोम्येदमग्रे आसीत्' इत्यादि, 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्' अर्थात्-हे सोम्य श्वेतकेतु! यह परिदृश्यमान जडचेतन साधारण जगत् आगे अर्थात् उत्पत्ति के पूर्व प्रलयकाल में सत रूप ही था तथा एकत्वावस्था को प्राप्त किया हुआ था जो अब सर्गकाल में विभक्त नाम रूप वाला होकर बहुत्वावस्था को प्राप्त किया हुआ है तथा अद्वितीय था अर्थात् उपादान कारणातिरिक्त निमित्तकारण से रहित था। इससे यह सिद्ध होता है कि सद् ब्रह्म उत्पत्ति के पूर्व प्रलय काल में एकत्वावस्था को प्राप्त किया था एवं सर्गकाल में वहुत्वावस्था को प्राप्त करके रहता है इससे ब्रह्म की एकत्वावस्था तथा बहुत्वास्था तथा बहुत्ववस्था की सिद्धि होती है इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म उपादान कारण जगत् के हैं। एवं 'अद्वितीयम्' सहायकान्तर से निरपेक्ष हैं इस पद से ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण हैं, यह सिद्ध होता है। (यहां का अभिप्राय यह है कि जिस स्थल में जड उपादान कारण होता है वहां चेतनाचेतन अधिष्ठाता की आवष्यकता होने से चेतन निमित्त कारण बनता है और वह निमित्त कारण उपादान से भिन्न होता है, और जिसस्थल में चेतन उपादान कारण होता है वहां अन्य अधिष्ठाता की आवश्यकता नहीं होने से उपादान व्यतिरिक्त निमित्त कारण की आवश्यकता नहीं पडती है इसलिये उपादान कारण ही निमित्त कारण भी बनता है। जिसतरह तन्तु कार्य के प्रति लुता कीट चेतन उपादान कारण होता है तथा वहीं निमितकारण भी बन जाता है। यद्यपि तन्तु कार्य की प्रति लूता का जो शरीर है उस के उपादान कारण मानें तथा लूता कीट को निमित्त कारण मान कर के उपादान तथा निमित्त कारण में भेद सिद्ध होता है तथापि मृत

त्रमेवोपास्यमिति न किन्तु दहराकाशपदवाच्ये परंब्रह्म तथा तदन्तरविद्यमानमनवधिकमपहतपाप्मत्वादिगुणाष्टकाश्रयभूतब्रह्म तत्वमेतदुभयमपि अन्वेष्टव्यमुपासितव्यं चेति। अत एव श्रुतिराह

संसारं तरति एतावता परमपुरुषश्रीराम एव मोक्षदातेति सिद्ध्यति। अर्थात् जगतो यत् उपादानकारणं निमित्तकारणं तज्ज्ञानवानेव मुक्तो भवति ब्रह्मप्राप्तये उपायान्तरं नास्तीति। एभिः श्रुतिवचनैः सूत्रवाक्यैश्च ब्रह्मण उभयविधकारणत्वं सिद्ध्यति। तस्माद् ब्रह्मजगत् उपादानकारणं निमित्तकारणं च भवति नतु उपादानकारणमन्यत् तदन्यच्च निमित्तकारणमिति। एवं च ब्रह्मण उभयविधकारणत्वस्य श्रुतिसूत्रैः साधनात् उपर्युक्तश्रुतिसूत्रविरोधात् उपादानकारणनिमित्तकारणयोर्भेदं ये इच्छन्तितन्मतं सर्वथैव त्याज्यम्-

'उपादानं निमित्तं च सर्वस्यैकोहि राघवः। ऊर्णनाभिर्यथा तन्तोर्मन्यते कारणद्वयम्। उपादानत्वमेतस्य विश्वस्य ब्रह्मणि किल। 'सदेवसौम्येदमग्र' इत्यादि श्रुतिसम्मतम् ॥३७॥ न ब्रह्मनापिविष्णुश्च नोतदासीन्महेश्वरः। तदासीद् भगवान् रामः सूक्ष्मचिदचिच्छरीरकः। उपादानतया रामे विकारः संभवेन्नन्। मैवं विशिष्टरामस्यमतः स च प्रकारयोः ॥३९॥ स्वभावे च स्वरूपे च विकारः प्रकृते खलु। विकारः

लूताकीट के शरीर से तन्तु कार्य की उत्पत्ति नहीं देखने में आती है इसलिये लूता कीट चेतन ही तन्तु कार्य के प्रति उभय कारण बनता है। उसी तरह प्रकृत से भी ब्रह्म में ही उभय कारणत्व की सिद्धि होती है। यह 'अद्वितीयम्' इस श्रुति घटकपद से व्यञ्जना द्वारा ज्ञात है) 'ब्रह्मवनं स वृक्ष आसीद् यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्' (अर्थात्-ब्रह्मवनम्-यथावनस्थ वृक्षपरिष्कृतस्तम्भादिना तक्षादिशिल्पिभिरेव गृहादिकं निर्मितं भवति तथैव ब्रह्मणैवोत्पादितं सकलं द्यावापृथिवी आदिकजगदिति अत्र यथा-वनं सर्वस्याधिकरणं तथैवं ब्रह्मापि सकलप्रपञ्चस्याधारकारणम् यथा च स्तंभादीनामुपादानकारणमपि जगतो ब्रह्मैव यथा च सह निर्माणे निमित्तकर्तृकारणं तथैवात्र ब्रह्मैवकर्तृकारणमिति ब्रह्मण एव जगदुत्पत्तौ निमित्तकारत्वमुपादानत्वामाधारत्वादिकमपीत्येकमेव ब्रह्मसर्वविधकारणं भवति जगतो न तु प्रकृते उपादानकारणमन्यत् निमित्तकारणं च तदन्यदिति। अनया च श्रुत्या एकमेव ब्रह्म जगतः सर्वविधकारणमिति ज्ञाप्यते। एतावानेवात्रविशेषः सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टं ब्रह्म जगत उपादानकारणं भवति, तदेव ब्रह्म संकल्पादिविशिष्टं सत् निमित्तकारणमपि भवति तदेवमेकमेव ब्रह्म जगतः सर्वविधकारणं भवति। यथा एकैव स्त्रीरूपभेदात्कस्यचित् पत्नी

'अथ य इहात्मानमनुविद्यव्रजन्त्येतांश्चसत्यान् कामान् तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' इति ।

सोऽथजीवस्य स्वभाव एव मन्यते । विशेष्यब्रह्मणः सोऽथ न स्वरूपस्वभावयोः । ब्रह्मोपादानतावादिश्रुतिकोयोऽपिनोभवेत् ।(श्रीबोधायनमतादर्शः) इत्याचार्यप्रवरोक्तेः । विशेषविवरणमन्यत्रानुसंधेयमितिशम् ।

इतः पूर्वं सूत्रश्रुतिवचनैरभिन्ननिमित्तोपादानस्य ब्रह्मणोर्विष्णवादिविशेषरूपेण स्वरूपं निरुच्य तदनु इतिहासपुराणादिवचनैः श्रीरामाख्यविष्णोरेव सर्वतः परत्वं साधयितुमाह इतिहासपुराणादिषु सर्गप्रलय इत्यादि, महाभारतादीतीहासे विष्णुपुराणादिषु च सर्गप्रलयप्रकरणयोः श्रीविष्णोरेव परत्वं सिद्ध्यतीत्यर्थः । तथोक्तं महाभारते-

'केन सृष्टमिदं सर्वं जगत् स्थावरजंगमम् । प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥'

स्थावरजङ्गमात्मकं जडचेतनात्मकमिदं जगत् केन सृष्टं भवति कस्मिंश्च

कस्यचित्सैव रूपभेदात् माता याता ननान्दा भवति तथैव प्रकृते एकमेव ब्रह्मरूप भेदाज्जगतोनिमित्तमुपादानमपि भवतीति । एतेन-अन्यत्र कार्ये निमित्तकारणोपादानकारणयोर्भेदो दृश्यते नहि घटादेर्यदुपादानं तदेव तत्र घटादिकार्ये निमित्तं भवति कुतः ? उपादानस्य जडत्वेन निमित्तकारणस्याधारादिभिन्नस्य चेतनया परस्परभेदात्, तथैव निमित्तोपादानकारणयोर्भेदोऽवश्यमेव स्वीकर्तव्य इति परास्तम् । यतो घटादौ तथा दृष्टत्वेन लोकसिद्धत्वाद् भवतु तथात्वम्, प्रकृते तु श्रुतिबलात् निमित्तोपादानकारणयोरेकत्वमङ्गीक्रियते, सर्वतो बलवतीश्रुतिर्निर्बलं प्रमाणान्तरमवधूय स्वराज्यमेव स्थापयतीति संक्षेपः । श्रुतिप्रमाणान्तरयोर्बलावल विचारोऽन्यत्र करिष्यते ।)

अर्थात् जिस तरह जंगल में विद्यमान वृक्ष को अनेक प्रकार स्तभादि के रूप में परिणत करके तक्षादि शिल्पी के मारफत प्रासाद का निर्माण होता है उसी तरह प्रकृत द्यावा पृथिव्यादिक सकल इस जगत् का निर्माण हुआ है । इस मन्त्र में बतलाया गया कि वन की तरह अधिकरण कारण बननेवाला ब्रह्म परमपुरुष है वृक्ष की तरह उपादान कारण भी ब्रह्म ही है तथा तक्षा की तरह निमित्त कारण अधिष्ठाता भी ब्रह्म ही है, जिस ब्रह्म से प्रासादादिक की तरह इस प्रपञ्च का अर्थात् भूर्भुवः इत्यादि प्रपञ्च का निर्माण हुआ है । इससे यह सिद्ध होता ह कि जगदुत्पत्ति में सर्व प्रकार का कारण ब्रह्म ही है किन्तु ब्रह्म व्यतिरिक्त किसी अन्य में किसी भी प्रकार की कारणता नहीं है ।

यद्यपि कार्य मात्र के प्रति कारण जो देश काल अदृष्ट ईश्वरेच्छादिक साधारण कारण हैं वे सब जगदुत्पत्ति में भी तो कारण बनते हैं तो सर्व कारणता की सिद्धी ब्रह्म में किस तरह कहते हैं तथापि **'तदास्तिमितगंभीरं न तेजो न तमस्ततम् । अनाख्यमनभिव्यक्तं सत्**

॥ क्वाचित्कविष्णूत्पत्तिश्रुतिवचनसमन्वयः ॥

यद्यपि परमकारणीभूतस्य सर्वश्रेष्ठस्य श्रीरामाख्यमहाविष्णोरपि कार्यलक्षणब्रह्मशिवादिभिः सहोत्पत्तिप्रकरणे जन्म

पुनरवसाने प्रलीयते तन्मेकथयेत्यर्थः । एवं युधिष्ठिरेण पृष्टो भीष्मः प्राह-

'नारायणो जगन्मूर्तिरनन्तात्मा सनातनः । ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः । जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥

तत्र अनन्तस्त्रिविधपरिच्छेदरहितः सनातनः सर्वदा विद्यमानो नारायणो भगवान् जगत् रूपेण विद्यते, इत्युक्त्वा पुनरप्याह-'ऋषयः पितरः' इत्यादि, ये च धर्मोपदेष्टारस्तदनुष्ठातारो ऋषिगणाः, पितरोऽग्निष्वात्तादयो वासवादिका देवाः, आकाशादिकानि पञ्चमहाभूतानि तथा पृथिव्यादिभ्यो जायमानाश्चर्मादिकाः शरीर स्थितिकारकाः सप्तधातवः तथा स्थावरजङ्गमात्मकं सकलमेवजगन्नारायणादेव

किञ्चिदवशिष्यते' इत्यादि शास्त्र से सिद्ध होता है कि प्रलयकाल में अदृष्टादिक साधारण कारण की अस्तिता नहीं थी और कार्य पूर्वकाल में रहनेवाला पदार्थ ही कारण बनता है ऐसा नियम है तब सृष्टि के पूर्वकाल में अदृष्टादिक नहीं था इसलिये अदृष्टादिक जगदुत्पत्ति में नियामक नहीं है किन्तु प्रलयकाल में विद्यामान ईश्वर जो कि चेतनक शरीर है वे ही सर्व प्रकारक कारण जमदुत्पत्ति में है । नहीं कहें कि अदृष्ट तो अनादि है इसलिये प्रलय में भी तो अदृष्टादिक की सत्ता रहती है यह भी कहना ठीक नहीं है, समान्य रूप से कारणता होने पर भी विशेष रूप से अर्थात् तत्तद्व्यक्तिरूप से कारणताग्रह तो सर्गकाल में ही होता है अदृष्टादिक का अनादित्व तो बीजाङ्कुरन्याय से सामान्यरूप से है विशेषरूप से नहीं । इसलिये सर्व शरीरका ब्रह्म का जगदुत्पत्ति में कारण है ब्रह्मव्यतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है । इसलिये ब्रह्म ही सकल कारण हैं यह सिद्ध हुआ ।

किञ्च-'सर्वेनिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
न तस्येशे कश्चन तस्य नाम महद्यशः ॥'

अर्थात्-विद्युत् बिजली के वर्ण के सदृश वर्णवाले अति देदीप्यमान कालविशिष्ट

श्रूयते तथापि तदीयं जन्मग्रहणं जीववन्न स्वाभाविकं किन्तु स्व कार्यभूतब्रह्माशिवादीनां संख्यापूरणाय जगदुपकाराय स्वेच्छया अवतारग्रहणमेव, नतु जीववन्मुख्यं जन्मग्रहणम् । जीवस्य जन्म

संजातम् । अनेन महाभारतवचनेन विष्णोरेव परत्वं ब्रह्मत्वं च सिद्धं भवति ।

विष्णुपुराणादप्ययमर्थः सिद्ध्यति, तस्य प्रामाण्यं सर्वशिष्टैः सर्वधर्मसत्वादिसाधने स्वीकृतम् । तस्मिन् विष्णुपुराणे मैत्रेयपराशरयोः प्रश्नप्रतिवचनाभ्यामुपक्रमोपसंहारवचनेन विष्णोरेव परत्वं सर्वापेक्षया ब्रह्मत्वं चापि प्रसाधितम् । तत्र विष्णुपुराणस्य तात्पर्यं विष्णोः परत्वे एव, तथाहि-

प्रकृतिर्यामयाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी । पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ॥
परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः । विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥

पुरुष से निमेषकला प्रभृतिकालावयव (कालखण्ड) उत्पन्न हुए हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि काल विशिष्ट ब्रह्म निमेषादि उपलक्षित सकल जगत् का उपादान कारण है। उस सर्वोपादानक पुरुष के उपर कोई शासन करनेवाला व्यक्त्यन्तर नहीं है उसका यश अपरिमित है। इससे उस पुरुष में निमित्तकारणत्व सिद्ध होता है, क्योंकि वह पुरुष किसी अन्यव्यक्ति के शासन में रहनेवाला नहीं है। यदि वह दूसरे के शासन में रहें, तब तो वह व्यक्त्यन्तर ही इस जगत् का निमित्त कारण बनता परन्तु ऐसा तो नहीं है। इसलिये ईश्वर ही जगत् का उपादानकारण तथा निमित्त कारण बनते है **'नेह नानास्ति किञ्च' 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः'** अर्थात्-यहां नाना कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि जो कोई पदार्थ है वह सब ब्रह्म का कार्य होने से ब्रह्मात्मक है कार्य कारण से भिन्न नहीं होता है जिस तरह मृत्तिका से जायमान घटादिक कार्य मृत्तिका से भिन्न नहीं होता है किन्तु मृदात्मक ही कहलाता है। इसी तरह जो कुछ पदार्थ देखने में आता है वे सब के सब ब्रह्म का कार्य होने से ब्रह्म व्यतिरिक्त कुछ भी पदार्थ यहां नहीं है। इससे ब्रह्म में सर्वोपादानता की सिद्धि होती है। वह ब्रह्म सब को अपने वश-अधिकार में रखने वाला है तथा सब के उपर शासन करनेवाला है। इससे ब्रह्म में निमित्त कारणता की सिद्धि होती है।

'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्चभाव्यम् उतामृतत्वस्येशानः' 'नान्यः पन्था

तु कर्मजन्यं प्राकृतिकं च शरीरम् सुखदुःखानुभवः कार्यम् । भगवतो महाविष्णोस्तु सर्वमेतद्विपरीतमेव । तदुक्तं गीतायाम्-

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

अस्यार्थः-व्यक्ताव्यक्तरूपवर्ती या प्रकृतिः सर्वेषामादिकारणरूपामया प्रतिपादिता सा तथा यश्च चेतनः पुरुषः, एतावुभावपि प्रलयकाले परमात्मनि सर्वाधारे प्रलीयेते तत्र संनिरुद्धौ भवतः । इमौ यत्र लीयेते स परमात्मा सर्वेषां जडचेतनानामाधारोऽधिकरणम्, स एव वेदे वेदान्ते क्रिया काण्डे ज्ञान काण्डे च विष्णुरिति शब्देन गीयमानो भवतीति । वेदादौ श्रूयमाणा अग्न्यादिवाचकाः शब्दा अपि स्वान्तर्यामिणं भगवन्तं विष्णुमेव बोधयन्तीति, देवादिशरीरवाचकदेवादिशब्दवत् । अनेन प्रकारेण स परमात्मा सर्वशब्दवाच्यो भवति । 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्' (श्रुति)

विद्यतेऽयनाः'' 'तरति शोकमात्मवित्' अर्थात् वर्तमान भूत तथा भविष्य सभी पदार्थ पुरुष ही है अर्थात् पुरुष तादात्म्यापन्न है क्योंकि सब पदार्थ पुरुष से उत्पन्न होने से पुरुष का कार्य है और कार्य कारण में तादात्म्य स्वाभाविक है। इससे सिद्ध होता है कि इस जगत् के प्रति परमेश्वर उपादान कारण भी हैं तथा निमित्त कारण भी हैं इस प्रकार से उभयविधकारण तो ब्रह्म में सिद्ध होता हैं। एवं यह जो पुरुष है वह अमृत का ईशान है अर्थात् मोक्ष देनेवाला है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह परमपुरुष मोक्षरूप अत्युत्कृष्ट फल को देनेवाले हैं। एवं इस स्थावर जंगम जगत् का उपादान कारण एवं निमित्त कराण बननेवाले जो परमपुरुष हैं तादृश परमपुरुष को जाननेवाला साधक ही मोक्ष को प्राप्त करता है ईश्वर ज्ञान से अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ब्रह्म प्राप्ति के लिये नहीं। एवं परमपुरुष को जाननेवाला व्यक्ति ही संसार सागर का अतिक्रमण करता है इत्यादि उपर्युक्त श्रुति वचनों से सिद्ध होता है कि ब्रह्म में उपादान कारणत्व भी है तथा निमित्त कारणत्व भी है। पूर्वोक्त व्याससूत्र तथा श्रुति विरुद्ध होने से शैवों का जो मत है अर्थात् जगत् के उपादान कारण तथा निमित्त कारण में भेद

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोर्जुन ! ॥'
'जगत्सृष्ट्यादयोलीला ममेव राघवस्य च ।
ममलीला विनारामलीला पूर्णा कदापि न ।

'भगवान् रामचरन्द्रोवै परं ब्रह्म श्रुतिश्रुतम्' (वा,संहिता) 'जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्' (श्रीमद्रामायणम्) इत्यादिरूपेण वेदे तथा वेदान्ते परमकारणतत्वबोधकाः सर्वे शब्दाः परमकारणं विष्णुमेव परमतत्वरूपेण प्रतिपादयन्ति । अत्रैव तात्पर्यं विष्णुपुराणस्येति । किंच यथा नारायणानुवाकः केवलं परतत्वप्रतिपादनायैव प्रवृत्तस्तथेदं विष्णुपुराणमपि परतत्वप्रतिपादनायैव प्रवृत्तम् । सोयमर्थ-उपक्रमोपसंहाराभ्यामभिव्यज्यते । उपक्रमस्तावदित्थम्-

अयमर्थः-विष्णुपुराणे उपक्रमे मैत्रेयः श्रीपराशरं प्रश्नयति-हे धर्मज्ञपराशरगुरो सोहं त्वदीयशिष्यो मैत्रेयः किमपि विलक्षणमज्ञातं वस्तु श्रोतुं ज्ञातुमिच्छामि भगवतो

है ऐसा माननेवाले जो शैव हैं उनका मत अवैदिक होने से सर्वथा अनादरणीय है अतएवोक्त मत सर्वथा त्याज्य है । इसलिये इस मत पर विश्वास नहीं करना चाहिये ।

इससे पूर्व केवल निमित्तेश्वरवादीशैव मत के खण्डन करते हुए आचार्यश्री ने श्रुति वचनों से यह सिद्ध किया कि भगवान् श्रीराम ही परतत्व परब्रह्म है तथा वे ही उपास्य हैं । इसके बाद कहते हैं कि केवल श्रुति वचनों से ही नहीं किन्तु इतिहास सात्विक वैष्णवपुराण वचनों से भी विष्णु ही परतत्व ब्रह्म सिद्ध हैं । इस बात को बतलाने क लिये उपक्रम करते हैं कि '**इतिहासपुराणादिषु सर्गप्रलयप्रकरणे**' इत्यादि । महाभारतादिक इतिहास तथा वैष्णवपुराण के सर्ग प्रलय प्रकरण में नारायणादिक अपर नाम है, जिनका एतादृश श्रीसीतानाथ ही सर्वापेक्षया परतत्व तथा सर्वश्रेष्ठ हैं ऐसा जाना जाता है । तथाहि-'**केन सृष्टमिदं सर्वम्**' इत्यादि । महाभारत में युधिष्ठिर ने भीष्म से प्रश्न किया कि-'**केन सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । प्रलये च कमभ्येति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥**' इति अर्थात्-हे पितामह भीष्म ! यह संपूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् किस से उत्पन्न हुआ, तथा प्रलयकाल में यह जगत् किस अधिकरण में प्रलीयमान हो जाता है ? इस विषय को आप मुझ को समझावें । इस प्रकार जब युधिष्ठिर ने सामान्यरूप से जगत् कारण

पूर्णाममापि नोलीला श्रीरामलीलया विना ।
सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ ।
भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ ।

मुखात्, इदं चराचरात्मकं जगत् यथा येन प्रकाररेण पूर्वकाले बभूव संजातम् कस्मात्कारणात्, अर्थादस्य जगत उपादानकारणं तथा निमित्तकारणं च क आसीत्, किंतदुभयमेकंविभिन्नं वा ? तथेदं जगत् केन प्रकारेण जातम् । किमिदं जगत् शून्य रूपमासीत्, किं वा भ्रमात्मकंविवर्तः कस्यचित् किंवा कस्यचित् स्वरूपपरिणामः, किं वा सद्वारकं परिणाम इति प्रश्नाशयः । तथोत्तरकाले कस्मात् कारणात् केन प्रकारेण समुत्पन्नं भविष्यति ?।'यन्मयं च जगद् ब्रह्मन्निति' हे ब्रह्मन् परिदृश्यमानजगतः स्थितिकारणं च कः ? स्थितौ कारणं द्विधा भवति-

१-बहिः स्थित एव स्थापयतीति प्रथमः । अन्यस्तु अभ्यन्तरे व्याप्तो भूत्वा

के विषय में प्रश्न किया तब भीष्म ने विशेष रूप से अर्थात् अमुक देव विशेष जगत् के कारण हैं ऐसा उत्तर देने के लिये कहते है-

'नारायणो जगन्मूर्तिरनन्तात्मा सनातनः ।
ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ॥
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवन् ।' इति ॥ अर्थात्-अनन्त-अपरिच्छिन्न स्वरूपवाले सनातन नारायण भगवान् विश्वरूप को लेकर के वर्तमान हैं तथा धर्मानुष्ठाता ऋषिगण, पितर देवगण आकाशादिक पञ्चमहाभूत तथा स्थावर जङ्गमात्मक भोक्ता वर्ग यह संपूर्ण जगत् नारायण भगवान् श्रीसीतानाथजी से उत्पन्न होते है। ऐसा विशेषरूप से भीष्म ने उत्तर दिया। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीसीतानाथजी ही परतत्व तथा पर ब्रह्म हैं।

यह विषय विष्णु पुराण से भी सिद्ध होता है और यह पुराण परम प्रामाणिक है इसके प्रामाण्य को सभी शिष्ट वर्गों ने धर्मव्यवस्था एवं तत्व व्यवस्था करने के लिये स्वकीर किया है। यह पुराण विष्णु को परतत्वसिद्ध करने के लिये ही प्रवृत्त हुआ है। इस विष्णु पुराण के प्रारंभ में वर्णित प्रश्न तथा उत्तर से सिद्ध होता है कि विष्णु जगत् कारण परतत्व हैं। उपक्रम तथा उपसंहार से ही तो ग्रन्थ का तात्पर्य समझने में आता है-यहां उपसंहार उपक्रम के अनूकूल है-यहां

त्रातुं धर्मं च भक्तांश्चावतारो युगेयुगे' इत्याद्यागमोक्तेश्च ।
यथा वा देवादिसंख्यापूर्तये तस्य परमकारणस्य परब्रह्मणः
श्रीरामस्योपेन्द्रकृष्णादिरूपेणावतारः 'सर्वेषामवताराणामवतारी

धारयित्वा स्थितौ कारणं भवतीति द्वितीयः, अमुं स्थितिकारणद्वयमपि त्वत्तो ज्ञातुमिच्छामि। तथेदं जगत् पूर्वकाले कस्मिन् केन प्रकारेण लीनमासीत्, तथोत्तरकाले कस्मिन् लियेत केन प्रकारेण च लयमेष्यतीत्येतत्सर्वं भवतो ज्ञातुमिच्छामीति एतदुपश्रुत्यविशेषरूपेणोत्तरयति पराशरः-

'विष्णोः सकाशादुद्‌भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥'

अयमर्थः-हे मैत्रेय ! इदं चराचरं जगत् विष्णोः सकाशात्समुत्पन्नम्, नेदं वर्तमानमेव जगत् विष्णोः प्रादुर्भूतमपितु समतीतब्रह्मकल्पेषु यान्यभवन् यानि चानागतकल्पेषु भविष्यन्ति तानि सर्वाण्येव विष्णोः सकाशादेवेति । जगतः कारणं सर्वदा

उपसंहार में पराशरजी मैत्रेय को कहते हैं कि-

प्रकृतिर्या मयाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ॥
परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ।
विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥
'सोहमिच्छामिधर्मज्ञ ! श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत् ।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥
यन्मयं च जगत् ब्रह्मन् ! यतश्चैतच्चराचरम् ।
लीनमासीत् यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥'

अयमर्थ :-हे मैत्रेय ! व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूपवाली जिस प्रकृतिका मैंने वर्णन किया तथा भोक्ता वर्गपुरुष ये दोनों तत्व प्रलयकालमें परमात्मामें प्रलीयमान हो जाते हैं एतादृश वह परमात्मा सबका आधार है तथा वही परमेश्वर है इन्हींका नाम विष्णु है, इन परमेश्वर विष्णुका वर्णन वेद तथा वेदाङ्ग में (वेदान्त में) किया गया है, इन्द्रादि देव वाचक शब्द भी इन्द्रादिकों का अन्तर्यामी बने हुए इस विष्णुका ही वाचक है, इसलिये विष्णु सर्व शब्दवाच्य है। वेद वेदान्त में परमकारणतत्व को प्रतिपादन करनेवाले सभी शब्द विष्णु को ही परमकारण बतलाते हैं, इस

रघूत्तमः' इत्यागमोक्तेस्तथैवेहापि शिवादिरूपेण विष्णोरवतारो नतु जन्म । अतो श्रीरामाख्यमहाविष्णोरेव सर्वश्रेष्ठत्वंध्येयत्वं चापितस्यैव नान्यस्य । कार्यमध्येसमावेशस्तु स्वेच्छया

भगवान् विष्णुरेक एव नतु जगत्कारणे कदाचिदपि भेदः । तत्र योगशक्त्या विष्णु शब्दो व्यापकं सर्वेश्वरश्रीरामचन्द्रं बोधयति 'विश्वंभरं महाविष्णुं नारायणमनामयम् । पूर्णानन्दैकविज्ञानं परं ज्योतिः स्वरूपिणम् ॥ मनसा संस्मरन् ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् । ॐ यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यः परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमोनमः' (श्रीरामतापनीयाश्रुतिः) इत्युक्तेः रूढिशक्त्या तु विशेषरूपेण नारायणादिकं बोधयति, इति तदेव जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणं नान्य इति पराशरस्योत्तरम् । व्यापकोनिर्विकारो विष्णुः स्वस्थितसूक्ष्मचेतनाचेतनद्वारेण जगत्सर्जयति, तेनेदं जगत् सद्वारकपरिणामात्मकं विष्णोः 'सूक्ष्मचिच्चिद्विशिष्ट

उपसंहारस्थ वचनसे विष्णुको परमतत्व बतलानेमें ही इस पुराण का तात्पर्य ज्ञात होता है तथा नारायणानुबाक का तात्पर्य परतत्वमें है उसी तरह यहां पर भी है। यह विषय उपक्रमोपसंहार से विदित होता है। उपक्रममें मैत्रेयका प्रश्न है कि-

सोहमिच्छामि धर्मज्ञ ! श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत् ।
बभुव भूयश्च यथामहाभाग भविष्यति ॥
यन्मयं च जगद् ब्रह्मन् यतश्चैतच्चराचरम् ।
लीनमासीद् यथायत्रलयमेष्यति यत्र च ॥'

अयमर्थ :-हे धर्मज्ञ ! गुरो महाभाग मैं मैत्रेय आपसे सुनना चाहता हूं कि यह चराचर संसार पूर्वकालमें किस कारणसे पैदा हुआ, इस जगतका उपादान कारण तथा निमित्तकारण कौन था ? क्या दोनों कारण एक हीं पदार्थ था अथवा परस्पर विभिन्न था । यह जगत् किससे उत्पन्न हुआ ? क्या यह जगत् शून्य है अथवा शूक्तिरजतवत् भ्रमसे दिखाई देनेवाला विवर्त है अथवा किसीका स्वरूप परिणाम है ? अथवा किसीका अद्वारक परिणाम है अथवा किसीका सद्वारक परिणाम है अर्थात् जगत्का कारणीभूत जो मूलतत्व है उसने किसी द्वितीयतत्वके द्वारा इस जगतको उत्पन्न किया हो तब यह जगत् सद्वारक परिणाम किसी अन्यके द्वारा होनेवाले परिणाम सिद्ध होता है

जगदुपकाराय लीलावताररूपेण नतु फलादिभोगायेति ।

तद्ब्रह्मकारणमुच्यते । स्थूलाचिच्चिद्विशिष्टं च ब्रह्मकार्यं मतं बुधैः ।।११६।। विकारो जायते चाथ चिदचितोः प्रकारयोः । अक्षता च भवेत्तस्माद् ब्रह्मणो निर्विकारता ।।११८।। चिदचिद्भ्यां विशिष्टत्वात्सङ्कल्पवत्तया तथा । उपादानं निमित्तं च सद्ब्रह्मैवोर्णनाभिवत् ।।११९।। (श्रीबोधायनमतादर्शः) 'रामस्य परिणामोहिचिदचिद्द्वारको जगत् ।।६४४।।(श्रौतप्रमेयचन्द्रिका) इत्यद्याचार्योक्तेः । तेनेदं जगत् न शून्यं नापि विवर्तः किन्तु श्रीरामस्य सद्वारकपरिणामात्मकमेवेति ।

'जगत्तत्रैव च स्थितम्' इदं चराचरात्मकं विश्वं विष्णावेव स्थितम् । अर्थात् प्रलयकाले स्वकीयाभिन्ननिमित्तोपादानात्मककारेणेश्वरे प्रलीयते, चतुर्विधभूतग्रामस्य पृथिव्यां लयवत् । अर्थात् तत्तत्कार्यं तत्तत्कारणे लीयते पृथिवी जले जलं तेजसि तेजो

पूर्वकथित प्रकारोमेंसे किस प्रकारसे यह जगत् उत्पन्न हुआ ।

भविष्यकाल में भी यह जगत् किस कारण से किस प्रकार उत्पन्न होनेवाला है । क्या किसी शाखा में किसी प्रकरण में विभिन्नकालों में विभिन्न कारणों से तथा विभिन्न प्रकारों से इस जगत् की उत्पत्ति कही गई हो तो उन बातों को कृपा करके बतलाइये ।

'यन्मयं च जगद् ब्रह्मन्' हे ब्रह्मन् पराशर ! इस जगत् की स्थितिका कारण कौन है ? यह हमको कहिये । तथा यह जगत् पूर्वकाल प्रलयकाल में किन कारणों में लीन था, किस तरह से लीन था तथा भविष्यकाल में किस तरहसे लीन होगा ? किस प्रकार से लीन होगा ? इन सब बातों को मैं जानना चाहता हूं तो आप कृपया इन सब बातों को बतलाइये । इसप्रकारसे मैत्रेय ने जगत् कारण परब्रह्म के विषय में प्रश्न किया ।

इसका उत्तर पराशरजी सामान्यरूप से किये गये प्रश्न का विशेषरूप से उत्तर देने के लिये कहते हैं-

'विष्णोः सकाशादुद्भूतम् जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयम कर्तासौ जगतोस्य जगच्च सः ।।'

अर्थात् हे मैत्रेय ! यह स्थावर जंगम भगवान् विष्णु से उत्पन्न होता है, एवं अतीतकाल में जो हुआ था वह भी विष्णुसे ही एवं अनागतकाल में जो उत्पन्न होंगे वे सबके सब भगवान् विष्णु से ही उत्पन्न होंगे ।

ॐ देवाहेत्यादिश्रुतेः श्रीरामपरत्वेसमन्वयः ॐ

यदप्यथर्वशिर उपनिषदि 'देवा ह वै स्वर्गं लोकमगमन्, ते देवा रुद्रमपृच्छन् को भवानिति, सोऽब्रवीदहमेकः प्रथममासं वर्तामि

वायौ वायुराकाशे, आकाशो महाभूतसूक्ष्मे जडचेतने स विष्णौ तदुक्तम् 'जगत्प्रतिष्ठादेवर्षे ! पृथिव्यप्सु प्रलीयते । तेजस्यापः प्रलीयन्ते तच्च वायौ प्रलीयते ।' इति । 'स्थितिसंयमकर्तासौ' असौ विष्णुर्जगतः स्थिते संयमस्य संहारस्यापि कर्ता भवति अर्थात् अयमेव भगवान् विष्णुः प्रलयकाले सर्वानेव स्वस्मिन् संहरति ततो बहिरवस्थितः स्थितौ जगतः कारणं भवति । एतेन जगतो बाह्यस्थिति कारणं श्रीरामाख्यमहाविष्णुरेवेति सिद्धम् ।

जगदेनमन्तरवस्थितः कः स्थितिकारणमिति मैत्रेयप्रश्नस्योत्तरं दातुमाह जगच्च स इति तदिदं जगत् विष्णुरेव, यतोऽन्तर्यामिरूपेण जगततोऽभ्यन्तरे स्थित्वा स्थापयन्

ऐसा नहीं होता है कि विभिन्नकालों में भिन्न-भिन्न जगतका कारण हो किन्तु सभी कालों में एक ही विष्णु जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण होते हैं । विष्णु शब्द योगशक्ति के द्वारा व्यापकत्व का बोध कराता है तथा रूढ़ि शक्ति से व्यापक श्रीसीतानाथ को बतलाता है। यह व्यापक निर्विकार विष्णु भगवान् स्वशरीरभूत चेतनाचेतन पदार्थ द्वारा इस स्थूल चराचर जगत् को बनाते हैं । यह जगत् भगवान् का सद्वारक परिणाम है अर्थात् स्वविविषेणीभूत सूक्ष्म चेतनाचेतन द्वारा होनेवाला परिणाम जगत् है। इसलिये यह जगत् सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी का परिणाम है । यह आचार्यप्रवर जगद्गुरु श्रीश्रियानन्दाचार्यजी ने **'रामस्य परिणामोहि चिदचिद्वारको जगत्'** (श्रौतप्रमेयचन्द्रिका ६-४४) ऐसा लिखकर प्रगट किया है । अतएव यह जगत् शून्यरूप नहीं हैं न वा ब्रह्मका विवर्त है न वा ब्रह्मा का परिणाम है किन्तु परब्रह्म श्रीरामजीका सद्वारक परिणाम है ।

'जगत्तत्रैव च स्थितम्' इस जगतका लय कहां होता है अर्थात् जगतका लय स्थान कौन है ? मैत्रेय के इस प्रश्न के उत्तर में पराशरजी ने कहा-यह जगत् विष्णु भगवान में लीन होगा अर्थात् यह जगत् स्वकारण सूक्ष्म चेतनाचेतन में लीन होकर उसके द्वारा भगवान् विष्णुमें लयको प्राप्त करता है ।

च भविष्यामि च, नान्यः कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति' रुद्रेण स्वकीयं सर्वैश्वर्यं प्रदर्शितम् । तदपि 'सोन्तरादन्तरं प्राविशत् । दिशश्चान्तरं प्राविशत्' इति रुद्रान्तः परमात्मप्रवेशात्तदैश्वर्यं न तु रुद्रस्य

जगद्रूपेणावस्थितः । तदनेन क्रमेण शिष्यप्रश्नं समाहितवानिति

एवं च विष्णोर्जगत्कारणत्वं तस्य परत्वे ब्रह्मरूपत्वे च प्रकृतपुराणस्य तात्पर्यमिति सिद्धं भवतीत्येतावता भगवान् श्रीरामाख्यमहाविष्णुरेव जगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणं नान्यः 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । परता ब्रह्मता चेति रामे हनुमतेरिता ॥३०२॥' (श्रीबोधायनमतादर्शः) इत्याचार्योक्तेः । विष्णोः सकाशादुद्भूतम् इत्यादिवचनेन विष्णोर्जगत्कारणत्वं प्रतिपादितम् तदिदं कारणत्वं तस्य तदैव स्याद् यदि विष्णुरपरिच्छिन्नो भवेत् तस्य परिच्छिन्नत्वे ततोऽपरिमितकार्योत्पादकत्वं न स्यादिति विष्णोरपरिच्छिन्नत्वं दर्शयितुं विष्णुपुराणवचनमुदाहरति-

'परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः । रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः ॥ अपक्षयविनाशाभ्यां परिमाणर्द्धिजन्मभिः । वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् '

'**स्थिति संयमकर्ता सौ जगतः**' ये भगवान् श्रीसीतानाथ ही इस जगत् का संहार करते तथा बाहर स्थितिका कारण भी बनते हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि इस जगतका बाह्य स्थिति तथा लयका कारण विष्णु हैं । आन्तर स्थिति कारण में जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर देते है '**जगच्च सः**' यह जगत् श्रीविष्णु भगवान् ही हैं क्योंकि यह विष्णु इस जगत् के अन्दर में अन्तर्यामि के रूपसे अवस्थित होकर इसकी स्थिति को करते हुए जगत् रूप को धारण करके स्थित हैं । जगद्गुरुश्रीतुलसीदासजी ने श्रीमद्रामचरितमानस में इसको स्पष्ट किया है '**सीय राममय सब जगजानी**' इसतरह मैत्रेय का जिनता प्रश्न था उन सब प्रश्नों का उत्तर इस श्लोक से पराशरजी ने दे दियां । इससे सिद्ध होता है कि विष्णुपुराण का तात्पर्य विष्णु भगवान् को जगत् कारण परतत्व परब्रह्म सिद्ध करने में है।

एवं विष्णुपुराण के अन्य श्लोकों से भी विष्णु स्वरूप का निर्णय होता है। इस बातको बतलाने के लिये कहते है-

स्वकीयमैश्वर्यमिति श्रुत्या स्पष्टीकृतम् । अयमर्थः सूत्रकारेणापि 'शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशोवामदेववदिति सूत्रे प्रतिपादितः । प्रह्लादेनापि कथितम्-'सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं

अयमर्थः-परो विष्णुः पराणां ब्रह्मादीनामपि परमः सर्वथोत्कृष्टः । अयंभावः वेदे 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' इत्यादिना त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वं ब्रह्मणो दर्शितम्, इहापि विष्णुपुराणे विष्णोस्तथात्वं दर्शितम् । कालपरिच्छेददेशपरिच्छेदवस्तुपरिच्छेदभेदेन परिच्छेदः त्रिविधः । तत्र यः अमुककाले भवत्यमुककाले न भवति स कालपरिच्छिन्नः, एकदेशे भवत्यन्यत्र न भवति स देशपरिच्छिन्नः यश्चैकरूपो भवति नान्यरूपो भवति स वस्तुपरिच्छिन्नः । तत्र महाविष्णौ कालपरिच्छेदो नास्तीति दर्शितम् 'परः पराणामित्यादिना' ब्रह्मादिदेवो हि तदितरजीवापेक्षयाऽधिककालावस्थायी भवन् परः सर्वेश्वरश्रीरामस्तु ततोपि परः सर्वदाऽवस्थानात् परान्नारायणाच्चापि कृष्णात्

'परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः' । रूपवर्णादिनिर्देशविशेषण-विवर्जितः । अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धि जन्मभिः । वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम् । पूर्वकथित-'**विष्णोः सकाशादुद्भूतम्**' इस श्लोक में विष्णु को जगत् का कारण कहा गाया है, परन्तु यदि भगवान् परिच्छन्न हों तब इतना बडा कार्यवर्ग का कारण नहीं बन सकेंगे अतः विष्णु में अपरिच्छिन्नत्व बतलानेके लिये श्लोक उद्धृत किया जाता है । श्रुतियों में अपरिच्छिन्नत्व को अनन्त शब्द से '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' ऐसा कहा गया है अपरिच्छिन्न का अर्थ होता है परिच्छेद रहित । परिच्च्छेद तीन प्रकारका होता है-कालपरिच्छेद, देशपरिच्छेद तथा वस्तु परिच्छेद । इसमें जो पदार्थ किसी काल में रहे किसी काल में न रहे वह कालपरिच्छिन्न कहलाता है । ब्रह्म सर्वकाल स्थायी होने से ब्रह्म में कालपरिच्छेद नहीं है । किसी देश में रहना किसी देश में नहीं रहना, इसको देशपरिच्छेद कहते हैं । ब्रह्म में देशपरिच्छेद नहीं है क्योंकि ब्रह्म सर्वव्यापक होने से सर्वदेश में रहता है । वस्तु परिच्छेद उसे कहते है-जो पदार्थ वस्तु के रूपमें हो और तदन्य के रूपमें न हो ब्रह्म में वस्तु परिच्छेद नहीं है क्योंकि ब्रह्म सर्वान्तर्यामी होने से वह सर्वस्वरूप है सर्वरूप धारण करता है, तो ब्रह्म में तीनों प्रकार के परिच्छेद नहीं घटते हैं इसलिये श्रुति में ब्रह्मको अनन्त अपरिच्छिन्न

सर्वं मयि सर्वं सनातने' इत्यादि । अत्र सर्वगत्वादनन्तस्येति हेतुः कथितः । ततश्च परमेश्वरशरीररूपस्य सर्वस्य जडचेतनप-

परतरादपि । यौ वै परतमः श्रीमान् रामो दाशरथिः स्वराद्' इत्यागमोक्तेः । तस्माद् महाविष्णुर्नकालपरिच्छिन्नः । तथा भगवान् विष्णुः परम' यस्मादयं सर्वत्र व्याप्यावस्थितः तस्मादयं देशपरिच्छेदरहितः । अयं च 'आत्मसंस्थितः' स्वबलेन अन्यः सर्वोपि पदार्थपरमात्मवलेनावस्थितः परमात्मा सर्वस्यान्तर्यामीति सर्वस्वरूपः 'सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेवहि मास्ते । स्वेमहिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः' वशिष्ठसंहितायां श्रीसीतारामाभेदवर्णने श्रीसीतोक्तेः सर्वात्मकत्वेन वस्तुच्छेदो नास्ति भगवति ।

किञ्च कालपरिच्छिन्ने षड्भावविकारा भवन्ति जात्यादिविशेषणवन्तो भवन्ति, ते च भावविकारा इमे जन्मस्थितिवृद्धिपरिणामह्रासविनाशाः एते विष्णौ न सन्ति तस्मान्न कालपरिच्छिन्नः । एतदुक्तं भवति-कालपरिच्छिन्ना जात्यादि-विशेषणवतो भवन्ति तथा जात्यादिशब्दैः समभिव्याहृता भवन्ति षड्भावविकारवन्तश्च, नायं तथा अत एव नायं कालरिच्छिन्नः । एतदेव-'रूपवर्णादिनिर्देशेत्यादिना आरभ्य केवलमित्यन्तेन दर्शितम्, रूपवर्णजात्यादिविशेषणेन सर्वदा रहितः तथाऽपक्षयादि-षड्भावविकारवर्जितश्च केवलं सदाऽस्तीत्येव वक्तुं शक्यते । अतो भगवान् न

कहा है ।

जिस तरह ब्रह्ममें श्रुति बतलाती है कि ब्रह्म परिच्छेद रहित अनन्त है, उसी तरह **'परःपराणाम्'** इत्यादि विष्णुपुराण का वचन विष्णु को परिच्छेदत्रय रहित बतलाता है । इससे विष्णु परब्रह्म हैं ऐसा सिद्ध होता है । **'परःपराणां परमः'** इत्यादि ब्रह्मादिकदेव इतरजीवापेक्षया अधिककाल तक जीवित रहते हैं, इसलिये पर कहलाते हैं अर्थात् अधिक आयुमान हैं और परमेश्वर तो ब्रह्मादिक से भी अत्यधिक कालपर्यन्त रहनेवाले हैं इसलिये वह परम है अर्थात् सर्वथा कालपरिच्छेद रहित हैं । तथा वह भगवान् परमात्मा है अर्थात् वे सबको व्याप्त करके रहते हैं तो सर्वदेश में वर्तमान रहने के कारण उनमें देश परिच्छेद नहीं है अर्थात् अमुक देश में रहते हैं अमुक देश में नहीं रहते हैं ऐसा नहीं होता है ।

दार्थस्यात्मत्वेन सर्वगतः परमात्मेति सर्वे एव शब्दाः सर्वशरीरकं परमपुरुषमेव प्रतिपादयन्तीति कथितम् । तस्मादहमिति शब्दः स्वात्मप्रकारिणं परमपुरुषं परमात्मानमेव वक्ति । कार्यावस्थः कारणावस्थश्च स्थूलसूक्ष्मचिदचित्पदार्थशरीरक एवेति, सर्वस्य

कालपरिच्छिन्नोऽपितु सर्वदावस्थानात् कालपरिच्छेदाभाववानिति श्लोकार्थः ।

तदेवं विष्णौ विशेषरूपेण कालपरिच्छेदाभावं प्रदर्श्य तदनुविशेषतो देशपरिच्छेदाभावं दर्शयितुमाह-

'सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः । ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
तद् ब्रह्मपरमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् । एकस्वरूपं च सदा हेया भावाच्चनिर्मलम् ॥ '

स भगवान् विष्णुर्वासुदेव इत्यपिकथ्यते । वासुदेवपदस्य व्युत्पत्त्या देशपरिच्छेदरहित इत्यवगम्यते, तथाहि सर्वत्र वसत्यसौ वासुः स चासौ देव इति वासुदेवः । अथवा समस्तं वस्तुजातं वासयति स्वस्मिन्निति वासुः स चासौ देवश्चेति वासुदेवः । तत्र

'आत्मसंस्थितः' तथा वह परमेश्वर आत्म संस्थित है । अर्थात् स्वकीय महिमा में अवस्थित रहते हैं । अन्य सब पदार्थ परमेश्वर का आश्रय लेकर के रहते हैं परमेश्वर एतादृश नहीं हैं किन्तु परमेश्वर हैं, सबके धारक है, इसप्रकार से परमेश्वर में वस्तु परिछेदाभाव सिद्ध होता है ।

इस तरह श्लोक के पूर्वार्द्ध से सामान्यतः त्रिविध परिच्छेदाभाव को वतला करके विशेषरूप से परिच्छेदरहितत्व को वतलाने के लिये कहते हैं- **रूपवर्णादिनिर्देशविशेषण विवर्जितः** इसका अभिप्राय ऐसा है कि जो कालपरिच्छिन्न पदार्थ होते हैं उनमें जातिगुण क्रिया आदि विशेषण रूपसे रहते हैं तथा जात्यादि विशेषणवाचक जो शब्द हैं उनसे वह जात्याश्रयधर्मी भी वाच्य होते हैं । भगवान् तो कालपरिच्छन्न नहीं है इसलिये जातिगुण और क्रियादिरूप विशेषण से रहित ही होते हैं, अतएव जातिगुणादि विशेषण वाचक शब्द से वाच्य भी भगवान् नहीं होते हैं, और भी देखिये जो कालपरिच्छिन्न पदार्थ होता है, उसमें छ प्रकार के जो भाव विकार हैं वे सब रहते हैं, वे छ विकार इसतरह हैं जन्म, विद्यमानता वृद्धि परिणाम ह्रास, तथा विनाश ये

तन्निष्पत्तेः । तदुक्तं सूत्रकारेण 'आत्मेतितूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च' इति । तदाहुर्भाष्यकाराः-'स्वात्मनः स्वशरीरादाधिक्येनानुसन्धानम् । ततोऽप्याधिक्येनात्मशरीरस्य परमात्मनोऽनुसन्धानमिति पार्थक्यमपि 'पृथगान्मानं प्रेरितारञ्चमत्वा' (श्वे. १।६) इतिश्रुत्युप-

प्रथमव्युत्पत्त्या भगवान् सर्वत्र निवसति ततो वासुदेवपदवाच्यो भवति द्वितीयव्युत्पत्त्या सर्वस्य वस्तुजातस्य तत्र निवासः । स चायं वासुदेवशब्दो योगेन सर्वव्यापकंसर्वात्मवं देवं बोधयति, रूढिशक्त्या भगवन्तं विष्णुमेव बोधयति । यथोक्तस्य भगवतः सर्वदेशेऽवस्थानात् देशापरिच्छिन्नत्वं सिद्ध्यतीति । ननु श्रुतौ 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' इत्यत्र ब्रह्मणोऽपरिच्छिन्नत्वं कथितम् इह तु विष्णोस्तथात्वं प्रतिपादयतीत्येतदुभयं कथं संगतम् ? इत्यस्य निराकरणायाह-तद् ब्रह्मपरमम् इत्यादि, सः यथा वर्णितवासुदेवपरं ब्रह्म न ततो व्यतिरिक्तः-ब्रह्मपदवाच्य इति । तथाऽयमेव वासुदेवः 'अजोऽजन्मा' अर्थात् जन्मनोऽनन्तरं यादृशमस्तित्वं लभ्यते तादृशमस्तित्वं वासुदेवे

सब छ भाव विकार भगवान् में नहीं होते हैं किन्तु कालपरिच्छिन्न पदार्थ में ही होते हैं, भगवान् तो सर्वदा एकरूप से सर्वत्र रहते हैं तथा नित्य हैं। इस श्लोक से विस्तृत रूपसे विष्णु में कालापरिच्छेद्यत्व का प्रतिपादन किया ।

इसप्रकार गत श्लोकों से विष्णु में विस्तृत रूपसे कालपरिच्छेद्यत्वाभाव को बतला करके देशपरिच्छेद्यत्वाभाव तथा वस्तुपरिच्छेद्यत्वाभाव का प्रदर्शन कराने के लिये कहते हैं-

'सर्वत्रासौ समस्तं च यस्यैवेति चवै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ॥
तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
एक स्वरूपं च सदा हेयाभावाच्च निर्मलम् ॥'

अर्थात्-भगवान् का नाम वासुदेव है यहां वासुः तथा देवका समास है इसमें वासु शब्द की दो प्रकार की व्युत्पत्ति होती है, **सर्वत्र वसतीति वासुः अथवा सर्वं वसत्यस्मिन्निति वासुः वासुश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः** । इसमें प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार भगवान् सभी देश में निवास करते हैं यह अर्थ होता है । द्वितीय व्युत्पत्ति के

दिष्टमनुष्ठितं भवति तस्मादुपासकेनात्मतया ब्रह्मोपासनीयमिति' (आनन्दभाष्यम्)

ॐ सर्वेश्वरश्रीरामस्य ब्रह्मशिवादयोरन्तर्यामित्वसमर्थनम् ॐ

भगवान्नारायणापरपर्यायः श्रीसीतानीथो रुद्रस्य ब्रह्मदेवस्य

नास्ति किन्तु सार्वकालिकमस्तित्वमत्र विद्यतेऽतो वासुदेवोऽजन्मेति । तथा तद् ब्रह्म 'अक्षयम्' तत्र क्षयो नाम विनाशस्तद्रहितम्, उत्पादविनाशरहितमिति समुदितार्थः । एतावताआद्यन्तभावविकाररहित्यं ज्ञापितं भवति । तथा-'अव्ययम्' व्ययो नाम ह्रासस्तद्रहितम् । तथा तद् ब्रह्म 'एकस्वरूपम्' एकरूपेणैव सर्वदाऽवस्थितम्, न तत्र वृद्धि विपरिणामावस्था वा विद्यते, एतावता ब्रह्म नित्यं सदैवावस्थितमिति । एतावता नित्यादिविशेषणैर्जन्मादिभावविकाररहितमचेतनेभ्यः सर्वथा विलक्षणमिति सिद्धं भवति । तथा तद् ब्रह्म 'निर्मलम्' सर्वथामलविवर्जितम्, बद्धजीवः समलो भवति निर्मलमिति विशेषणेन बद्धजीववैलक्षण्यं व्यञ्जितम् । मुक्तजीवापेक्षयापि वैलक्षण्य

अनुसार जडाजड सब पदार्थ भगवान् में निवास करते हैं यह अर्थ होता है। यह वासुदेव शब्द का योग शक्ति के अनुसार सर्वत्र निवास करनेवाले एवं अपने में सबको निवास करनेवाले यह अर्थ होता है और यही वासुदेव पद रूढ़ि शक्ति से श्रीविष्णु को समझाता है । इसप्रकार योगरूढि वासुदेव शब्द सर्वत्र निवासी तथा सबको अपने में निवास करानेवाले विष्णु को समझाते हुए भगवान् को देशापरिच्छिन्न बतलाता है ।

प्रश्नः-**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** यह श्रुति तो ब्रह्मको अनन्त कहकर परिच्छेदत्रय राहित्य का प्रतिपादन करती है तथा यहां तो वासुदेव को परिछेदराहित्य का प्रतिपादन किया गया है तो ये दोनों असंगत मालूम पडते हैं ? इस शंका का निराकरण करने के लिये पराशरजी कहते हैं **'तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययमित्यादि**-वे वासुदेव भगवान् पर ब्रह्म हैं, वे ब्रह्म हैं, वे ब्रह्म-अज है, जन्मात्मकभाव विकार से रहित हैं । वे परब्रह्म अक्षय अविनाशी हैं । वे परब्रह्म अव्यय हैं, अर्थात् कभी भी घटते नहीं हैं तथा एक स्वरूप हैं, सर्वदा एक रूप रहते हैं अर्थात् उनमें वृद्धि तथा विपरिणामावस्था कदापि नहीं होती है । इसतरह ब्रह्ममय है सर्वदा रहनेवाला है। इन पूर्वोक्त विशेषणों से सिद्ध होता हैं कि परब्रह्म वासुदेव जन्मादिक भावाविकारयुक्त जडपदार्थ से सर्वथा

तदन्येषाञ्चान्तर्यामीति महाभारते ब्रह्मरुद्रसंवादे महेश्वरं प्रति ब्रह्मा प्रोवाच-'तवान्तरात्मा मम च ये चान्ये देहसंज्ञिताः । सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यः केनचित् क्वचित्' एवं-विष्णुरात्माभगवतो

माविष्कृतम्, मुक्तजीवस्य पूर्वावस्थायां समलत्वात् । तथा तद् ब्रह्म 'परमम्' सर्वत उत्कृष्टम्, नित्यमुक्तेभ्योऽपि विलक्षणम् । परत्वविशेषणेननित्यमुक्तजीवादपि वैलक्षण्यं भगवतोदर्शितम्, अचेतनवद्धमुक्तनित्यमुक्तेभ्यः सर्वेभ्योऽपि विलक्षणो वासुदेव इति सिद्ध्यति । तदेवं 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इतिश्रुतिर्योगशक्त्या परब्रह्मचेतनं त्रिविधपरिच्छेदशून्यं दर्शयति, तथा सैव श्रुतिरूढशक्त्या भगवान् श्रीराम एव परब्रह्म इत्यपि ज्ञापयति, यतो विष्णोरनन्त इत्यपि नाम तदित्थं भगवान् विष्णुरेव ब्रह्मपदवाच्यो भवतीत्यत्र यथोक्तश्रुतेस्तात्पर्यमवसीयते, तादृशश्रुतितात्पर्यमधिगत्यैव विष्णुपुराणेऽपि

व्यावृत्त हैं, तथा वे ब्रह्म निर्मल हैं उनमें किसी प्रकारे की मलिनता नहीं है । इससे यह सिद्ध होता है कि बद्ध जीव तथा मुक्त जीवसे ब्रह्म व्यावृत्त हैं क्योंकि बद्ध जीव सर्वदा अदृष्टादिक मलवान् होता है तथा मुक्तजीव पूर्वावस्था में मलावान् था, तथा जो परब्रह्म हैं उनसे बढ करके कोई दूसरा नहीं है '**न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते** (उस ब्रह्मका न कोई कार्य है नवा कोई चक्षुरादि करण है, उस ब्रह्म के सदृश कोई नहीं है, उस ब्रह्मसे अधिक बडा तो कोई है ही नहीं अर्थात् सर्वापेक्षया वह अत्युत्कृष्ट है ।) ईश्वर नित्य मुक्त से बढकर होते हैं इस से सिद्ध होता है कि परब्रह्म नित्यसूरियों से सर्वथा व्यावृत्त हैं । इसतरह जो परब्रह्म अचेतन पदार्थ तथा वद्धमुक्त नित्य चेतनों से सर्वथा व्यावृत्त हैं श्रुतिप्रतिपादित हैं वे परब्रह्म वासुदेव भगवान् ही है तदन्य कोई नहीं है । '**सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' इस श्रुतिमें जो अनन्त पद है वह योग शक्ति के द्वारा काल परिच्छेद तथा वस्तु परिच्छेद रूप त्रिविध परिच्छेद के अभाव को परब्रह्म में बतलाता है और वही अनन्तपद रूढ शक्ति के द्वारा श्रुतिप्रतिपादित उस ब्रह्मको विष्णु भगवान् के रूपको बतलाता है । 'अनन्त' एतादृश नाम भगवान् विष्णुका है । उपर्युक्त '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' इस श्रुति का विष्णु भगवान् को परब्रह्म कहने में ही तात्पर्य है । एतादृश तात्पर्य श्रुति का समझ करके यहां विष्णुपुराण में पराशरजी ने वासुदेव भगवान् को परब्रह्म शब्द से व्यवहार

भवस्यामिततेजसः । तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं सभिषेहे महेश्वरः । इति । तथा पुनः-'एतौ द्वौ विबुधश्रेष्ठौ प्रसादक्रोधजौ स्मृतौ । तदादर्शितपन्थानौ सृष्टिसंहारकारकौ ॥' इति । अन्तर्यामिरूपेणावस्थित-परमपुरुषप्रदर्शितमार्गौ ब्रह्ममहेशावुत्पत्तिप्रलयकारकौ प्रजाया

वासुदेवपरब्रह्मेत्यवोचत् । वासुदेवविष्णुश्रीसीतानाथादिकाः शब्दाः कोकिलपिकादिवत् पर्यायरूपा एव एकार्थबोधकत्वात्सर्वेषामिति ।

तदेवं कालपरिच्छेददेशपरिच्छेदराहित्यं प्रतिपाद्य वस्तुपरिच्छेदराहित्यप्रदर्शनायाह-

तदेव सर्वमेवैतद् व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् । तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितमिति ।

अस्यार्थः-तदेव वासुदेवात्मकं परं ब्रह्म, व्यक्ताव्यक्तस्वरूपजडात्मकप्रपञ्चरूपेण पुरुषरूपेण तथा कालरूपेणाप्यवस्थितम् । अर्थात्-जडचेतनात्मकप्रपञ्चः कालश्च परब्रह्मणः शरीरम्, परब्रह्मचैतेषां शरीरी परब्रह्मैतान् शरीररूपेणधृत्वा

किया है वासुदेव विष्णु तथा श्रीसीतानाथजी प्रभृतिक शब्द एकार्थ के वाचक होने से पर्यायवाचक हैं । तात्पर्य निर्णय उपक्रमोपसंहारादिक षड्विधलिंग द्वारा तात्पर्य का निर्णय किया जाता है विष्णुपुराण के उपक्रमोपसंहार से सिद्ध होता है कि परब्रह्मपद प्रतिपाद्य श्रीसीतानाथजी हैं वे काल देश परिच्छेद रहित हैं । भगवान् विष्णु में कालपरिच्छेद तथा देश परिच्छेद के अभाव का प्रतिपादन करके वस्तु परिच्छेद के अभाव को प्रतिपादन करने के लिये कहते हैं-

तदेव सर्वमेवैतद् व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ।। इति ॥

अयमर्थः-वह परब्रह्म व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूपवान् इस अचेतन प्रपञ्चको रूपमें-पुरुष चेतन तथा कालके रूपमें सर्वदा विद्यमान रहते हैं, जडचेतन पदार्थ तथा काल ये सब वस्तु परब्रह्मका शरीर हैं । भगवान् इन सब शरीरोंको धारण करके सभी पदार्थोंके रूपमें विद्यमान रहते है । सर्वान्तर्यामी होनेसे विश्वरूपवान् हैं । यही विश्वरूपता ब्रह्ममें वस्तुपरिच्छेदाभाव है । इस प्रकारसे आचार्यश्रीने विष्णुपुराणके उपक्रममें पठित

इत्यर्थः । तथैवागमे-'सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेव हि मास्ते । स्वे महिम्नि स्थितावावामन्याधारो न चावयोः ॥ सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ । नित्यलीलाविभूत्योस्तच्चावां नाथौ श्रुतौ

यथोक्तपदार्थरूपेणावस्थितं सत् सर्वेषामन्तर्यामिरूपेणावस्थितमित्येव वस्तुपरिच्छेदराहित्यं भगवतः यतो वस्तुमात्ररूपत्वात् । एवं च त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वेन भगवान् विष्णुरेव परंब्रह्मेति विष्णुपुराणवचनमुपन्यस्य विष्णोरेव परत्वं व्यवस्थापितवान् ।

तदेवं विष्णुपुराणीयोपक्रमवचनस्य विष्णोः परत्वे तात्पर्यमुपवर्ण्योपसंहार श्लोकेनापि तत्रैव तस्य तात्पर्यमिति द्योतयितुमाह-

'स सर्वभूतप्रकृतिं विकारान् गुणादिदोषाश्चमुनेव्यतीतः ।
अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद् भुवनान्तराले ॥

श्लोकोंका उद्धरण देकरके कहा कि विष्णुपुराणका तात्पर्य विष्णुके परत्व सिद्ध करनेमें है । इसके अनन्तरमें विष्णुपुराणके उपसंहारस्थ वचनोंसे विष्णुभगवान् के परत्व सिद्ध करनेमें है । इसके अनन्तरमें विष्णुपुराणके उपसंहारस्थ वचनोसे विष्णुभगवान् के परत्व करनेके लिये कहते हैं -

'यः सर्वभूतप्रकृतिं विकारान् गुणादिदोषांश्चमुने व्यतीतः
अतीतसर्वावणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले ॥'
तथा-'**समस्त कल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशोद्धतभूतवर्गः ।**
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥ इति ॥'

अयमर्थः-पराशरजी कहते हैं कि हे मुने मैत्रेय ! वह परमात्मा सर्वभूतोंका मूलकारण जो प्रकृति तथा महतत्व अहंकार प्रभृतिक विकारजात सत्वरजस्तामस गुण एवं इनसे अर्थात् प्रकृतिसे लेकर सत्वादि गुणान्तपदार्थसे जायमान जो रागद्वेष दुखादिक दोष वर्ग हैं उनसे सर्वथा रहित हैं । तथा ज्ञानका जो आवरण उससे सर्वथा रहित हैं । वह परमात्मा संपूर्ण चराचरजगत् की अन्तरात्मा है, तथा इस दुनियाके अन्तमें रहनेवाले जितने पदार्थ हैं उन सबको व्याप्त करके रहते हैं क्योंकि सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी हैं । इस

श्रुतौ ॥ सर्वात्मानौ मतौ चावां सर्वेषां प्रेरकौ तथा । शरण्यौवेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये । सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ । भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ' इत्याद्यन्यत्राप्यनुसन्धेयः ।

हे मुने मैत्रेय ! स परमेश्वरः सर्वभूतानां या प्रकृतिर्मूलकारणम् तथा विकारांश्च ये महत्तत्वादिकास्तथा गुणा ये सत्वादिकास्तान् **सर्वानेवातिक्रान्तः**, एभिः **सर्वथैवासंस्पृष्टेलोकान्तरत्वेन लौकिकदोषानाघ्रातत्वात् । तथा ज्ञानस्यावरका ये दोषा अदृष्टादयस्तैरपि स संस्पृष्टो न भवति तथा अन्तर्यामित्वात्सर्वस्यान्तरात्मा, तेनैतादृशेन** परमेश्वरेण भुवनान्तराले यद् वस्तु तत्सर्वं तेनास्तृतं व्याप्तम् । **सर्वस्यान्तरात्मतयातेन सर्वं व्याप्तमेवेति श्लोकार्थः । अनेन सर्वदोषराहित्यं सर्वात्मकत्वं च भगवत्यभिव्यञ्जितम् ।**

तथा-'समस्त कल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशोद्धृतभूतवर्गः ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥इति॥

असौ परमेश्वरः सर्वकल्याणगुणानामाकरः, दिव्यात्मस्वरूपवानित्यर्थः।' सर्वे

पुराण वचनसे यह सिद्ध हुआ कि भगवान् सर्वदोष रहित हैं । तथा-

'समस्तकल्याणगुणात्मकोऽसौ स्वशक्तिलेशोदधृतभूतवर्गः ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताशेषजगद्धितोऽसौ ॥

अयमर्थः-तथा हे मैत्रेय ! जितने कल्याणगुण हैं तदात्मक भगवान् हैं अर्थात् सबको अनुकूल हो तथा सबके लिये मंगलमय हो एतादृश स्वभाव भगवान् के दिव्यात्म स्वरूपका एतादृश उत्तमोत्तम स्वभावसे संपन्न दिव्यात्म स्वरूप भगवान् का है । भगवान् एतादृश दिव्यात्म स्वरूप स्वकीय शक्तिके लेशमात्रसे विचित्रातेक कार्यवर्गको धारण करता है, इस प्रकार भगवान् सबका धारक होते हैं, वह भगवान् स्वकीय इच्छासे सर्वानुकूल अप्राकृत तथा दिव्य मंगल शरीरको धारण करतेहैं तथा इस मंगलमय शरीरसे जगतके हितका साधन करते हैं, हित साधन ही श्रीविग्रहका प्रयोजन है, इस तरह प्रकृत श्लोकसे भगवान् का दिव्यात्म स्वरूप सर्वकल्याणोंका आकर सिद्ध होता है । तथा

तेजोवलैश्वर्यमहावबोधसुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।
परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे ॥

卐 ब्रह्मणोनिमित्तकारणमात्रवादिशैवमतनिरासः 卐

शैवा हि निमित्तकारणोपादानकारणयोर्भेदमिच्छन्तो निमित्तकारणं शिवतत्वम् जगदुपादानकारणंश्रीरघुनाथात् श्रेष्ठं तस्यैवध्येयत्वं च प्रतिपादयन्ति । परन्तु तन्मतं न युक्तम् । उभयोर

षामनुकूलं सर्वमङ्गलकर्तृत्वमेव सर्वेश्वरदिव्यात्मस्वरूपस्य स्वभावः । तथा स भगवान् स्वकीयशक्तेरंशेनभूतवर्गस्यधारकः, एतावताऽनायासेन समस्तधारकत्वमायाति तथा स्वेच्छया परिगृहीतस्वानुकूलविशालदेहवान् अर्थात् स्वेच्छया स्वाभिमताप्राकृतदिव्यमङ्गलविग्रहवान्, ससाधिताशेषजगद्धितः-अनेनदिव्यमङ्गलविग्रहेण जगतो हितसाधकः जगद्धितसाधनमेव दिव्यमङ्गलविग्रहस्य प्रयोजनम् । अनेन समस्तकल्याणगुणाकरत्वमभिव्यञ्जितम् । ननु प्रथमश्लोकेन भगवति सर्वदोषाभावप्रतिपादनादेव कल्याणगुणाकरत्वमर्थत एवसिद्धं भवत्यभावस्याधिकरणस्वरूपताया लाघवेन स्वीकृतत्वात् ततश्च पुनर्द्वितीयश्लोकेन गुणाकरत्वसाधनं पिष्टपेषणमिव भवति

अयमर्थः-यद्यपि भगवान् में संख्यातीत्त कल्याणगुण समवेत हैं तथापि निम्निलिखित छ गुण प्रधान हैं और एतदन्य गुणसमुदाय इसी छ के विस्तृत रूप हैं। तथाहि-तेज, बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, वीर्य तथा शक्ति। जो सब पदार्थ को स्वकीय अधीन में रखें, किसी में अभिभूत न हो उस गुण को तेज कहते हैं, सब पदार्थ को धारण करने के सामर्थ्य को बल कहते हैं। सबका नियमन करने को ऐश्वर्य कहते हैं। सब पदार्थ को एक साथ में प्रत्यक्ष से जानने को महाज्ञान कहते हैं। ईश्वर का ज्ञान सर्वविषयक है इसलिये ईश्वर सर्वज्ञ कहलाते हैं। विकार रहित हो करके रहने को वीर्य कहते हैं। जगत् के उपादान कारण बनने की क्षमता तथा अघटित घटना शक्ति को शक्ति कहते हैं इत्यादि अनन्त कल्याण गुणों की राशि भगवान् हैं। जीवों में सर्वश्रेष्ठरूप से प्रसिद्ध ब्रह्मादि देवों से तथा नित्यमुक्त जीवों से भी भगवान् अति श्रेष्ठ हैं, त्रे सवके ऊपर में साशन करनेवाले हैं भगवान् में क्लेशकर्म विपाक कर्मफलोपभोग तथा संस्कारादिक दोष सर्वथा नहीं रहते हैं, योग सूत्र में भी कहा है-'**क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः**' इति। इससे भगवान् सर्वकल्याण गुण संपन्न हैं इसका दिग्दर्शन कराया गया।

भेदप्रतिपादक 'जन्माद्यस्य यतः' 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्ताऽनुपरोधादिति व्यासप्रणीतसूत्रविरोधात् । अपि च 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' 'ब्रह्मवनं ब्रह्म स वृक्षः' 'सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः

यदाऽर्थतो गुणाकरत्वमायातं तदा तद्विधानस्यानतिप्रयोजनकत्वादिति चेत् सत्यम्, अभावो नाधिकरणरूपोऽपित्वतिरिक्त एवेतिमतमवलंब्यैव द्वितीयश्लोकप्रवृत्तेः । यदयमभावोऽधिकरणस्वरूप इष्टो भवेत्तदा-'निर्दूषणागुणवतीरसभावपूर्णा' इत्यादिजगन्नाथपद्ये दोषाभावकथनादेव गुणवत्वप्राप्तेः पुनर्गुणवत्वविधानं निरर्थकमेवापतेत् । प्रकृतविषये विशेषविचारोऽन्यत्रभाष्यविवरणादौ द्रष्टव्यः । अपि च-तेजोबलैश्वर्यमहावबोधसुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।

परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्ति परावरेशे ॥

सन्त्यनन्तेऽनन्तकल्याणगुणाः तेषु षडेवप्रधानास्तदन्ये तेषामेवोद्वलकाः । स

स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्त स्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥

अस्यार्थः-'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' इत्यादिश्रुति प्रतिपादित जो ब्रह्म है वह ईश्वर ही है अर्थात् यथोक्त ब्रह्म ईश्वरसे अतिरिक्त नहीं है। इससे शांकरमतका निराकरण सिद्ध होता है। शंकरानुयायी लोग निरवच्छिन्न को ब्रह्म कहते हैं जो कि-'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' इत्यादि, श्रुति प्रतिपादित है। मयाशबलित-मयाविशिष्ट चेतन को सर्वशक्तिमान ईश्वर जगदुपादान तथा जगत् का निमित्तकारण होता है। ब्रह्म ईश्वर में व्यवहारिक भेद मानते हैं। एवं अन्तःकरण से अवछिन्न जों चेतन उसको जीव कहते हैं यही जीव बन्धन मोक्षभागी तथा स्वर्ग नरकादिगामी व्यावहारिक जीव कहलाता है यह भी ब्रह्म तथा ईश्वर से व्यवहारावस्था में भिन्न है। अथवा माया में प्रतिबिम्बरूप ईश्वर है और बिम्बरूप ब्रह्म हैं इसलिये बिम्ब प्रतिबिम्बकी तरह ब्रह्म ईश्वर में व्यावहारिक भेद है। और अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित जो चेतन वह चेतन जीव है यहां अन्तःकरण उपाधि परिच्छिन्न हैं, इसलिये जीव भी परिच्छिन्न कहलाता है मायारूप उपाधि व्यापक है इसलिये तदवच्छिन्न ईश्वर व्यापक कहलाते हैं।

आचार्यश्री ने इस मत का खण्डन किया कि विष्णुपुराण के वचन से यह सिद्ध

पुरुषादधि' 'न तस्येशेकश्चन न तस्य नाममहद्यशः' 'नेह नानास्ति किंचन' 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः' 'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्चभाव्यम्, उतामृतत्वस्येशानः' 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'

परः परमेश्वरः 'तेजोबलैश्वर्यगुणैकराशिः' तेजोराशिः तत्र तेजो नाम यत् सर्वं स्ववशे करोति न केनापि हीयेत एतादृशो गुणस्तेजः। सर्वस्य धारणसामर्थ्यं बलम्। सर्वस्य नियमनमैश्वर्यम्। प्रत्यक्षज्ञानमवबोधः महांश्चासाववबोधमहाबोधः, अवबोधमत्वं च एकस्मिन् काले विशेषरूपेण योग्यसर्वविषयकत्वमेव, एतादृशमहावबोधत्वादेव परमेश्वरः सर्वज्ञ इति कथितो भवति-'यः सर्वज्ञः स सर्वविदित्यादिश्रुतौ। विकाराराहित्ये नावस्थानम् वीर्यं पराक्रमापरपर्यायम्। जगत् उपादानकारणक्षमताऽघटितघटना शक्तिरेव शक्तिः। एतादृशकल्याणगुणानां राशिर्भगवति विद्यते। तथा सः पराणाम् श्रेष्ठतया प्रसिद्धानां ब्रह्मादीनामपि परः श्रेष्ठतमः, तथा यस्मिन् परमेश्वरे समस्ताः

होता है श्रुति प्रतिपाद्य ही ब्रह्म ईश्वर है न तु परकल्पित प्रक्रिया के अनुसार ब्रह्म ईश्वर भेद है। '**व्यष्टि समष्टिरूपः**' वह परब्रह्मरूप ईश्वर व्यष्टि जीवरूप हैं अर्थात् कार्यावस्था में वर्तमान जो जीव हैं वे व्याष्टि जीव कहलाते हैं तथा कारणावस्था में रहनेवाले जो जीव हैं वे समष्टि जीव कहलाते हैं व्यष्टि जीव से व्यवस्थित एक जीव का बोध होता है तथा जीव समुदाय का समष्टि जीव शब्द से बोध होता है। उपर्युक्त व्यष्टि समष्टि सभी जीव ईश्वर का शरीर है तथा ईश्वर इन सबकी अन्तरात्मा हैं एवं ईश्वर अव्यक्त स्वरूपक तथा प्रकट स्वरूपवाले हैं अर्थात् कारणावस्था में रहनेवाला जड़पदार्थ अव्यक्त पदवाच्य कहलाता है तथा कार्यावस्था को प्राप्त किया हुआ अचेतन पदार्थ द्रव्य प्रकट कहलाता है। यह दोनों प्रकार का अव्यक्त प्रकट अचेतन पदार्थ भगवान् का शरीर है इसलिये वे सर्वेश्वर कहलाते हैं अर्थात् जड़चेतन सभी पदार्थों की अन्तर्यामी होकर अव्यवस्थित रहने के कारण सर्वनियामक हैं। तथा भगवान् '**सर्वदृक्**' सर्वदर्शी है सर्वज्ञ हैं। सामान्यरूप से सभी पदार्थ को एक साथ प्रत्यक्ष ज्ञान से जानते हैं। तथा भगवान् '**सर्ववेत्ता**' हैं विशेषरूप से पदार्थमात्र को प्रत्यक्ष ज्ञान से जानते हैं अतएव श्रुति कहती है '**यः सर्वज्ञः स सर्ववित्, यस्य ज्ञानमयं तपः**' इसमें सामान्यरूप से सर्वज्ञानवान् सर्वज्ञ शब्द का अर्थ होता है, तथा विशेषरूप से सर्वविषयक ज्ञानवान को सर्ववित्

'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादिश्रुतिविरोधादपि शैवमतं-निमित्तोपादानयोर्भेद इति मतं न युक्तम्।

॥ श्रीरामस्येतिहासपुराणेषु परत्वनिर्वचनम् ॥

इतिहासपुराणादिषु सर्गप्रलयप्रकरणे नारायणापरपर्यायस्य

क्लेशादयो न भवन्ति, अर्थात् सर्वस्यायं शासकः, तथा तत्र क्लेशकर्मविपाकाशयाः न सन्ति। एतावता सर्वकल्याणगुणसंपन्नत्वं सूचितम्।

तथा-'स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटः स्वरूपः।

सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः॥'

सो विष्णुदेव ईश्वरः परमेश्वर एव न ततोऽतिरिक्तः, व्यष्टिसमष्टिरूपः सः कार्यावस्थो जीवो व्यष्टिपदवाच्यस्तथा कारणावस्थो जीवः समष्टिरूपः, इत्येते जीवा ईश्वरस्य शरीरिणः शरीररूपाः, ईश्वरो विष्णुरेतेषामन्तरात्मा भवति। अव्यक्त स्वरूपः प्रकटस्वरूप इति कारणावस्थायांविद्यमाना जडपदार्था अव्यक्ताः, त एव कार्यावस्थायां

कहते हैं इसी अर्थ को श्रीआचार्यजी ने विष्णुपुराणघटक '**सर्वदृक् सर्ववेत्ता**' पद से स्पष्ट करके बता दिया। तथा भगवान् '**समस्त शक्तिः**' सर्वशक्ति सम्पन्न हैं। तथा वह भगवान् परमेश्वराख्य हैं उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है जो कि भगवान् के ऊपर शासन कर सके श्रुति कहती है '**न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते**' इसलिये भगवान् श्रीरामजी परमेश्वर कहे जाते हैं। इस उपर्युक्त श्लोक से यह कहा गया कि जड़चेतन समस्त जगत् भगवानका शरीर है तथा वे इनकी अन्तरात्मा हैं जो महर्षि श्रीवाल्मीकिजी के '**जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्**' के सर्वथा अनुरूप है। '**संज्ञायते येनतदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम्। संदृश्यते वाप्यधिगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञान-मतोऽयदुक्तम्॥**' अर्थात् संपूर्णदोष अस्तमित हो गया है जिस में तथा शुद्ध है निर्मल हैं एकरूप हैं एतादृश भगवान् जिस शास्त्रजन्य ज्ञान से जाने जाते हैं साक्षात्कृत होते तो वह तो वास्तविक ज्ञान है इससे अन्य ज्ञान अज्ञान है। अर्थात् वह ब्रह्म सर्वदोष रहित हैं, विष्णु में विकारात्मक कोई दोष नहीं है, जो विकारात्मक दोष हैं वे सब प्रकृति में रहते हैं, भगवान् जिसलिये सर्वदोष रहित हैं इस लिये विकारात्मक प्रकृति से व्यावृत्त हैं। परब्रह्म भगवान् विष्णु शुद्ध हैं कर्मपराधीनता का नाम ही अशुद्धि है वह अशुद्धि बद्ध जीवों में होती है इसलिये भगवान् बद्ध जीवों से विलक्षण

श्रीसीतानाथस्यैव सर्वापेक्षया परत्वं विज्ञातं भवति, तदुक्तम् महाभारते-'केन सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । प्रलये च कमभ्येति तन्नो ब्रूहि पितामह ! ॥'इत्येवं युधिष्ठिरेण प्रोक्तः पितामहः

विद्यमानाः प्रकटाः, इमावुभावपि परमेश्वरस्य शरीररूपौ, अतो भगवान् श्रीरामः सर्वेश्वर इति कथितो भवति । तथा स भगवान् सर्वदृक् अर्थात् घटत्वादिसामान्यरूपेण सर्वविषयकज्ञानवान् तथा सर्ववेत्ता विशेषरूपेण तत्तद्व्यक्तिरूपेण सर्वविषयकज्ञानवान् । तथा स भगवान् समस्तशक्तिः सर्वशक्तिसंपन्नः तदपेक्षया नास्ति कश्चित् ततोधिक ईश्वरः, 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' इतिश्रुत्यन्तरात् अत एव नास्त्यन्यः कश्चित्तस्य शासक इत्यतो भगवान् परमेश्वर इतिकथितो भवति । चेतनाचेतनप्रपञ्चौ भगवतः शरीररूपौ भगवांश्च तयोरन्तर्यामीति श्लोकाभिप्रायः ।

तथा-'संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धं परं निर्मलमेकरूपम् ।
संदृश्यते वाप्यधिगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ॥

सिद्ध होते हैं। तथा वह ब्रह्मरूप विष्णु निर्मल हैं कर्म सम्बन्ध योग्यता का नाम होता है मल यह मल मुक्त जीवों में रहता है। वे कर्म सम्बन्ध होने के योग्य हैं अतएव मुक्त जीवों को संसारकाल में मल रहता है परन्तु एतादृशी योग्यता ब्रह्म में नहीं है, इसिलये भगवान् मुक्तजीवों से विलक्षण हैं ऐसा सिद्ध होता है। तथा भगवान् एक रूप रहते हैं उनसे समान तथा अधिक तो कोई नहीं है भगवान् सर्वदा सबसे प्रधान श्रेष्ठ बन करके ही रहते हैं, नित्यमुक्त में भी यह योग्यता नहीं होती हैं क्योंकि नित्य सूरियों से भी भगवान् श्रेष्ठ हैं। इससे नित्यसूरियों से वैलक्षण्य भगवान् में सिद्ध होता है। इस तरह अचेतन प्रकृति तथा तत्कार्य तथा बद्ध मुक्त और नित्यमुक्तों से सर्वथा विलक्षण भगवान् जिस शास्त्रजनित ज्ञान से ज्ञायमान होते हैं जिस यौगिक ज्ञान से साक्षात् क्रियमाण होते हैं-तथा जिस परमभक्तिरूपापन्न ज्ञान से प्राप्त होते हैं एतादृश ज्ञान ही ज्ञान है। इस प्रकार विष्णुपुराण के उपक्रमोपसंहार से सिद्ध होता है कि विष्णुपुराण पर ब्रह्मस्वरूप विशेष का निर्णय करने के लिये-विष्णु भगवान् को परब्रह्म परत्व सिद्ध करने के लिये ही प्रवृत्त है एवं सामान्यरूप से प्रश्न तथा विशेषरूप से उत्तर का कथन होने से भी यही सिद्ध होता है कि विष्णुपुराण का तात्पर्य विष्णु की श्रेष्ठता के प्रतिपादन में ही है। अन्यपुराणों को विष्णुपुराण के

प्रोवाच-'नारायणो जगन्मूर्तिरनन्तात्मा सनातनः' इत्युक्त्वा पुनरप्याह 'ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः । जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥' इत्यादि । किञ्च सर्वशिष्टः

अयमर्थः-स भगवान् विष्णुः सर्वदोषरहितः तत्र विकारादिरूपो दोषो न पद मादधाति, यश्चविकारात्मको दोषः स परिणामवति प्रकृतिलक्षणे एव भवति, एतावता प्रकृतिवैलक्षण्यं विष्णौ सिद्ध्यति । शुद्धम्, तद् ब्रह्म शुद्धम्, कर्मवष्यतैवाशुद्धिः सा च बद्धजीवे न भगवति शुद्धो भगवान् बद्धजीवेभ्यो विलक्षणम् । निर्मलम् परब्रह्म निर्मलं मलरहितम् कर्मसंबन्धयोग्यतैव मलम्, तदेतन्मलं मुक्तजीवेपि भवति, तस्य कर्मसंबन्धयोग्यतायाः सद्भावात्, अतएव संसारकाले कर्मसंबन्ध आसीत्, एतादृशी योग्यता भगवति नास्ति ततो मुक्तजीवविलक्षणं तत् । स च भगवान् एकरूपः तत्समाभ्यधिकस्याभावात्-'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते'

अविरुद्ध रीति से प्रामाण्य का निर्वाह करना चाहिये। यदि पुराणान्तर विष्णुपुराण के अत्यन्त विरुद्धार्थ का प्रतिपादन करते हों तो उनका निरादर करना ही युक्त है क्योंकि एतादृश पुराणान्तर तमोगुण मूल होने से तामस हैं और विष्णुपुराण सत्वगुण मूलक होने से सात्विक है तथा आदरणीय है। विष्णुपुराण श्रुति मूलक है तामसपुराण श्रुति विरुद्धार्थ का प्रतिपादन करनेवाले होने से अप्रामाणिक है। इति संक्षेपः ।

गत प्रकरण में विष्णुपुराणीय वचन के आधार पर सिद्ध किया कि-सर्वदेव की अपेक्षा से भगवान् विष्णु ही श्रेष्ठ हैं किन्तु शिवादिक देवगण तदपेक्षया कनिष्ठ हैं परन्तु यह कथन युक्त नहीं है क्योंकि सबके अपेक्षया प्रमाणभूत विष्णुपुराण के वचन से ही सिद्ध होता है कि ब्रह्मा विष्णु तथा रुद्र देव समान हैं क्योंकि ब्रह्मा सबका सर्जन करते हैं विष्णु सबका पालन करते हैं तथा रुद्र प्रलयकाल में सबका संहार करते हैं। त्रिमूर्ति में समत्व का प्रतिपादक यह वचन है- **'सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् । स संज्ञा याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ इति ॥'** अर्थात्-एक ही जनार्दन भगवान् सर्ग स्थिति तथा प्रलय करनेवाले ब्रह्मा विष्णु और महेश इस प्रकार से तीनरूप को धारण करते हैं। यह जो विष्णुपुराण का वचन है इससे तो ब्रह्मा विष्णु महेशरूप त्रिमूर्ति में समता का प्रतिपादन किया जाता है परन्तु विष्णु में सवापेक्षया श्रेष्ठत्वका तो प्रतिपादन नहीं होता है तव आप विष्णुको जो कि पालनमात्र करनेवाले हैं तादृश विष्णुको ब्रह्मा

सर्वधर्मसर्वतत्वव्यवस्थापनाय वैष्णवं पुराणमेव परिगृहीतम्, तेन विष्णुपुराणेन विष्णोरेव परत्वमावेदितम् । तत्र जन्मादिकारणेन 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादिना सामान्यरूपेण जगज्जन्मादिकारणं

इतिश्रुतेः 'नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयाऽऽ त्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः' इत्यादिरूपेण परमर्षिश्रीबादरायणोक्तेश्च । एतावता नित्यमुक्तजीववैलक्षण्यं परमेश्वरे ज्ञापितम् । तदित्थं जडपदार्थबद्धमुक्तजीवेभ्योऽत्यन्तविलक्षणं परं ब्रह्म येन शास्त्रजन्यज्ञानेन ज्ञायते, येन यौगिकज्ञानेन साक्षात् क्रियते, तथा परमभक्तिरूपज्ञानेन प्राप्यते तादृशं ज्ञानमेव ज्ञानम्, तदन्यज्ज्ञानमज्ञानमेवेति । सामान्यरूपेण प्रश्नो विशेषरूपेणोत्तराभ्यां विष्णुपुराणस्योपर्युक्तार्थप्रतिपादने एव तात्पर्यमिति निर्णीयते । एतदन्यत् पुराणं विष्णुपुराणानुरोधेनैव व्याख्येयम् । यत्र पुराणेऽतिविरुद्धार्थो वर्णितस्तत्पुराणं तामसत्वादनादरणीयमेव तस्य तमो गुणमूलकत्वात्, श्रुतिविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वाच्च । श्रुत्यादिप्रतिपादितार्थविरोध्यर्थस्यैव तामसपुराणे

तथा शिवापेक्षया श्रेष्ठ किस तरह कहते हैं ? यह हुआ शैवों का पूर्वपक्ष।

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री कहते हैं **'सत्यं प्रकृत श्लोके'** इत्यादि । यहां पर प्रकृत श्लोक में **'एक एव जनार्दनः'** जनार्दन भगवान् का ब्रह्मा तथा शिव प्रभृतिक सकल जड़ाजड़ प्रपञ्च के साथ में तादात्म्य-अभेद का वर्णन किया गया है । **'ब्रह्म विष्णु शिवात्मिकाम्'** यह उपलक्षण है संपूर्ण जगत् का अर्थात् ब्रह्मा शिव और विष्णु का ही अभेद जनार्दन के साथ है ऐसा नहीं किन्तु संपूर्ण जगत् में जनार्दन का अभेद है । इसी विष्णुपुराण के उपक्रम-प्रारंभ में **'जगच्च सः'** यह कहकर विष्णु भगवान् का जड़ाजड़ संपूर्ण जगत् के साथ तादात्म्य का वर्णन किया गया है । उसीका विवरण अर्थात् विस्तार रूप से कथन यहां पर हो रहा है । और भी देखिये जगत् के साथ भगवान् के तादात्म्य-अभेद का वर्णन अन्यत्र भी मिलता है-

स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च ।
उपसंह्रियते चान्ते संहर्ता च स्वयं प्रभुः ॥ इति ।

अर्थात् भगवान् विष्णु ही सृष्टि करते है अर्थात् जगत् सर्जक जो ब्रह्मा है वह विष्णु ही है विष्णु स्व का सर्ग स्वयं करते हैं अर्थात् सर्जन किया का कर्मीभूत जो सृज्य पदार्थ है वह भी विष्णु ही है । रक्षा करवेनाले स्वयं विष्णु हैं तथा संरक्षणीय पदार्थ भी विष्णु ही हैं । अन्त में

ब्रह्मेत्यविशेषतस्तत् किमिति प्रश्ने-'विष्णोः सकाशादुद्भूतम्' इत्यादिना विष्णोरेव विशेषरूपेण परत्वं व्यवस्थापितमिति सर्वानुमतम् । तथा पुनस्तत्रैव ।

वर्णितत्वादनादरः श्रेयः कामैः करणीय इतिसंक्षेपः ।

ननु गतप्रकरणे विष्णुपुराणावलंवनेन शिवाद्यपेक्षया विष्णोः सर्वश्रेष्ठत्वं प्रतिपादितम् । परन्तु तन्न युक्तम् यतो विष्णुपुराणे एव ब्रह्मशिवयोर्विष्णुसमत्वस्य प्रतिपादितत्वेन श्रेष्ठत्वस्यासंभवादितिशैवशङ्कां निरसितुमुपक्रमते-अथास्मिन्नेव विष्णुपुराणे इत्यादि ब्रह्मशिवविष्णूनां समत्वप्रतिपादकवचनमुदाहरति-

सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।
स संज्ञां याति भागवानेक एव जनार्दनः ॥१॥

एक एव जनार्दनो भगवान् श्रीसीतानाथः सर्गस्थितिप्रलयजनिकां ब्रह्मविष्णु शिवस्वरूपसंज्ञां याति प्राप्नोतीत्यर्थः । अनेन ब्रह्मादित्रिमूर्तीनां समत्वमेव याति नत्वेषु

प्रलय-संहार को प्राप्त होनेवाला पदार्थ भगवान् विष्णु ही है तथा संहार करनेवाले रुद्रदेव भी भगवान् विष्णु ही है इस श्लोक में सृष्टि करने वाले ब्रह्मासृष्टि को प्राप्त होने वाले सृज्य संहार करने वाले रुद्रदेव तथा संहार को प्राप्त होनेवाले संहार्य पदार्थ का एक साथ निर्देश करके इस सबका विष्णु के साथ अभेद का वर्णन है । सृज्य तथा संहार्य जड़ पदार्थों का विष्णु के साथ यादृश अभेद होगा उसी प्रकार का अभेद सर्जक ब्रह्मा तथा संहारक शिवजी के साथ विष्णु का भी होगा । यहां सृज्य तथा संहार्य भगवान् का शरीर है और भगवान् इनके अन्तरात्मा अन्तर्यामी हैं इनमें शरीरात्मभाव सम्बन्ध है एतादृश शरीरात्मभावरूप सम्बन्ध होने से इन सृज्यादि पदार्थों का विष्णु भगवान् के साथ तादात्म्य-अभेद का वर्णन शास्त्र में किया-

'पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाशमेव च ।
सर्वेन्द्रियान्तः करणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् ॥
स एव सर्वभुतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः ।
सर्गादिकततोऽस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ॥
स एवं सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च ।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेमूर्तिविष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥'

'प्रकृतिर्या मयाख्याता व्यक्ताव्यक्तस्वरूपिणी ।
पुरुषश्चाप्युभावेतौ लीयेते परमात्मनि ।'
'परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ।

विष्णोः श्रेष्ठत्वमिति शैवप्रश्नाशयः । अमुं प्रश्नमुत्तरयितुं प्राह प्रकृतश्लोके एक एव जनार्दनः इत्यादि । **अयमाशयः नानेन श्लोकेन त्रिमूर्त्तीनां समत्वं साधितं भवति, अत्र तु 'एक एव जनार्दनः' इति कथनेन भगवतो ब्रह्मशिवादिसंपूर्णप्रपञ्चेन सह तादात्म्यमभेदो हि वर्णितो भवति । अत्र 'ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकामिति वाक्यं संपूर्ण जगदुपलक्षकम् । विष्णुपुराणस्यारंभे 'जगच्च सः' इति कथयित्वा प्रपञ्चेन सह विष्णो स्तादात्म्यमुपवर्णितम् । तस्यैवात्र विवरणं भवति । अग्रेऽपि तादात्म्यस्यैव वर्णनम् तथाहि** स्रष्टासृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च । उपसंह्रियते चान्ते संहर्त्ता च स्वयंप्रभुः ॥इति॥

अयमर्थः स्त्रष्टा भगवान् महाविष्णुः सृजति समुत्पादयति, अर्थात् यो हिरण्य

कहा गया है, इससे वे सृज्यादिक पदार्थ भगवान् की विभूति नियन्तव्य पदार्थ सिद्ध होते है । उसी तरह, ब्रह्मा तथा शिवजी भगवान् के शरीर हैं तथा भगवान् इन ब्रह्मादिक में अन्तर्यामी है इनमें शरीरात्मभाव सम्बन्ध है सृज्यादिक की तरह एतादृश सम्बन्ध होने से ब्रह्मादिक देवों का भगवान् के साथ तादात्म्य का वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा रुद्र सृज्य संहार्य के समान भगवान् की विभूति-अधीन है अधीन रहनेवाली वस्तु को विभूति कहते हैं। इससे फलित यह होता है कि ब्रह्मा तथा रुद्र स्वतन्त्र नहीं हैं किन्तु सर्वेश्वर के अधीन हैं इस बात को बतलाने के लिये ब्रह्मा था शिव को भगवान् के साथ तादात्म्य वर्णित हुआ है ।

इस श्लोक में ब्रह्मा एवं शिवजी का जो नाम कहा गया है वह अवतार के अभिप्राय से कहा गया है ब्रह्मा तथा शिव का जन्म होता है और सर्वेश्वर श्रीराम विष्णुरूप से अवतरित होते हैं तो विष्णु परमपुरुष का प्रथम अवतार है। यहां श्रीराम विष्णु तथा जनार्दन शब्द एकार्थ वाचक हैं। हिरण्यगर्भ ब्रह्म का वाचक ब्रह्म शब्द तथा शिव शब्द जनार्दन शब्द का वाचक नहीं है क्योंकि ऐसा प्रयोग कहीं देखने में नहीं आता है। इससे सिद्ध होता है कि संपूर्ण विभूति के मालिक सर्वेश्वर भगवान् श्रीरामजी ही स्वेच्छा से लीला करने के लिये विष्णु के रूप में ब्रह्मा शिवजी के मध्य में अवतार लिये हैं। अतः ब्रह्मा विष्णु और शिवजी में समता होने की कोई संभावना नहीं हैं। ब्रह्मा शिवादि देवगण घटित संपूर्ण जड़ाजड़ संसार परब्रह्म का शरीर तथा विभूति है एवं

विष्णुनामा स वेदेषु वेदान्तेषु च गीयते ॥'

इतिसर्ववेदान्तेष्वन्यत्रापि सर्वशब्दे विष्णुरेव परमकारणमिति प्रतिपादितं भवति, यथा हि सर्ववेदेषु ब्रह्मस्वरूपविशेषप्रतिपादनाय

गर्भः सृजति स विष्णुरेव नान्यः । **स आत्मानमेव सृजति अर्थात् यः सृज्यपदार्थः सोऽपि विष्णुरेव तथा पालनकर्ता विष्णुरेव पाल्यमपि वस्तु विष्णुरेव । तथान्ते उपसंहार्य वस्तु विष्णुरेव तथा संहारकारको रुद्रोऽपि विष्णुरेवेति । अत्र अश्लोके सृज्यसर्जक संहारकसंह्रियमाणवस्तुनि युगपन्निर्दिश्यैषां विष्णुनाऽभेदो वर्णितः । अत्र सृज्यसंहार्य पदार्थयो विष्णुना यादृशोभवेत्तादृश एवाभेदः सर्जकसंहर्त्रोपि स्यात् । सृज्यसंहार्य पदार्थौ विष्णोः शरीररूपौ विष्णुश्चतयोरन्तरात्माऽन्तर्यामी इति शरीरात्मभाव-संबन्धमादाय तयोस्तेनाभेदः । एतावता तौ भगवतो विभूतिरूपौ नियाम्याविति । तथैव सर्जकसंहारकावपि विष्णोः शरीररूपौ विष्णुश्च तयोरन्तरात्मेति तत्रापि शरीरात्मभावसंबन्धमादायैवाभेदो वर्णितो भवति । ततश्च ब्रह्मरुद्रौ तदधीनौ विभूतिरूपौ,**

शरीरात्मभाव के कारण से अभेद का कथन किया जाता है इस बात को स्पष्टरूप से समझाने के लिये उद्धरण देते हें-'**पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । सर्वेन्द्रियान्तः करणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् । स एवं सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः । सर्गादिकं ततोऽस्यैवभूतस्थमु-पकारकम् ॥' स एव सृज्यः सच सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते चब्रह्माद्यवस्था-भिरशेषमूर्तिर्विष्णुर्वरिष्ठो वरदोवरेण्यः** अर्थात्-स्थावर जंगम समस्त पदार्थों का आधाररूप पृथिवी जल तेज संचरण वायु अवकाश पदवाच्य आकाश चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रिय वागादिक कर्मेन्द्रिय तथा इन सबका अध्यक्ष अन्तःकरण मन तथा जीव पुरुष ये सब संमिलित हो करके जगत् पद के वाच्य कहलाते हैं एतादृश यह जगत् परब्रह्म ही है। समस्त विकारयुक्त तथा प्रायः इस जगत् का निर्विकार तथा समस्त कल्याणगुण का सागर परब्रह्म में तादात्म्य किस तरह होगा ? क्योंकि विरुद्ध वस्तु द्वय में तो अभेद तो प्रत्यक्षादि प्रमाण वाधित है ? इस शङ्का का निराकरण करने के लिये-'**स एव सर्वभूतात्मविश्वरूपो यतोऽव्ययः**' ऐसा कहा है। अर्थात् परब्रह्म विष्णु ही यह जगत् हैं। अर्थात् जगत् में तथा विष्णु में अभेद है। इस अभेद का दोनों का स्वरूप एक है इस अंश में तात्पर्य नहीं है किन्तु इस अभेद का तात्पर्य यह है कि परमात्मा सभी पदार्थों की अन्तरात्मा हैं और संपूर्ण जगत् परमात्मा का शरीर है। वह परब्रह्म परमात्मा स्वयं निर्विकार हो

नारायणानुवाकस्य प्रवृत्तिस्तथैव वैष्णवपुराणस्यापि प्रवृत्तिरिति ।

'सोहमिच्छामि धर्मज्ञ ! श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत् ।

इति तयोः स्वातन्त्र्यं नास्ति किन्तु भगवदधीनाविति दर्शयितुमभेदवर्णनम् । आभ्यां सह विष्णोर्नामग्रहणमवताराभिप्रायेण अत्र श्लोके विष्णुजनार्दनशब्दौपर्यायावेकार्थवाचकौ । ते च सर्वेश्वरश्रीरामेपर्यवश्यन्तीतितत्त्वम् । सर्वविभूतिमान् श्रीरामः स्वेच्छयालीलार्थं विष्णुरूपेण ब्रह्मशिवयोर्मध्येऽवतारमबाप्तवान् 'संक्षिप्यहि पूरा लोकान् माययास्वयमेव हि । महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः ॥ ततस्त्वमसि दुर्धर्षात् तस्मात्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्निवान्' (श्रीमद्रामायणे ७।१०४।४-९) इत्यादिरूपेण महर्ष्युक्तेः । अतो न मूर्तित्रयमध्ये समत्वस्यावसरः ।

ब्रह्मशिवादिघटितसमस्तप्रपञ्चो ब्रह्मणः श्रीरामस्य शरीरं विभूतिश्चेति तयोः

करके भी जगत् रूप शरीर को धारण करके विश्वरूप वाले बने हैं । जिस तरह '**आत्मामनुष्यो जातः**' आत्मा मनुष्य बन गई स्थल में शरीरात्मभाव मूलक अभेद व्यवहार होता है । इसी तरह प्रकृत में परमात्मा का शरीर है । इस में "**तत्सर्वं वै हरेस्तनुः**" जगत्सर्वं शरीरं ते " यह सब कुछ परमात्मा श्रीरामका शरीर है इत्यादि वतनसे सिद्ध होता है । इस तरह शरीरात्मभाव संबन्धको लेकर तादात्म्यको स्वीकार करने पर ईश्वर में संसारगत दोषका समावेश नहीं होता है । लोक में देखनेमें आता है कि शरीर तथा आत्मा का जो स्वभाव है वह व्यवस्थित रहता है जैसे- "**गौरः स्थूलो देवदत्तः**" यह देवदत्त गौर है स्थूल है यहां शरीरका धर्म गौर स्थूलत्व तदवच्छिन्न आत्मामें नहीं जाता है तथा आत्मा का धर्म जो सुख दुःखादि वह शरीर में समवेत नहीं होता है । इसी तरह प्रकृत में परमात्मा भी समझना चाहिये । यह संसार का शरीर जो चेतनाचेतन पदार्थ उसका धर्म जो जड़त्वविकारित्वादिक वह परमात्मा में नहीं जाता है-क्योंकि जड़त्वादिक धर्म प्रपञ्च में ही रहता है । परमात्मा को स्पर्श भी नहीं कर सकता है । एवं निर्विकारत्व निर्दोषत्व परमात्मारूप धर्मी का धर्म है तथा कल्याणगुण ये सब परमात्मा का स्वभाव है, यह स्वभाव परब्रह्म में ही रहता है किन्तु परमात्मा का शरीर प्रपञ्च में संक्रान्त नहीं होता है । इससे यह सिद्ध होता है कि विश्व शरीरधारी होने से परमात्मा जगत् तो कहलाते हैं तथापि परमात्मा तथा जगत् का जो असाधारण स्वभाव है वह व्यवस्थित रहता है, इसलिये एकका गुण अन्य में नहीं जाने से परमात्मा सदा निर्विकार तथा निर्दोष हो करके ही रहते हैं ।

बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥

यन्मयं च जगद् ब्रह्मन् यतश्चैतच्चराचरम् ।

लीनमासीद् यथा तत्र लयमेष्यति यत्र च ॥'

शरीरात्मभावसंबन्धमादायाभेद इतिदर्शयितुं श्लोकान्तरमवतारयति-

'पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाशमेव च । सर्वेन्द्रियान्तः करणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् ॥ स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः । सर्गादिकं ततोऽस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ॥ स एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च ।

ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्तिविष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥

अयमर्थः पृथिव्याद्यारभ्यपुरुषान्तं वस्तु जगत्पदवाच्यं तादृशं जगत् परब्रह्मैव अर्थात्तयोरभेदः । ननु सर्वदोषरहितस्य सकलकल्याणगुणगणविविशिष्टस्य भगवतो दोषाकरेण प्रपञ्चेन सहाभेदो नैव संभवति विरोधादित्याशङ्कामपनेतुमाह 'स एव

'**सर्गादिक जगच्चास्यभूतस्थमुपकारकम्**' इत्यादि श्लोकों का यह अर्थ है कि सर्वप्राणियों में होनेवाला सर्ग स्थिति प्रलयादिक व्यापार इस परमात्मा के उपकार में आता है क्योंकि उससे परमेश्वर को लीला रस प्राप्त होता है । इसका कारण यह है कि यह संपूर्ण जगत् परमात्मा का शरीर है शरीर से शरीरी का उपकार होना ही उचित है । इस तरह परमात्मा तथा जगत् में शरीरात्मभाव होने से ऐसा कहा जाता है कि सर्ग करनेवाले ब्रह्मा और सृष्टि क्रिया का कर्म सृज्य पदार्थ परमात्मा ही है क्योंकि सर्जक तथा सृज्य दोनों परमात्मा के शरीर हैं, रक्षा करनेवाले मनु प्रभृतिक देवगण तथा संरक्षण क्रिया का कर्मजीव समुदाय परमात्मा ही हैं क्योंकि ये दोनों परमात्मा के शरीर हैं । एवं संहारक रुद्रगण तथा संहार्य पदार्थ ये दोनों परमात्मा ही हैं क्योंकि ये दोनों परमात्मा के ही शरीर हैं । विश्व शरीरक परमात्मा विष्णु भगवान् अनादिकाल से ब्रह्मत्व रुद्रात्वादिक अवस्था को प्राप्त हुए हैं, विष्णु इनको वर देनेवाले हैं वरेण्य हैं अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं अतएव प्राप्य बनने के योग्य हैं । इन श्लोकों में शरीरात्मभाव सम्बन्ध के कारण ईश्वर तथा जगत् में अभेद का निर्देश किया गया है । सर्वान्तरात्मा भगवान् प्रपञ्चान्तर्गत नियाम्य कोटि में ब्रह्मा आदि देवगण तथा मनुष्यादिकों में उनको आश्रय दे करके रक्षण करने के लिये स्वेच्छा से अवतार लेते हैं, इसी तरह का एक अवतार '**ब्रह्म विष्णु शिवात्मिकाम्**' इस स्थल में भी विष्णु शब्द में निर्दिष्ट है । विष्णुपुराण के छट्ठे अंश में शुभाश्रय प्रकरण में श्रीविग्रह की व्याख्या

इत्येवं परब्रह्मविषयकं प्रश्नं कृत्वा तत्प्रवाहे
विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत्तत्रैव च स्थितम् ।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोस्य जगच्च सः ॥'

सर्वभूतात्मा' इत्यादि, (यतोऽयं भगवानव्ययः सर्वभूतानामन्तरात्माविश्वरूपः, अस्यैव भगवतः सर्गादिकम् अर्थात् सर्गाभिन्नः शरीरात्मनोरभेदस्य लोकेऽपि दर्शनात्) नात्राभेदनिर्देशः स्वरूपैक्यादुभयोरपितु शरीरात्मभावमादायैव लोकेऽपि तथा दर्शनादितिनात्र पूर्वपक्षावकाशः । न च शरीरिणः शरीरादभेदे शरीरधर्मस्यात्मनि तथात्मधर्मस्य शरीरे संचारः इति वाच्यम् ? उभयोर्व्यवस्थितत्वात् । नहि भवति शरीरधर्मस्य गौरत्वस्थूलत्वादेरात्मनि संभवो न वा चैतन्यस्य शरीरे इति । अन्यत्राप्युभयोरभेदो दर्शितः 'तत्सर्वं वै हरेस्तनुरिति । संपूर्णं जगत्तदन्तर्गतब्रह्मादयो हरेः शरीरं भगवांश्च सर्वेषामन्तरात्मेति तदुभययोरभेदो दर्शित इति सर्वमनवद्यम् ।

के प्रसङ्ग में कहा गया है कि ब्रह्मा प्रभृतिक देवगण कर्म भावना ब्रह्मभावना तथा उभय भावना के अन्यतम-भावना से सर्वदा सम्बद्ध रहते हैं इसलिये ये सर्वदा कर्मपराधीन रहते हैं परन्तु भगवान् तो प्रपञ्च का उपकार करने के लिए स्वेच्छा से अलौकिक श्रीविग्रह को लेकर के अवतार लेते हैं इस समय में भगवान् का विग्रह प्राकृत नहीं होता है । महाभारत में भी कहा है-**'न भूत सङ्घसंस्थानो देहोस्य परमात्मनः'** अर्थात् परमात्मा का शरीर पञ्चमहाभूतों के समुदाय से नहीं बनता है परन्तु भगवान् का शरीर अप्राकृतिक शुद्ध सत्वमय होता है ।

भगवान् समय पर अवतार ग्रहण करते हैं यह बात इतिहास पुराण में ही कहा गया है ऐसा नहीं किन्तु श्रुति में भी इसकी चर्चा है श्रुति से भी अवतार सिद्ध होता है-**'अजायमानो बहुधा विजायते तस्यधीराः परिजानन्ति योनिम्'**

अर्थात् कर्मपराधीन नहीं होने से भगवान् जगदुपकार के लिये स्वेच्छा से अवतार ग्रहण करते हैं । इस तत्व को विद्वान् लोग ही जानते हैं श्रुति का भावार्थ यह है कि शुभाशुभ कर्म के अधीन में रहनेवाले ब्रह्मा प्रभृतिक जीव समुदाय को इच्छा न रहने पर भी शरीर सम्बन्ध रूप जन्म को ग्रहण करना पड़ता है अर्थात् प्रकृति के परिणामरूप आकाशादिक पंचमहाभूतों से निर्तित विलक्षण देव मनुष्य प्रभृति तत्तत् शरीरों में ब्रह्मादिक को प्रवेश लेना पड़ता है यही ब्रह्मादिकों का जन्म है एतादृश जन्म ग्रहण उन सब जीवों को अनिवार्य है क्योंकि वे कर्म पराधीन होते हैं ।

परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः ।
रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः ।
अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः ।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यस्सदास्तीति केवलम् ।

सर्वान्तरात्मा सर्वेशश्रीरामजगदन्तर्गतनियाम्यकोटाववस्थितब्रह्मादिदेवगणान् मनुष्यादिकांश्च संरक्षणाय स्वेच्छया अवतरति तथैव तस्यैकोवतारो विष्णुरूपेणेति प्रदर्शितवान् 'ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकामित्यत्रापि'। विष्णुपुराणस्य षष्ठेंऽशे शुभाश्रयप्रकरणे भगवच्छरीरस्य व्याख्यावसरे कथितं यत् ब्रह्मप्रभृतयो देवणाः कर्मभावना ब्रह्मभावनोभयभावनासु अन्यतमभावनया संबद्धा भवन्ति अत एव ते कर्मपराधीना भवन्ति । भगवांस्तु जगदुपकाराय स्वेच्छयाऽप्राकृतदिव्यविग्रहमादायावतरति न च तदीयं शरीरं प्राकृतम् । तदुक्तम् महाभारते 'न भूतसङ्घसंस्थानो देहोस्य परमात्मनः' अर्थात् अस्य परमात्मनः शरीरम् न पाञ्चभौतिकमपितु

उन जीवों के जन्म का कारण शुभाशुभ कर्म वा कर्मफल अनुभव करना ही जन्म ग्रहण का फल है इस तथ्य को जगद्गुरु श्रीश्रुतानन्दाचार्यजी सिद्धान्तभास्कर ने **'विकारञ्चरा-मोदयाब्धिस्तथात्वे दया शून्यतां पक्षपातञ्चनैति । प्रकारे विकारस्तथाचित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्रणिनां प्राच्य कर्म ॥'** इसप्रकार से श्रौतसिद्धान्त विन्दु में विशेषरूप से निरूपण किया है अतः इस प्रसङ्ग को वहीं मेरे विवरण में देखें । इन देव आदि का शरीर प्रकृति परिणाम रूप होता है इन सब का जन्म अशुभ है । भगवान् तो कर्माधीन सत्य सङ्कल्प वाले हैं इसलिये पूर्वोक्त प्रकार के जन्म को ग्रहण नहीं करते हैं किन्तु स्वकीय इच्छा से दिव्य अप्राकृतिक श्रीविग्रह (शरीर) को धारण करके जगत् का कल्याणार्थ देवादिक योनियों में अनेक प्रकार से जन्म (अवतार) लेते हैं । ईश्वर के जन्म का कारण स्वेच्छ है कर्म नहीं जन्म का फल जगत् का कल्याण है । एतादृश उपर्युक्त विशेषता होने से जीव का जन्म मुख्य जन्म ही है और भगवान् का जन्म अवतार कहा जाता है । ईश्वर जीव की तरह अशुभ जन्म ग्रहण नहीं करते हैं किन्तु सत्य सङ्कल्प के अनुसार शुभावतार का ही ग्रहण करते हैं । इस विलक्षण मर्म को विद्वान् लोग ही जानते हैं जिनके ऊपर श्रीरामजी की दया होती है । शैव सम्प्रदाय में तीन मत हैं तदनुसार शैवों ने तीन पूर्वपक्ष किया

सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेति वै यतः ।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठ्यते ।
तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।

शुद्धसत्वमयमप्राकृतिकमिति ।

श्रुतिरपि तत्र भवति 'अजायमानो बहुधाविजायते' इत्यादि । अर्थात् स्वभावतोऽजायमनोऽपि कर्मवशप्राकृतशरीरग्रहणमकुर्वाणोऽपि स्वेच्छया जगदुपकारायाप्राकृतशरीरमधिष्ठाय देवादिषु समये समयेऽवतरति श्रीरामः 'सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ । भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ' (वशिष्ठसंहिता) इत्यादिरूपेण सर्वेश्वरीश्रीसीतोक्तेः शरीरग्रहणस्योभयत्र समानत्वेऽपि इदमेव वैलक्षण्यमुभयत्रेति । तदिदमुक्तम्-स्वरूपतो जन्मरहितो विलक्षणशरीमास्थाय बहुधा देवादिषु अवताराननेकान् गृह्णातीति तदेतत्सर्वं सूरय एव जानन्ति नान्ये इति संक्षेपः ।

था उन में से पूर्व मतद्वय का निराकरण हो जाने पर अब तृतीय मत के अनुसार यहां पूर्वपक्ष करते हैं इस तृतीय मत का निराकरण करके स्वमत से परब्रह्म श्रीसीतानाथजी ही सर्व श्रेष्ठ हैं उनसे श्रेष्ठतर तत्वान्तर कोई नहीं था श्रीसीतापति ही भक्त को मोक्ष देनेवाले हैं तथा प्राप्य भी स्वयं हैं । इस बात को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-'**समस्तस्य जड़चेतनात्मकप्रपञ्चस्येत्यादि**' संपूर्ण जड़चेतनरूप जो जगत है उसका निमित्त तथा उपादानकारण जो परब्रह्म परमपुरुष है उनसे अतिरिक्त भी कोई तत्वान्तर पर है तथा श्रेष्ठ है ? ऐसा '**परमतः सेतून्मान**' इत्यादि सूत्र से शङ्का करके '**सामान्यात्तु**' इस सूत्र से लेकर '**अनेन सर्वगतत्व**' इत्यादि पराधिकरण के अन्तिम सूत्र समुदाय से सूत्रकार ने पूर्वोक्त पूर्वपक्ष का स्वयं निराकरण किया है । यह मूल का संक्षिप्तार्थ है ।

इस मूल का भावार्थ ऐसा है-तथाहि शैव सम्प्रदाय में तीन मत हैं-इसमें प्रथम मत के अनुसार प्रकृति इस जड़ाजड़ जगत् का उपादानकारण है और पशुपति देव निमित्त कारण होते हैं । द्वितीय मत के अनुसार इस जगत् का उपादानकारण नारायण भगवान् हैं और निमित्तकारण पशुपति हैं । तृतीय मत के अनुसार जगत् का निमित्तकारण तथा उपादनकारण दोनों प्रकार का कारण नारायण ही हैं परन्तु भगवान् जनार्दन मोक्ष दाता नहीं है नारायण प्राप्य नहीं हैं किन्तु '**ततो**

एकस्वरूपं च सदा हेया भावाच्चनिर्मलम् ॥
तदेव सर्वमेवैतद् व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ।
स सर्वभूतप्रकृतिं विकारात् गुणादिदोषांश्च मुने व्यतीतः ।

शैवसंप्रदाये मतत्रयं विद्यते । तत्र प्रथमो जगत उपादानकारणं प्रकृतिं सत्वरजस्तमोगुणात्मिकामनुते निमित्तकारणं कर्तृकारकं शिवं च मनुते । द्वितीयस्तु जगत उपादानकारणं जनार्दनं मन्यते निमित्तकारणं च शिवमिति तृतीयस्तु नारायणो यो जगतो निमित्तमुपादानं चापि भवति स न मोक्षदः प्राप्यश्च किन्तु मोक्षदाता प्राप्यश्च जनार्दनादन्यः सर्वश्रेष्ठः शिव एवेति मन्यते । तत्र 'यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते' इत्यादिश्रुतिभ्यो 'जन्माद्यस्य यतः' इत्यादिसूत्रेण प्रकृतिं निराकृत्य चेतनस्योपादानकारणत्वे व्यवस्थापिते सति, द्वितीयमतवादी जनार्दनो जगत उपादानं शिवश्च निमित्तकारणमिति व्यवस्थापितवान् ततः 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा

यदुतरतरम्' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध होता है कि नारायण से श्रेष्ठ तथा परतत्व शिवजी हैं इसलिये शिवजी का नाम '**पशुपति**' है पशु नाम है जीव का क्योंकि '**पश्यन्ति बाह्यमर्थमिति पशुः**' इस व्युत्पत्ति से पशुपद वाच्य बद्ध जीव का संसार रूप पाश से रक्षण करने के कारण इनका नाम पशुपति है इससे सिद्ध होता है कि शिवजी नारायण से श्रेष्ठ तत्व हैं मोक्षप्रद तथा ध्येय हैं

इन उपर्युक्त प्रथम मत का जो प्रकृति जगत् का उपादान है निमित्तकारण शिव है इसका '**जन्माद्यस्य यतः**' इस सूत्र तथा '**यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते**' इत्यादि श्रुतियों से प्रकृति का जगत्कारणत्व का निराकरण हो जाने पर द्वितीय मतवादी कहते हैं कि जगत् के उपादानकारण नारायण हैं निमित्तकारण शिव हैं । इस मत का भी '**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञाद्दष्टा**' इत्यादि सूत्र श्रुतियों का निराकरण कर के एक ही चेतन जगत् का उपादान तथा निमित्तकारण है ऐसा सिद्ध होने पर स्वमत को निराकृत समझ करके तृतीय शैवानुयायी कहते हैं कि नारायणातिरिक्त कोई परतत्व है नारायण मोक्षद तथा ध्येय नहीं हैं । इन तीनों मतों में से प्रथम द्वितीय मतों का खण्डन '**जन्माद्यस्य यतः**' '**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा द्दष्टान्तानुपरोधात्**' इत्यादि सूत्र तथा श्रुतियों द्वारा कहा है कि सर्वेश्वर श्रीसीतानाथजी ही जगत् के उपादान कारण तथा निमित्त कारण बननेवाले परब्रह्म

अतीतसर्वावरणोऽखिलात्मा तेनास्तृतं यद्भुवनान्तराले ॥
समस्त कल्याणगुणात्मकोऽसौस्वशक्तिलेशोद्धृतभूतवर्गः ।
इच्छागृहीताभिमतोरुदेहः संसाधिताऽशेषजगद्धितोऽसौ ॥
'तेजोबलैश्वर्यमहावबोधसुवीर्यशक्त्यादिगुणैकराशिः ।

दृष्टान्तानुपरोधादिति सूत्रश्रुत्यादिभिर्युक्त्या चैकस्यैवोभयविधकारणत्वे स्थापिते तृतोयः कथयति यत् भवतु नारायण एवोभयविधकारणं जगतस्तथापि नारायणात् श्रेष्ठः शिव एव भक्तानां मोक्षदाता प्राप्यश्चेति तृतीयमतनिराकरणाय प्रक्रमते समस्तस्य जडचेतनात्मकप्रपञ्चस्य इत्यादि । अयमाशयः-'जन्माद्यस्य यतः' तथा 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधादित्यादिसूत्रश्रुतिभिरेकस्यैव चेतनस्य जगतो निमित्तत्वमुपादानत्वं च सिद्ध्यति तादृशं च चेतनं परब्रह्मसर्वेश्वरश्रीरम एव 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्' इति श्रुत्युक्तेः । एतस्मात् परं किमपि तत्वान्तरं नास्ति यो मोक्षदः प्राप्यश्च भवेत् किन्तु श्रीराम एवोभयविधकारणं स एव

हैं तद्व्यतिरिक्त नहीं। इस परमपुरुष सर्वनियन्ता श्रीरामजी से उत्कृष्ट तत्व कोई नहीं है ब्रह्मसूत्रों में '**परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः**' इस सूत्र से प्रश्न किया कि सर्वनियन्ता श्रीरामजी से उत्कृष्ट तत्व होगा ? तदनन्तर '**सामान्यातत्तु**' '**बुद्ध्यर्थः पादवत्**' '**स्थान विशेषात्प्रकासादिवत्**' '**उपपत्तेश्च**' '**तथान्य प्रतिषेधात्**' **एवम्** '**अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्य**' इन सूत्रों से प्रथम सूत्रकृत शङ्का का निराकरण सूत्रकार ने स्वयं किया है।

इन सूत्रों का अर्थ इसप्रकार होता है इसमें पूर्वपक्षी कहते हैं कि जगत् का कारण जो ब्रह्म है उससे भी उत्कृष्ट एक कोई तत्व है ऐसा मानना चाहिये, इसमें चार हेतु हैं। प्रथम हेतु है कि उपनिषद् में जगत् कारण ब्रह्मके विषयमें कहा ह कि- '**अथ य आत्मा स सेतुः**' अर्थात् जो यह जगत् कारण ब्रह्म परमात्मा है वह सेतु पुल है एक पार से दूसरे पार तीर में पहुंचानेवाले को सेतु कहते हैं यहां परमात्मा को सेतु कहा है तो इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा साधक को दूसरे के पास में पहुंचाता है तो वह जो दूसरा तत्व है जिसके पास पहुंचता है साधक वह अवश्य परमात्मा से श्रेष्ठ सिद्ध होता न कि परमात्मा साधक को दूसरे के पास में पहुंचाता है तो वह जो दूसरा तत्व है जिसके पास पहुंचता है साधक वह अवश्य परमात्मा से श्रेष्ठ सिद्ध होता है। अपि च '**एतं सेतुं**

परः पराणां सकला न यत्र क्लेशादयः सन्तिपरावरेशे ।
स ईश्वरो व्यष्टिसमष्टिरूपोऽव्यक्तस्वरूपः प्रकटस्वरूपः ।
सर्वेश्वरः सर्वदृक् सर्ववेत्ता समस्तशक्तिः परमेश्वराख्यः ॥

मोक्षदो भवति प्राप्यश्चमोक्षकामैरिति । एतत्तत्वं सूत्रकारः 'परमतः सेतून्मान संबन्धभेदव्यपदेशेभ्यः' इतिसूत्रेण शङ्कां कृत्वा 'सामान्यात्तु' इत्यादिसूत्रेण तन्निराकृत्य सिद्धान्तं स्थापयामास । इदमीयपूर्वपक्षोत्तरपक्षौ जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यप्रणीतानन्दभाष्यानुसारेण द्रष्टव्यौ । तथाहि-'परमतः सेतून्मानसंबन्ध भेदव्यपदेशेभ्यः ३।६।३०।' इदानीमस्मादुभयलिंगाद् ब्रह्मणोऽपि किंचित् परं तत्वं स्यादिति विचार्यते । तत्र संशयः । जगन्निमित्तोपादानकारणाद् ब्रह्मणः परमपि किञ्चित्तत्वमस्ति न वेति । अतो ब्रह्मणः परमपि तत्वमस्ति । कुतः ? सेतून्मानसंबन्ध भेदव्यपदेशेभ्यः। 'अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिः' (छा,८।४।१) इति सेतुत्वेन व्यपदिष्टस्यात्मनः 'एतं सेतुं तीर्त्वा' (छा.८।४।२) इति तरितव्यत्वव्यपदेशात् । एवं च

तीर्त्वा' इस सेतु को पार करके अर्थात् सेतु बननेवाला जगत् कारण परमात्मा को पार करने के लिये कहा गया है इससे सिद्ध होता है कि जगत् कारण ब्रह्म से भिन्न कोई तत्व है जो सेतु पदवाच्च परमात्मा से श्रेष्ठ है तथा प्राप्य है यह प्रथम हेतु है। द्वितीय हेतु यह है उन्मान जगत् कारण ब्रह्म को '**चतुष्पाद् ब्रह्मषोडशकलम्**' (चार पैरवाला षोडश कलावाला है) यह कह कर चार पैरवाला सोलह कलावाला कहा गया है। इससे जगत् कारण ब्रह्म परिमित सिद्ध होता है, इससे यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म व्यतिरिक्त दूसरा कोई अपरिमित है जगत् कारण ब्रह्म अपरिमित नहीं है। यह द्वितीय हेतु हुआ। तृतीय हेतु यह है कि '**अमृतस्यैष सेतुः**' यह कहकर जगत् कारण परब्रह्म भक्तों को तत्व के पास पहुंचानेवाला कहा गया है और परब्रह्म के द्वारा प्राप्त होनेवाला अमृत तत्व परब्रह्म से श्रेष्ठ सिद्ध होता है क्योंकि अमृतत्त्व प्राप्य है, और ब्रह्म प्रापक हैं प्राप्य प्रापक में सर्गादिवत् श्रेष्ठ होता है यह तृतीय हेतु हुआ। चतुर्थ हेतु यह है कि-उपनिषद् में '**ततो यदुत्तरतरम्**' यह कहकर परब्रह्म परमपुरुष से श्रेष्ठ बननेवाले किसी एक तत्व का स्पष्ट वर्णन हैं, वह तत्व उपर्युक्त इन चार हेतुओं से परब्रह्म से श्रेष्ठ सिद्ध होता है, उस तत्व को अवश्य मानना चाहिये, वह तत्व श्रीशिवजी हैं, यह हुआ पूर्वपक्ष जिसका वर्णन '**परमतः सेतून्मानः**' सूत्र में किया गया है।

संज्ञायते येन तदस्तदोषं शुद्धंपरं निर्मलमेकरूपम् ।
सन्दृश्यते वाप्यधिगम्यते वा तज्ज्ञानमज्ञानमतोऽन्यदुक्तम् ।'

एतत्सर्वं वचनं विशेषरूपेण ब्रह्मणः स्वरूपं निरूपयति । एतदन्यपुराणं तु, एतदविरोधेनव्याख्येयम्, यत् पुराणं विष्णु

तीर्त्वा यदवाप्स्यति तदतः परमेवेत्यवगम्यते । 'चतुष्पाद् ब्रह्म' (छा,३।१८।२) इति श्रुतावुन्मानत्वपरिमिततत्वव्यपदेशात्ततः परमपरिमितं तत्वमप्यस्तीति प्रतीयते । 'अमृतस्यैष सेतुः' (मु.२।२।५। इत्यमृतप्रापकात्सेतुशब्दनिर्दिष्टादस्मात्परं प्राप्यभूतममृतशब्दवाच्यं किमपि तत्त्वमस्तीति प्राप्यप्रापकसंबन्धादवसीयते । तथा 'परात्परं पुरुषमुपैतिदिव्ययम्' (मु.३।२।८।)'परात्परं यन्महतोमहान्तम्' (तै.१।५।) इति च भेदव्यपदेशादेतेभ्यो हेतुभ्यः परस्माद् ब्रह्मणोपि परं किञ्चिदस्ति इति ज्ञायते ॥३०॥ इति प्राप्तेऽभिधीयते-'सामान्यात्तु' ॥३।२।३१॥ तु शब्दःपूर्वपक्षनिरासार्थः ।

'सामान्यात्तु' इत्यादि छ सूत्र सिद्धान्त का प्रतिपादक हैं, उपर्युक्त पूर्वपक्ष के वाद सिद्धान्ती कहते हैं-'सामान्यात्तु'-यहां तु शब्द पूर्वपक्ष का निराकरणपरक है, अर्थात् यथोक्त पूर्वपक्ष ठीक नहीं है पूर्व पक्ष की युक्ति ठीक नहीं है क्योंकि पर ब्रह्म को सेतु कहने से परब्रह्म से श्रेष्ठ वस्त्वन्तर को प्राप्त करानेवाला पुल है ऐसा अर्थ नहीं है किन्तु '**एष सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय**' कहकर यह बतलाया गया कि यह परब्रह्म इन लोकों में तथा इन प्रापञ्चिक पदार्थ जात में शंकर नहीं होने देते हैं सब पदार्थों को स्वकीय नियत स्वभावों में स्थिर रखता है। सभी जड़चेतन पदार्थों को सांकर्य के विना अपने में व्यवस्थित बांधे रखता है, इसलिये जगत् कारण ब्रह्म सेतु पदवाच्य होते हैं। यही अर्थ वहां प्रतिपाद्य है। '**एतं सेतुं तीर्त्वा**' इस श्रुति का जो अर्थ किया गया कि परब्रह्म को पार करके साधक पदार्थान्तर को प्राप्त करता है यह जो अर्थ किया है वह ठीक नहीं है क्योंकि वहां परब्रह्म को प्राप्त करने का वर्णन है पार करने का वर्णन नहीं है यथा-'**वेदान्तं तरति**' यह कहने पर यह अर्थ निकलता है कि वेदान्त को प्राप्त करता है नतु वेदान्त को पार करता है, उसी तरह प्रकृत में '**सेतुं तीर्त्वा**' का अर्थ है कि सेतु तादृश परब्रह्म को प्राप्त करके यह अर्थ है। नतु ब्रह्म को पार करके यह अर्थ है इसप्रकार सामान्यात्तु सूत्र से पूर्वपक्ष के प्रथम हेतु का निरास किया गया। '**बुद्ध्यर्थः पादवत्**' इस सूत्र से पूर्वपक्ष के द्वितीय हेतु का निराकरण किया जाता है इससूत्र का अर्थ यह है-'**चतुष्पाद्ब्रह्म षोडषकलम्**' यह कहकर

पुराणात्सर्वथा विरुद्धं तत्सर्वथैवानादरणीयम्, राजसतामस रूपत्वात् । वैष्णवं तु सात्विकमितिसंक्षेपः ।

'एषां लोकानामासंभेदाय' (छा.८।४।१०।) इत्युत्तरवाक्यात् प्रसिद्धसेतुर्यथा जलमर्यादाव्यवस्थापकः । एवं ब्रह्मणोऽपि सर्वजगन्मर्यादाव्यवस्थापकत्वेन प्रसिद्धसेतुसामान्यात् सेतुत्वव्यपदेशो न तरितव्यत्वेनेति न ततः किञ्चित्परमस्ति । 'एतं सेतुं तीर्त्वेति तरति, अत्र 'मीमांसाशास्त्रं तीर्त्वा वेदार्थमधिगच्छतीत्या दिवत्प्राप्त्यर्थक एव ॥३१॥ बुद्ध्यर्थः पादवत् ॥३।२।३२॥ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै.२।१।) 'अणोरणीयान्महतोमहीयान्' (का.१।१।२०॥ इत्यादिषु श्रुतस्या नन्तस्यापरिच्छिन्नस्यानुपमस्य जगत्कारणस्य ब्रह्मणः 'चतुष्पाद् ब्रह्म' (छा.३।१८।२।) इत्युन्मानव्यपदेशो बुद्ध्यर्थ उपासनार्थ एव पादवत् । ब्रह्मप्रतीकस्य मनसोवाक् प्राणचक्षुः श्रोत्राण्युपासनार्थं पादत्वेन व्यपदिष्टानि तद्वत् ॥३२॥ 'स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत्' ।३।२।३३॥ एवमपि स्वयमपरिच्छिन्नस्वरूपस्य ब्रह्मणः

जो परब्रह्म को चार पैरवाला तथा सोलह कलावाला कहा गया है इससे जगत् कारण परब्रह्म को परिमित परिच्छिन्न नहीं समझना चाहिये क्योंकि जगत् कारण ब्रह्म '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' इस वाक्य से अनन्त अपरिमित कहा गया है इसलिये परब्रह्म स्वतः परिमित नहीं हो सकता है। किन्तु उपासना के लिये ब्रह्म चार पैरवाला तथा सोलह कलावाला कहा गया है क्योंकि चार पैर विशिष्ठ तथा सोलह कला विशिष्ट ब्रह्म की उपासना विलक्षण फल प्राप्त करानेवाला होता है। जिस तरह '**वाक् पादः प्राणः पादः चक्षुः पादः श्रोत्रं पादः**' यह कह करके उपासना के लिये परब्रह्म का वाक् प्रभृतिक पद कहा गया है उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये। ब्रह्म में चतुष्पादत्व कहा गया है एतावन्मात्र से ब्रह्म को परिमित न समझें नवा ब्रह्मव्यतिरिक्त अपरिमित किसी दूसरे पदार्थ की कल्पना करना चाहिये, इससे '**बुद्ध्यर्थः पादवत्**' सूत्र के पूर्वपक्ष के द्वितीय हेतु का निराकरण हो जाता है।

प्रश्नः-ब्रह्म जब स्वभाव से अपरिच्छिन्न है तब उपासना के लिये परिमित किस तरह बन सकता है इस प्रश्न का समाधान करने के लिये सूत्रकार कहते हैं-'**स्थान विशेषात्प्रकासादिवत्**' अर्थात् स्वभाव से अपरिमित होने पर भी वागादिरूप उपाधि के सम्बन्ध से परिच्छिन्नरूप से ब्रह्म की उपासना हो सकती है जिस तरह सर्वत्र व्याप्त भी और प्रकाश तथा आकाश के होने पर भी

ॐ शिवब्रह्मविष्णुत्रिमूर्तिसाम्यशङ्कायाविष्णुपरत्वेनिर्वचनम् ॐ

अथास्मिन्नेव विष्णुपुराणे-'सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णु शिवात्मकम् । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः' इत्यादि

कथमुपासनायाप्युन्मानसंभव इत्याशङ्कायामाह-'स्थानविशेषादिति प्रतिपन्नदिक् पृथिव्यन्तरिक्षादिस्थानविशेषसंबन्धित्वेनोन्मितत्वानुसन्धानंयुज्यते । यथा विततस्यापि प्रकाशादेर्घटादिपरिच्छिन्नोपाध्यन्तर्गतस्य परिच्छिन्नत्वेन दर्शनं तद्वत् इत्यर्थः ॥३३॥

'उपपत्तेश्च' ३।२।३४॥ 'अमृतस्यैष सेतुः' इतिप्रापकसंबन्धव्यपदशात्प रमस्तीत्यपि न युक्तम् ।

'नायमात्मा प्रवचनेनलभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते ननुं स्वामं' (मु.३।२।३) इति परमात्मनः प्राप्यभूतस्यस्व प्राप्तावनन्योपायत्वश्रवणात्स्वस्यैवोपायोपेयत्वोपपत्तेरिति ॥३४॥

तथान्य प्रतिषेधात् ।३।२।३५॥ यच्च 'परात्परंपुरुषमुपैति दिव्यम्' (मु.३।२।८)

अपवारक घटादिरूप उपाधि के सम्बन्ध से परिच्छिन्न भासित होता है उसी तरह स्वतः अपरिच्छिन्न भी ब्रह्म वागादि उपाधि के सम्बन्ध से परिच्छिन्न रूप से ध्येय होता है। ब्रह्म का अपरिमि तत्व धर्म स्वाभाविक है और परिच्छिन्नत्व उपाधि सम्बन्ध से होने पर औपाधिक है, स्वाभाविक धर्म तथा औपाधिक धर्म में कोई विरोध नहीं होता है ।

पूर्वपक्ष में तृतीय हेतु कहा गया है कि '**अमृतस्यैष सेतुः**' इत्यादि वाक्य से जगत् कारण ब्रह्म अमृतत्व को प्राप्त करानेवाला है। तथा अमृतत्व उस ब्रह्म के द्वारा प्राप्य है ऐसा कहा गया है इस तरह ब्रह्म तथा अमृतत्व में प्राप्य प्रापकभाव सम्बन्ध का प्रतिपादन होता है तो ऐसा मानना पड़ेगा कि परब्रह्म से अमृततत्व अतिश्रेष्ठ है। इस तृतीय हेतु का निराकरण करने के लिये सूत्रकार ने कहा-'**उपपत्तेश्च**' अर्थात् कारण जो ब्रह्म है वह स्वकीय प्राप्ति कराने में स्वयमेव साधन है इसलिये ब्रह्म अमृतत्व प्राप्ति में उपाय कहा जाता है तथा प्राप्य जो अमृत तत्व है वह भी जगत् कारण ब्रह्म ही है जगत् कारण ब्रह्म स्व की प्राप्ति करा देता है, इसलिये उस ब्रह्म को प्रापक कहा गया है। यह विषय-'**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः**' इत्यादि श्रुति वाक्य से पुष्ट होता है। उस स्थल में '**यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः**' यह कहकर परब्रह्म जगत् कारण भगवान् श्रीरामजी को स्वप्राप्ति में स्वयमेव कारण कहा गया है। इस विषय को श्रीसम्प्रदायाचार्य महर्षि श्रीवशिष्ठजी

त्रिमूर्तिनां समत्वं प्रतिपाद्यते, तत्कथं ब्रह्मशिवाभ्यां श्रेष्ठत्वं प्रतिपादितमिति चेत्सत्यम् । प्रकृतश्लोके 'एक एव जनार्दनः'

इति भेदव्यपदेशात्ततोपि परमस्तीत्युक्तं तन्निरस्यति । तथान्यस्य ब्रह्मणः परस्यप्रतिषेधात् 'यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद् यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति कश्चित्' (श्वे. ३।९।) 'न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः' (श्वे.६।९।) 'न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' (श्वे.६।८।) इत्येवमादिभ्यो ब्रह्मपरस्यान्यस्य प्रतिषेधात् ॥३५॥ अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥३२।३६॥ अनेन 'अणोरणीयान् महतोमहीयान्' इत्येवमादिभि ब्रह्मणः किञ्चिदपि परं नास्तीति प्रतिषेधद्वारा तस्य सर्वव्यापकत्व प्रतिपादनेन सर्वगतत्वमपि सिद्ध्यति । कुतः ? आयामशब्दादिभ्यः । सर्वव्यापि

ने निम्न श्लोक से व्यक्त किया है-'**श्रुतावुक्तं यमैवैष वृणुते इतिरूपतः । तव प्राप्तावुपायस्तत राम ! त्वं चासिनेतरः ॥**' (वसिष्ठसंहिता)। इसप्रकार '**उपपत्तेश्च**' इस सूत्र से पूर्वपक्षी के तृतीय हेतु का खण्डन हो जाता है।

पूर्वपक्षमें '**ततो यदुत्तरतरम्**' इस श्रुति वाक्य के बल से चौथे हेतु का इस प्रकार से वर्णन किया है कि जगत् कारण परमेश्वर श्रीरामजी से भी श्रेष्ठत्व मोक्षप्रदत्व सिद्ध होता है। उसका वर्णन चतुर्थ हेतु से किया गया है। इस चतुर्थ हेतु का निराकरण करने के लिये सूत्रकार कहते हैं-'**तथान्य प्रतिषेधात्**' अर्थात् '**ततो यदुत्तरतरम्**' वहां '**यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्**' यह कहकर वतलाया गया कि जगत् कारण परब्रह्म परमपुरुष से श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है, तो यदि परमपुरुष से अन्य किसी को श्रेष्ठ मानेंगे तव तो '**यस्मात् परम्**' इत्यादि वचन से विरोध होगा। इसलिये '**ततो यदुत्तरतरम्**' इस श्रुति का अर्थ यह करना ही युक्त होगा कि उपर्युक्त कारणों से सर्वापेक्षया श्रेष्ठत्व सिद्ध होनेवाले जो जगत्कारण परमपुरुष श्रीसीतानाथजी हैं, वे प्रकृति सम्बन्धीरूपादिकों से रहित हैं तथा सर्वदोष विवर्जित हैं एतादृश परमपुरुष को जाननेवाले साधक मोक्ष को अमृतत्व को प्राप्त करते हैं। '**ततो यदुत्तरतरम्**' '**यस्मात्परं नापरम्**' इत्यादि वचनों का विचार इससे पूर्व विस्तृत रूप से किया गया है इसलिये यहा पुनः विस्तृतरूप से विचार न करके संक्षेप किया गया है। '**अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः**' अर्थात् जगत् की परमपुरुष परमात्मा श्रीरामजी सर्वव्यापक हैं अर्थात् सर्वव्यापक होकर के रहते हैं, यह विषय परमात्मा की सव्यापकता को सिद्ध करनेवाले '**तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्**' इत्यादि श्रुति वाक्यों

इतिकथनेन ब्रह्मशिवादिसमस्तजडाजडप्रपञ्चस्य जनार्दन तादात्म्यस्यैव कथनात् । विष्णुपुराणस्योपक्रमे 'जगच्च सः' इति कथयित्वा भगवतस्तादाम्यं जगतिवर्णितमिति तस्यैवात्र विवरणं

वाचिशब्देभ्यो ब्रह्मणः सर्वगतत्वं सिद्धयत्सर्वपरत्वमपि सिद्धयति । ते च शब्दाः 'तेनेदं पूर्वं पुरुषेण सर्वम्' श्वे.३।९।) 'नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं यद्भूतयोनिम्' (मु.१।१।६।)'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' (बृ.२।५।१॥) इत्यादयः ॥३६॥

अत्र प्रथम 'सेतून्मानेन' इत्यादिसूत्रेण ब्रह्मणः परं श्रेष्ठं तत्वान्तरमस्तीति पूर्वपक्षं प्रदर्श्य 'सामान्यात्तु' इत्यादिसूत्रषट्केन सर्वव्यापकत्वसर्वगतत्वसमाभ्य-धिकविवर्जितत्वकथनेन ब्रह्मणः परं किमपि तत्वान्तरं नास्ति किन्तु श्रीसीतानाथ एव सर्वेभ्यः परः सर्वश्रेष्ठो योगिभिर्ध्येयः प्राप्यश्चेति सूत्रकारः प्रदर्शितवान् । जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यास्तु प्रश्नोत्तरसूत्राणि व्याख्याय सूत्रकारमतमनुमोदयामासुः । तदेवं

से सिद्ध हो जाता है। इससे ऐसा फलित होता है कि जगत् कारण जो परब्रह्म हैं उनसे बढ़कर कोई अन्य तत्व नहीं है। इन दोनों **'तथान्यप्रतिषेधात्'** **'अनेन सर्वगतत्वम्'** इत्यादि सूत्रों से पूर्वपक्ष के चतुर्थ हेतु का खण्डन हो जाता है। शारांश यह है कि ब्रह्मसूत्र के निर्माता सूत्रकार श्रीव्यासजी ने पराधिकरण में प्रथम सूत्र से जगत् कारण जो परब्रह्म हैं उनसे भी श्रेष्ठ कोई तत्व है ऐसा प्रश्न करके उत्तर के सूत्रों से प्रश्न का खण्डन करके जगत् कारण परब्रह्म श्रीसीताकान्त ही सर्वश्रेष्ठ हैं ऐसा सिद्ध किया। अतः वही भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मोक्षप्रद हैं तथा ध्येय हैं। श्रीनारायणापरपर्याय परमपुरुष श्रीसीतानाथजी ही जगत् के कारण हैं ब्रह्मा आदि जीव कोटि में प्रविष्ट हैं इसलिये ब्रह्मादिक जगत् के कारण तथा सर्वश्रेष्ठ नहीं है इस बात को श्रुत्यादि प्रमाण द्वारा गत प्रकरण से सिद्ध किया गया है। अब जगत् के कारण परमपुरुष का नाम सृष्टि क्रम में नारायण है तथा ब्रह्मादिक नारायण से प्रथम जात जीव हैं जिनका नाम ब्रह्म है। यह विषय मनुस्मृति जो कि प्रमाणभूत शास्त्र है तादृश मनुस्मृति के द्वारा सिद्ध करने के लिये उपक्रम करते हैं- **'मनुस्मृतौ'** इत्यादि। मनुस्मृति-मानवशास्त्र में **'प्रकृति का प्रेरक भगवान् प्रादुर्भूत हुए'** इत्यादि स्थल में हिरण्यगर्भ ब्रह्मा का परमपुरुष नारायणाख्य श्रीरामजी से जन्म होता ऐसा श्रुति होने से उस हिरण्यगर्भ ब्रह्मा को जीवत्व निश्चित होता है तथा **'अयनं तस्य ताः पूर्वम्'** इत्यादि प्रकरण में कहा है कि जगत् के कारण जो परमपुरुष श्रीरामजी हैं उनका नाम सृष्टिक्रम में नारायण है तथा

भवति । किञ्च 'स्त्रष्टासृजति चात्मानं विष्णुपाल्यं च पाति च । उपसंह्रियते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं प्रभुः' इतिसर्जकत्वेन स्थितं हिरण्यगर्भमुत्पाद्यं च विनाशकं विनाश्यं च सहैव निर्दिश्य समस्तस्य

महाविष्णवादिपदपर्यायसर्वशेषिसर्वजगदभिन्ननिमित्तोपादानः श्रीरामो मोक्षदः प्राप्यश्चेति न ततोऽतिरिक्तः कश्चित् सर्वश्रेष्ठोऽन्येषां तद्विभूतिस्त्वत्वेन तदधीनत्वाच्चेति विशेषोऽन्यत्र द्रष्टव्यो ग्रन्थगौरवभियाविरम्यते ।

न केवलं श्रुत्यादावेवसर्वेश्वरश्रीरामापरपर्यायनारायणस्यजगत्कारण परमपुरुषत्वं हिरण्यगर्भादीनां जीवकोटावन्तर्भावः प्रतिपादितः किन्तु मनुस्मृत्यादि स्मृतिग्रन्थेष्वपि तस्यैव सर्जकत्वं ब्रह्मादीनां जीवत्वं प्रतिपादितमिति दर्शयितुं प्रक्रमते मनुस्मृतावित्यादि-प्रादुरासीत्तमोनुदः इत्यादिविविधा अनेकविधप्रजाः स्त्रष्टुमिच्छन् प्रकृतेः प्रेरकः प्रादुर्भूतो जातः, उत्पद्य च प्रथमतः आकाशादिक्रमेण जलसृष्टिमकरोत्, तेषु

सर्वसर्जक नारायण से सर्वप्रथम उत्पन्न जो जीव है उसका नाम ब्रह्मा है ऐसा मनुस्मृति में नामकरण किया है। इससे सिद्ध होता है कि जगत् के कारण परमपुरुष का नाम नारायण है तथा इस नारायण से सर्वप्रथम जात जीव का नाम ब्रह्मा है। इसलिये ब्रह्मादिक जीव जगत् का कारण नहीं हैं नवा सर्वश्रेष्ठ है, ऐसा प्रकृत मूलग्रन्थ का अक्षरार्थ होता है, भावार्थ तो ऐसा है-तथाहि-मनुस्मृतिरूप मानव शास्त्र में जगत् के कारण श्रीसीतानाथजी को नारायण एवं नारायण के द्वारा सर्वप्रथम उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा प्रभृति को जीव कहा है। **तद्वचनं चेत्थम्-**

'प्रादुरासीत्तमोनुदः सिसृक्षुर्विबिधा प्रजाः । अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपासृजत् । तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा' इति। अर्थात् प्रलयकाल में प्रकृति को अधिष्ठित करनेवाले भगवान् अनिरुद्ध ने प्रलय के अन्त में सर्ग करने के लिये जो प्रकृति के प्रेरक होते हैं अर्थात् प्रकृति को प्रेरित करते हैं। तदनन्तर अनिरुद्ध भगवान् अनेक प्रकारक विलक्षण प्रजाओं का सर्ग करने के लिये इच्छा करते हुए जल प्रभृति तत्व की सृष्टि करते हैं तथा उन प्राकृतिक तत्वों में जीव को मिलाते हैं तदनन्तर क्रम परम्परा से ब्रह्माण्ड की रचना होती है तथा उस ब्रह्माण्ड में ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं, इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मा का जन्म होता है। जिस तरह **'ततस्वमसि दुर्धषात्तस्माद्भावात्सनातनात् । रक्षां विधास्यन् भूतानां विष्णुत्वमुपजग्मिवात्'** इस श्रीमद्रामायण के कथनानुसार श्रीविष्णु श्रीरामजी के अवतार हैं उसी तरह ब्रह्माजी भी श्रीरामचन्द्रजी

जगतो विष्णुना सह तादात्म्यस्य कथनात् सृज्यसंहार्य्यपदार्थेभ्य सर्जकसंहर्त्रोर्जनार्दनविभूतिस्पतया वैशिष्ट्यदर्शितम्, विष्णुजनार्दनपदयोः पर्य्यायत्वात् 'ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकामिति

जलेषु जीवतत्वममेलयत् ततो जले ब्रह्मा हिरण्यगर्भो जात इत्यर्थः । एतावता हिरण्यगर्भस्य जन्मसिद्धं भवति नतु तस्य विष्णुवदवतारः, तादृशप्रमाणवचनानुपलब्धेः । कर्म विना जन्म न भवति अतो ब्रह्मा कर्मपराधीनोजायते एव अतः स जीव एव प्रथमः । किञ्चमनुस्मृतावेव कथितं यत् स्त्रष्टुः परमपुरुषस्यनारायणेति नाम ततः सर्वप्रथमं जातो जीव ब्रह्मेति । तथाहि-

अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति गीयते ॥

अयमर्थः -तस्य सर्वसर्जकस्य परमात्मनस्ता आपोऽयनं शयनस्थानम् । जलस्य नार इति नाम भवति तदुक्तम्'आपोनारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । तदस्यायतनं प्रोक्तं तेननारायणः स्मृतः' इति । जलंहि नरात् परमात्मनो जातम् तत्र नारे जले

के अवतार हैं। तब तो ब्रह्मा को जीव कहना ठीक नहीं है ? ऐसा मत कहें क्योंकि विष्णु की तरह ब्रह्माजी अवतार हैं ऐसा कोई प्रबल शास्त्र वचन नहीं है। प्रत्युत '**पद्मे दिव्यार्कसंकाशे नाभ्यामुत्पाद्यमामपि**' इस श्रीमद्रामायणीय ब्रह्माजी के वचन से श्रीरामचन्द्रजी से ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है ऐसा शास्त्र वचन होने से ब्रह्मा में जीवत्व सिद्ध होता है। जन्म कर्म के बिना अनुपपत्र है अतः कर्मपराधीन ब्रह्माजी जीव हैं ऐसा सिद्ध होता है। इससे यह फलित होता है कि जीव कोटि प्रविष्ट ब्रह्माजी को जगत् का कारण परमेश्वर मानना सर्वथा प्रमाण बाधित है अतः ब्रह्मा जीव हैं ! और मनुस्मृति में यह भी कहा है कि सर्गकर्ता परमपुरुष का नाम नारायण है तथा नारायण से सर्वप्रथमोत्पन्न जीव का नाम ब्रह्मा है-

'अयनं तस्य ता पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।
तद्विशिष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति गीयते ॥

अर्थात् आकाशादि क्रम परम्परा से जल को समुत्पन्न करके परमपुरुष परमेश्वर ने उस जल में शयन किया इसलिये इनका नाम नारायण केशव भी कहलाता है जल का नाम नार है क्योंकि वह जल नर अर्थात् भगवान् परमपुरुष से उत्पन्न हुआ है तादृश नार जल में शयन करनेवाले वह परमपुरुष श्रीराम-नारायण कहलाते है। मनुस्मृति में कहा है-'**आपो नारा इति**

विभूतिमतो जनार्दनस्य स्वेच्छयैव विभूतावन्तर्भावः कथ्यते । अन्यत्रापि कथितम्-'पृथिव्यापस्तथातेजो वायुराकाशमेव च ।

शयनकरणान्नारायणः परमात्मेति कथितोभवति' महार्णवेशयानोऽत्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः' इत्यादिरूपेण सर्वेश्वरश्रीरामंप्रतिब्रह्मोक्तेः तादृशनारायणात्प्रथममुत्पन्नो जीवोब्रह्मेतिव्यवह्रियते । इत्येवं मनुस्मृतौ जगत्कारणीभूतपरमपुरुषस्य नारायणेति नाम जगदुत्पन्नप्रथमजीवंस्य ब्रह्मेतिनामसिद्ध्यति तत्र जगतः कारणं श्रीराम एव न ब्रह्मेतिभावः । 'वासुदेवादिमूर्तीनां चतुर्णां कारणंपरम् । चतुर्विंशतिमूर्तीनामाश्रयः शरणं मम ॥७॥ महदादिस्वरूपेण संस्थितः प्राकृते पदे । ब्रह्मादिदेवरूपैश्च श्रीरामः शरणं मम ॥९॥ इत्याद्यागमोक्तेः ।

विष्णुपुराणीयपराशरमैत्रेयसंवादे हिरण्यगर्भादिदेवानांभावनात्रयसंबन्धेना सुद्धत्वं शुभानाश्रयत्वकथनेन जीवत्वमेवेति कथितम्, तथा च जीवरूपाणां

प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः । तदस्यायतनं प्रोक्तं तेन नारायणः स्मृतः' । इति । एतादृश जगत् कारण नारायण से सर्वप्रथम पैदा हुआ जीव ब्रह्मा पदवाच्य होते हैं। इस तरह मनुस्मृति में जगत् कारण परमेश्वर का नाम नारायण कहा गया है, तथा नारायण से सर्वप्रथम उत्पन्न होनेवाले जीव का नाम ब्रह्मा हिरण्यगर्भ रखा गया है। उससे सिद्ध होता है कि सर्वेश्वर श्रीरामाभिन्न नारायण परमपुरुष चराचर जगत् के अभिन्ननिमित्तोपादानरूप निदान कारण हैं ब्रह्माजी जगत् के मूलकारण नहीं हैं क्योंकि ब्रह्माजी स्वयमेव इतर पदार्थवत् सृज्य हैं। इन विचारों से ब्रह्मा जगत् के कारण हैं ऐसा माननेवालों का मत परास्त हो जाता है। विशेष विवरण अन्यत्र देखें यहां संक्षिप्तार्थ का ही प्रकाशन किया गया है।

अन्तःकरण से अवच्छिन्न चेतन का नाम है जीव और माया से अवच्छिन्न चेतन का नाम होता है ईश्वर अथवा माया में प्रतिबिम्बित जो चेतन उसका नाम है परमेश्वर जिसमें सत्वगुण रजोगुण तथा तमोगुण का समुदाय है उसे माया कहते हैं इसमें सत्वगुणावच्छिन्न चेतन को विष्णु कहते हैं वह विष्णु ईश्वर के अवतार होने से ईश्वर ही माने जाते हैं सिद्धान्त में भी इसी तरह रजोगुणावच्छिन्न चेतन हिरण्य ब्रह्मा है जो कि सकल प्रपञ्च के उत्पादक माने जाते हैं एवं तमोगुणावच्छिन्न चेतन हैं रुद्र जो कि सकल जगत् के संहारक होते हैं। इसमें चराचर सकल जगत् के स्थिति पालनादिक कार्य जीव प्रयत्न से अशक्य होने से एतादृश महान् उपासनादिक कार्यकर्ता

सर्वेन्द्रियान्तःकरणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् ॥ स एव सर्वभूतात्मा-विश्वरूपो यतोऽव्ययः । सर्गादिकं ततोऽस्यैवभूतस्थमुपकारकम् ॥' स

तेषामनुध्यानं न क्षेमायेति न ते समुपासनीयाः, अपि तु शुभाश्रयत्वात्परमपुरुष श्रीरामएवोपासनीयो मोक्षप्रदश्चेत्यादिकंसर्वंदर्शयितुं प्रक्रमते अपि च विष्णुपुराणे इत्यादि ब्रह्मादिका देवगणाः सर्वदाभावनात्रयान्तर्गतान्यतमभावनया संवद्धत्वा दशुद्धास्तदनुध्यानं न कल्याणकारणमिति न ते ध्यातव्याः । अतोहिरण्यगर्भादिका देवगणा जीवा एवेति । तत्र भावनात्रिविधाः-कर्मभावना, ब्रह्मभावना, उभयभावनाभेदात् । तत्र यागादिकर्मार्थं क्रियमाणः प्रयत्नः कर्मभावना । परमेश्वरोपासनार्थं क्रियमाणः प्रयत्नो ब्रह्मभावना । उभयार्थं क्रियमाणः प्रयत्नस्तदुभयभावनेति । तत्र सनकादयो ब्रह्मभावनया संबद्धाः यतस्ते सर्वदा ब्रह्मोपासने एव व्यापृतास्तिष्ठन्ति । इन्द्रादयः कर्मभावनया संबद्धा यतस्ते सदाकर्माण्येव

विष्णु को ईश्वर कोटिमें अन्तर्भाव माना जाता है उसी तरह ब्रह्मा भी ईश्वर है इनकी उपासना भी कल्याणप्रद होती है। इसी बात को जो मानते हैं उस मतका निराकरण करके विष्णुपुराणान्तर्गत पराशर मैत्रेय संवाद प्रकरण से भी ब्रह्मा हिरण्यगर्भ में जीवत्व की ही सिद्धि होती है क्योंकि ब्रह्मादि देवगण भावनात्रय से सम्बद्ध होने के कारण कर्मपराधीन तथा अशुद्ध हैं अतः ये ब्रह्मादिक जीव कोटि में ही अन्तर्गत होते हैं अतः मनुष्यादि जीव के समान हिरण्यगर्भोपासना भी कल्याणप्रद नहीं होती है। इत्यादि बात को समझाने के लिये तथा प्रतिपाद्य मुख्य अर्थ का उपसंहार करने के लिये उपक्रम करते हैं **'अपि च विष्णुपुराणे कमलासनादि देवानाम्'** इत्यादि। श्रीविष्णुपुराण के पराशर मैत्रेय संवाद में कमलासन जो कि सत्यलोक के अधिपति हिरण्यगर्भ ब्रह्मादिक हैं उनको भावनात्रय अर्थात्-कर्मभावना, ब्रह्मभावना और उभय भावनाओं से सम्बद्ध होने के कारण ये अशुद्ध हैं शुभाश्रय वे नहीं हैं अतः कर्मपराधीन होने से वे ब्रह्मादिक जीव हैं अर्थात् जीव कोटि में ही समाविष्ट हैं परमेश्वर कोटि में नहीं है क्योंकि जो भावनात्रय सम्बद्ध होते हैं वे सब शुभाशुभ कर्म के अधीन होते हैं और जो कर्माधीन होते हैं वे अवश्य जीव जिस तरह मनुष्यादिक जीव समुदाय शुभाशुभ कर्मफल को भोगने के लिये जन्म ग्रहण करते हैं ब्रह्माजी भी ब्रह्मा की शतवर्षायु को लेकरके ब्रह्माण्डाधिकार लक्षण कार्य करने के लिये जन्म लेते हैं। तथा मध्य में ईश्वरोपासना करके आयु की समाप्ती होने पर श्रीसाकेतधाम को प्राप्त करते

एव सृज्यः स च सर्गकर्ता स एव पात्यत्ति च पाल्यते च' इति । तथा 'ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्तिर्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः' इति । अत्र जगद्ब्रह्मणो स्तादात्म्यं सामानाधिकरण्येन दर्शितम्, परन्तु

कुर्वाणा भवन्ति । हिरण्यगर्भस्तूभयभावनया संबद्धो भवति, यतः स जगन्निर्वाहकर्मण्यधिकृत इति कदाचित्कर्माणि कुरुते करोति च कदाचित् ब्रह्मभावनामिति भावनात्रयसंबद्धा जीवा बद्धजीवकोटावेनान्तर्भवन्ति, एतेषां ध्यानं न कल्याणाय स्वयमसिद्धः कथं परान् साधयतीतिन्यायात् । परन्तु परिशुद्धात्मस्वरूपानुध्यानं कल्याणाय भवति किन्तु विशुद्धात्मस्वरूपम् 'यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्यमनसा सहेति श्रुतेर्नमनस आलंवनमिति भक्तकल्याणाय दिव्यविग्रहं स्वेच्छया स्वीकरोति तादृशो हि विग्रहोमनसा आकलयितुं योग्यो भवति करोति च कल्याणमुपासकानाम् 'ॐ चिन्मयेऽस्मिन्महा विष्णौ जाते दशरथे हरौ । रघोः कुलेऽखिलंराति राजते यो महिस्थितः । स राम इति' चिन्मयस्याद्वितीयस्य-निष्कलस्याशरीरिणः । उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' (रामतपनीश्रुतीः)

हैं ऐसा **'सोऽहं संन्यस्तभारो हि त्वामुपास्य जगत्पतिम्'** इत्यादि श्रीमद्रामायणीय ब्रह्माभिहित शास्त्र प्रमाण है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मांजी जीव हैं ईश्वर नहीं ऐसा विष्णुपुराण में कहा हैं।

ब्रह्माजी जीव कोटि प्रविष्ट हैं इसलिये ब्रह्मोपासना जीव को मोक्ष देनेवाली नहीं हो सकती है अतः हिरण्यगर्भ का ध्यान नहीं करें । जैसे एक मनुष्यादि जीव की उपासना करने से अपर जीव मुक्त नही होता है अतः जीव की उपासना नहीं करता है उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये इसप्रकार मूलग्रन्थ का अक्षरार्थ होता है। इस मूल ग्रन्थ का भावार्थ तो इसप्रकार होता है। तथाहि-श्रीविष्णुपुराण में जो कि सात्विक पुराण है उसमें पराशर महर्षि ने मैत्रेय को इसप्रकार से कहा है कि हिरण्यगर्भ ब्रह्मा प्रभृतिक सभी देवगण कर्म भावना और तदुभय भावनाओं में से अन्यतम भावना से सर्वदा सम्बद्ध रहते हैं अतएव ये लोग अशुद्ध हैं इन जीवों का अनुध्यान करने से मोक्ष रूप कल्याण की प्राप्ती नहीं हो सकती है इसलिये ये ब्रह्मादिक ध्यातव्य नहीं है। इस पुराण वचन से सिद्ध होता है कि ब्रह्मादि देवगण जीव कोटि में प्रविष्ट हैं किन्तु ईश्वर कोटि में इन लोगों का समावेश नहीं है। तीन भावना इसप्रकार से हैं कर्मभावना ब्रह्म

तन्न संभवति स विकारनिर्विकारयोर्जगद्ब्रह्मणोरभेदस्या-युक्तत्वादित्याशंक्य 'स एव सर्वभूतात्माविश्वरूपो यतोऽव्ययः' इत्यवोचत् । स परब्रह्मरूपो विष्णुरेव सर्वजगदिति कथयित्वा 'स एव सर्वभूतात्मा विश्वरूपो यतोऽव्ययः' इति हेतुः कथितः,

'शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये' (आगम) इत्याद्युक्तेः सर्वेश्वरश्रीराम एवाश्रयणीयमुमुक्षुभिरितिभावः । अनेनप्रकरणेन पराशरो ऋषिर्हिरण्यगर्भो जीव इति निश्चयमकरोत् । तस्मात् भगवान् नारायण एव श्रीसीतानाथाभिधः परं ब्रह्मेति सिद्धम् । एतदन्तप्रकरणेन परपक्षं निराकृत्य प्रमाणतर्कादिभिर्भगवान् श्रीसीतानाथ एव परंब्रह्मेति मुख्यो विषयः प्रसाधितः । अनभिमतश्चपक्षो निराकृत इतिविषयप्रतिपादनं ग्रन्थेन यत्करणीयं तदकरोदिति संक्षेपः ।

अथेतिहासपुराणादिवचनसहकृतोपनिषद् वचनेनसिद्धस्य परमपुरुषरूपार्थस्य

भावना और तदुभय भावना इसमें कर्म करने के लिये जो प्रयत्न किया जाता है उसको कर्मभावना कहते हैं। ब्रह्मभावना उसे कहते हैं-ईश्वरोपासना करने का जो उद्योग किया जाता है। ईश्वरोपासना मोक्षप्रद होती है, श्रीउदयनाचार्यजी ने कहा है-

'स्वर्गापवर्गयोर्मार्गमामनन्ति मनीषिणः ।

यदुपास्तिमसावत्र परमात्मा निरूप्यते ॥ इति ॥

(**अस्यार्थः**-मनीषी विद्वान् लोग जिस परमेश्वर की उपासना को स्वर्ग तथा अपवर्ग-मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं अथवा स्वर्ग की तरह सर्वाभिलषित जीवन मोक्ष तथा परमोक्ष का मार्ग बतलाते हैं उस परमपुरुष परमेश्वर का निरूपण मैं इस प्रकरण में कहता हूँ। अर्थात् जिस तरह स्वर्गादि फल को उद्देश्य करके अग्निष्टोम वाजपेयादि याग अनुष्ठान करने पर स्वर्गादिक फल कालान्तर में प्राप्त होता है उसी तरह परमात्मा की उपासना करने से सर्व दुःख निवृत्ति अनबधिक सुख प्राप्ति लक्षण फल भी प्राप्त होता है। अतः परमात्मोपासना आवश्यक है उनके लिये जो संसार से विरक्त होकर साकेत प्राप्ति की इच्छा रखते हैं।) उभय भावना उसको कहते हैं-कर्म करने का उद्योग तथा ईश्वरोपासना करने का उद्योग किया जाय इसमें सनक सनन्दन सनातन प्रभृति

कथयिष्यति 'तत्सर्वं वै हरेस्तनुः' इति । 'जगत्सर्वं शरीरं ते' इत्यादिमहर्ष्युक्तेः । अयंभावः-यद्यपि भगवानव्ययोऽजन्मानि-र्दूषणस्तथापि तस्य समस्तप्रपञ्चशरीरकतया प्रपञ्चेन सह तादात्म्यस्वीकारे न क्षतिः । आत्मशरीरयोर्धर्मसाङ्कर्यं स्वभावस्य

ग्रन्थप्रतिपाद्यस्य सिद्धिस्तदाभवेत् यद्युपनिषदां सिद्धार्थावबोधने तात्पर्यं सामर्थ्यं च भवेत् । परन्तु नैवं संभवति मीमांसके जीवति सति । मीमांसको द्विप्रकारको भाट्टः प्रभाकरश्च । तत्र प्रभाकरमते सर्वोऽपि शब्दः कार्यरूपार्थस्यैव बोधकोभवति नतु सिद्धार्थस्य वाचकः । पदे हि शक्तिरूपसंबन्धेनार्थं स्मारयित्वा शाब्दबोधं जनयति । शक्तिश्च व्यवहारादिना गृहीता भवति । तदुक्तंवृद्धैः-'शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशा-प्तवाक्याद्व्यवहारतश्च । वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः'

आदि ऋषिगण ब्रह्म भावना से संबद्ध होते हैं क्योंकि वे लोग लौकिक सकलकर्म से विरक्त हो करके सर्वदा '**आत्मानमुपासीत**' इत्यादि वाक्य प्रतिपादित परमेश्वरोपासना में ही संलग्न रहते हैं। ये ही हिरण्य गर्भ ब्रह्माजी के प्रथम मानस पुत्र गिने जाते हैं। ये लोग संसार से विरक्त हो करके सर्वदा मोक्ष के लिये ही प्रयत्न करते हैं।

इन्द्रकुबेरादिक देवगण कर्मभावना से संबद्ध रहते हैं क्योंकि ये लोग सर्वदा मेरा पद विनष्ट न हो इस बुद्धि से सर्वदा कर्म करने में ही संलग्न रहते हैं। यद्यपि देवताओं का देवतान्तर नहीं होता है इसलिये देवता को उद्देश्य करके द्रव्य त्यागादि लक्षण यागादि कर्म देवता के लिये नहीं होता है तथापि 'देवता को यागादि कर्मों में अधिकार नहीं है' यह नियम आजानेय देवों के लिये है कर्म देव के लिये नहीं हैं। एवं ब्रह्मा प्रभृतिक जीव उभय भावना से संबद्ध होते हैं क्योंकि ब्रह्मा प्रभृतिक देव अधिकारिक कहे जाते हैं अर्थात् ब्रह्मा जगदुत्पत्ति लक्षणकार्य का संचालन करने में परमेश्वर से नियुक्त किये गये हैं, यह स्वकीय शतवर्ष पर्यन्त जगत् कार्य का सम्पादन तदनन्तर श्रीरामोपासना से मुक्त हो जाते हैं यह '**सोऽहं संन्यस्तभरोहि त्वामुपास्य जगत्पतिम्**' इस श्रीमद्रामायण के ब्रह्माजी द्वारा कथित वाक्य से स्पष्ट है। प्रकृत विषय में ऐसा कहा है कि-

'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचारे।

व्यवस्य व्यवस्थितत्वादेव न भवतीति । एतादृशस्यविष्णोर्ब्रह्मणः प्रपञ्चान्तर्गतनियाम्यकोटिप्रविष्टब्रह्मादिदेवमनुष्यतिर्यगादिषु स्वेच्छयैवावतारो जायते । ब्रह्मादिका देवा भावनात्रयसंबन्धेन

एतेषु शक्तिनियामकेषु सत्सु प्रभाकरानुयायिनो व्यवहारस्यैव तथात्वं मन्यन्ते तथाहि प्रयोजकवृद्धेन 'घटमानयेति' कथितम् तच्छ्रुत्वा प्रयोज्यवृद्धेन घट आनीतः, ततः पुनर्घटं नय गामानयेति प्रयोजकबृद्धशब्दश्रवणंकृत्वाप्रयोज्यवृद्धो घटं नयति गां चानयति तत् दृष्ट्वा व्युत्पित्सुर्बालको घटानयनं घटमानयेति शब्दप्रयोज्यमवगच्छति । तत्रावापोद्वापाभ्यां घटादिपदानामानयनान्वितघटादिपदे शक्तिमवगच्छति । तव्यत्तव्यानीयरलिङ्गादिकंकार्यतावाचकंपदमिति पदमात्रं कार्यस्पमर्थमेव बोधयति ।

परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशिन्ति परंपदमिति ॥'

(**अस्यार्थः**-प्रति संचर अर्थात् प्राकृत प्रलय का समय आने पर सत्यलोक में प्राप्त सभी उपासक लोग पर अर्थात् हिरण्यगर्भ के शतवर्ष आयुष के अवसान होने पर ब्रह्मा अर्थात् हिरण्यगर्भ के साथ-साथ परमपद अर्थात् मोक्ष में प्रवेश करते हैं मुक्त हो जाते हैं हिरण्यगर्भ के साथ में ।) तो ब्रह्मादिक जगन्निर्वाह कार्य में अधिकृत होने के कारण कभी कभी तो कर्म करते हैं तथा मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से कभी परमेश्वर की उपासना करते हैं। इसप्रकार इन तीनों भावनाओं से सर्वदा युक्त जीव बद्ध कोटि में है न तु ईश्वर कोटि में हैं एतादृश इन बद्ध जीवों की उपासना करने से उपासक जीव को कल्याण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है । अपितु परिशुद्ध सर्वमल रहित परमात्मा स्वरूप उपासना व्यान कल्याणप्रद होता है । परन्तु परिशुद्ध आत्म स्वरूप मन अन्तःकरण का आलम्बन नहीं बन सकता है क्योंकि रूपस्पर्शादि रहित होने से उसका आकलन करने में मन सर्वथा असमर्थ रहता है '**यतोवाचोनिवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह**' इत्यादि श्रुतियों से विशुद्ध आत्म स्वरूप को मन से अगम्यत्व कहा गया है। इसलिये भगवान् भक्तोपकार करने के लिये '**वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे**' इत्यादि आगमोक्त प्रकार से अप्राकृत दिव्य विग्रह को धारण करते हैं एतादृश भगवान् का दिव्य विग्रह भक्तचित्त का आलम्बन तथा कल्याणकारी बनता है इसलिये वह दिव्य विग्रह शुभाश्रय कहलाता है, एतादृश शुभाश्रय दिव्य विग्रह का ध्यान करने से

कर्मपराधीनाः समस्तजगदुपकाराय भगवतो महाविष्णोः स्वेच्छयैव देवादिष्ववतार इति शुभाश्रयप्रकरणे कथितम् । यद्यपि भगवतो देहधारणरूपं जन्म भवति तथापि तदीयो देहो न प्राकृतिकः, तदुक्तम् महाभारते-'न भूतसङ्घसंस्थानो देहोस्य परमात्मनः' इति ।

न कदाचिदपि पदं सिद्धमर्थं बोधयति विध्यर्थवादमन्त्रादिवत् यथा विधिवाक्यं 'स्वर्गकामोयजेत' इत्यादिकंकार्यरूपं स्वर्गादिकमेव बोधयति नतु सिद्धमर्थं बोधयति, यतः सिद्धस्य प्रयत्नाविषयत्वात् । प्रयत्नसाध्यस्यैव कार्यत्वात् । यश्चपदार्थप्रयत्नसाध्यः स एव कार्य इति पदार्थ इति कथ्यते, यथा गमनादिक्रियापुरुषप्रयत्नसाध्यत्वात्कार्यस्येति व्यवह्रियते । यथालौकिकपदं कार्यरूपमर्थं बोधयति तथैव वैदिकोपि शब्दः कार्यरूपार्थमेव बोधयति 'लोकावगतसामर्थ्यः शब्दोपि बोधकः' इतिन्यायात् । इतिसर्वोपि शब्दः कार्यरूपार्थबोधने एव तात्पर्यवान् नतु सिद्धार्थबोधने तात्पर्यवान् ।

कल्याण होता है । इसप्रकार विष्णुपुराण में कहकर श्रीपराशर ब्रह्मर्षि ने ब्रह्मादि देवों को वद्धजीव कोटि में परिगणन किया है किन्तु ईश्वर कोटि में विष्णु की तरह परिगणन नहीं किया है। इससे सिद्ध होता है नारायणा परपर्याय श्रीसीतानाथजी ही परतत्व तथा परब्रह्म है । अन्य कोई परब्रह्म नहीं। एतदन्त ग्रन्थ से आचार्यजी ने सबपक्ष साधक प्रमाण तथा तर्कों का वर्णन करके स्वपक्ष की सिद्धि तथा अन्यमतावलम्बियों की शंकाओका निराकरण भी किया। यह सब श्रुति वाक्य के आधार पर किया गया है। एवं इतिहासपुराणादिक उपबृंहरण प्रकरणों के आधार पर स्वपक्ष का साधन तथा परमत का निराकरण किया है। इसप्रकार जगद्गुरु **श्रीरामानन्दाचार्य** श्रीरामप्रपन्नाचार्यजी योगीन्द्र ने सर्वशेषी श्रीसीतानाथजी को सर्वश्रेष्ठ परतत्व तथा परब्रह्म सिद्ध किया।

इसके अव्यवहित पूर्वप्रकरणान्त ग्रन्थ से आचार्यजी ने कहा कि उपवृंहक इतिहास पुराणों उपनिषद् के बल से सिद्ध होता है कि नारायणा पर पर्याय भगवान् श्रीसीतारामजी सर्वश्रेष्ठ तथा परब्रह्म हैं। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिस तरह लोक में व्यवहार द्वारा गृहीत शक्ति के पदमात्र को कार्यरूप अर्थबोधकत्व होता है उसी तरह वेद में भी प्रत्येक पदकार्य रूप अर्थबोध कराने में ही समर्थ हैं। '**लोकावगत**

'अजायमानो बहुधाविजायते-तस्यधीराः परिजानन्तियोनिमिति श्रुतिरपि । कर्मपराधीनानां ब्रह्मादिदेवादीनां तत्तत्कर्मानुकूल-प्रकृतिपरिणामरूपभूतसमुदायविशेषदेवमनुष्यादिशरीरप्रवेशरूपं

सिद्धः पदार्थः शब्दस्य नार्थः, ब्रह्म च सिद्धं तच्च वस्तुप्रयत्नासाध्यत्वात् । वेदश्च शब्दराशिरूप एव, ब्रह्म च सिद्धं वस्तु, नात उपनिषत् प्रतिपाद्यं संभवति । अतो ब्रह्मविचारोऽनर्थक इति प्राभाकरपूर्वपक्षं निरसितुं प्रक्रमन् प्रथमस्तदीयं पूर्वक्षमेव दर्शयितुमाह ननु पदमात्रस्य इत्यादि विध्यर्थवादमन्त्रस्य इथ्यादि, वेदोहि त्रिधाविभक्तो विधिरर्थवादोमन्त्रश्च । इमे त्रयोपि भागाः कार्यरूपार्थप्रतिपादने एव तात्पर्यवन्तः । तत्र 'स्वर्गकामोयजेत' इति विधिः, 'अज्ञातार्थज्ञापको वेदभागोविधिरिति तल्लक्षणात्, अनेन स्वर्गमुद्दिश्य यागस्य विधानात् । यागस्तथा तज्जनितोऽपूर्वोयश्चकालान्तरे साध्यं स्वर्गं साधयति, इमौद्वावपि प्रयत्नसाध्यतया कार्यरूपतया व्यवह्रियेते, एतेषां विधायकं विधिवाक्यं कार्यप्रतिपादने एव तात्पर्यवत् । तथा विधिवाक्यद्वारा

सामर्थ्यः शब्दो वेदेऽपि बोधकः' ऐसा न्याय है। इस, स्थिति में कार्य बोधकपद में ही बोधकता है तो अकार्यरूप अर्थ का बोधक जो उपनिषद् वाक्य है उससे सिद्ध ब्रह्मरूप अर्थ का बोध हो नहीं सकता है। तो ब्रह्म जिज्ञासा निरर्थक हैं ? ऐसा जो मीमांसकों का पूर्वपक्ष है उसका निराकरण करने के लिये प्रथमतः आचार्यजी पूर्वपक्ष को बतलाते हुए कहते हैं **'ननु पदमात्रस्य'** इत्यादि विधि अर्थवाद तथा मन्त्ररूप जितने पद समुदाय हैं वे सब कार्यरूप सब अर्थ का अवबोधन द्वारा ही प्रमाण्य को प्राप्त करते हैं। पदो में जो वाधकता है शक्ति हो उसका ज्ञान व्यवहार से ज्ञात होता है और व्यवहार जो है वह कार्यरूप अर्थमूलक है इसलिये कार्य ही शब्दों का अर्थ होता है। इस स्थिति में अकार्य सिद्धरूप अर्थ का बोधक जो उपनिषद् वाक्य हैं उनको सिद्ध ब्रह्मरूप अर्थ में किस तरह तात्पर्य कहा जा सकता है तथा बोधकत्व भी किस तरह से होगा ? क्योंकि अकार्यार्थावबोधक पद में शक्ति तो है नहीं इसलिये ब्रह्म जिज्ञासा निरर्थक है ? इस प्रकार से प्रभाकर का पूर्वपक्ष होता है। इसप्रकार मूल का अक्षरार्थ होता है। (अब यहां मीमांसक का भेद इनकी प्रक्रिया तथा पूर्वपक्षादिकों का विवरण किया जाता है।) अभी तक आचार्यश्री ने स्वाभिमत सिद्धान्त मत का समर्थन किया।

जन्ममुख्यभेव । सर्वेश्वरोमहाविष्णुस्तु जगदुपकाराय स्वच्छयैव कल्याणरूपेण देवादिषु बहुधाऽनेकरूपेण जायते इति धीरा एव जानन्ति ।

ब्रह्मसूत्रैः सर्वेश्वरश्रीरामस्य परत्वनिर्वचनम्

समस्तस्य जडचेतनात्मकप्रपञ्चस्याभिन्ननिमित्तोपादान कारणं

विहितयागाद्यर्थस्यस्तावकोऽर्थवादोऽन्ततः कार्यप्रतिपादने एव तात्पर्यवान् । एवं प्रयोजनसमवेतार्थस्मारको मन्त्रः । एतल्लक्षणलक्षितमन्त्रभागोप्यन्ततस्तत्तत्कार्यार्थ-प्रतिपादने एव तात्पर्यवान् भवति । इत्थं संपूर्णोऽपि वेदः कार्यप्रतिपादने एवोपयुक्तः कार्यरूपार्थे एव प्रमाणम् । सिद्धवस्तुप्रतिपादने न कस्यापि वेदस्य तात्पर्यात्, अतः सिद्धवस्तु ब्रह्मरूपार्थप्रतिपादनेनोपनिषदां नैव तात्पर्यं तत्र, उपनिषदामर्थवादे समाविष्टत्वात् तद्वाक्यं सिद्धवस्तुविषये प्रमाणमेव न भवतीति न ब्रह्मोप-निषत्प्रमाणगम्यमिति, उपनिषदां प्रामाण्यं स्वीकृत्य यो ब्रह्मविचारः क्रियते स सर्वोपि विचारोऽरण्यरोदनवन्निरर्थक एवेति प्राभाकरस्य पूर्वपक्षाभिप्रायः ।

प्राभाकरोहि शब्दस्य वृद्धव्यवहारादेव शक्तिग्रहः कार्यार्थे एव भवति नतु

परन्तु कार्यमात्र का बोधक करने में शब्द का तात्पर्य है किन्तु सिद्धार्थ का प्रतिपादन शब्द नहीं कराता है 'ऐसा जो मीमांसक का पक्ष है उसका खण्डन करने के लिये अग्रिम ग्रन्थ का उपक्रम करते हैं। इस मीमांसक के मत का खण्डन करने के बाद में ही वेदान्त मत स्थिर हो सकता है, तो उस पक्ष का खण्डन तो आगे करेंगे परन्तु प्रथमतः मीमांसकों के मत को बतलाते हैं। मीमांसकों में प्रसिद्ध दो भेद प्रचलित हैं। भाट्ट तथा प्राभाकर इसमें कुमारिल भट्ट के अनुयायी लोग भाट्ट कहलाते हैं। इसीको गुरुमत भी कहते हैं। प्रकृत में जो पूर्वपक्ष है वह गुरुमत प्राभाकर का है। प्राभाकर कहते हैं कि वेदान्ती लोग स्वीकार करते हैं कि उपनिषद् वाक्य ब्रह्म का प्रतिपादन करनें में प्रवृत्त हैं उपनिषदों का प्रधान प्रतिपाद्य अर्थ ब्रह्म है। परन्तु यह मान्यता ठीक नहीं है क्योंकि परब्रह्म का प्रतिपादन करने में वेदान्त का तात्पर्य नहीं हो सकता है क्योंकि लोक में प्रयुज्य मान पद समुदाय कर्तव्य-कार्य अर्थ के प्रपिपादन करने में ही तात्पर्य रखते हैं

यः परब्रह्मपरमपुरुषः श्रीसीताकान्तस्ततोप्यन्यत् किञ्चि त्तत्वान्तरं परं श्रेष्ठं चेतिपरमतम् 'परमतः सेतून्मानसंबन्धभेदव्य पदेशेभ्यः' (ब्र.सू.३।२।३०) इत्यत्राशङ्क्य 'सामान्यात्तु' (३।२।३१)

सिद्धार्थे इति वेदान्तवाक्यं न सिद्धब्रह्मरूपार्थबोधने समर्थमिति ब्रह्मजिज्ञासा-निरर्थिकेति शङ्कितवान् । तदीयं मतं निराकृत्य कार्यार्थवत् सिद्धार्थप्रतिपदकपदस्यापि शक्तिग्रहो जायते ततश्च तदर्थोबोधनमपि भवत्येवेति न निरर्थिका ब्रह्मजिज्ञासेति दर्शयितुं प्रक्रमते तदत्र इत्यादि । प्रकारान्तरेणापि शक्त्यवधारणस्य संभवादिति । वृद्धोक्ताः शक्तिग्राहकाः सन्ति बहवस्तेष्वन्यतमेन पदानां शक्तिग्रहो निर्णीतो भवति तथाहि

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्यशेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ।।इति।।

तत्र धातुप्रकृतिप्रत्ययादीनां शक्तिग्रहोभवति तत्र धातवोभुवादिकाः प्रकृतयः

वेद में भी यही प्रकार मानना चाहिये । **'लोकावगतसामर्थ्यः शब्दो वेदेऽपि बोधकः'** ऐसा न्याय है । लोक में दो प्रकार के अर्थ होते हैं । सिद्ध तथा कार्य, जो पदार्थ प्रथमतः सिद्ध हो तात्कालिक प्रयत्न का विषय नहीं हो उसको सिद्ध कहते हैं तथा जो पदार्थ प्रयत्न संपाद्य हो उसे कहते हैं कार्य-यथा गमनादि क्रिया तथा स्वर्गादिक । सभी शब्द कार्य को बतलाने में ही तात्पर्य रखते, हैं किन्तु सिद्ध वस्तु को बतलाने में किसी भी शब्द का तात्पर्य नहीं होता है । ब्रह्म सिद्ध वस्तु है क्योंकि ब्रह्म नित्य सिद्ध हैं । वेद शब्द समुदाय रूप हैं सिद्ध पदार्थ ब्रह्म, उपनिषद् का प्रतिपाद्य अर्थ नहीं हो सकता है । इस स्थिति में ब्रह्म को वेदान्त प्रतिपाद्य समझ करके जो ब्रह्म विचार करते हैं वह निष्फल है क्योंकि सिद्ध पदार्थ का प्रतिपादन करने में शब्द का तात्पर्य नहीं होता है ।

वेद वाक्य तीन प्रकार के होते हैं-विधि, अर्थवाद, तथा मन्त्र । इसमें अज्ञातार्थ ज्ञापक वेद भाग को विधि कहते हैं ये स्वर्ग को प्राप्त करने के लिये यज्ञ का विधान करते हैं । याग तथा याग से कालान्तर में होनेवाला जो स्वर्ग उसके कारण अपूर्व ये दोनों प्रयत्न साध्य होने से कार्य कहलाते हैं, एतादृश कार्य का बोधक विधि वाक्य होता हैं । एवं विधिवाक्य के द्वारा प्रतिपादित जो याग तथा स्वर्गादिक इन सबका स्तावक (तारीफ

बुद्ध्यर्थः पादवत् (३।२।३२) 'स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत्' (३।२।३३) 'उपपत्तेश्च' (३।२।३४) 'तथान्य प्रतिषेधात्' (३।२।३५) अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः' (३।२।३६) सूत्रैः सूत्रकारः स्वयमेवनिकारणमकरोत् ॥

रामादिकाः तथा प्रत्ययास्तिवादिकाः । तत्र व्याकरणेनैतेषाम् शक्तिग्रहस्तत्तदर्थेषु भवति विनैवव्यवहारम् । उपमानात्-गवयादिपदानां गो सदृशपिण्डेषु । कोशात्-शुक्लादिपदानां शुक्लगुणे । आप्तवाक्यात्-'कोकिलः पिकपदवाच्यः' अत्र पिकादिपदानां कोकिलपक्षिविशेषे शक्तिग्रहः प्रामाणिकवाक्यादेव । व्यवहारतः-शक्तिग्रहो भवति घटमानयेत्यादिवृद्धव्यवहारात् तत्रापि प्रथमतः कार्यान्विते घटपदस्य शक्तिग्रहेऽपि लाघवेन पश्चाच् घटपदस्य घटत्वावच्छिन्नमात्रे एव शक्तिग्रहः । वाक्यशेषात् शक्तिग्रहः 'यवमयश्चरुर्भवतीत्यत्र अथान्या ओषधयोम्लायन्तेऽथैते मोदमानास्तिष्ठन्ति, वसन्ते सर्वसस्यानां जायन्ते यत्र शातनम् । मोदमानाश्चतिष्ठन्ति

करनेवाला) जो अर्थवाद भाग है वह भी अन्ततः कार्यरूप अर्थ में ही तात्पर्य रखता है । एवं अनुष्ठान के अन्तर्गत याग तथा देवता का स्मारक जो मन्त्र भाग है वह भी अन्ततोगत्वा कार्यरूप अर्थ के प्रतिपादन करने में ही तात्पर्य रखता है **'प्रयोग समवेतार्थस्मारका मन्त्राः'** (प्रयोग अनुष्ठान में आगत जो द्रव्य है देवतादिक अर्थ है उन सबका स्मरण करानेवाला जो वेदभाग है उसको मन्त्र कहते हैं ।) एतादृश मन्त्र भाग भी अनुष्ठान में आनेवाले याग तथा तत्तत् देवता तत्प्रभृति अर्थों का स्मारक होने से अन्ततः कार्य बोधन में ही तात्पर्य रखनेवाले होते हैं । इस तरह समस्त शब्द राशिरूप वेद कार्यरूप अर्थ के प्रतिपादन करने में ही सर्वदा तात्पर्य रखते हैं इसलिये कार्य विषय में ही वेद प्रामाणिक है, सिद्ध वस्तु का प्रतिपादन करने में किसी भी शब्द का तात्पर्य नहीं है । विधि अर्थ वादादिक तो किसी भी प्रकार से सिद्धार्थ प्रतिपादक नहीं बन सकता है । ब्रह्म सिद्धार्थ है उसके प्रतिपादन करने में उपनिषद् का भी तात्पर्य नहीं हो सकता है क्योंकि उपनिषद् आखिर अर्थ वाद में अन्तर्गत है इसलिये उपनिषद् ब्रह्म में प्रमाण नहीं है तब ब्रह्म को औपनिषत्क समझ करके उपनिषद् के द्वारा ब्रह्म विचार करते हैं यह निरर्थक है ।

ॐ मनुस्मृतिनाऽपिश्रीरामस्यपरत्वनिर्वचनम् ॐ

मनुस्मृतौ 'प्रादुरासीत्तमोनुदः, सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । अप एव ससर्जादौतासु बीजमवासृजत् । तस्मिन् जज्ञेस्वयंब्रह्म' इत्यादि

यवाः कणिशशालिनः' इति । वाक्यशेषाद्यवपदस्य दीर्घशूकविशेषे शक्तिः कङ्गौतु यवपदस्यम्लेच्छानां प्रयोगः । विवरणादपि शक्तिग्रहो जायते यथा पचतीत्यस्य पाकं करोतीत्यनेन विवरणात् करोतेर्यत्नार्थकत्वकल्पितं भवति । सिद्धपदसान्निध्यादपि शक्तिग्रहो भवति यथा 'इह सहकारतरौमधुरं पिकोरौति' अत्र सहकारतरुमधुरंरौतीति प्रतिद्धपदसंनिधानेनपिकपदस्य कोकिले विलक्षणसुमधुरकर्तरिशक्तिग्रहो जायते । शक्तिग्राहकेष्वन्यतमस्यापि कारणस्य यत्र समबधानं तत्र पदं शक्ति स्थिरीकरोत्येवेति तत्पदं सिद्धार्थकं साध्यार्थकं वा भवतु तत्र न कश्चिद्विशेष इति । चेष्टादयोऽपिशक्तिमुद्बोधयन्त्यवेति चेष्टादितोपि तत्सिद्धिर्भवत्येवेति प्राचीनाः । कार्यबोधे यथा चेष्टा लिङ्गं हर्षादयस्तथा । सिद्धबोधेऽर्थवत्तैवं शास्त्रत्वं हितशासनात् ।

तस्मादाचार्यपादोऽपि चेष्टादिना शक्तिग्रहं दर्शयितुं प्राह तथाहि इत्यादि, **कथं**

वेदान्ती का पूर्वपक्ष–वेदान्ती लोग मीमांसक से पूछते हैं कि आपने जो यह मान लिया है कि सभी शब्द कार्य को बतलाने में तात्पर्य रखते हैं। किन्तु सिद्ध पदार्थ को बतलाने में तात्पर्य नहीं रखते हैं इसमें क्या प्रमाण है ? इस प्रश्न के उत्तर में प्राभाकर कहते हैं कि प्रत्येक शब्द किसी न किसी अर्थ को बतलाने में सामर्थ्य रखते हैं इस सामर्थ्य विशेष का नाम है शक्ति अर्थात् पदप्रतियोगिक अर्थानुयोगिक सम्बन्ध पद में शक्ति रहती है अर्थ विषयक इसलिये पदशक्त कहलाता है तथा अर्थ शक्य कहलाता है, इसी शक्ति को मुख्यावृत्ति कहते हैं। यद्यपि लक्षणा के द्वारा ही पद से अर्थ का स्मरण होता है तथापि लक्षण को जघन्य वृत्ति कहते हैं। पदशक्ति लक्षणा अन्यतर सम्बन्ध से अर्थ को समझाता है इसलिये शक्ति को ही पदप्रतियोगिक अर्थानुयोगिक सामर्थ्य शब्द से व्यवहार होता है । यह सामर्थ्य ही शब्द की शक्ति से कहा जाता है। **(अस्मात्पदादयमर्थो बोद्धव्य इतीच्छैव शक्तिः)** घटाद्यमुक शब्द अमुक अर्थ को समझाने में शक्ति रखता है इस ज्ञान को शक्तिग्रह कहा जाता है, जो व्यक्ति पद की एतादृश शक्ति को जानता है उसी व्यक्ति को उस उस शब्द से उस अर्थ का बोध होता

स्थलेहिरण्यगर्भस्य ब्रह्मण उत्पत्तिश्रवमात्तस्य हिरण्यगर्भब्रह्मणो जीवत्वमेव निश्चितं भवति । तथा 'अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः

कारणान्तरेण सिद्धपदादपि शक्तिग्रह इति दर्शयति कश्चिन्मौनीमुनिरित्यादि **अस्ति कश्चिन्मठाधीशोमौनीमुनिः । तं कश्चित् सेवकः समागत्य पृच्छति यत् कोष्ठागारिक महोदयः पृच्छति किं कमण्डलुः क्वविद्यते समभ्यागतो याचते तम् तदुपश्रुत्य मौनी हस्तचेष्टादिना विज्ञापयति यत् अमुकगृहकोणे कमण्डलुर्विद्यते इति तं विज्ञाप्य । ततः सभृत्यो मौनिन उपर्युक्तवाक्यं (अमुकगृहकोणेऽवस्थितः कमण्डलुरिति वाक्यम्) ज्ञात्वा कोष्ठागारिकाय गत्वा कथयति यदमुकगृहकोणे विद्यतेकमण्डलुरिति । आदित आरभ्य एतत्सर्वंपश्यन् कश्चित् साधुसंप्रदायानभिज्ञः सेवकस्य 'अमुकगृहकोणेऽवस्थितः कमण्डलुरिति शब्दं श्रुत्वा जानाति यदयं मौनीहस्तचेष्टयेदमसूचयत् यत् अमुकगृहकोणे कमण्डलुरिति । अमुमेवार्थं दर्शयति सेवकः । सेवकमुखान्निर्गतः शब्दः उपर्युक्तमेवार्थं विज्ञापयतीति । अनेन प्रकारेण**

है और जो व्यक्ति पूर्वोक्त शक्ति को नहीं जानता है उसको उस शब्द का हजारों वार श्रवण होने पर भी अर्थावबोध नहीं होता है। पदमात्र में अर्थात् सभी शब्दों में एतादृश शक्ति रहती है उसको किस प्रकार से जाना जा सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में प्राभाकर कहते हैं कि घटपटादि पदार्थों का आनयनादि कार्य की प्रवृत्ति को व्यवहार को देख करके शब्द शक्ति का निश्चय किया जाता है–तथापि प्रयोजन वृद्ध ने प्रयोज्य वृद्ध से कहा– **'गामानय'** गाय को लाओ, इस बात का श्रवण करके प्रयोज्य वृद्ध गाय को लाता है तब पुनः प्रयोजन वृद्ध ने कहा कि **'गां नय'** गाय को लेजाओ इसप्रकार से प्रयोज्य वृद्ध के गवानयनार्थ प्रवृत्ति गाय के लाने की प्रवृत्ति तथा गाय को ले जाने की प्रवृत्ति को देख करके समीप में बैठा हुआ बालक अपने मन में समझता है कि प्रयोज्य वृद्ध की गाय लाने की जो प्रवृत्ति हुई है वह कार्यता ज्ञान से हुई है– 'हमारा गाय लाना कर्तव्य है' एतादृश ज्ञान ही कार्यता ज्ञान है, इस ज्ञान के कारण मध्यम वृद्ध गवानय में प्रवृत्त हुआ। प्रयोज्य वृद्ध का जो एतादृश कार्यता ज्ञान है वह प्रयोजक वृद्ध के **'गामानय'** इस वाक्य से उत्पन्न हुआ है क्योंकि प्रयोजक वृद्ध का **'गामानय'** इस वाक्य के श्रवणोत्तर काल में ही प्रयोज्य वृद्ध की गवानयन में प्रवृत्ति हुई है इसलिये

स्मृतः । तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते' इत्यादिना च परमपुरुषत्वं श्रीरामस्यैवसूचितम् 'संक्षिप्यहिपुरालोकान् मायया स्वयमेव हि । महार्णवे शयानोऽप्सु मां त्वं पूर्वमजीजनः । पद्मेदिव्येऽर्कसंकाशेनाभ्यामुत्पाद्य मामपि । प्राजापत्यं त्वया कर्म

साधुभाषानभिज्ञः पुरुषः शब्दशक्तिं जानात्येव । अत्रोदाहरणे वर्णितः कमण्डलुः सिद्ध एव न साध्य, तद्विषये कमण्डलुशब्दस्य शक्तिं भाषानभिज्ञोऽपि जानात्येव अनेन प्रकारेण सिद्धार्थेऽपि पदे शब्दज्ञायते एवेति वेदान्तवाक्यमपि सिद्धात्मकं ब्रह्मरूपार्थं बोधयति तेन तद्बोधोभवत्येवेति नोपनिषदां वैयर्थ्यं ब्रह्मविचारो वा निरर्थको न भवत्यपितु सर्वथैवावश्यक एवेति संक्षेपः । एतस्मिन् विषये विशेषविचारो जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्यनिर्मितप्राभाकरमतनिरासविवरणे द्रष्टव्यो दिङ्मात्र-मिहदर्शितं ग्रन्थगौरवभिया ।

लौकिकवैदिकसर्वपदानां कार्यार्थे एव व्युत्पत्तिरिति प्राभाकरमतं प्रथम

'**गामानय**' यह वाक्य ही इसके कार्यता ज्ञान का कारण हुई है। इससे सिद्ध होता है कि वह '**गामानय**' वाक्य गवानयरूप कार्य का द्योतक है उसको समझाने में इस पद की शक्ति है। इसप्रकार उस बालक को सर्वप्रथम प्रवृत्तिरूप व्यवहार को देख करके ही निश्चय होता है कि शब्द कार्य को बतलाने में प्रयुक्त होता है यानी शब्द का कार्य को बतलाने में तात्पर्य है। इसी तरह प्रत्येक शब्द का शक्ति ग्रह व्यवहार से होता है तथा कार्य ही पदार्थ है, सिद्ध रूपार्थ किसी पद का अर्थ नहीं है। तब उपनिषद् का तात्पर्य ब्रह्म में कैसे होगा ? क्योंकि वह ब्रह्म कार्य नहीं है। वह तो अकार्य है। इस स्थिति में ब्रह्म को उपनिषद् प्रतिपाद्य मान करके जो ब्रह्म विचार वेदान्ती करते हैं वह सर्वथा निरर्थक है तथा अनुचित है ? ऐसा पूर्वपक्ष प्रभाकर का है।

जितने पद हैं उनमें वृद्ध व्यवहार के बल से साध्य अर्थ का प्रतिपादन करने का ही सामर्थ्य है तो उपनिषद् वाक्य सिद्धार्थ बोधन में सामर्थ्य नहीं रखते है, अतः सिद्धार्थ ब्रह्म बतलानेवाले वेदान्त वाक्य अनर्थक हैं उन वाक्यों के द्वारा जो ब्रह्मविचार करते हैं वेदान्ती वह निरर्थक है, इसप्रकार का जो प्रभाकर का पूर्वपक्ष था–उसका निराकरण

मयि सर्वं निवेशितम् । (श्रीमद्रामायणे ७।१०४-४।७) इत्यादिरूपेणमहर्ष्युक्तेः ।

प्रकरणेन निराकृत्य पुनरप्युदाहरणान्तरेण सर्वपदानां सिद्धार्थेपि व्युत्पत्तिर्लोकसिद्धेति द्वितीयोदाहरणेन साधयितुमुपक्रमते अपि च दृश्यते लोके इत्यादि । अयंभावः लोके दृश्यते यत् मातृपितृप्रभृतिको बन्धुगणो बालकमङ्गुलीनिर्देशपूर्वकमयं ते पिताभ्राता मातुल इत्यङ्गुलीनिर्देशपूर्वकं शिक्षयति, अनेनक्रमेण स बालकोऽङ्गुलीनिर्देशेन पित्रादिशब्देन पिताप्रभृतिकं बन्धुगणं जानाति । यथोक्तरूपेण शिक्षितो बालः पश्चादङ्गुलीनिर्देशमन्तरेणापि तत्तच्छब्दैरनायासेन तत्तदर्थं जानात्येव तादृशो जायमानो बोधः शब्दार्थयोर्बोध्यबोधकभावमूलक एव नान्यमूलक इत्यपि जानाति च तयोः संबन्धः स्वाभाविको नित्यसिद्ध एव । न च सङ्केतात् शब्देनार्थबोधः सर्वत्र सङ्केतयितुरभावात् । तस्मात् बोध्यबोधकभावात्मकसंबन्धनिबन्धन एव शब्दार्थबोध

करके स्वमत को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं–'**तदत्रनिरूप्यते**' इत्यादि मीमांसकों के पूर्वपक्ष का उत्तर देते हैं अर्थात् सिद्धान्त के अनुसार सिद्ध वस्तु में भी शक्ति का प्रतिपादन करते हैं–यदि वृद्ध व्यवहारेत्यादि, यदि केवल वृद्ध व्यवहार से ही पदों का अर्थ में शक्ति का निश्चय होता है ऐसा एकान्त नियम हो तो उपनिषद् वाक्य वेदान्त वाक्य को सिद्ध ब्रह्मरूप अर्थ के बोधजनकत्व न होगा ? परन्तु यह एकान्ततः नियम नहीं है क्योंकि व्यवहारातिरिक्त प्रकार से भी शक्ति ग्रह होता है ऐसा पूर्वाचार्यों ने कहा है । इसमें प्रकारन्तर का दिग्दर्शन कराने के लिये कहते हैं–'**तथाहि**' इत्यादि । पद सिद्धार्थ का भी बोधक होता है । उस बात को एक उदाहरण द्वारा बतलाते हैं–एक कोई मठाधीश अपने मठ में मौन धारण करके निवास करते हैं । किसी समय में हजुरिया भृत्य आ करके मौनी बाबा से पूछता है कि–कोठारीजी पूछते हैं कि काशी से जो कमण्डल मंगाया गया है वह कहां है ? इसप्रकार हजुरिया की बात को सुनकर मौनी बाबा ने हाथ के इशारे से बतलाया कि अमुक घर के अमुक कोने में कमण्डल रखा है, ऐसा कोठारीजी से कह दो । उसके बाद वह हजुरिया सेवक मौनी की हस्तचेष्टा 'अमुक घर में कमण्डलु अवस्थित हैं' इस बात को समझ कर कोठारी के पास में जा करके कहता है कि 'अमुकस्थानमेंकमण्डलु है' शुरु से लेकर इस घटना को देखनेवाला कोई

ॐ श्रीरामायणविष्णुपुराणवचसाब्रह्मादीनांजीवत्वनिर्वचनम् ॐ

अपि च विष्णुपुराणे कमलासनादिदेवानां भावनात्रयान्वयेनाशुद्धत्वान्नते शुभाश्रया इति ते जीवा एवेतिकथितम् । इति तदनुध्यानं न क्षेमायेति न तेध्यातव्या 'सोऽहं संन्यस्तभारोहि

इति । अनेनोदाहरणेनेदमायाति यत् उपर्युक्तः सर्वोऽपि शब्दः सिद्धार्थकोऽपि तत्तत्स्वकीयार्थं बोधकशक्त्या बोधयत्येव । अनेन प्रकारेण पित्रादिभिः शिक्षितो बालकः सर्वस्य शब्दस्य तत्तदर्थं ज्ञात्वा स्वयमेव सर्वमपि शब्दं प्रयुनक्ति । तथेदमपि जानाति यत् अनेन प्रकारेण सर्वमपि पदजातं स्वकीयार्थस्य वाचकं भवति तथा पदसमुदायात्मकं वाक्यमपि परस्परसंबन्धरूपवाक्यर्थं बोधयति । एवं सिद्धमाता पित्रादिबोधकवाक्यं सिद्धार्थं प्रतिपादयति, तथा कार्यार्थबोधनाय प्रयुज्यमानं पदं वाक्यं वा कार्यरूपमर्थं प्रतिपादयति । यथा कार्यार्थबोधकंपदं कार्यरूपमर्थं बोधयति तादृशपदपदार्थयोर्बोधकसंबन्धबलात् तथैव सिद्धार्थबोधकमातापित्रादिबोधकपदं तादृशसंबन्धबलाद् बोधयति मातृपित्रादिरूपमर्थं बोध्यबोधकसंबन्धस्य

तत्रत्य भाषा के अज्ञात पुरुष हजुरिया के उस शब्द को सुन करके समझ लेता है कि मौनी महात्मा ने हस्तचेष्टा व्यापार से जो सूचित किया था कि 'अमुक घर में कमण्डल है' इसी अर्थ को यह हजुरिया बतला रहा है। नौकर-भृत्य के वाक्य का यही अर्थ है कि 'इस घर में कमण्डल है। उपर्युक्त प्रकार से वह भाषानभिज्ञ पुरुष भी कमण्डलु शब्द से जलाहरकपात्र विशेष कमण्डलु रूप अर्थ को जान जाता है-समझ लेता है। इस दृष्टान्त में दण्ड कमण्डलु प्रभृतिक जो शब्द हैं वे सब सिद्ध वस्तु हैं तात्कालिक प्रयत्न संपाद्य साध्य है, इसके पहले से ही दण्ड कमण्डलु पदार्थ सिद्ध हो गया है। एतादृश सिद्ध वस्तु के कमण्डलु के विषय में कमण्डलु वगैरह शब्दों की शक्ति को वह भाषानभिज्ञ पुरुष भी समझ लेता है।

इसी तरह प्रकृत में यद्यपि **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** इत्यादि वाक्य घटक जो सत्यादिक पद हैं वे सब सिद्धार्थक हैं तथापि उन शब्दों का स्वस्व में रहनेवाली बोधकता शक्ति है तादृश शक्ति के द्वारा उन शब्दों से सिद्ध पदार्थ भी ब्रह्मरूप अर्थ

त्वामुयास्य जहत्यतिम्' इतिश्रीरामायणीयब्रह्मोक्त्या तथा 'शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये' इतिवशिष्ठसंहितोक्तदिशा सर्वेश्वरश्रीसीतारामएवोपासनीयः स्वक्षेमकामैरितिदिक् ।

विद्यमानत्वात्, उपर्युक्तोदाहरणेन सिद्धादिपदानामपि बोधकतायाः समर्थनात् ।

एवं च प्रथमतः शब्दस्य शक्तिज्ञानं कार्यविषये एव भवति । सर्वशब्दानां कार्यविषये एव तात्पर्यात् । तथा समस्तस्यापि विध्यर्थबादमन्त्ररूपस्य प्रतिपाद्यो विषयः कार्यरूपार्थ एवेति यन्मीमासकमतं निर्मूलत्वादनारणीयमेव । यतः सिद्धवस्तुन्यपियथोक्तोदाहरणेन शक्तिर्ज्ञायेत, सिद्धवस्तुबोधने शब्दस्य तात्पर्यमपि संभवेदेव, सिद्धवस्तुब्रह्मापि वेदस्य प्रतिपाद्यः प्रधानोऽर्थः संभवत्येव युक्तेः पूर्वमेव प्रदर्शनादिति प्रभाकरीयंमतं सर्वथैवानादरणीयमेव । सिद्धवस्तुनि शब्दस्य बोधकताशक्तिद्वितीयाद्युदाहरणेन ज्ञातुं शक्यते एव । वेदान्तवाक्यानि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म इत्यादिकानि तथा यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादिकानि सर्वजगत्कारणानन्तकल्याणसागरसिद्धवस्तु ब्रह्म बोधने तात्पर्यवन्ति भवन्त्येव ।

समझ में आ जाता है। इसलिये साध्य वस्तु में ही तत्तत् पदों की शक्ती होती है और तादृश शक्ति के द्वारा ही तत्तत् पद स्वकीय अर्थ को समझाने के लिये तात्पर्य रखते हैं ऐसा जो मीमांसक मानते हैं वह निर्मूलक है, वह अपने घर की ही चर्चा है। विद्वत् गोष्ठी का विषय नहीं है।

प्रभाकर के मत से जिस तरह पदों को कार्यरूप अर्थ में शक्तिग्रह होता है उसी तरह सिद्ध पद को भी सिद्धार्थ बोधन में भी तात्पर्य है तथा सिद्धार्थ बोधकत्व भी शक्ति द्वारा है । इस बात को प्रथम प्रकरण में एक उदाहरण से बतला करके अद्वितीय उदाहरण से भी पदों का सिद्धार्थ बोधकत्व हो सकता है, होता है, इस बात को बतलाने के लिये द्वितीय उदाहरण का प्रदर्शन करने के लिये उपक्रम करते हैं-**'अपि च दृश्यते लोके'** इत्यादि । द्वितीय उदाहरण से सिद्ध वस्तु में पदों की व्युत्पत्ति का प्रतिपादन किया जाता है। लोक में देखने में आता है कि माता पिता प्रभृति बन्धुगण अंगुली से प्रत्येक वस्तु का निर्देश करके कहते हैं कि यह तुम्हारे पिता हैं, भाई हैं, चाचा हैं, यह घोड़ा है इस प्रकार से बन्धुगण अंगुली निर्देश करके बालक को सिखाते हैं, इस तरह

ॐ शब्दानांसिद्धवस्तुपरत्वाभावेमीमांसकपूर्वपक्षः ॐ

ननु पदमात्रस्य विध्यर्थवादमन्त्रादिरूपस्य कार्यद्वारेणैव

युक्तिभ्यां सिद्धार्थेऽपि पदानां शक्तिरिति कथितम्-इदानीम्'तुष्यत् दुर्जनः' इति न्यायमनुसृत्य कार्यार्थे एव शक्तिरिति स्वीकृत्योत्तरं दादति । तत्र स्वल्पकालंयावत् प्रतिपक्षं स्वीकृत्यैवोत्तरं देयमिति तुष्यतु इति न्यायस्याभिप्रायः अहमपि भवन्मतमेव स्वीकरोमि कार्यार्थे एव शक्तिः पदानां नतु सिद्धार्थे तथापि सिद्धब्रह्मविचारः समुपयुक्त एव न तु निरर्थक इति ।

परब्रह्मप्राप्तिकामनावता परं ब्रह्मोपासितव्यम् मीमांसको हि विधायक लिङ्लोट्तव्यादिशब्दानांकार्यरूप एवार्थ इति स्वीकरोति । वेदान्ते प्रतिपाद्यकार्यस्य विषय उपासनमेव उपासनं तु विषयमाश्रित्यैव कार्यमिति कथ्यते, तादृशकार्यरूपस्योपासनस्याधिकारीपरब्रह्मप्राप्तिकामनावान् साधकः, 'स्वर्गकामोयजेत'

से बन्धुओं से शिक्षित बालक पश्चात् अंगुली निर्देश के बिना भी प्रयुज्यमान यह मां है, यह पिता है, इन पदों से माता पिता रूप सिद्ध अर्थ को सरलतापूर्वक समझ लेता है।

इसके वाद वह बालक अपने मन में विचार करता है कि माता पितादि शब्दों का श्रवण होने पर मुझको जो माता-पितादि अर्थों का ज्ञान हो जाता है इसमें क्या कारण है ? कारण तो कुछ अवश्य होना चाहिये क्योंकि कोई भी कार्य कारण के बिना हो नहीं सकता है ? इसके बाद वह बालक अपने मनमें विचार करता है कि इसमें कारण यही हो सकता है कि शब्द तथा उन शब्दों के वाच्य अर्थों में स्वभाव से बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है । इसमें अर्थ कम्बु ग्रीवादि महत्वरूप बोध्य है तथा घटादि शब्द बोधक है अर्थात् अर्थ में बोध्य होने की योग्यता है तथा पद में बोधक होने की योग्यता-क्षमता है । इसमें विपरीत नहीं होता है अर्थात् पद हों बोध्य तथा अर्थ हों बोधक ऐसा नहीं होता है क्योंकि अनादिकाल से यह नियम देखने में आ रहा है कि अर्थ को समझाने के लिये पद का प्रयोग किया जाता है, नतु शब्द को समझाने के लिये अर्थ का प्रयोग किया जाता है इसलिये शक्ति का प्रतियोगी विशेषण पदवाचक कहलाता है तथा शक्ति अनुयोगी अधिकरण अर्थ वाच्य कह लाता है । इसमें यह बोध्य बोधक भावरूप सबन्ध स्वाभाविक अकृत्रिम रूप से रहता है । इसी सम्बन्धक को

प्रामाण्यं निर्वाह्यम् । पदस्य च बोधकता शक्तेर्निश्चयो व्यवहाराज्जायते, व्यवहारश्च कार्यज्ञानमूलक इति कार्यात्मक एव शब्दस्यार्थः । ततश्चाकार्यरूपार्थावबोधकोपनिषदां कथं ब्रह्मणि

कार्येऽथवाखलु । वेदान्ति ब्रह्म जिज्ञासा सफलैव न निष्फला ॥४२॥' इत्यन्तप्रबन्धेन जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्यसारस्वतसम्राट्महाभागेन प्राभाकरमतनिसारेऽतोधिकार्थिभिस्तत्रैवावलोकनीयम् । तस्मात् ब्रह्मज्ञानाय वेदान्तवाक्यविचारपूर्वको ब्रह्मविचार आवश्यक एवेतिदिक् ।

यथा पदानां कार्यार्थे शक्तिर्भवति तेन शक्तिसंबन्धेनार्थबोधकता च भवति तथैव सिद्धपदानां लौकिकवैदिकानां सिद्धार्थे शक्तिग्रहो जायतेऽर्थबोधकतापि भवतीति प्रमाणयुक्तिद्वारापूर्वपूर्वतरप्रकरणे प्रसाध्य संप्रति 'तुष्यतु दुर्जनः' इति न्यायमनुसृत्यकार्यार्थमात्रे एव पदशक्तिरित्युपगम्यापि वेदान्तपदानामर्थबोधकत्वं

अभिव्यक्त करने केलिये (सिखाने के लिये) माता-पिता प्रभृति बान्धव व्यक्तियों ने अंगुली के द्वारा तत्तत् पदार्थ को बतला करके उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग करके शिक्षित किया है । शब्दार्थ का यह बोध्यबोधक भाव सम्बन्ध नित्य सिद्ध है, यहां संकेत के बल से यह बोध्य बोधकभाव सम्बन्ध अभिव्यक्त नहीं होता है । **'एकादशेऽहनि पिता नाम कुर्यात्'** इस नियम से किसी नवजात शिशु का नामकरण संस्कार के समय में पिता ऐसा संकेत करता है कि इस बालक का अमुक देवदत्तादिक नाम है उस स्थल में वह नाम देवदत्तादिक संकेत के बल से उस शिशु का बोधक होता है। प्रकृत में ऐसा नहीं है क्योंकि इस अर्थ में अमुक शब्द का संकेत करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है इसलिये संकेत के अनुसार यह शब्द बोध कराता नहीं है इसमें तो साहजिक बोध्य बोध्यकभाव सम्बन्ध विद्यमान रहता है। पद तथा पदार्थों में बोध्य बोधकभाव सम्बन्ध से भिन्न कोई दूसरा कार्यकारणभावादि सम्बन्ध सर्वथा नहीं रहता है। पद पदार्थ में इसी बोध्य बोधकभाव सम्बन्ध को बतलाने के लिये माता पितादिक बन्धु परिवारों ने अंगुली निर्देशादिक प्रयास-परिश्रम को किया है । इस तरह पूर्वकथित विचार करके वह बालक मातृ-पितृ प्रभृतिक शब्दों में बोधकत्व शक्ति को समझ लेता है ।

तात्पर्यं कथं वा बोधकत्वमकार्ये शक्तेरभावादिति ब्रह्मजिज्ञा-साऽनर्थिकैवभवतीति प्राभाकरीयः पूर्वपक्षः ।

इत्यादिविधिवाक्यस्यतात्पर्यं स्वर्गात्मकफलेऽपि, अन्यथा स्वर्गोद्देशेनयागविधान मेवाशक्यंभवेत । तादृशंफलंसाध्यंवासिद्धवाभवतु सिद्धात्मकफलेऽपि 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिविधायकवाक्यानां तात्पर्यस्यस्वीकारात् । यतो यदि विधायकवाक्यानांफले तात्पर्यं न भवेत्तदा स्वर्गादिकं फलं प्रमाणसिद्धं न स्यात् तादृशफले विधिवाक्यातिरिक्तप्रमाणस्याभावेन विधिवाक्यस्यापि तत्र फलेऽप्रमाणत्वे निष्प्रमाणकमेव सर्वत्र तादृशं फलं स्वर्गादिकमापतेत् । ततश्चाप्रामाणिकफललिप्सूनां कृते अप्रामाणिकफलबिधायकसाधनस्य विधानमप्यसंङ्गतं भवेत् । अतः एव पूर्वमीमांसको विधानस्य सार्थक्यं कर्तुं विधिवाक्यानां स्वर्गादिफलेष्वपि तात्पर्यं स्वीकृतवान् । तस्मात् विधिवाक्यस्य स्वर्गादिफले यथा तात्पर्यं तथा वेदान्तवाक्यस्य 'परब्रह्मप्राप्ति कामोब्रह्मविद्यादित्यस्यापि तात्पर्यं ब्रह्मणि स्वीकर्तव्यमेवेति ।

इस द्वितीय उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि पूर्वकथित मातृ-पितृ घटपटादिक शब्द सिद्ध वस्तु तत्तत् पदार्थों को जो कि घटपदार्थ हैं उनको बतलाने के लिये ही प्रयुक्त होते हैं इस तरह बालक भी सिद्ध वस्तुओं में (पदार्थों में) शब्द शक्ति को समझ जाता है। इस तरह माता-पितादिक बन्धु परिवारों से शिक्षित बालक पश्चात् वृद्धों के द्वारा शिक्षा प्राप्त करके समझ लेता है कि अमुक अमुक शब्द अमुक अमुक अर्थ का वाचक है। इस तरह वह बालक प्रत्येक शब्दो के अर्थों को जान करके वह बालक स्वयमेव सर्व प्रकार के वाक्यों का प्रयोग करता है और यह भी बालक समझ लेता है कि प्रत्येक पद इसी प्रकार से स्वकीय अर्थ का वाचक होता है, एतादृश पद समुदाय से संपद्यमान वाक्य भी पदार्थों के पारस्परिक संबन्धरूप वाक्यार्थ का बोध कराता है एवं सिद्ध वस्तु का प्रतिपादन करने के लिये प्रभुज्यमान वाक्य सिद्धार्थ का प्रतिपादन करता है, एवं कार्य को बतलाने के लिये प्रभुज्यमान जो पद समुदायात्मक वाक्य वह कार्य को ही बतलाता है। इसप्रकार से सिद्ध होता है कि जिस तरह कार्यबोधक पद तथा वाक्य कार्य अर्थ को समझाता है उसी तरह सिद्धार्थ बोधक पद तथा वाक्य सिद्ध अर्थों को समझाता है। इस स्थिति में मीमांसक का मत सर्वप्रथम पद की जो शक्ति है उस शक्ति

॥ सोदाहरणंसिद्धवस्तुनिव्युत्पत्तिप्रतिपादनम् ॥

तदत्रनिरूप्यते यदि बृद्धव्यवहारमात्रादेव पदानां शक्त्यव धारणं भवतीत्येकान्तनियमो भवेत्तदासिद्धार्थबोधकवेदान्तानां स्वार्थावबोधकत्वं न भवेत् परन्तु नायं नियमः प्रकारान्तरेणापि

अस्मिन् विषये अर्थात् विधायकवाक्यस्य फलांशेऽपि तात्पर्यं भवत्येव एतस्मिन् विषये दृष्टान्तं दर्शयति स्वर्गादिवदिति अयमाशयः-'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इतिविधिवाक्यम् (स्वर्गकामनावान् पुरुषः स्वर्गात्मकफलमुद्दिश्यदर्शपौर्णमासयागं कुर्यादित्यर्थः, दर्शपौर्णमासाभ्यां स्वर्गंभावयेदिति यावत् ।) दर्शपौर्णमासयागस्य फलं स्वर्ग इति साधयति फलान्तरस्याश्रुतत्वात् श्रुतत्वाच्च स्वर्गस्येति । तत्र कोऽयं स्वर्गः कीदृशः कुत्र चेति प्रश्ने अर्थवादवाक्यमुत्तिष्ठते 'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम् ।'' अपामसोमममृताअभूम अगन्मज्योतिरविदामदेवान्, किमु मे धूर्तिर्जराकरिष्यतीत्यादि । (यत् सुखं दुःखेन संमिश्रितं न भवति, यस्य चानन्तरकाले विनाशो न भवति तथा अभिलाषामात्रेणोपनीतं

का ज्ञान कार्य के विषय में ही होता है। सभी शब्दों का तात्पर्य कार्य में ही होता है संपूर्ण विध्यर्थवादादिक वेदों का प्रतिपाद्य अर्थ कार्य ही है। ऐसा जो मीमांसक का मत है वह युक्ति तर्क रहित होने से निर्मूलक है। क्योंकि सिद्ध वस्तु में भी शब्द शक्तिग्रह हो सकता है सिद्ध पदार्थ को बतलाने में तादृश शब्दों का तात्पर्य भी हो सकता है, एवं सिद्ध पदार्थ ब्रह्म वेदान्त प्रतिपाद्य अर्थ भी हो सकता है। अतः मीमांसक का कथन सर्वथा अयुक्त ही मालूम पड़ता है इसलिये वह मत अनादरणीय है। सिद्ध रूप अर्थ का प्रतिपादन करने की शक्ति सिद्ध शब्दों में है यह बात जब अनेक उदाहरण द्वारा सिद्ध होने से लौकिक माता-पितादि शब्द तथा वाक्य की तरह वेदान्त वाक्य भी सकल जगत् का कारण सर्वकल्याण गुण सागर सिद्ध पदार्थ ब्रह्म श्रीरामजी को समझाने में संपूर्ण तात्पर्य को रखते हैं तथा पूर्वकथित लक्षणवाला सर्वज्ञत्वादिगुण विशिष्ट ब्रह्म वेदान्त वा प्रतिपाद्य सिद्ध होता है। वेदान्तों का ब्रह्मबोधन में तात्पर्य रहने से ब्रह्म वेदान्त का प्रधान प्रतिपाद्य अर्थ सिद्ध होता है। इसलिये वेदान्त वाक्य द्वारा ब्रह्म विचार आवश्यक है और प्राचीन समस्त आचार्यों ने ब्रह्म विचार किया है वह सफल तथा

शक्त्यवधारणस्य संभवात् । तथाहि कश्चिन्मौनीमुनिर्हस्तचेष्टा-दिनाऽमुकगृहकोणे कमण्डलुः स्थापित इति तं बोधयेति ज्ञापितवान् कश्चित्तदनुयायी कश्चित्तज्ज्ञापने प्रवृत्तोऽमुकगृहकोणे कमण्ड-

---

भवति इच्छामात्रोपस्थितिकमित्यर्थः. तादृशसुखविशेष एव स्वर्गः । वयं सोमपानमकुर्मः, अतो वयं देवा अभवामः, तथा ज्योतिः स्वरूपं स्थानं देशविशेषं प्राप्तवन्तः, एतादृशस्य मे अरातिः शत्रुः किं करिष्यति जरा वा किं करिष्यति नैव किंचित् कर्त्तुं शक्ष्यति तृणवदतिस्वल्पबलत्वादित्यर्थः ।) दुःखविरोधी सुखविशेषः स्वर्गः स च स्वशक्त्या समूलघातं दुःखं हन्ति । अर्थवादद्वारा वर्णितदुःख-रहितदेशवैशिष्ट्यादिकं स्वर्गस्वीक्रियते, अत्रार्थवादवर्णितोऽर्थ उपयुक्तत्वात्तात्त्विक एवेति स्वीकृतः । यत्र विधिवाक्ये यादृशं फलं श्रुतं तत्र तदेव फलं स्वीक्रियते, यत्र तु विधिवाक्ये फलं न किञ्चित् श्रुतं तत्रार्थवादशास्त्रप्राप्तिफलमेव फलमिति । तथार्थवादवर्णितफले स्वर्गादौ तथा विधिवाक्यबोधितयागे कार्यकारणभावः प्रामाणिक एवेति स्वीक्रियते ।

उपर्युक्त है ब्रह्म जिज्ञासा निरर्थक नहीं सार्थक है ।

कार्य अर्थ में ही शब्दों की शक्ति होती है सिद्ध में पद शक्ति नहीं होती है एतादृश प्रभाकर मत का **'चैत्रपुत्रस्ते जातः'** इत्यादि दृष्टान्त द्वारा खण्डन करके पद में सिद्धार्थ बोधकत्व का समर्थन करके अब कार्यार्थ मात्र में ही पद शक्तिमान लिया जाय तथापि ब्रह्म विचार निरर्थक नहीं है, इसप्रकार **'तुष्यतु'** न्याय से स्वपक्ष को सिद्ध करने के लिये उपक्रम करते हैं **'किञ्चसर्वपदानां कार्यार्थो'** इत्यादि और भी देखिये सभी लौकिक वैदिक पदों के कार्यरूप अर्थों में व्युत्पत्ति बोधकत्व मानने पर भी सिद्ध ब्रह्मरूप अर्थका प्रतिपादक वेदान्त वाक्य का वैयर्थ्य नहीं होता है न वा ब्रह्म विचार में ही नैरर्थक्य होता है क्योंकि कार्यार्थ जो उपासना विधि वाक्य है उसका अङ्गरूप से ब्रह्म तथा तदीय विचार में सार्थकत्व सिद्ध होता है । उपनिषद् वाक्य उपासन का विषय कार्य में अधिकृत अधिकारी में विशेषीभूत फलस्वरूप दुःखादिक संपृक्त विलक्षण देशात्मक स्वर्गादि के समान साध्य साधनभाव होने से कार्य के शेषरूप से सभी को वेदान्त वाक्यों से समझाते हैं । इसप्रकार **'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म को

लुर्विद्यते इत्याकारकं पदं प्रयुङ्क्ते, मूकहस्तचेष्टां जानन् पार्श्वस्थोऽन्योप्येतस्यार्थस्य ज्ञापनाय गृहकोणे कमण्डलुः स्थित इति शब्दस्य प्रयोगदर्शनादस्य शब्दस्यायं शब्दोबोधक इति जानात्येव तस्मात्प्रकारान्तरेणापि शक्तिग्रहो जायते एव ।

इत्थमेव प्रकृतेऽपि वेदान्ते **'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'** अर्थात् ब्रह्मज्ञानवान् प्राप्नोति परं ब्रह्मेत्यर्थः । एतद्वचनानुसारेण **ब्रह्मप्राप्तिकामनावान्** ब्रह्मोपासनं कुर्यादिति विधिस्वरूपं पर्यवसितं भवति **यत्** ब्रह्मप्राप्तिकामो ब्रह्मोपासनं कुर्यात् । अत्रोपासनकार्याधिकारी स एव **पुरुषो** यो ब्रह्मोपासनात्मकविषयमधिकृत्य संपद्यमानकार्यस्याधिकारी तत्र **पुरुषं प्रति** विशेषणरूपेण निर्दिश्यमानब्रह्मप्राप्त्यात्मकफले ब्रह्माप्यन्तर्गतम् । एतादृशफलं ब्रह्मस्वरूपं तदतिरिक्ताश्च ये विषयास्तत्प्रतिपादकंवेदान्तवाक्यमुपासनलक्षणकार्यापेक्षितार्थस्य प्रतिपादकंभवति । अर्थात् उपासनफलरूपेण प्राप्यं ब्रह्मकीदृग्विधं जिज्ञासायाम् अनेकान्युपनिषद् वाक्यानि 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्य[illegible]णिकानि प्रतिपादयन्ति यत् जगत्सृष्टिस्थिति-

---

प्राप्त करता है । यहा ब्रह्मोपासन वि[illegible]पासन कार्य में अधिकृत व्यक्ति में विशेषणीभूत जो ब्रह्म प्राप्तिरूप श्रूयमाण है **'पर ब्रह्म प्राप्ति कामो ब्रह्मोपासनं कुर्यात्'** पर ब्रह्म की प्राप्ति कामना वाला ब्रह्म का उपासन करे । यहां उपासना से प्राप्यतया ज्ञायमान जो ब्रह्म स्वरूप तथा तादृश ब्रह्म का विशेषण जितनी वस्तुएँ हैं वे सब कार्योपयोगिकता सिद्ध होते हैं तथा तदन्तर्गत प्रपञ्च सर्जकत्व प्रलयादि कर्तृत्व जगदाधारत्व सर्वात्मत्व सर्वशेषित्वादिक उक्तानुक्त सबकी सिद्धि होती है । इसप्रकार कार्यार्थ में शब्द शक्ति मानने पर भी कोई क्षति नहीं है । इसप्रकार मूल का अक्षरार्थ किया जाता है ।

अब स्पष्ट प्रतिपत्ति के लिये मूल के अभिप्राय को बतलाते हैं तथाहि आचार्यजी ने प्रमाणादि द्वारा सिद्ध कर दिया कि जिस तरह साध्य अर्थों में पदों की शक्ति सिद्ध होती है । उसी तरह सिद्धार्थ में भी पदों का शक्तिग्रह होता है ऐसा कह करके अब **'तुष्यतु'** न्याय के अनुसार (कुछ देर के लिये प्रश्न कर्ता के सिद्धान्त को स्वीकार करके जो उत्तर दिया जाय उसको **'तुष्यतु'** न्याय कहा जाता है) उत्तर देते हैं कि-मान लिया

ॐ अपरोदाहरणेनसिद्धवस्तुनिव्युत्पत्तिप्रतिपादनम् ॐ

अपि च दृश्यते लोके बन्धुभिस्ते पिता ते भ्रातायंपितृव्योयमित्यादिपितृप्रभृतिशब्दैर्वारं वारमङ्गुलीनिर्देनशिक्षितो

प्रलयकारणं ब्रह्म तच्च सर्वस्यापि प्रपञ्चस्याधाररूपं सर्वशेषी सर्वस्यान्तरात्मरूपमित्यादिविविधवैशिष्ट्यं प्रतिपादयत्संपूर्णोपनिषद् वाक्यमुपासनकार्योपयुक्तार्थजातं वर्णयन् प्रामाण्यमश्नुते, ब्रह्मापि समुपासनकार्यद्वारेणफलात्मकंभवत् कार्येणोपासनेन संबद्धं भवति। प्रभाकरादिमीमांसकमतानुसारेण कार्यार्थे सर्ववेदानां तात्पर्यसत्वेऽपि कार्योपयुक्तफलरूपेण ब्रह्मापि सिद्ध्यति, एतादृशब्रह्मविचारो वेदतात्पर्यानुकूलत्वादवश्यमेव कर्तव्यो न तु ब्रह्मविचारस्य वैयर्थ्यमाशङ्कनीयमिति। अनेनक्रमेण 'तुष्यतु' न्यायमनुसृत्य ब्रह्मविचारस्य कर्तव्यत्वमसाधयत्। प्रकृतप्रसङ्गः प्रभाकरमतनिरासविवरणे प्रपञ्चयिष्यतेऽतोऽत्रविरम्यते।

जाय कि कार्यरूप अर्थ में ही पद की शक्ति हो[illegible] है। ननु सिद्ध्यार्थ में पदशक्ति होती है तथापि सिद्ध ब्रह्म का विचार अयुक्त नहीं [illegible] वेदान्त में कहा गया है कि '**ब्रह्म प्राप्तिकामो ब्रह्मविद्यात्**' अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति क[illegible]वान् अधिकारी ब्रह्म का उपासन करे। प्रभाकरों ने ऐसा स्वीकार किया है कि विधायक जो लिङ् लोट् तव्य प्रभृति प्रत्ययों का अर्थ कार्य हैं। वेदान्त में प्रतिपाद्य '**उपासीत**' इस कार्य का विषय उपासन है उपासन विषयको लेकर कार्य होता है उस कार्य का अधिकारी परब्रह्म अधिकारी परब्रह्म प्राप्ति कामना वाला पुरुष है। उस अधिकारी पुरुष के प्रति विशेषण है ब्रह्म प्राप्ति कामना यहां परब्रह्म प्राप्ति तथा यथोक्त ब्रह्म कामना में विशेषण बन करके परम्परया अधिकारी विशेषण है ऐसा सिद्ध होता है और उस अधिकारी का प्राप्य फल पर ब्रह्म है, इस तरह उपासनात्मक कार्य के प्रतिफलरूप जो ब्रह्म है उस ब्रह्म में '**सत्यं ज्ञानमनन्तम्**' '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**' इत्यादि वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य सिद्ध होता है। कार्यार्थ में शक्तिवादी मीमांसक भी '**यजेतस्वर्गकामः**' इत्यादि विधायक वाक्यों का तात्पर्य फल में मानते हैं चाहे वह फल सिद्ध पदार्थ ही क्यों न हो क्योंकि सिद्ध फल में भी मीमांसकों ने विधायक तात्पर्य स्वीकार लिया है अन्यथा यदि विधिवाक्य का तात्पर्य फल में न माना जाय तब तो उस फलरूप पदार्थ में इतर प्रमाण

बालस्तैरेवपितृप्रभृतिशब्दैस्तत्तदर्थेषु स्वकीयबुद्धेरुत्पत्तिं दृष्ट्वा तेषु पित्रादिरूपेष्वर्थेषु तेषां पित्रादिशब्दानामङ्गुलीनिर्देशपूर्वकः प्रयोगः संबन्धान्तरासंभवात् बोधकत्वमूलक इतिस्थिरीकृत्य पुनरप्यस्य शब्दस्यायमर्थः पूर्णवृद्धैः शिक्षित इत्येवं सर्वशब्दानामर्थं ज्ञात्वा

यथोपासनासनात्मककार्याङ्गतयासिद्धस्यापि ब्रह्मणः फलरूपेण सिद्धिःप्रामाणिकता च प्रतिपादिता 'तुष्यतु' न्यायमाश्रित्य तथैव मन्त्रार्थवादप्राप्तसिद्धानां प्रमाणान्तराप्राप्तानां प्रमाणान्तराविरुद्धानामनेकेषां सिद्धिः प्रामाणिकता च सिद्ध्यतीति दर्शयितुं प्रक्रमते-यथाविधिशेषतया इत्यादि। 'विधिशेषतया-विधेरंगतयेत्यर्थः। विधिश्चात्र वेदान्ते 'ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्' इतिवाक्यानुसारेण 'ब्रह्मप्राप्तिकामो ब्रह्मविद्यात्' विद्यात् ब्रह्मोपासनं कुर्यादित्यर्थः। तथा 'आत्मानं लोकमुपासीत' अत्र ब्रह्मोपासनविषयमधिकृत्य जायमानोपासनात्मककार्यस्य ब्रह्मप्राप्तिकामनावान् पुरुषोऽधिकारी तत्राधिकारिणि विशेषणरूपेण निर्दिश्य

का अभाव होने से वह फल प्रामाणिक नहीं कहलायेगा अतः विधिवाक्य का तात्पर्य फल में आवश्यक है, और यदि फल प्रमाण सिद्ध नहीं होगा तो अप्रमाणिक फल के लिये जो साधन का विधान होता है वह सर्वथा असंगत हो जायगा, क्या अप्रामाणिक शशश्रृङ्ग नृसिंहादिकों के लिये किस साधन का विधान कोई करता है? अप्रामाणिक पदार्थों के साधन का विधान न तो दृष्ट है न तो युक्ति सिद्ध है। इसलिये मीमांसकों ने विधान का समर्थन करने के लिय विधायक '**यजेत स्वर्गकामः**' इत्यादि वाक्यों का फलांश में तात्पर्य मान लिया है यागाशं की तरह। अर्थात् जिस तरह '**यजेत स्वर्गकामः**' इत्यादि विधि स्थल में यागरूप धात्वर्थ को समझाने में इस वाक्य का तात्पर्य है उसी प्रकार फलीभूत स्वर्गादि के समझाने में भी विधिवाक्य का तात्पर्य है ऐसा मानना आवश्यक ही है अन्यथा फल अप्रामाणिक हो जायेगा तथा वाक्य का विधायकत्व भी असंगत हो जायगा अप्रमाणिक वस्तुओं का विधान करना अदृष्ट है तथा अयुक्त भी है।

इस विषय में दृष्टान्त अनेक हैं तथापि यहां जगदाचार्यजी ने एक दृष्टान्त को बतलाया है स्वर्गादिवादित्यादि, जिस तरह विधिवाक्य का तात्पर्य विधेयांश में है उसी

स्वयमपि सर्वं वाक्यं प्रयुनक्ति । इत्ययमेव सर्वशब्दानां स्वार्थवाचकत्वं पदसमुदायविशेषाणां च यथावस्थितसंसर्गादिवाचकत्वं जानाति इति कार्यार्थे एव पदानां व्युत्पत्तिरिति

ब्रह्मप्राप्तिरूपफलस्यान्तर्गतं ब्रह्म । एवं क्रमपरंपरया तादृशब्रह्मणो वेदान्तवाक्येन सिद्धिर्जायते, एवं ब्रह्मणि विधिशेषतया प्रामाणिकत्वं भवतीति । एवमेवविधिशेषतयैवेत्यादि, इत्थमेव मन्त्रार्थवादप्राप्ता ये प्रामाणान्तरविरोधरहिताः तथा प्रमाणान्तरेणासिद्धा अत एवापूर्वा अर्थास्तेषामपि विध्यङ्गतयैव सिद्धिर्भवति । यतस्तादृशास्तेऽर्था विधावपेक्षिताः, अपेक्षितत्वात् प्रामाणिका इति । यथोक्तप्रकरणस्यायमाशयः–समस्तोप्यर्थवादोऽनेकान् गुणानेव वर्णयति विधिस्थले । यागादिकं कर्मणि नियनुज्यमानदेवतायाः पूजनमेव अनेन पूजनादिकर्मणा देव

तरह फलांश में भी होता है स्वर्गादि फल की तरह। अर्थात्–'**दर्शपौर्णमासाभ्यांस्वर्गकामोयजेत**' इत्यादि विधिवाक्य से दर्शपौर्णमास याग का फल स्वर्ग है ऐसा सिद्ध होता है। अव यहां जिज्ञासा होती है कि–याग का फलरूप जो स्वर्ग वह क्या है और उसका स्वरूप क्या है किस को स्वर्ग कहते हैं जिसे उद्देश्य करके प्रकृत याग का विधान किया गया है ? इस जिज्ञासा का निराकरण करने के लिये अर्थवाद वाक्य कहता है–

'**यन्न दुःखेन संभिन्नं न चाग्रस्तमनन्तरम् ।**
अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदम् ॥'

अर्थात् जो सुख लौकिक सुख की तरह दुःख से मिलित न हो और जिसका चरम काल में विनाश नहीं होता हो तथा इच्छा अभिलाषा मात्र से प्राप्त होवे एतादृश विलक्षण सुख का प्रापक जो देश विशेष है उसे स्वर्ग कहते हैं। इसप्रकार अर्थवाद वाक्य से वर्णित दुःख रहित विलक्षणता स्वर्ग में मानी जाती है। यहां अर्थवाद से वर्णित पदार्थ उपयुक्त होने से तात्विक माना जाता है। जिस स्थल में विधिवाक्य में फल का कथन नहीं किया गया है उस स्थल में अर्थवाद वर्णित फल को ही फल माना जाता है। जैसे रात्रि नामक याग का विधायक वाक्य में फल की चर्चा नहीं है तो उस रात्रि सत्र में '**प्रतितिष्ठन्ति हय एता रात्री रुपयेतिः**' इत्यादि अर्थवाद बोधित प्रतिष्ठा

प्राभाकरस्याग्रहो निर्मूलक एव सिद्धार्थेऽपि लौकिकपदानां प्रयोगस्य दर्शितत्वात् । अतः सिद्धवस्तुनिलोकेऽधिपदेऽपि बोधकता शक्त्यवधारणेन सर्वाण्यपि वेदान्तवाक्यानि समस्तप्रपञ्चकारणं

आराधितो भवति, यागादावाराधनरूपयागादेस्तथा तत्तद्देवताया अनेके गुणा वर्णिता भवन्ति, अर्थवादशास्त्रे प्रतिपाद्यमानायागदेवतयोर्गुणाः प्रमाणान्तरेणाविरुद्धास्तथा प्रमाणान्तरासिद्धाश्च तत एवापूर्वा इति व्यवह्रियते । सोयमर्थवादोगुणवर्णनेन श्रोतुर्मनसिकर्मणि यागादौप्राशस्त्यंबोधयति येन कर्मणि कर्तव्यता बुद्धिर्यजमानस्य समुत्पद्यते । कर्मणि प्राशस्त्यबुध्युयुत्पादनमेवार्थवादस्य प्रयोजनम्, तादृशबुध्युत्पादनं तद्गतगुणसत्यतोत्पादनमन्तरेण न सभवतीति गुणस्य सत्यता बुद्धिमपि बोधयत्येवेति । अनेन प्रकारेण विधिशेषतयाऽर्थवादभागः सिद्धान् गुणादिरूपान् पदार्थान् प्रकाशन् कर्मसूपयुक्तो भवति । एवमेव–प्रयोगसमवेतार्थस्मारकामन्त्रा इतिलक्षणलक्षितो मन्त्रात्मको

को ही फलरूप से स्वीकार किया जात है। यद्यपि जहां फल का निर्देश नहीं रहता है वहां विश्वजिन्न्याय से स्वर्ग फल को ही माना जाता है अतः रात्रिसत्र में स्वर्गफल संभवित हो सकता है तथापि जहां किसी भी प्रकार से फल का उपस्थापक प्रमाण न हो वहां ही स्वर्गफल कल्पित होता है और जहां किसी भी प्रकार से फल उपस्थित हो सके वहां स्वर्गफल नहीं मानते हैं। प्रकृत रात्रिसत्र में जब अर्थवाद से प्रतिष्ठारूप फल प्राप्त है तो यहां प्रतिष्ठा फल ही लिया जाता है तथा यही उपयुक्त भी है। किन्तु कल्पित स्वर्ग फल की कल्पना नहीं करनी चाहिये। इस उपर्युक्त उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि कार्य के प्रति उपर्युक्त होने से अर्थवाद वर्णित स्वर्ग की विलक्षणता में तथा रात्रिसत्रीय प्रतिष्ठारूप फल में साध्यसाधनभाव प्रामाणिक माना जाता है।

इसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये। अर्थात् वेदान्त में यह वचन है कि '**ब्रह्म विदाप्नोतिपरम्**' (अर्थात् ब्रह्मज्ञानवान् साधक पुरुष ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।) इस वाक्य के '**ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्**' वेदान्त वाक्य के अनुसार यहां पर विधिवाक्य का '**ब्रह्म प्राप्तिकामो ब्रह्मोपासनं कुर्यात्**' (ब्रह्म प्राप्ति का अभिलाषी साधक पुरुष ब्रह्म की उपासना करें।) यहां ब्रह्म का उपासन रूप विषय को लेकर संपद्यमान कार्य

सर्वकल्याणगुणसागरं बोधयन्त्येवेतिदिक् ।

卐 'तुष्यतुदुर्जनः' न्यायेनाभिमतार्थसाधनम् 卐

किञ्च सर्वपदानां कार्यार्थे व्युत्पत्तिस्वीकारेऽपि ब्रह्मरूपार्थ

वेदभागोऽपि तत्तत्कर्मापेक्षिततत्तत् सिद्धार्थगुणान् कर्मणि प्राशस्त्यबुद्धिमुत्पादनाय विधानः सार्थक एव भवति । अन्यथा यदि मन्त्रभागः सत्यगुणं न बोधयेत्तदा कर्मणि प्राशस्त्यबोधनं न स्यात्, तदभावेऽसत्कर्मकरणाय लोकानां प्रवृत्तेरभावेन विधिवाक्यस्य स्पष्टमेव वैयर्थ्यं स्यादिति । न केवलं विधिशेषतया ब्रह्मरूपसिद्धार्थस्यैव प्रमाणिकता सिध्यति अपितु मन्त्रार्थवादादिप्रतिपादितकर्मदेवतादिप्राशस्त्यादिबोध कानेकार्थस्यापि प्रामाणिकत्वं सिद्ध्यति । एते च विधीयमाना गुणादिका अर्थाः सिद्धार्था एव न साध्यार्था इति । अनेन प्रकारेणाचार्यचरणः 'तुष्यतु' न्यायमनुसृत्य कार्यार्थे एव पदानां व्युत्पत्तिरिति स्वीकृत्यापि मीमांसकमतानुसारेणापि ब्रह्मोपासनं 'ब्रह्मप्राप्तिकामो ब्रह्मविद्यात्' 'आत्मानं लोकमुपासीत' विधावपेक्षितप्राप्यफलरूपेण

का अधिकारी वह पुरुष है जो कि ब्रह्म प्राप्ति का अभिलाषी है एतादृश अधिकारी पुरुष के प्रति विशेषण रूप से निर्दिश्यमान जो ब्रह्म प्रातिरूप फल है उस फल का घटक ब्रह्म है अर्थात् प्राप्ति में विशेषणरूप से ब्रह्म अन्तर्गत है । इस प्राप्त फल ब्रह्म का स्वरूप तथा तदन्तर अनेक विशेषों का वर्णन करनेवाले वेदान्त वाक्य उपासनात्मक कार्य के लिये अपेक्षित पदार्थों का प्रतिपादक-उपस्थापक होते हैं । उपासन के फलरूप में प्राप्य ब्रह्म का स्वरूप क्या है लक्षण क्या है ? इत्यादि जिज्ञासा होने पर अनेक प्रकारक **'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** इत्यादि वेदान्त वाक्य समुदाय समझाते हैं कि वह फलरूप से प्राप्य ब्रह्म जगत् चराचर का सर्जक पालक तथा प्रलय करनेवाले हैं जगत का आधार सर्वशेषी तथा अन्तरात्मा हैं । इस तरह भगवान् में अनेक प्रकारक वैशिष्ट्य को बतलाता हुआ वेदान्त वाक्य उपासनरूप कार्य से किये उपयुज्यमान अर्थ को बतलाते हुए वेदान्त वाक्य सर्वथा-प्रमाण सिद्ध होता है क्योंकि ज्ञापकत्वरूप प्रमाणत्व वेदान्त में हैं । तथा उपासनरूप कार्य के द्वारा प्राप्तव्य फलरूप हो करके ब्रह्म भी कार्य से संबद्ध हो जाते हैं । ऐसा वस्तु स्थिति होने पर प्रभाकरादि मीमांसकों के कार्यरूप अर्थमात्र में विध्यर्थवाद मन्त्रादिक समस्त वेदों का तात्पर्य होने पर यथोक्त

प्रतिपादकवेदान्तानां न वैयर्थ्यं न वा ब्रह्मविचारोनिरर्थकः । कार्यार्थकोपासनविधिशेषतया ब्रह्मणस्तद्विचारस्य च सार्थकत्व संभवात् । उपनिषद्वाक्यानि समुपासनविषयकार्याधिकृतविशेष-णारूपफलतया दुःखासंपृक्तविलक्षणदेशात्मकस्वर्गादिव-

ब्रह्मसिद्धिमवोचत् । एवमर्थवादोपवर्गितानेकापूर्वार्थाविध्यपेक्षितत्वेन प्रामाणिकरूपेण सिद्धा भवन्तीति । तस्मादेव प्राप्यफलरूपब्रह्मणो विचार आवश्यक एवेति अवश्यमेव तादृशो विचारः कर्तव्यः । वस्तुतः सिद्धेऽपि व्युत्पत्तेः साधनात् सिद्धब्रह्मविचारो युक्त एवेतिदिक् ।

इत पूर्वं लौकिकवैदिकपदानां सिद्धार्थेऽपि व्युत्पत्तिर्भवतीति कथितम् । तथा कार्यार्थमात्रे एव व्युत्पत्तिर्भवतीति स्वीकारेऽपि उपासनविधौ प्राप्यफलरूपेणा पेक्षिततया ब्रह्मणः सिद्धरूपस्यापि सिद्धिर्भवतीति प्रतिपाद्य तदनन्तरं प्रभाकराभिमत कार्यलक्षणस्य तत्स्वरूपस्य खण्डनायोपक्रमते-ननु किमत्रकार्यम् इत्यादि ।

प्रकार से कार्य उपासन के उपयोगी फल के रूप में ब्रह्म की सिद्धि हो जाती है, एतादृश ब्रह्म का विचार समस्त उपनिषद् के तात्पर्यानुकूल होने से अवश्यमेव कर्तव्य है यह सिद्ध होता है । जिस तरह **'पुत्रस्तेजातः'** इत्यादि लोक स्थल में सिद्धार्थक पद का भी स्वार्थ में व्युत्पत्ति सिद्ध होती है उसी तरह **'लोकावगतसामर्थ्यः'** इस न्याय से सिद्धार्थक सत्य पद का भी स्वार्थ में सामर्थ्य से सिद्ध पद को वेदान्त में बोधकता है, इस बात को स्थिर करके 'मीमांसक मतानुसार से ब्रह्म विचार को सफल बनाया । कार्यार्थ मात्र में शब्द का शक्तिग्रह हो अथवा सिद्धार्थ में भी शक्तिग्रह शब्दों का सिद्ध हो उभयथा-दोनों प्रकार से ब्रह्म विचार अवश्य कर्तव्य सिद्ध होता है, अनेक दोषयुक्त लौकिक सुख तो देखने से वैराग्य के कारण जो साधक विशेष नित्य सुख प्राप्ति की कामना रखते हैं उन साधकों के लिये दोनों मत से ब्रह्म विचार आवश्यक है, इस बात को आचार्यजी ने स्पष्ट रूप से बतलाया । विशेष विवरण अन्यत्र देखें ? ग्रन्थ विस्तीर्णता के भय से यहां संक्षेप किया गया है ।

जिस तरह वेदान्त में **'परब्रह्म प्राप्ति कामोब्रह्मविद्यात्'** इसप्रकार ब्रह्मोपासन किया है, वहां विधिवाक्य का प्राप्यफल के रूप में ब्रह्म में तात्पर्य है, तो इसप्रकार

त्साध्यसाधनभाववत् कार्यशेषतया सर्वं बोधयन्ति तदित्थम्-
'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' अत्र हि ब्रह्मोपासनविषयकार्याधिकृ-
तविशेशणफलब्रह्मप्राप्तिः फलं श्रूयते।' स्वब्रह्मप्राप्तिकामो ब्रह्मोपासनं

सर्वपदानामर्थः कार्यस्य एवेति यत्कथितं तत्र कार्यत्वं नाम किम् ? अर्थात् कार्यस्य लक्षणस्वरूपविषये विचारे कृते न कार्यत्वलक्षणस्य स्वरूपस्य च निष्पत्तिर्भवतीति प्रश्नार्थः। न च कृत्युद्देश्यतैव कार्यतेति चेदिति 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिवाक्यं स्वर्गकार्यं प्रतियागादेः कारणत्वं प्रतिपादयति, परन्तु तन्न संभवति यतः क्षणविनश्वरस्वभावस्य यागस्य कालान्तरभाविस्वर्गफलं प्रति जनकत्वासंभवात्। कार्याव्यवहितपूर्वक्षण वृत्तित्वमेव कारणत्वं व्यवहितपूर्वस्याकारणत्वात्, ततश्च यागकर्ता मरणानन्तरं स्वर्गं याति, तत्र स्वर्गप्राप्तेरव्यवहितपूर्वक्षणे चिरविनष्टस्य यागस्याभावेन कारणता स्वर्गं प्रति न संभवतीत्यतः कल्प्यते यत् यागादिक्रिययाऽपूर्वस्यादृष्टापरपर्यायस्योत्पत्ति र्भवति, तादृशापूर्वमव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तितया स्वर्गं प्रति तस्य जनकतेति तज्जनक यागादेरपि स्वव्यापारद्वारास्वर्गादिजनकतेति यागस्य स्वर्गजनकता निर्वाहाय याग

विध्यपेक्षित होने से ब्रह्म की सिद्धि होता है उसी तरह मात्र अर्थवादादिक में वर्णित जितने पदार्थ हैं उनकी भी सिद्धि होती है। इस सभी बातों को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-**'यथा विधिशेषतया'** इत्यादि। जिस तरह **'आत्मानं लोकमुपासीत'** इत्यादि उपासना विधायक वाक्य के शेष-अङ्ग रूप होने से ब्रह्म की प्रामाणिकता सिद्ध होती है, उसी तरह मन्त्र अर्थवाद से अवगत दो कि प्रमाणान्तर से विरुद्ध अर्थ नहीं है तथा प्रमाणान्तरों से प्राप्त ही अतएव अपूर्व अनेक अर्थों में भी प्रामाणिकता की सिद्धि होती है। अर्थात् उपासना वाक्य के फलरूप में अपेक्षित होने से ब्रह्म प्रामाणिक सिद्ध होता है उसी तरह मन्त्र तथा अर्थवाद में कथित बहुत से पदार्थ हैं जिनका साक्षात् परंपरया वा विधि में अपेक्षित होने से प्रामाणिकत्व सिद्ध होता है। उपर्युक्त अर्थ सम्प्रदाय सिद्ध है विषय को स्पष्ट करने के लिये कहते हैं-**'तदयमर्थः'** इत्यादि। तात्पर्य यह कि वेद का जो अर्थवाद भाग है वह सब अनेक प्रकारक गुण का वर्णन करता है और यागादिक जो कर्मकलाप है वह कर्म देवता का जिस देवता को उद्देश्य करके यागादिक किया जाता है उस देवता को कर्म देवता कहते हैं-(**कर्मणि**

कुर्यादिति। अत्रोपासनेन प्राप्य तथा ज्ञायमानं ब्रह्मणः स्वरूपं
तद्विशेषणं च सर्वं वस्तु कार्योपयोगितयैव सिद्ध्यति। तदन्तर्गतं
प्रपञ्चसर्जकत्वप्रलयादिकत्वमाधारत्वमन्तरात्मत्वस-

स्वर्गयोर्मध्येऽपूर्वमेकं कल्प्यते तदुक्तम् 'चिरध्वस्तं फलाधाये न कर्मातिशयं विनेति। तादृशमपूर्वमुद्दिश्ययागादिक्रियायाविधानं भवतीति पुरुषप्रयत्नस्योद्देश्यमपूर्वं विधेयश्च यागादिः, अर्थात् अपूर्वमुद्दिश्ययागस्य विधानं 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादि वाक्येन सोयमपूर्वाख्यः पदार्थः प्रत्यक्षादिप्रमाणेनाप्राप्तत्वादपूर्व इति कथ्यते, तदर्थं यागादौ नियोगकरणान्नियोग इति कथ्यते, कृतेरुद्देश्यत्वात् कृत्युद्देशत्वमिति कथ्यते चक्षुरादिना तददर्शनाददृष्टपदेनापि व्यवह्रियते, इतिकृत्युद्देश्यत्वमेव कार्यत्वमिति मीमांसकाशयः। अर्थात् अस्मिन् कार्ये सन्ति त्रयोधर्माः कार्यः प्रयत्नेन जायते प्रयत्नः कृतिरिति कृतिसाध्यत्वात् कृतिसाध्यः कथितो भवति। तथा कार्यस्येष्टत्वादिष्टत्वं कार्यस्य द्वितीयोधर्मः। एतादृशकृतिसाध्यत्वं पदार्थान्तरेऽपि विद्यते, यागादौ कृतिसाध्यत्वं

उद्देश्यतया अधिकृतो देवः कर्मदेव इति व्युत्पत्तिः।) आराधन पूजनादिकरूप है। इस पूजा विशेषरूप कर्म से देवता पूजित आराधित होते हैं, अर्थवाद भाग में देवों का पूजनात्मक यागादि कर्मों का तथा आराध्य देवताओं के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है जो गुण समुदाय प्रमाणान्तरों से सिद्ध नहीं हो सकते हैं तथा प्रमाणान्तरों से विरुद्ध भी नहीं है। इस तरह अर्थवाद शास्त्र यागादिक कर्म तथा आराध्य देवों के गुण का प्रतिपादन करके कर्म में प्राशस्त्य का बोधन कराता हुआ श्रोता-पुरुष को यागादिक कर्मों में प्रवृत्त कराते हैं। अब यदि अर्थवाद भाग से प्रतिपादित गुण समुदाय असत्य अप्रामाणिक हो तब तो श्रोताओं के कर्म में प्राशस्त्य ज्ञान नहीं होगा और कर्म में प्राशस्त्य ज्ञान को उत्पन्न करना यही तो अर्थवाद का मुख्य उद्देश्य है एतादृश स्वकीय उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये अर्थवाद भाग प्राशस्त्य के कारणीभूत जो गुण है तादृश गुण की सत्यता का भी प्रतिपादन करता है क्योंकि गुण यदि सत्य प्रामाणिक नहीं होगा तो गुणमूलक प्राशस्त्य कर्म में प्रतिपादित नहीं होने से अर्थवाद भाग का नैरर्थक्य हो जायगा अतः गुणों के सत्यता अंश में श्रुति वचन का तात्पर्य ही ऐसा स्वीकार करना आवश्यक है। मन्त्रभाग अनुष्ठेय यागादि कर्मों का प्रतिपादन करने के लिये प्रवृत्त है। प्रयोग में

र्वशेषित्वादिमुक्तानुक्तं सिद्धंभवतीति कार्यार्थे एव शब्दस्वीकारेऽपि न किञ्चिदपि अनुपपद्यते ।

फले चेष्टत्वम् तस्मात् कृत्युद्देश्यत्वमेव कार्यस्यासाधारणो धर्म इति प्रयत्नः, साध्यः प्रयत्नोद्दश्यः, एतदेव कार्यस्य लक्षणमिति ।

तत्राह सिद्धान्ती-कृत्युद्देश्यत्वं विवेचनीयम्, उत्तरयति मीमासकः, यमधिकृत्यकृतिर्वर्तते इत्यादि । अयमाशयः-को हि कृत्युद्देश्यः ? मीमांसकः, यमधिकारे कृत्वा प्रयत्नो जायते स एव कृत्युद्देश्य इति । चेतनो हि स्वप्रयोजनसिद्धये यं साधनविशेषं स्वकीयमिति मन्यते इति ज्ञानमेव, अतः प्रयत्नः स्वप्रयोजनस्य हेतुर्भवत् यं स्वकीयं ज्ञात्वा प्रवर्तते सः प्रयत्नस्योद्देश्यो भवति अतः अपूर्वः प्रयत्नस्योद्देश्यो भवतीति कथनमपि न समीचीनम् यतो. मनुष्यश्चेतनः स कमपि स्वं परोवेति विज्ञातुं शक्नुंयात् ज्ञात्वा तदिच्छया तत्र प्रर्वेत प्रयत्नस्तु न चेतनोऽपितु जडः स कथं कुत्रापि

आनेवाले जो पदार्थ हैं इनका स्मरण करनेवाला जो वेदभाग है उसीको मन्त्र कहते हैं। यह मन्त्रभाग यह बतलाता है कि यह अमुक याग कर्म अमुक देवता के लिये होता है।

इस तरह मन्त्र तथा अर्थवाद के द्वारा प्रतिपादित अनेक अपूर्व (प्रमाणान्तरा प्राप्त) पदार्थ विधिशास्त्र में अपेक्षित होने से प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। केवल ब्रह्म ही प्रामाणिक सिद्ध होते हैं ऐसा नहीं किन्तु मन्त्रार्थवाद प्रतिपादन अनेक पदार्थ भी प्रमाणिक सिद्ध होते हैं। ये सभी उपर्युक्त पदार्थ सभी सिद्ध पदार्थ हैं साध्य नहीं हैं। इसी तरह आचार्यश्री ने '**तुष्यतु**' न्याय से कार्यार्थ में व्युत्पत्ति को मान करके भी सिद्ध कर दिया कि मीमांसक के मतानुसार भी ब्रह्मोपासन विधि में अपेक्षित प्राप्य फल के रूप में सिद्ध ब्रह्म की सिद्धि होती है, इसी तरह मन्त्र अर्थवाद में भी समझना चाहिये। अतः ब्रह्मविचार शास्त्र द्वारा ब्रह्मविचार अवश्य करना, यह सिद्ध हुआ ।

इसके पूर्व में सिद्ध अर्थ में भी पदों का शक्तिग्रह होता है इस बात का अनेक दृष्टान्तों से समर्थन किया तथा सिद्ध अर्थों में पदों की व्युत्पत्ति नहीं होने पर भी एवं कार्य अर्थ में ही पदशक्ति मानने पर भी '**उपासीतः**' इस उपासन विधि में प्राप्य फलरूप से अपेक्षित ब्रह्म की सिद्धि हो सकती है इसका भी समर्थन करके इसके बाद मीमांसकाभिमत कार्यलक्षण का खण्डन करने के लिये उपक्रम करते हैं '**ननु**

मन्त्रार्थवादानामानुकूल्यप्रतिपादनम्

यथा विधिशेषतया ब्रह्मरूपार्थस्य प्रामाणिकता सिद्धैवमेव विधिसेषतयैवमंत्रार्थवादगता प्रमाणान्तरादप्राप्ताः प्रमाणान्तराविरोधिनोऽनेकेऽर्थाः सिद्ध्यन्ति । तदयमर्थः समस्तोप्यर्थवादभागः

प्रवर्तेत निवर्तेत वेति । पुनराह प्राभाकरः यदर्थं प्राप्तीच्छया चेतनः प्रयत्नं करोति स एव प्रयत्नस्योद्देश्यो भवति, प्रकृतेऽपूर्वस्य प्राप्तीच्छया चेतनः प्रयतते इत्यपूर्व एव प्रयत्नस्योद्देश्यो भवति ततश्च कृत्युद्देश्यत्वमपूर्वाख्यकार्ये घटते इति तदपि न मनोरमम्, इष्टस्य स्वर्गादिवस्तुनः प्राप्तीच्छया प्रयतते इति इष्ट एव पदार्थः प्रयत्नस्योद्देश्यो भवति इति नेष्टत्वव्यतिरिक्तं किमपि कार्यत्वं यत् कृत्युद्देश्यं स्यादिति विचारे कृते इष्टव्यतिरिक्तकृत्युद्देश्यत्वं न किमपि समुपलभ्यते इति न मीमांसकमतं समीचीनमितिभावः।

इतः पूर्वप्रकरणे कृत्युद्देश्यत्वमेव कार्यत्वमिति कृत्युद्देश्यत्वमेव किमत्रकार्यम्' इत्यादि । आचार्यजी पूछते हैं मीमांसक से कि आपके मत में कार्यपदार्थ क्या है ? अर्थात् कार्य का स्वरूप तथा कार्य का लक्षण क्या है ? विचार करने पर कार्य का स्वरूप तथा लक्षण सिद्ध नहीं होता है । लक्षण तथा प्रमाण के द्वारा पदार्थों का समर्थन होता है आपके अभिमत कार्य का लक्षण प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है ।

अब इस पर मीमांसक कहते हैं-'**न च कृत्युद्देश्यत्वमित्यादि**' नहीं कहो कि कृति का उद्देश्य हो उस को कार्य कहते है अर्थात् कृत्योद्देश्यत्व ही कार्य का लक्षण है। तब आचार्यजी कहते है कि तब तो कृत्युद्देश्यत्व का विचार कीजिये, कौन कृति का उद्देश्य होता है ? मीमांसक कहते है-जिसको अधिकृत करके कृति-प्रयत्न रहता हो उसको कृति उद्देश्य कहते हैं । तव पुनः आचार्यजी कहते 'पुरुष व्यापार रूप अचेतन कृति का यह अधिकार क्या है पुनराह मीमांसयः, पुरुष जिस वस्तु की प्राप्ति की इच्छा से प्रयत्न करता है ? उसकी कृति का उद्देश्य कहता हूं तब सिद्धान्ती कहते हैं कि तव तो इष्ट वस्तु की प्राप्तीच्छा से पुरुष कृति को करता है तो इष्ट वस्तु में कृत्युद्देश्यत्व सिद्ध होने से इष्ट से अतिरिक्त कृत्युद्देश्य सिद्ध नहीं होता है ।

कर्मदेवतापूजारूपयागादेः सांगोपांगस्य पूजनीयकर्मदेवतायाश्च प्रमाणान्तराप्राप्तानेकगुणात् प्रतिपादयन् कर्मणि तत्तद्यागादौ प्राशस्त्यबुद्धिं जनयति गुणानामसद्भावे प्राशस्त्यबुद्धिरेव

कार्यलक्षणमिति लक्षणं कृतं परन्तु तन्न युक्तम् कृत्युद्देश्यत्वस्येष्टत्वे पर्यवसानेन तस्य लक्षत्वासंभवात् । तत्र प्रेरकत्वं कृत्युद्देश्यत्वं तदेवकार्यस्य लक्षणमितिवादं खण्डयितुमुपक्रमते ननु न कृत्युद्देश्यत्वस्येष्टत्वेऽन्तर्भाव **इत्यादि ।**

अयंभावः-मीमांसको हि इष्टवस्तुनो रूपद्वयं मन्यते । तत्रैकंरूपमिच्छाविषयतयेष्टस्यावस्थानं पुरुषप्रेरकत्वं च । तत्रेष्टं वस्तु स्वोत्पादनाय पुरुषं प्रेरयति । तद्धि प्रेरकत्वं कृत्युद्देष्यत्वमिति । स चायं प्रेरकत्वाकार इष्टत्वाद् भिन्न इति कृत्युद्देश्यत्वस्येष्टत्वेनान्तर्भावः । इतिपूर्वपक्षाशयः । सिद्धान्ताशयस्तु यदिदं प्रेककत्वरूपं कृत्युद्देश्यत्वं तत्कृतिसाध्यत्वमेव नतु कृतिसाध्यत्वातिरिक्तम् । परन्तु मीमांसकस्य इष्टत्वकृतिसाध्यत्वाभ्यां व्यतिरिक्तंकृत्युद्देश्यमभिमतं तदाशामात्रं यतः

भावार्थ मूलग्रन्थ का यह है--मीमांसक जिसको कार्य कहते हैं उसका लक्षण क्या है ? क्योंकि लक्षणाधीन वस्तु व्यवस्था होता है ? तब मीमांसक कहते हैं कि अग्निष्टोमादिक याग प्रभृतिक जो क्रिया कलाप है वह क्षण भर में ही विनष्ट हो जाता है और फल जो स्वर्गादिक है वह तो कालान्तर अर्थात् शरीर त्याग के अनन्तर चिरकाल में प्राप्त होनेवाला होता है तो स्वर्गादिरूप फल के अव्यवहित पूर्व में यागादिक के नहीं रहने से याग में स्वर्ग के प्रति कारणत्व सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि कारण वही बनता है जो कार्य के अव्यवहित पूर्व क्षण में वृत्ति हो तथा अनन्यथा सिद्ध हो व्यवहित पूर्ववर्त्ती को कारण कदाचित मान लिया जाय तब तो कार्य कारणभाव ही नष्ठ व्यवस्थित नहीं होगा। इसलिये याग तथा यागादि जनित स्वर्ग के बीच में यागजन्य एक अपूर्व नामक पदार्थ को मानते हैं यह यागजन्य है तथा यागजन्य स्वर्ग का जनक होने से याग का व्यापाररूप है जिस तरह दण्ड जन्य होकर के दण्डजनित घट का जनक होने से दण्ड का व्यापार चक्रभ्रमि है तथा उस चक्रभ्रमिरूप व्यापार को लेकर के दण्ड घट का कारण होता है। उसी तरह प्रकृत में यागादिजन्य तथा यागादिजन्य स्वर्गादिक फल का जनक होने से अपूर्व याग का व्यापार होता है यह अपूर्व तब तक बैठा रहता

नोदीयादिति तत्तत्कर्मणि प्राशस्त्यबुद्ध्यर्थं गुणसद्भावमेव साधयति इति यथोक्तप्रकारेण मन्त्रार्थवादप्राप्ता अर्थाः सिद्ध्यन्तीति ।

प्रेरकत्वरूपं कृत्युद्देश्यत्वस्य कृतिसाध्यतायामेवान्तर्भावात् । तथाहि-यदा इष्टं वस्तु प्रयत्नं विना न संभवतीति ज्ञायते तदा तदेवेष्टं वस्तु प्रेरकं भवति । प्रयत्नमन्तरेणानुत्पद्यमानत्वमेवेष्टस्य प्रेरकत्वम् । इष्टवस्तुनं प्राप्तिविषयकेच्छायां सत्यां यदिदं प्रयत्नमन्तरेण संपन्नं विना नो संपत्स्यतीति ज्ञाने जाते पुरुषस्य तदुपाये प्रवृत्तये उपाय विषयिणीच्छोदेति ततस्तदर्थं प्रयतते 'जानातीच्छति प्रवर्तते इति नियमात् । प्रयत्न साध्यं वस्तु कृतिद्वारेणैवात्मस्वरूपं लभते नान्यथा । एतदेवेष्टस्य कृत्युद्देश्यत्वम् । एतदतिरिक्तं कृत्युद्देश्यत्वं न प्रमाणलभ्यं भवति । प्रयत्नसाध्यत्वप्रतीतौ सत्यामेवेष्टं

विनष्ट नहीं होता है फल स्वर्गादिकों का उपभोग करा करके ही विनष्ट होता है ऐसा कहा है-'**नाभूक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि**' इति। एतादृश अपूर्व द्वारा याग स्वर्ग में कारण बनता है। नहीं कहो कि अपूर्व को मानने पर भी तो याग स्वर्ग के प्रति अव्यवहित पूर्व वृत्ति नहीं होता है ऐसा नहीं कहना क्योंकि स्वस्वरूप से अव्यवहित पूर्ववृत्ति नहीं होने पर भी व्यापार द्वारा अव्यवहित पूर्ववृत्ति होने में कोई बाधक नहीं है। नहीं कहो कि तब तो स्वर्ग फल के प्रति अपूर्व को कारण मानिये याग तो अन्यथा सिद्ध हो जाता है जिस तरह कुलाल पुत्रजन्य घट के प्रति वृद्ध कुलाल पिता अन्यथा सिद्ध माना जाता है ? ऐसा नहीं कहो क्योंकि अपूर्व द्वारा पूर्व वृत्ति याग को स्वव्यापार अपूर्व से अन्यथा सिद्धत्व नहीं होता है। अन्यथा स्वर्ग के प्रति कारणरूप से याग का विधायक '**स्वर्ग कामोयजेत**' इत्यादि विधिवाक्य निरर्थक हो जायगा। अतः स्वव्यापार से व्यापारी को अन्यथा सिद्ध कहना उचित नहीं है। एतादृश अपूर्वात्मक कार्य का कृति साध्यत्व तथा इष्टत्व साधारण धर्म है और कृत्युद्देशत्व असाधारण धर्म एक है। यह अपूर्वात्मक कार्य लिङ्लोट् आदि प्रत्ययों से वाच्य होता है कार्य कृति का उद्देश्य है क्योंकि कार्य की सिद्धि करने के लिये याजमान यागादि क्रिया के लिये प्रयत्न करता है यहां प्रयत्न का विधेय है यागादि क्रिया तथा प्रयत्न का उद्देश्य है अपूर्ण तो प्रयत्न हो करके जो प्रयत्न का उद्देश्य बनता है वह कार्य कहलाता है। यही कार्य का लक्षण है। ऐसा मीमांसकों ने कहा।

卐 प्रभाकराभिमतकार्यलक्षणनिरासः 卐

ननु किमत्रकार्यमर्थात्कार्यस्य किंस्वरूपं लक्षणं चेति, न च

वस्तुप्रेरकं भवति प्रयत्नसाध्यत्वस्यैव प्रेरकत्वात् । यदि प्रेरकत्वमेव कृत्युद्देश्यत्वं तदाकृतिसाध्यत्वमेव कृत्युद्देश्यत्वमिति फलति । एवं च मीमांसकसंमतं यत् कृत्युद्देश्यत्वं कृतिसाध्यत्वेष्टत्वाभ्यामतिरिक्तं तदप्रामाणिकमेवेति । तदेवं कार्यस्य कृत्युद्देश्यत्वलक्षणं निराकृत्य कार्यलक्षणं निराकरोदिति संक्षेपः ।

प्रेरकत्वरूपं कृत्युद्देश्यत्वं पूर्वदोषान्न भवतु ? परन्तु पुरुषानुकूलत्वमेव कृत्युद्देश्यत्वमिति यन्मतं तत्दूषयितुं प्रक्रमते अथ पुरुषानुकूलत्वमेवेष्टतायाः कारणम् इत्यादि । **अयमाशयः-प्रकारान्तरेण कृत्युद्देश्यत्वं परिष्कर्तुमाह** पुरुषानुकूलत्वम् इत्यादि । **यः पदार्थः पुरुषस्यानुकूलो भवति स एवेष्टो भवति अनुलवेदनीयत्वस्यैवेष्टत्वात्**

अब यहां सिद्धान्ती पूछते हैं कि प्रयत्न का उद्देश्य किसको मानना ? तब मीमांसक कहते हैं कि जिसको अधिकार में लेकर के प्रयत्न होता है वह कृति का उद्देश्य बनता है मनुष्य स्वकीय प्रयोजन को सिद्ध करनेवाले साधन कारण को स्वकीय अपना समझता है इस ज्ञान को (समझ को) ही अधिकार कहा जाता है, इसतरह प्रयत्न अपने प्रयोजन का साधन होने से जिसको अपना मानकर प्रवृत्त होता है वह प्रयत्न का उद्देश्य कहलाता हैं याग प्रभृति क्रिया करनेवाले याज्ञिक का प्रयत्न अपूर्व को अपना प्रयोजन स्वर्गादिकों का साधन होने से अपना मानकर प्रवृत्त होता है इसलिये अपूर्व प्रयत्न का उद्देश्य कहलाता है। ऐसा मीमांसकों ने कहकर स्वपक्ष को बतलाया। अब इस पर सिद्धान्ती कहते हैं कि मनुष्य चेतन है तो वह किसी को अपना माने अथवा न माने यह हो सकता है परन्तु प्रयत्न तो चेतन नहीं है जड है तब यह किस तरह कहा जा सकता है कि प्रयत्न अपने प्रयोजन का साधन होने से साधन को अपना मानकर उस में प्रवृत्त होता है। तब मीमांसक कहते हैं कि जिस पदार्थ को प्राप्त करने इच्छा से चेतन प्रयत्न करता है वह प्रयत्न का उद्देश्य कहलाता है, अपूर्व को प्राप्त करने की इच्छा से चेतन पुरुष प्रयत्त्न करता है तो अपूर्व प्रयत्न का उद्देश्य कहलाता है इस तरह कृत्युद्देशत्त्व कार्य अपूर्व में घटता है ऐसा मीमांसकों ने कहा।

इसपर आचार्यश्री कहते हैं कि-स्वर्गादि अभिलषित वस्तु को प्राप्त करने की

कृत्युद्देश्यतैव कार्यतेति चेत्, ततः कृत्युद्देश्यत्वमेव विवेचनीयम् ? न च यमधिकृत्य कृतिर्वर्तते तदेव कृत्युद्देश्यत्वमिति, तत्र पुरुषव्यापाररूपाचेतनायाः कृतेः कोयमधिकारः ? पुरुषो

सुखत्वात् । **चेतनं प्रत्यनुकूलत्वमेवेष्टताया हेतुः । एतादृशानुकूलत्वमेव कृत्युद्देश्यत्वम्, अतएव कृत्युद्देश्यत्वमिष्टत्वकृतिसाध्यत्वाभ्यामतिरिक्तमेव । अपूर्वात्मकं च कार्यं चेतनस्यानुकूलम् । तस्मात् तत्कृत्युद्देश्यमिति । उत्तरयति** इति चेन्न इति, **तदेव स्पष्टयति** पुरुषानुकूलसुखयोरभेदादिति,**तत्रानुकूलसुखशब्दौ समानार्थकौ यच्चेतनस्यानुकूलं तत् सुखम्, यच्चेतनस्य प्रतिकूलम् तद्दुःखम् 'अनुकूलवेदनीयं सुखं प्रतिकूलवेदनीयं दुःखमिति तयोर्लक्षणम् । अपूर्वात्मकं च कार्यम् न सुखरूपं सुखभिन्नत्वाद पूर्वात्मककार्यस्य अतो न चेतनस्यानुकूलम् । न च सुखभिन्ने दुःखाभावे पुरुषाणामनुकूलता दृश्यते । तत्र दुखाभावार्थं लोकप्रवृत्तेः । इतिसुखभिन्नोऽपि**

इच्छा से चेतन प्रयत्न करता है तो इष्ट पदार्थ ही प्रयत्न का उद्देश बनता है अतः इष्टत्व तथा कृत्युद्देशत्व ये दोनों धर्म एक बन जाते हैं तब कार्य अपूर्व में इष्टत्व धर्म से अतिरिक्त जो कृत्युद्देशत्व धर्म स्वीकार किया जाता है वह इष्टत्व से भिन्न सिद्ध नहीं होता है। अर्थात् कृत्युद्देशत्व का इष्टत्व में ही समावेश हो जाता है तो इष्टत्वातिरिक्त कृत्युद्देशत्व का प्रतिपादन करना सर्वथा अशक्त है । इसप्रकार से आचार्यजी ने कृत्युद्देशत्वरूप कार्यत्व का खण्डन किया।

जिस वस्तु की प्राप्ति करने की इच्छा से पुरुष प्रयत्न करता है वह कृति का उद्देश्य कहलाता है अपूर्वात्मक वस्तु की प्राप्ति करने की इच्छा से चेतन पुरुष प्रयत्न करता है इसलिये अपूर्व का अद्देश्य कहलाता है प्रयत्न, इस तरह कृत्युद्देश्यत्व अपूर्वात्मक कार्य में घट जाता है । ऐसा मीमांसकों ने कहा था । इसके उत्तर में आचार्यजी ने कहा कि इष्ट अर्थात् अभिलषित पदार्थ की प्राप्तीच्छा से चेतन प्रयत्न करता है तो इस प्रकार इष्ट पदार्थ ही प्रयत्न का इद्देश्य बन जाता हैं । अतः इष्टत्व तथा कृत्युद्देश्यत्व यें दोनों धर्म एक होजाते हैं, तब अपने कार्य में इष्टत्व से अतिरिक्त जो कृत्युद्देश्यत्व धर्म माना है वह कृत्युद्देश्यत्व इष्टत्व से कोई अतिरिक्त सिद्ध नहीं होता है। इसप्रकार से जगदाचार्यजी ने कृत्युद्देश्यत्व का इष्टत्व में अन्तर्भाव करके जो मीमांसक को दोष दिया है उसका

यत्प्राप्तीच्छया कृतिमुत्पादयति तदेव कृत्युद्देश्यत्वम्, तदा इष्टतायामेव कृत्यद्देश्यत्वस्यपर्यवसाने नातिरिक्तकार्यत्वस्याभावात् ।

दुःखाभावोऽनुकूलो भवति, तथैव सुखभिन्नमप्यपूर्वकार्यचेचनस्यानुकूलं स्यादिति वाच्यम्। चेतनस्य स्वेतरेष्टं यत् तत् तस्यानुकूलम् इतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वात् सुखस्य, दुःखं च चेतनस्य स्वतः प्रतिकूलम् । इतरद्वेषानधीनद्वेषवियत्वाद्दुःखस्य । चेतनस्यानुकूलत्वात्सुखमनुकूलं तथा चेतनस्य स्वतः प्रतिकूलत्वाद्दुःखमनिष्टमिति सुखदुःखयोर्व्यवस्था । तत्र दुःखस्यकष्टरूपत्वेनासह्यतया तदभावोऽपि कथंचिदिष्टो भवति न तु दुःखाभावस्य स्वत इष्टत्वम्, किन्तु दुःखस्यासह्यत्वात्तथा दुःखे द्वेषसद्भावेन दुःखाभाव इष्टो भवति न तु स्वत इष्टोऽत एव दुःखाभावो नानुकूलः। यदि कदाचिद्दुःखाभावं चेतनोऽनुकूलं जानीयात्तदा तस्यभ्रममात्रमेव अतद्वतितत्प्रकारकत्वात् । सुखदुःखनिवृत्तिश्च नैकरूपम्, परन्तु विभिन्नमेव तदुभयम् । यद्युभयोरैक्यं भवेत्तदा दुःखभावोऽनुकूलवेदनीयः

निराकरण करने के लिये मीमांसक मतका पुनः उपपादन करके उपपादित मीमांसक मत का निराकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**ननु न कृत्युद्देश्यत्वस्य**' इत्यादि। कृत्युद्देश्यत्व धर्म का इष्टत्व में अन्तर्भाव नहीं होता है जिससे कि इष्टत्व से भिन्न कृत्युद्देश्यत्व कार्य का लक्षण नहीं बन सकता, अपितु कृत्युद्देश्यत्व इष्टत्व से अतिरिक्त ही है । उसमें इष्ट वस्तुओं में दो रूप रहता है एक तो इच्छा का विषय हो करके अवस्थित रहना, तथा द्वितीय रूप है पुरुष को प्रेरित करना, स्वकीय स्वरूप का निष्पादन करने के लिये । उसमें प्रेरकत्वरूप कृत्युद्देश्य कहलाता है तथा इच्छा विषय तथा अवस्थान इष्टत्व कहलाता है इसतरह कृत्युद्देश्य तथा इष्टत्व धर्म में भेद सिद्ध होता है। ऐसा हुआ तब इष्टत्व में कृत्युद्देश्यत्व का समावेश कार्य का लक्षण सिद्ध होता है। (मीमांसक का अभिप्राय यह है कि इष्ट पदार्थो का दो रूप होता है एक रूप इष्टत्व है अर्थात् इच्छा का विषय वन करके रहने का नाम होता है इष्टत्व। तथा द्वितीय रूप होता है प्रेरकत्व क्योंकि इष्टपदार्थ का स्वभाव है वह ज्ञात होने के बाद स्वोत्पत्यर्थ ज्ञाता पुरुष को प्रेरणा देता है यह जो प्रेरकत्व आकार है उस आकार को जो कि प्रेरक है उसीको कृति का उद्देश्य कहते हैं अर्थात् प्रेरकत्व कृत्युद्देश्यत्वरूप है यह प्रेरकत्वाकार इच्छा विषयतया व्यवस्थित इष्टत्व से सर्वथैव भिन्न है अतः कृत्युद्देश्यत्व का इष्टत्व में

॥ प्रेरकत्वकृत्युद्देश्यवादनिराकरणम् ॥

ननु न कृत्युद्देश्यत्वस्येष्टत्वेऽन्तर्भावो येनेष्टत्वातिरिक्तकृत्युद्देशत्वं कार्यलक्षणं न स्यात् अपितु कृत्युद्देश्यत्वमिष्टत्वादतिरिक्तमेव । तत्रेष्टस्य वस्तुनोरूपद्वयं भवति तत्रेच्छाविषयताऽवस्थानमेकरूपम् । अपरं च पुरुषप्रेरकत्वरूपम् । तत्र प्रेरकत्वं कृत्युद्देश्यत्वरूपं तथेच्छा

स्यान्नत्वेवम्, अतो दुःखनिवृत्तिर्नानुकूला तस्याः सुखरूपत्वाभावात्, सुखस्यैवेतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वेनानुकूलत्वं दुःखाभावे तथा स्वीकारस्तु भ्रममूलक एवेति । दुःखनिवृत्तिः सुखं च परस्परं विभिन्नमेव । अतो दुःखनिवृत्तिर्नानुकूलेति । सुखाभावो न दुःखरूपं दुःखाभावो वा न सुखरूपम्, किन्तु परस्परविभिन्नमेव सुखस्यभावरूपत्वाद्दुःखाभावस्य चाभावरूपत्वेन तयोस्तादात्म्यासंभवात् । यद्यपि भूतलादौ विद्यमानो घटाभावो भूतलरूप एव अभावस्य लाघवेनाधिकरणरूपत्वस्वीकारात् । यथा वायौरूपाभावो वायुस्वरूप तथापि अभावस्यातिरिक्तता

अन्तर्भाव नहीं होता है। तब कृत्युद्देश्यत्व कार्य का धर्म लक्षण बनता है इस में अव्याप्ति अविव्याप्ति और असंभवरूप जो लक्षण का दोष है उस दोष से दुष्ट नही होता है।) यह हुआ मीमांसकों का पूर्वपक्ष !

इसके उत्तर में श्रीजगदाचार्यजी कहते हैं '**सत्यम्**' इति इसका उपपादन करते हैं '**इच्छाविषयताज्ञानस्य**' इत्यादि । इच्छा के विषयरूप से ज्ञायमान जो सुखादिक इष्ट पदार्थ हैं उनकी उत्पत्ति प्रयत्न के बिना हो नहीं सकती । अतः प्रयत्नोत्पत्ति के विना सिद्ध का सिध्यभाव ही में प्रेरकत्व है, प्रयत्न से ही पुरुष की प्रवृत्ति होती है । इष्ट पदार्थ विषयक इच्छोत्पत्ति होने पर प्रयत्न जब तक नहीं होगा तब तक इष्ट की सिद्धि नहीं होगी इसका विचार करके पुरुष को इष्ट वस्तु का जो उपाय अर्थात् कारण तद्विषयक इच्छा होती है उसके बाद पुरुष इष्ट के कारण के लिये प्रयत्न करता है क्योंकि पहले वस्तु को जानता है तब तद्विषयक इच्छा होती है तदनन्तर प्रयत्न करता है ऐसा नियम है अतः कृत्यधीनत्व से अतिरिक्त कृत्युद्देश्यत्व इष्ट पदार्थों में सिद्ध नहीं होता है। (अर्थात् प्रेरकत्व रूप जो कृत्युद्देश्यत्व है वह साध्यतारूप है कृति साध्यता से अतिरिक्त कृत्युद्देश्यत्व सिद्ध नहीं होता है इसमें जो आप भेद कहते हैं वह सिद्धान्त

विषयत्वमिव कृत्यमिति कृत्युद्देश्यत्वेष्टत्वयोर्भेदः । एवं च नेष्टत्वेकृत्युद्देश्यमन्तर्गतम् । ततश्च कृत्युद्देश्यत्वमेव कार्यत्वमिति चेत् सत्यम् । इच्छा विषयतया ज्ञातस्येष्टपदार्थस्य प्रयत्नोपपत्तिं विना

स्वीकारे एव लाघवात् । यद्यभावोऽधिकरणस्वरूपोऽभ्युपगम्येत तदा एक एव घटाभावो जले प्रतीयमानोऽनेक इति गौरवं स्यात् तस्मादभावो नाधिकरणरूपः किन्त्वधिकरणात्मक एवेति । अत एवाभास्यातिरिक्तता स्वीकारे 'निर्दूषणागुणवती-रसभावपूर्णासालंकृतिः कोमलवर्णराजिः' इतिपद्ये निर्दूषणेति विशेषणेन दोषाभावस्य गुणात्मकस्य प्रतिपादनात् पुनर्गुणवतीति विशेषणं सर्वथैव निरर्थकं स्यात् यतो दोषाभावस्यत्वन्मते गुणस्वरूपत्वेन निर्दूषणेति पदेनैव गुणवत्वसिद्धेः पुनर्गुणवत्व-साधनाय दीयमानं गुणवतीति विशेषणं सिद्धसाधनदोषमेवापादयेत् । किञ्च यो

मोह मूलक दुराशा है, क्योंकि प्रेरकता रूप जो कृत्युद्देश्यता है उसका कृति साध्यता में ही अन्तर्भाव हो जाता है। आप तो इष्टत्व तथा कृति साध्यता से अतिरिक्त कृत्युद्देश्यत्व को मानते हैं। देखिये इष्ट जो पदार्थ हैं उसके विषय में यदि एतादृश ज्ञान हो कि यह इष्ट पदार्थ पुरुष प्रयत्न के बिना सिद्ध नहीं हो सकता है तव वह इष्ट सुखादि पदार्थ पुरुष का प्रेरक बन जाता है इष्ट पदार्थ का प्रयत्न के बिना अनुत्पद्यमानता ही तो इष्ट वस्तु में प्रेरकत्व होता है। विद्वानों की ऐसी मान्यता है कि जिस किसी इष्ट-अभिलषित पदार्थ के प्राप्त करने की इच्छा होती है तब यदि यह ज्ञात हो जाय कि प्रयत्न के विना यह मेरा अभिलषित पदार्थ प्राप्त नहीं होगा तब उस मुनष्य को इष्ट वस्तु के प्रापक उपाय में प्रवृत्त होने की इच्छा होती है तदनन्तर मनुष्य उपाय में प्राप्त्यर्थ प्रवृत्त होता है। जो इष्टादिक पदार्थ प्रयत्न से साध्य होता है वह इष्ट पदार्थ कारणीभूत प्रयत्न के द्वारा स्वकीय स्वरूप को प्राप्त करता है जिस तरह कपालादि सामग्री द्वारा समुत्पद्यमान घटादि पदार्थ कपालादि सामग्री से स्वकीय स्वरूप को प्राप्त करता है उसी तरह प्रकृत में भी समझना चाहिये।) और इष्ट पदार्थ को प्रयत्न द्वारा स्व स्वरूप को प्राप्त करने का नाम ही तो कृत्युद्देश्यत्व है एतदतिरिक्त कृत्युद्देश्यत्व नामक कोई पदार्थ नहीं हैं। प्रयत्न साध्य होने से ही इष्ट पदार्थ प्रेरक बन सकता है अन्यथा नहीं। अतः प्रयत्न साध्यत्वही प्रेरकत्व है। जब प्रेरकत्व हो कृत्युद्देश्यत्व है जो मीमांसकों को अभिमत है तब तो कृति साध्यत्व ही कृत्युद्देश्यत्व सिद्ध होता है न तु कृति साध्यता से अतिरिक्त कृत्युद्देश्यत्व सिद्ध होता है। इस स्थिति में मीमांसकों ने जो कृति साध्यत्व तथा इष्टत्व

सिध्यभाव एव प्रेरकत्वं तत एव प्रवृत्तिः । इष्टविषयकेच्छोत्पत्तौ सत्यां प्रयत्नोपपत्तिं विना तदसिद्धिमाकलय्य तदुपाये इच्छा भवति ततः पुरुषस्तदर्थं प्रवृत्तिं करोति इति नियमात् जानातीच्छति ततः प्रवृत्तिरिति तस्मात् कृत्यधीनत्वातिरिक्तं कृत्युद्देश्यत्वमिष्टस्य नैव

गुणो यदिन्द्रियग्राह्यस्तदभावोऽपि तदिन्द्रियग्राह्य एवेति नियमः । यथा चक्षुषारूपग्रहणे तदभावोऽपि चक्षुषैव गृह्यते नेन्द्रियान्तरेण तथा प्रकृते गन्धाभावस्य जलादिरूपतया घ्राणादिग्राह्यत्वस्य जलादावभावेन 'यो यदिन्द्रियेण गृह्यते' इत्यादिनियमेन गन्धाभावात्मकजलादेर्घ्राणाग्राह्यतयायथोक्तनियमस्यवाधः स्पष्टएवस्यादिति न सुखाभावो दुःखरूपो न वा दुःखाभावः सुखरूपः । तथा सुखदुःखाभावयोर्ज्ञाने परस्पराश्रयतापि स्यादिति नैकनिवृत्तिरपरस्य स्वरूपं भवतीति । तस्मात् सुखाभावो न दुःखस्वरूपो न वा दुःखाभावो वा सुखस्वरूप इति दर्शयति । लौकिकोदाहरणेन लोकेदृश्यते संसारासक्तस्य इत्यादि । अयंभावः-भावाभावयोर्न परस्परैकरूपतेति

से भिन्न कृत्युद्देश्यत्व को मान लिया है वह अपने घर की मान्यता है नतु प्रमाण सिद्ध है। उपर्युक्त प्रकार से आचार्यजी ने कार्य का कृत्युद्देश्यत्व असाधारण धर्म है इसका खण्डन कर के कार्य लक्षण का खण्डन कर दिया । प्रकृत विषय में विशेषचर्चा जगद्गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्य कृत प्राभाकर मतनिरास विवरण में की जायगी अतः वहीं से अनुसन्धान करना चाहिये विशेषार्थी को ।

जो इष्ट पदार्थ होता है उसमें दोरूप होता है। एक तो इच्छा का विषय बनकर के रहना यह इष्टत्व है तथा इष्ट पदार्थ का दूसरा रूप है प्रेरकत्व जो इष्ट है वह अपने को उत्पन्न करने के लिये पुरुष को प्रेरणा देता है इस प्रेरकत्वाकार को ही कृत्युद्देश्यत्व कहा जाता है एतादृश प्रेरकत्वाकार इष्ट से भिन्न है इसलिये कृत्युद्देश्यत्व का इष्टत्व में अन्तर्भाव नहीं होता है। इसका खण्डन गत प्रकरण में आचार्यजी ने कर दिया है। तब मीमांसक कहते हैं कि जो कोई भी पदार्थ हो पुरुष को अनुकूल लगता है इसलिये वह इष्ट होता है क्योंकि चेतन के प्रति अनुकूल होना ही तो इष्टत्व का कारण है, एतादृश अनुकूलत्व ही कृत्युद्देश्यत्व है। इसलिये कृत्युद्देश्यत्व को इष्टत्व तथा कृति साध्यत्व से अतिरिक्त मानते हैं, अपूर्वात्मक कार्य पुरुषों के अनुकूल है अतः

संभवति । 'कृत्येष्टस्यस्वरूपाप्तिः कृत्युद्देश्यत्वमीरितम् । प्रामाणिकं च तद्भिन्नं कृत्युद्देश्यत्वमत्र न ।।५४।।' इतिप्राभाकरमतनिरासे श्री आचार्यपादोक्तेः ।

लोकोदाहरणेन प्रपञ्चयति यतो दृश्यते खलुलोके संसारासक्तस्य बद्धजीवस्यावस्थात्रयं भवति, अनुकूलविषयसंबन्धः, प्रतिकूलविषयसंबन्धः, तथा स्वस्वरूपेऽवस्थानं चेति । भवति हि बद्धजीवस्य सुःखलेशानुभवकालेऽनुकूलसंबन्धः, दुःखानुभवकाले प्रतिकूलविषयसंबन्धः, तथा सुखदुःखरहितनिद्रादिकाले जीवस्य बद्धस्यस्व-रूपेणावस्थानं भवति । सुषुप्तिकाले जीवस्य नानुकूलसंबन्धो भवति न वा प्रतिकूलसंबन्धस्तत्काले सर्वेन्द्रियाणामुपरमात् । अर्थात् सुषुप्तिकाले ज्ञानासाधार-णकारणस्य मनसस्त्वचासंबन्धाभावेन ज्ञानसुखाद्यनुभवस्यासंभवात् तस्मिन् समये

अपूर्व कार्य को कृत्युद्देश्य माना जाता है ।

यह जो मीमांसक का पूर्व पक्ष है उसका निराकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं '**अथ पुरुषानुकूलत्वमेवेष्टतायाः कारणमित्यादि**' अमुक पदार्थ इष्ट है इसका कारण है पुरुषानुकूलत्व अर्थात् जिसलिये पुरुष का अनूकूल है इसलिये वह इष्ट कहलाता है । इसलिये पुरुषानुकूलत्व ही कृत्युद्देश्यत्व है न तु प्रेरकत्वरूप कृत्युद्देश्यत्व है जैसा कि पूर्व प्रकरण में कहा गया था । यह मीमांसक का पूर्व पक्ष है ।

इसप्रकार का जो पूर्वपक्ष है, उसका उत्तर देने के लिये कहते हैं '**इति चेन्न पुरुषानुकूलसुखयोरभेदादित्यादि**' पुरुषानुकूलत्व तथा सुख यह दोनों वस्तु अभिन्न है, क्योंकि 'जो अनुकूल वेदनीय होता है वह सुख है' ऐसा सुख का लक्षण है । और 'जो प्रतिकूल वेदनीय होता है वह दुःख है' ऐसा दुःख का लक्षण है । इसप्रकार से सुख दुःख दोनों पदार्थ व्यवस्थित हैं । इसलिये सुख से भिन्न कोई भी पदार्थ पुरुष को अनुकूल नहीं होता है । अर्थात् मीमांसकों ने जो कहा कि 'अपूर्व कार्य चेतनों का उद्देश्य माना जाता है' यह कथन मीमांसक का ठीक नहीं हैं क्योंकि यह अपूर्व कार्य चेतनों का कनुकूल है ऐसा नहीं कह सकते हैं 'जो अनुकूल चेतन को लगता है वह सुख कहलाता है और जो चेतन के प्रतिकूल भासित होता है उसको दुःख कहते हैं । चेतनानुकूल और सुख ये दोनों शब्द एकार्थवाचक होने से घट कुंभ की तरह पर्याय शब्द हैं और अपूर्व कार्य कोई सुख रूप नहीं है किन्तु सुख से भिन्न है तब अपूर्व कार्य चेतनका अनूकूल

॥ पुरुषानुकूलत्वकृत्युद्देश्यवादनिराकरणम् ॥

अथ पुरुषानुकूलत्वमेवेष्टतायाः कारणं तादृशपुरुषानुकूलत्वमेव कृत्युद्देश्यत्वं न तु प्रेरकत्वं कृत्युद्देश्यत्वमिति चेन्न पुरुषानुकूलसुखयोरभेदात् 'सर्वेषामनुकूलवेदनीयंसुखमिति

जीवः केवलंस्वस्वरूपेणैवावस्थितो भवतीति ।

ननु सुषुप्तिकाले इन्द्रियानुमानादिज्ञानकारणस्याभावेन प्रत्यक्षादिज्ञानानां स्वस्वकारणाभावादेव नोत्पत्तिः संभवति तत्कथमुच्यते नानुकूलप्रतिकूलसंबन्ध इति ज्ञानादिकं न जायते इति तत्रोच्यते सुषुप्त्यव्यवहितपूर्वकाले जायमानेच्छादेः त्रिक्षणावस्थायित्वनियमेन सुषुप्तेरनन्तरं द्वितीयतृतीयक्षणेऽनुभवः केन वारितः स्यात् इति तेषामिच्छादीनामनुभवस्त्वङ्मनः संयोगाभावात् न भवति तदानीं मनः पुरीत-तिनाड्या प्रविष्टं भवतीति तदा केवलं बद्धजीवस्य स्वरूपेणावस्थानं भवतीति । एवं

किस तरह से होगा ? अर्थात् अनुकूल नहीं होसकता है । अतः अपूर्व को चेतनका अनुकूल कहकर कृतिका उद्देश्य कहना सर्वथा असंगत है इसप्रकार श्रीजगदार्यजी ने मीमांसक के मत का निराकरण कर दिया ।

अब मीमांसक पुनः शंका करता है-'**न च सुख भिन्ने दुःखाभावे**' इत्यादि, दुःखाभाव सुख से भिन्न है अर्थात् सुख स्वरूप नहीं है परन्तु उस दुःखाभाव में पुरुषों को अनुकूलत्व तो देखने में आता है अर्थात् दुःख की निवृत्ति जो कि सुख से अतिरिक्त है क्योंकि अभाव अधिकरण स्वरूप नहीं है तथापि दुःख निवृत्ति चेतन को अनुकूल लगता है तो यह कोई नियम नहीं है कि सुख ही पुरुषानुकूल हो दुःखाभाव भी अनुकूल होता है, इसी तरह सुख से भिन्न अपूर्वात्मक कार्य भी चेतनों को अनुकूल है ऐसा मानना चाहिये । इस के उत्तर में आचार्यश्री कहते हैं- '**आत्मानुकूलप्रतिकूभयोरित्यादि**' आत्मा चेतन के अनुकूल तथा प्रतिकूल में सुख दुःख शब्द का व्यवहार होता है उसमें आत्मानुकूल सुख में इष्टत्व व्यवहार होता है और चेतन के प्रतिकूल दुःख में इष्टत्व व्यवहार नहीं होता है । इसलिये दुःख सम्बन्ध के उद्वेजक होने से दुःखाभाव कथञ्चित् इष्ट की तरह प्रतिभासित होता है । तब सुख तथा दुःखाभाव में इष्टत्व को समान होने से दुःखाभाव में भी अनुकूलता का भ्रम होता है, नतु दुःख के अभाव में कथमपि अनुकूलत्व है क्योंकि अभाव होने से अनुकूलत्वाभाव का धर्म है तो एतादृश धर्म अभाव में नहीं रह सकता

सुखलक्षणम् । एवं पुरुषस्य यत् प्रतिकूलंतत् दुःखम् 'प्रतिकूलवेदनीयं दुःखमितितल्लक्षणात् । तस्मात् सुखातिरिक्तस्य कस्यापिपदार्थस्य पुरुषस्यानुकूलत्वं नभवति ।

प्रकारेणावस्थात्रयं भवति जीवस्येति कथितम् ।

अथ यदि सुखनिवृत्तिः दुःखयोरेकत्वं तथा दुःखनिवृत्तिसुखयोरेकपदार्थत्वमभ्युपगम्येत तदा निद्राद्यवस्थायां बद्धजीवस्य सुखदुःखे स्वीकृते स्याताम् यतो निद्राकाले सुखनिवृत्तौ तदात्मकंदुःखं स्यात् तथा दुःखनिवृत्त्या तत्स्वरूपसुखमपि स्वीकृतं स्यात् । परन्तु नैवं सम्भवति बिरुध्दयोस्तयोरेकत्राऽनुभवासम्भवात् ।

नच निदाघे जाह्नवीसलिलनिमग्नस्य सर्वाङ्गीणसुखमुपलभ्यते, अन्यथा ज्वरादिरोगाद्याक्रान्तस्यपादसंवाहनकरणकाले एकदैव शिरसि मे वेदना पादे सुखमिति प्रतीतिर्जायते इतिवाच्यम् तत्राप्येककालिकत्वासिद्धेर्मनसोऽतिसूमत्वेन सर्वत्रसदासञ्चरणादेककालिकत्वस्याभासमात्रमेव भवति । तस्मात्

है। अर्थात् पदार्थों में इष्टत्व दो प्रकार से होता है एक तो स्वतः इष्टत्व होता है तथा दूसरा परतः होता है उस में सुख में स्वतः इष्टत्व होने से अनुकूलत्व है दुःखाभाव में परतः इष्टत्व हैं। अर्थात् जो स्वतः इष्ट होता है वह अनुकूल होता है यथा सुख और जो स्वतः अनिष्ट है वह प्रतिकूल कहा जाता है दुःख चेतन को अनिष्ट है इसलिये प्रतिकूल है, किन्तु दुःख चेतन मात्र को असह्य लगता है इसलिये दुःख की निवृत्ति इष्ट होती है, परन्तु दुःख निवृत्ति स्वतः इष्ट नहीं होने के कारण अनुकूल नहीं मानी जाती है। इस स्थित में यदि चेतन दुःख निवृत्ति को कदाचित् अनुकूल समझें तों उसको भ्रम मात्र ही कहना चाहिये। जिस तरह सुःख सबको प्राणी मात्र को इष्ट होता है उसी तरह दुःख द्वेष के कारण दुःख निवृत्ति भी प्राणी मात्र को इष्ट होती है और इष्ट होने के कारण चेतन सुख तथा दुःख निवृत्ति इन दोनों को अनुकूल मान लेता है अर्थात् अनुकूलत्वाभाववत् दुःख निवृत्ति में अनुकूलत्व को जानता हुआ भ्रान्त कहलाता है परन्तु वस्तुतः दुःख निवृत्ति स्वतः इष्ट होने के कारण उस में अनुकूलत्व नहीं माना जाता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति सुख की तरह जो दुःखाभाव को भी उपादेय समझते हैं सो दुःख निवृत्ति में इष्टत्व होने से भ्रम से अनुकूलत्व को भी मान लेते हैं वस्तुतः वह वैसा नहीं है किन्तु शुक्तिका में रजत की तरह प्रतिभास मात्र होता है तथा भ्रम ज्ञान भी व्यवहार का प्रयोजक होता है इसलिये दुःखाभाव को भी कतिपय व्यक्ति

न च सुखभिन्नेदुखाभावेऽपिपुषाकूलत्वं दृष्यते इति वाच्यम् आत्मानुकूलप्रतिकूलयोःसुखदुःखव्यवहारदर्शनात् । तत्रात्मानुकूलंसुखमिष्टं भवति पुरुषप्रतिकूलं च दुःखं नेष्टं भवति । अतोदुःखसुखातिरिक्तेदुःखेपरस्परं विभिन्ने एव । तृतीयावस्थायामर्थात् स्वरूपावस्थानसमयेऽनुकूलसम्बन्धप्रतिकूलसम्बन्धयोरभावेन प्रातिकूलदुःखसम्बन्धे भवत्यपि स्वरूपावस्थानमिच्छति यस्तदादुःखसम्बन्धनिवृत्तेः । यद्यपि स्वरूपावस्थानं नानुकूलं यतस्तदासुखासत्वात् सुखाभावेऽपि स्वरूपावस्थानमत एवेष्टं यतस्तदानीं दुःखाभावात् इष्टत्वात्स्वरूपावस्थानं भयादेवानुकूलं बद्धोजीवोमन्मते । वस्तुतस्तु स्वरूपावस्थानं नानुकूलं सुखाभावात् । न प्रतिकूलं दुःखाभावादपितु इष्टतामात्रमेव । सुखमात्रमेवानुकूलं नतु सुखव्यतिरिक्तं योगापरपर्यायमपूर्वकार्यं मीमासकाभिमतं कदाचिदप्यनुकलमिति

अनुकूल कहते हैं। यदि दुःख निवृत्ति तथा सुख एक पदार्थ हो तब दुःख निवृत्ति को अनुकूल कह सकते हैं। परन्तु दुःख की निवृत्ति तथा सुख ये दो तो भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं क्योंकि दुःख निवृत्ति अभाववरूप है और सुख भावात्मक हैं तो भाव और अभाव का तादात्म्य हो नहीं सकता है इसलिये दुःख निवृत्ति को अनुकूल नहीं मान सकते हैं।

सुख निवृत्ति और दुःख को तथा दुःख निवृत्ति तथा सुख के अभाव को अधिकरण स्वरूप माननेवाले दार्शनिक लोग एक मानते हैं क्योंकि जिस अधिकरण में जिसका अभाव प्रतीत होता है वह अभाव उस अधिकरण का स्वरूप है तत्तदधिकरण प्रमाण सिद्ध है तो अभाव को अतिरिक्त मानने में गौरव होता हैं। परन्तु ऐसा मानने में अधिकरण को अनेक होने से गौरव होगा अतः अतिरिक्त मानने में ही लाघव है। अतः सुखाभाव तथा दुःख को भिन्न भिन्न पदार्थ मानना ही युक्ति प्रमाण संगत है, क्योंकि लोक में भी देखा जाता है कि इस संसार में जितने बद्ध जीव हैं उनकी तीन प्रकार की अवस्था होती है अनुकूल सम्बन्धावस्था-१ प्रतिकूल संबन्धावस्था-२ तथा स्वरूपावस्था-३ । इसमें सुखानुभवकाल में जीव को अनुकूल सम्बन्ध रहता है जैसे निदाघकाल में तप्त शरीरक जीव को जाह्नवी जल में निमग्न होने से अनुकूलात्मक सुख सम्बन्ध होता है। दुःखानुभवकाल में जीव को प्रतिकूल सम्बन्ध होता है तथा ज्वरादि रोगाक्रान्त को प्रतिकूल सम्बन्ध होने से जो अवस्था है वह द्वितीय है और निद्रा सुषुप्तिकाल में चेतन को न अनूकूल सम्बन्ध का भान रहता है न वा प्रतिकूल सम्बन्ध का भान होता है क्योंकि ज्ञानादिजनक

संबन्धस्योद्वेजकतयादु:खाभावकथंचिदिष्टो भवति । ततश्चसुखेदु:खाभावेचेष्टतायाः समानत्वाद्दु:खाभावेप्यनुकूलताया भ्रममात्रंभवति नतु दु:खाभावेवस्तुतोऽनुकूलता अभावत्वादेवेति ।

नापूर्वस्यानुकूलतेतिदिक् ।

यथा स्वर्गादिकंसुखविशेषः स्वत एवेति तदनुकूलम्, एवं नियोगापरपर्यायमपूर्वात्मकंयागादिक्रियाजनितं कार्यमपि सुखविशेष एवेति तस्याप्यनुकूलत्वमन्तुमुचितमितिमीमांसकमतार्थविशेषस्य निराकरणायोपक्रमते अत्राह मीमांसक **इत्यादि । यथा चन्दनमालावनितादिसङ्गमजन्यं सुखं सुखविशेष इति स्वत इष्टं भवदनुकूलं भवति तथैवापूर्वात्मकंनियोगाख्यं वस्तु सर्वस्यानुकूलमित्यवश्यं मन्तव्यमिति प्रश्नग्रन्थस्याशयः । उत्तरयति जगदाचार्यपादः**-तत्र अभिलाषाविषयतयेत्यादि । **नियोगोऽपूर्वापरपर्यायो न सुखविशेषः संभवति, कुतः ? सुखमेव स्वत इष्टं भवतीति**

प्रत्यक्षानुमानादि सामग्री का अभाव रहने से उस समय में चेतन स्वकीय स्वरूप में अवस्थित रहता है यह तृतीयावस्था है ।

अब यदि सुखाभाव तथा दु:ख को एक पदार्थरूप में स्वीकार कर लिया जाय तथा दु:खाभाव तथा सुख को एक पदार्थ के स्वरूप में मान लिया जाय तब तो सुषुप्ति प्रभृतिक अवस्था में जीवको जो कि बद्ध है उसको सुख दु:खानुभव होता है ऐसा मानना पडेगा क्योंकि निद्रा अवस्था में सुख का अभाव रहने के कारण दु:ख का सद्भाव को स्वीकार करना पडेगा तथा दु:ख के अभाव के रहने सुखानुभव होता है ऐसा मानना पडेगा क्योंकि अभाव को अधिकरण स्वरूप मान लिया है परन्तु ऐसा तो मान सकते नहीं हैं क्योंकि सुख दु:ख के अनुभव को समानकालिकत्व अनुभव विरुद्ध है । परन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं है क्योंकि निद्रादिक समय में जीव सुख दु:ख रहित हो करके स्वरूप में अवस्थित रहता है । इसलिये ऐसा मानना पडेगा कि दु:ख निवृत्ति और सु:ख निवृत्ति और सुख ये दोनों परस्पर विभिन्न पदार्थ है तथा सुख निवृत्ति और दु:ख ये दोनों परस्पर विभिन्न पदार्थ हैं एक रूप नहीं हैं । तृतीयावस्था में अर्थात् स्व स्वरूप में अवस्थित रहने के समय में अनुकूल सम्बन्ध तथा प्रतिकूल संबन्ध ये दोनों निवृत्त हो जाते हैं अर्थात् निद्रादि समय में न तो सुख रहता है नवा दुख ही रहता है । अतएव दु:खी जीवको निद्रा में प्रवृत्ति होती है । प्रतिकूल दु:खका सम्बन्ध होनेपर जीव स्व स्वरूप में अवस्थान इस लिये

सुखाभावोदु:खं च परस्परं विभिन्नम्, तथा दु:खाभावःसुखं च परस्परंभिन्नमेव नत्वेकम् । लोकेदृश्यते संसारासक्तस्यावस्थात्रयं भवतीति, पुरुषस्यानुकूलसंयोगः प्रतिकूलसंयोगः स्वरूपेणा-

नियमात् । नियोगस्तु इष्टसाधनतयेष्टो भवति न स्वत इष्टो बनितादिवत् । अभिलाषाविषयीभूतं यत्स्वर्गादिसुखं स्वत इष्टं तस्य कारणं भवदिष्टसाधनम् । स्वर्गादीष्टस्य कारणत्वात् नियोगोऽयं स्थिर इत्यपूर्वमिति च भवति, स्वर्गकारणयागादौ प्रेरकत्वादयं नियोगो नियोग इति, नियुज्यते प्रेर्यते स्वर्गकारणयागादौ यजमानो येन स नियोग इति नियोगपदव्युत्पत्तेः । कालान्तरे शरीरपातानन्तरजायमानस्वर्गादिकं प्रति साक्षादव्यवहितपूर्ववृत्तित्वेन नियोगस्य स्थिरत्वमपि

चाहता है कि उस समय दु:ख का सम्बन्ध निवृत्त हो जाता है एतादृश स्वरूप में अवस्थान अनुकूल नहीं है क्योंकि उस समय में अर्थात् दु:ख निवृत्ति के समय में सुख नहीं अनुभूत होता है । सुख का सद्भाव न होने पर भी तादृशवस्थान इसलिये इष्ट होता है कि उस समय में प्रतिकूल दु:ख का सम्बन्ध नहीं रहता है इष्ट होने के कारण चेतन भ्रम से उसको अनुकूल सगझ लेता है वस्तुतः वह अनुकूल नहीं है कथञ्चित् इष्टमात्र है अर्थात् स्वरूप में अवस्थान अनुकूल नहीं है तथा दु:ख निवृत्ति मात्र भी अनुकूल नहीं है केवल सुख ही प्राणीमात्र के लिये अनुकूल है इसलिये कहा है कि '**सर्वेषामवुकूलवेदनीयं सुखमिति** ।' इसी तरह प्रकृत में सुख में भिन्न जो अपूर्वात्मक कार्य है जिसको नियोग कहते हैं वह भी अनुकूल अर्थात् सुखरूप नहीं है, अतः अपूर्व कार्य को अनुकूल मानना प्रमाण विरुद्ध है नियोग तो केवल स्वर्ग का साधन होने से इष्ट मात्र है । इसप्रकार जगदाचार्यश्री ने मीमांसकाभिमत अपूर्व कार्य में अनुकूलता का निराकरण कर दिया ।

इस से पूर्व प्रकरण में कहाथा कि निद्राद्यवस्था में दु:ख का अभाव रहता है परन्तु वह अनुकूल नहीं है किन्तु दु:ख के उद्वेजक होने से इष्टत्व मात्र है इसी प्रकार नियोग इष्ट है किन्तु अनुकूल नहीं है क्योंकि सुख व्यतिरिक्त कोई भी पदार्थ अनुकूल नहीं होता है सुखमात्र अनुकूल होता है । इस पर पुनः मीमांसक कहते हैं कि जो यह अपूर्वात्मक कार्य है जो कि नियोग शब्द से व्यवहृत होता है वह भी सुख विशेष ही है इसलिये नियोग को भी अनुकूल मानना चाहिये । नियोग वह नियोग भी एक सुख विशेष

वस्थानं चेति । तत्रप्रतिकूलसंबन्धाभावोऽनुकूलसंबन्धाभावश्चपुरुषस्य स्वरूपेणावस्थानमेव । ततश्चप्रितकूलसंबन्धसत्वेवर्तमानेतन्निवृत्तिरूपास्वरूपावस्थितिरपीष्टा भवति तथा इष्टसादृश्यात्तत्रानुकूलतायाभ्रमं भवति । अतोनियोगस्यसुख-

स्वीकृतं भवति । सोऽयं नियोगोऽतीन्द्रियत्वात्प्रत्यक्षादिप्रमाणेनानधिगतत्वात् शास्त्रमात्रेण ज्ञायमानत्वाच्चापूर्वमिति कथ्यते । तथा यागादिकारणेन जायमानत्वात्कार्यमित्यपि च कथ्यते । ननु एतादृशनियोगसिद्धौ किंप्रमाणमिति चेत् 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिवाक्यमेव प्रमाणमिति गृहाण । तथाहि-'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिवाक्येन स्वर्गमुद्दिश्य यागस्य विधानात् । अर्थात् यस्तु स्वर्गं कामयते स यागं दर्शपौर्णमासादिकंसंपादयतु । तत्र यागक्षणविध्वंसित्वात् शरीरपातानन्तरभाविस्वर्गात्मककार्याव्यवहितपूर्ववृत्तित्वं न संभवति चिरविनष्टत्वात् । अतो

ही है तादृश नियोग में भी सुख की तरह अनुकूलत्व है, अर्थात् वह नियोग भी अनुकूल हैं ? इस प्रश्न का समाधान करने के लिये कहते हैं '**तत्र**' यह कहना ठीक नहीं है इस अपूर्व कार्य को सुख नहीं कहते हैं क्योंकि सुख ही स्वतः इष्ट होता है किन्तु यह जो नियोग है वह अभिलाषा विषयताया उपनीयमान जो स्वर्गादिरूप अर्थ विशेष है उसका संपादक जनक होने से याग क्रिया जनित नियोग में प्रेरकत्वरूप नियोगत्व तथा कालान्तर में होनेवाला जो स्वर्गादिक फल उसके अव्यवहित पूर्वक्षण वृत्ति होने से चिर स्थितिक रूप स्थिरत्व, एवं प्रत्यक्षादि प्रमाण से अप्राप्त होने से मात्र शास्त्र प्रमाण से सिद्ध होने से अपूर्वत्व भी सिद्ध होता है।

(अर्थात् अपूर्वकार्य विशेषकों सुख नहीं कहते हैं क्योंकि स्वतः इष्ट तो सुख ही होता है नियोग तो इष्ट स्वर्ग का साधन है इसलिये इष्ट होता है स्वतः नहीं । इष्ट साधन होने से नियोग को प्रेरक प्रवृत्तिजनक तथा स्थिर एवं अपूर्व माना जाता है) कालान्तर में जनक होने से स्थिर कहते हैं, इसको अपूर्व इसलिये कहते हैं कि यह प्रत्यक्षादि प्रमाण से ज्ञात नही होता है तथा वेदैकसमधिगम्य है इसलिये अपूर्व कहलाता हैं । इस तरह यह साधन होने से अपूर्व कार्य में नियोगत्व प्रेरकत्व तथा अपूर्वत्व सिद्ध होता है । '**स्वर्गकामः**' इत्यादि वाक्य में स्वर्गकाम पद समभिव्याहार होने से अपूर्वात्मक कार्य में स्वर्ग कारणत्व का निश्चय होने से यह अपूर्व यागादि

रूपतयाऽनुकूलत्ववचनमप्रामाणिकमेवेति 'स्वतश्चेष्टं न तन् तस्मादनुकूलं न तत्र हि । सुखेदुःखनिवृत्तौ च भेद एव हि सङ्गतः ॥५१॥ इत्यन्तप्रबन्धेन जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्येणप्रपञ्चितं प्राभाकरमतनिरासे ।

यागादिक्रियाजनितोऽपूर्वो यावत्फलं विद्यमानस्तथा स्वर्गाव्यवहितपूर्वक्षणे वर्तमानः स्वर्गादिफलं कालान्तरेऽपि जनयति । तदुक्तम् 'चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना' इति । यद्यपि स्वर्गात्मकफलाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वं नियोगस्य न तु यागस्य तथापि यागजन्यत्वे सति यागजन्यस्वर्गादिजनकत्वरूपव्यापारलक्षणलक्षित अपूर्वात्मकव्यापारद्वारा स्वर्गाव्यवहितपूर्वकाले विद्यमानो यागो जनयन् स्वर्गं तत्कारणं भवति । न च तदास्वर्गं प्रतिनियोगस्य कारणत्वं यागस्यान्यथासिद्धत्वं स्यादिति वाच्यम् व्यापारेण व्यापारिणोऽन्यथासिद्धत्वाभावात् । अन्यथा घटादिकार्यस्थलेऽपि

क्रिया से अतिरिक्त है यह भी सिद्ध होता है। इसलिये अपूर्वात्मक कार्य सुख रूप होने से स्वतः इष्ट नहीं है किन्तु सुखात्मक स्वर्गादि के प्रति साक्षात् जनक होने से इष्ट होता है यह मूलाक्षरार्थ है। अभिप्राय यह है कि '**स्वर्गकाम**' पद का समभिव्याहार होने से यागादिक स्वर्ग का कारण है ऐसा ज्ञात होता है अर्थात् जो स्वर्ग काम है तादृश व्यक्ति को याग अवश्य कर्तव्य है अन्यथा अपूर्व नहीं सिद्ध होगा। यद्यपि याग क्षण प्रध्वंसी है वह कालान्तर में होनेवाला स्वर्ग फल के अव्यवहित पूर्व में नहीं रहता है तथापि यागादिक कार्य से स्थिर एक अपूर्व सिद्ध होता है उस अपूर्व के द्वारा यांग स्वर्ग का कारण वनता है। याग से उत्पन्न होने वाला अपूर्व क्षणिक नहीं है किन्तु स्वर्गरूप फलं के अव्यवहित पूर्व काल तक रहने से अपेक्षित स्थिर है, यह अपूर्व स्वर्ग के अव्यवहित पूर्वक्षण में रह कर के फल का उत्पादक होता है। इस तरह याग तथा अपूर्व स्वतः इष्ट नहीं है किन्तु स्वर्गरूप इष्ट का साधन है इसलिये अपूर्व को सुख विशेषमान कर के अनुकूल कहना अप्रमाणिक है। इस तरह आचार्यजी ने अपूर्व में सुख विशेषरूपता का खण्डन कर दिया ।

मीमांसक कहते है कि यह जो नियोग है जो कि अपूर्व कार्य से व्यवहृत होता है वह पुरुष का अनुकूल एवं सुखरूप है । एतादृश मीमांसक कथन सव लोगों के अनुभव से विरुद्ध है क्योंकि किसी भी चेतन पुरुष को नियोग अर्थात् अपूर्व कार्य सुखरूप से ज्ञायमान नहीं होता है

ψ अपूर्वात्मककार्यस्यसाधनतयानिर्वचनम् ψ

अत्राह मीमांसकः, यदिदमपूर्वात्मकंकार्यंनियोगापरपर्यायं तदपिसुखविशेषमेव तस्मिन्नपिसुखवदेवानुकूलत्वम्। तन्न अभि-

चक्रभ्रम्यादिव्यापारेणैव कार्यसिद्धौदण्डादेरप्यन्यथासिद्धत्वप्रसङ्गात्। न चेष्टापत्तिः सर्वत्रकरणकारणस्य नैरर्थक्यप्रसङ्गः स्यात् व्यापारवत्कारणमेव करणं भवतीति व्यापरस्य तत्र तत्रावश्यंभावेन तत एव घटादिकार्यसिद्धिसंभवेन करणकारके कारणत्वकथा सर्वथा सर्वत्रैवास्तमियात्। न च तदपि भवतु का क्षतिरिति वाच्यम् स्वर्गादौ यागादेः कारणता बोधक 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिवेदवाक्यस्या-प्रामाणिकत्वप्रसङ्गात्। अर्थात् तत्रापि मध्यवर्त्ति, अपूर्वादेव स्वर्गसंपादनसंभवेन यागादेः करणत्वं हातव्यमेव भवेदिति स्वर्गकरणतायागस्य यत् श्रुत्या विहितं तदनर्थवं भवत् वेदवाक्यं स्वप्रामाण्यमेव जह्यादिति न व्यापारेण व्यापारिणोऽन्यथासिद्धत्वम्।

इत्यादिक दोष को बतला करके इस मत का खण्डन करने के लिये कहते हैं '**यतोऽपूर्वात्मक कार्यम्**' इत्यादि। जिसलिये अपूर्वात्मक कार्य केवल समीहित स्वर्गादि फल का साधन मात्र है किन्तु स्वतः सुखरूप नहीं है इसलिये सुखरूप हो करके पुरुषों का अनुकूल है एतादृश कथन सर्वलोक विरुद्ध है। जो लोग अर्थात् मीमांसक लोग नियोग को सुखरूप मानते हैं तथा सर्व पुरुष के लिये नियोग अनुकूल है ऐसा मानते है उन मीमांसक को भी स्वानुभव का विरोध ही होता है अर्थात् ये लोग भी नियोग सुख का अनुभव नहीं करते हैं।

और भी देखिये वेद में कहा है कि '**कारीर्या वृष्टिकामो यजेत**' (वृष्टि कामनावान् पुरुष कारी नामक याग को करें) जब धान सुखने लगता है जलाभाव से तब यह याग किया जाता है अर्थात् शीघ्र वर्षण के लिये यह कारीरि याग किया जाता है। यद्यपि याग करने से अवश्यमेव तत्काल में वर्षा हो यह नियम नहीं है क्योंकि '**कर्माङ्ग वैगुण्यात्**' कर्म के अङ्ग में वैगुण्य होने से अर्थात् कर्ता में कोई दोष हो कर्म के अङ्ग में न्यूनाधिक दोष हो साधन में किसी प्रकार का दोष होने से अथवा प्रबल प्रारब्ध से प्रतिबन्ध होने पर वर्षा तत्काल नहीं भी होती है तथापि एतादृश प्रतिबन्धक तथा दोष न रहे तो वर्षा अवश्य होती है। वहां याग के समाप्त होने पर ही अपूर्वात्मक कार्य उत्पन्न हो जाता है वह वर्षा होने तक स्थिर रहकर वर्षण को उत्पन्न करता है। यदि अपूर्वात्मक

लाषाविषयतयोपनीतस्यसुखलक्षणस्वर्गाद्यर्थस्यसंपादकतयैवयागक्रियाजनितनियोगस्यप्रेरकत्वरूपंनियोगत्वं कालान्तरभाविस्वर्गाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तितयाचिरस्थेमानत्वापरपर्यायंस्थिरत्वंघटपटादिवत् प्रत्यक्षादिप्रमाणाप्राप्ततयाशास्त्रैकसमधिगतत्वा-

विशेषस्त्वन्यत्रद्रष्टव्यः।

तस्मात्स्वर्गादिरूपेष्टस्य साधनतयोपस्थितमपूर्वनियोगपर्यायं न स्वत इष्टम्। अत एवैतादृशो नियोगो न सुखविशेषरूपोऽपित्विष्टसाधनमेवेति ग्रन्थस्य संपिण्डितोर्थः। मूलाक्षरार्थस्तु न तिरोहितोऽतो न प्रपञ्चितः स्वयमेवोहनीय इतिविस्तरभयादुपरतः।

मीमांसकोहि नियोगापरपर्यायमपूर्वाख्यं कार्यं चेतनस्यानुकूलं सुखरूपमितिमन्यते तत्सर्वानुभवविरुद्धत्वात्सर्वथैवोपेक्ष्यमिति दर्शयितुमुपक्रमते यतोऽपूर्वात्मकंकार्यम् इत्यादि। अपूर्वं हिइष्टस्य स्वर्गादेः साधनं नतु सुखम्। अतस्तस्य

कार्य सुखरूप हो तब याग कर्ता यजमान को याग तथा वृष्टि के अन्तराल काल में अपूर्वात्मक सुख का अनुभव होना चाहिये परन्तु तादृश अनुभव किसी को भी नहीं होता है। एतादृश उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध होता है कि अपूर्व में किसी को भी सुखत्व अनुकूलत्व का अनुभव नहीं होने से अपूर्वात्मक कार्य न सुखरूप है न वा अनूकूल है। इसलिये अर्थात् अनुभव विरुद्ध होने से मीमांसकों ने जो अपूर्वात्मक कार्य को पुरुष का अनुकूल मानकर के अपूर्व का कृत्युद्देश्यत्व सिद्ध किया था वह सर्वथा अप्रामाणिक ही है। अपूर्वात्मक कार्य में कृति साध्यत्व तथा स्वर्गादि फल का जनक होने से इष्टत्व धर्म अवश्य मन्तव्य है। परन्तु कृति साध्यत्व तथा इष्टत्व से अतिरिक्त जो कृत्युद्देश्यत्व धर्म को मानते है वह प्रमाण से सिद्ध नही होता है। इसप्रकार से आचार्यजी ने कृत्युद्देश्यत्वरूप अपूर्व का निराकरण कर दिया है। मीमांसक कहते हैं कि जो प्रयत्न का शेषी बनता है वह कृत्युद्देश्य कहलाता है इस मत का खण्डन करने के लिये उपक्रम करते हैं '**अत्राह पुनर्मीमांसकः**' इत्यादि यहां पुनः मीमांसक कहते हैं कि प्रयत्नकृति के प्रति जो शेषी हो वही कृति का उद्देश्य कहलाता है। इसमें आचार्य जी पूछते हैं कि किसको यहां शेष कहते है तथा किसको शेषी कहते है ऐसा विचार आवश्यक है। इसमें मीमांसक कहते हैं कार्य के साथ जो संबन्ध रखता है अर्थात् कार्य के लिये रहता है वह शेष कहलाता है अर्थात् उसका नाम होता है शेष तथा तादृश शेष से सम्बन्ध रखने

पूर्वत्वं च प्रतीयते । 'स्वर्गकामोदर्शपूर्णमासाभ्यां' यजेत इत्यादौस्वर्गकामपदसमभिव्याहारेण स्वर्गसाधनतायानिश्चयात् । अपूर्वात्मककार्यस्ययागादिक्रियातिरिक्तत्वंस्थितं भवति । तस्मा दपूर्वात्मकं न सुखरूपतयास्वत इष्टमपितु स्वर्गादिसुखविशे षस्यजनकतयेष्टं भवति ।

तथात्वस्वीकारः सर्वानुभवविरोधादेवोपेक्षितो भवति । यथा 'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम्' 'अपामसोमममृता अभूम अगन्म ज्योतिरविदामदेवान्' इत्यादिशास्त्रेण तथा 'स्वर्गसुखमनुभवामीति प्रतीत्या स्वर्गादेः सुखरूपता सिद्ध्यति न तथा शास्त्रे वा लोकानुभवो वा अपूर्वस्य सुखात्मकत्वे प्रमाणमस्ति, तस्मादपूर्वं कार्यं न सुखात्मकं न वा चेतनानामनुकूलमिति किन्तु कृतिसाध्यत्वे सतीष्टत्वमात्रमेव न तु कृतिसाध्यत्वेष्टत्वातिरिक्तकृत्युद्देश्यत्वस्य नियोगे सिद्धिर्भवतीति भावः ।

वाला जो कार्य वह शेषी कहलाता है। तो इससे यह फलित हुआ कि कार्यत्व ही शेषी बना, तब कार्य के लक्षण में कार्यत्व का अनुप्रवेश होने से आत्माश्रय दोष हो जाता है। तब मीमांसक कहते है कि परोद्देश्य से प्रवृत जो कृति तादृश प्रयत्न का विषय बने यथा याग को उद्देश्य कर के प्रवर्तमान का विषय जो अंग कर्म प्रयाजादिक होते हैं। इसी तरह अपूर्वात्मक कार्य के उद्देश्य से होने वाला जो प्रयत्न उस प्रयत्न का विषय याग होता है अतः याग अपूर्व कार्य का शेष बनता है और अपूर्वात्मक कार्य शेषी कहलाता है। यहां कृत्युद्देश्य में अर्न्तगत जो उद्देश्यत्व है उसका लक्षण करने के समय में उस उद्देश्यत्व लक्षण में प्रथम उद्देश्यत्व की आकांक्षा होने पर पुनः आत्माश्रय दोष हो जायेगा। तब पुनः मीमांसक कहते हैं कि जो साध्य वस्तु के प्राप्त करने में इष्ट है वह उद्देश्य होता है। तो कौन साध्य प्राप्त होने के लिये अभिलषित होता है! तब मीमांसक कहते हैं जो प्रयत्न का प्रयोजन हो वही प्राप्त करने का इष्ट होता है। तब सिद्धान्ती कहते है, प्रयत्न तो जड पदार्थ है तब वह कोई प्रयोजन कैसे चाहेगा। तब मीमांसक कहते हैं कि जिस प्रयोजन की इच्छा से चेतन प्रयत्न करता है वही पदार्थ प्रयत्न का प्रयोजन कहलाता है पुरुष उसी पदार्थ को प्रयोजन समझता है जो इच्छा का विषय हो तथा प्रयत्न साध्य हो, तब सिद्धान्ती कहते हैं कि

॥ अपूर्वकार्यस्यसुखरूपतानिराकरणम् ॥

यतोऽपूर्वात्मकं कार्यं केवलं स्वर्गादिसमीहितस्य साधनमात्रं नतु स्वतः सुखरूपमत एव नियोगस्य पुरुषानुकूलत्वकथनं

किंचैहिकफलके कारीरीयागेऽसतिप्रतिबन्धे यागफलयोर्मध्ये स्थितापूर्वेकस्यापि सुखाभवो न भवति अनुभवे विषयस्य कारणतया अपूर्वात्मकनियोगस्य सुखरूपस्य यागोत्तरकाले फलपूर्वे च विद्यमानत्वेन तादृशनियोगे सुखानुभवोऽवश्यमेव स्यात् परन्तु कस्यापि तत्कालिकनियोगे सुखप्रतीतिर्न जायते । किं बहुना नियोगस्य सुखरूपस्वीकर्तुरपि तत्र सुखमनुभवामीति प्रतितीर्न जायते इति नियोगो न सुखरूपो न वा चेतनानुकूल इति संक्षेपः ।

अतः परं प्रकारान्तरेण कृत्युद्देश्यत्वं परिष्करोति, कृतिं प्रत्युद्देश्यत्वमेव कृत्युद्देश्यत्वम्, तदनुद्य खण्डयितुमुपक्रमते अत्राह पुनर्मीमांसकः इत्यादि, प्रतिशेषित्वमेव कृत्युद्देश्यत्वम्, इतिमीमांसकः सिद्धान्ती पृच्छति किमिदं शेषित्वम् ? यः कार्येण सह सम्बन्धं करोति स शेषः-अर्थात् कार्यो भवति यः स शेषः तथा

आपके मीमांसक के इस कथन से सिद्ध हो जाता है कि कृत्युद्देश्यत्व का पर्यवसान इष्टत्व तथा कृति साध्यत्व में ही हो जाता है। अव इष्टत्व तथा कृतिसाध्यत्व से अतिरिक्त जो कृत्युद्देश्यत्व रूप अपूर्वात्मक कार्य का असाधारण धर्म मानते हैं मीमांसक लोग वह प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि इष्टत्व तथा कृतिसाध्यत्व ही अपूर्व कार्य का लक्षण है इस प्रकार से सिद्धान्ती ने मीमांसक के मत का खण्डन कर दिया। इस विषय पर विशेष विवेचन जगद्गुरु श्रीश्यामानन्दाचार्य कृत प्रभाकर मत निरास ग्रन्थ के विवरण में देखें। ग्रन्थ गौरव भय से यहां संक्षेप किया गया।

कृति के प्रति जो शेषी हो उसको कृत्युद्देश्य कहते हैं ऐसा अपूर्व का लक्षण कहा है। इस में शेष किसको कहते हैं तथा शेषी किसको कहते हैं? ऐसी जिज्ञासा का निराकरण करने के लिये वेदान्त सिद्धान्त के अनुकूल शेष तथा शेषी का लक्षण बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं **'अन्यनिष्ठविशेषाधानेच्छया'** इत्यादि। शेष शेषी का लक्षण इस प्रकार से होता है। अन्य के अर्थात् दूसरे के विशेषता अर्थात् अतिशय को सिद्ध करने की इच्छा से जो पदार्थ संगृहीत होता है एतादृश संग्राह्य होना जिस पदार्थ का स्वरूप है तादृश पदार्थ को शेष कहते है **'अर्थात् अन्यस्मिन् अतिशयाधानेच्छया संग्राह्यत्व मेवशेषत्वम्'** इत्येव शेषलक्षणम्। और जो दूसरा

सर्वलोकविरुद्धमेव। योऽपि नियोगस्य सुखरूपतया पुरुषा-नुकूलतामिच्छति तस्यापि स्वानुभवविरोधो नापगच्छति।

कार्यस्य यः सम्बन्धी तेन सह संबन्धवान् स शेषी। तदेदमायाति यत् कार्यत्वमेव शेषित्वमिति। अर्थात् कार्यत्वमेव शेषी, ततश्च कार्यलक्षणे कार्यत्वानुप्रवेशादात्माश्रयो भवतीति। पुनराह मीमांसकः शेषवान् शेषी। शेषश्च परोद्देशकृतिव्याप्यः, यथा प्रधानयागस्याङ्ग्यागः यथा प्रधानयागोद्देशेन जायमानकृतेर्विषयोऽगयाग इति। एवमिह अपूर्वोद्देशेन जायमानप्रयत्नस्य विषयप्रधानयागः इति स यागोऽपूर्वकार्यस्य शेषोऽपूर्वञ्च शेषीति। एतन्मतं खण्डयति सिद्धान्ती न च परोद्देशेनेत्यादि। अत्र परोद्देशेन जायमानप्रयत्नस्येति कथने नान्यः कश्चिदुद्देशः सिध्यति। तत्र कृत्युद्देश्यत्वान्तर्गतोद्देश्य त्वलक्षणकरणे पुनरात्माश्रय इति। न च साध्यप्राप्तौ यदिष्टं तदेवोद्देश्यमिति कथने, किंतत्साध्यं यत्प्राप्तुमभिमतम्? इति पर्यनुयोगे यत् प्रयत्नप्रयोजनं तदेव प्राप्तुमिति। तन्नयुक्तम् प्रयत्नस्य जडत्वेन स न कमपि

पदार्थ है वह शेषी कहलाता है जिसजेअतिशय को बतलाने का होता है वह शेषी कहा जाता है। उदारहरण जिस तरह याग तथा फल स्वर्ग के बीच में दर्शादिक याग स्वर्ग फल का शेष माना जाता है एवं स्वर्गात्मक फल शेषी माना जाता है इस स्थल में शेष शेषी का लक्षण समन्वय हो जाता है। फल जो स्वर्गादिक है उसका उत्पन्न होना ही तो स्वर्गादि फल की विशेषता अर्थात् अतिशय है स्वर्गादि फल को उत्पन्न करने की इच्छा से ही तो दर्शपौर्णमास तथा अग्निष्टोमादिक याग संग्राह्य होता है अर्थात् फलोत्पत्ति के लिये ही तो याग किया जाता है अन्यथा यदि वहां फल न मिले तब कष्ट साध्य तथा द्रव्य साध्य निरर्थक यज्ञ का अनुष्ठान कोई नहीं करेगा। '**न कुर्यान्निष्फलं कर्मनात्यायामसुखोदयम्**' इत्यादि स्मृति में निरर्थक कर्मानुष्ठान का निषेधकिया गया है। अतः दर्शादिक याग शेष होता है तथा स्वर्गादिक फल शेषी सिद्ध होता है इसप्रकार से शेष शेषी का लक्षण समन्वय होता है। एवं याग सिद्ध हो इस इच्छा से ब्रीहि यवादिक आहवनीय द्रव्य तथा दर्भ इन्धनादिक साधनों का संग्रह किया जाता है तो उस स्थल में ब्रीहि प्रभृतिक यागांग पदार्थ समुदाय शेष कहलाता है और याग शेषी अङ्गी कहलाता है। इसी तरह गर्भदासादिक स्थल में भी शेषशेषी भाव को समझना चाहिये। जो व्यक्ति गर्भकाल से लेकर के दासभृत्य (गुलाम) बना है उसको गर्भदास

'कारीर्या वृष्टिकामो यजेत' इत्यादिस्थले ऐहिकफले सिद्धेऽपि नियोगे वृष्टिनिमित्तिकस्य वर्षणव्यतिरेकेण नियोगस्यानुकूलत्वं नानुभूतं भवति। यद्यपि यथोक्ते यागे कृते इहैव जन्मनि तत्फलं भवत्येवेति न नियमस्तथापि अनियमादेरेव तस्मिन् नियोग

प्राप्तुमभिलषेदिच्छायाः पुरुषधर्मत्वेना-चेतनधर्मत्वाभावात्, यदिच्छया पुरुषः प्रयतते स एव भवति। इष्टत्वकृतिसा-ध्यत्वाभ्यामतिरिक्तं किमपि कृत्युद्देश्यं न भवति. ततश्च मीमांसकाभिमतकार्यत्वे, न किमपि प्रमाणमिति।

कृतिं प्रति शेषित्वं कृत्युद्देश्यमित्यपूर्वस्य लक्षणं कृते तत्र शेषशेषिणोर्विक-ल्पासहत्वाल्लक्षणं खण्डितम्। तत्र जिज्ञासा भवति यदि पूर्वोक्तशेषशेषिणोर्लक्षणं न निष्पद्यते तदा भवदभिमतं तयोः शेषशेषिणोः किंलक्षणमिति शङ्कायाः समाधानाय स्वाभिमतं तयोर्लक्षणं वक्तुं प्रक्रमते-अन्यनिष्ठविशेषाधानेच्छयेत्यादि। अयंभावः-अन्यगतातिशयस्य विशेषस्य सिद्धिच्छया यः पदार्थः सङ्ग्राह्यो भवति। अर्थादेतादृशसङ्ग्राह्यस्वरूपं यस्य पदार्थस्य भवति स पदार्थ-शेषो भवतीत्यनुगतं

कहते हैं। एतादृश गर्भदास स्वामी को (जिसका वह गर्भकाल से ही खरीदा हुआ भृत्य है उसको) सुख पहुंचाने की इच्छा से ही संग्राह्य होता है। इसलिये गर्भदास शेष है तथा यदर्थ वह संग्राह्य होता है वह स्वामी मालिक शेषी कहा जाता है। इसलिये गर्भदास शेष है तथा यदर्थ वह संग्राह्य होता है वह स्वामी मालिक शेषी कहा जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर सर्व शेषी और परमेश्वरातिरिक्त नित्यानित्य साधारण चराचर जागतिक पदार्थ शेषरूप माना जाता है, तो इस स्थल में भी शेषशेषी लक्षण का समन्वय हो जाता है। तथाहि परमेश्वर में दो प्रकार की विभूति रहती है। एक तो लीलाविभूति और दूसरी भोगविभूति। इसमें लीलाविभूति उसको कहते हैं जिस में रहकर परमेश्वर श्रीराम वामन कृष्णादिकरूप से अवतरित हो कर के अनेक प्रकार की लीला करते हैं तथा तदीय रस का आस्वादन करते हैं और भोग विभूति में तो साकेत में अवस्थित रह करके तत् तत् भोग का अनुभव करते हैं। तो परमेश्वर को लीला रस तथा भोगरस पहुंचाने की इच्छा से ही लीलाविभूति में तथा भोग विभूति

सिद्धिरवश्यमेवाश्रयणीया परन्तु तत्रानुकूलता पर्यायसुखानुभूतिर्नोपलभ्यते । एवं यथोक्तरीत्याकृतिसाध्येष्टत्वातिरिक्तं कृत्युद्देश्यत्वं नास्तीति ।

॥ कृत्युद्देश्यत्वंकृतिंप्रतिशेषत्वलक्षणनिराकरणम् ॥

अत्राह पुनर्मीमांसकः प्रयत्नं प्रतिशेषित्वमेव कृत्युद्देश्यत्वं तेन

प्रतिशेषित्वमेव कृत्युद्देश्यत्वम्, इतिमीमांसकः सिद्धान्ती पृच्छति किमिदं शेषित्वम् ? यः कार्येण सह सम्बन्धं करोति स शेषः-अर्थात् कार्यो भवति यः स शेषः तथा कार्यस्य यः सम्बन्धी तेन सह संबन्धवान् स शेषी । तदेदमायाति यत् कार्यत्वमेव शेषित्वमिति । अर्थात् कार्यत्वमेव शेषी, ततश्च कार्यलक्षणे कार्यत्वानुप्रवेशादात्माश्रयो भवतीति । पुनराह मीमांसकः शेषवान् शेषी । शेषश्य परोद्देशकृतिव्याप्यः, यथा प्रधानयागस्याङ्गयागः यथा प्रधानयागोद्देशेन जायमानकृतेर्विषयोऽगयाग इति । एवमिह अपूर्वोद्देशेन जायमानप्रयत्नस्य विषयप्रधानयागः इति स यागोऽपूर्वकार्यस्य शेषोऽपूर्वञ्च शेषीति । एतन्मतं खण्डयति सिद्धान्ती न च परोद्देशेनेत्यादि । अत्र परोद्देशेन जायमानप्रयत्नस्येति कथने नान्यः कश्चिदुद्देशः सिध्यति । तत्र कृत्युद्देश्यत्वान्तर्गतोद्देश्य

में अवस्थित सभी नित्य तथा अनित्य पदार्थ समुदाय जो कि जडचेतन पदार्थ परमेश्वर को संग्राह्य होते हैं अर्थात् उभय विभूति में होनेवाला जो रसास्वाद, उस रसास्वाद में उपयोगी होने के कारण सभी जड चेतन नित्यानित्य पदार्थ परमेश्वर से संग्राह्य होते हैं । इस तरह संग्राह्य होना ही इन जड़चेतन नित्यानित्य पदार्थों का स्वरूप है । अत एव ये सब के सब जड चेतन पदार्थ परमेश्वर के शेष होते हैं तथा परमेश्वर इन सब चेतनाचेतन पदार्थों के शेषी बनते हैं ।

परमेश्वर व्यतिरिक्त जितने जड चेतन नित्यानित्य पदार्द हैं वे शेष है और अन्य सब के सब शेषी सर्वनियन्ता परमेश्वर श्रीराम हैं यह विषय स्वकीय कल्पना से कल्पित नहीं है किन्तु यह विषय शास्त्र सिद्ध है । इस बात को बतलाने के लिये शास्त्र वचनों का उद्धरण देते हुए कहते हैं '**सर्वस्य वशी**' इत्यादि, उपनिषदादिक ग्रन्थों में कहा गया है कि परमेश्वर के वश अधिकार में सब पदार्थ जड चेतनादिक रहने वाले हैं ईश्वर सब

न पूर्वोक्तदोष इति । तत्र शेषित्वं किमिति विचारणीयं भवति । न च कार्यप्रतिसम्बन्धीशेषः, तत्प्रतिसम्बन्धित्वं शेषित्वम्, इति वाच्यम् तदा कार्यत्वस्यैव शेषित्वकथनेनात्माश्रयप्रङ्गात् । न च परोद्देशेन प्रवृत्तकृतिव्याप्यत्वमेव शेषत्वम्, इहापि तथैवात्माश्रयात् ।

त्वलक्षणकरणे पुनरात्माश्रय इति । न च साध्यप्राप्तौ यदिष्टं तदेवोद्देश्यमिति कथने, किंतत्साध्यं यत्प्राप्तमभिमतम् ? इति पर्यनुयोगे यत् प्रयत्नप्रयोजनं तदेव प्राप्तमिति । तन्नयुक्तम् प्रयत्नस्य जडत्वेन स न कमपि प्राप्तमभिलषेदिच्छायाः पुरुषधर्मत्वेना-चेतनधर्मत्वाभावात्, यदिच्छया पुरुषः प्रयतते स एव भवति । इष्टत्वकृतिसा-ध्यत्वाभ्यामतिरिक्तं किमपि कृत्युद्देश्यं न भवति . ततश्च मीमांसकाभिमतकार्यत्वे, न किमपि प्रमाणमिति ।

कृतिं प्रति शेषित्वं कृत्युद्देश्यमित्यपूर्वस्य लक्षणं कृते तत्र शेषशेषिणोर्विक-ल्पासहत्वाल्लक्षणं खण्डितम् । तत्र जिज्ञासा भवति यदि पूर्वोक्तंशेषशेषिणोर्लक्षणं न

के जड चेतनादिकों के ऊपर शासन करने वाले हैं, एवं परमेश्वर सब के स्वामी मालिक हैं । अर्थात् सब के रक्षण करने वाले हैं । इन वचनों से यह सिद्ध होता हैं कि चराचर नित्यानित सब पदार्थ शेष हैं और भगवान् इन सब पदार्थों के शेषी हैं तथा अन्तर्यामी ब्राह्मण वचनों से भी सिद्ध होता है कि भगवान् के ये सब पदार्थरूप हैं इसलिये ये सब पदार्थ शेष हैं और भगवान् इन सब के शरीरी तथा आत्मस्वरूप अन्तर्यामी हैं इसलिये भगवान् शेषी हैं । सर्वेश्वरी जगज्जननी श्रीसीताजी ने भक्तराज अनन्य सेवक श्रीहनुमानजी को पूर्वोक्त प्रकार से ही उपदेश दिया है '**सर्वफलप्रदौ चावा नित्यौ च सर्वशेषिणौ**' (वशिष्ठ संहिता) अतः यह सर्वशास्त्र प्रसिद्ध है कि सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी शेषी हैं अन्य सब शेष ।

यह उपर्युक्त सिद्धान्ताभिमत जो शेषी लक्षण मीमांसकाभिमत अपूर्वात्मक कार्य में घटता नहीं है, परन्तु शेष का जो लक्षण है वह शेषी लक्षण अपूर्वात्मक कार्य में घटता है इसलिये अपूर्व कार्य को शेष मानना ही सिद्धान्तरीति से उचित है । न तु अपूर्व कार्य को शेषी रूप में स्वीकार करना उचित है क्योंकि स्वर्गात्मक फल विशेष को सिद्ध करने की इच्छा से अपूर्वात्मक कार्य जो कि स्वर्ग का कारण साक्षात् है वह

परोद्देश्यत्वस्यैव विचार्यमाणत्वात् । उद्देश्यत्वं नाम ईप्सितत्वम् । तदेप्सितत्वं किमिति वक्तव्यम् । कृतिप्रयोजनत्वमेव तदा कृत्यारंभप्रयोजनत्वमेव कृतिप्रयोजनम् । स चेच्छाविषय इति कृत्यधीनस्वरूपक इति कृत्यधीनत्वमेव पर्यवसितमिति न ततो

निष्पद्यते तदा भवदभिमतं तयोः शेषशेषिणोः किंलक्षणमिति शङ्कायाः समाधानाय स्वाभिमतं तयोर्लक्षणं वक्तुं प्रक्रमते-अन्यनिष्ठविशेषाधानेच्छयेत्यादि । अयंभावः-अन्यगतातिशयस्य विशेषस्य सिद्धिच्छया यः पदार्थः सङ्ग्राह्यो भवति । अर्थादेतादृशसङ्ग्राह्यस्वरूपं यस्य पदार्थस्य भवति स पदार्थ-शेषो भवतीत्यनुगतं शेषलक्षणम् तथा यद्गतविशेषसिद्धिलिप्सया यदुपादेयमित्यत्र प्रथमयत्पदग्राह्यं यद भवति स एव शेषीति शेषिणोऽनुगतलक्षणम् ।

यथा स्वर्गात्मकफलप्राप्तीच्छयैव दर्शपौर्णमासादियागादेरुपादेयत्वं भवति । इति दर्शादिः शेषः शेषी च स्वर्गादिकं फलमिति, यदि यागेन कदाचित्स्वर्गं फलं

संग्राह्य होता है इसलिये अपूर्व कार्य शेष ही बन सकता है शेषी नहीं वन सकता है क्योंकि स्वर्गरूप फल के उत्पादन की इच्छा से ही जो कि कालान्तर में होनेवाला है और फलाव्यवहित पूर्वकाल में चिरविनष्ट यागादिक कारण कोई है तो कालान्तर में स्वर्ग की उत्पादनेच्छा से ही अपूर्व का संग्रह किया जाता है। अतः सर्वथा अपूर्व कार्य शेष ही है। यदि अपूर्व में अतिशयाधानेच्छया कोई अन्य संग्राह्य होता तब अपूर्व कार्य में शेषित्व होता सो तो है नहीं किन्तु फलोत्पादन की इच्छा से अपूर्व कार्य स्वयमेव संग्राह्य हो रहा है अतः अपूर्व शेष ही है शेषी नहीं बनता है।

मीमांसक लोगों ने अपने सिद्धान्त के अनुसार अपूर्व कार्य को शेषी मानकर के कहा है कि '**कृति साध्यं प्रधानं यत्तत्कार्यमभिधीयते**' अर्थात् जो पदार्थ पुरुष के प्रयत्न से सिद्ध होता है तथा प्रधान बना रहता है गौण नहीं होता है वह पदार्थ कार्य कहलाता है, एतादृश लक्षणाक्रान्त अपूर्व कार्य को मानकर के अपूर्व कार्य को प्रधान मानते हैं तथा प्रधान होने से शेषी मानते हैं, यह ठीक नहीं है क्योंकि अपूर्व कार्य स्वर्ग का साधन होने से स्वर्ग का शेष ही बनता है किन्तु प्रधान नहीं बन सकता है जो किसी का अङ्ग न बने और जिसका अङ्ग तदन्य हो वह प्रधान कहलाता है। इस स्थिति में जो

व्यक्तिरिक्तं कृत्युद्देश्यत्वम् । तदाहुर्जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्यचरणाः प्रभाकरमतनिरासे 'साध्यस्य प्राप्तये चेष्टमत्रोद्देश्यतया मतम् । बोध्यमत्र हि साध्यं तद् यत्प्रयत्नप्रयोजनम् ॥६४॥ इष्टं च

नोत्पद्येत तदा को हि प्रज्ञावान् कष्टसाध्ये यागादौ प्रवर्तेत ? प्रवर्तते च स्वर्गप्राप्तये एव । तस्माद् यागादेरुपादेयत्वं न यागार्थमपितु स्वर्गायैव भवतीति यागः सेषः शेषीः च स्वर्गादिफलमित्येवं लक्षणसमन्वयो भवति । [अर्थात् परगतातिशयाधानेच्छया यः सङ्ग्राह्यो भवति । तादृशसङ्ग्राह्यस्वरूपं यस्य भवति स पदार्थः शेषः स च शेषी भवति यस्यातिशयाधानं करणीयं भवति । यागादिको हि स्वर्गफलस्य शेषो भवति स्वर्गाद्यात्मकफलं शेषी भवति । तत्र फलस्योत्पत्तिरेव फलस्यातिशयो विशेषता, यतः स्वर्गोत्पत्तीच्छयैब यागस्य सङ्ग्राह्यता नान्यथेति यागादिः साधनशेषः फलं स्वर्गादिकंशेषीति मन्तव्यम्)

एवं यागतातिशयाधानेच्छया ब्रीहियवधृतादिसाधनं सङ्ग्राह्यो भवतीति तत्र

मीमांसकों ने अपूर्व का प्रधान्य घटित किया है वह स्वकीय शिष्यों की सभा में ही मान्य है पण्डित-विवेचको की सभा में शोभनीय नहीं हैं।

नियोज्य है अपर नाम जिसक ऐसा प्रधान जो स्वर्ग का साधक होता है तादृश अपूर्व को यदि आप नहीं मानते हैं तब तो यागादि क्रिया आशुविनाशिनी है उससे तो हो नहीं सकता है, तब स्वर्ग कामनावान् जो पुरुष स्वर्गादि प्राप्त्यर्थ याग कर के याग फलभूल स्वर्ग की प्राप्ति किस तरह कर सकेंगे ? क्योंकि साधक के बिना साध्य की सिद्धि तो होती नहीं है ? अन्यथा कारण के विना यदि कार्य को माने तब तो कार्य में आकस्मिकत्व हो जायेगा। इस प्रश्न क उत्तर में कहते हैं कि यागादि कर्म से सर्व शरीरी भगवान् परम पुरुष ही आराधित होते हैं और उस आराधन से प्रसन्न हो कर के भगवान् यागादि कर्ता को यागादि जन्य स्वर्गादि फल के प्रापक होते हैं अर्थात् भगवान् का जो प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता तादृश प्रसन्नता से ही फल की सिद्धि होती है। इस स्थिति में अप्रामाणिक अपूर्व पदार्थ की कल्पना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। इन सब बातों को समझाने के लिये आचार्यजी उपक्रम करते हैं-'**स्यादेतत्**' '**यजेत**' इत्यादि '**स्थले**' इत्यादि।

कृतिसाध्यंयत् तत्प्रयत्नप्रयोजनम् । कृतेरुद्देश्यता नैव चैतद्भिन्ना हि सिद्ध्यति ॥६५॥' इति

व्रीहियवादिकपदार्थः साधनभूतो यागस्य शेषः शेषी च दर्शादिकम् । एवमेव गर्भदासादिष्वपि ज्ञातव्यम् । तत्र गर्भादारभ्यदासः स गर्भदासः स च स्वामिनः सुखकारको भवतु इतीच्छयैव संग्राह्यो भवति, स्वामिनं सेवादिना सुखयति तस्मात् गर्भदासः शेषः शेषी च स्वामी भवति । कदाचित् स्वामीरोगादिरुग्णं गर्भदासं सेवते तथापि स्वोपकारायैव भृत्यसेवां कुर्वतोऽपि स्वामिनः प्राधान्यं नापगच्छति । एवमेव परमपुरुषगतातिशयाधानेच्छयेत्यादि । एवमेव परमेश्वरगतातिशयाधानलिप्सया सङ्ग्राह्या भवन्ति जडचेतना इति ते शेषाः शेषी च सर्वेश्वरश्रीसीतानाथः ।

अर्थात् परमेश्वरः शेषी भवति, तथा परमेश्वरव्यतिरिक्ताः सर्वे जडचेतनपदार्थ नित्या अनित्याश्च शेषा भवन्तीत्यत्रापि यथोक्तशेषिलणस्य समन्वयो भवत्येव । तथाहि परमेश्वरं लीलारसं प्रापयितुमिच्छया लीलाविभूतौ भोगविभूतौ च वर्तमाना नित्या

इस प्रकरण का संक्षित आशय इस प्रकार का है कि प्राभाकरादि मीमांसकों ने ऐसा प्रश्न उपस्थित किया था कि जितने कोई शब्द हैं वे सब के सब प्रयत्न साध्य कार्य को बतलाते हैं क्यों कि प्राथमिक शक्ति ग्रह कार्यरूप अर्थ में ही होता है, सिद्ध पदार्थ को बतलाने में शब्द का तात्पर्य मानना निरर्थक है। घट पटादि की तरह ब्रह्म सिद्ध पदार्थ है तो उसका प्रतिपादन वेदान्त नहीं कर सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर दिया वेदान्ती ने जिस तरह **'पुत्रस्ते जातः'** इत्यादि स्थलों में सिद्ध पदार्थों में पुत्रादि पदों का शक्तिग्रह होता है उसी तरह ब्रह्मरूप सिद्ध वस्तु में भी प्राथमिक व्युत्पत्ति होगी तथा ब्रह्म वेदान्त प्रतिपाद्य हो सकता है और उपासनादि कार्य में फल स्वरूप से अपेक्षित होने से ब्रह्म सिद्धि का भी समर्थन किया था। तथा अनेक प्रकारों से कृत्युद्देश्यत्व का खण्डन करके नियोग का तथा नियोज्य का भी निराकरण किया। इसके बाद जगदाचार्यजी बतलाते हैं कि अपूर्व को न मानने पर भी परमेश्वर के प्रसाद से हि सिद्धि हो जाती है, तब मीमांसकों ने जो अपूर्व को माना है वह निरर्थक है। अपूर्व कार्य का प्राधान्य सिद्ध नहीं होता है तथा अपूर्व का स्वरूप भी सिद्ध नहीं होता है।

मीमांसकों की मान्यता है कि यागादि क्रिया से जायमान अपूर्व होता है वह

卐 सिद्धान्तरूपेणशेषीलक्षणनिरूपणम् 卐

अन्यनिष्ठविशेषाधानेच्छया यस्य वस्तुन उपादेयत्वं भवति तस्य शेष इति नाम भवति तथा यस्मिन्नधिकरणे सोऽतिशयः परिनिष्ठितो भवति स शेषीत्येवशेषशेषिणोऽनुगतं लक्षणं भवति । यथा स्वर्गादिफलोत्पत्तिलिप्सयादर्शादियागादेस्तदीयप्रयत्नस्य

अनित्याश्च सर्वे जडचेतनपदार्थाः परमेश्वरेण सङ्ग्राह्या भवन्ति । इत्थं सङ्ग्राह्यत्वमेव यथोक्तजडचेतनानां स्वरूपम् । अत एव जडचेतननित्यादिकाः पदार्थाः शेषा भवन्ति परमेश्वरश्च शेषीति । इयानत्र विशेषः लौकिकवस्तुन्येकः शेषस्तदपरः शेषी भवति । अत्र तु सर्वे पदार्था : परमेश्वरातिरिक्ताः शेषा भवन्ति । भगवास्तु सर्वेषां शेषी भवन् सर्वशेषीति गीयते इति तत्रापि लक्षणसमन्वयः ।

अयं च पूर्वप्रतिपादितोर्थो न केवलयुक्तितर्काभ्यामेवावधारितः

अपूर्व फल पर्यन्त स्थिर रहता है तथा-**'यजेत'** यहां लिङादि शब्दों से वाच्य होता है। एतादृश अपूर्व मानने में क्या प्रमाण है तथा अपूर्व का प्रयोजन क्या है ? तब मीमासंक कहते हैं कि **'यजेत स्वर्गकामः'** यहां फल वाचल **'स्वर्गकामः'** इस शब्द का साथ में प्रयोग है वह अनुपपन्न हो जाता है इसलिये अपूर्व को फल का साधन मानना आवश्यक है। तो इसमें क्या अनुपपत्ति हैं ? तब मीमांसक कहते हैं कि स्वर्ग कामनावान् पुरुष के लिये वेद में याग का विधान किया गया है इससे याग में स्वर्ग साधनत्व प्रतीत होता है परन्तु याग तो विनाशी पदार्थ है वह कालान्तर भावी स्वर्ग का साधन नहीं बन सकता है इस अनुपपत्ति से मानना पडता है कि याग से जायमान एक अपूर्व स्वर्ग का साक्षात्कारण बनता है और तादृश अपूर्व द्वारा याग भी कारण बनता है। इसलिये अपूर्व नामक पदार्थ को मानते हैं। इसके उत्तर में आचार्यजी कहते हैं कि **'परमेश्वराराधनेनैव'** इत्यादि। वेद के याथार्थ्य के जाननेवालों ने ऐसा माना है कि परमेश्वर की आराधना से ही फल प्राप्ति होती है। अपूर्व की कुसृष्टि कल्पना का प्रयास उन्हीं को शोभता है जिन्हों ने वेदान्त वृत्तान्त को नहीं जाना है। अर्थात् यागादि क्रिया से आराधिक परमेश्वर प्रसन्न हो कर के समीहित फल साधक को देते हैं, इसमें अपूर्व मानने की कोई भी आवश्यकता नहीं है जीसे हेतु प्रयासान्तर किया जाय। अर्थात् वेद

चोपादेयत्वमेवं यागादि सिद्धीच्छया ब्रीह्यादिकं द्रव्यजातमुपादेयं भवतीति। इत्थमेव गर्भदासादयः स्वामिगतातिशयाधानेच्छयो-पादेयस्वरूपा भवन्तः शेषाभवन्त्येव। एवमेव परमपुरुषग-

शास्त्रप्रतिपादितोऽपीति दर्शयितुमाह सर्वस्य वशी इत्यादि। सर्वजगत् कारणोऽयं परमेश्वरः सर्वं जडचेतनात्मकंप्रपञ्चजातं स्ववशे स्थापयति 'सर्वं वस्तु जातं वशेऽधिकारे तिष्ठतीति तद्व्युत्पत्तेः। तथा स परमेश्वरः सर्वानेव शास्ति। सर्वस्य शासकः, तथा सर्वस्य प्रपञ्चस्य पतिः स्वामीत्यर्थः। एभिर्वचनैः परमेश्वरव्यतिरिक्तसर्वपदार्थस्य शेषत्वं सिध्यति। तथेश्वरस्य शेषित्वं सिद्धं भवति, परमेश्वरो हि सर्वस्य शेषी भवति तथायं परमेश्वरो हि सर्वस्यान्तरात्माऽन्तर्यामी भवति। तत्रान्तर्यामिब्राह्मणं बृहदारण्यीयं प्रमाणमिति तदपि प्रदर्शितं तदर्थस्तु स्वयमेवानुसन्धेयः।

के विद्वानों ने इस बात को स्थिर किया है कि-अग्निष्टोमादि याग दान होमादि क्रियाओं से आराधित होनेवाले भगवान् सर्व जगत् के कारण श्रीसीतानाथ सुप्रसन्न होकर के भक्ति से आराधना करनेवाले साधको को अभिलषित फल को देनेवाले होते हैं। यदि किसी भी प्रकार से समीहित वस्तुओं की सिद्धि नहीं होती है उसी स्थल में अन्यथानुपपत्ति का पदार्पण होता है। ऐसा शास्त्रकारों ने कहा है-

'अन्यथानुपपत्तिश्चेदस्ति वस्तु प्रसाधिका। पिनष्टि दृष्टिवैमत्यं सैव सर्वबलाधिका॥'
वाच्यथोपपत्तिर्वा त्याज्योवा दृष्टताग्रहः। नेह्येकत्र शमावेशश्छायातपवदेतयोरिति॥'

जहां किसी भी प्रकार से कार्य की सिद्धि न होती हो और वह कार्य प्रामाणिक हो उस स्थल में अनुपपत्ति प्रमाण का प्रसर होता है। प्रकृत में अपूर्व को अपूर्व को न मान ने पर भी ईश्वराराधन से प्रसन्न परमेश्वर फलदाता हो सकते हैं तब अपूर्व को क्यों माना जाय? जिस तरह कोई राजा सेवा से प्रसन्न होकर के सेवक के अभिमत फल को देता है, एवं अपराधी के ऊपर क्रुद्ध होकर के जेल आदि दण्ड देता है। यहां सेवा तथा अपराध के विनाश शील अर्थात् क्षणिक होने पर भी राजा के मन में प्रसन्नता तथा क्रोध को कराकर उस प्रसाद और क्रोध के द्वारा फल समीहित तथा शिक्षा (दण्ड) रूप फल से देनेवाला होता है। इसी तरह मनुष्यो के सत्कर्म याग दानादिक से भगवान् प्रसन्न होकर के शुभ फल को देते हैं, तथा पापियों के पाप कर्म से क्रुद्ध होकर के नरकादिरूप

तातिशयाधानेच्छया समुत्पादेयत्वमेव जडचेतनसाधारणस-र्वप्रपञ्चस्य नित्यानित्यस्यसर्वस्यापि पदार्थस्य स्वरूपं भवतीति सर्वमेव वस्त्वीश्वरशेषात्मकमेव भवति। तथा तादृशः परमेश्वरः सर्वस्यापि वस्तुजातस्याङ्गीभवति। तथोक्तं श्रुतौ-सर्वस्य वशी' 'सर्वस्येशानः' 'पतिं विश्वस्य' 'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरोयं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम् स ते आत्मा

न चेदं शेषित्वलक्षणं मीमांसकाभिमतापूर्वेऽतिव्याप्तं, तत्र यथोक्तशेषित्व लक्षणस्यासद्भावात् किन्तु शेषलक्षणमेव तत्र समन्वयमेति, तथाहि नेदं लक्षणं मीमांसकसंमतापूर्वेसमन्वीयतेऽपि तु शेषलक्षणमेव समन्वेति, अतोऽपूर्वकार्यं शेषरूपमेव न तु शेषी यतः स्वर्गसिद्धीच्छयैव स्वर्गसाधनलक्षणमपूर्वकार्यं सङ्ग्राह्यं भवतीत्यतोऽपूर्वो न शेषी स्वर्गादिरूपफलसाधनरूपेणैवापूर्वस्य सङ्ग्राह्यत्वात्, अर्थात् स्वर्गकामनावान् स्वर्गाय यागं करोति यागस्तु देवतोद्देशेन संस्कृताग्नौ धृतादिप्रक्षेपरूपः, स च मुहूर्तयामाहोरात्रादिसाध्यस्ततः स विनश्यति फलं तु तदीयं

अशुभफल को देते हैं। इसमें सत्कर्म तथा दुष्कर्म को क्षणभंगुर होने पर भी परमेश्वर के मन में प्रसाद एवं क्रोध को उत्पन्न करा कर के प्रसाद क्रोध द्वारा तत्तफल को देनेवाला होते हैं। एतावन्मात्र मानने से जव निर्वाह हो जाता है तव अलोक वेदासिद्ध अपूर्व कल्पना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं पडती है। जो कर्मजड मीमांसक हैं जिन्होंने वेद शास्त्रादि के तत्व का कभी भी अनुभव नहीं किया है उन्हीं लोगों का यह कथन उनकी शिष्य मंडलीमात्र में शोभित होता हैं।

'सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ' (वशिष्ठ संहिता) **तथा जगज्जन्मादिकर्तुश्चशास्त्रमानैश्च शेषिणः। सच्चिदानन्दरूपस्य कल्याणगुण-शालिनः। सर्वेश्वरस्य रामस्य सर्वफलप्रदत्त्वतः। अपूर्वकल्पना व्यर्था प्रभाकरानुयायिनाम्** (प्रभाकरमतनिरास १०३-१०४) इत्यादिशास्त्रानुसार सर्व कर्म फल के प्रदाता भगवान् श्रीराम ही हैं। अपूर्व आदि के समावेश की यहां संभावना नहीं हैं। यह सिद्धान्त न केवल समस्त पूर्वाचार्य मात्र संमत है अपितु श्रुति संमत भी है इस बात को बतलाने के लिये आचार्यजी श्रुति का उद्धरण देते हैं-**'इष्टापूर्तम्'** इत्यादि। **'इष्टापूर्तं बहुधा**

अन्तर्याम्यमृतः'। 'यो विज्ञानेतिष्ठन् विज्ञानादन्तरो यस्य विज्ञानं शरीरं यं विज्ञानं न वेद स ते आत्मा अन्तर्याम्यमृतः' इति । यद्यपि 'कृतिसाध्यं प्रधानं यत् तत्कार्यमभिधीयते' इति लक्षणमपूर्वस्य तथापि नेदं लक्षणं सर्वसंमतमपितु स शिष्यस्य व्यक्तिविशेषस्यैव विचारकविदुषः ।

स्वर्गः कालान्तरभावीति तादृशफलाव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वस्याभावेन यागस्य कारणता न स्यादितितत्र स्वर्गसाधनत्वरक्षणायापूर्वोमध्यवर्त्ती कल्प्यते स्वर्गोत्पादनायेति तस्य स्वर्गशेषत्वेनशेषिता न भवतीति भावः ।

मीमांसकास्तु अपूर्वात्मकं कार्यं शेषीति मत्वा 'कृतिसाध्यं प्रधानं यत् तत् कार्यमभिधीयते ।' (यद्वस्तु पुरुषप्रयत्नेन सिध्यति तथा प्रधानरूपेणैवावतिष्ठते तत्कार्यपदवाच्यं भवति, एतावता अपूर्वकार्ये प्रधानत्वं शेषित्वमेव न तु शेषत्वमित्यर्थः । एतादृशं कार्यलक्षणं स्वश्रद्धाशीलशिष्यसभास्वेव चर्चास्पदं न तु पण्डितपरिषदि विचारयितुं योग्यं प्रमाणाभावात् तदत्राहुर्जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्याः 'सिद्धान्तेसङ्ग्रहेयस्य चान्यातिशयसिद्धये । स शेषोऽतिशयो यस्य स शेषीत्यभिधीयते ॥

जातं जायमानं विश्वं विभर्ति भुवनस्य नाभिः ।' अस्यार्थः जो कर्म श्रुति प्रतिपदित हैं उसे इष्ट कहते है यथा दर्शपौर्णमास वाजपेय प्रभृतिक । तथा स्मृति प्रतिपादित जों कर्म उसे पूर्त कहते है यथा-वापी कूप तडाग आरामादिक । परन्तु श्रुतिस्मृति प्रतिपादित जो कर्म वह दो चार हैं ऐसा नहीं किन्तु ये कर्म समुदाय अनेक तथा अनेक प्रकारक हैं । ये कर्म समुदाय इन्द्रादि सभी देवताओं के लिये संपादित होते हैं इसलिये ये सब कर्म विभिन्न देवता का हैं ऐसा प्रतीत होता है तथापि सभी कर्म एक देवताक है ऐसा भी माना जा सकता है क्योंकि जिस देवता का जों कर्म है उस कर्माभिमानी देवताओं के अन्तर्यामी अन्तरात्मा के रूप में वर्तमान परम पुरुष श्री सीतानाथ ही उन उन कर्मों से आराधित होते हैं इस प्रकार सभी कर्म एक देवताक होते हैं । नहीं कहें कि तब तो देवता के भेद से जो कर्मभेद कहा गया है वह तो नहीं होगा परन्तु देवता के भेद होने पर भी सब कर्म एक हो जायेगा । यह कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि देवता भेद से जिस तरह कर्म भिन्न भिन्न कहलाता है उसी तरह द्रव्य भेद

ॐ स्वर्गकामोयजेतेत्यादीनांनियोज्यपरतायानिराकरणम् ॐ

स्यादेतत् 'यजेत' इत्यादिस्थले लिङादिपदबोध्यं स्थिरमपूर्वं कार्यं यदाश्रीयते तत् कीदृशप्रयोजनमभिलक्ष्येति ? अथ 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिस्थले स्वर्गकामपदाभिव्याहारोऽपूर्वकल्पनमन्तरे-

अतिशयः फलेचात्र तदुत्पत्तिः समीरिता । फलोत्त्पत्तीच्छयायस्माद् यागस्य सङ्ग्रहस्ततः ॥ फलस्य शेषता यागे यागस्य शेषिता फले । तथेशशेषता विश्वे विश्वस्य शेषितेश्वरे ।' पतिं विश्वस्य' इत्यादिश्रुतेस्तत्रप्रमाणता । समन्वितं ततो नैव ह्यपूर्वे शेषिलक्षणम् । स्वर्गस्य साधनेच्छातो यतोऽ पूर्वस्य सङ्ग्रहः । शेष एव ततोऽपूर्वो न स शेषीकथञ्चन । (प्रभाकरमतनिरासे ६६-७०) इति ।

इतः पूर्वप्रकरणादौ यागादीनां क्षणप्रध्वंसितत्वात् कालान्तरभाविस्वर्गादिफ-लयाजकस्य न स्यात्तदर्थं यागजनितं स्वर्गफलोत्पादकंफलपर्यन्तावस्थायिनमेकमपूर्वं

से भी कर्म भिन्न है ऐसा मीमांसकों ने माना है । वह सर्वान्तर्यामी भगवान् इन्द्रादि देवताक कर्म को स्वकीय आराधन समझकर इन सब कर्मो को स्वीकार करते हैं । जिस प्रकार नाभि रथ चक्र को धारण करता है उसी तरह भगवान् ब्राह्मण क्षत्रिय प्रभृतिक सर्व वर्ण संकुलित इस भुवन को धारण करने वाले होते हैं । तत्तत् कर्मों से आराधित होकर के भगवान् श्रीसीतानाथ ही तत्तत् इष्ट भक्ताभिलषित फल को देते हुए इस जगत् के धारक कहलाते हैं । अतः श्रीभगवान् रथनाभि की तरह धारक होने के कारण नाभि की उपमा से उपमित किये गये हैं । अर्थात् रथचक्र का जो मध्यभाग जिसमें सब शालाकायें आधारित रहती हैं इसलिये वह नाभि धारक है । उसी तरह भगवान् में सब पदार्थ ओतप्रोत हैं इसलिये भगवान् भी जगत् चक्र के नाभि कहे जाते हैं । इसलिये मन्त्र में '**सर्वस्यनाभिः**' ऐसा कहा है । और मन्त्र के उत्तरार्द्ध में कहा गया है कि अग्नि वायु प्रभृतिक देवताओं के अन्तर्यामी अन्तरात्मा होने से भगवान् अग्नि वायु शब्द से भी बोधित होते हैं । तथाहि '**तदेवाग्निस्तद्वायुस्तत्सूर्यस्तदुचन्द्रमाः**' सर्वान्तर्यामी भगवान् ही अग्नि हैं । वायु हैं वे ही सूर्य तथा चन्द्रमा भी हैं । क्योंकि भगवान् इन दोवों के अन्तरात्मरूप से व्यवस्थित होने से सर्वस्वरूप हैं । गीता में भी कहा है-

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।

णानुपपद्यमानोऽपूर्वं कार्यं साधयतीति चेत् अनुपपत्तिरेवात्रकेति वक्तव्यम् ? साधनेच्छाविषयीभूतस्वर्गः स्वर्गकामनावान् तस्य

कल्पितं भवतीति प्रतिपादितम् । परन्तु यागादिजनितं फलं न भवति न वा यागादिजन्यापूर्वेण किन्तु यागादिकर्मभिराराधितः परमपूरुष एव फलं प्रयच्छतीति वेदवित् प्रक्रियानुसारेण प्रदर्शयितुं मीमांसकाभिमतमपूर्वं महता प्रक्रमेण खण्डयितुं प्रक्रमते-स्यादेतत् इत्यादि 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिस्थले लिङादिपदेन अपूर्वं कल्प्यते तत् किमर्थमिति प्रश्नः सिद्धान्तस्य । स्वर्गफलानुपपत्तेरिति मीमांसकः ।

तदाह मीमांसकः, स्वर्गकामिनं प्रति 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिना यागादिना यागादिर्विहितः । तद्विधानं तदैव संगच्छते यदियागादिः स्वर्गसाधनंभवेत् । परन्तु यागादिः क्षणप्रध्वंसीति कालान्तरभाविस्वर्गं प्रतिसाधनं न स्यादपूर्वास्वीकारे

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान्हितान् ॥

अर्थात् गीता में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है कि जो कोई भक्त मेरे परमेश्वर के शरीर रूप देवों का श्रद्धापूर्वक अर्चन पूजनादिक शास्त्र विहित कर्म को करता है उस उस भक्त की तन्निष्ठता श्रद्धा को अचल अर्थात् अतिस्थिर बना देता हूं। तब वह भक्त तादृश अचल श्रद्धा से युक्त होकर तत्तत् देवों के आराधन में प्रवृत्त संलग्न हो जाता है, तादृश श्रद्धा पूर्वक उस देव के आराधन पूजनादिक करने के कारण मेरे से दिये हुए ऐहिक वा पारलौकिक फल को प्राप्त करके चिरकाल पर्यन्त तादृश फल का अनुभव करता है। यो यो यां यां तनुम् यहां तनु शब्द से यह बतलाया गया कि सर्वान्तर्यामी भगवान् का इन्द्रादि देव शरीर रूप है। इसलिये शरीर का पूजन करने वाले व्यक्ति के द्वारा शरीरी भगवान् पूजित होकर के इष्ट फल के दाता होते हैं। इसी प्रकरण में और भी कहा है-

'अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च'

अर्थात् देवान्तरों के आराधन स्थलों में सर्व शरीरक होने से मैं ही जिस हेतु आराधित होता हूं इसलिये सर्व यज्ञों का भोक्ता मैं ही हूं तथा प्रभु सब के नियमाक होने से सर्व फल स्वर्गादिक पारलौकिक फल तथा पुत्र वित्तादिक ऐहिक फलों का दाता भी

स्वर्गकामनावतः शरीरपातानन्तरजायमानस्वर्गसिद्धये चिरविनष्ट-यागादिर्नोपयुज्यतेयागादिरिति तदर्थमपूर्वं कल्पितं भवति । परमेश्वराराधनेनैव स्वर्गादिसिद्धिसंभवेन तदर्थमपूर्वकल्पन-मविदितवेदवृत्तान्तस्यैव भवति । यागदानादिसर्वकर्मभिराराधितो

इयमेवानुपपत्तिरित्याकलय्य यागजन्यं फलपर्यन्तस्थायि अपूर्वनामकंवस्तुव्यापारतया कल्प्यते । अर्थात् यागादिक्रियातः स्वर्गादिर्भवत्विति तदर्थमेवापूर्वकल्पनमिति ।

तत्र शोभनम् सर्वकर्मभिराराधितो भगवान् आराधकायेष्टमनिष्टं वा फलं ददाति तावतैव सर्वनिर्वाहसंभवेऽपूर्वस्य जडस्य कल्पनं निरर्थकमेवेति वेदवित्समयः । यथा कश्चित् शासको राजादिर्भृत्यसेवया प्रसन्नो तस्मै तदभिमतं फलं प्रयच्छति तथा तदपराधेन तदुपरिरुष्टो दण्डादिफलं ददाति । तत्र सेवापराधौ विनश्वरौभवतस्तथापि राज्ञो हृदये प्रसादं रोषं चोत्पाद्य तत् द्वारा फलं भवति । तथैव प्रकृते सत्कर्मणाराधितो भगवान् प्रसन्नो भूत्वा तस्मै स्वर्गादिकमभिमतं फलं ददाति, असत्कर्मणा-रुष्टोऽशुभयोन्यादिकमशुभंफलंददातीति । तत्र सत्कर्मदुष्टकर्मणी विनश्वरेऽपि भगवति प्रसादं रोषं च समुत्पाद्य तत् द्वारेण फलप्रदोभवतीतिवेदविदः पन्थाः। न तत्रापूर्वकल्पितं

मैं ही हूं।

विष्णु पुराण में भी कहा है-

'यज्ञैस्त्वमीज्यसे नित्यं सर्वदेवमयोऽच्युत ? ।
यैः स्वधर्मपरैर्नाथ नरैराराधितो भवान् ।
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये ॥' इति ॥

अर्थात् हे अच्युत ! (**सष्ठस्वकीय स्वरूप गुणादिभिश्च्युतः परित्यक्तो न भवति यः सोच्युत इति व्युत्पतेः**) गुण तथा धर्म से जो च्युत परित्याजित न हों उसे अच्युत कहते हैं। हे भगवन् ! सर्वदेवों में अन्तर्यामी के रूप से निवास करने से अर्थात् सर्वत्र व्याप्त होकर रहने से आप सर्व देवमय हैं एतादृश आप ही सभी प्रकारों के यज्ञ से आराधित पूजित होते हैं। हे नाथ ! स्वकीय वर्णाश्रम धर्म के आचरण करने वाले मनुष्यों से आराधित हो के उपासक मोक्ष प्राप्ति करने के लिये इस सम्पूर्ण मायामय को

भगवान्श्रीसीतानाथ इष्टमनिष्टं वा फलं प्रयच्छतीति वेदमर्यादा। तदाहुर्जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्यचरणाः-

'स्वर्गकामो यजेतात्र स्वर्गो यागफलं ननु।
मृत्योरनन्तरं प्राप्यं यागस्तदाविनश्यति ॥८६॥

भवतीति। तदत्र स्वपूर्वाचार्यदिव्यप्रबन्धेनस्वोक्तिं पुष्णाति तदाहुरित्यादि। **अर्थात् फलकामनावान् पुरुषः फलप्राप्तये यागादिकर्मभिरिन्द्रादिदेवता द्वारेण** इन्द्राद्यन्तर्यामिणं परमात्मानमिन्द्रादिपदवाच्यं 'इन्द्रो मायाश्रयः श्रीरामः इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते' इतिश्रुतेरिति बोध्यम्' (वेदरहस्यमार्तण्डभाष्यम् ३६) इत्याचार्योक्तेः परमात्मानं सर्वेश्वरश्रीराममाराधयितुमिच्छति। **स भगवान् तादृश यागादिभिराराधितः साधकायेष्टफलं प्रददाति इति शास्त्रमर्यादा। अत्रार्थे श्रुतिमपि प्रमाणयति** इष्टापूर्तंबहुवाजातं जायमानं विश्वं विभर्ति भुवनस्य नाभिः। **अस्यार्थः श्रुतिविहितं कर्म इष्टम्**

पार कर जाते हैं। गीता में कहा है-

'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।' (मेरी शरण में जो आते हैं वे इस माया को पारकर जाते हैं।) इससे सिद्ध होता है माया मोक्ष का प्रतिबन्धक है। भगवत्कृपा मात्र से इसका विनाश होता है। केवल वेद में ही ऐसा नहीं कहा गया है कि यागादिक कर्म से आराधित भगवान् ही सर्वफल के प्रदाता हैं किन्तु इतिहास पुराणादिकों से उपवृंहित सर्व वेदों में भी ये बाते कहीं गई हैं। इस बात को समजाने के लिये आचार्यजी कहते है-

'इतिहास पुराणादिषु तथा सर्ववेदेषु च' इत्यादि। इतिहास तथा पुराणादि से युक्त सभी वेदों के अनेक स्थलों में विस्तार पूर्वक कहा गया हैं कि शास्त्र विहित जितने यागादिक कर्म समुदाय हैं वे सब सर्वेश्वर श्रीसीतानाथ के आराधन पूजन रूप ही हैं इन कर्म समुदायों से पूजित होकर के भगवान् भक्तो को तत्तत् अभिलषित फल को देते हैं। भगवान् सर्वज्ञ हैं इसलिये वे स्वकीय पूजनादिकों को जानते हैं भगवान् सर्वशक्ति संपन्न हैं अतः उनमें फल दातृत्वशक्ति सर्वदा बिद्यमान रहती है। तथा भगवान् श्रीसीतानाथ सर्वाधिपति होने से सब के स्वामी हैं। इसलिये दास इस जीव का आवश्यक कर्तव्य होता है कि भगवान् का अनन्यभाव से आराधन पूजनादिक यागादि कर्म द्वारा करें।

यागाभावे च तत्कार्यस्वर्गस्य संभवो नहि।
तत एव फलोत्पत्तियावदपूर्वकल्पना ॥८७॥
इतिमीमांसकप्रोक्तं मन्यन्ते वैदिका नहि।

तथा स्मार्तं कर्म पूर्तम्, एतदुपलक्षणं सर्वस्य श्रौतस्य स्मार्तस्य च कर्मणाम्, तानि च कर्माण्येकानि, एतत्कर्म इन्द्रादिदेवाराधनाय भवति। तथाप्येतत्सर्वमपि कर्मैकदेवताकम्, यतस्तत्तदिन्द्रादिदेवानामन्तर्यामिरूपेण वर्तमानपरमपुरुष एवाराधितो भवति। यथा नाभीरथचक्रस्यधारको भवति (रथक्रस्य मध्यभागोना भिरिति प्रोच्यते) तथैव परमपुरुषो ब्राह्मणादिसर्ववर्णसहितस्य समस्तस्य जगतोधारकतया नाभिरिति पदव्यपदेश्यो भवति। स च परमपुरुषोऽग्नि-वाय्वादिदेवानामन्तर्यामितयाव्यवस्थितोऽग्न्यादिपदवात्योऽपि भवति। तथोक्तम्

एतादृश सर्वान्तिरात्माभगवान् इन्द्रादि देवताओं के आन्तर्यामी बनकर के याग दानादिक वेद विहित कर्म के भोक्ताभी होते हैं तथा सर्वफल के प्रदाता बनते हैं। श्रुति भी कहती है कि ईश्वर सर्व फल के तथा सर्व कर्म के फल को देनेवाले है। **'चतुर्होतारो यत्र संपदं गच्छन्ति देवैः'** इति। अर्थात् चारहोताओं के द्वारा संपादित होने वाला यागादिक कर्म कलाप देवताओं में इन्द्रादिक देवों में अन्तर्यामी रूप से परमात्मा के अवस्थित होने से देवता इन्द्रादिक के साथ भी आराध्य आराधक भावरूप संबन्ध को प्राप्त करते हैं। सर्वत्र अन्तर्यामी के रूप से अवस्थित परमात्मा का शरीर रूप इन्द्र प्रभृति देवताओं को जो कर्म के साथ संबन्ध होता है वह पारंपरिक होता है तथा देवगण परतन्त्र बनकर के कर्म संबन्धी होते है और परमात्मा के साथ जो कर्मो का संबन्ध होता है वह साक्षात् संबन्ध होता है तथा भगवान् स्वतन्त्र होकर के कर्म संबन्ध भागी बनते हैं। इस बात को गीता में भगवान् ने स्पष्ट रूप से कहा-

'भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छतीति ॥

अर्थात् मैं भगवान् श्रीकृष्ण सर्वकर्म के द्वारा साक्षात् आराध्य होने से याग वाजपेयादिक दान और तप प्रभृति का भोक्ता हूं तथा सर्वलोकों का महेश्वर हूं एतादृश गुण क्रिया शील मुझ परमेश्वर को शास्त्र द्वारा जानकर के उपासक लोग शांति को अर्थात् परमपद को प्राप्त करते हैं।

इन उपर्युक्त विचारो से सिद्ध होता है कि सर्वयागादिक कर्म इन्द्र प्रभृतिक यज्ञीय देव प्रभृतियों के अन्तर्यामी अन्तरात्मरूप से अवस्थित परम पुरुष सर्वेश्वर श्रीसीतानाथ के आराधन

कर्मणाराधितोरामः कर्मफलं ददाति यत् ॥८८॥
अत्रार्थे च प्रमाणं किमिति पृष्टे तदुच्यते ।
'इष्टापूर्त्तं बहुधेति' श्रुतेरत्र प्रामाणता ॥८९॥

'तदेवाग्निस्तद्वायुस्तत्सूर्यस्तदुचन्द्रमाः' अर्थात् सर्वस्यान्तर्यामीधारकः परमपुषोग्निर्वायुः सूर्यश्चन्द्रमाश्चभवति, यतः सर्वदेवानां स अन्तरात्मा तस्मात्तथेति। गीतायामपि कथिथं भगवता कृष्णेन-

'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धयायुक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हितान् ॥

रूप हैं। किन्तु वे कर्म परम पुरुषातिरिक्त किसी का आराधन रूप नहीं हैं। और इन कर्मों से आराधित होकर के भगवान् श्रीसीतानाथ ही साधकों के अभिमत अर्थात् यागादि प्रदर्शित फल को देने वाले होते हैं।

अब जब फलों के दाता भगवान् स्वयं होते हैं इस स्थिति में फलजनक रूप में अपूर्व को मानने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् कोई भी आवश्यकता नहीं क्योंकि क्षणभंगुर यागों से कालान्तर भावि स्वर्ग फल उपन्न नहीं होता हैं इसलिये याग तथा स्वर्गादि फलों के मध्यबर्ती अपूर्व को मानना आवश्यक पडता था परन्तु जब ईश्वर के प्रसाद से ही फल संभवित होता है सर्व शास्त्र संमतपक्ष का ऐसा मानने से ही निर्वाह हो जाता है। शास्त्र विरुद्ध अपूर्व कल्पना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं हैं।

एवं अपूर्वात्मक कार्य के विषय में किसी पद का शक्तिग्रह होना भी असंभवित है क्योंकि प्रभाकरानुयायी अपूर्व कार्य को लिडादि पदों का वाच्य मानते हैं तथा भट्टमतानुयायी अपूर्व को अनुपपत्ति गम्य मानते हैं परन्तु ये उभयपक्ष प्रमाण सिद्ध नहीं होते हैं क्योंकि अपूर्व कार्य की ही कोई आवश्यकता नहीं है तब तादृश अपूर्व को पदवाच्य माने अथवा अनुपपत्ति गम्य माने इसकी कोई आवश्यक ही नहीं है। प्रत्युत निराधार पदार्थों के ऊपर विचार करना तो **'अरण्य रोदन'** के समान है। इस प्रकार से श्रीआचार्यजी ने अपूर्व का तथा अपूर्ववादी मीमांसको के पक्ष का निराकरण किया है। विशेष विवरण अन्यत्र पूर्वाचार्यों के प्रबन्धों में देखने

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धांतामेवविदधाम्यहम् ॥९०॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैवविहितान् हि तान् ॥९१॥

अस्यार्थः-यो यो भक्तः साधकः, यां यां तनुम् मदीयशरीरलक्षणं यं देव विशेषं श्रद्धया युक्तः सन् अर्चितुं पूजयितुं यष्टुमिच्छति, मम शरीरभूतं यं कमपि देवं यष्टुमिच्छतीत्यर्थः। तत्तत्साधकस्य तत्तन्मम शरीरभूतदेवेष्वेवाचलां परिनिष्ठितां श्रद्धां विश्वासं विदधामि करोमीति। स भक्तः साधकस्तादृशश्रद्धया समन्वितः सन् तं तं देवविशेषमाराधयति, स स साधको मया प्रदत्तफलविशेषं प्राप्नोतीति। अत्र तनुशब्देन इन्द्रादिदेवानामन्तर्यामिरूपेणावस्थितपरमेश्वरस्य भगवतः शरीरं कथितम्। अन्यत्रापि गीतायां कथितम्-

की कृपा करें। विस्तारभय से संक्षेप किया गया हैं।

इस के पूर्व प्रकरण में तथा उस के भी पूर्व प्रकरण में आचार्यजी के अपूर्वकार्य लिडादि प्रत्यय का अर्थ हैं इस बात का निराकरण कर दिया है, तथा यागादि से आराधित भगवत्कृपा से ही शुभाशुभफल की प्राप्ति होती है ऐसा भी कहा है। इस पर मीमांसक पूछते हैं कि यदि लिडादि विधायक प्रत्ययों का अर्थ अपूर्व कार्य नहीं है तब उन प्रत्ययों का वेदान्ताभिमत अर्थ क्या हैं ? सर्वथा तो उन प्रत्ययों के निरर्थक होना उचित नहीं है ? इत्यादि शंकाओं के निराकरण के लिये तथा स्वाभिमत लिडादिक प्रत्ययों के अर्थ को वतलाने के लिये उपक्रम करते हैं-

'अथैवं सति लिडादि प्रत्ययानामित्यादि ।'

यदि अपूर्वात्मक कार्य लिडादि प्रत्यय का अर्थ नहीं है अर्थात् लिङ्प्रत्यय से अपूर्वात्मक अर्थ प्रतिपादित नहीं होता है तो आपके अभिमत लिङ्प्रत्यय का अर्थ क्या है ? सर्वथा निरर्थक तो वह तो कह नहीं सकते हैं क्योंकि तब तो लिडादिक का प्रयोग सर्वथा निरर्थक हो जायगा ? यह पूर्वपक्ष का अभिप्राय है। इस प्रश्न का उत्तर देते है **'यज् देवपूजायामित्यादिस्थले'** इत्यादि। यज देवपूजायाम् इत्यादि देवताओं का आराधनरूप यागादिक में जो कर्तृव्यापार साध्यत्व है यही लिडादि प्रत्ययों का अर्थ है। कर्ता का वाचक जो प्रत्यय है वह प्रकृत्यर्थ यागादिक में कर्तृव्यापार का जो संबन्ध है उसके प्रकारभूत वर्तमानादिक को बतलाता है और लिडादिक

अहञ्च सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।
प्रमाणानि तथोक्तार्थे इतिगीतावचांस्यपि ॥९२॥
प्रमाणरत्ने सम्प्रोक्तं पराशरमहर्षिणा ।

'अहं च सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेवचेति यतोहं सर्वाराध्यस्तस्मात्कारणात्सर्वयज्ञानां फलभोक्ता अहं सर्वशरीरकः परमेश्वर एव तथा सर्वयज्ञस्य फलप्रदाताप्यहमेव भवामि न त्वन्यो भोक्ता फलदाता वेति । विष्णुपुराणेऽपि कथितम्-

'यज्ञैस्त्वमिज्यसे नित्यं सर्वदेवमयोऽच्युत ! ।
यैः स्वधर्मपरैर्नाथ ! नैराराधितो भवान् ॥
ते तरन्त्याखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये ॥ इति ॥'

तदयमर्थः-हे अच्युत ! यतस्तं सर्वदेवानामन्तर्यामिरूपेण व्यवस्थितोऽसि ततस्त्वं सर्वदेवमयो भूत्वा सर्वयज्ञैर्नित्यंत्वमेव इज्योभवसि पूजनीयो भवसीत्यर्थः । हे नाथ !

प्रत्यय तो प्रकृत्यर्थ में कर्तृव्यापार साध्यतामात्र को बतलाता है। इसलिये हमारेमत में अर्थात् वेदान्त में कोई भी अनुपपत्ति नहीं होती है। अर्थात्-'**यजेत**' इस पद में यज् धातु है प्रकृति तथा 'त' है प्रत्यय। यज् धातु रूप प्रकृति का अर्थ है देवपूजा यागादिक और लिङ्है प्रत्यय। ये लिङ् प्रभृतिक प्रत्यय प्रकृत्यर्थ याग प्रभृति को कर्ता का जो व्यापार है तादृश व्यापार के द्वारा साध्य अर्थात् जन्य बतलाते हैं तो धात्वर्थ यागादिक में जो कर्ता के व्यापार से साध्यता है वही लिङ् प्रभृतिक प्रत्ययों का अर्थ हैं। लोकानुसार से यहीं बात सिद्ध होती है। जो कोई लकार कर्तृकारक का वाचक होता है वे सब इसी बात को बतलाते हैं कि धात्वर्थ यागादिक किस प्रकार से कर्तृ व्यापार के साथ संबन्ध को रखता है। इसमें लट् लकार धात्वर्थ में कर्तृ व्यापार संबन्ध को वर्तमानरूप में बतलाता है क्योंकि '**वर्तमाने लट्**' ऐसा पाणिनीय अनुशासन है। लिट् लकार धात्वर्थ में कर्तृ व्यापार को परोक्षभूतरूप में समझाता है क्योंकि '**परोक्षे लिट्**' ऐसा नियम है। लट् लकार धात्वर्थ को कर्तृ व्यापार साध्यता भविष्यत् रूप में बतलाता है। और लिङ्तथा लोट् लकार धात्वर्थ में साध्यत्व रूप से कर्तृव्यापार संबन्ध को बतलाता है। अर्थात् कहने का अभिप्राय यह है कि जितने कोई लकार हैं चाहें वह लट् हो अथवा एतदन्य लडादिक हो वे सब के सब धात्वर्थ रूप प्रकृन्यर्थ में होनेवाली जो विलक्षणता तादृश विलक्षणता को अवश्यमेव बतलाते हैं-यथा लट् लकार यजते यहां प्रकृत्यर्थ याग में वर्तमान काल के संबन्ध को बतलाता

यज्ञैस्त्वमिज्यसे नित्यं सर्वदेवोमयोऽच्युत ! ॥९३॥
यैः स्वधर्मपरै नाथनैराराधितो भवान् ।
ते तरन्त्यखिलामेतां मायामात्मविमुक्तये ॥९४॥

यैः स्वधर्मपरायणैर्नरैराराधितो भवसि ते आराधका आत्मविमुक्तये संसारं तर्तुमखिलामेतां मायां तरन्ति मायारहिता भवन्ति ततश्चानायासेन साकेतपदमनामयं श्रीहनुमदादिभिः सेवितं स्थानं प्राप्नुवन्ति विमुक्ता भवन्तीत्यर्थः । सर्वेतिहासपुराणेषु सर्ववेदेषु च स्थले स्थले प्रतिपादितं यत् सर्वं शास्त्रविहितं यज्ञागिकं कर्म भगवत एवाराधनरूपम् । सर्वैर्यज्ञदानादिकर्मभिराराधितो भगवान् सर्वेश्वरः श्रीसीतानाथस्तत्तदिष्टफलं भक्ताय प्रयच्छति । भगवान् सर्वज्ञोऽत एव सर्वानेवाराधकान् सर्वदा विजानन्नेव भवति । तथा परमेश्वरः सर्वशक्तिसंपन्नोऽतएव तत्तत्फलस्य दाता भवति । भगवान् सर्वस्याधिपतिः स्वामी भवति । अत एव तदीयाराधनं दासजीवस्यावश्यकर्तव्यमेव भवति । एतादृशशक्त्यादिसंपन्न इन्द्रादि देवादीनामन्तर्यामीभवन्

है अर्थात् यागारूप क्रिया अभी वर्तमान चालू है न तु याग हो गया अथवा होगा, इस प्रकार भूतकाल वा भविष्यकाल के साथ याग के संबन्ध को बतलाते हैं। एवं '**इयाज**' यहां लिट् लकार धात्वर्थ याग में भूतकाल के संबन्ध को बतलाता है, याग हो गया है न तु याग होता है अथवा याग होगा ऐसा वर्तमान वा भविष्यत् काल के संबन्ध को बतलाता है। एवं '**यक्ष्यति**' यहां धात्वर्थ याग में भविष्यत् काल के संबन्ध को लट् लकार बतलाता है, याग होने वाला है इस प्रकार से धात्वर्थ याग में आगामी काल का संबन्ध ही प्रतीयमान होता है नतु याग होता है अथवा याग हो गया। ऐसा वर्तमान अथवा भूतकाल का संबन्ध ज्ञात नहीं होता है। अर्थात् वर्तमान प्रतियोगी के वार्तमानिक सद्भाव को बतलाता है। लिट् प्रभृति कतिपय लकार प्रतियोगी के विनाश को समझाता है। इसमें भी लिट् लकार परोक्षभूत को बतलाता है तदितर भूतताबोधक कतिपय लकार वर्तमान संबन्ध भूतकाल को बतलाता है। एवं भविष्यत् काल बोधक लृटादिक लकार प्रतियोगी के प्रागभाव को सममझाता है वह प्रागभाव '**इह घटो भविष्यति**' इत्यादि प्रतीति साक्षित है, अर्थात् जब कुलाल चक्र चीवर सलिलमृत्तिका प्रभृतिक कारण कलाप को जमा कर के घट बनाने के लिये बैठता है तब द्रष्टा लोग तथाविधकुलालसहित सामग्री के सद्भाव को देखकर कहते हैं कि '**इह घटो भविष्यति**' इससे सिद्ध होता है कि भविष्यत् काल प्रतियोगी

भृत्यायाघेनरुष्टश्चतुष्टश्चसेवया नृपः ।
सेवाघयोर्विनाशेऽपि सुखदुःखप्रदो यथा ॥९५॥
सत्कर्मभिः प्रसन्नश्चाप्रसन्नो दुष्टकर्मभिः ।
तथा सर्वेश्वरो रामः शुभाशुभफलप्रदः ॥९६॥

वेदादिविहितसर्वयागदानादीनां भोक्ताफलप्रदाता च भवतीति । सर्वश्रुतयोऽमुमेवार्थं पोषयन्ति । तदुक्तम् चतुर्होतारो यत्रसंपदं गच्छन्ति देवैः इत्यादि अर्थात् चतुर्भिर्होतृभिः संपद्यमानं यज्ञादिकर्म, देवेष्वन्तर्यामिरूपेण देवेष्ववस्थानादेव देवैराराध्याराधनसंबन्धं प्राप्नोति । अन्तर्यामिरूपेणावस्थितपरमेश्वरस्य शरीररूपत्वादिन्द्रादिदेवानां कर्मभिः संबन्धो भवति न तु साक्षात् भगवतः शरीररूपेणावस्थानात् देवादयः पराधीना एव कर्मसंबन्धभाजो भवन्ति । भगवतः कर्मसंबन्धस्तु स्वातन्त्र्येणैव भवतीति । तदुक्तं गीतायामेव- भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ इति ॥

के प्रागभाव को बतलाता है । कोई लकार तो तात्कालिक अर्थात् वर्तमान कालिक प्रतियोगी सद्भाव को बतलाता है कोई लकार प्रतियोगीध्वंस को और कोई प्रतियोगी प्रागभाव को समझाता है । इस प्रकार से इन विशेषताओं को सूचित करना ही लकार का काम है । जिस तरह लट् प्रभृतिक लकार अपनी अपनी विशेषताओं को बतलाते हैं उसी तरह लिङ्लोटादि लकार प्रत्यय **'यजेत'** इत्यादि स्थल में प्रकृति जो यज् धातु उसके अर्थ को यागादिक क्रिया है उन धात्वर्य क्रियाओं में कर्तृव्यापार साध्यता रूप विशेषता को बतलाते हैं अर्थात् यागादिक जो है वह याग क्रिया का जो कर्ता स्वर्ग कामी पुरुष है उसके व्यापार से संपन्न होनेवाला है इस वात को समझाता है। इस तरह सभी लकार स्वकीय स्वकीय विशेषता का समर्पण द्वारा सार्थक होते हैं। इस तरह आचार्यजी ने विधायक प्रत्यय जो लिङ् लोट् तव्यत् तव्यानीयर प्रत्यय हैं तदर्य का निष्कर्ष बतलाया तथा वेदान्त वावय एवं इतिहास पुराणों के वचनों से यह भी सिद्ध कियाकि भगवान् श्रीसीतानाथ ही तत्तत्कर्म के आराधन करने से सुप्रसन्न हो कर करके साधक को यथाभिमतफल के समर्पक होते है जगद्गुरुश्रीतुलसीदासजी ने विश्व प्रसिद्ध अपने श्रीरामचरितमानस प्रवन्ध में **'शुभ अरु अशुभ करम फलदाता'** ऐसा कहकर सर्वेश्वर श्रीरामचन्द्रजी को ही सर्वफलदाता

'एष ह्येवानन्दयाति' 'अथ तस्यभयं' तथा ।
इत्यादिश्रुतिवाक्यानि प्रमाणानि च तत्र हि ॥९७॥
'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।
इति प्रमाणतः कर्मविहितं राघवार्चनम् ॥९८॥

अस्यार्थः-स्वयमेव भगवान् कथयति-अहं सर्वस्यान्तरात्मा सर्वेश्वरो यतः साक्षादेव सर्वेषां कल्याणमिच्छतामाराध्योस्मि अतः सर्वयज्ञतपसां श्रौतस्मार्तकर्मणां विधिवदनुष्ठितानां भोक्तास्मि । तथा स्थावरजङ्गमानां नित्यानित्यजगतां महेश्वरः स्वेतरानपेक्षैश्वर्यवानस्मि, एतादृशंमां सर्वाराध्यं सर्वलोकमहेश्वरं ज्ञात्वा ज्ञानविषयीकृत्य ज्ञाता साधकः शान्तिं सर्वदुःखोपरमस्वरूपसाकेतनिवासं सार्वदिकं प्राप्नोतीति । एतावता सर्वदेवानामिन्द्रादीनामन्तरात्मा परमेश्वरः श्रीसीतानाथ एव देवादिद्वारेणाराध्यस्तस्यैव च दानयज्ञादिकंसमग्रं कर्माराधनरूपमिति । तथा साधकैः सर्वकर्मभिर्विधिवदाराधितो भगवानेव साधकानामभिमतफलस्य प्रदाता भवतीति ।

सिद्ध किया है । इसस्थिति में कुसृष्टि कल्पना करके लोक वेदाप्रसिद्ध तथा प्रमाण विरहित अपूर्वात्मक कार्य की कल्पना विधायक प्रत्ययस्थल में करने की कोई आवश्यकता नहीं है। विशेष विचार धात्वर्थ विचार तथा प्रत्यार्थ विचार स्थल में देखें। यहां उन सब का विवेचन प्रायः अप्रकृत बिवेचन हो जाता है।

केवल वेदान्त वाक्य से ही यह सिद्ध नहीं होता है कि परमपुरुष के आराधन से ही कर्म का फल प्राप्त होता है परन्तु कर्मकाण्ड के वाक्य से भी सिद्ध होता है कि तत्तत्कर्मो से आराधित तत्तत् देवता भी फल को देते हैं इस स्थिति में कर्मजन्य अपूर्वफल देता है ऐसी कल्पना विरर्थक हैं । **'स्वर्गकामो यजेत'** इत्यादि विधि वाक्य कहता है कि फल कामनावान् पुरुष कर्म यागादिक करें। एतादृश कर्म स्तुति द्वारा कर्म में फलकामनावान् को प्रोत्साहित करने के लिये समागत अर्थवाद कहता है कि सभी कर्म देवों का आराधनरूप ही है तथा कर्म से आराधित देव जयमान को फल देते हैं क्योंकि विधि बाक्य तथा अर्थवाद शास्त्र में एक वाक्यता होने से यही अभिप्राय निकलता है न तु अपूर्व फलदायक होता है। तब निरर्थक इस अपूर्व को स्वीकार करना सर्वथा व्यर्थ है । इन सब वातों को बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं कि-

सर्वकर्माण्यपि सदाकुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥९९॥
रामप्रेरणया कर्मरामाधीनः करोम्यहम् ।

एवं स्थिते अर्थात् भगवतः प्रसादेनैव समनुष्ठितसर्वकर्मणः फलसिद्धौ संभवन्त्यां किमर्थं फलोत्पादनाय लक्षणप्रमाणविरहितविलक्षणापूर्वस्य परिकल्पनं कल्पनामात्रमेव । क्रियातिरिक्तापूर्वात्मककार्ये पदशक्तिग्रहो नोपपद्यते । प्रभाकरस्त्व पूर्वं 'यजेत' इत्यादिपदवाच्यं स्वीकरोति, भाट्टास्तु अनुपपत्तिगम्यमिति तदुभयपक्षोऽपि नोपपद्यते । यदा तु अपूर्वात्मकधर्मी एवासिद्धो गगनकुसुमवत् तदा तदपूर्वं पदवाच्यमनुपपत्तिगम्यमेवेति विचारोऽप्राप्तकालिक एवेति ।

तदयमत्र संक्षेपः, सति कार्ये कारणस्य तत्प्रापकस्यान्वेषणं भवति न तु कारणे सति कार्यं स्यादेवेति । कपालादीनां समवधानेऽपि कदाचित्कार्यानुत्पादस्य बहुलमुपलब्धेः । न चापूर्वस्यास्वीकारे क्षणप्रध्वसियागादिना स्वर्गासंभवात्, 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिविधिबोधितयागादेरकारणत्वप्राप्तौ विधिवाक्य-

'फलकामिनेऽवश्यकर्तव्यतया' इत्यादि । जो व्यक्ति स्वर्गादि फल कामनावान् है उसके लिये अवश्य कर्तव्यतारूप से यागादिक कर्मों का विधान करके कहा कि तत्तत् जो कर्म है सो तत्तत् देवों का आराधनरूप ही है एतादृश कर्म द्वारा फल की सिद्धि होती है ऐसा कर्म विधायक वाक्यों से सिद्ध होता है । इसमें उदाहरण बतलाते हैं-'**वायव्यं श्वेतमालभेतभूतिकामः**' अर्थात् भूति संपत्ति की कामनावान् पुरुष वायुदेवता का श्वेतछाग से याग करे अर्थात् आराधन करें । अब याग जो है वह अतिद्रव्य तथा श्रमसाध्य है तो कामनावान् पुरुष को भी याग करने में आलस्यात् प्रवृत्ति होती है तो यजमान को कर्म स्तुति द्वारा कर्म में प्रवृत्त्यर्थ पुरुष को याग का स्तावक होता है अर्थवाद शास्त्र यथा '**वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता वायुमेवस्वेनभागधेयेनोपधावति स एवैनं भूतिं गमयति**' अर्थात् वायु अतिशीघ्र गामिनी देवता हैं, यजमान स्वकीय हवनीय द्रव्य से उस वायु देव का आराधन करें । इस प्रकार आराधित वह देव यजमान को बहुत जल्दी संपत्ति का प्रदान करता है । इस अर्थवाद से यह सिद्ध होता है कि कर्मदेव याग से प्रसन्न हो करके यजमान को फल देते हैं । इस प्रकार से देवता प्रसाद द्वारा याग से स्वर्गादिक फल सिद्धि हो जाती है ऐसा मानने से सब निर्वाह हो जाता है कोई अनुपपत्ति नहीं होती है तब जो मीमांसक कहते हैं कि विधि

रामस्य तुष्टये चैवं भावयन् कुरुतान्नरः ॥१००॥
देवाधिकरणे कर्मप्राधान्यंदेवगौणता ।
मीमांसायां हि सम्प्रोक्ता जैमिनिमुनिना च या ॥१०१॥
देवतानां निरासेहि तत्तात्पर्यं न वर्त्तते ।

मनर्थकमापतेदिति तदर्थं द्वाररूपं कार्यमपूर्वं कल्प्यते इति वाच्यम् । परमेश्वरप्रसादेनैव तदन्यथासिद्धेः । अर्थात् सर्वकर्मभिराराधितप्रसन्नभगवतः कृपयैव स्वर्गादिफलसिद्धौ तावतैव वाक्यस्य प्रामाणिकत्वोपपत्तौ व्यतिरिक्तापूर्वस्य कल्पनं मुधैवेति संक्षेपः ।

ननु बिधायकस्य लिङादिप्रत्ययस्यापूर्वात्मकंकार्यं यदि नार्थस्तदा तस्य कोऽर्थः । सर्वथाऽर्थराहित्येऽर्थवच्छब्दस्वरूपयैव प्रातिपादिकसज्ञाविधानेन सर्वथाऽर्थराहित्येऽनर्थकस्यलिङादेः प्रातिपदिकसंज्ञैव न स्यात् 'अ इ उ ण्' इत्यादिवत् । न च प्रातिपदिकसंज्ञाया अभावे का क्षतिरिति वाच्यम् तथा सति सस्मिन् पदत्वमेव न

वाक्य तो कर्म को फल साधन बतलाता है परन्तु याग तो क्षणिक प्रध्वंसी क्रियारूप है तो वह कालान्तर में होनेवाला जो स्वर्गादि फल उसका साधन किस तरह बनेगा ? तो इसप्रकार से अनुपपत्ति होने से विधि वाक्य का अभिप्राय ऐसा माना जाता है कि याग स्व तथा फल के मध्य में स्वजन्य तथा फल साधक अपूर्व का आक्षेप करता है तब आक्षिप्यमाण अपूर्व के द्वारा याग फल साधक बनता है क्योंकि कर्म जन्य अपूर्वफल को उत्पन्न कर के विनष्ट होता है जब तक फल नहीं होता है तब तक वह स्थिर रहता है । ऐसा कहा है-

'**कदातिच् सुकृतं कर्म कूटस्थमिवतिष्ठति । मज्जममानस्य संसारे यावत् दुःखातिगो भवेत्** । तथा '**नाभुक्तंक्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ।**' अब जब तक यहां मध्यबर्ती अपूर्व को नहीं मानते हैं तब तक यागादिक कर्म को फल साधनता का निर्वाह नहीं होता है इसलिये अपूर्व को मानते हैं इसी अन्यथानुपपत्ति को उपादान प्रमाण कहते हैं । तो यहां उपादान प्रमाण से अपूर्व सिद्धि कर के तादृश अपूर्व द्वारा याग को फल पर वसायित्व सिद्ध होता है ऐसा मीमांसक का कथन है जो कि अपूर्व द्वारा फल साधकत्व याग में है । परन्तु एतादृश कथन मीमांसक का उचित नहीं हैं क्योंकि यदि वाक्य शेष द्वारा कर्म को फलदायकत्व सिद्ध नही होता है तब तक उपादान प्रमाण का आश्रय लेना उचित है । प्रकृत में तो '**वायुर्वैक्षेपिष्ठा**' इत्यादि अर्थबादरूप वाक्य शेष से यागादिक कर्म देवता प्रसाद द्वारा फल देते है इस तरह विधायक वाक्य

किन्त्वश्रद्धालवो नस्युर्जनिनोनिजकर्मणि ॥१०२॥
जगज्जन्मादिकर्तुश्चशास्त्रयोनेश्चशेषिणः ।
सच्चिदानन्दरूपस्य कल्याणगुणशालिनः ॥१०३॥
सर्वेश्वरस्य रामस्य सर्वफलप्रदत्त्वतः ।

स्यात् अपदस्य प्रयोगे च नरकादिप्राप्ति 'अपदं न प्रयुञ्जीतः' इतिमहाभाष्योक्तेः । 'अपदं च प्रयुञ्जानो नरोगच्छेदधोगतिमिति स्मरणाच्च । न च तर्हि 'एष वध्यासुतो याति खपुष्पकृतशेखरः । कूर्मक्षीरचये स्नातः शशशृङ्गधनुर्धरः' इत्यादौ सर्वथाऽनर्थकपदस्य कथं पदत्वं प्रातिपदिकसंज्ञाविधानाभावादिति वाच्यम् बुद्धिकल्पितार्थवत्वमादायैव प्रातिपदिकसंज्ञाविधानादिति पाणिनीयाः । न्यायविदस्तु तादृशस्थले परस्परनिरूप्यनिरूपकविषयतामादायैवनिर्वाहः । न च 'शब्दज्ञानानुपातीवस्तुशून्यो विकल्पः' इतियोगसूत्रे सर्वथार्थरहितविकल्पे का गतिरिति वाच्यं निरूप्यनिरूपकभावीयविषयतामादायैव निर्वाहस्योक्तवात् । इत्यादिशङ्कांनिराकृत्य स्वमतेन लिङादीनामर्थं दर्शयितुं प्रक्रमते अथैवं सति लिङादीप्रत्ययानां कीदृशोऽर्थः इत्यादि ।

में फल साधनत्व सिद्ध हो जाता है तब उपादान प्रमाण द्वारा सिद्ध करना ठीक नहीं है । मीमांसा में कहा है कि '**सदिग्धेतुवाक्यशेषात्**' इस अधिकरण में कहा है कि विधि वाक्य में अपेक्षित कोई पदार्थ यदि वाक्य शेष में वर्णित हो तो उसका ग्रहण करना चाहिये न तु उपादान प्रमाण का वहां आश्रय लेना यह तो अगतिक गति है । और मीमांसा में तो ऐसा भी कहा है कि विधेय के विरोधी को यदि कदाचित् किसी स्थल में फल साधक रूप से कथन किया गया हो तो उसको भी स्वीकार करना चाहिये । यथा '**तस्माद् ब्राह्मणाय नापगुरेत**' (इसलिये ब्राह्मण के वध करने का प्रयास कोई न करे यह है विधि वाक्य) यह निषेध वाक्य । इसमें ब्राह्मण वधोद्योग की निवृत्ति की विधान है यहां यथोक्त निवृत्ति ही विधेय है इस निवृत्ति का विरोधी ब्राह्मण वधोद्योग है । अतः पर में कहा है कि '**यो ब्राह्मणायाप गुरेत तं शतेन यातयात्**' (जो ब्राह्मण वध में उद्यत होता है उसको शत यातना नामक नरक का भोग करना पडता है । यहां जों ब्राह्मण वध प्रयास तथा शतयातना में जो कार्य कारण भाव संबन्ध बतलाया है वह निषेध विधि '**तस्माद ब्राह्मणाय नापगुरेत**' इस निषेधविधि का अपेक्षित है क्योंकि इस तरह ब्राह्मण वध प्रयास अनर्थ शतयातना

अपूर्वकल्पना व्यर्थाप्रभाकरानुयायिनाम् ॥१०४॥'इति।
श्रुतिराह 'इष्टापूर्तं बहुधा जातं जायमानं विश्वं विभर्त्ति भुवनस्यनाभिः' तत्रेष्टापूर्तमित्युपलक्षणं सकलश्रौतस्मार्तकर्मणः । तद्विश्वंविभर्ति वरुणादिसर्वदेवसंबन्धितया प्रतीयमानं तत्तदन्तरात्मतया

लिङादिप्रत्ययानामपूर्वात्मकं कार्यमेवार्थः, तत्पूर्वं यागजनितं सत् कालान्तर भाविस्वर्गादिफलोत्पादकं भवति, भवन्मते यद्यपूर्वं नार्थस्तदा कीदृशोऽर्थ इति प्रश्नाशयः । उत्तरयति जगदाचार्यपादः इति चेत् ? यजदेवपूजेत्यादि । अयमाशयः- समाधानग्रन्थस्य यजदेवपूजायामिति देवपूजार्थको यज् धातुः 'यजेत' इत्यत्र यज् धातुः प्रकृतिः तदर्थो देवपूजनादिकम् । लिङ् इति प्रत्ययः, अयं च लिङादिप्रत्ययः प्रकृत्यर्थयागादेः कर्तृव्यापारद्वारा साध्यत्वं निष्पद्यमानत्वं दर्शयति 'प्रकृत्यर्थान्वितस्वार्थबोधकत्वं प्रत्ययानामिति स्मरणात् । धात्वर्थस्य कर्तृव्यापारसाध्यत्वमेव लिङाद्यर्थः । यश्च लकारः कर्तृकारकवाचकः स इत्थमेव

नरक कारण सिद्ध होने से मनुष्य ब्राह्मण वध प्रयास से निवृत्त होते हैं । यहां विधेय है ब्राह्मण वधोद्योग की निवृत्ति तादृश निवृत्ति के विरोधी का फल साधन विधि में अपेक्षित होने से जब उसका स्वीकार किया जाता है तब उसी तरह विधेय याग के फल साधनता प्रकार जो कि विधिवाक्य में अपेक्षित है तथा वाक्य शेष प्रतिपादित है उसका भी स्वीकार करना आवश्यक ही है । इस स्थिति में अर्थवाद में वर्णित जो फल साधनता का प्रकार है उसको छोडकर के उपादान अर्थापत्ति प्रमाण कल्पित अपूर्व की जो कल्पना मीमांसक करते हैं वह सर्वथा अनुचित है । (शत यातना में जो ब्राह्मण वधोद्योग को साधन कहा गया है वह भी दुरितापूर्व द्वारा नहीं हैं कि परमेश्वर के निग्रह संकल्प के द्वारा साधन बनता है ऐसा शास्त्र मे कहा मया है कि शास्त्र विहित कर्म करने वाले को परमेश्वर के अनुग्रह से सभी प्रकार का सुख प्राप्त होता है यहां तक कि वह मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है । तथा शास्त्र प्रतिसिद्ध कर्म करने वाले को भगवान् के निग्रह संकल्प से अनेक प्रकारक दुःख प्राप्त होता है । तथाहि शास्त्र वचनम् '**एष ह्येवानन्दयति**' नित्यनिरतिशयानन्दमय जो परमात्मा हैं वही उपासक को आनन्द देने वाले हैं अपनी कृपा से समीहित सुखदाता है ।

एतादृश सर्व वर्द्धन परमात्मा का जो उपासन करता है अर्थात् मृगतृष्णावत् प्रतिभासमान दृष्ट नष्ट सासंरिक विषयों से विरक्त होकर के भगवान् का उपासन करता है तादृश उपासक

व्यवस्थितः परमपुरुषो भगवान् स्वयमेव विभर्ति सर्वं स्वीकरोति । 'भुवनस्य नाभिरिति' चराचरपूर्णस्य ब्राह्मणादिसर्वसंकुलितस्यभुवनस्य विश्वस्य नाभिर्धारकः । यतो भगवान् यागादिकर्मभिराराधितस्तत्तदिष्टफलसमर्पणेन सर्वेषां धारकोऽतो

दर्शयति, धात्वर्थस्य केन प्रकारेण कर्तृव्यापारेण सहान्वयो भवति । तत्र लट् लकारो धात्वर्तगतकर्तृव्यापारसंबन्धवर्तमानतया बोधयति । लिट् लकारस्तु भूततारूपेण लुट् प्रभूततयोभविष्यत्तारूपेण, लिङ् लोटादिविधायकफलकास्तु साध्यरूपेण कर्तृव्यापारसंबन्धं दर्शयन्तीति । अनेन प्रकारेण लिङादीनां निष्कृष्यार्थो दर्शितः । तथेतिहासपुराणवचनेन वेदान्तवाक्येन च भगवत एव फलप्रदत्वमपूर्वकार्यकल्पनाया नैरर्थक्यमिति 'उपनिषत्पुराणादिवाक्यैरीशः फलप्रदः । ततो मीमांसकानां हि निष्फलाऽपूर्वकल्पना' इति जगद्गुरुश्रीश्यामानन्दाचार्यचरणैः प्रदर्शितमिति संक्षेपः ।

संसारिक कायिक वाचिक मानसिक सकलभयों से विमुक्त होकर के मुक्त हो जाता है । तथा एतादृश गुण बिशिष्ट भतवदुपासन करने में साधक को जो कोई नराधम ईर्ष्या असूया से उपासन में विघ्न डालता है '**तस्य भयं भवति**' एतादृश उपासना में विघ्न डालने वाले व्यक्ति को भय होता है अर्थात् वह व्यक्ति सासंरिक भयों से कदापि विमुक्त नहीं होता है '**भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्चमृत्युर्धावतिपंचमः**' भगवत् उपासना में प्रतिबन्ध डालने वाले को भय होता है ऐसा पूर्व मन्त्र में कहा अब जिज्ञासा होती है कि तादृश व्यक्ति को क्यों तथा किससे भय होता है ? इस प्रश्न के उत्तर में श्रुति कहती है '**भीषास्मादित्यादि**' इस सर्व नियन्त्रक सर्वेश के भय से भयभीत होकर के अतुल वेग शाली वायुदेव चलते रहते हैं तथा इसी परमात्मा के डर से अत्यन्त उष्ण स्वभावक सूर्य देव भी निरालंब गगन में नियमतः समय से उदित तथा अस्तमित होते हैं तथा इसी सर्वशक्तिशाली परमात्मा के भय से डरकर अग्निदेव अपने कार्य में सर्वदा लगे रहते हैं । एवं बल के अभिमानी देव देवराज इन्द्र भी उस परमेश्वर के भय से भयभीत होकर के स्वकीय वर्षणादिक कार्य तथा सर्व देवों के रक्षण रूप कार्य में संलग्न रहते हैं । एवं विशेष क्या कहना है सकल लोक के विनाश करनेवाले मृत्यु कृतान्तक भी आलस्य रहित हो करके अपने कार्य में संलग्न रहते हैं । अर्थात् जिस ब्रह्म ईश्वर के भय से इन्द्रादिक भी भयभीत

नाभिरिति, यथा चक्रस्य नाभिरिति । अयमेव भगवान् वरुणाग्निप्रभृतिदेवानामन्तरात्मतया तत्तच्छब्दवाच्योऽपि भवति । तथोक्तं-'तदेवाग्निस्तद्वायुस्तत्सूर्यस्तदुचन्द्रामाः' इति । गीतायामपि कथितं श्रीकृष्णेन

'यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।

ननु 'आत्मानमुपासीत' इत्यादिवचनबलात्परमेश्वरस्य फलजनकत्वं भवतु ? परन्तु विधायकवाक्यबलान्न परमेश्वरस्य न वा देवानां फलजनकत्वं प्रसिद्ध्यति 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिवाक्यं तु यागस्यैव फलजनकत्वं ब्रवीति तच्च क्षणभंगुरस्य यागस्य कालान्तभाविफलजनकत्वासंभवान्मध्येऽपूर्वमेकमनुपपत्तिगम्यं स्वीकृतं भवति । न वा देवाराधनादेर्वा फलप्रापकत्वं तथा सति तादृशं वाक्यमुपलभ्येत परन्तु नोपलभ्यतेऽतोऽपूर्वद्वारेणैव यागादेः फलजनकत्वमित्याशङ्कां निराकृत्याराधितदेवोऽपि फलजनको भवतीति विधिवाक्यादवगम्यते तथैवं परमश्वरेऽपि तत्वमिति दर्शयितुमुपक्रमते फलकामिनेऽवश्यकर्तव्यतया' इत्यादि।

होते हैं वह परमेश्वर भक्तों के उपासन कार्य मे बाधाडालने वाले व्यक्ति को भयभीत करते हैं, इस अभिप्राय से श्रुति कहती है '**अथ तस्य भयं भवतीति**' '**एतस्य वाऽक्षसस्य प्रसासने गार्गिसूर्याचन्द्रमसौ विधृतौतिष्ठतः**' अर्थात् इस अक्षर ब्रह्म के प्रसासन से सूर्य और चन्द्रमा निरालवं गगन में स्थिर पूर्वक रहते हुए उदयास्तमय का संपादन करते हैं । स्वकीय मार्ग से नीचे गिरते नहीं हैं । '**एतस्य वाऽक्षरस्य**' इत्यादि, हे गार्गि ! इस अक्षर ब्रह्म की आज्ञा के अनुसार दिया जाने वाला दान की मनुष्य प्रशंसा करते हैं क्योंकि परमेश्वर की आज्ञा से दीयमान दानादि परमेश्वर के आराधन रूप होने से ही प्रशंसा का कारण बन जाता है अर्थात् तादृश परमेश्वर का पूजारूप है इसलिये एतादृश प्रशंसनीय होता है । एवं परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार यागादिक देवाराधक यजमान की देवतागण प्रशंसा करते है । एवं दर्वी होम प्रभृति पितृ कर्म करनेवाले को अनुसरण करनेवाले पितर अग्निष्वात्तादिक दर्वी होम करनेवालों की प्रशंसा करते हैं । ये सब वस्तु भगवान् की आज्ञा के अनुसार ही होती है । यह सब कर्म भी सर्वशेषी परमेश्वर का ही आराधन रूप है । इस प्रकार से अनेक श्रुतियां कहती हैं कि भगवत्कृपा अनुग्रह से साधक को

तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहतान्हितान् ॥

यः फलकामनावान् तदर्थं यागादिकं कर्मकरोति तादृशं कर्म तत्तत् देवताराधनरूपमेव । तादृशकर्मणा प्रीतो देवस्तत्तत्कर्मफलं प्रयच्छतीति 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादिविधिवाक्यादेवावगतं भवति । अर्थात् 'यजेत स्वर्गकामः' इत्यादिविधिवाक्यं स्वर्गमुद्दिश्ययागस्य विधानं करोति, एतादृशकर्मणः स्तावकयाऽर्थवाद वाक्यं तत्तत्कर्मसुफलार्थिनमालस्यमुत्सार्यसोत्साहं कृत्वा विधिवाक्यस्य साहाय्यं कर्तुं प्रवृत्तोर्थवादः सर्वेकर्मतत्तत् देवाताया आराधनरूपमेव । एतादृशकर्मणाराधितो देवः फलार्थिनेऽभिमतफलं प्रयच्छतीति विध्यर्थवादयोरेकवाक्यतयाऽवगम्यते यदर्थवादवर्णितोऽर्थो विधिवाक्याभिमत इति । विधिवाक्यमुदाहरति वायव्यंश्वेतमालभेतभूतिकमः इति । (संपत्तिकामनावान् पुरुषो वायुदेवताकं श्वेतं छागमालभेतेत्यर्थः) यागस्तावकमर्थवादवाक्यमित्थम्-'वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता

अभिमत सुखात्मक फल प्राप्त होता है और शास्त्र प्रतिषिद्ध कर्म के करने वाले को भगवान् के निग्रह से अनेक प्रकारक अनिष्ट फल मिलता है अतः अपूर्व की आवश्यकता नहीं हैं।

उपर्युक्त प्रकरण का भाव यह है कि परम पुरुष भगवान् श्रीसीतानाथ की वास्तविकता को यथावत् जान करके भगवान् के पूजन अर्चनोपासनादिक विहित कर्म यथावत् विधिवत् अनुष्ठान करने वाले व्यक्ति को स्व स्व अधिकार के अनुसार श्रीसीतानाथ के अनुग्रह से लौकिक सुख से लेकर साकेत धाम प्राप्ति रूप फल प्राप्त होता है। एवं एतादृश भक्त को अभय भी प्राप्त होता है और जो मनुष्य भगवत्तत्व को जानकर के भी भगवदुपासन प्रभृतिक विहित कर्मो का अनुष्ठान नहीं करता है प्रत्युत शास्त्र प्रतिषिद्धि कलंज भक्षणादिक कुकर्म का अनुष्ठान करता है (कलंज नाम है लशून प्याज प्रभृतिक अमेध्य वस्तुओं का अथवा-

'विषाक्तेनैव बाणेन हतौ यौ मृगपक्षिणौ ।
तयोर्मांसं कलंजस्याच्छुष्कमांसमथापि वा ॥'

अस्यार्थः-विषमिश्रित वाण के द्वारा जो मृग अथवा कपोतादिक पक्षी मारा जाता है उस मृत मृग पक्षी का जो मांस अथवा सूखा हुआ जो मांस है उसे कलंज कहते है शुष्क मास भक्षण

इन्द्रवरुणाद्यन्तर्यामितया वर्तमानस्य परमेश्वरस्येन्द्रवरुणादि प्ररोगमादेवताविशेषास्तनवः शरीराणि देहा इतियावत् । 'अहं च सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च । न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते ।' तत्र प्रभुरेव चेत्यस्य सर्वकर्मजातफलानां

वायुमेवस्तेन भागेनोपधावति स एवैनंभूतिं गमयति' वायुदेवोऽतिशीघ्रमिरणस्वभावः तस्माद् यजमानो हविरादिना वायुमाराधयेत् आराधितो वायुदेवो यजमानायैश्वर्यं प्रयच्छतीत्यर्थः । एतावता यागादाराधितो देवः प्रसन्नो भूत्वा फलदो भवतीति गम्यते । नात्रफलसिद्धिरिति । यागस्य क्षणिकत्वात् अपूर्वकल्पनमन्तरेण यागात्फल-सिद्धिर्नभवेदित्यनुपपत्तिप्रमाणेनैवफलसाधनत्वं यागस्येति मीमांसककथनमपि न समीचीनम् । वाक्यशेषद्वारेण कर्मणः फलसाधनत्वसिद्धावुपादानप्रमाणस्याना-श्रयणीयत्वात् । प्रकृतेऽर्थवादरूपवाक्यशेषादेव कर्मणो देवताप्रसादद्वारेणफल-दायकत्वं सिद्ध्यति । यदि अपूर्वकल्पनमन्तरेण यागस्य फलदायकत्वं नासिद्ध्येत्तदा

सद्यः मृत्युप्रद होता है ऐसा कहा हैं। **'शुष्कमांसाः स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणीदधि । प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राण हराणि षट् ॥** इन सब प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कलंज भक्षण निन्दित कर्म है उस को विवेकी लोग त्याग करें) एतादृश निन्दित कर्म करने वाले मनुष्य को श्रीसीतानाथ जी के निग्रह अकृपा से साकेत प्राप्ति की बात तो दूर रही प्रत्युत अपरिमित दुःख की प्राप्ति होती हैं । अर्थात् साधारण नरक से लेकर आवीचि पर्यन्त नरक दुःखो को भोग कर के पश्चात् श्वसूकरादिक योनि गत दुःखो को प्राप्त करता है। तथा एतादृश व्यक्ति को सांसारिक विविध विचित्र भय भी प्राप्त होता है। इन विषयों का प्रतिपादन भगवान् ने भी किया है ।

'नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायोऽह्यकर्मणः ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥'

अस्यार्थ-प्रकृति संवद्ध जो जीव है तादृश जीव से कर्म नियत है अर्थात् नित्य संबद्ध है कर्म के बिना जीव रह नहीं सकता है अतएव प्रकृतियुक्त जीव का कर्म नियत है अनिवार्य है इसलिये हे अर्जुन ! तुम कर्म करते रहों कर्म से विरत मत हो क्योंकि कर्मनिष्ठा अकर्म अर्थात् ज्ञाननिष्ठा से कर्मश्रेष्ठा प्रशस्य है। एतादृश वचनों से भगवान् श्रीकृष्ण ने ज्ञानपूर्वक कर्म करने

समर्पक इत्यर्थः । यथा वा-'यज्ञैस्त्वमिज्यसे नित्यं सर्वदेवम-योऽच्युतः । यैः स्वधर्मपरैर्नाथ ! नरैराराधितो भवान् । ते तरन्त्य-खिलामेतामायामात्मविमुक्तये ।' इति ।

इतिहासपुराणादिषु तथा सर्ववेदेषु च यानि कर्माण्यभ्युदयाय

तत्कल्पनमावश्यकं भवेत् । यदा तु देवताप्रसादेनैव फलसिद्धि : संभवति तदाऽपूर्वकल्पनं मुधैवेति । यदा तु वेदे साधनत्वप्राकारः प्रदर्शितस्तदा तदनादृत्य प्रकारान्तरेणापूर्वकल्पनमनुचितमेव भवतीति । यदपि 'ब्राह्मणाय नापगुरेत' इत्यत्र ब्राह्मणवधोद्योगस्य शतयातनानरककारणत्वं कथितं तदपि न दुरितादृष्टद्वारेण किन्तु परमेश्वरीयनिग्रहसङ्कल्पद्वारेणैव शतयातनासाधनत्वं ब्राह्मणवधोद्योगस्येति शास्त्रीयोराद्धान्तः, यस्तु शास्त्रविहितकर्माचरित तस्य परमेश्वरानुग्रहादेव सुखं प्राप्तं भवति, यस्तु विहितं कर्मनानुतिष्ठति शास्त्रप्रतिषिद्धं च कर्माचरति तस्य परमेश्वरनिग्रहसङ्कल्पादेव विविधदुःखं भवतीति । तथोक्तम 'एषह्येवानन्दयाति' सोऽभयं गतो भवति 'अथ तस्य भयं भवति' 'भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ।

का विधान किया है। आगे भी '**मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्म चेतसा**' भगवान् श्रीकृष्ण ने इस वचन से यह बतलाया कि जितने शास्त्र प्रतिपादित विहित कर्म हैं वाजपेयादिक हो अथवा परमेश्वर का उपासन रूप हो वे सब के सब सर्व नियामक भगवान् के आराधन रूप हैं। प्रत्येक जीव भगवान् के दास होने से भगवान् के अधीन हैं। जब जीव कर्म करता है उस समय में ऐसा भाव अपने मन में रखे कि श्री भगवान् की आज्ञा से परतन्त्र मैं श्रीसीतानाथ की प्रेरणा से भगवान् को सुख करने के लिये अमुक कर्म करता हुं। इस तरह कर्म की कर्तव्यता के विषय में स्वकीय मत का पदर्शन करके आगे पुनः कहा कि--

'ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोनसूयन्तो मुच्यन्ते तेपि कर्मभिः ॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः ॥' इति ।

अर्थात् जो शास्त्र के अधिकारी मनुष्य यही भगवत् प्रतिपादित पदार्थ ही शास्त्र सिद्ध है तथा भगवान् का अभिमत है यह समझ कर के उस कर्म का शास्त्र तथा भगवत् आज्ञानुवूल

विहितानि तानि सर्वाण्यपि यागतपोदानादिकानि तानि सर्वाण्यपि साक्षात्परंपरया वा परमेश्वरस्याराधनात्मकान्येवेति तत्तत्कर्मभि-र्यागादिभिः पूजितः परमेश्वर उपासकेभ्यस्तत्तदनुकूलं फलं

भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावतिपञ्चमः।' 'एतस्य वा अरक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौतिष्ठतः' 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि ददतो मनुष्याः प्रशंसन्ति जयमानं देवादर्वी पितरोऽन्वायत्ताः' स्वयमानन्दमयः परात्मा अन्यान् भक्तराशीनानन्दयति यथा स्वयं मधुररसस्वभावको गुणोऽन्यं यवपिष्टादिकंमधुरयति, तथैव स्वयमानन्दमयः परमात्माऽन्यमपि आनन्दयति युक्तमेवैतत्, यश्च स्वयं धनिकः स एवान्यं धनिकतामापादयति न तु निः स्वः । तद्वत् प्रकृते आनन्दपरमात्मन आनन्दलवलेशेनान्योपि जीव आनन्दभाग्भवति आनन्दप्रदत्वं भगवतः। तदुक्तं श्रुतौ 'एतस्यैवानन्दस्य मात्रामुपजीवन्त्यन्यानि भूतानि ।' कस्यकीयानानन्दो भवतीति विचारप्रवहे मनुष्यानन्दादारभ्यकमलासनस्याधिक्यं प्रदर्श्यततोप्यधिकनि-

---

अनुष्ठान करता है जो व्यक्ति तत्काल अनुष्ठान करने पर भी इस शास्त्र प्रतिपाद्य विषय में श्रद्धाशील रहते हैं और जिनको तत्काल शास्त्रार्थ में श्रद्धा न रहने पर भी इस शास्त्र प्रतिपादित विषय में असूया न रखते हों। (गुण में दोष के उद्घाटन करने का नाम होता है असूया) एतादृश न रखने वाले तथा उपर्युक्त लक्षण युक्त सभी मनुष्य अनादि भव परंपरा से संचित बन्ध के कारण सभी कर्मों से मुक्त हो जाते है। और जो मनुष्य तत्काल में तो अनुष्ठान यथोक्त कर्म का नहीं करते हैं परन्तु इस शास्त्र में श्रद्धा तथा अनुसूया रखते हैं एतादृश मनुष्य भी श्रद्धा तथा अनसूया के कारण सर्व पाप कर्मो को नष्ट करके तदनन्तर यथा शीघ्र इस शास्त्र प्रतिपादित इस कर्म को अनुष्ठान करके मुक्त हो जाते हैं।

और जो मनुष्य भागवतीय इस मत को मानकर के ऐसा अनुष्ठान नहीं करते हैं जो मनुष्य इस मेरे मत में श्रद्धाशील नहीं रहते अर्थात् श्रद्धा नहीं रखते हैं तादृश पुरुष को सर्वज्ञानों में ख्वास करके विमूढ समझो तथा मन रहित समझो क्योंकि मन को कार्य है तत्व को निश्चित करना वह इसमें नहीं है इसलिये एतादृश मनुष्य को चित्तरहित समझों इस प्रकार परम पुरुष श्रीभगवान् ने स्वाज्ञावशवर्ती मनुष्यों का बहुत प्रशंसन किया हैं तथा स्वाज्ञा बहिर्मुख मनुष्यों की निन्दा भी की हैं। एतदन्य स्थल में भी कहा है कि-

प्रयच्छतीतितत्तत्स्थलेषु विस्तरेण प्रतिपादितम् न तु यागादिक्रिया-जन्यमपूर्वमचेतनत्वाप्रलाप शक्तं भवति । इत्थमेव सर्वज्ञः सर्वशक्तिरीश्वरोऽग्निवरुणादिदेवान्तर्यामिरूपेणावस्थितो

रतिशयानन्दवत्वं परमेश्वरे प्रतिष्ठापितमिति तैत्तिरियकेद्रष्टव्यमिति कृतमत्र-पल्लवितेन ।

अथ सोऽभयमित्यादि । **तत्तत् देवोपासकस्तत्तत् देवोपासनया अभयं प्राप्नोति परमेश्वरोपासकस्तु ज्ञानपूर्वकंतदुपासनं कृत्वा सर्वथैव संसारभयान्निवृत्तोभवतीत्यर्थः । 'अथ तस्यभयंभवतीति' 'यश्चाभाग्यशीलः सर्वशेषिणि तत् शेषोभवन्नपि तस्मिन् स्वभेदं पश्यति तस्य संसारभयं जायते संसारे एवेतस्ततोभ्रमन् अनेक योनिप्राप्तिमूलकभयं प्राप्नोतीत्यर्थः** । भीषाऽस्माद्वातः इत्यादि । **एतस्यसर्वाधिपतेर्भयादेव वायुदेवः पवते नियमतो यथाकालमीरणं कुर्वन्नेवास्ते । एतस्य भयाद्भीतः सूर्यः सदा गतिमान् उदेति नियतकालमुदयास्तमयं संपादयति कदापि तत्रालश्यं न करोति । इन्द्रः सर्वराजः सदहनस्वभावोऽग्निरप्येतस्य भयादेवस्वस्वकार्ये कुरुतः । एवं सर्वमारको**

'तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥'

अस्यार्थः-मुझ परमेश्वर सर्व स्वरूप से द्वेष करने वाले क्रूर तथा अशुभ इन अधमाधम मनुष्यों को हम इस संसार के अति दुःख प्रद असुरयोनियों में अनेक बार फेंकते रहते हैं असुरयोनियों को प्राप्त किये हुए' नराधम प्रत्येक जन्मों में मूढ होते हुए मुझ परमेश्वर को नहीं समझ कर के उस आसुरयोनि से भी अधिक अधम गति को बारंबार प्राप्त होते रहते हैं ।

'सर्व कर्माण्यपिसदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
भत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतंपदमव्ययम् ॥' इति ॥

भगवान् ने कहा है कि ईश्वरीय आज्ञा का पालन करने वाले को मोक्ष पद की प्राप्ति होती है इस वस्तु को समझाने के लिये कहते हैं । भगवान् के वचन का उद्धरण देते हैं **'सर्व कर्माण्यपि'** इत्यादि । हे अर्जुन ! जो मनुष्य हमारा अर्थात् परमेश्वर का आश्रय लेकर के सर्वदा

यागदानादित्रयीप्रतिपादितकर्मणां भोक्ता सर्वफलानां समर्पकश्चेति सर्वश्रुतयः संगिरन्ति 'चतुर्होतारो यत्र संपदंगच्छिन्ति देवैः' इत्यादिकाः, तत्र चतुर्होतारोयागाः देवतादिष्वन्तर्यामिरूपेण व्यवस्थिते यत्र परमात्मनि देवतादिभिः सह संपदं गच्छन्ति देवैः सह संबन्धं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः तत्तद्यागादौ कथितदेवानां यो

मृत्युर्यमराजोऽपि स्वकार्ये परमेश्वराधिकृतः सन् यथाकालं स्वकार्यं करोतीत्यर्थः । एतस्य वा अक्षरस्येत्यादि, **एतस्याक्षरस्य सर्वथा विनाशरहितस्य परमेश्वरस्य शासने वर्तमानौ सूर्याचन्द्रमसौ पुष्यवन्तावित्यर्थः विधृतौ तिष्ठतो निराधारावपि साधारवत् स्थितौ भवतः । एतस्य वाऽक्षरस्येत्यादि । एतस्यैव परमेश्वरस्य प्रशासने स्थित्वाददतो दानं कुर्वतो मनुष्याः प्रशंसन्ति प्रशंसांकुर्वन्ति यतो भवगदनुज्ञानुसारेणदीयमानं देशे काले तथा सुपात्रे दानम् परमेश्वरस्याराधनरूपं प्रशंसाकारणं भवतीति । एवं परमेश्वराज्ञानुसारेण परमेश्वराराधनं कुर्वाणं ब्राह्मणक्षत्रियादिकं देवाः प्रशंसन्ति तथा दर्वी होमंपितॄनुद्दिश्यपितृकर्मकुर्वाणं पुत्रपौत्रादिकंस्वकीयतृप्तिकारणत्वात् पितरः प्रशंसन्ति एतत्सर्वं परमेश्वराज्ञानुसारेणैव यतो भवति सस्मात् प्रशंसाकारणं भवतीत्यर्थः ।**

शास्त्र विहित भगवदुपासनादि कर्मो का अनुष्ठान करता है वह पुरुष शाश्वत अव्यय पद को अर्थात् साकेत धाम को प्राप्त कर जाता है । इत्यादि पूर्वोक्त वचन से सिद्ध होता है कि कर्मानुष्ठानों से भगवान् प्रसन्न होकर के ही शुभाशुभ कर्म फल को देते हैं । अब क्षणिक कर्म से कालान्तर भावी फल प्राप्ति करने के लिये अप्रामाणिक अपूर्व कल्पना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है ।

नहीं कहें कि जैमिनी ने पूर्वमीमांसा के देवताधिकरण में देवता का खण्डन करके कर्म को ही मुख्य माना है । तब क्षणिक कर्म से फल नहीं होगा । अतः कर्म जनित अपूर्व को फल साधक मानकर के अपूर्व को स्थिर किया है तो दोनों मतों में विरोध पडता है । इस प्रश्न का निराकरण के लिये कहते हैं **'अश्रुतवेदान्तरहस्यस्य'** इत्यादि । जिसने वेदान्त का श्रवण नहीं किया है ऐसा जो साधारण व्यक्ति है उसको कर्म में कदाचित् अश्रद्धा उत्पन्न नहीं हो किन्तु कर्म में श्रद्धा वढे इसलिये जैमिनी ने देवता का खण्डन तथा कर्म का मण्डन किया है । परस्पर विरोध की शंका उचित नहीं है क्योंकि पूर्वोत्तर मीमांसामिलित एक शास्त्र है अतः विरोध निर्मूलक है ।

यागादिभिः संबन्धः स न स्वातन्त्र्येण किन्तु देवन्तर्यामितयाऽवस्थितस्य परमात्मनः शरीरतया (शेषतया) अवस्थितत्वादेव तत्तद् यागादौ देवानां संबन्धो भवतीति कथितम् । तदुक्तं श्रीकृष्णेन 'भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां

इत्यादिका अनेकाः श्रुतयः सन्ति या भगवतः श्रीसीतानाथस्यानुग्रहेणोपासकायेष्टफलं दर्शयन्ति तथा अनुपासकान् प्रतिषिद्धकर्मकुर्वतो भगवन्निग्रहेण नरकाद्यनिष्टफलप्राप्तिं दर्शयन्तीति । स्वोक्तिदार्ढ्यार्थं दिव्यप्रबन्धकारवेदविदग्रेसरपूर्वाचार्यप्रबन्धानुदाहरति तदाहुरित्यादि ।

अयंभावः-परमपुरुषं भगवन्तं सम्यग् ज्ञात्वा परमेश्वरोपासनादिकं शास्त्रप्रतिपादितकर्मानुष्ठानं कुर्वतोयथाधिकारं परमेश्वरानुग्रहेण परमेश्वरप्राप्तिपर्यन्तसुखप्राप्तिर्भवति, तथाऽयं च प्राप्तं भवति । तथा परमेश्वरतत्वमज्ञाय परमेश्वरोपासनादिकं न करोति शास्त्रप्रतिषिद्धं च कर्मानुतिष्ठति सभगवन्निग्रहेणातिशयदुःखभाग् भवति भयं च प्राप्नोतीति । अमुमर्थं गीतायां श्रीकृष्णोप्याह-

अर्थात् जैमिनी को धर्म का स्थापन तथा देवता का खण्डन करने में तात्पर्य नहीं है। किन्तु कदाचित् अश्रुत वेदान्त मनुष्य को कर्म में अरुचि न हो जाय इसलिये कर्म का प्रधानरूप से कथन किया तथा देवता का गौणरूप से कथन किया है। क्योंकि आखिर तो दोनों ही एक शास्त्र है भगवान् भाष्यकार जी ने पूर्वोत्तर दोनों मीमांसा शास्त्र को एक ही शास्त्र माना है **':संहितमेतच्छारीरकं जैमिनीयेन षोडषलक्षणेन पूर्वकाण्डार्थाविधायकेन'** (श्रीआनन्दभाष्य १।१।१) अतः एक में परस्पर विरोध कैसे होगा परन्तु कर्म के विषय में इतना अधिक कह दिया कि अश्रुत वेदान्त को भ्रम हो जाय। इसलिये गौण प्रधान्य में तात्पर्य है खण्डन मण्डन में तात्पर्य नहीं है।

इससे पूर्व में आचार्यजी ने पूर्वमीमांसक का जो मत है कि वेद प्रतिपादित कार्यरूप अर्थ ही है क्योंकि वह कार्य है परन्तु ब्रह्म तो परिनिष्पन्न हैं इसलिये ब्रह्म प्रतिपाद्य नहीं हैं, इस मीमांसक मतः का खण्डन किया। इसके बाद यह कहेंगे कि वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्म साकार है। उनकी विभूति आदि नित्य है तथा उसका नित्य दिव्यरूप परिजनादिक भी नित्य हैं, इत्यादि विषयों का प्रतिपादन करने के लिये अब उपक्रम करते हैं-**'प्रमाणसिद्धस्य तस्यब्रह्मणः'**

ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छतीति व्याख्यातञ्चास्मद्गुरुभिर्महामहोपाध्याय जगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरघुवराचार्यमहाभागैस्तथैव- 'समासेनोक्तस्य योगस्य विशिष्टभगवत्स्वरूपपरिज्ञानादेवसिद्धिस्तत एव च शक्तिरूपं फलमुपलभ्यते नान्यथेतिद्दढयन्नध्यायार्थमुपसंहरतिभोक्तारमिति । प्रोक्तयोगयुक्तो नरोमां यज्ञतपसां भोक्तारं

'नितयं कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायोऽह्यकर्मणः, शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥

तदयमर्थः-हे अर्जुन ! सासंरिकबन्धनबद्धजीवेन कर्म नियमतः संबद्धम्, अत एव जीवस्य कर्मनियतमनिवार्यमेव । अतस्त्वमनलसो कर्मानुष्ठानं कुरु, कर्म त्वयासदैव कर्तव्यं यतः कर्मणोऽनिवार्यत्वात्, अकर्मणो ज्ञाननिष्ठया कर्मज्यायः प्रशस्यतरं तस्मान्नियमतः कर्तव्यमेव त्वया अन्यथा सर्वथा कर्माकुर्वतस्ते शरीरसंबन्धिनी यात्राभोजनचलनात्मिकापि न संभवेदिति । एभिर्वचनैर्ज्ञानपूर्वककर्मणो विधानं कृता भगवता स्वयमेव एतदग्रेऽपि 'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा' अनेन वचनेन विहितं सर्वमेव कर्म परमेश्वरस्याराधनरूपमेव । तथा सर्वोपि जीवराशिर्भगवदधीन इति कर्मकर्तव्यसमये अहं परमेश्वरपराधीनो भगवत्प्रेरणया

इत्यादि ।

वेदान्त सिद्धान्त से प्रमाणित ब्रह्म श्रीसीतानाथ ही हैं। इस वेदान्त प्रमाणसे सिद्ध परब्रह्म साकार है-**'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म'** इत्यादि श्रुति कहती है कि इस परब्रह्म का स्वरूप अपरिच्छिन्न तथा सर्व प्रकारक अविद्या कस्मलों से रहित नित्य विज्ञान तथा आनन्दमयात्मक है। एतादृश परब्रह्म में ज्ञान बल ऐश्वर्य वीर्य तेज प्रभृतिक अनन्त असंख्येय कल्याण गुण रहते हैं। एक भगवान् को छोड कर चेतनाचेतनात्मक सभी पदार्थ समुदाय भगवान् के सङ्कल्प के बल से ही सत्ता स्थिति तथा प्रवृत्ति को प्राप्त करते हुए भगवान् के अत्यन्त परतन्त्र बन करके परब्रह्म में ही रहते हैं। इस प्रकार से परब्रह्म उनका स्वरूप गुण तथा चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्चमय विभूति ये सभी पदार्थ प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। ये सब पदार्थ जिस तरह प्रामाणिक हैं उसी तरह वेदान्त प्रतिपादित पर ब्रह्म श्रीराम का दिव्यरूप दिव्याभूषणादि दिव्यायुध दिव्य पत्नी दिव्य नित्यसूरी प्रभृतिक परिजन उपकरण तथा दिव्य विभूति प्रामाणिक हैं ऐसा सैकडों श्रुति वचनो से अनेक

यज्ञदानतपोभिस्समाराध्यं सर्वलोकमहेश्वरं सर्वेषां ब्रह्मरुद्रादीनां लोकानां महेश्वरं महासमर्थं नियन्तारं 'पार्तिपतीनां परमं महेश्वरम्' (श्वे.) इतिश्रुतेः सर्वभूतानां सर्वेषां ब्रह्मादिपिपीलिकान्तानां स्वशरीरभूतानां भूतानां सुहृदंपितृवत्पालकंसर्वविधवन्धुमितियावत्।एष सर्वाधिपतिः एष भूतापालः इतिश्रुतेः । ज्ञात्वा सम्यगवगम्य

भगवन्तं प्रसादयितुं सर्वं करोमीति बुद्ध्यैव तदनुष्ठानं विधेयमतस्तत्करोमीति कर्मकर्मणः कर्तव्यताविषये स्वाभिप्रायं प्रदर्श्य पुनरपि ब्रवीति श्रीकृष्णः:-

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः । श्रद्धावन्तोनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् । सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धिनष्टानचेतसः ॥

ये च शास्त्रेऽधिकृताः पुमांसोयमेव शास्त्रप्रतिप्राद्यो विषयो यो भगवता प्रोक्त इति मत्वा मदीयं भागवतं सप्यग् विज्ञाय तेनैव क्रमेणानुष्ठानं कुर्वन्ति, तत्कालेऽनुष्ठानमकुर्वाणा अपि शास्त्रप्रतिपादितार्थे श्रद्धालवो भवन्ति, तत् काले

श्रुतियों से ये उपर्युक्त पदार्थ सिद्ध होते हैं।

वेद से पूर्व प्रतिपादित भगवान् का दिव्यरूप परिजनादिक तथा विभूति पदार्थ की सिद्धि होती है उन श्रुतविचनों को बतलाने के लिये आचार्यजी कहते है '**ताश्चेत्थम्**' इत्यादि । श्रुति वचनों को उधृत करते हैं '**तथाहि**' इति । '**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय**' '**तमसः परस्तात्**' यहां जो तम पद है उसका अर्थ है अन्धकार तब अन्धकारोपलक्षित जो मूलप्रकृति उसके ऊपर रहने वाले सूर्य के समान देदीप्यमान प्रकाशात्मक वर्णवाले महापुरुष श्रीरामचन्द्रजी को मैं जानता हूं, एतादृश महापुरुष को जानकर के अर्थात् उपासना कर के उपासक लोग मोक्ष को प्राप्त करते हैं भगवदुपासन से अतिरिक्त कोई दूसरा परमपद को प्राप्त करनेवाला उपाय नहीं है इससे केवल ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है यह जिनका मत है वे परास्त हो जाते हैं। इस मन्त्र में '**आदित्य वर्णम्**' इस शब्द से परमपुरुष का दिव्यरूप प्रमाणित होता है । '**य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषस्तस्य यथा कप्यासंपुण्डरीकमेवाक्षिणी**' इति, अर्थात् सविता मण्डल के अभ्यन्तर में सुवर्ण सदृश देदीप्यमान शरीर विशिष्ट महापुरुष उपासकों से देखने में आते हैं, उनके सूर्य से विकसित कमल जिस प्रकार

शान्तिमृच्छति नित्यसुखरूपां शान्तिमाप्नोतीत्यर्थः' (अर्थचन्द्रिका ५।२९) इति । अतो यागादौ कथितदेवानामन्तरात्मरूपप-रमेश्वरस्याराधनान्येव सर्वाणि यागादिकर्माणि तथा तैः कर्मभिराराधितः सर्वात्मा सर्वेश्वर एव सर्वेष्टफलानां समर्पक इत्येतावतैव सर्वसिद्धिसंभवे किमन्तर्गडुनाऽप्रामाणिकेणा-

श्रद्धाविरहिता अपि शास्त्रप्रतिपादितार्थेऽसूयारहिता भवन्ति, इमे सर्वेऽपि यथोक्ता मनुष्या अनादिकालसंचितबन्धकारणकर्मभ्यो विमुक्ता भवन्ति । ये तु पुमांसो वर्तमानसमये नानुतिष्ठन्ति परन्तु शास्त्रार्थे श्रद्धालवोऽनसूयकाश्च तेऽपि सर्वपापविमुक्ताः शास्त्रार्थानुष्ठानं कृत्वाविमुच्यन्ते । ये तु मदीयं मतं मत्वापि कर्म नानुतिष्ठन्ति श्रद्धाविरहिता असूयका अमनस्का ज्ञानसर्वज्ञानविमूढान् विद्धि जानीहि इत्थं स्वाज्ञावशवर्तिनां प्रशसां तद्विपरीतांश्च निन्दामकरोत् भगवान् श्रीकृष्णः ।

भगवदाज्ञाबहिर्मुखा आसुरप्रकृतिका अधगतिमन्तो भवन्ति भविष्यन्ति चेत्पपि भगवान् गीताशास्त्रे एवाकथयत् -

विकसित होता है उसी प्रकार परम पुरुष का भक्त चित्ताह्लादक नेत्रद्वय शोभित होता है। इस मन्त्र से सविता मन्डल में विद्यमान महापुरुष श्रीरामचन्द्रजी का दिव्यरूप वर्णित होता है। (सवितृ मंडल में पुरुषाकार सूर्य देव हैं अथवा अणिमादि सिद्ध कोई योगी है अथवा परमेश्वर हैं ? ऐसा जो सन्देह होता है उसका निराकरण करने के लिये '**अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्**' इस ब्रह्म सूत्र के जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य कृत आनन्दभाष्य तथा जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्य कृत संस्कृत विवर और मेरा हिन्दी विवरण देखिये विस्तारभय से यहां नहीं लिख रहे हैं । वहां भाष्यकार ने कहा है परमेश्वर में जो धर्म गुण हैं वे सब इसमें उपलभ्यमान होते हैं इसलिये परमेश्वर श्रीराम ही सवितृमण्डल मध्यवर्त्ती पुरुष है सूर्य तथा कोई योगी नहीं) '**स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयोऽमृतो हिरण्मयः**' इति। अर्थात् यहां जो आदित्य सूर्यमण्डल में सुवर्ण के समान विग्रह शरीरधारी पुरुषाकार व्यक्ति देखने में आते हैं वे परमपुरुष हैं साधक लोग साधना के बल से शास्त्र प्रमाणित पुरुष सुवर्णछवि को देखते हैं। उनका कप्यास् अर्थात् सूर्य से विकसित कमल की तरह नेत्रयुगल शोभित हो रहें है। यद्यपि यहां किसी वेदरहस्यानभिज्ञ

पूर्वकल्पनेन प्रयोजनं वा किमत्रापूर्वस्येतिदिक् ।

ψ स्वेष्टलिङर्थनिर्वचनम् ψ

अथैवंसति लिङादिप्रत्ययानां कीदृशोऽर्थोभवद्भिर्गृह्यते ? इति चेत्-यजदेवपूजायामित्यादिस्थलेदेवाराधनात्मकयागादेः

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यात्यधमां गतिम् ॥

तदयमर्थः-ये मदीयं मतं नानुवर्तन्ते प्रत्युत मां द्विषन्ति, अतिशयेन क्रूराः क्रूरस्वभाववन्तः इत्थंभूतान् नराधमान् अत एवाप्रशस्तान् संसारसमुद्रे आसुरीष्वेव योनिषु अजस्रं बारंबारं क्षिपामि, ते एतादृशीं योनीं समापन्नास्तेऽनुक्षणमापन्नाः प्राप्ताः सन्तो मां करुणाकरमप्यप्राप्य कौन्तेय ततोप्यधमां खरसूकरादिगतिं पदं प्राप्नुवन्तीति । भगवदाज्ञा वहिर्भूतानामीदृशो दण्डप्रक्षेपः शिरसि भवतीति भावः । भगवदाज्ञां परिपालयतांतु इदम्-सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः । मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

ने कपि के अधोभाग की तरह रक्त वर्ण पुण्डरीक कमल के सदृश नेत्र हैं अर्थात् तादृश कमल सदृश नेत्र है ऐसा कहा है वह ठीक नहीं हैं क्योंकि एतादृश महान् जगत् का कर्णधार व्यक्ति में अति अश्लिल वस्तु की उपमा देना अनुचित है अतः कप्यास पद का योगार्थग्रहण करके उपमा देना ही उचित है। इस श्रुति वचन से सूर्य मण्डल में विद्यमान परमपुरुष का जो रूप है उसका वर्णन किया गया है। यद्यपि सूर्यमण्डल में परिदृश्यमान यथोक्त गुणविशिष्ट पुरुष सूर्य को ही होना चाहिये। अन्य अधिकरण में अन्य का अवस्थान बाधित है तथापि '**अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्**' इस ब्रह्म सूत्र में भाष्यकार ने कहा है कि परमपुरुष में जो गुण देखने में आते हैं जो गुण समुदाय श्रुति प्रतिपादित हैं वे सब गुण आदित्य मण्डल में भी देखने में आते हैं तथा श्रुति वचन परमेश्वर गुण का आदित्य मण्डलस्थ पुरुष में भी वर्णित हुआ है अतः इस मन्त्र से परमपुरुष के रूप का ही वर्णन होता है। '**स य एषोऽन्तहृदये आकाशस्तस्मिन्नयं पुरुषोऽमृतोहिरण्मयः**' अर्थात् यह जो हृदय के अभ्यन्तर में अर्थात् सूक्ष्म हृदय के मध्य में जो अतिसूक्ष्म आकाश है उस दहराकाश में वह जो परमपुरुष विद्यमान है वह परमपुरुष मनोमय मन उपाधिक है वह विशुद्धमन से ही गृहीत होता है किन्तु मलिन अन्तः करणवाले से गृहीत नहीं होता है । '**एषोणुरात्मा चेतसा**

कर्तृव्यापारसाध्यत्वमेव लिङादिप्रत्ययः कथयति । कर्तृवाचकप्रत्ययः प्रकृत्यर्थस्य कर्तृव्यापारसंबन्धप्रकारंभूतादि कर्मभिव्यक्तिलिङादिस्तु कर्तृव्यापारसाध्यतामात्रं कथयतीति न किञ्चिदप्यनुपपद्यते ।

अर्थात्-मद्व्यपाश्रयः मामेव शरण्यमाश्रित्य सदा सर्वदा सर्वकर्माणि वर्णाश्रमोचितानि शास्त्रविहितानि परमेश्वराराधनबुद्ध्याकुर्वाण एव मत्प्रसादात् मम परमेश्वरस्यानुग्रहात्, शाश्वतमव्ययं साकेतधामप्राप्तिस्त्वं पदं प्राप्नोति तदाहुर्जगद्गुरवः श्रीआनन्दभाष्यकाराः-'एवं नित्यादिकर्मणां ज्ञानध्यानपरभक्ति निष्ठयास्वपरस्वरूपावाप्तिलक्षणमोक्षप्रापकत्वमुक्त्वाऽन्येषामपि विहितानां कर्मणां भगवत्प्रसादेन तथा विधैव फलोपलब्धिरित्याह-सर्वकर्माणीति । सर्वकर्माण शास्त्रविहितानि निखिलानि कर्माणि काम्यकर्माण्यपीत्यर्थः । सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयोऽहमेवव्यपाश्रयः समाश्रयणीयो यस्य स तथा भूतो मत्प्रपन्नो मत्प्रसादान्मदनुग्रहाच्छाश्वतं नित्यमव्ययमविकारं पदं मदीयंधाम समवाप्नोति' (१८।५६) इति । अर्थात् परमेश्वराराधनबुद्ध्या

वेदितव्यः' '**दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**' **नैव वाचा न मानसा**' '**यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसासह**' इत्यादि श्रुति वतन से सिद्ध होता है कि परमात्मा मनो ग्राह्य है तथापि निषेध श्रुति वचन अविशुद्धान्तः करणवाले व्यक्ति विषयक है और विधि वचन विशुद्ध मनोविषयक है ऐसा मानने से श्रुति वचनों में कोई विरोध नहीं होता है । अतः यहां '**मनोमयः**' इस शब्द का अर्थ किया गया कि वह परमात्मा विशुद्ध मन से गृहीत होते हैं । तथा वह मन उपाधिक परम पुरुष अमृत है अर्थात् अमृत की तरह सर्वकमनीय है । एवं हिरण्मय है अर्थात् सुवर्ण के सदृश शरीरवाले हैं । इस श्रुति में जो '**हिरण्मयः**' पद है उससे परमपुरुष का जो दिव्य विग्रह है तादृश दिव्य विग्रह का वर्णन किया गया है । '**सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि**' अर्थात् विद्युत बिजली की तरह वर्णवाले महापुरुष से निमेष आदि पदार्थ उत्पन्न हुए हैं। इस मन्त्र खण्ड में कालवाचक निमेषपद कालोपाधिक सर्व पदार्थ का उपलक्षण है इसलिये कालोपाधिक दिगुपाधिक सब पदार्थ सर्वशेषी सर्वेश्वर से उत्पन्न होते है। यहां '**विद्युतः**' इस पद से परमपुरुष के अप्राकृतिक दिव्यरूप का वर्णन किया गया है अर्थात् भगवान् का जो रूप विद्युत के समान अतिशयित लोकोत्तर रूप है। प्राकृतरूप नहीं है । '**नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेवभास्वरा**'

ॐ फलप्रदत्वं श्रीरामस्यैवेति सप्रमाणप्रतिपादनम् ॐ

फलकामिनेऽवश्यकर्तव्यतयायागादिकं कर्मविधाय तच्च कर्मदेवाराधनरूपमेव तथा तादृशकर्मपथेन फलसिद्धेः । तत्तत्कर्मविधायकवाक्यादेवसिद्धेरिति यथा-''वायव्यं श्वेतमालभेत भूतिकामो

क्रियमाणकर्मणाराधितोहं परमेश्वरः तथा योगादिनाऽराधितो देवश्चस्वानुग्रहेण कर्मफलं ददाति । तत्रमध्येसाधनसाध्ययोर्मध्येऽतिरिक्तापूर्वकल्पना निरर्थिकैवेति ! न चैवं यदि अर्थात् देवता प्रसादेनैव यागादिफलंप्राप्तं भवति तदापूर्वमीमांसादेवताधिकरणे देवखण्डनं कृत्वा कर्मणस्तज्जनितापूर्वस्यैव व्यवस्थापनं कृतं तत्कथं सङ्गच्छते इति वाच्यम् भावानवबोधात् । अयमाशयो हि जैमिनेः अश्रुतवेदान्तः साधारणो जनो देवतामेव प्रधानीकृत्य कर्मण्यश्रद्धालुर्नभवत्विति कृत्वा देवस्य गौणत्वं कर्मणश्च प्रधानरूपेण कथनं कुर्वन् प्रकारान्तरेण देवानां निरसनं कृतवान् । परन्तु तस्य देवनिरसने तात्पर्यं नासीत् अन्यथा देवता प्राधान्यसमर्पकवेदान्तस्य नैरर्थक्यमापतेत् । न च तदिष्टम्, उभयोर्मीमांसकयोरेकशास्त्रत्वसर्वानुमतत्वात्

अर्थात् आषाढमासिक सन्निहितकाल में वर्षप्रद जो नीलमेघ है उसके अन्दर में रहने वाली जो विजली जो कि नीलमेघ में चमक रही है तादृश विजली के समान अत्यन्त मनोज्ञ परमपुरुष की मूर्ति है। इस मन्त्र के '**नीलतोयद**' शब्द से यह अभिव्यक्त होता है कि नील मेघवत् भगवान् का श्रीविग्रह श्यामल है।

'मनोमयः प्राणशरीरोभारूपः सत्य सङ्कल्प आकाशात्मा
सर्वकर्म सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः'

अस्यार्थः-भगवान् के उपासक जो साधक हैं वे इस प्रकार भगवान् की उपासना करें कि सर्वोपास्य भगवान् विशुद्धमन से ही गृहीत होते हैं। प्राणशरीरक हैं अर्थात् प्राणादि सर्वजगत् के धारक हैं '**भारूपः**' भास्वररूपवाले हैं। '**सत्य सङ्कल्पः**' सत्य अमोध सङ्कल्प वाले हैं अर्थात् भगवान् से सङ्कल्प का विधान नहीं होता है, वे जब जैसा चाहते हैं तब वैसा ही होता है। '**आकाशात्मा**' आकाश की तरह सूक्ष्म है अथवा आकाश की अन्तरात्मा है। '**सर्वकर्मा**' यह चेतनाचेतन समस्त जगत् भगवान् की कृति है अथवा सभी कर्म भगवान् का आराधनरूप हैं '**सर्वकामः**' वह भगवान् सर्व प्रकारक अभीष्ट भोग्यभोगोपकरण से सर्वदा संपन्न रहते हैं।

वायु वैक्षेपिष्ठा देवता वायुमेवस्वेनभागधेयेनोधावति स एवैनंभूतिं गमयति' इत्यादि ।

न च कर्मणः क्षणप्रध्वंसितयासाक्षात्फलजनकत्वासिद्धौ फल सिध्यर्थमनुपपत्तिप्रमाणगम्यमपूर्वमिति वाच्यम् यागादिकर्मणोविधिवाक्यापेक्षितफलसाधनत्वस्य वाक्यशेषादेवावगमात्,

तदाहुराचार्यचरणाः 'कर्मज्ञानानुष्ठानयोश्चित्तकल्मषापनयनपूर्वकवैराग्योत्पादनद्वारा च ब्रह्मज्ञानं प्रति साधनत्वेन तयोर्हेतुहेतुमद्भावतयापि पूर्वोत्तरमीमांसयोरेकशास्त्रत्वम् सिद्ध्यति चैतद्वृत्तिकारवाक्याभ्यां प्रस्फुटम् । वृत्तात्कर्माधिगमानन्तरं ब्रह्मविविदिषेति । संहितमेतच्छारीरकं जैमिनीयेनषोडषलक्षणेन पूर्वकाण्डार्थविधायकेनेति च' (आनन्दभाष्यम् १।१।१) इति । तस्माज्जैमिनेरतिक्रम्यवादोऽतिवाद एव ज्ञेयः ।

अतो देवताया न कुत्रापि खण्डनमपितु कर्मणः प्राधान्यप्रतिपादनावसरे देवस्य गौणत्वप्रदर्शनमेव तत्र तत्र कृतम् । वस्तुतस्तु सर्वदेवादिशरीरकस्य सर्वेश्वरस्य

'**सर्वगन्ध**' वह भगवान् लोकोत्तर मङ्गलमय सर्वप्रकारक गन्ध तथा रस से सर्वदा संपन्न रहते हैं। '**सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः**' पूर्वोक्त प्रकार से उपदर्शित सकल कल्याण गुणों से सर्वदा परिपूर्ण हैं इसलिये सापेक्ष होकर के किसी के किसी से कुछ नहीं बोलते हैं क्योंकि सर्वदा सब वस्तुओं से परिपूर्ण होने से किसी से कोई भी प्रयोजन नहीं है, इसी से वे किसी से कुछ नहीं बोलते हैं तथा अनादर हैं अर्थात् परिपूर्ण एश्वर्य से सदा परिपूर्ण होने के कारण सत्यलोक से लेकर तृणपर्यन्त सर्व पदार्थ को तृणवत् समझ करके किसी से कुछ बोलते नहीं हैं सर्वदा चुपचाप बैठे रहते हैं। उपासक इस तरह परमात्मा का उपासन करें। इस मन्त्र में '**भारूपः**' इत्यादि विशेष संपन्न से यह बतलाया गया कि भगवान् का रूपरस गन्ध इत्यादिक सर्व पदार्थ अप्राकृतिक लोकोत्तर हैं।

'तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा पाण्ड्वाविक यथेन्द्र गोपो यथा वाऽग्न्यर्चिर्यथा पुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युतम्' अर्थात् उस परम पुरुष परमात्मा का सुन्दर रूप है अर्थात् परमात्मा का शरीर विलक्षण अप्राकृतिक है, वह दिव्यविग्रह माहारजन हरिद्रा रागरंजित वस्त्र के सदृश है अथवा पाण्ड्वाविक सफेद कंबल के सदृश है अथवा इन्द्रगोप

तदर्थमौपादानिकी फलसाधनत्वावगतिर्न मन्तव्या । एवम्-'ब्राह्मणाय नापगुरेत' इत्यादिनिषेधविधायकवाक्यशेषे निषेध्यस्यापगुरणस्यशततयातनाकारणत्वं (साधनत्वम्) निषेधविधा

परमेश्वरस्यैव प्राधान्यं वरुणादिदेवयजनस्थले तत्तत्कर्मणा सम्यगाराधितः सर्वाधिदेवस्तत्तत्कर्मणा प्रीतो याजकाय यथाभिमतं फलं प्रददातीत्येतावतैव सर्वत्र निर्वाहे यागादिजन्यफलस्वर्गादिजनकापूर्वात्मककार्यविशेषकल्पनं निरर्थकमेवेतिदिक् ।

अथ गतप्रकरणेन जगदाचार्यः कार्य एव वेदार्थो न तु सिद्धं ब्रह्मवेदार्थ इति यन्मीमांसकमतं तस्य खण्डनं कृत्वा तदनन्तरं परंब्रह्मप्रामाणिकमित्यपि प्रदर्श्य तत्स्वरूपं तद्विभूतिदिव्यरूपदिव्यभूषणादिकोपकरणमेव तद्विभूत्यादिकं सर्वं

कीट के सदृश है यथा वा अग्नि ज्वाला के सदृश अतिदीप्तिमान् है यद्वा श्वेत कमल के समान है । अथवा चमकती हुई विजली की तरह है । उपर्युक्त प्रकार से इस श्रुति ने अनेक उदाहरण को बतला कर के उनके द्वारा परमपुरुष के श्रीविग्रह का वर्णन किया है । इस प्रकार वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म साकार हैं उनका शरीर रूपादिक से युक्त है किन्तु तादृश ब्रह्म निकाकार नहीं हैं अन्यथा विलक्षण रूपादिकों का प्रदर्शन करने वाली अनेक श्रुतियां निरालम्बन हो कर के बाधित हो जायगी ।

उपर्युक्त क्रम से भगवान् का अप्राकृतिक मङ्गलमय विग्रह का वर्णन कर के इसके बाद भगवान् के कलत्र तथा परिजन भूषण और आयुधादिक को बतलाने के लिये प्रथमतः विष्णु पत्नी का स्वरूप तथा नाम बतलाने हुए कहते हैं '**अस्येशाना जगतो विष्णु पत्नी**' यह जो स्थावर जङ्गम स्थूल सूक्ष्म साधारण जगत् है उस का शासन करने में समर्थ विष्णु पत्नी महा लक्ष्मी जी हैं इससे परपुरुष सपत्नीक है ऐसा सिद्ध होता है ।

'**ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ**' भगवान् की पत्नी कौन है तथा कितनी है ? इस बात को बतलाने के लिये कहा है '**ह्रीश्च ते**' इत्यादि, हे भगवान् ! आपकी पत्नी ह्री देवी तथा लक्ष्मी ये दोनों पत्नी हैं । यहां ह्री शब्द का अर्थ है भूदेवी अर्थात् भूरादिक लोक की अधिष्ठात्री देवी । तथा लक्ष्मी शब्द का अर्थ है संपत्ति की अधिष्ठात्री देवी । इससे सिद्ध होता है कि भू देवी तदा लम्क्षी देवी ये दोनों देवी परमपुरुष की भोग्या पत्नियां हैं । क्योंकि इतर सबपदार्थ भगवदेकभोग्य है अतः तत्तद्रूप में वेही सवका भोग करते हैं । भगवान् का एक स्थान है तथा उन के परिजन भी हैं

वुपयोगीति स्वीकारात् । अत्र तु कामनावतः कर्तव्यतारूपेण शास्त्रप्रतिपादितस्ययागादिकर्मणः काम्यस्वर्गादिसाधनत्वं वाक्यशेषेणैव यदाप्राप्यते तदाऽनुपपत्तिगम्यत्वस्वीकारो निरर्थक एव अपगुरणस्य शतयातनासाधनत्वमपि नादृष्टद्वारेण भवति, किन्तु

प्रामाणिकमेवेत्यादिकं श्रुतिशतसिद्धं दर्शयितुमुपक्रमते प्रमाणसिद्धस्य तस्य इत्यादि । तत्र भगवतः स्वरूपं त्रिविधपरिच्छेदरहितनिर्मलज्ञानानन्दमयात्मकमेव । तस्मिंश्च ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजः प्रमुखा असंख्येयकल्याणगुणा भवन्ति तदाहुर्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्याः 'ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांसिषड्गुणाः । भगत्वेने रिताः सन्ति श्रीरामे भगवान् स तत् ॥' इति । ये इमे चेतनाचेतनाः स्थूलसूक्ष्मसाधारणाः पदार्थास्तदीयसङ्कल्पेन सत्तास्थितिप्रवृत्त्यादिमन्तस्तदधीनाः सन्त एव वर्तन्ते । एतावत् गुणास्तथा जडचेतनमयविभूत्यादिकं सर्वमेव प्रमाणसिद्धं भवति, यथेमे प्रामाणिकास्तथैव भगवतो दिव्यरूपदिव्यभूषणदिव्यायुधदिव्यस्त्रीदिव्यप-रिपजनादिकंविभूतिश्च सर्वमेव प्रामाणिकतयैव सिद्धं भवतीति 'दिव्यदेहगुणास्त्राय

इसको बतलाने के लिये कहते हैं '**तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः**' अर्थात् इस मन्त्र में '**तद्विष्णोः**' यहां तत् शब्द प्रसिद्धार्थक है जिस तरह '**द्वयं गतं संप्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिनः । कला च सा कान्तीमती कलावतः त्वमस्य सोकस्य च नेत्र कौमुदी**' यहां कान्तिमती चन्द्रस्य कला यहा जिस तरह तत् शब्द प्रसिद्धार्थक है अर्थात् जगत् में प्रसिद्ध वह चन्द्रमा की कला यह अर्थ उसी तरह प्रकृत में भी तत् पद प्रसिद्धार्थक है अर्थात् त्रिपाद विभूति वैकुण्ठ इत्यादि पदों से प्रसिद्ध भगवान् का एक स्थान है । जिस परम पद को नित्य सूरी श्रीहनुमदादिक सदा देखते हैं । नित्यसूरियों से भिन्न बद्ध जीव किसी भी समय में अमुक्तावस्था में कदापि नहीं देखते । इस मन्त्र वचन से सिद्ध होता है कि परम पुरुष का एक दिव्य स्थान है जिसका त्रिपाद विभूति भोग विभूति नित्यविभूति परम पद तथा वैकुण्ठ साकेत आदि अपर नाम हैं । तथा भगवान् के परिजन नित्यसूरी श्रीहनुमान् प्रभृतिक हैं ऐसा सिद्ध होता है । '**क्षयन्तमस्य रजसः पराके**' अर्थात् रजोगुणवाली जो यह प्रकृति है एतादृश प्रकृति के ऊर्ध्वभाग ऊपर परम पुरुष श्रीरामजी निवास करते हैं । इस मन्त्र वचन से यह सिद्ध होता है कि भगवान् का जो परम पद है वह प्रकृति के ऊपर में विद्यमान है । अर्थात् जो प्रकृति का कार्य है

शास्त्रप्रतिपादितकर्मानुतिष्ठन् तथा शास्त्रविहितं कर्मानुकुर्वन् निन्दितानि च कलंजभक्षणादिकं संपादयन् परमपुरुषश्रीसीतानाथस्य निग्रहानुग्रहाभ्यामेव च प्राप्नोति इत्यनुपपत्तिगम्यापूर्वस्य कल्पनं मुधैव ।

साञ्जनेयाय शेषिणे । सानुजाय स सीताय रामाय ब्रह्मणे नमः' इत्यादिरूपेण जगद्गुरुश्रीश्रियानन्दाचार्यैः श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायामुक्तम् । तत्र भगवतो महापुरुषस्य साकारदिव्यरूपमतिशयेनाभिमतं स्वानुरूपं च 'अर्चावतारः सर्वेषां बान्धवो भक्तवत्सलः । अर्चावताररूपेण दर्शनस्पर्शनादिभिः ॥ दीनानुद्धरते योऽसौ श्रीरामः शरणं मम' इत्यागमोक्तेः । तदीयं दिव्यभूषणं च भगवतोऽनुरूपम्, तादृशभूषणेन भगवतः शोभा वर्द्धते भगवतः संबन्धेन च भूषणस्य शोभा भवति । 'पयसा कमलं कमलेन पयः' इति वत् । अप्राकृतिकत्वात्तान्याभूषणानि मङ्गलमयानि तानि चानेकानि अनेक विधानि च भवन्ति । तथा भगवत आयुधानि परमेश्वरीयशक्तिवत्कार्यकराणि अपरिमितानि अनन्ताश्चर्यजनकानि च 'प्रत्यूहव्यूहभङ्गं विदधदुरूबलशशक्तिमान् सर्वकारी भूरिः श्रेयः प्रतापो मुनिवरनिकरैः स्तूयमानो विमानः । रक्षोरैत्यादिना-

जडादिक जगत् वह प्रकृति से नीचे है जन्य है ऐसा कहा जाता है । यहां प्रकृति से ऊपर है इस कथन से यह सिद्ध होता है वह परम पद प्रकृति का कार्य नहीं है जडादिक जगत् वह प्रकृति से नीचे है जन्य है ऐसा कहा है । यहा प्रकृति से ऊपर है इस कथन से यह सिद्ध होता है वह परम पद प्रकृति का कार्य नहीं हैं किन्तु अप्राकृतिक लोकोत्तर अतिविलक्षण है । यहां क्षयादिभय रहित सर्व मङ्गलमय है तथा प्रकृति बाह्य है ऐसा सिद्ध होता है ।

'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्तात्' अयमर्थः पुरमपुरुष का एक सर्व विलक्षण बाह्यचक्षु प्रभृतिक इन्द्रियों से गृहीत नहीं होने वाला अनन्त नित्य सर्वदा नवीन विश्व व्यापक रूप है जो कि तम अर्थात् प्रकृति से ऊपर भाग में विराजमान है । इस मन्त्र वचन से भी सिद्ध होता है कि अप्राकृतिक लोकोत्तर सर्वातिशायी सर्वमंगलमय एक विलक्षण रूप हैं । **'नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया । शक्य एवं विद्यो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा'** इत्यादि अनेक वचनों से सिद्ध किया गया है कि भगवान् का स्वरूप लौकिक चक्षुरादि से गृहीत नहीं होता है । **'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्'** तदयमर्थः परमेव्योमन् परमाकाश रूप परमपद में जो भगवान्

'एष ह्येवानन्दयाति' 'अथ सोभयं गतो भवति' 'अथ तस्य भयं भवति' 'भीषाऽस्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषाऽस्मा दग्निश्चेन्द्रश्चमृत्युर्धावति पञ्चमः'। 'एतस्य वाऽक्षरस्य प्रशासने गार्गिसूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' 'एतस्ये वाऽक्षरस्य प्रशासने

शोक्षुभितजलनिधिर्लोकजिल्लोकमान्यो धन्यो नो मङ्गलौघं सपदिसुकुरुतादाम-शस्त्रास्त्रसङ्घः' (श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः) इत्याचार्येक्तेः । भगवतो महिषीसर्वेश्वरीश्रीसीतामहालक्ष्मीप्रभृतिनाम्ना सर्वागमनिगमादिशास्त्रप्रसिद्धा सा च स्वस्वरूपगुणविभूत्यैश्वर्ययुक्ता भगवतोऽभिमता च तदुक्तमागमेस्वयमेव 'सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा । षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाऽहं स्वभावः । सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ । नित्यलीलाविभूत्यो स्तच्चावां नाथौ श्रुतौ श्रुतौ ॥ दिव्यदेहगुणो रामो दिव्यदेहगुणा ह्यहम् । भक्त्या मुक्तिप्रदोरामो तथा चाहं मता बुधैः ॥ शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयो हि मुक्तय । सर्वेषामवताराणामावामे

नित्य अवस्थित रहते हैं वही भगवान् भक्त के ऊपर कृपा करके हृदय गुहा में अवस्थित रहते हैं। इस तरह जो उपासक भगवान् को जानता है अर्थात् उपासना करता है वह परमात्मा के साथ साथ सर्व कल्याण गुणों का अनुभव करता है ।

'तदेव भूतं तदुभव्यमा इदं तदक्षरे परमे व्योमन्' अयमर्थः । भूत जो गया भविष्य जो आगे आने वाला है तथा जो वर्तमानकालिक जगत् है वह परमात्मा ही है अर्थात् वर्तमान भूत तथा भविष्यत् कालिक संपूर्ण जगत् सर्वशेषी भगवान् का शरीर है न तु जगत् तथा परमेश्वर में तादात्म्य है वह सर्व शेषी परमात्मा अक्षर अर्थात् त्रिकालाबाध्य नित्य परमाकाश परम पद में अवस्थित रहते हैं । इस तरह अनेकों श्रुतियां उपर्युक्त कथन को सिद्ध करती हैं । इस तरह से आचार्य श्री ने श्रुति के बल से परम पुरुष श्रीसीतानाथ के दिव्यमङ्गलमयस्वरूप तत्पत्नी दिव्य स्थान तथा विलक्षण परिवार लक्षण शास्त्र प्रतिपाद्य अर्थ का निर्वचन किया ।

'त द्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादि श्रुति के अर्थ में जो विवदन शील परवादी हैं उनके मत का निराकरण करने के लिये उपक्रम करते हैं **'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति'** इत्यादि । यहां आचार्यजी कहते है कि **'तद्विष्णोः परमं पदम्'** यह मन्त्र कहता है कि-'सूरिगण परब्रह्म परमात्मा के उस परम पद का सर्वदा दर्शन करते रहते हैं ।' इस मन्त्र से यह सिद्ध हुआ कि सदा

गार्गि ददतोमनुष्याः प्रशंसन्ति जयमानं देवा दर्वी पितरोऽन्वायत्ताः' इत्याद्यनेकविधाः श्रुतयः परमेश्वरनिग्रहानुग्रहाभ्यामेव कर्मफलं भवतीति प्रतिपादयन्ति तत्रानुपपत्तिगम्यापूर्वस्य किमितिकारणत्वप्रकल्पनेन ! तदाहुराचार्यपादाः

वावतारिणौ । भासकभास्करादीनामावामेव विभासकौ ॥' (वशिष्ठसंहिता) इत्यादि । परिजना अपि परेशस्यानन्ता भगवदनुरूपास्तेषु मङ्गलमयज्ञानक्रियाद्यनन्तगुणपूर्णा अपि सन्ति । एतादृशा न द्वित्राः किन्त्वनन्तास्त एव श्रीहनुमत्प्रमुखा नित्यसूरय इति ।

एवं सेवोपकरणान्यप्यनेकानि तान्येव परिच्छदशब्दाभिहितानि । तथा भगवतो दिव्यमेकं साकेताभिधमयोध्यापरनामकं निवासस्थानमपि । तस्य त्रिपाद्विभूति भोगविभूतिनित्याविभूतिपरमपदवैकुण्ठादिकमपि नाम भवति । तदीयं स्थानं भगवतोऽनुरूपमनेकभोगोपकरणेन परिवृतं वाङ्मनसागोचरम्, यदुद्दिश्य-'यतो वाचोनिवर्तन्तेऽप्राप्यमनसा सहेति श्रुतिः प्रवर्तते । एतादृशं दिव्यस्थानं

देखने वाले परिपूर्ण ज्ञान से युक्त है तथा अनेक सूरिगण हैं।

यहां यह पूर्वपक्ष होता है कि इस श्रुति का क्या अर्थ होता है। यदि ऐसा अर्थ कहो कि जो सूरि हैं वे सर्वदा परम पद को देखते रहते हैं तो यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि यह अर्थ तब किया जा सकता है जब कि सूरिगण प्रमाणान्तर से सिद्ध हों तब प्रमामान्तर प्राप्त सूरिगण में सदा दर्शनवत्व का विधान हो सकता है परन्तु सूरिगण रूप विशेष्य तो प्रमाणान्तर सिद्ध नहीं है अतः जो सूरिगण हैं वे सर्वदा दर्शनशील हैं ऐसा अर्थ नहीं हो सकता है।

यदि कहो कि प्रकृत श्रुति का अर्थ यह है कि जो परम पद के सदा दर्शनशील हैं वे सूरिगण हैं परन्तु यह भी अर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि यहां भी सूरिगण प्रमाणान्तर से सिद्ध नहीं हैं। यदि तादृश सूरिगण प्रमाणान्तर सिद्ध हों तब सुरिगण का अनुवाद करके सूरिगण का विधान किया जाता इसलिये प्रकृत श्रुति का अर्थ जमता नहीं है ? यह पूर्व पक्ष का आशय है। इस शङ्का का समाधान करने के लिये कहते हैं '**अत्र सर्वस्य शास्त्रान्तरेण**' इत्यादि। '**तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्तिसूरयः**' यहां परम पुरुष का परम स्थान सुरिगण और इन सूरिगण का सर्वदा दर्शन इन तीनों पदार्थो का प्रतिपादन किया जाता है क्योंकि ये पदार्थत्रय किसी प्रमाणान्तर से प्राप्त नहीं हैं तथा किसी प्रमाण से बाधित भी नहीं है। अतः यहां सूरिगणादि सर्व विशेषणों से विशिष्ट

'जगज्जन्मादिकर्तुश्च शास्त्रयोनेश्चशेषिणः ।
सच्चिदानन्दरूपस्य कल्याणगुणशालिनः ॥
सर्वेश्वरस्य रामस्य सर्वफलप्रदत्त्वतः ।
अपूर्वकल्पना व्यर्था प्रभाकरानुयायिनाम् ॥' इति । तथैव

दिव्योद्यानादिभिरलङ्कृतं वर्तते । शास्त्रादित एतादृशस्थानं ज्ञात्वा बहवस्तत्प्राप्तये प्रयतन्ते । तत्प्राप्ताश्चनित्यसूरयः परमसौभाग्यादिति ।

नैतदुपर्युक्तं वस्तुमनोमात्रकल्पितमपितु श्रुतिगीतं श्रुतयः कथयन्ति तथाहि-

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेवविदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

तदयमर्थः-तमसः प्रकृतेः परस्तात्-ततोप्युपरिविद्यमानम्-अर्थादप्राकृतलोके स्थितम्, आदित्यर्णं सूर्यवत्प्रकाशात्मकमेतं महापुरुषं श्रीसीतानाथं सर्वलोकाधिपम्, अहं साधकः साधनाबलेन वेद ज्ञानवानस्मि । अत्रादित्यवर्णपदेन भगवतो महापुरुषस्य

भगवान् के परम पद का विधान किया जाता है क्योंकि पूर्व मीमांसा में ऐसा कहा गया है कि यदि किसी एक वाक्य से कर्म यागादिक तथा उन कर्मो का अङ्ग द्रव्य देवतादिकों का वर्णन होता है जो कि दूसरे प्रमाणों से प्राप्त नहीं होते हैं उस स्थल में अङ्ग तथा कर्म को विशेषण लिशेष्यभाव संबन्ध से एक मानकर के अङ्ग विशिष्ट कर्म का विशिष्ट विधान ही मान लेना चाहिये। विशिष्ट विधान जो किया गया है वह एक ही पदार्थ है अनेक नहीं है विशिष्ट शुद्ध से अतिरिक्त है ऐसा विशिष्ट सत्तास्थल में देखा गया है अतः अनेक विधान मूलक वाक्य भेद का प्रसङ्ग नहीं होता है विशिष्ट विधान करने पर अङ्गी की तरह अङ्गो का विधान भी अर्थ सिद्ध हो जाता है। इस बात को जैमिनी ऋषि ने '**तद्गुरुणास्तु बिधियेरन् अविभागाद्विधावार्थे न चेदन्ये न शिष्टाः**' इस सूत्र में बतलाया है। दृष्टान्त भी दिया है-'**यदाग्नेयो ऽष्टोकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यामच्युतो भवति**' एतादृश एक वाक्य है। इससे आग्नेय यज्ञ का विधान किया जाता है। इस याग का अग्निदेवता है तथा अष्टाकपालाधिकरणक पुरोडास द्रव्य है यह याग अमावास्या तथा पूर्णिमा काल में किया जाता है। ये सब पदार्थ अर्थात् द्रव्य देवता तथा काल ये सब अर्थ प्रकृत वाक्य से ही अवगत होता है। प्रमाणान्तरों से प्राप्त नहीं होते हैं। यहां इन सब अनेक पदार्थो का विधान मानने पर जो वाक्यभेद दोष आता है उस दोष को हटाने के लिये सर्व विशेषण विशिष्ट एक याग

'विश्वं जातं यतोद्धा यदवितमखिलं लीयते यत्र चान्ते
सूर्यो यद्भासतेन्दुः सकलमविरतं भासयत्येतदेषः ।
यद्भीत्यावाति वातोऽवनिरपि सूतलं याति नैवेश्वरो ज्ञः
साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणवानव्ययो विश्वभर्ता ॥
श्रीमानर्च्यः शरण्यो बहुविधविबुधैर्योगिगम्याङ्घ्रिपद्मोऽ-

वर्णनं कृतम् । यथा सूर्यस्य प्रकाशात्मकंतद्वद् भगवतोरूपं ततोप्यधिकमित्यर्थः । अत्र सूर्यवर्णोपमानम् 'इषुरिव सविता धावतीतिवत् द्रष्टव्यम्- 'गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः' इतिवदनन्वय एव । एतादृशं भगवन्तं विदित्वोपासनं कृत्वाऽतिमृत्युं मोक्षमेति तद्भिन्नोमार्गो मोक्षाय न विद्यते तथैवाहुः श्रीआचार्यचरणाः श्रौतप्रमेयचन्द्रिकायाम्- 'रामोऽखिलात्मस्वेभ्यः सुलभोऽर्चातनौ तदा । अर्चकपर तन्त्रोऽपि मोक्षैश्वर्यं प्रयच्छति । रामस्य पूजनं चाथ दर्शनं वन्दनादिकम् । अमोघं हि ततः कार्यं रामस्य पूजनादिकम्' ॥१०७।१०८॥ इति । तथैव प्रावोचद्ब्रह्मापि श्रीमद्रामायणे- 'अमोघं दर्शनं राम ! अमोधस्तव संस्तवः । अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तोनराभुवि' (६।११७।३०) इति ।

का ही विधान होता है ऐसा माना गया हैं। इसी तरह प्रकृत में सर्व विशेषण सूरितदर्शनादि विशिष्ट एक पद का विधान करने पर अनेक विधान मूलक वा य भेद दोष का अवकाश नहीं होता है। यहां सूरियों से सर्वदा दृश्य होने वाला एक परम पद का ही प्रतिपादन करती है। इसलिये कोई भी दोष नहीं होता है।

अब यहां पूर्व पक्ष होता है कि मन्त्रों का अर्थ लक्षण है '**प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः**' इति । प्रयोग में समवेत अर्थात् संवद्ध जो अर्थ प्रतिपाद्य विषय उसका जो स्मरण करावे उसको मन्त्र कहते हैं जैसे द्रव्य देवतादिक प्रयोग समवेत अर्थ का स्मरण कराने से '**इषेत्वा**' इत्यादि मन्त्र कहलाते हैं। परन्तु मन्त्र को स्वकीयार्थ का प्रतिपादन करने में सामर्थ्य नहीं हैं क्योंकि एक बार जब मंत्रने प्रयोगान्तर्गत अर्थ को स्मरण करा दिया तब पुनः स्वकीय अर्थरूप पदार्थ का प्रतिपादक नहीं हो सकता है। '**इषेत्वा**' इत्यादि की तरह '**तद्विष्णो परमं पदम्**' इत्यादिक भी मंत्र ही है तो यह भी अनुष्ठेय अर्थ का प्रकाशन करने के लिये ही प्रवृत्त होता है क्योंकि उस अनुष्ठेय

स्पृश्यः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिमान्यो वदान्यः ।
शश्वच्छ्रीरामचन्द्रः सुमहितमहिमा साधुवेदैरशेषै
निर्मृत्युः सर्वशक्तिर्विकलुषविजरो गीर्मनोभ्यामगम्यः ।"
'इति च ।
अनेनेदमायाति यत् सर्वेश्वरस्य भगवतः श्रीसीतानाथस्य

य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषस्तस्य यदाकप्यासं पुण्डरीकमेवाक्षिणी ।'

अस्यार्थः-योयमादित्यमण्डलमध्ये विद्यमानः सुवर्णवद्देदीप्यमानशरीरवान् दृष्टो भवति, तस्य सूर्यप्रकाशितकमलवत् शोभायमानं नेत्रयुगलं विद्यते । अत्र सूर्यमण्डले विद्यमानभगवतः परमेश्वरस्य रूपं वर्णितं भवति । 'स य एषोऽन्तर्हृदये आकाशस्तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयोऽमृतोहिरण्मयः' अत्र मनोमय इति कथनेन विशुद्धेन मनसैवपरिगृहीतो भवतीति प्रदर्शितम् । 'एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः'

अर्थ का प्रकाशन में ही मन्त्र का तात्पर्य है और मन्त्र शब्द शक्ति द्वारा जिस अर्थ का प्रतिपादन करता है तादृश अर्थ में मन्त्रों का तात्पर्य नहीं होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादि मन्त्रों का भी स्वार्थ प्रतिपादन तात्पर्य नहीं हो सकता है । इस स्थिति में '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इस मन्त्र से सूरियों के देखने के योग्य परम पद की सिद्धि आपने गत प्रकरण में किया वह किस प्रकार से विलक्षण तादृश परम पद को सिद्ध कर रहें है ? यह हुआ पूर्व पक्ष ।

एतादृश प्रश्न का निराकरण करने के लिये तथा मन्त्रों के करणादि भेदों का तथा तदन्य कतिपय विषयों का प्रतिपादन करने के लिये उपक्रम करते हैं। '**यद्यपि करणादिका मन्त्राः**' इत्यादि यद्यपि करणादिक जो मन्त्र हैं वे प्रयोग में संबद्ध अर्थ का स्मरण करानेवाले होते हैं इसलिये मन्त्र समुदाय प्रयोग प्रतिपादित अर्थ के स्मारक ही होते हैं। किन्तु इन मन्त्रों को स्वार्थ प्रतिपादन करने में तात्पर्य नहीं हैं। तब '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादिक भी तो मन्त्र ही हैं तो मन्त्र होने से प्रयोग समवेत अर्थ का स्मारक ही है न तु स्वार्थ का प्रतिपादक है तब इस मन्त्र से नित्य सूरि से दृश्य परम पद की सिद्धि किस तरह हो सकती है। यह पूर्व पक्षीय मूल का अर्थ है। इसके उत्तर में कहते हैं '**तथापि ये कारण मन्त्राः**' इत्यादि उत्तर ग्रन्थ का यह आशय है कि

यथार्थज्ञानपूर्वकसर्वेश्वरोपासनादिशास्त्रविहितोपासनादिविहितकर्मानुष्ठातुर्भगवत्प्रसादाद् भगवत् प्राप्तिपर्यन्ततत्तत्सुखमभयमनतिक्रम्याधिकारं प्राप्नोति । एवं भगवतोयथार्यज्ञानपूर्वकं सर्वेश्वरोपासनादिक्रियाजालमसंपादयन् निन्दितकर्माणि चाचरन्

'दृश्यतेत्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया लूक्ष्मदर्शिभिरित्यादिश्रुतेः । अर्थात्-हृदयस्यान्तरे मध्ये यः सूक्ष्माकाशस्तत्र वर्तमानः पुरुषो विशुद्धेनैव मनसा परिगृहीतो भवति । सः पुरुषोऽमृतरूपस्तथा सुवर्णवद्देदीप्यमानविग्रहविशिष्टः । अस्मिन् मन्त्रे हिरणमयशब्देन भगवतो दिव्यशरीरस्य वर्णनं कृतम् ।

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि **विद्युत्सदृशवर्णविशिष्टपुरुषात् सर्वेनिमेषा जज्ञिरे, अत्र निमेषपदजडचेतनात्मकसर्वजगत उपलक्षकम्, तेन सर्वजायमानवस्तूनामुत्पत्तिः परमपुरुषसकाशादेव जाता । अनेन दिव्यरूपस्य वर्णनं कृतमिति ।** नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा **अर्थात् हृदयकमलस्य मध्ये विद्यमानं गगनं तस्मिन्नेका वह्निज्वाला विद्यते, तन्मध्ये नीलतोयदवद्विग्रहयुक्तः परमात्मावतिष्ठते, एतादृशपरमात्मानं मध्ये धारयन्ती**

वैदिकों का मत यह है कि मन्त्र अनेक प्रकार के होते है इसमें कोई मन्त्र तो करण मन्त्र कहलाते हैं वे करण मन्त्र होते हैं जो कि होम प्रभृति का साधन हो अर्थात् जो मत्रं होम में विनियुक्त होते है इन मत्रों के बिना होम नहीं हो सकती है और मंत्रो से ही होम है इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक के द्वारा वे मत्रं होम जनक होने से करण मत्रं कहलाते हैं अर्थात् क्रिया का संपादन करने वाले मत्र का नाम हुआ करण मत्र।

कोई कोई मंत्र तो संपाद्यमान जो कर्म तादृश के अनुवादक होने से क्रियमाणानुवादी कहलाते हैं यथा '**वर्हिर्देवसदनदाभि**' (हे वर्हि दर्भ! देवताओं का सदन रूप जो आप हैं उसे मैं काटता हूं। यह मन्त्र पढ कर के कुश के काटा जाता है।) तो यह मन्त्र संपाद्यमान कुश कर्तना क्रिया का प्रतिपादन करने से क्रियमाणानुवादी इसका नाम होता है। कोई कोई मन्त्र तो स्तोत्र एवं कोई मन्त्र शास्त्र के काम में विनियुज्यमान होते हैं। उसमें गान साध्य मन्त्र के द्वारा देवता प्रभृतिक गुणवान् वस्तुओं के गुण वर्णन किया जाता है उस को स्तोत्र कहते हैं। और जिन मन्त्रों का गान नहीं किया जाता है उन मंत्रो के द्वारा गुणवान् जो देवयादिक पदार्थ हैं उनके गुणों का वर्णन किया

तन्निग्रहादेवतस्य सर्वस्याप्राप्तिपूर्वकं नानाविधदुःखानि भयं च प्राप्नोतीति । तदुक्तंगीतायाम्- 'नियतं कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायोऽह्य कर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ।' इत्यादिप्रकरणेन सर्वकर्मजालं तदीयज्ञानपूर्वककर्मावश्यं कर्तव्यमिति विधीकृत्य 'मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा' इत्यादिना

सा वह्निज्वाला तादृशविद्युल्लेखेव भाति । यस्या अभ्यन्तरे नीलो वारिवाहो विपरिवर्तते । अत्राभूतोपमेति ध्येयं यतो मेधे विद्युतः सद्भावस्तु लोके प्रसिद्धः परन्तु विद्युति मेघावस्थानं न दृष्टचरम् । मेघं स्वाभ्यन्तरे स्थाप्यन्ती यदि काचिद्विद्युल्लेखा भवेत्तदा हृदयमध्यगता वह्निशिखास्वाभ्यन्तरे नील मेघोपमितविग्रहविशिष्टं भगवन्तं विभृयादिति सैवोपमानं संभवति । एतादृशभावमादाय प्रकृते उपमा कथिता । अत एवाभूतोपमेति गीयते । अत्र नीलतोयदपदेन नीलमेघश्यामलपरमात्मशरीरमित्यभिव्यञ्जितम् ।

जाता है वह शास्त्र कहलाता है अर्थात् स्तोत्र के काम में जो मन्त्र उपकारी होते हैं वे मन्त्र स्तोत्र मन्त्र कहलाते हैं तथा शास्त्र के काम में जो मन्त्र उपकारी होते हैं वे शास्त्र मन्त्र कहलाते हैं। कोई कोई मन्त्र तो जप तथा अध्ययनादिक कार्यो में विनियुज्यमान होते हैं। इसमें अति मन्द स्वर से, जो उच्चारण किया जाता है उसको जप कहते हैं '**जप जल्पने मानसे च**' ऐसा धातु पाठ है। और उच्च मधुर स्वर से होने वाला उच्चारण का ही नाम होता है अध्ययन। कोई कोई मन्त्र तो तत्तत्कर्म के प्रकरण में ही पठित होते हैं कोई मन्त्र कर्म के प्रकरण में पठित नहीं रहते हैं इस तरह मन्त्र अनेक प्रकार के होते हैं ये उपर्युक्त सभी प्रकार के मन्त्र समुदाय शब्द शक्ति के द्वारा किसी न किसी का प्रतिपादन करते हैं जिस तरह घटादि पद शब्द शक्ति के द्वारा स्वार्थ का प्रतिपादन करते हैं उसी तरह मन्त्र शब्द भी शब्द शक्ति द्वारा स्वार्थ का प्रतिपादन जो अर्थ का प्रमाणान्तर प्राप्त नहीं हैं तथा प्रमाणान्तर से विरुद्ध भी नहीं है उन्हीं अर्थ को मंत्र प्रतिपादन करते हैं। यदि ये प्रमाणान्तर प्रतिपादित अर्थ को समझावें तब '**अग्निर्हिमस्य भेषजम्**' इसके समान अनुवादक मात्र होने से अनुवादित्व दोष हो जायगा। तथा यदि प्रममाणान्तर विरुद्धार्थ का प्रतिपादन करे तब '**अग्निना सिंचति**' इस वाक्यवत् बाधितार्थक होने से अप्रमाणिक बन जायेंगे। इसलिये

सर्वकर्मणः स्वाराधनतामात्मनश्च स्वनियाम्यतां च कथयित्वा 'ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः । श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपिकर्मभिः । ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् । सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः' इत्यादिना स्वानुकूल्यात्

मनोमयः प्राणशरीरोभारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः । **अस्यार्थः-स परमात्मा मनोमयः विशुद्धेनैव मनसा ग्रहीतुं योग्यः अविशुद्धमनसां तु सर्वथैव ग्रहीतुमयोग्यः, विशुद्धमनसैव परमात्माग्राह्यो भवतीति मत्वैव परमात्मानमुपासीत । 'प्राणशरीरः' इति । स एव परमात्मा प्राणानां धारकः । अत्र प्राणपदमुपलक्षकंसर्वस्यापि वस्तुनः तेन सर्वधारक इत्यर्थो भवति प्राणशरीर इत्यस्य । 'भारूपः' इति भास्वरूपवानित्यर्थः । 'सत्यसङ्कल्पः' इति अमोघसङ्कल्पवानित्यर्थः । 'आकासात्मा' इति, आकाशवदतिसूक्ष्मस्तथा स्वच्छस्वरू-**

प्रमाणान्तराप्राप्त तथा प्रमाणान्तराविरुद्ध किसी न किसी अर्थ का अवश्य ही प्रतिपादक होते हैं जो मन्त्र जिस किसी यागादिक कर्म में विनियुज्यमान होते हैं वे मन्त्र तादृश कर्म के देवता का प्रतिपादन करते हैं तथा उन देवता के गुणों का भी प्रतिपादन करते हैं जो गुण प्रमाणान्तर से प्राप्त नहीं है तथा प्रमाणान्तर से विरुद्ध न होते हैं तादृश गुणों का प्रतिपादन मन्त्र से किया जाता है अर्थात् देवतादिकों का तथा तदीय गुणों का स्मरण कराने वाला मन्त्र स्वार्थ प्रकाशन करने में भी समर्थ रहता ही है कर्मोपयोगी गुणादिकों का स्मरण कराता है तथा स्वशक्त्यार्थ का भी बोधक होता है । जिस तरह पाक क्रिया में व्याप्रियमान अग्नि से प्रकाशन कार्य कुण्ठित शक्तिक नहीं होता है यथा वा आनन्तर्यादिक अर्थ में विनियुज्यमान 'अर्थ' शब्द मङ्गलार्थकता शक्ति को नहीं छोडता है । अथावा जैसे मांगलिक कार्य के लिये प्रज्वलित दीप की घटादि विषय प्रकाशन शक्ति अवरुद्ध नहीं होती है उसी तरह किसी कर्म में विनियुक्त होने पर भी मन्त्र की स्वार्थ प्रकाशन शक्ति का अवरोध नहीं होता है । इसलिये वैदिक सिद्धान्त के अनुसार मन्त्र प्रतिपादित अपूर्व अर्थ सिद्ध होता ही है । इस प्रकार **'तद्विष्णोः परमं पदम्'** यह मन्त्र सूरिगण को सदा देखने में आने वाला परम पद का प्रतिपादन करता है । इस मन्त्र

प्रशंसयित्वा प्रतिकूलांश्च निन्दयित्वा तान् स्वप्रतिकूलानाज्ञा-परिपालनबहिर्मुखान् अत्यधमं गतिमाह- 'तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभामासुरीष्वेव योनिषु । आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्यैवकौन्तेय ततो

पवान् यथा आकाशो न पृथिव्यादिमलेन धूसरितो भवति परमात्मापि प्राकृतमलेन समलो न भवतीति । अथवा स परेश्वर आकाशस्य आत्मा अन्तर्यामीत्यर्थः । 'सर्वकर्मा' सर्वकर्मजातं परस्यकृतिः अथवा सर्वं कर्म परमात्मन आराधनरूपमित्यर्थः । 'सर्वकामः' सर्वप्रकारकस्वाभीष्टभोग्य-भोगोपकरणादिना सदा संपन्न इत्यर्थः । 'सर्वगन्धः सर्वरसः' स्वकीयासा-धारणाप्राकृतिकमङ्गलमयगन्धरसाभ्यां सर्वदैव संपन्न इत्यर्थः, 'सर्वमिदम-भ्यात्त' यथोक्तक्रमेण सर्वप्रकारककल्याणगुणान् संप्राप्त इत्यर्थः । 'ततोऽवाक्यनादरः सापेक्षोभूत्वा न कमपि किञ्चिदपि यतः परिपूर्णका-मत्वात् न तस्य केनचिदपि प्रयोजनं कुतश्चिदपि ततोऽवाकी । यतः

से सर्वेश्वर श्रीराम को सदा देखने वाले श्रीहनुमदादि सूरिगण तथा परमेश्वर का परम पद श्रीसाकेत अयोध्या प्रभृति सिद्ध होते हैं । जो **'देवानां पूरवोध्या'** इत्यादि रूप से वेद वर्णित हैं इसमें किसी प्रकार की अनुपपत्ति नहीं होती है । **'तद्विष्णोः परमं पदम्'** इत्यादि मन्त्र मुक्त जीव का प्रतिपादक है अथवा नित्यमुक्त सूरिगण का प्रतिपादक हैं । ऐसा संशय होने पर यह पूर्वपक्ष होता है कि वेदान्त सिद्धान्त में तीन प्रकार से जीव माने गये हैं जो सांसरिक बन्धन में ओत प्रोत हैं प्राकृतिक पदार्थ को ही कल्याणप्रद मानते हैं ऐसे जो बद्ध जीव हैं यह प्रथम विभाग हुआ । दूसरे मुक्त जीव कहलाते हैं जो कि भगवान् की भक्ति प्रपत्ति के द्वारा संसार बन्धन से रहित होकर के नित्य साकेत धाम में पदार्पण कर चुके हैं तादृश जीव मुक्त जीव कहलाते हैं यह द्वितीय विभाग है । तृतीय विभाग यह है कि एक नित्य जीव होते हैं जो कि कर्मफल भोगने के लिये न तो कभी भी संसार में आये न वा आगामी काल में भी संसार में आनेवाले हैं । न वा संसार में वर्तमान काल में आकर के संसार

यान्त्यधमां गतिमिति ।'सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद् व्यपाश्रया । मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्' इति स्वानुकूलानामुत्तमं पदप्राप्तिमुक्तवान् इतिप्रभुकृपयैव सर्वफलप्राप्तेः । अश्रुतवेदान्तरहस्यस्य कर्मण्यालस्योमाभूर्दितिदेवताधिकरणेऽतिवाद एव कृत इति संक्षेपः ।

परिपूर्णैश्वर्यसन्नस्ततो ब्रह्मलोकादारभ्यस्तंबपर्यन्तं लोकं तृणवदवधूय-व्यवस्थितः । इत्थं भूतं परमात्मानं साधक उपासीत । अत्र भास्य इत्यादिविशेषँणसमूहेन भगवतोऽप्राकृतिकं रूपंविलक्षणगन्धरसादयश्च वर्णिता भवन्तीति तस्यहैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा माहारजनं वासो यथा पाण्डवादिकं यथेन्द्रगोपो यथाऽग्न्यर्चिर्यथापुण्डरीकं यथा सकृद्विद्युत्तम् तस्य परमपुरुषस्य भगवत एकं सर्वातिशायिविलक्षणमेकं सुन्दररूपला-वण्यविशिष्टं शरीरं विद्यते । तादृशं तदीयं सरीरं माहारजनं हरिद्रारागरञ्जितं वस्त्रमिवाभाति, यथा पाण्डविकं श्वेतकं वलवद्विभाति, यथा वा इन्द्रगोपकीटवद्विभाति यथा वाऽग्निर्ज्वालेवाभाति अथवा श्वेतकमल-

---

भोग करते हैं सर्वदा से मुक्त ही हैं मुक्त ही थे और मुक्त ही रहेंगे । एतादृश श्री हनुमन्तलाल प्रभृतिक जीव नित्य जीव कहें जाते हैं ये सदा से मुक्त हैं यथा मुक्त ही रहेंगे अत: ये सब नित्य मुक्त कहे जाते हैं। इन्हीं नित्य जीव को नित्य सूरि भी कहते हैं । यद्यपि एतादृश लक्षण युक्त को तो ईश्वर ही कहना चाहिये । इनका जीव कोटि में अन्तर्भाव युक्त नहीं है तथापि '**मुक्तशेष विरोधनकुलिशव्रणलक्ष्मणा । उपस्थितं प्रांजलिना विनीतेन गरुत्मता ।।**' इस कालिदास पद्य में विनीतेन इस विशेषण को सार्थकता प्रतिपादनावसर में कहा है कि श्री गरुड़ जी को अभिमान हो गया कि सकल लोकनायक को भी अपनी पीठ पर रक्खकर के अनायास ही उड़ता हूं इसलिये मैं भगवान् से कम क्या हूं ? इस प्रकार के गरुड के भाव को जानकर के भगवान् ने अपने अंगूठे से उन्हें दबाया तब गरुड जी ने पाताल की तरफ जाते हुए अपने को जानकर के भगवान् से माफी मांगी । ऐसी पौराणिक वार्ता है । इससे सिद्ध होता है कि अभिमानादिक

ॐ परब्रह्मणोनित्यदिव्यविभूत्यादिकविशेषाणां साधनम् ॐ

प्रमाणसिद्धस्य तस्य परब्रह्मणः स्वरूपमपरिच्छिन्ननिर्मलविज्ञानानन्दमयात्मकमेव, तस्मिन् परब्रह्मणि श्रीरामे ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजः प्रभृतिकमनन्तासंख्येयकल्याणगुणा भवन्ति, एकं भगवन्तं परित्यज्य चेतनाचेतनाः सर्वेपदार्थाः परब्रह्मणः

वद्विभाति यथा वा अतिशयितविद्युदिवाभातीति । एतावता प्रकृतमन्त्रेण विविधदृष्टान्तद्वारेण भगवतो दिव्यरूपस्य वर्णनं कृतम् । अत्र सर्वमप्यु-पमानम् 'इषुरिव सविताधावतीति वदेव ज्ञातव्यम्, नहि यथा इषुवेगवदेव सूर्यस्य वेगः किन्तु ततोप्यधिकः तथैव प्रकृते विद्युदादिभ्योऽत्यधिकप्रकाशशीलं भगवतः शरीरम् । प्रकृतमन्त्रेण भगवतो दिव्यरूपस्य वर्णनं कृतम् । उपर्युक्ताभिः सर्वश्रुतिभिर्भगवतो दिव्यमङ्गलमयविग्रहस्य वर्णनं कृतमिति ।

एतावता प्रकरणेन सर्वमङ्गलमयस्य परमपुरुषश्रीसीतानाथस्य स्वरूपं तदीयरूपं श्रीविग्रहवर्णरसन्धादीनां मानं निरूपणं कृत्वा तत्सर्वं प्रामाणि-

---

होने के कारण गरुड आदि महानुभाव भी जीव कोटि के अन्तर्गत ही हैं । इसलिये अपने सिद्धान्त में गरुड आदि को जीव माना है तथा स्वेतर सकल जीव विलक्षण होने से तथा संसारिक बन्धन से नित्य वियुक्त रहने से नित्य मुक्त जीव कहा गया है ।)

इन नित्य सूरि का साधक प्रमाण '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' यह मंन्त्र है तो यह मन्त्र मुक्त जीव को बतला करके भी तो सार्थक हो जाता है । क्योंकि मुक्त जीव भी तो परमेश्वर के परम पद का दर्शन करते हैं । तब आप प्रकृत मन्त्र को नित्य सूरि के प्रमाण किस तरह मानते हैं ! यह हुआ प्रश्न । इसका समाधान करने के लिये कहते हैं '**ननु तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादि '**तद्विष्णोः परमम्**' इत्यादि श्रुति से परम पद का सदा दर्शन शील सूरिगण की सिद्धि होती है ऐसा कहा गया है । परन्तु यह तो हो ही नहीं सकता है क्योंकि यह श्रुति तो परम पद के दर्शन शील व्यक्ति के सद्भाव को बतलाती है नतु नित्यमुक्त जीव जो कि सूरिगण कहलाते हैं उनके सद्भाव का प्रतिपादन करती है किन्तु नित्यमुक्त जीव के सद्भाव को बतलाती है । मुक्त जीव का दर्शनवत्व साधन करने

सङ्कल्पादेव सत्तास्थित्यादिमन्तस्तदधीनास्तत्पराधीना भवन्तस्तत्रैव तिष्ठन्ति । अनेन प्रकारेण ब्रह्मस्वरूपं तदीयगुणचेतनाचेतनात्मकं प्रामाणिकमेव भवति । यथा पूर्वे प्रदर्शितपदार्थाः प्रामाणिकाः सिद्ध्यन्ति तथैव भगवतो दिव्यरूपदिव्यभूषणदिव्यायुधदिव्यपरिजनाद्युपकरणं दिव्यविभूतिश्च सर्वं वस्तु प्रामाणिकमेवेति

कमिति प्रमाणितवान् । अतः परिजनादिकं प्रामाणिकमितीच्छया परिजनेषु प्रथमोपात्तां तदभिन्नस्वरूपां श्रींप्रमाणयितुमाह अस्येशाना इत्यादि । अस्यस्थावरजङ्गमात्मकसर्वप्रपञ्चस्य ईशाना सर्वेश्वरी विष्णोर्भगवतः पत्नीत्यर्थः । अनेन वचनेनेतरपुरुषवद्भगवतोऽपि पत्नी विद्यते इति साधितवान् । भगवतः पत्नी का ? इति विशेषतो नामग्राहं दर्शयितुमाह 'ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ' हे सूक्ष्मस्थूलजडचेतनजगतोऽभिन्ननिमित्तोपादानकारणपरमपुरुष ! ह्री नामवती लक्ष्मीश्च ते तव पत्नी राजमहीषी । अत्र ह्री पदेनभुवोऽधिष्ठात्री देव्याग्रहणम् । लक्ष्मी पदेन च धनाधिष्ठातृदेव्याग्रहणम् ।

अतः परं भगवतो निवासस्थानमपि विद्यते साकेताभिधम् यस्य

पर भी उक्त श्रुति चरितार्थ हो जाती है । इस तरह से प्रश्न का अनुवाद आचार्यजी ने किया । इस तरह प्रश्न का अनुवाद करके समाधान करने के लिये कहते हैं-'**इति चेत् सत्यम्**' इति । ऐसा कहना आपका ठीक है जब तक मैंने जबाब नहीं दिया है अब उत्तर ग्रन्थ को बतलाते हैं । '**यतः तद्विष्णोरित्यादि**' क्योंकि '**तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः**' इस वाक्य में सदा दर्शन शील किसी व्यक्ति विशेष का प्रतिपादन किया गया है तो मुक्त जीवों को परम पद का सदा दर्शन नहीं होता है इसलिये इस वाक्य से परम पद का सदा दर्शनशील नित्य मुक्त जीव का ही सद्भाव का यथोक्त श्रुति से सिद्ध किया जाता है । मुक्त जीवों को तो सर्वदा परम पद का दर्शन नहीं होता है क्योंकि मुक्त जीव तो काल विशेष से परिच्छिन्न है इसलिये मुक्त जीव को संसार रहित होने के बाद में मोक्ष काल में ही परम पद का दर्शन होता है नतु संसार काल में दर्शन होता है इसलिये मुक्त जीव में सदा दर्शनवत्व का अभाव है । और श्रुति में तो '**सदा**'

श्रुतिशतवचोभिः सिद्ध्यति । ताश्चेत्थम् । तथाहि-

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्' 'य एषोऽन्तरादित्येहिरण्मयपुरुषस्तस्य यथाकप्यासंपुण्डरीकमेवमक्षिणी' 'स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन्नयं पुरुषोमनोमयोऽमृतोहिरण्मयः' 'सर्वेनिमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि' 'नीलतो

त्रिपाद्विभूति भोगविभूतिनित्यविभूति वैकुण्ठादिकमपरनामधेयमिति तद्देव दर्शयितुमाह- तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः इत्यादि । विष्णोः सर्वव्यापकस्य परमपुरुषस्यैकं परमं पदं स्थानं विद्यते, यत्स्थानं नित्यसूरयो हनुमदादिकाः सदैव पश्यन्ति साक्षात्कुर्वन्ति । यथा वयं साम्प्रतं स्वचक्षुषा कमपि स्थानविशेषं हस्तामलकवत् साक्षात्कुर्मस्तथैव ते नित्यसूरयो भगवत्पदं सर्वदैव स्वचक्षुषा साक्षात्कुर्वन्तीति । न तु धर्मादिवत् केवलशास्त्रैकवेद्यत्वमिति । एतावतोपर्युक्तवचनेनभगवतोदिव्यस्थानपरिजनलक्षणनित्यसूरयश्च सिद्धा भवन्तीति ।

क्षयन्तमस्य रजसः पराके अस्य प्रकृत्यपरपर्यायराजसप्रधानस्य पराके तदुपरिभागे भगवतः परमपुरुषस्य निवास इति । अनेन वचनेव यद्विष्णोः परमं पदं प्रकृतेरुपरि प्रकृतिभिन्नं चेति सिद्ध्यति । तदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वंपुराणं

ऐसा विशेषण दिया गया है अतः काल से अपरिच्छिन्न नित्यमुक्त जीव की ही सिद्धि होती है किन्तु इस श्रुति से मुक्त जीव में परम पद दर्शन की सिद्धि नहीं होती हैं । अंतः यथोक्त श्रुति मुक्त जीव का साधक नहीं है ।

अर्थात् समाधान ग्रन्थ का यह आशय है कि इस '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' मन्त्र में परम पुरुष भगवान् के परम पद का सर्वदा दर्शन करने वाले व्यक्तियों का वर्णन किया गया है और परम पद का सर्वदा दर्शन करने वाले जो नित्य सूरि लोग हैं वे ही परम पद के सदा दर्शन करते हैं मुक्त जीव परम पद का सदा दर्शन नहीं करते हैं क्योंकि मुक्त जीव तो मोक्ष पद में पदार्पण करने के बाद ही भागवत परम पद का दर्शन करते हैं । संसार काल में अस्मदादि की तरह परम पद का दर्शन नहीं कर पाते हैं । अर्थात् संसार में रहते समय परम पद का दर्शन नहीं कर सकते हैं । अन्यथा सकल जीव को

यदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वरा' 'मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः' 'तस्यमहारजनं वासः' इत्यादिकाः । तथा 'अस्येशाना जगतो विष्णुपत्नी' ह्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ' 'तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः' 'क्षयन्तमस्यरजसः पराके'

तमसः परस्तात् **अर्थात् भगवतः परमपुरुषस्य श्रीविष्णोः सर्वव्यापकस्य नित्यं नत्वनित्यम् । दिनप्रतिदिनं नवमेव । अनन्तं सर्वथा विनाशरहितम्, विश्वं जगन्मयम् विश्वव्यापकंवा दिव्यरूपं वर्तते, तमसः परस्तात्, तमसस्तमोमयप्रधानस्योपरि विद्यते तादृशमेकंस्थानम्, तदव्यक्तम् चक्षुरादिज्ञानेन्द्रिकर्मेन्द्रियाभ्यां व्यक्तं गृहीतं कदापि न 'न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्' 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या' इत्यादिश्रुतेः ।** इति, यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् **अयमर्थ :-परमेव्योमनि परमाकाशरूपपरमपदेऽवस्थितः परमात्मा स एव गुहायां निहितं विद्यते आर्थात् यः परमात्मा परमव्यापक- पदेऽवस्थिः, स एव परमसूक्ष्महृदयगुहायां व्यवस्थितः ।**

संसारावस्था में ही उनकी तरह परम पद देखने में आ जाये । इष्टापत्ति कहो - अर्थात् सभी को तादृश पद के दर्शन सौभाग्य प्राप्त हो तब तो शास्त्र में जो भक्ति प्रपत्ति का विधान है वह निर्थक हो जायेगा । नित्य सूरिगण कदापि संसार बन्धन में नही आते हैं। वे तो सदा नित्यधाम में भगवान् के पार्षद बन करके वहीं निवास करते हैं । इस लिये नित्य मुक्त जीव को सदा परम पद दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त रहता श्रुति में सदा दर्शनशील व्यक्तियों का उल्लेख हैं एतादृश नित्य सूरिगण ही हो सकते हैं । मुक्त जीव एतादृश नहीं हो सकते हैं ।

पूर्व पक्ष-इस के पूर्व प्रकरण में कहा था कि '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' यह श्रुति नित्य सूरिगण का प्रतिपादक नहीं है किन्तु मुक्त जीव का प्रतिपादन करती है इसका उत्तर आचार्यजी ने दिया कि प्रकृत श्रुति में '**सदा**' एक ऐसा विशेषण है । उसका अर्थ होता है कि सर्वदा जो परम पद को देखने वाले हैं तो मुक्त जीव सर्वदा परम पद का दर्शन नहीं करते हैं किन्तु संसार विगमान्तर परम पद को देखते हैं और नित्यमुक्त

'यदेकमव्यक्तमनन्तरूपं विश्वंपुराणं तमसः परस्तात्' 'यो वेदनिहितं गुहायां परमे व्योमन्' योऽस्याध्यक्षपरमेव्योमन्' 'तदेवभूतं तदु भव्यमा इदं तदक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादिश्रुतिभिर्निश्चितोभवति पूर्वोऽर्थः ।

एतादृशं परमात्मानं सर्वव्यापकपदेऽवस्थानं कुर्वन्नपि सर्वसूक्ष्मेप्याधारे निवसन्तं यो वेद विजानाति अर्थात् समुपासते स साधकः परमेश्वरान् सर्वकल्याणगुणान् अनुभवतीति भावः । तदेवभूतं तदुभव्यमाइदं तदक्षरे परमेव्योमन् **अस्यार्थः- भूतमतीतकालिकं भव्यमागामिकालिकं तथा वार्तमानिकं च सूक्ष्मासूक्ष्म-साधारणं चेतनाचेतनात्मकं जगत् सर्वमेव परमात्मैव । न च जडो हि संसारश्चेतनश्च परमात्मा, ततश्च तयोस्तादात्म्यस्य बाधितत्वेन कथमुक्तं परमात्मरूपमेव जगदिति वाच्यम् शरीरशरीरिभावमादाय तदुपपत्तेः । अर्थात् सर्वं जगत् परमात्मनः शरीरं शरीरी च सर्वेषां परमात्मेति कृत्वा तथा कथनादिति । एतादृशः परमात्मा सर्वथा विनाशरहितपरमाकाशप-रमपदे सर्वदैवावतिष्ठते इति । उपर्युक्ता इमाः श्रुतयो भगवतो दिव्यरूपदिव्यमहिषी**

को तो संसार नहीं होता है इसलिये वे सदा दर्शन शील होने से उन्हीं का प्रतिपादन हैं प्रकृत मन्त्र में । अब यहां दूसरा पूर्वपक्ष होता है कि प्रकृत श्रुति मुक्त जीव प्रवाह को बतलाती है । प्रवाह में तो सदा विशेषण उपयुक्त होता है । अर्थात् '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इत्यादि श्रुति मुक्त प्रवाह को बतलाती है। एतादृश अर्थ करने में पूर्वोक्त दोष नहीं होता है । क्योंकि यद्यपि प्रत्येक मुक्त जीव व्यक्ति सदा दर्शन नहीं भी कर सकते हैं तथापि मुक्तपुरुषों का जो प्रवाह (मुक्त पुरुषाधार) है वह तो परम पद का दर्शन कर सकता है। ऐसा तो कह नहीं सकते हैं कि कोई ऐसा भी समय होगा जिसमें किसी मुक्त ने दर्शन किया हो क्योंकि कोई न कोई मुक्त तो दर्शन करता ही रहता है । अतः प्रकृत मन्त्र मुक्त प्रवाह का ही प्रतिपादन करता है यह मानना ठीक है। तब आप कैसे कहते हैं कि प्रकृत मन्त्र से नित्य सूरि की सिद्धि होती है ? यह हुआ प्रश्न-

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य जी कहते हैं '**सदा पश्यन्तीत्यत्रैककर्तृ**

॥ तद्विष्णोः परमंपदमित्यस्यविशिष्टविधानपरकत्वेननिर्वचनम् ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' इतिवचनेन समस्त जडचेतनज्ञानवन्त इति ज्ञायते । तत्र 'सदा पश्यन्ति सूरयः' इत्यस्य ये सूरयस्ते सर्वदा पश्यन्ति, यद्वा ये सर्वदा पश्यन्ति ते सूरय इत्यर्थः । एतदुभयमपि नोपपद्यते, वाक्यभेददोषेणानेकविधानासंभवादिति

दिव्यपरिजनदिव्यस्थानाद्यर्थान् साधयन्तीति निरूपयामास ।

'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' **इतिश्रुत्यर्थे विवदमानं परवादिनं स्वाभिप्रेतार्थप्रकाशनद्वारा निराकर्तुमुपक्रमते** तद्विष्णोः परमं पदमित्यादि **ये सूरिगणास्ते परस्य विष्णोः परस्य ब्रह्मणः परमं पदं तत्सदा पश्यन्तीत्यर्थः श्रुतेः । एतावता सदा दर्शनशीलाः परिपूर्णज्ञानसंपन्नाः सूरयः सन्तीत्यवगम्यते । अत्राह परो यदि पूर्वोक्तश्रुतेः 'ये सूरयः , सन्ति ते सदा तत्पदं पश्यन्ति' । इति क्रियते तन्न सम्यक् । यतो यदि सूरयः प्रमाणान्तरप्राप्ता भवेयुस्तदा तमुद्दिश्य दर्शनवत्वं विधातुं शक्येत, प्रमाणासिद्धे वस्तुनि विधानस्याशक्यत्वादन्यथा वन्ध्यापुत्रेऽपि**

विषयत्वस्यप्रतीतेरित्यादि । सदा पश्यन्ति' इस स्थल में एक कर्तृकत्व का प्रतिपादन होता है अर्थात् यह मन्त्र सदा परम पद को देखने वाले नित्य मुक्त सूरि व्यक्तियों का ही प्रतिपादन करता है । उपर्युक्त इस मन्त्र से क्लिष्ट कल्पना के बिना स्वभाव से यह अर्थ निकलता है कि जो जो सूरि व्यक्ति हैं वे प्रत्येक परम पद का सर्वदा दर्शन करते हैं नतु कदाचित् कोई देखते हैं । प्रवाहधारा रूप से मुक्तों के सद्भाव को मान भी लिया जाय तथापि उन मुक्तों में से कोई भी मुक्त सदा दर्शन करने वाले नहीं होते हैं किन्तु वे सब मोक्ष प्राप्ति के अनन्तर काल में ही परम पद का दर्शन करते हैं। और सदा दर्शन करने वाले नित्य मुक्तों से मुक्त व्यक्ति सर्वथा भिन्न हैं ! और यदि यथोक्त श्रुति को मुक्त प्रवाह विषयक मानें तब श्रुति के स्वाभाविकता का भंग हो जायगा। अतः स्वाभाविक रीति से श्रुति का अर्थ करने पर नित्य सूरि का ही सद्भाव सिद्ध होता है। क्लिष्ट कल्पना तो अगतिक गति होती है इसलिये क्लिष्ट कल्पना करके यथोक्त श्रुति मुक्त प्रवाह विषयक मानना अनुचित है । अतः यथोक्त मन्त्र से यह सिद्ध होता है कि नित्य सूरिगण

चेत्सत्यम् । अत्र सर्वस्य शास्त्रान्तरेणाप्राप्ततया सर्वस्यैव विधानात् । तथोक्तं प्रथमतन्त्रे 'तद्गुणास्तु विधीयेरन्नविभागाद्विधानार्थे न चेदन्येन शिष्टाः । यथा-यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति' । इत्यादिकर्मविधायके कर्मगुणयोरप्राप्ततया सर्वगुणविशिष्टस्यैव कर्मणो विधानं क्रियते

पाण्डित्यादिकंविधीयेत । यद्वा 'ये सदा पश्यन्ति परमं पदं ते सूरयः' इत्यर्थो यदि क्रियते तदा सोऽपि न विचारक्षमः । यतः अत्र दर्शनशीला उद्देश्याः तानुद्दिश्य सूरित्वं विधीयेत परन्तु तदपि न संभवति यतः सर्वदादर्शनशीलाः प्रमाणान्तरेणाद्याप्यसिद्धा एव, नहि प्रमामान्तरेण तादृशाः सिद्धाः । न चोभयोरेव विधानम् । सूरिसदादर्शनशीलयोरपि विधानादित्यपि न । एकेन वाक्येनानेकविधाने वाक्यभेददोषप्रसङ्गः 'सकृदुच्चरितः शब्दः सकृद्देवार्थं बोधयतीति नियमेन न यथोक्तश्रुतेरर्थः संभवतीति प्रश्नाशयः । अमुं प्रश्नं निराकर्तुमाह अत्र सर्वस्यशास्त्रान्तरेणप्राप्ततया इत्यादि **। अयमाशयः-प्रकृते परमं**

हैं वे लोग मन्त्र प्रतिपादित परम पद का सदा दर्शन करते हैं । मुक्त प्रवाहान्तर्गत मुक्त जीव परम पद का सदा दर्शन नहीं करते हैं इसलिये प्रकृत श्रुति मुक्त प्रवाह परक नहीं है यह सिद्ध हुआ ।

नहीं कहो कि वेद मात्र का कार्यार्थ परक होने से **'आम्नायस्य क्रियार्थत्वा-दानर्थक्यमतदर्थानाम्'** इस नियम से परम पद रूप अर्थ तो कार्यरूप नहीं है तब तादृश अर्थ का बोध यथोक्त श्रुति से किस तरह होगा और जब परम पद सिद्ध नहीं होता है तब तादृश पद का सदा दर्शनशील नित्यसूरिगण का ही सद्भाव किस तरह होगा । इस स्थिति में यथोक्त श्रुति नित्यसूरिगण बोधन परक है किन्तु मुक्त प्रवाह प्रतिपादन परक नहीं है इत्यादिककहना तो सर्वथा असंगत लगता है । इस शङ्का का निकारण करने के लिये कहते हैं कि **'यदा वेदस्य कार्यार्थप्रतिपादनेपि'** इत्यादि। यहां कहने का अभिप्राय यह है कि जब मीमांसक देवमात्र को कार्यार्थ परक मान करके भी कर्मोपयोगी होने से मन्त्र अर्थवादादिक प्राप्त अर्थ का भी स्वीकार करते हैं एवम्

तथा प्रकृते सूरिभिः सर्वदादृश्यतया ब्रह्मणः पदं न केनापि प्राप्तमित्यप्राप्तं तत्प्रतिपादितं भवतीति न विरोधगन्धोऽपि ।

॥ स्वार्थेमन्त्राणां तात्पर्यसमर्थनम् ॥

यद्यपि करणादिकामन्त्राः प्रयोगसमवेतार्थस्मारकाः प्रयोग समवेतानेवार्थान् स्मारयन्ति न तु तेषां स्वार्थबोधने तात्पर्यम् 'तद्विष्णोः परमं पदमित्यस्यापि तथात्वेनैव स्वार्थबोधकत्वमिति ।

पदं सुरिः सदादर्शनञ्चैतत्त्रितयमपि प्रमाणान्तरेण नावगतं न वा विरुद्धमिति सर्वविशेषणविशिष्टमेकं परमं पदं विधीयते, सूरिभिः सदा दृश्यमानं परमं पदमित्याकारकसर्वविशेषणविशिष्टैकविधानेनादोषात् । तदत्रप्रसङ्गे पूर्वतन्त्रे कथितम् यद्येकस्मिन् विधायकवाक्ये कर्मणस्तदङ्गानां विधानं भवेत् परन्तु तत्प्रमाणान्तरेणाप्राप्तमविरुद्धे च तदा तत्र कर्माङ्गानां कर्मणश्च विशेषणविशे-ष्यभावसंबन्धेनाङ्गविशिष्टकर्मणो विधानं भवतीति मन्तव्यमेव । न चानेकविधाने वाक्यभेदो दोषः स्यादिति वाच्यम् विशिष्टस्य शुद्धातिरिक्ततया विशिष्टैकविधाने

उपासनादि क्रिया शेषतया ब्रह्म पद की शक्ति ब्रह्म में मान कर के वेद से तदर्थ बोध को मानते हैं अर्थात् सिद्धार्थ बोधकत्व पद को मनाते हैं सत्यज्ञामादि स्थल में उसी तरह प्रकृत में सिद्धार्थ भी परम पदात्मक शब्द को परम पद रूप अर्थ में शक्ति तथा प्रतिपादकत्व भी हो सकता है । वेदान्त सिद्धान्त में तो सिद्ध अर्थों में भी शब्दों का तात्पर्य होता है ऐसा सिद्ध किया गया है, तो वेदमात्र सिद्ध अर्थ का प्रतिपादन कर राकता है स्वकीय सिद्धान्त के अनुसार परम पद तथा नित्यसूरि आदि सिद्ध अर्थों की सिद्धि करने में किसी प्रकार की अनुपपत्ति नहीं होती है । अतः ब्रह्म परमपद तथा नित्यसूरि प्रभृतिक सभी अर्थ का स्वोकार करना चाहिये ।

पूर्वपक्ष गत प्रकरण में '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इस मंत्र से विष्णु के परमपद दिव्य स्थान का प्रतिपादन किया गया है वह ठीक नहीं है क्योंकि '**समस्तहेयरहितं विष्ण्वाख्यं परमं पदम्**' इस मन्त्र में विष्णु को ही परमपद कहा गया है अर्थात् इस मन्त्र में विष्णु तथा परम पद में तादात्म्य का कथन है सर्व प्राप्य होने से विष्णु के भी

तथापि ये करणमन्त्राः संपाद्यमानार्थानुवादकाः स्तोत्रशास्त्रादिरूपा जपादिकार्ये विनियुज्यमानाश्च स्वस्वप्रकरणेऽधीता अनधीताश्च ते सर्वेऽपि प्रमाणान्तराप्राप्तमविरुद्धं स्वकीयार्थं ब्राह्मणवद् बोधयन्त्येवेति । तत्र गानसाध्यगुणवन्निष्ठगणनं स्तोत्रम् । गानविरहितमन्त्रप्रयोज्यगुणिनिष्ठगुणाभिधानम् शास्त्रम् ।

तद्दोषासंभवादिति । अयमर्थः पूर्वतन्त्रे जैमिनिना 'तद्गुणास्तु विधीयेरन् अविभागाद्विधानार्थे न चेदन्ये न शिष्टाः' इति सूत्रे प्रतिपादितः । यथा 'यदाग्नेयोऽष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां चाच्युतो भवति' इत्येकं वाक्यम्, अनेन वाक्येनाग्नेययागस्य विधानं भवति, स चायं यागोऽग्निदेवताकः, अष्टाकपालसंस्कृतपुरोडाशद्रव्यकश्च, यागस्य द्वे रूपे भवतो द्रव्यं देवता चेतितदीयनियमात् इत्थंभूतो यागोऽमावस्यायांतिथौ पूर्णिमासु च संपाद्यते । कोऽत्र यागे देवः किंच द्रव्यं कश्च समय इत्यादिकंसर्वमेकवाक्येनावगतं भवति

तो परमप्राप्य होने से परमपद कहला सकते हैं क्योंकि पद शब्द प्राप्य का वाचक है विष्णु भी तो सर्व प्राप्य हैं इसलिये भगवान् दिव्य स्वरूप ही परमपद है किन्तु इससे अतिरिक्त कोई भी स्थान बोधक परम पद नहीं हैं, तब आपने गत प्रकरण से परमपद शब्द से स्थान विशेष का प्रतिपादन किया है यह कैसे ? इस शङ्का का निराकरण करने के लिये तथा परमपद परिशुद्ध जीव स्वरूप दिव्य स्थान तथा भगवत्स्वरूप का भी वाचक है इन सब वस्तुकों का प्रतिपादन करके के लिये अग्रिम प्रकरण का उत्थान करते हैं '**अथैवमपि तद्विष्णोः परमं पदमित्यत्र**' इत्यादि । (मूल पूर्वपक्ष अवतरण से ही अनुवादित हो जाता है अतः इस पूर्वपक्ष ग्रन्थ का पुनः अनुवाद नहीं किया जाता है ।) इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य श्री कहते हैं '**सत्यम्**' इत्यादि । अब आचार्य जी कहते हैं कि परम पुरुष का जो दिव्य स्थान है उसका बिल्कुल निराकरण नहीं किया जा सकता है क्योंकि श्रुति उस स्थान का प्रतिपादन करती है तथाहि '**क्षयन्तमस्यरजसः पराके**' '**तदक्षरे परमे व्योमन्**' '**योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्**' '**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्**' इत्यादि । तदयमर्थः-अर्थात् इस राजस प्रकृति मण्डल के ऊपर स्थान

विनियुक्तार्थप्रकाशकानां देवादिष्वप्राप्तप्रमाणान्तराविगुणादिप्र-काशनं यथा विनियोगमेवेति, तथैव प्रकृतेऽपीति न किञ्चिदपचीयते।

॥ तद्विष्णोरितिश्रुतेर्मुक्तजीवनिर्वचननिषेध ॥

ननु 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' इतिश्रुत्या सदा दर्शनशीलस्य सूरिगणस्य सिद्धिर्भवतीति कथितम्, परन्तु तन्न युक्तम् यत इयं श्रुतिः परमपददर्शनशीलस्य सद्भावमेव दर्शयति

नतु प्रमाणान्तरं प्राप्तं भवति । एतत्सर्वमत्रैकेनैव वाक्येनावगतं विहितम् । ततश्चानेकविधाने वाक्यभेददोषमाशङ्क्यसर्वविशेषणविशिष्टैकस्य शुद्धाद-तिरिक्तस्य विधानस्वीकारेणादोषात् । तथैव प्रकृते सर्वविशेषणविशिष्टपरम-पदस्य विधानेन वाक्यभेदादिदोषाणामनवकाशादिति न भवति कोऽपि विरोधः।

ननु प्रयोगसमवेतार्थप्रकाशकत्वमेव मन्त्रामां लक्षणम् 'प्रयोगसम-वेतार्थस्मारका' इतिपूर्वमीमांसकाः । स चायं मन्त्रः प्रयोगसंबद्धमेवार्थं प्रकाशयति कर्मानुष्ठानाय, नतु स्वार्थमप्यावेदयति, तत्र तेषामौदासीन्याद-

---

में परम पुरुष श्रीसीतानाथ निवास करते हैं। अविनाशी परमाकाश में भगवान् निवास करते है। इस जड चेतन सूक्ष्म स्थूल साधारण जगत् के अध्यक्ष भगवान् श्रीसीतानाथ परमाकाश में रहते हैं जो साधक उपासक श्रीसीतानाथजी परब्रह्म को हृदय गुहा में अवस्थित जानता है अर्थात् श्रीसीतानाथ को सर्वान्तर्यामी जानकर उस का ध्यान उपासन करता है वह उपासक परमाकाश लक्षण दिव्य स्थान को प्राप्त करके उस दिव्य स्थान में हेय प्रत्यनीक अनन्त कल्याण गुण समलंकृत परब्रह्म रूप सीतानाथ का अनुभव करता है जिस तरह हमलोग अतिप्रिय स्वजन को चक्षुरादि से साक्षात्कृत करते हैं उसी तरह वह भक्त भगवान् को देखता है। उपर्युक्त इन सब श्रुति वचनों से सिद्ध होता है कि परम पुरुष का एक निवास स्थान है जिसका दूसरा नाम है दिव्य स्थान तथा परमपद। श्रुति सिद्ध इस स्थान का निकाकरण करनेवाले अल्पप्रज्ञ श्रुति के शिर पर दण्ड प्रहार कर रहे हैं।

न तु नित्यजीवस्य मुक्तजीवस्य वा दर्शनवत्वसाधकतयैव तादृश श्रुतेश्चरितार्थत्वादिति चेदत्रोच्यते यतः 'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' इत्यत्र सदा दर्शनशीलस्य नित्यजीवस्यैव सद्भावा वेदनात् । मुक्तजीवानां परमपदस्य सर्वदा दर्शनं न भवति तेषां कालविशेषे एव दर्शनवत्तया कालपरिच्छिन्नत्वात् । इह तु सदेति

नुपयोगाच्च, इहापि 'तद्विष्णोः परमं पदमित्यपि मन्त्रविशेष एवेति सोऽपि प्रयोगसमवेतार्थमेव स्मारयिष्यति न तु स्वार्थमावेदयिष्यतीति प्रकृतमन्त्रेण सूरिदृश्यपरमपदस्य कथं कृतासिद्धिः, नहि तेन तादृशार्थस्य प्रसिद्धिः संभवति स्वार्थवेदकत्वाभावात्, प्रयोगसमवेतार्थस्मारणे प्रक्षीणशक्तिकस्य मन्त्रस्य स्वार्थबोधने सामर्थ्याभावादित्यादिशङ्कां समाधातुं प्रक्रमते यद्यपि करणादिकामन्त्राः इत्यादि । इत्थं हि वैदिकाः संगिरन्ति, मन्त्राश्च ये प्रयोगसमवेतार्थस्मारकास्तेऽनेकविधा भवन्ति । तत्र केचनकरणमन्त्रा जपहोमादिसाधनाः । केचनसंपाद्यमानयागादिकर्मणामनुवादकाः । त एव

और भी देखिये '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इसका अर्थ यह होता है कि वह विष्णु का परम पद, तो यहां विष्णु पदोत्तर में जो षष्ठी विभक्ति है वह विष्णु तथा परमपद में भेद को बतलाती है। जिस तरह '**देवदत्तस्य कंवलः**' यहां देवदत्त का कबल है ऐसा अर्थ होता है तो देवदत्त पदोत्तर षष्ठी में भेद प्रदर्शकत्व है अर्थात् देवदत्त से भिन्न तथा देवदत्त संबन्धी कंबल है '**देवदत्तसंबन्ध्यभिन्नः कंबलः**' एतादृश बोध से सिद्ध होता है कि देवदत्त तथा कंबल में भेद है उसी तरह प्रकृत में विष्णु तथा परम पद में भेद ही सिद्ध होता है। नहीं कहो कि '**राहोः शिरः**' राहु का शिर है इस स्थल में जिस तरह अभेद में षष्ठी है अर्थात् राहु से अभिन्न है ऐसा अर्थ होता है उसी तरह '**विष्णोः परमं पदम्**' यहां भी विष्णु से अभिन्न परम पद है इस प्रकार विष्णु तथा परम पद में अभेद होने से विष्णु से अतिरिक्त विष्णु का निवास स्थान नहीं किन्तु विष्णु रूप परम पद से विष्णु रूप पद ही परम पद हैं।

ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि अभेद में षष्ठी उसी जगह में मानी जाती है जहां

विशेषणेन कालापरिच्छिन्ननित्यमुक्तजीवानामेव सद्भावस्य साधकतया नित्यजीवस्यैव सिद्धिर्भवति नतु मुक्तजीवस्य प्रकृतश्रुत्या सद्भाव इति नेयं श्रुतिर्मुक्तजीवविषया मुक्तजीवस्य सदादर्शनासंभवात् ।

क्रियमाणानुवादिन इति व्यपदिश्यन्ते यथाः-वर्हिर्देव सदनं दामि' इत्यादि (हे बर्हिः कुश ! देवानां प्रयोगे संबद्धानां देवानां सदनभूतं त्वामहं दामि, दो अवखण्डने खण्डयामीत्यर्थः) अयं मन्त्रो वर्हिषो लवनात्मकक्रियायाः प्रकाशकः। केचनमन्त्राः स्तोत्ररूपाः केचनशास्त्ररूपाः । तत्र गानसाध्यमन्त्रेण गुणवतो देवादेर्गुणवर्णनं करोति, गानव्यतिरेकेण गुणिनिष्ठागुणवर्णनरूपो मन्त्रः शास्त्रमिति । तत्र स्तोत्र कर्मणि विनियुज्यमानः स्तोत्रम् । तथा शास्त्रकर्मणि विनियुज्यमानः शस्त्रम् । केचन मन्त्रास्तु जपाध्ययनादिषु विनियुज्यमाना भवन्ति । तत्र नीचैः स्वरेण जायमानमुच्चारणं जपः, तारस्वरेण क्रियमाणमुच्चारणमध्ययनमित्यनयोर्भेदः। तत्र केचनमन्त्राः संपाद्यमानकर्मणः प्रकरणे पठिता भवन्ति यथा दर्शपौर्णमासयोः । केचन- प्रकरणबहिरेव पठिता भवन्ति, तदनेन क्रमेण सर्वेऽपि मन्त्रराशिः स्वकीयशब्दशक्तिद्वारेण तत्तदर्थं

प्रतियोगी तथा अनुयोगी वाचक पद में भेद प्रमाणान्तर बाधित रहता है यथा '**राहोः शिरः**' इस स्थल में यहां यदि भेद मानते हैं तो भेद का प्रतियोगी राहु तथा भेद का अनुयोगी में भेद पुराणादि प्रमाण से बाधित है इसलिये भेद नहीं मानकर के अभेद को माना जाता है और अभेदार्थक षष्ठी क्वचित्क है। प्रकृत में विष्णु से भिन्न परम पद को मानने में किसी प्रमाणान्तर का विरोध नहीं है अपितु विष्णु की तरह विष्णु से भिन्न विष्णु का दिव्य निवास स्थान का भी वर्णन उपबृहंक पुराण प्रभृति में मिलता है। इसलिये इस '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' श्रुति से महापुरुष भगवान् विष्णु के स्वरूप से अतिरिक्त किसी एक स्थान विशेष परम पद का प्रतिपादत होता है ऐसा स्वीकार करना ही प्रमाण तथा तर्क का अनुसरण करने वालो के लिये युक्त हैं।

और भी देखिये अग्रे वक्ष्यमाण विष्णुपुराण के एक श्लोक में विष्णु नामक परम पद का उल्लेख किया है उससे भी सिद्ध होता है कि अन्य भी कोई एक परम पद है जिस

॥ तद्विष्णोरितिश्रुतेर्मुक्तप्रवाहपरत्वाभावप्रतिपादनम् ॥

'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादिश्रुतेर्मुक्तप्रवाहप्रतिपादनेन चारितार्थ्यं न भवति । सदा पश्यन्तीत्यत्रैककर्तृविषयकत्वस्य प्रतीतेः ।

बोधयति, परन्तु शब्दोपात्ता अर्था यदि प्रमाणान्तरप्राप्ता न भवेयुर्नवा प्रमाणान्तराविरुद्धा भवेयुस्तदैव शास्त्रं तु तमेवार्थं बोधयति यत् प्रमाणान्तरादप्राप्तं प्रमामान्तराविरोधी च । प्रमाणान्तरप्राप्तस्य प्रापणेऽनुवादकत्वं प्रमाणान्तरविरुद्धस्य प्रतिपादने बाधितत्वं च स्यात् तदुभयमपि नेष्टम् । यो मन्त्रः कस्मिंश्चित्प्रयोगे उपयुज्यते स तत्कर्मदेवतां प्रतिपादयन् तादृशदेवस्य प्रमाणान्तराप्राप्तप्रमाणा-न्तराविरोधिनं गुणादिकं प्रतिपादयति । देवतास्मरणादिकं कारयतो मन्त्रस्य स्वार्थप्रकाशनशक्तिर्नापगच्छति, यथा पाकार्थं ज्वलतोऽग्नेः प्रकाशकशक्ति-र्नापगच्छति तथैव कर्मणि विनियुज्यमानस्यापि मन्त्रस्य स्वार्थप्रकाशनश-क्तिर्नापगच्छति । एवं च वैदिकसिद्धान्तानुसारेण 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यस्यापि मन्त्रत्वेन स्वार्थबोधकत्वं सम्भवत्येवेति नित्यसूरिगणस्य तथा परमेश्वरपरमपदस्य

अन्य परम पद से इस परम पद का भेद बतलाने के लिये 'विष्णु नाम वाले' ऐसा विशेषण दिया गया है । विशेषण विशेष्य का लक्षण हो जाता है और लक्षण इतर व्यापवर्तक होता है तथा व्यवहार का प्रयोजक होता है '**व्यावृत्तिर्व्यवहारो वा लक्षणस्य प्रयोजनमितिनियमः** । यथा '**नीलोघटः**' यहां नीलात्मक विशेषण यह घट पीले घट से भिन्न इस प्रकार स्वेतर से स्व की भिन्न कराता तथा '**अयं नीलघटोऽयं नील घटः' ऐसा व्यवहार भी कराता है तो 'नीलो घटः**' यहां नीलात्मक विशेषण सिद्ध करता है कि नील घट से भिन्न पीत शुक्ल प्रभृतिक घट भी है इसी तरह यहां 'विष्णु नाम वाले' यह विशेषण विष्णु नामक परम पद से भिन्न भी परम पद है वा दूसरा परमपद विष्णु से अतिरिक्त विष्णु का दिव्य स्थान नामक आवास स्थान है । एतावता दिव्य स्थान विष्णु पुराण का अभिमत हैं विष्णु पुराण में कहा है कि '**एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनोयोगिनोहिये । तेषां तत्परमं स्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥**' इति। अर्थात् एकान्त निवास करके अर्थात् अनन्यचित्त होकर के सर्वदा ब्रह्म के ध्यान करने वाले जो योगी हैं उनको उस स्थान की प्राप्ति होती है जिस परम स्थान का सूरिगण

अन्यथा श्रुतेः स्वारस्यभङ्गप्रसङ्गात् । यदा वेदस्य कार्यार्थप्रतिपादनेऽपि मन्त्रार्थवादादिप्राप्ता अर्थाः सिद्ध्यन्ति तदा सिद्धार्थपरत्वे मन्त्रप्राप्तपरमपदादेरपि सिद्धिर्भवत्येवेति न किञ्चिदप्यनुपपद्यते ।

च प्रतिपाद्यार्थस्य सिद्धिर्भवत्येवेति । मन्त्रत्वात् स्वार्थप्रकाशकस्याभावेन तद्विष्णोरित्यादिमन्त्रेणाभिप्रेतार्थस्य सिद्धिर्न भवतीति शङ्काऽपसारितेतिदिक् ।

ननु सिद्धान्ते त्रिविधो जीवः प्रतिपादितः । तत्र प्रकृतिबन्धनबद्धः प्रथमः । प्राकृतिकबन्धनं विनाश्य परमपदप्राप्तो मुक्तो द्वितीयः । यश्चेतः पूर्वं कदापि प्राकृतिकबन्धनं नानुभवन् नवेतः परमपि तादृशबन्धनमनुभविष्यति, यथा श्रीहनुमत् प्रभृतिकस्तादृशोनित्यमुक्तजीव इतितृतीयः । एते सदैव मुक्ता नित्यजीवा इतिव्यवहृता भवन्ति इमे एव नित्यसूरय इति । परन्त्वयं मन्त्रो मुक्तजीवं प्रत्याख्यापि सार्थकः संभवति, यतो मुक्तोऽपि मोक्षानन्तरं भगवतः परमं पदं पश्यत्येवेति न प्रकृतमन्त्रस्य नित्यसूरिसाधकत्वं संभवतीत्याद्याशङ्कां निवर्त्य प्रकृतश्रुतेर्न मुक्त विषयप्रतिपादकत्वमपितु पारिभाषिकनित्यजीवप्रतिपादकत्वमेवेति दर्शयितुमुपक्रमते ननु तद्विष्णोरित्यादि । अयमाशयः-'तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः' अस्मिन् मन्त्रे भगवतः परमेश्वरस्य यत् सर्वमंगलं परमं पदं तस्य

श्रीहनुमदादिक सर्वदा दर्शन करते हैं। इस प्रकृत पद्य में '**यद्वै पश्यन्ति सूरयः**' जिसको सूरिगण सर्वदा देखते हैं यह कहकर '**तद्विष्णोः परं पदम्**' इस श्रुति के अन्तर्गत जो '**सदा पश्यन्ति सूरयः**' यह वाक्य खण्ड है उसका ही व्याख्यान किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि विष्णु पुराण का '**एकान्तिनः सदा ब्रह्म**' यह वचन '**तद्विष्णोः परमं पदम्**' इस श्रुति को दिव्य स्थान परक मान कर के उसका व्याख्यान करता है अतः युक्ति तर्क तथा विष्णु पुराण के मतानुसार सिद्ध होता है कि '**तद्विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः**' यह वेद वचन दिव्य स्थान का वर्णन करता है। अलं विस्तरेण ।

विष्णु पुराणादि अनेक वचन तथा युक्ति तर्कादि बल से परम पद का अर्थ आपने कहा कि दिव्य स्थान ही परम पद वाच्य है तब '**समस्तहेयरहितं विष्णवाख्यंपरमं पदम्**' इत्यादि श्रुतियों से जो बतलाया गया है कि परम पद भगवत्स्वरूप ही है तो इन

॥ परपदस्यत्रिविधतानित्यसूरिविषयेचप्रमाणोपन्यासः ॥

अथैवमपि 'तद्विष्णोः परमं पद'मित्यत्र परमपदमिति वच नेन परस्य विष्णोः स्थानविशेषो न प्रतिपादितो भवति किन्तु भगवतो

ये सर्वदादर्शनशीलास्तेषामेव कथनं विद्यते । सदा भूतभविष्यवर्तमानकाले दर्शनवत्वं नित्यजीवानामेव न तु मुक्तजीवानाम् । नित्यमुक्ता हि कालपरिच्छेदरहिता भवन्ति तेषां सर्वविषयकप्रत्यक्षज्ञानं सर्वदैव भवतीति ते, नित्यजीवा एव भगवत् पदस्य सदादर्शनशीला भवन्ति । मुक्तजीवास्तु न सदा दर्शनशीलाः परमपदस्य अपितु यदा संसारबन्धनरहिता भवन्ति तदैव परमपददर्शनाधिकारिणो भवन्ति कालपरिच्छिन्नत्वात् न तु ततः पूर्वं तदधिकारिणः परन्तु मुक्तो जीवो बन्धनाद्विमुच्य परमं पदमासादयति तदैव च परमं पदं पश्यति न ततः पूर्वम् । संसारेऽवस्थानसमये तेषामस्मदादिवत् परमपदं नो दृष्टं भवति । ये च नित्यसूरिगणास्ते संसारं नासादितवन्तो नासादयिष्यन्ति न वा वर्तमाने संसारे विद्यन्ते कालापरिच्छिन्नत्वेन संसारबन्धने नागच्छन्ति किन्तु सर्वदैव साकेतामधिष्ठायैवस्थिता भवन्ति । तस्मात् तद्विष्णोः परमं पदंनित्यमुक्तमेव जीवविशेषं प्रतिपादयति, तत्रैव तस्य तात्पर्यात् । न तु मुक्तजीवबोधने तदीयं तात्पर्यं तेषां सदा परमपददर्शनानुपत्तेः ।

ननु 'तद्विष्णोः परमं पदमिदमित्यादिश्रुतिर्न नित्यमुक्तं जीवं साधयति

सब वचनों की क्या गति होगी । तथा परस्पर विरोध का समाधान किस तरह होगा ? इत्यादि प्रश्नों का समाधान करने के लिये आचार्य बतलायेंगे कि परम पद तीन अर्थ में प्रयुक्त होता है एक तो स्थान अर्थ में दूसरा परिशुद्धात्मक स्वरूप में तीसरा भगवत्स्वरूप में । ये तीनों परम प्राप्य होने से परम पद कहलाते हैं इत्याद्यनेक पदार्थ जो प्रसंगोपात्त आ जायेंगे उन सबको बतलाने के लिये उपक्रम करते हैं '**अयंभावः क्वचित् परमपदशब्देन**' इत्यादि ।

सात्विक वैष्णव पुराणादि ग्रन्थों में तीन प्रकार के परम पद का वर्णन किया गया है वह तत्तद् ग्रन्थों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है। सर्व प्रथम परम पद दिव्य स्थान अर्थ में प्रयुक्त है जिस दिव्य स्थान परक परम पद का वर्णन '**एकान्तिनः सदा**

दिव्यात्मरूपमेव प्रतिपादितो भवति । समस्तहेयरहितं विष्णवाख्यं परमं पदमित्यादिस्थलेऽपि विष्णुपरमपदयोरभेदस्यैव प्रतिपादनादिति चेत्सत्यम्'क्षयन्तमस्य रजसः पराके''तदक्षरे परमे

किन्तु मुक्तजीवप्रवाहमेव साधयति तावतापि तस्याः सार्थकत्वसंभवात् । यद्यपि प्रत्येकमुक्तः सदा परमं पदं न पश्यति तथापि तदीयप्रवाहस्य तत्संभवात् । अतः प्रकृतश्रुतिर्मुक्तप्रवाहमेव प्रतियादयति, इत्येव वक्तव्यम् । न तु प्रकृतमन्त्रेण नित्यसूरिगणस्य 'सिद्धिरित्याशङ्कां निराकृत्य प्रकृतमन्त्रेण नित्यसूरेरेव सिद्धिर्नतु मुक्तप्रवाहस्येति दर्शयितुं प्रक्रमते तद्विष्णोः परमं पदमित्यादिश्रुतेर्मुक्तप्रवाह इत्यादि । प्रकृतमन्त्रो मुक्तप्रवाहं विनिवेद्यापि यदा चरितार्थतां लभते तदा तदंशमात्रप्रतिपादनेन क्षीणशक्तिकः कथं सूरिगण-मावेदयेत् । अर्थात् प्रकृतमन्त्रेण नित्यसूरिणः सिद्धिर्न भवति किन्तु मुक्तप्रवाहस्य सिद्धिर्भवतीति 'लशुनभक्षणे कृतेपि न व्याधिः शान्तः' इति न्याय आपतति सिद्धान्तवादिन इतिप्रश्नाशयः ।

एतत् समादधति सदा पश्यन्तीत्यत्रैकर्तृविषयकत्वप्रतीतेरिति । अयमाशयः-प्रकृतमन्त्रः परमपदस्य सदा दर्शनशीलं व्यक्तिविशेषमेव

ब्रह्म ध्यायिनः' इस श्लोक में तथा 'ताद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादि श्रुतियों में उपलब्ध होता है । द्वितीय परम पद वह है जो परिशुद्ध जीवात्म स्वरूप है तथा प्रकृति के ऊपर है अर्तात् प्रकृति संबन्ध रहित है । जिसका इस पुराण वचन में वर्णन है 'सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैवं संप्रवर्तते । गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्यां गुणं महदिति ।' अर्तात् सत्व गुण रजो गुण तथा तमो गुण के आविर्भाव तिरोभाव के अनुसार सर्गस्थिति तथा प्रलय के कालों में जीवात्मा की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती हो अर्थात् जब सत्वगुण तथा तमो गुण को अभिभूत करके जब रजोगुण उद्भ्रत होता है तब सर्ग होता है । जब रजोगुण तमो गुण को अभिभूत करके सत्व गुण अभिवृद्ध होता है तब जगत् की स्थिति रहती है और जब सत्व गुण तथा रजो गुण को अभिभूत करके तमो गुण ऊर्ध्वमुख होता है तब जगत् का प्रलय होता है । अन्यत्रापि कहा है

'रजोयुषे जन्मनि सत्ववृत्तयेस्थितौप्रजानांप्रलयेतमः स्पृसन् ।

व्योमन्' 'योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्' 'यो वेद निहितं गुहायां परमेव्योमन्' इत्याद्यनेकस्थलेषु स्थानमेव परमपदेन दर्शितं नतु दिव्यात्मरूपम् किञ्च 'तद्विष्णोः परमं पदमित्यत्र षष्ठीनि-र्देशेनोभयोर्भेदप्रतिपादनाच्च । 'समस्तहेयरहितं विष्णवाख्यं परमं

प्रतिपादयति । स्वरसतः प्रकृतमन्त्रस्यायमेवार्थो भवति यत् प्रत्येकसूरि-व्यक्तयः सदैव पश्यन्ति । यद्यपि प्रवाहरूपेण सन्ति बहवो मुक्तास्तथापि ते प्रत्येकं न केऽपि सदा दर्शनशीलाः किन्तु यदायो मोक्षं यास्यति तदैव स द्रक्ष्यति पदं न ततः पूर्वं पश्यति । सूरिगणस्तु सर्वोपि सदा पश्यन्त्येव संसारसंबन्धस्य सर्वदैव तेष्वभावात् । मुक्तेभ्यः सूरिगणा विभिन्ना एव । यदि प्रकृतश्रुतिर्मुक्तविषयेति कदाचिन्मन्यते तदा श्रुतेः स्वाभाविकत्वं भज्येत । यद्यपि कार्यार्थवादिनां मते सर्वोऽपि वेदः कार्यार्थपरक एव तथापि ते कर्मोपयोगिनां मन्त्रार्थवादादिप्राप्तानां सिद्धार्थकानामपि सिद्धिः स्वीकृतैव । तथैव प्रकृते सिद्धोऽपि परमपदसूरिगणादिकोऽर्थः प्रकृतश्रुत्या प्रतीतो भवत्येव । सिद्धान्ते सिद्धवस्तुन्यपि पदस्य सामर्थ्यं युक्त्या साधितं स्वीकृतं चापि । अतः सिद्धान्तानुसारेण परमपदं नित्यसूरिगणादिरूपस्यार्थस्यसिद्धौ न किमपि बाधकमिति संक्षेपः ।

ननु गतप्रकरणे 'तद्विष्णोः परमं पदमित्यादिना परमपदेन स्थानविशेषस्य

अजायसर्गस्थितिनाशहेतवे तमोगुणाय त्रिगुणात्मने नमः ।।'

इस प्रकार जीव की तीन प्रकार की प्रवृत्ति होती हैं । और जीवात्माका जो स्व कीय परिशुद्ध स्वरूप है वह तो इन सत्वादि गुण त्रय से रहित है तथा महान् है यह भी प्राप्य होने से परम पद है जीवमात्र स्वकीय शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने की सर्वदा इच्छा रखता है ।

और तृतीय परम पद वह है जो कि प्राकृतिक सर्वदोष रहित परम पुरुष स्वरूप है जिस परम पद को 'विष्णु' ऐसा कहा गया है । इस तृतीय पद का प्रतिपादन 'समस्त हेय रहितं विष्ण्वाख्यं परमं पदम्' इस विष्णु पुराण के वचन से प्रतिपादन किया हैं । इस प्रकार से सिद्धान्त में तीन प्रकार का परम पद बतलाया गया है । ये तीनों ही परम प्राप्य होने से परम पद कहलाते हैं । इसमें भगवत्स्वरूप तो परम प्राप्य है इसमें तो किसी को

पद' मित्यत्र विष्णवाख्यमिति विशेषणस्य कथनेन तदन्यदपि परमं पदं विद्यते इतिध्वनितम् । एतदेव परमं स्थानं सूरिभिः प्राप्यते इति कथ्यते । अयंभावः क्वचित् परमपदशब्देन परमस्थानं बोधितं भवति प्रकरणात् । क्वचित्प्रकृतिसम्बन्धरहितजीवात्मस्वरूपं प्रतिपादितं

मुक्तप्राप्यस्यैव ग्रहणमिति प्रतिपादितम्, किन्तु तेन भगवतः परमपुरुशस्य दिव्यात्मस्वरूपस्यैव प्रतिपादनं भवति । तस्य परमप्राप्यत्वेन परमपदवाच्यत्वं भवति । किञ्च 'समस्तहेयरहितं विष्णवाख्यं परमं पदमित्यादि वचनेन सह प्रकृतवचनस्यैकवाक्यत्वेऽयमेवार्थो हस्तगतो भवति, तस्मात् परमपदशब्देन स्थानविशेषस्य ग्रहणं न भवति किन्तु विष्णो दिव्यात्मस्वरूपस्यैव ग्रहणं भवतीत्याशङ्कां निराकृत्य परमपदस्यत्रैविध्यं नित्यसूरौ च प्रमाणं दर्शयितुं प्रक्रमते अथैवमपि तद्विष्णोरित्यादि । अयंभावः- समस्तहेयरहितमित्यादिवैष्णववचने विष्णुपरमपदयोः सामानाधिकरण्यप्रतिपादनेन तयोस्तादात्म्यं प्रतिपादितं भवति । यथा 'नीलो घटः' इत्यादिस्थले सामानाधिकरण्यप्रयोजकसमानविभक्तिकत्वसद्भावेन नीलघटयोरभेदः समुपस्थाप्यते । तत्र अभेदसंबन्धावच्छिन्ननीलत्वावच्छिन्नप्रकारता निरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताशाली अभेदसंबन्धेन नीलप्रकारकघटविशेष्यताकबोधो भवन् तयोरैक्यमेवोपस्थापयति । तथा

विवाद नहीं है । इतर दोनों परम पद भी परम प्राप्य हैं क्योंकि दिव्य स्थान प्राप्ति होने के बाद ही जीव अत्यन्त विशुद्ध होकर भगवत् स्वरूप को प्राप्त कर जाता है जो कि सर्व मान्य परम प्राप्य हैं । तो यहांदिव्य स्थान की प्राप्ति परिशुद्ध जीवात्म स्वरूप प्राप्ति तथा भगवस्त्वरूप प्राप्ति ये तीनो एक साथ ही में होते है । इसमें एक दूसरे को छोडकर के नहीं होते हैं जब होंगे तब साथ में ही होते हैं । इसलिये भगवत्प्राप्ति में इन दोनों प्राप्तियों का अन्तर्भाव हो जाता है सर्व शुभाशुभ प्राकृतिक कर्म राहित्य होने पर विशुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है । इसलिये ये तीनों प्राप्ति एक साथ होने से और सर्वश्रेष्ठ प्राप्ति होने से ये तीनों परम पद शब्द से कहे जाते हैं । विशुद्ध जीव स्वरूप प्राप्ति तथा भगवत् प्राप्ति का प्रतिबन्धक शुभाशुभ कर्म जाल हैं । जब सभी प्रकार के शुभाशुभ

भवति परमपदशब्देन हेतुस्तु पूर्वोक्त एव । क्वचित् स्थलविशेषे भगवतो दिव्यात्मस्वरूपमेव प्रतिपादितं भवति । तत्र 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यत्र स्थानस्य ग्रहणं परमपदेन 'सर्गस्थित्यन्तकालेषु

विष्णुपुराणवचनेन विष्णुपरमपदयोः समानविभक्तिकतया विष्णवभिन्नं परमपदमिति बोधसंभवेन भगवतो दिव्यात्मस्वरूपमेव पदम् न तु परमेश्वर-भिन्नं किंचित्परमपदम् । नच 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादिवाक्ये विष्णुपदोत्तरश्रूयमाणाषष्ठी विभक्तिः स्वप्रकृतिभूतविष्णुं परमपदाद्भिनत्त्येव । यथा 'देवदत्तस्य कम्बलम्' इत्यत्र षष्ठीबलात् देवदत्तकम्बलयोर्भेदस्तथैव प्रकृतेऽपि षष्ठीसमभिव्याहृतविष्णोः परमपदात् भेद एवेति वाच्यम् । राहोः शिर इतिवत् क्वचिदभेदेऽपि षष्ठीविभक्तेः प्रयोगस्य प्रामाणिकत्वात् । तथा च विष्णुपदयोरपि तादाम्यस्य प्रतिपादनेन कथं तयोर्भेदः पूर्वप्रकरणे व्यवस्थापित इति शङ्कितुरभिप्रायः ।

तमिमामाक्षेपमाक्षेसुमाह-सत्यमिति नायमाक्षेपो युक्तः कुतः ? अनेक श्रुतिप्रतिपादितत्वात् । श्रुतिरेवोदाहरति-'क्षयन्तमस्यरजसः पराके' अस्य रजसः अर्थात् रजोगुणोपलक्षितसत्वरजस्तमोगुणात्मकप्रकृत्यपरपर्यायस्य प्रधानस्य

कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं तब परिशुद्ध जीवस्वरूप प्राप्ति तथा भगवत्स्वरूप प्राप्ति ये दोनों साथ ही में होते हैं । इन दोनों प्रकार की प्राप्ति तब होती है जब दिव्य स्थान की प्राप्ति हो जाती हैं । तब इन प्राप्तियों में अति सूक्ष्म का अन्तर होने से ये तीनो एक साथ में होते हैं ऐसा कहा जाता है ।

छान्दोग्य आदि उपनिषद् ग्रन्थों में कहा है '**ते इमे सत्यादिकाः कामा अनृता पिधानाः**' अर्थात् जो ये सब परमेश्वर के सत्य संकल्पादिक अनन्तकल्याण गुण समुदाय हैं वे सब अनृत पदवाच्य जैव कर्मों से आच्छादित हैं अतः बद्धजीवों को उन कल्याण गुणों का अनुभव नहीं होता है । जिस तरह पृथिवी में किस जगह कौन सुवर्ण रत्नादिक निहित है इस बात को नहीं जानने वाले निधिशास्त्र के अज्ञाता पुरुष यह नहीं समझता है । भले ही निधि निहित पृथिवी के ऊपर में बारंबार चलता रहता है उसी तरह सर्वशेषी सर्वान्तर्यामी महापुरुष सर्वत्र जड चेतन में विद्यमान है परन्तु जीव कर्मों से

त्रिधैवं संप्रवर्तते' गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्यागुणं भवत्' अत्र प्रकृतिवियुक्तजीवात्मस्वरूपं प्रतिपादितं भवति । तथा 'समस्तहेयरहितं विष्णवाख्यं परमं पदम्' अत्र तु भगवत्स्वरूपं परमं

पराके ऊर्ध्वस्थाने क्षयन्तं निवासं कुर्वन्तं भगवन्तं पश्यतीति शेषः । ['अन्योन्यमिथुनाः सर्वे सर्वे सर्वत्रगामिनः । रजसोमिथुनं सत्वं सत्वस्य मिथुनं रजः । उभयोः सत्वरजसोर्भिथुनं तम उच्यते । नैषामादिः संप्रयोगो वियोगोवोपलभ्यते' इत्यादिवचनप्रामाण्यात् 'रजसः पराके' इत्यत्र रजः पदस्य सत्वाद्युपलक्षकत्वं कथितमिति] 'तदक्षरे परमे व्योमन्' अविनाशिनि परमाकाशे भगवतो वसतिरित्यर्थः । 'योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्' इदं पदोपात्तस्य जडचेतनस्थूलसूक्ष्मसाधारणस्य जगतोऽध्यक्षः सर्वशेषसर्वनियामको भगवान् सीतानाथः स परमाकाशेऽधितिष्ठतीत्यर्थः । 'यो वेदनिहितं गुहायां परमेव्योमन्' यो हि साधकः परमात्मानं हृदयगुहायामवस्थितं ज्ञात्वा तदुपासनं करोति स परमाकाशे गत्वा तत्र सर्वकल्याणगुणैः सह परमात्मानमनुभवतीत्यर्थः । एभिर्वचनैः श्रौतैर्भगवतो निवासस्थानं ततो भिन्नं किञ्चित् कुत्रचिद्विद्यते इति गम्यते, गृहे देवदत्त इति वदाधाराधेययोर्भिन्नत्वात् । नैतादृशस्य

आच्छादित होने के कारण सबसे प्राप्त नहीं होते हैं । परन्तु जब साधक साधना करता है तब उस साधना से सर्व कर्म को विनाशित करके परिशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता हुआ दिव्य स्थान को प्राप्त करता है तथा अनन्त कल्याण गुण सहित परमात्मा का भी अनुभव करता है । यह आच्छादक कर्म जीव संबन्धी है जड़ का अथवा भगवान् का नहीं है इसमें विष्णु पुराण का वचन प्रमाण है 'अविद्या कर्म संज्ञान्या तृतीयाशक्तिरिष्यते । यया क्षेत्रज्ञ शक्ति सा वेष्ठिता नृप सर्वगा ॥ संसारतापानखिलानवाप्नोत्यति संततान् । तया तिरोहितत्वाच्च संसारमधिगच्छति ॥' अर्थात् शुभाशुभ कर्म नाम वाली एक यह तीसरी शक्ति शास्त्र में मानी जाती है । हे नृप राजन् ! सर्वत्र व्याप्त हो करके रहने वाली यह जीवात्म शक्ति जिस कर्म नामक अविद्या से बद्ध वेष्ठित हो करके जल प्रवाहवत् (लगातार) होने बाले सब प्रकार के संसार ताप को भोगती है । अर्थात् कर्म जनित नर तिर्यगादि देव नारकादि दुःख का सर्वदा जीव अनुभव करता रहता है तो

पदमित्यनेन कथितं भवति । तदेवमेतानि त्रीण्यपि परमपदवाच्यानि भवन्ति । एतेषां त्रयाणामेकरूपेण कथं परमप्राप्यत्वमिति नाशंकनीयम् । भगवतो दिव्यात्मस्वरूपस्य परमप्राप्यत्वमिति

श्रुतिप्रमाणसिद्धस्य भगवद् व्यतिरिक्तस्य भगवदाधारभूतस्यापलापः कर्तुं शक्ष्यति, श्रौतप्रमाणसिद्धतदितरप्रमाणासिद्धधर्माधर्मादिवदिति । एवंस्थिते 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इत्यादिरपि विष्णोरित्यत्रषष्ठ्यः प्रयोगं कृत्वा विष्णुभिन्नं परमं स्थानं बोधयन्ति केन स्वार्थात्प्रच्याव्येत, अनेकविरोधस्यान्याय्यत्वात् । न चोक्तवचनप्रामाण्यादेव षष्ठ्यभेदप्रतिपादिकाया सत्वेपि राहोः शिरः इति वदभेद एव कुतो नेति मैवं वोचः क्वाचित्कत्वादभेदे षष्ठ्यः । किञ्च 'विष्णोः परमं पदम्' इत्यत्र परमपदस्य विष्णोरिति विशेषणम्, विशेषणं स्वेतरभेदकंभवति पीतादिव्यावर्तकनीलादिवत् । तत् द्वितीयं परमं पदं दिव्यस्थानमेवेति वैष्णवपुराणाभिप्रायः । अन्यत्रापि तथैवोक्तंदिव्यस्थानप्रापकंवचनम् ।

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनोयोगिनो हि ये । तेषां तत् परमं स्थानं यद्वै

उपर्युक्त इसवचन से सिद्ध होता है कि संसार का मूल कारण कर्म है जिसका दूसरा नाम अविद्या है । 'प्रकारे विकारस्तथा चित्रसृष्टौ च हेतुर्यतः प्राणिनां प्राच्य कर्म' इत्यादि रूप से जगद्गुरुश्रीश्रुतानन्दाचार्यजी ने भी संसार कारण कर्म को ही स्थिर किया है । और जब सभी प्रकार का सर्व कर्म सर्वदा विनष्ट हो जाता है तब विशुद्ध जीव स्वरूप प्राप्ति तथा परमेश्वर प्राप्ति सिद्ध होती है । और जब जीव दिव्य स्थान में पहुंचता है तब ही भगवत्प्राप्ति होगी । अतः परिशुद्ध जीवात्म स्वरूप भगवत्स्वरूप तथा दिव्य स्थान इन तीनों को परम पद शब्द से कथन किया गया है । यह उपर्युक्त विषय 'क्षयन्तमस्य रजसः पराके' अर्थात् सत्वरजस्तमोगुणमयी प्रकृति को अतिक्रमण करके उसके ऊपर में एक दिव्य स्थान है उसमें परमेश्वर का निवास है 'क्षयन्त मस्य रजसः पराके' इस मन्त्र में रजः पद सत्व तम का भी संग्राहक है । क्योंकि एक गुण का अवस्थान तदितर गुणद्वय के बिना असभवित है 'अन्योन्यमिथुनाः सर्वे' ऐसा वचन है । एतादृश गुणत्रयबती प्रकृति जीवात्मा का भोग्य है 'अजोह्येको जुषमानोऽनुशेते' इति वचनात् । और एतादृश प्रकृति मण्डल के ऊपर भाग में परम

सर्वानुभवमेव ततस्तथात्वम्, द्वितीयतृतीययोरपि भगवत्परमेश्वरप्राप्तिमूलकत्वादेव परमपदत्वम्। एवं सर्वकर्म-रहितजीवात्मस्वरूपप्राप्तिमूलैव भवति। तथा च श्रुतिः 'ते इमे

पश्यन्ति सूरयः ॥

अस्यार्थः-एकान्ते वसतोऽनन्यचेतसो ये योगिनः सदा सर्वब्रह्मध्यायिनः परमात्मन उपासनं कुर्वन्ति ते ध्यायिनस्तत परमस्थानं प्राप्नुवन्ति यस्य परमस्थानस्य सूरयो नित्यमुक्ताः पश्यन्ति। अर्थात् यादृशस्थानस्य नित्यमुक्तैर्दर्शनं तादृशंपरमस्थानमेव परमात्मोपासनपरा अपि पश्यन्तीत्यर्थः। अत्र श्लोके 'यद्वै पश्यन्ति सूरयः' इति कथयित्वा श्रुत्यन्तर्गता सदापश्यन्ति, इत्यस्यैनं व्याख्यानं कृतम्। विष्णुपुराणानुसारेण 'तद्विष्णोः परमं पदम्' इति श्रुतिर्भगवतो दिव्यस्थानस्यैव स्वरूपं प्रतिपादयतीति। तदेतत्परमं पदं त्रिप्रकारकमिति वैष्णवादिपुराणेषु गीतम्। तदेव दर्शयितुमाह 'अयंभावः' इत्यादि।

पुरुष श्रीराम का निवास स्थान साकेत है जिसका दिव्य स्थान तथा वैकुण्ठ इत्यादि नाम है।

उपर्युक्त अर्थ अन्य मन्त्र से भी सिद्ध होता है '**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य-वर्णं तमसः परस्तात्**' इसका यह अर्थ है तम अर्थात् गुणत्रयवती प्रकृति के ऊपर आदित्यवर्ण वाले अर्थात् सूर्य के समान अति दीप्त वर्ण वाले इस महापुरुष श्रीसीतानाथ को मैं उपासक पुरुष जानता हूं अर्थात् इसी महापुरुष को अर्चनस्तवनादि से प्रसन्न करने का प्रयास करता हूं। इस मन्त्र में तम पद गुणत्रयवती प्रकृती का सङ्ग्राहक है एक गुणका स्वातंत्र्येण अवस्थान अशक्य है। '**क्षयन्तमस्य रजसः पराके**' इस मन्त्र के साथ 'आदित्य **वर्णं तमसः परस्तात्**' इत्यादि मन्त्र की एक वाक्यता करने से मिलित मन्त्र का गुण त्रयमयी प्रकृति के ऊपर निवास करने वाले आदित्य सदृश भाष्वर रूप वाले महापुरुष श्रीसीतानाथ को मैं जानता हूं अर्थात् उनका मैं उपासन करता हूं ऐसा अर्थ होता है।

'**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' '**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्**' '**तदक्षरे परमे व्योमन्**' उपर्युक्त विषय केवल वचनों से ही सिद्ध होता है ऐसा नहीं किन्तु यह परम

सत्याः कामा अनृतापिधाना' इत्यादिस्थले भगवतः परमेश्वरस्य गुणगणस्याच्छादकत्वेनानृतपदेन जैवीयकर्मणः कथनात्। कथमित्थमिति चेत्? 'अविद्याकर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते। य या क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टितानृप सर्वगा। तथा 'संसारता-

यदेतत्भगवत्स्वरूपव्यतिरिक्तपरमं पदं तत् त्रिविधम् तथाहि-तत्रैकं परमं पदं दिव्यस्थाननामकम् यद्वर्णनमकारि एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनः इत्यादिविष्णुपुराणवचनेन। 'तद्विष्णोः परमंपदमित्यादिश्रुत्या चेति। द्वितीयं परमं पदं प्रकृतिबन्धनविमुक्तमत एव परिशुद्धजीवात्मस्वरूपमेव, यत्राह वैष्णवे-

सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैव संप्रवर्तते। गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्यागुणं महदिति ॥ तदयमर्थः- सत्वरजस्तमसो गुणानां प्रवृत्यनुसारेण सर्गस्थितिप्र-लयकालेषु जीवात्मनां त्रिप्रकारेण प्रवृत्तिर्जायते। तत्र जीवात्मनः स्वपरिशु-द्धस्वरूपं सत्वादिगुणरहितं महद्भवति तदपि परमपदशब्देनैव शब्दितं भवतीति द्वितीयं परमपदस्वरूपम्। तृतीयं परमपदं तु सर्वदोषविवर्जितं भगवतस्वरूपमिति कथितम्, एतस्य परमपदस्य वर्णनम् 'समस्तदोषरहितं

पद परमव्योम शब्द से वेद में भी प्रसिद्ध है इस बात को बतलाने के लिये आचार्य जी ने उन वेद वचनों को कहा है '**सत्यं ज्ञानमनन्तम्**' इत्यादि ईनका ऐसा अर्थ होता है सत्य ज्ञान तथा अनन्तविशेषण विशिष्ट ब्रह्म प्राणियों की हृदय गुहा में निवास करते हैं इस बात को जो साधक समझता है वह तत्व ज्ञाता पुरुष परमाकाश में पहुंच कर परब्रह्म का स्वरूप तथा गुण से परब्रह्म का अनुभव करता है। उपर्युक्त ब्रह्म सर्वथा विनाश रहित निर्विकार परमाकाश में निवास करता है। '**गुहायां परमे व्योमन्**' '**तदक्षरे परमे व्योमन्**' इन मन्त्रावयवों से सिद्ध होता है कि वह जो परमपुरुष का निवास स्थान रूप है वह दिव्य स्थान निर्विकार होने से परमाकाश शब्द से प्रतिपादित होता है। (जिस तरह भौतिक महाकाश कुछ दूर तक की पृथिवी की धूली से व्याप्त होने से समलंनभः ऐसा व्यवहार होता है तथापि भौतिक महाकाश पृथिव्यादि के धूली संबन्ध का अतिक्रान्त भाग सर्वदा निर्विकार रहता है उसी तरह भगवान् का जो दिव्य

पानखिलानवाप्नोत्यतिसन्ततान् । तयातिरोहितत्वाच्च' इत्यादिवचनप्रामाण्येनापि ज्ञायते यत् अनृतरूपाच्छादकं जीवकर्मैवेति । येयं परस्थानप्राप्तिः सा तु भगवतः प्राप्तिस्त्वैवेति ।

विष्णवाख्यं परमं पदमिति विष्णुपुराणे निरूपितम् । तदेतत् त्रिविधमपि परमपदं परमप्राप्यत्वात्परमपदमिति कथितं भवति । भगवत् स्वरूपमपि परमप्राप्यमिति सर्वसंमतमेव । दिव्यस्थानप्राप्त्यनन्तरमेवात्यन्तविशुद्धो जीवोभूत्वा ततो भगवत्स्वरूपमासादयति । तदेतत् त्रयमपि परमपदमन्योन्यसहचरम् । तत्र भगवत्प्राप्तौ तदतिरिक्तं द्वितयमपि परमपदमन्तर्गतं भवतीति । सर्वकर्मबन्धनरहितो जीवो भगवत्स्वरूपप्राप्तिमादायैव स्वकीयपरिशुद्धस्वरूपमासादयति, तदेतत् त्रितयमपि श्रेष्ठप्राप्यत्वात्परमपदमिति भाष्यते । तत्र परिशुद्धात्मप्राप्तिभगवत्प्राप्त्योः प्रतिबन्धकं शुभाशुभकर्मैव । यदा तु निखिलकर्मापगतं भवति तदैव तादृशोभयप्राप्तीसहैवभवतः । तत्सर्वंदिव्यस्थानगमनान्तरमेव । तदुक्तमुपनिषदि त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानाः (तदेते भगवतः सत्यादिकाः सर्वकामा अनृतेन

स्थान वह विकारत्मक प्रकृति संबन्ध से रहित होने के कारण से भूताकाशोपमान से उपमित होने से सिद्ध होता है कि दिव्य स्थान सर्वदा सर्वथा सर्व विकार रहित होने से परमाकाश शब्द से प्रतिपादित होता है ।) '**तदक्षरे परमे व्योमन्**' इस मन्त्रावयव में दिव्य स्थान को अक्षर अर्थात् जो क्षरसंचरण शील न हो उसको अक्षर अविनाशी कहते हैं ऐसा कहा गया है। इससे सिद्ध हुआ कि सूर्यमण्डलादिक जो प्रतीकोपासना में कहा गया कि भगवान् का स्थान हैं तादृश आदित्य मण्डलादिक को क्षर बिनाशी होने से सूर्यमण्डलादिक का परमाकाश शब्द से कथन नहीं किया जा सकता है क्योंकि भगवान् का जो नित्य अविनाशी दिव्य स्थान निवास स्थान है उसी का परमाकाश शब्द से कथन हो सकता है क्योंकि वहीं अविनाशी हैं सूर्यमण्डलादिक तो सर्ग काल में ही रहता हैं नतु प्रलय कालमें मनु स्मृति में कहा है-

'तदास्तिमितगंभीरं न तेजो न तमस्ततम् ।
अनाख्यमनभिव्यक्तं सा किंचिदवशिष्यते ॥'

'क्षयन्तमस्य रजसः पराके' अत्र रजसा सत्वतमसोरपि ग्रहणम् 'अन्योन्यमिथुनाः सर्वे' इत्यादिना केवलस्यैकस्य क्वचिदवस्थानासंभवात्, प्रकृतिमतिक्रम्य तत ऊर्ध्वस्थाने वसन्तमित्यर्थः

कर्मणाच्छादिताः सन्तः संसारदशायां न प्रत्यक्षा भवन्तीत्यर्थः) कर्मप्रतिबद्धबद्धजीवानां भागवताः कल्याणगुणा न प्रकाशन्ते । यदिदमनृतत्राच्यं तज्जीवकर्मेत्यत्र किंप्रमाणमिति पुराणे वैष्णवे प्रतिपादितम् । तथाहि-

अविद्याकर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते । यया क्षेत्रज्ञशक्तिः सा वेष्टिता नृप सर्वगा ॥ संसारतापानखिलानवाप्नोप्यति संततान् । तयातिरोहितत्वाच्च ॥ इति ॥

(कर्मनामभवतीयमविद्याशक्तिरिष्टाः । यया कर्मनामभवत्यविद्यया प्रतिबद्धो जीवः संसारतापमनुभवतीत्यर्थः) ततश्च संसारकारणकर्मविनाशादेव परिशुद्धात्मप्राप्तिभगवत्प्राप्ती भवतः । दिव्यस्थानप्राप्त्यनन्तरमेव भगवतप्राप्तिरपि भविष्यति अत एव परिशुद्धात्मप्राप्तिभगवत् प्राप्तिदिव्यस्थानानि च परमपदवाच्यानि भवन्ति, तावन्ति, तानि चान्योन्यसहचराणीति । यथोक्तमेतत्सर्वं श्रुतिसिद्धमिति तदुदाहरति 'क्षयन्तमस्यरजसः पराके' (सत्वरजस्तमोगुणमयी त्रिगुणात्मिकां प्रकृतिमतिक्रम्य तदुपरिस्था-

इति एतदन्त प्रकरण से दिव्य स्थानादिकों की सिद्धि को बतला कर के नित्य सूरि का प्रमापक वचन का उद्धरण देते हैं '**यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः**' '**यत्रर्षयः प्रथमजाये पुराणाः**' '**तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते**' '**विष्णोर्यत्परमं पदम्**' अर्थात् यत्र जिस स्थान विशेष में पूर्व पूर्वकालिक साध्य देव गण अर्थात् नित्यसूरिगण रहते हैं एतादृश नाक अर्थात् प्राकृतिक सर्व दुःख रहित दिव्य स्थान है। जिसको लक्षित करके कहा गया हैं **कि 'यन्न दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वः पदास्पदम् ।'** यह वचन देवलोक स्वर्ग और नाक को एक मानकर के कहा गया है अथवा आंशिक सादृश्य लेकर के हैं '**यत्रर्षय**' इति जिस स्थल में प्रथम से ही पहले से ही रहने वाले प्राचीन कालिक द्रष्टा सर्वार्थ को जानने वाले नित्यसूरिगण निवास करते हैं । '**तद्विप्रासः**' इत्यादि सर्वदा जागरण शील अर्थात् अस्खलित ज्ञानवान् मेधावी सर्व दोष रहित नित्यसूरिगण परमेश्वर दिव्य स्थान

प्रकृतश्रुतेरिति । 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्' 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमेव्योमन् तदक्षरे परमे व्योमन्' इत्यादिना भागवतं सर्वविकाररहितरूपमिति

नेस्थितदिव्यस्थाने परमात्मनो निवास इत्यर्थः ।) अत्र मन्त्रे 'रजः पदम्' सत्वतमसोरप्युपलक्षकम् । केवलस्य रजसः पार्थक्येनावस्थानायोगात् । ततश्चत्रिगुणात्मकप्रकृतेरुपरि वसन्तं परमेश्वरम् । इयं च गुणत्रयवती प्रकृतिर्जीवभोग्या भवति । यथा आर्जवरूपलावण्यादिविशिष्टा पत्नी भर्तुभोग्या भवति । एतदुपरिभगवतो निवास इति दिव्यस्थानसिद्धिः ।

अमुं पूर्वोक्तमर्थमन्योऽपि मन्त्रः प्रकाशयति तद्दर्शयति 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (एतं सर्वशेषिणं तमसः त्रिगुणात्मकप्रकृतेः परस्तात् परे निवसन्तमादित्यवद्दीप्यमानं तमोविरोधिनं महान्तं सर्वस्यात्मतया सर्वत्र जडचेतनादिषु स्थितं पुरुषं पुरिशयनात् पुरुषं सर्वान्तर्यामिणं द्विभुजं श्रीसीतानाथं परमपुरुषमहं भक्तिप्रपत्तियुक्तो दासो जीवो वेद उपासीत ध्यानं करोमि वेदनोपासनादेर्ध्यानपर्यायत्वस्य सिद्धान्ते स्वीकारात्, तदाहुर्भाष्यकाराः 'निर्णीत

का सर्वदा स्तवन करते हुए समिन्धते सर्वदा प्रकाशित होते हैं । इन पूर्वोक्त वचनों से नित्य दिव्य स्थान जो कि परमेश्वर का निवास स्थान है तथा नित्यसूरिगणों कि सिद्धि होती है । अलमधिक प्रपंचितेन ।

इसके पूर्व प्रकरण में '**क्षयन्तमस्य रजसः पराके**' '**यत्र पूर्वेसाध्याः सन्ति देवाः**' इत्यादि श्रुतियों से सिद्ध किया कि दिव्यलोक है तथा वह नित्य है । तथा नित्य सूरिगण सर्वप्रथमोत्पन्न हैं तथा वे सब नित्य हैं ऐसा कहा गया है । परन्तु यह कहना तो ठीक नहीं है क्योंकि '**सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म**' अर्थात् उत्पत्ति के पूर्वकाल में अर्थात् प्रलयकाल में एक अद्वितीय ब्रह्ममात्र था, तदन्य कोई भी स्थावर जंगम प्रपञ्च नहीं था । इस श्रुति से सिद्ध होता है कि प्रलयकाल में ब्रह्मातिरिक्त कोई भी प्रपञ्च नहीं रहता है तब आप किस तरह कहते हैं कि दिव्यलोक तथा नित्य सूरिगणनित्य हैं सर्वदैव रहते हैं । तब तो ये सब पदार्थ भी अनित्य हैं ऐसा '**सदेव**' श्रुति

परमव्योमशब्दवाच्यमिति ज्ञातमेव, अक्षरेति विशेषणात्, आदित्यमण्डलादीनां निरासः । 'यत्रर्षयः प्रथमजाये, पुराणा' इत्यत्र तथा 'तद्विप्रासोविपन्यवोजागृवांसः समिन्धते विष्णोर्यत् परमंपदम्'

एवमेवायमर्थो भगवता बोधायनेन पूर्वपक्षोपन्यासपूर्वकप्रतिवचननिचयैः । तथाहि 'सकृत्प्रत्ययं कुर्याच्छब्दार्थस्य कृतत्वात्प्रयाजाजिवत् (बो. वृ.) इत्यादिना पूर्वपक्षमुपन्यस्य समाहितम् 'सिद्धंतूपासनशब्दात्' (बो.वृ.) इति । वेदनमेवोपासनं तु ध्रुवानुस्मृतिरूपमित्यप्युक्तम् 'वेदनमुपासनं स्यात्तद्विषये श्रवणात्' (बो.वृ.) इति । उपासनं तु ध्रवानुस्मृतिरूपमित्यभिहितम् 'उपासनं स्याद्ध्रुवानुस्मृतिर्दर्शनान्निर्वचनाच्च' (बो.वृ) इति । (आनन्दभाष्यम् १।१।१) तं तादृशं पुरुषाकारं परमात्मानं विदित्वाध्यात्वाऽतिमृत्युं मोक्षं साकेतनिवासमिति यावत् एति प्राप्नोति नान्यः पन्था ध्यानोपासनातिरिक्तो भगवत्प्राप्तेः मार्गान्तरं नास्ति न विद्यते) अर्थात् यदिव्यस्थानं गन्तुमीहेत तदा भगवच्चरणारविन्दयोः सेवैव कर्तव्या, नातः परमुपायान्तरं विद्यते इति श्रुत्यर्थः ।) अत्र मन्त्रे-तमसः परस्तादित्यत्र तमः पदेन सत्वादिगुणत्रयविशिष्टाया एव ग्रहणम्, एकगुणस्य कुत्राप्यवस्थानासंभवात् 'अन्योन्यमिथुनाः' सर्वे सर्वेसर्वत्रगामिनः'

से सिद्ध होता है । इस शङ्का का समाधान करने के लिये उपक्रम करते हैं-'**अथैवमपि**' इत्यादि । आप तो कहते हैं कि दिव्यलोकादिस्थान है वह नित्य है परन्तु '**सदेव सोम्येदम्**' (हे सोम्य ! यह परिदृश्यमान चर जगत् अग्रे उत्पत्ति के पूर्व प्रलयकाल में एक अद्वितीय सत् ब्रह्मरूप ही था, अर्थात् ब्रह्ममात्र की सत्ता थी प्रपञ्च नहीं था) इत्यादि । ब्रह्म में जगत्कारणता बोधक वाक्य तो प्रलयकाल में ब्रह्मव्यतिरिक्त सभी पदार्थ के अभाव को बतलाता है तब आप किस प्रकार से कहते हैं कि प्रलयकाल में दिव्यलोक तथा नित्य सूरि प्रभृतिक पदार्थों में नित्यता है । अर्थात् जिस तरह घटादि प्राकृतिक प्रपञ्चके प्रलयकाल में नहीं रहने से नित्य नहीं कहलाता है किन्तु अनित्य है उसी तरह नित्य सूरि प्रभृतिक पदार्थ भी तो प्रलयकाल में नहीं रहते हैं तो वे सब भी नित्य नहीं है अपितु ये सब भी अनित्य हैं । अर्थात् जब '**सदेव**' इत्यादि कारण वाक्य से यह सिद्ध होता है कि सर्ग के पूर्व प्रलयकाल में एक अद्वितीय ब्रह्ममात्र था, प्रपञ्च

इत्यत्रापि ते एव सूरय इति ज्ञातं भवति ।

॥ सदेवेतिश्रुत्यापरमपददिव्यसूर्याद्यभावशंकानिसारः ॥

अथैवमपि 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयम्' इत्यादिकारणवाक्यं प्रलयकाले ब्रह्मव्यतिरिक्तस्य सर्वस्याभावं

इतिप्राचीनात्तके: 'आदित्यवर्णंतमसः परस्तादित्यस्य' 'रजसः पराके' इत्याद्यस्य च मन्त्रस्यैकवाक्यतां कृत्वा तमोमयप्रकृतेरुपरिभागे निवसन्तं परमपुरुषं श्रीसीतानाथमादित्यवर्णं महापुरुषमहं वेद ध्यायामि, इत्यर्थः संपद्यते ।

यदिदं परमंपदं तत् परमव्योमन् शब्देनापि कथितं श्रुतौ-'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमेव्योमन्' 'तदक्षरे परमे व्योमन्' यत् सत्यमसत्यभिन्नं त्रिकालाबाध्यमित्यर्थः, ज्ञानम् ज्ञानवत् 'यः सर्वज्ञः इति श्रुत्यनुरोधात् जडभिन्नम् अनन्तं त्रिविधपरिच्छेदरहितम् । नास्मिन् देशकालवस्तुकृतोऽन्तस्तस्मादनन्तम्, इत्थं भूतं सर्वव्यापकंसर्वस्यवर्द्धकं वा परमात्मानं य उपासकः हृदयगुहायामवस्थितं वेद विजानाति स परमाकाशं प्राप्य ब्रह्मानुभवं करोति, तच्च ब्रह्माविनाशिनिर्विकारे सर्वथा प्राकृतिकविकाररहिते दिव्यस्थाने सदैवावस्थितमित्यर्थः । उपर्युक्ता-

---

का सद्भाव सर्वथा नहीं था। इस स्थिति में परमपद को नित्य किस तरह से कहा जा सकता है। तथा उस परमपद दिव्य लोक में रहनेवाले नित्य सूरिगण को भी अनित्य ही स्वीकार करना चाहिये, अन्यथा इनको यदि नित्यमाना जाय तब तो **'सदेव सोम्येदमग्रे'** इत्यादि कारण वाक्यों से विरोध हो जाता है, यदि विरोध माने तब तो श्रुतियों में परस्पर व्यावर्थकत्व तथा अप्रामाणिकत्व हो जायगा। यहां तक पूर्वपक्ष ग्रन्थ का अनुवाद हुआ। अब इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यजी कहते हैं कि **'सत्यम्'** इति। यह कहना आपका ठीक है कि प्रलयकाल में ब्रह्म व्यतिरिक्त पदार्थमात्र के अभाव होने से नित्यपदार्थ की सिद्धि नहीं होती है, परन्तु **'भावानवबोधादिति'** आपने **'सवेवेत्यादि'** श्रुतिवाक्य के भाव को नहीं जाना तथाहि जिस तरह प्रलयकाल में कर्मपराधीन घटपटादि जगत् नहीं रहता हैं उसी तरह भगवान् में रहनेवाला ज्ञानबलैश्वर्यादिक दिव्यकल्याण गुण का भी अभाव रहता है ऐसा प्रतिपादन तो हो नही सकता है क्योंकि परब्रह्म से भिन्न ब्रह्म

बोधयतीति कथं प्रलयकाले दिव्यलोकनित्यसूरिगणादीनां सिद्धिरिति चेत्सत्यम्, भावानवबोधात् । न हि प्रलयकाले कर्माधीनजगत्वात्, भगवति ज्ञानबलैश्वर्यादिकल्याणगुणादीनामप्यभाव

भ्यामाभ्यां वचनाभ्यां तद्दिव्यस्थानं सर्वविकाररहितत्वात्परमाकाशशब्देन वाच्यं भवति । 'अक्षरे परमे व्योमन्' इतिमन्त्रे तद्दिव्यस्थानमक्षरमर्थात् विनष्टं न भवति नित्यमिति कथनेन सूर्यमण्डलादिकं न परमेश्वरस्थानमादित्यादिमण्डलानां विनाशित्वादत्र चाक्षरेति विशेषणेन नित्यत्वस्य साधनात्परमपदस्येति । अत आदित्यमण्डलादिकं न भगवतो दिव्यस्थानमिति ।

भगवतो नित्यं निर्विकारं स्थानं प्रदर्श्य नित्यसूरिसद्भावावेदकं श्रुतिवचनमुदाहरति-'यत्रपूर्वे साध्याः सन्ति देवाः' यत्रर्षयः प्रथमजायेपुराणाः' न विप्रासोविपन्यवो जागृवांसः समिन्धते' विष्णोर्यत् परमं पदम्' यत्रस्थानविशेषे पूर्वेप्राचीनकालीनाः साध्या देवा अर्थात् नित्यसूरिगणाः प्रतिवसन्ति । तत् 'नाकं' सर्वदुःखरहितं दिव्यमेकं स्थानमस्तीति । यत्र स्थानविशेषे प्रथमत एव पुराणानित्यसूरयः सन्तीति । विप्रासोमेधाविनः विपन्यवः स्तुतिकर्तारो जागृवांसः

समवेत जो भगवान् के कल्याण गुणगण हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप में ही अन्तर्गत हैं । प्रलयकाल में जो अभाव समझाया जाता है वह तो कर्मपराधीन प्रकृतिजनित लौकिक पदार्थों का ही अभाव बोधित होता है। और नित्यसूरि प्रभृतिक जो पदार्थ हैं वे तो शुभाशुभ कर्म जन्य नहीं है किन्तु वे सब नित्य हैं। (अर्थात् प्रलयकाल में ब्रह्ममात्र की सत्ता थी, प्रपञ्च कोई भी नहीं था, यह यद्यपि कहना ठीक है परन्तु इससे ऐसा नहीं मान सकते हैं कि प्रलय कालिक ब्रह्म में ज्ञान बल ऐश्वर्य प्रभृतिक कल्याण गुण नहीं था क्योंकि ये सब कल्याण गुण ब्रह्म स्वरूप के अन्तर्गत हैं तब ब्रह्मवत् ज्ञानादिक कल्याण गुण का अभाव नहीं कहा जासकता हैं क्योंकि प्रलयकाल में भी ब्रह्म कल्याण गुण तदा मंगलमय विशेषण समुदाय से युक्त ही रहते हैं। कल्याण की तरह दिव्यस्थान तथा नित्य सूरि प्रभृतिक भी परमेश्वर के मंगलमय विशेषण हैं। तब **'सदेवेत्यादिक'** कारण वाक्य यही सिद्ध करता है कि प्रलयकाल में कर्मपराधीन जो जीव बद्ध है तथा वद्धजीव का जो उपभोग्य पदार्थ एवं तदुपकरण इन सब का अभाव

इतिप्रतिपादयितुं शक्यं ब्रह्मव्यतिरिक्तज्ञानबलादिदिव्यगुणानां ब्रह्मस्वरूपान्तर्गतत्वात् । अभावस्तु कर्मवशप्राकृतलौकिककवस्तुनामेवाभावबोधनात् नित्यसूरिप्रभृतिपदार्थास्तु न कर्मवशा

सदा जागरणशीलाः अस्खलितविज्ञानाः सन्ति ये ते एव विष्णोः पदं सदा स्तुवन्तः समिन्धते देदीप्यमाना भवन्तीति तदत्रानुसन्धेया अथर्ववेदीया इमे मन्त्राः 'यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनामृतां पुरम् । तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः । न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा । पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ अष्ट चक्रानवद्वारादेवानां पूरयोध्या । तस्यां हिण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥ तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरेत्रिप्रतिष्ठिते । तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम् । पुरीं हिरण्ययीं ब्रह्माविवेशापराजिताम् ॥' (अथर्व (१०।१।२।२९-३३) । एभिः प्रमाणैर्दिव्यश्रीअयोध्यादिस्थानस्य नित्यसूरिगणस्य तन्नित्यत्वस्य च सिद्धिर्भवतीति संक्षेपः ।

रहता है परन्तु नित्य सूरिगण का प्रलय में अभाव नहीं रहता है क्योंकि नित्य जीव पराधीन नहीं होते हैं वे तो '**सदा पश्यन्ति सूरयः**' इस वचन के अनुसार सर्वदा सर्वज्ञ हो करके ही रहते हैं। कदाचिदपि कर्म पराधीन नहीं होते हैं। '**सदेव सोम्येदम्**' इत्यादि वाक्यों से दिव्यस्थान तथा नित्य सूरिगण का अभाव प्रलयकाल में विवक्षित नहीं हैं किन्तु प्रययकाल में प्राकृत प्रपञ्च का अभाव रहता है एतावन्मात्र विवक्षित है।) अपि च '**अपहत पाप्मेत्यादि**' श्रुति वाक्य परमेश्वर के नित्यभोग्य तथा भोगोपकरण पदार्थ को सिद्ध करता है, क्योंकि इस उपर्युक्त वाक्य में '**अपहत पाप्मा**' से आरंभ करके '**अपिपासः**' एतदन्त विशेषणों से कहा गया कि भगवान् श्रीसीतानाथ में 'पाप से लेकर के पिपांसान्त दोष समुदाय नहीं रहते हैं। किन्तु उपर्युक्त दोष भगवान् की लीला में उपकरण जो प्रकृति तज्जनित पदार्थ तथा बद्ध जीवों में होता है। इस तरह भगवान् में उपर्युक्त दोषों का निराकरण करके एतद्वाक्य घटक '**सत्यकाम**' पद से यह बतलाया जाता है कि भगवान् के समीप में नित्य सभी भोग्य भोगोपकरण विद्यमान रहते हैं। तथा भगवदपेक्षित भोग्यभोगोपकरण पदार्थ का इच्छा रखते हैं, सभी पदार्थ

अपितु नित्या एवेति । अपि च अपहतपाप्मेत्यारभ्य सत्यकामः सत्यसङ्कल्प इत्यत्र श्रुत्या हेयगुणानां प्रतिषेधं कृत्वा सत्यकामत्वसत्यसङ्कल्पत्वाद्यनन्तकल्याणगुणानां भगवति प्रतिपादनात् ।

ननु गतप्रकरणे 'क्षयन्तमस्यरजसः पराके' 'तदक्षरे परमे' इत्याद्यनेकश्रुतिवचनैः परमपदंनित्यसूरिगणादीनां च सत्वं व्यवस्थापितम् । परन्तु तन्न युक्तम् ।

'सदेवसोम्येदमग्रे आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादिकारणवाक्येन प्रलयकाले ब्रह्मव्यक्तिरिक्तस्य सर्वस्यासत्वमेव प्रतिपादितं भवतीति कथमुच्यते दिव्यलोकस्य नित्यसूरिगणस्य च नित्यत्वं तदा सर्वासत्वप्रतिपादककारणवाक्यव्याकोपः प्रसज्येत इत्याशङ्कां निराकर्तुं प्रसङ्गागतमन्यत्सर्वं प्रकरणप्रतिपाद्यार्थान्तशदिकं दर्शयितुं प्रक्रमते अथैवमपि इत्यादि । 'क्षयन्तमस्य रजसः पराके' इत्यादिवाक्य 'सदेवेत्यादिकारणवाक्ययोः सत्वासत्वप्रतिपादकयोः परस्परविरुद्धार्थप्रतिपादकतयैकस्य बाधितार्थकत्वमप्रामाण्यं चापतेदिति प्रश्नाशयः ।

सत्य नित्य रहते हैं। संसारिक भोग्य भोगोपकरण पदार्थ भी प्रमाण सिद्ध होने से सत्य ही हैं परन्तु ये सत्य होने पर भी नित्य नहीं हैं किन्तु विनाशी हैं और जो स्थायी नित्य पदार्थ हैं वे भी सत्य ही हैं। एतादृश स्थायी तथा नित्य भोग्य एवं भोगोपकरण पदार्थ भगवान् के समीप में असंख्य हैं अतः श्रुति वाक्य ने भगवान् को सत्यकाम कहा है। तथा भगवान् सत्य सङ्कल्पवान् भी हैं। यद्यपि इस प्रकार से भगवान् के समीप में अतिविलक्षण नित्यानन्तभोग्य भोगोपकरण योग्य अनेक पदार्थ सर्वदा विद्यमान रहता है तथापि भगवान् स्वकीय सत्य सङ्कल्प के बल से अपरिमित संख्यातीत अपूर्व पदार्थों का निर्माण करने में सर्वथा समर्थ हैं यह सत्य सङ्कल्प का अर्थ है। सत्य सङ्कल्प शब्द से सिद्ध होता है कि भगवान् की त्रिपाद विभूति के अन्तर्गत वैकुण्ठलोक प्रभृतिक अचेतन पदार्थ हैं तथा नित्यसूरि तथा मुक्त जीव चेतन पदार्थ हैं। इसमें कितने तो स्थायी हैं और कितनो तो उत्पादविनाशशाली हैं, ये सब त्रिपाद् विभूति के स्थिर पदार्थ हैं। तथा परमेश्वर के भोग के वर्द्धक हैं अतः भोगोपकरण कहे जाते हैं। एवं भगवान् की लीला

लीलोपकरणविभूत्युपकरणभूता नित्या अनित्याश्च वहवस्तत्र सन्ति। अनित्येष्वपि केचनस्थिराः केचन अस्थिराः परन्तु तेषां स्वरूपस्थितिप्रवृत्तिभेदादिकं सर्वं भगवदधीनमिति सत्यसङ्कल्प

उत्तरयति-सत्यं भावानववोधात् इत्यादि, भावानववोधादिति 'सदेव सोम्येदमग्रे आसीत् एकमेवाद्वितीयम्' (हे सोम्यश्वेतकेतो ! इदं परिदृश्यमानं कर्मपराधीनं जगत् स्थावरजङ्गमादिकम् अग्रे उत्पत्तेः प्राक् पूर्वकाले प्रलयकाले इतियावत् एकमेकमेव अद्वितीयं समाभ्यधिकविर्जितं सजातीयद्वितीयरहितं सहायकरहितं वा ब्रह्मैवासीदित्यर्थः ।) इत्यादिश्रुतेर्भावस्याभिप्रायस्यानववोधादपरिज्ञानात् । अर्थात् प्रकृतश्रुतेरभिप्रायं न जानासीति । भावानवोधमेवस्फोरयति नहिप्रलयकाले इत्यादि ।

अयमभिप्राय-सत्यं प्रलयकाले ब्रह्मैवासीत् विकारात्मकः प्रपञ्चो नासीदिति । किमेतावता प्रलयेज्ञानैश्वर्यबलादयोहेयप्रत्यनीकाः भगवति कल्याणगुणा अपि नासन्, कुतः ? ज्ञानबलैश्वर्यादिककल्याणगुणानां ब्रह्मस्वरूपान्तर्गततया निषेधायोगात् । यतः प्रलयकालेऽपि कल्याणगुणास्तथा मंगलमय विशेषणैर्युक्त एवावतिष्ठते भगवान् । यथा कल्याणगुणास्तथा

विभूति में भी चेतन तथा अचेतन पदार्थ हैं उनमें कितने तो स्थायी है और कितने अस्थायी हैं ये सब भगवान् के लीलोपकरण हैं। उपर्युक्त इन सब पदार्थो के स्वरूप, स्थिति, तथा प्रवृत्ति एवं उनमें संभावितभेद प्रभेद प्रभृतिक सब कुछ भगवदधीन है यह सत्य सङ्कल्प पद का अर्थ हैं। इसमें जो कर्मपराधीन पदार्थ हैं उन्हीं का प्रलय में अभाव रहता है। परन्तु ब्रह्मभिन्न सभी पदार्थ का अभाव रहता है ऐसा सदेवेत्यादि कारण वाक्य नहीं कहता है। ऐसा उत्तर आचार्यजी ने दिया।

समुपलभ्यमान जिन वेद शाखाओं में भगवान् के दिव्य विग्रह दिव्य स्थान तथा नित्य सूरि प्रभृतिक जिन पदार्थों का वर्णन किया गया है वे ही दिव्य स्थानादिक पदार्थ समुदाय काल प्रभाव से जो जो शाखा अनुपलभ्यमान हैं उनमें कथित वस्तुओं का वेदोपबृंहणपरक इतिहास पुराण में वर्णन किया है उन इतिहास पुरोणों से भी भगवान् का दिव्य विग्रह दिव्यस्थान सदा भगवद्दर्शनशील नित्य सूरि प्रभृति का वर्णन करने के लिये

इत्यादिश्रुतिर्वदति । तत्र कर्मवशानामेव प्रलयेऽभावो न तु सर्वेषां व्यतिरिक्तानां कारणवाक्येनाभावबोधनमिति संक्षेपः ।

सेतिहासपुराणादिभिः श्रीसाकेतपरधामादीनां समर्थनम्

यो हि विषयः श्रुत्यभिहित इतिहासादिभिरपि स एवार्थः प्रतिपादितो भवति । श्रीमद्रामायणस्योपक्रमे एव कथितम् । 'तौ

दिव्यस्थाननित्यसूरिप्रभृतयोपि मङ्गलमयविशेषणा एव भगवतः । 'सदेवसोम्येदमग्रे' इत्यादिकारणवाक्येनैतदेव सिद्ध्यति यत् प्रलयकाले तस्यैव प्रपञ्चस्याभावो यः प्रपञ्चः कर्मपराधीनजीवेनयुक्तो बद्धजीवानामुपभोग्यश्च । एतावता बद्धजीवानां तदुपभोग्यवस्तूनां प्रकृतिजातप्रपञ्चसमुदायस्यैवाभावो बोधितो भवति । नित्यसूरिदिव्यस्थानादीनामभावो न सिद्ध्यति यत एतेषांनित्यसूरिगणानां कर्मवश्यत्वाभावात्, ते नित्यजीवादयस्तु 'सदा पश्यन्ति सूरयः' इत्यादिवचनेन सदा सर्वज्ञानकर्मपरवशाः एतेषामभावो न 'सदेवसोम्येदमग्रे' इत्यादिना विवक्षितः । उक्तकारणवाक्येन लौकिकप्रलयस्यैवाभावः सिद्ध्यति नत्वप्राकृतिकदिव्य लौकानामभावः प्रसिध्यति लोकोत्तरत्वेन तेषां सर्वदाऽवस्थानादिति ।

उपक्रम करते हैं अर्थात् वेद द्वारा दिव्य स्थानादिक पदार्थों का प्रतिपादन करके वेदैक समधिगम्य ही उपर्युक्त पदार्थ हैं ऐसा नहीं किन्तु इतिहास पुराणों से भी इन अर्थों की सिद्धि होती है '**यो हि विषयः श्रुत्याऽभिहितः**' इत्यादि जो दिव्य स्थानादिक पदार्थ श्रुति से प्रतिपादित हुआ है वे ही सब पदार्थ दिव्यस्थानादिक इतिहास पुराणादिकों से भी प्रतिपादित होते हैं श्रीवाल्मीकि महर्षि ने जो श्रीमद्रामायण नामक वेदोपबृंहणण सर्वेश्वर श्रीरामजी का चरित निरूपणपर ग्रन्थ लिखा है उस ग्रन्थ के उपक्रम में अर्थात् आरंभ में ही कहते हैं कि-'**तौ तु मेघाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ । वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥**' इति ॥ अर्थात् वेदो में अर्थात् ऋग् यजु साम तथा अंथर्व वेदों में परिमिष्ठित अर्थात् पारंगत तथा बुद्धिमान् कुशाग्रबुद्धिक उन लवकुश श्रीराम पुत्र को देख कर के प्रभुः कर्तुमकर्तुं सर्वथा कर्तुं में समर्थ अथवा भगवान् के शरीर रूप

तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ । वेदोपवृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥' तथा 'व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः । अनादिमध्यनिधनो महतः परमोमहान् ॥ तमसः परमोधाता शङ्खचक्रगदाधरः । श्रीवत्सवक्षानित्यश्रीरजय्यः शास्वतोध्रुवः ॥

अपि चेत्यादि '**अपहतपाप्माविजरोविमृत्युर्विशोकोविजिघित्सोऽपिवासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः अर्थात्** स परमात्मा सर्वथा पापरहितो जरारहितो विगतमृत्युर्विशेषतः शोकाभाववान् बुभुक्षा पिपासा रहितश्चेति । प्रकृतमन्त्रेण नित्यभोग्यभोगोपकरणादीनां भगवति सिद्धिर्जायते । तत्र 'अपहतपाप्मेत्यारभ्यापिपासान्तादोषा भगवति नभवन्तीति ध्येयम् । इमे उपर्युक्तदोषाः भगवतो लीलोपकरणप्रकृतिप्राकृतजीवपदार्थेष्वेव भवन्ति न तु परमेश्वरे इति परमात्मनि सर्वान् प्रतिषिध्य 'सत्यकामः' इतिपदं परमात्मनि विद्यमानभोग्यभोगोपकारणादिकं सर्वमपि नित्यमेव यं यं पदार्थविशेषं भोगायापेक्षते तत्सर्वं वस्तु सत्यं नित्यमेव नासत्यं प्रमाणाबाधितत्वात् । सांसारिका अपि भोग्यभोगोपकारणादिकाः पदार्थाः प्रमाणाबाधितत्वात्सत्या एव न तु

वाल्मीकि महर्षि ने अधीत अनधीत वेदों का अर्थ अभिप्राय स्पष्टरूप से अवगत हो जाय इसलिये स्वनिर्मितश्रीमद्रामायण का अध्ययन करा कर के कण्ठ करादिया । इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीमद्रामयण ग्रन्थ का निर्माण वेदार्थ का प्रकाशन करने के लिये हुआ है । इस वात को '**वेद वेद्ये परे पुंसि जाते दशरथे हरौ । वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥**' इत्यादि आगमसे पुस्ट किया गया है ।

एवं उसी श्रीमद्रामायण में आगे यह कहा है कि-

'व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ॥
तमसः परमोधाता शङ्खचक्रगदाधरः ।
श्रीवत्सवक्षाः नित्यश्रीरजय्यः शास्वतोध्रुवः ॥'

अयमर्थः-सन्देहरहित रूप से ज्ञात होता है कि ये भगवान् श्रीसीतानाथ वे परमात्मा ही हैं अर्थात् '**यतो वा इमानिभूतानि**' इत्यादि कारण वाक्य बोधित परमेश्वर

शरानानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रहम् । अन्वगच्छन्त काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥ विवेश वैष्णवं धाम सशरीरः सहानुगः ॥' विष्णुपुराणादिष्वप्ययमेवार्थोमहताप्रक्रमेण कथितः । 'समस्ताः शक्तयश्चैता नृप ! यत्र प्रतिष्ठिता । तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥

केवलाद्वैतमतवन् मिथ्या । किन्तु प्राकृतिकाः सत्या भवन्तोपि न नित्याः किन्तुविनश्वराः ये च स्थायिनोतित्यास्तेपि सत्या एव एतादृशास्थिरास्तथा नित्यभोग्यभोगोपकारणादिका विविधाः पदार्था दिव्यलोके सन्ति अतः परमात्मानं 'सत्यकामः' इतिश्रुतिर्वदति । सत्संकल्पवत्वात्सत्यसंकल्पः परात्मा इतिश्रुतिरेव प्रतिपादयति । यद्यपि परमात्मसमीपेऽत्युत्कृष्टानि नित्यानन्तानि भोग्यभोगोपकारणादीनि वस्तुनि सर्वदा विद्यमानानि तथापि सत्यसङ्कल्पमात्रेणैक परमात्माऽपरिमितान्यपूर्वाणि वस्तुन्युत्पादयति, तादृशं तस्य सामर्थ्यमीश्वरत्वादेव । सत्यपदेन त्रिपाद्विभूतौ दिव्यधामश्रीसाकेतलोके सन्त्यनेकशोऽचेतनाः पदार्थाः चेतनाश्चनित्यसूरिगणाः सन्तीति ध्वनितम् । तेषु पदार्थेषु केचनस्थिराः केचनोत्पादविनाशवन्तः तत्र विभूतौ विद्यमाना उत्पादविनाशशीलाः । तत्रत्या अस्थिरा अपि भावा भगवतो भोगे सहायका एव । अत एव ते भगवतो भोगोपकरणभूताः कथ्यन्ते । लीलाविभूताव-

हैं इसमें कोई संशय नहीं है । जो कि महायोगी सर्वशक्ति संपन्न हैं अर्थात् '**स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च**' इत्यादि श्रुति से बोधित सर्वदा सर्वशक्ति संपन्न होने से सर्वेश्वर हैं '**एष सर्वेश्वरः इत्यादि श्रुतेः ।**' तथा वह '**सनातन**' है अर्थात् काल परिच्छेद रहित हैं जो काल परिच्छिन्न होता है वह पदार्थ कदाचित् नहीं होता है ये तो काल परिच्छिन्न नहीं होने से सर्वदा से एकरूप से अवस्थित रहने से सनातन कहलाते हैं । एवं अनादिमध्यनिधन हैं अर्थात् इसका आदि कोई कारण नहीं हैं इसलिये अनादि कहें जाते हैं इनका मध्य नहीं हैं तथा इनका अन्त अर्थात् विनाश नहीं हैं । तथा महान् रूप से लोक में प्रसिद्ध जो आकाशकालादि शादिक पदार्थ हैं तदपेक्षया भी ये परम महान् हैं अथवा महत्तत्व से भी परम महान् हैं यहां महन् शब्द सूक्ष्म का भी उपलक्षक है, इसलिये सूक्ष्म जोपरमाणु आदि पदार्थ उससे भी परम सूक्ष्म हैं । असंयत मनवाले से गृहीत नहीं होते हैं

मूर्तब्रह्ममहाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः ।। नित्यैवैषाजगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी । यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम । देवत्वेदेवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी । विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येवात्मनस्तनूम् ।। एकान्तिनः सदाब्रह्म ध्यायिनो योगिनोहि

पिकेचनचेतनाः पदार्थाः सन्ति केचन अचेतना स्तत्रापि केचनस्थिरा केचनास्थिरा इमे सर्वेऽपि भगवतो लीलायामुपकरणभूताः । एतादृशसर्वपदार्थस्य स्वरूपस्थितिप्रवृत्तयस्तथाऽवान्तरभेदप्रभेदा परमात्मसङ्कल्पाधीना इतिसत्यसंकल्पपदस्य भावार्थ इतिसंक्षेपः ।

यश्च दिव्यलोकनित्यसूरिप्रभृतिकोऽर्थः श्रुतिषु श्रुतः सोर्थोवेदोपवृङ्हणपरैरितिहासपुराणादिग्रन्थैरपि निवेदितो भवति इति स्थूणानिखननन्यायेन दिव्यलोकादिकानर्थान् प्रसाधयितुमितिहासादिवचनान्युदाहृत्य तद्द्वारा तादृशार्थसाधनायोपक्रमते यो विषयः श्रुत्याभिहितः इत्यादि वेदस्यानेकेशाखाविच्छिन्नमूलाः कालदुर्विपाकात् सत्येपि नाध्ययनादौ प्रचलितास्तत्र प्रतिपादितार्थस्य प्रज्ञापनायेतिहासपुराणादयः प्राचीनसर्वज्ञकल्पऋषिभिः प्रकाशितः । इतिश्रुतिप्रसिद्धार्थस्य पुराणादिनापि साधयति ।

आसीद्वल्मीकप्रभवोमुनिः स च पुरावेदार्थप्रकाशनाय वेदार्थान्संगृह्य श्रीमद्रामायणमकरोत् 'वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।वेदः प्राचेतसादासी-

'अणोरणीयान् महतो महीयान् आत्मास्यजन्तो निंहितो गुहायामिति श्रुतेः ।' तथा '**तमसः**' तमः पद वाच्य जो प्रकृति लौकिक पदार्थो का उपादान कारण उससे पर हैं अर्थात् प्रकृतिबाह्य स्थान में रहते हैं, तथा वे श्रीसीतानाथ धाता हैं अर्थात् प्रत्येक जडचेतन पदार्थ को धारणपोषण करने वाले हैं । तथा ये तत् तत् कार्य सम्पादनार्थ प्रसङ्गोपात्त शङ्खचक्रगदादि को धारण किये रहते हैं । श्रीवत्सवक्षाः इनके वक्षस्थल छाती में श्रीवत्सविराजित रहता हैं। ये सर्वदामहालक्ष्मी श्रीसीता से संयुक्त ही रहते है। ये भगवान् अजेय हैं अर्थात् किसी से भी पराजित होने वाले नहीं हैं तथा निश्चल हैं। एतत् श्लोक घटक '**अनादिमध्यनिधनः**' इस विशेषण से यह सिद्ध होता है कि भगवान्

ये । तेषां तत्परमं स्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः । कला मुहूर्तादिमयश्चकालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः । एवमेव महाभारतादीतिहासेऽपि प्रतिपादितम्-'दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम्, गच्छ प्रभोरक्षचास्मान् प्रपन्नान् कल्पे कल्पे

त्साक्षाद्रामायणात्मना ।।' इत्यागमोक्तेः कृत्वा च महामतिर्लवं कुशं चापाठयत् । तस्य श्रीमद्रामायणस्य प्रारंभे एव कथितं यत् तदिह प्रदर्श्यते-

तौ तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ । वेदोपबृङ्हणार्थायतावग्राहयत प्रभुः ।।

अस्यार्थः-वेदेषु श्रुतिषु परिनिष्ठितौ पारङ्गताविति दृष्ट्वा ज्ञात्वा प्रभुर्वाल्मीकिः प्रभुः परमेश्वरशरीररूपवेदोपवृङ्हणार्थाय स्पष्टरूपेण वेदप्रतिपादितानर्थान् तौ लवकुशौ अग्राहयत् तदध्ययनं कारयामास । वेदार्थप्रकाशनपरान् श्रीमद्रामायणग्रन्थानध्यापयामासेत्यर्थः । एतावताश्रीमद्रामायणस्य निर्माणं वेदार्थप्रकाशनायैवाभवदिति ध्वनितम् । एतावत्पर्यन्तं यस्य यस्य श्रुतिवचनस्योद्धरणं कृतं तेषां स्पष्टरूपेणार्थान् प्रकाशयितुं वक्ष्यमाणश्रीमद्रामायणवचनं दर्शयति-

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः । अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ।।

तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः । श्रीवत्सवक्षानित्यश्रीरजय्यः शास्वतो ध्रुवः।।

अनयोरर्थः एषः प्रत्यक्षतया प्रतीयामानः चाक्षुषप्रत्यक्षविषयः श्रीरामचन्द्रः व्यक्तम् । स्पष्टतया प्रतीयते यदयं परमात्मा सकलजगतः

श्रीसीताकान्त का जो स्वरूप है वह नित्य है अर्थात् तादृश स्वरूप का न तो प्रागभाव होता है न वा तादृश स्वरूप का कभी भी विनाश होता है जिस का प्रागभाव तथा विनाश होता है वह अनित्य कहलाता हैं। और '**शाश्वतः**' जो श्लोक घटक विशेषण है उससे सिद्ध होता है कि भगवान् का गुण विशिष्ट स्वरूप नित्य है अर्थात् जिस तरह भगवान् का विग्रह नित्य है उसी तरह तदीय जो अनन्त कल्याण गुण हैं वे भी सब नित्य हैं अतः गुण विशिष्ट स्वरूप नित्य कहा जाता है । और श्लोक घटक जो '**ध्रुव**' यह विशेषण है उससे सिद्ध होता है कि भगवान् का जो स्वरूप है वह विग्रह शरीर विंशिष्ट रूप से नित्य है अतः भगवान् का स्वरूप साकार कहलाता है न तु निराकार सिद्ध होता

जायमानः स्वमूर्त्या । कालः संपच्यते तत्र न काल स्तत्र वै प्रभुरिति । तथैव श्रीरामप्राप्तिपद्धतौ 'कल्पवृक्षतले चास्ति साकेते ब्रह्मवेश्मनि । सुवर्णमण्डपे यत्र भासुरारत्न वेदिका ॥३६॥ रत्नसिंहासनं यत्र वर्तते सूर्यसन्निभम् । विशालं कमलं दिव्यं सहस्रदलशोभितम् ॥३७॥ अधः स्थितेवितानस्य तत्रसिंहासने वरे । आसीनं परमं रम्यं श्रीरामं

सर्गस्थितिप्रलयकारकः कारणवाक्यप्रतिपादितः सर्वेश्वरः स च महायोगी अर्थात् सर्वशक्तिसंपन्नोऽन्यथा सर्गादिजनकासंभवात् यान् सूक्ष्मस्थूलसाधारणान् पदार्थान् वयं मनसाप्यालोचयितुमसमर्थास्तान् सर्वानेव लीलयैव यथावत् संपादति । 'सर्वाल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् स चराचरान् । पुनरेव तथा स्त्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः' (५।५१।३१) इत्यादिस्त्मेणतत्रैवोक्तेः । तथा 'सनातनः' सर्वदैवस्थितिमान् नतु कालपरिच्छिन्नो येन कदाचिद् भवेत् कदाचिन्न भवेदिति नवः पुराणोवेति कथ्यते । तथा 'अनादिमध्यनिधनः' उत्पत्तिस्थिविनाशरहितः । आदिशब्दः कारणवाची तथा च कारणरहितत्वादनादिर्यो हि कारणवान् स तादृशकारणेन जायमानो भवति । अयं तु कारणरहितत्वादनादिः । 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते' इत्यादिश्रुतेः । अत एव मध्यावसानपरिवर्जितः । न च यद्यपि कारणरहितोऽपि प्रागभावो विनश्यति । तथापि भावकार्यस्य तथाभावनियमात् भवतु नाम कदाचिद-

है। उपर्युक्त क्रम से भगवान् श्रीसीतानाथ का स्वरूप गुण और विग्रह ये सब नित्य हैं ऐसा सिद्ध होता है। एवं '**तमसः परमः**' इस कथन से भगवान् का जो दिव्य स्थान साकेत है वह प्रकृति से परे है अर्थात् अप्राकृतिक लोकोत्तर हैं ऐसा अभिव्यक्त होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीसीतानाथ ही '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**' इत्यादि कारण वाक्य बोधित परमात्मा नहीं है किन्तु परमात्मा श्रीराम के वे सब अवतार हैं। इस बात का '**राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्**' (अथर्व श्रुतिः) इत्यादि श्रुति तथा '**परान्नारायणाच्चापि कृष्णात्परतरादपि । यो वै परतमः श्रीमान् रामोदाशरथिः** स्वराट् (आगम) इत्यादि वशिष्ठ संहिता प्रभृति शास्त्रो से विमुल वर्णन हुआ है इस विषय का हम अन्यत्र

सीयया सह ।३८। दिव्यायुधान्वितं चाथदिव्यपार्षदसंयुतम् । दिव्यभूषणवस्त्रैश्च भूषितं वीक्ष्यतेह्यसौ ॥३९॥ इति । इत्यादीतीहासपुराणादिवचनैः पूर्वप्रदर्शितोविषयः प्रसिद्ध्यति ।

भावस्यानुत्पाद्यत्वेऽपि विनाशो वस्तुस्वभावबलात् । यथा जायमानोपिध्वंसो न पुनर्विनश्यतीति । भावस्तु य उत्पद्यते तस्य मध्यो वा विनाशश्च भवत्येव । परमेश्वरस्तु नोत्पद्यते न वा विनश्यति सर्वेश्वरत्वादेवेति सुष्ठुकथितम् 'अनादिमध्यनिधनः' इति 'महतः परमो महान्' स च सर्वेश्वरः श्रीसीतानाथः महत्वेन प्रसिद्धा ये आकाशादयस्तेभ्योपि महान् अर्थात् लोकेपारिमाणिकमहत्वमाश्रित्याकालादयो महान्तः सर्वेभ्यः पृथिव्यादिभ्यः अयं तु परमात्मा तेभ्योपि महान् 'कालावात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महदिति लोकोक्तिः' । तथाऽयं सूक्ष्मतया प्रसिद्धाणुभ्योप्यतिशयेनाणुः बहिरिन्द्रियाग्राह्यत्वात् 'अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्यजन्तोर्निहितो गुहायामित्यादि श्रुतेः । ततश्चायं परमात्मा सर्वापेक्षया महानिति । एवं सांख्याभिमतमहत्वादपि महानेव परमात्मा न कुतोपि हीन इति ।

विवेचन करेंगे विस्तार से ग्रन्थ गौरवभिया अत्र अलम्।

जिस तरह भगवान् का एक दिव्यस्थान अप्राकृतिक है उसी तरह भगवान् के आयुध भी है यह बात भगवान् श्रीरामजी के स्वस्थान के प्रस्थान समय में श्रीमद्रामायण में कहा हैं। **शस्त्रानानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रहम् । अन्वगच्छन्त काकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः ॥ विवेशवैष्णवं धाम सशरीरः सहानुजः ॥** इति।

अयमर्थः-लोक लीला करने के समय में लीला विभूति में जो अनेक प्रकार के शस्त्र बाण प्रभृतिक तथा विशाल लंबायमान विग्रह शरीरवाले धनुष आदि पुरुष के समान आकार स्वरूप को धारण कर के भगवान् श्रीरामचन्द्रपरमात्मा के पीछे छायावत् चलते रहते थे वे सबके सब भगवान् के वैष्णवधाम वैकुण्ठ साकेत में पधारने के समय में शरीर तथा अनुयायियों के साथ साकेत में प्रविष्ट हो गये। इन उपर्युक्त प्रमाण वचनों से यह सिद्ध होता है कि बाणादिक अनेक आयुध तथा भगवान् श्रीसीतानाथ का एक अलौकिक दिव्यस्थान भी है। आधुनिक राजा की तरह। श्रीविष्णुपुराण से भी उपर्युक्त

ब्रह्मसूत्रतः श्रीरामस्यदिव्यस्वरूपप्रतिपादनम्

केवलं परस्य ब्रह्मणः श्रीसीतानाथस्य रूपवत्वं श्रुत्यादिभिरेव प्रतिपादितमिति न अपितु श्रीब्रह्मसूत्रकारोपि स्वसूत्रेण निरपयामास अन्तरधिकरणे । तत्रस्यादित्यादिमण्डले परिदृश्यमानः

ननु महत्वादधिकत्वेऽपि तत्कारणीभूतप्रकृत्यपरपर्यायप्रधानापेक्षया न महान् स्यात् ततश्च समाभ्यधिकविबर्जितत्वं परमेश्वरे श्रूयमणं बाधितं स्यादित्याशङ्कामपनेतुमाह महर्षिः 'तमसः परमः' इति । योऽयं श्रीसीतानाथः सर्वापेक्षया स तमः पदवाच्यप्रधानादपि परः समुत्कृष्ट एव न तु ततो लघुरिति। अथवा 'तमसः परमः' इत्यस्य तमः परेऽप्राकृतलोकेनिवासशीलः । एवम् 'धाता' स च परमेश्वरः सर्वस्य धाताधारकः पोषकश्च जायमानस्यसर्वस्यापि धारकः पोषकश्च परमेश्वर एवेत्यर्थः । 'शङ्खचक्रगदाधरः' स परमेश्वरः प्रसङ्गोपात्तावतारकाले तत्तदस्त्रादिधारकः । 'श्रीवत्सवक्षाः' अयं परमेश्वरः सर्वदैव स्वकीयवक्षस्थले उरसि श्रीवत्सनामकं मणिविशेषं धारयति । 'नित्यश्रीः' नित्यं सर्वकालं श्रीनामकपत्न्या सहितः तेन तस्य लक्ष्मीवियोगः कदाचिदपि न भवति प्राकृतपुरुषवत् । अर्थात् यथा प्राकृतिकोजनः स्नेहातिरेकात्सर्वदा स्निग्धां स्वसमीपे स्थापयन्नपि कदाचिद्वियुज्यते नात्र तथा शक्तिशक्तिमतोरभेदस्य व्यवस्थापनात् भगवतः शक्तिरूपा सा शक्तिमन्तं

विषयों की सिद्धि होती है तथाहि-**समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः । तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत् ॥**

मूर्त ब्रह्म महाभग ! सर्वब्रह्ममयो हरिः । इति ।

अर्थात्-हे नृप राजन् ! ये सभी जड शक्ति चेतन शक्ति और कर्म शक्तियां जिस भगवान् श्रीरामचन्द्र रूप परमात्मा के जिस विलक्षण श्रीविग्रह में अस्त्रबाणादिकतथा आभूषण के रूप प्रतिष्ठित अर्थात् विद्यमान हैं श्रीभगवान् का वह रूप अर्थात् श्रीविग्रह प्राकृतिक जितने मनोज्ञरूप हैं उन सब से अत्यन्त विलक्षण है अर्थात् अप्राकृतिक लोकोत्तर हैं और अतिमहान् तादृश वह साकाररूप श्रीभगवान् का है। इससे जो व्यक्ति **'यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते'** इत्यादि कारण वाक्यावगत परमात्मा को निराकार

पुरुषोरूपवत्वाज्जीव एवेति कृत्वा 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशादित्याह अर्थादादित्यादिषु परिदृश्यमानः पुरुषो न जीवस्तद्गुणानामनुपलम्भादपितु तदन्तः श्रीसीतानाथः परमात्मैव कुतः ? तद्धर्मोपदेशात्

परित्यजन्ती स्वस्वस्वरूपमेव परित्यजेदिति । 'अनन्या च मया सीता भास्करेण यथा प्रभा' 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा' (श्रीमद्रामायणे) 'सर्वेश्वरी यथा चाहंरामः सर्वेश्वरस्तथा । षड्गुणो भगवान् रामः षड्गुणाहं स्वभावः । सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेवहि मास्ते ! । स्वेमहिम्निस्थितावावामन्याधारो न चावयोः । (वशिष्ठसंहिता) इत्यादिरूपेण तयोरभिन्नत्वप्रतिपादनात् । एतेन तयोर्विश्लेशप्रतिपादकाः शास्त्ररहस्यानभिज्ञकदुरुक्तयः प्रत्युक्ताः 'अजय्यः' अजेयः स भगवान् न केनापि जेतुंशक्यः यदतिवीरोपि हिरण्याक्षो जयनामा द्वारपालो भवन्नपि न तं भगवन्तं जेतुं प्रभुरभवत् तदाऽन्येषां तु कथैव केति सर्वथा जेतुम समर्थ इत्यजेयो भगवान् परेश इति ।

'शाश्वतः' सर्वदा स्थायकः । 'ध्रुवः' निश्चलः यथा लोकेऽधिकृकालस्थायित्वात् ध्रुवो हि ध्रुव इति कथ्यते तथा परमेश्वरः प्रकृतिमर्यादामतिक्रम्य सर्वदैकरूपेणावस्थित इति सोपि ध्रुव इति प्रथितो भवतीत्यर्थः । अत्रोद्धृतवचनेषु

शरीर रहित मानते हैं, उनका मत निरस्त हो जाता है। क्योंकि उपर्युक्त विष्णुपुराण वचनों से श्रीभगवान् का श्रीविग्रह दिव्याप्राकृतिक है ऐसा सिद्ध होता है। इतिहास पुराण वेदोपबृंहक माना जाता है इसलिये प्रामाणिक हैं। प्रमाम सिद्ध पदार्थ को मानना यह प्रामाणिकमार्ग है। जिस तरह भगवान् का शरीर तथा आयुधादिक प्रमाण सिद्ध है उसी तरह भगवान् की राजमहिषी भी प्रमाण सिद्ध हैं इसे बतलाने के लिये कहते हैं-

'नित्यैवैषा जगन्माताविष्णोः श्रीरनपायिनी। यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ! । देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी । विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥' इति। अर्थात् लोक दृष्टि से जायमानचराचर सकल जगत् की माता महालक्ष्मी सर्वेश्वरी श्रीसीता देवी नित्या है अर्थात् उत्पाद विनाश रहित है। यद्यपि भूकर्षणावसर तथा समुद्र मथनावसर में रत्नादिक की तरह यह भी भू या समुद्र से उत्पन्न हुई है ऐसी लोक प्रसिद्धि है तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह महालक्ष्मी उत्पाद

तस्य परमेश्वरस्यापहतपाप्मत्वादिकाः सत्यसङ्कल्पान्तागुणास्त एवेहोपदिष्टाः । 'स एष सर्वेषां लोकानामीष्टे सर्वेषां कामानां स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः' इत्यादिश्रुतौ दर्शनात् । परमेश्वरस्य

'अनादिमध्यनिधनः' इति विशेषणेन भगवतः स्वरूपं नित्यमेव नानित्यमितिध्वनितम् शक्त्यानित्यता बोधकपदाभावेपि व्यञ्जनया तथा बोधसंभवात् यथा न्यायमते द्वे वृत्ती शक्तिर्लक्षणा च तथैवान्यमते व्यञ्जनाया अपि वृत्त्यन्तरस्य स्वीकारात् (उपपादयन्ति च ते 'गच्छ गच्छसि चेत्कान्त ! पन्थानः सन्तु ते शिवाः । ममापि जन्म तत्रैव भूयाद् यत्र गतो भवान्' हे कान्त ! यदि त्वमितो गच्छसि तदा सुखेन गच्छ तवगमने नाहं बाधिका प्रत्युत भवदीयं गमनमनुमोदयामि पारिवारिककार्यानुरोधात्, परन्तु भवान् यत्र गच्छति तत्स्थले ममापि जन्मोत्पत्तिर्भवतु इति शक्यार्थः । अत्र जन्मनः समुत्पत्तेर्मरणोत्तरकालिकत्वेन तव गमनमितोमम मरणप्रयोजकंस्यादिति मत्वा यथेच्छसि तथा कुरु। एतावता गमनस्यानिषेधं कुर्वाणाव्यञ्जनया निषेधमेव ज्ञापयति) श्लोकस्थ 'शाश्वत' इति विशेषणेन भगवतो गुणविशिष्टस्वरूपं नित्यं व्यनक्ति एतावता धर्मिवत् तदीयगुणात्मको धर्मो नित्य एव नानित्यः । अन्यथा गुणनाशे गुणविशिष्टस्यापि नाशसंभवेन धर्मिणो नित्यत्वकथनं सर्वथैवासमञ्जसं

विनाश रहित ही है, यह पैदा हुई यह कथन तो व्यवहारमात्र है **'जीवो जातो विनष्टः'** इतिवत्। यह भगवान् की पत्नी महालक्ष्मी सर्वेश्वरी श्रीसीताजी भगवान् से कभी वियुक्त नहीं होती हैं क्योंकि शक्ति में तथा शक्तिमान में अभेद होने से शक्ति को छोड़कर शक्तिमान नहीं रह सकता है न वा शक्तिमान को छोड़ कर शक्ति ही रह सकती हैं, शक्ति से वियोग होने पर विशेषणाभाव होने से **'शक्तिमान्'** ऐसा विशिष्ट प्रतीति ही नहीं होगी यह **'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण तथा प्रभा'** तथा **'अनन्या च मया सीता भास्करेण यथा प्रभा'** इत्यादि महर्षि वचन से अतिस्पष्ट है। कालिदास ने भी कहा है-

'वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पित्तरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।' इति ।।

गुणा 'सर्वस्यवशी सर्वस्येशानः' 'अपहतपाप्माविजरः' 'पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्' इत्यादिश्रुतिवाक्यप्रतिपादिताः सन्ति । तस्मात् सूर्यमण्डलान्तर्गतः पुरुषः स एव ।

स्यादिति । 'ध्रुव' इतिविशेषणेन तु भागवतं स्वरूपं विग्रहविशिष्टरूपेण नित्यमेव नानित्यमिति ध्वनितम् । यथा गुणविशिष्टतया भागवतं स्वरूपं नित्यं तथैव विग्रहविशिष्टतयापि तदीयं स्वरूपं नित्यमेव । स्वरूपं गुणविशिष्टं विग्रहविशिष्टं च तत्र तदीयगुणवत्तदीयविग्रहोऽपि नित्य एव । एतावता यथा परमेश्वरस्य सत्यज्ञानादिस्वरूपमप्राकृतिकंलोकोत्तरम्, तथैव भागवतो गुणो लोकोत्तरोऽप्राकृतिक एव एवं तदीयविग्रहोपि लोकोत्तराप्राकृतिक एवेति प्राकृतिकगुणविग्रहयोरेवानित्यत्वं यथा जीवगुणो जीवविग्रहश्च । अयं चाप्राकृतिक इति तदीयगुणविग्रहावप्यप्राकृतिकावेवेति कुतस्तयोरनिनित्यत्वास्पदत्वमितिसर्वं सुस्थम् ।

'तमसः परमः' भागवतं स्वरूपं गुणं विग्रहश्चेत्येतत्सर्वमप्राकृतिकमिति दर्शयितुं तसमः परम इति विशेषणमुपात्तम् । एतावता भागवतं यद् दिव्यस्थानं तत्प्रकृतेस्परिष्टाद् विद्यते इति कथितम् । 'दिव्यायुधान्वितं चाथ दिव्यपार्षदसंयुतम् । दिव्यभूषणवस्त्रैश्च भूषितं वीक्ष्यते ह्यसौ' (श्रीरामप्रा-

इससे महाकवि ने शक्ति और शक्तिमान के अभेद का प्रतिपादन किया हैं । जगद्गुरु श्रीतुलसीदासजी ने भी कहा हैं-

'गिरा अरथ जल वीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न ।
वन्दौं सीतारामपद जिनहि परमप्रियखिन्न ।।' इति ।

अस्यार्थः-जिस तरह वाणी शब्द अर्थ तत्प्रतिपाद्य विषय और जल तथा तरंगों में भेद कहा जाता हैं वस्तुतः तो अभेद हैं क्योंकि जल तथा तदीय तरंगो का विवेचन करने पर जल से वस्तुतः भिन्न तरंग उपलब्ध नहीं होता है क्योंकि कारण से भिन्न कार्य की उपलब्धि नहीं होती हैं- **'वाचारंभणं विकारोनामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'** तथा **'तदनन्यत्वमारंभण शब्दादिभ्यः'** इत्यादि श्रुति तथा सूत्र में कहा है कि मृत्तिका के व्यक्तिका के व्यतिरेक में घटादिक उपलब्ध नहीं होता हैं तथा मृत्तिका के सद्भाव में ही

विशेषरूपेणामुं सूत्रं भाष्यकारो व्याख्यातवान् तदिह दर्शयामि तथाहि 'एवं षड्भिरधिकरणैरखिलकल्याणगुणाकरः सर्वज्ञः

स्तिपद्धतिः) इत्याद्युक्तेः । अप्राकृतिकंतदीयं परमपदमिति भावः ।

शरानानाविधाश्चापि धनुरायतविग्रहम् । अन्वगच्छन्तकाकुत्स्थं सर्वे पुरुषविग्रहाः॥ शरानानाविधाश्चापिधनुरायतविग्रहम् । अन्वगच्छन्ताकाकुत्स्थं सर्वेपुरुषविग्रहाः ॥

विवेश वैष्णवंधाम ससशरीरः सहानुजः

रावणादिकविप्लावकेन विप्लाविते जगति लोकानां समुद्धाराय यदा सर्वेश्वरश्रीसीतानाथो दाशरथिरूपेणभुवि समवतीर्य्य सुग्रीवादिकसाहाय्येन रावणदुःखमहोदधौ निमज्जमानान् भौमानभौमान् भक्तप्रपन्नानुद्धारयित्वा कृतकार्यो महायात्रां कृतवान् तत्प्रसङ्गेऽयं श्लोकः 'शरानानाविधाः' इत्यादि । अनेकप्रकारका नत्वेकप्रकारका अनेकक्रिया सूपयुज्यमाना अनेकप्रकारकाः शराः । तथा आयतोऽतिविशालोलंबायमानो विग्रहः शरीरं यस्य तादृशं धनुः बाणप्रक्षेपक-दिव्यास्त्रविशेषो लोकेऽपि धनुष् पदेन प्रसिद्धः । तदुक्तंजगगुरुश्रीरामभद्राचार्येण-श्रीरामचापस्तवे

'यन्मूलो रघुनन्दनस्य जगतां त्रातेति कीर्त्यङ्कुरो
देवी चार्चति जानकी सविनयं यद्गन्धपुष्पाक्षतैः ।
यत्कोट्याकृतलाञ्छनश्च जलधौ सेतुर्जगत्पावनो
भद्रायास्तु जगत्त्रयस्तुतिपदं तद्राघवीयं धनुः ॥१॥'

घटादि कार्य की उपलब्धि होती है इसलिये कार्य कारण में अभेद सिद्ध होता है, जिस तरह शब्द और अर्थ में यथा वा जल तथा तदीय तरंगो में व्यवहार दृष्टि से भेद प्रतिभासित होने पर भी दोनों में अभेद स्वाभाविक है। उसी तरह शक्ति श्रीसीताजी तथा शक्त परमात्मा श्रीराम में लोक दृष्टि से भेद प्रतिभासित होने पर भी वस्तुतः अभेद होने से कहा गया है कि '**विष्णोः श्रीरनपायिनी**' अर्थात् नित्या श्रीमहालक्ष्मीजी भगवान् को कभी भी नहीं छोडती हैं।

हे द्विजोत्तम ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जिस तरह परमात्मा जब देवों में अवतार लेते हैं तब

सकलजगदुदयकारणभूतः चिदचिद्विशिष्टः परमपुरुषः परमात्मा साधितः अथोपासकानां मनोरथपूर्तये तस्यैव स्वरूपं विविच्यते । तत्राल्पपुण्यानां जीवानां स्वेच्छया यद्यपि जगत् सृष्टिरानन्दयोगश्च

एते सर्वे पुरुषशरीरमास्थायकाकुत्स्थं ककुत्स्थक्षत्रियकुलजातं श्रीरामचन्द्रम् अन्वगच्छन्त, लोकदृष्ट्या प्रपन्नार्तिविनाशनकार्यं परिसमाप्य साकेतं गच्छन्तं श्रीरामं तत्पश्चात् गतवन्तः श्रुत्यर्थस्मृतिराशिरिव । ते शरादिकाः परमधामसाकेतं शरीरानुयायिभिः सहैव निविष्टाः । न तु शरीरमत्रैव पतितमनुयायिनश्च वियुक्ताः । यथा प्राकृतस्य मरणोत्तरकालं शरीरमिहैव पतति यस्य भस्मान्तत्वविडन्तत्वरसान्तता च भवति बान्धवाश्च वियुज्यन्ते न तथा प्रकृते । यथोक्तम् 'धनानिभूमौ पशवश्च गोष्ठे दारागृहे बन्धुजनाः श्मशाने । देहश्चितायां परलोकमार्गे (कर्मा) धर्मानुगो गच्छति जीव एकः' इति ॥ एतत्प्रसङ्गेन भगवतो दिव्यायुधस्य दिव्यपरमस्थानस्य च सिद्धिर्भवतीति प्रतिपादितम् ।

देवताओं के अनुकूल ही शरीर को धारण करते हैं उस समय में श्रीसीताजी भी देवानुकूल विग्रह को ही धारण करती हैं और जब भगवान् मनुष्यों में अवतार ग्रहण करते हैं तब श्रीसीताजी मानुषी शरीर को ही धारण कर लेती हैं। ये श्रीसीताजी अपने शरीर को भगवान् के श्रीविग्रह के अनुकूल बना लेती हैं।

उपर्युक्त इन वचन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि श्रीसीताजी का स्वरूप भगवान् श्रीराम के साथ नियत सम्बन्ध सर्वव्यापकत्व और परमेश्वर के साथ अवतार ग्रहण ये सब सिद्ध होते हैं।

इसके बाद भगवान् का दिव्य स्थान तथा सूरिगणों को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिये विष्णु पुराण वचन का उद्धरण देते हैं-

'एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनो हि ये ।
तेषां तत्परमं स्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥' अर्थात् जो योगीगण यम नियम प्राणायामादि योग क्रिया में तत्पर रह करके तथा अनन्य हो करके सर्वदा ब्रह्म का चिन्तन उपासन करते हैं। वे योगी ध्यान के प्रभाव से तथा अनन्य हो करके सर्वदा ब्रह्म का चिन्तन उपासन करते हैं। वे योगी ध्यान के प्रभाव से तथा भगवत्कृपा से उस स्थान

न संभवति । तथापि विलक्षणपुण्यानामादित्येन्द्रप्रजापत्यादीनां संभवत्येवेत्याशङ्कायामाह 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥१।१।२१॥ छान्दोग्ये 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्म-

---

तथैव विष्णुपुराणेऽपि-

समस्ताः शक्तयश्चैता नृप ! यत्र प्रतिष्ठिताः । तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरे र्महत् मूर्तं ब्रह्म महाभाग सर्वब्रह्ममयो हरिः॥

अयमर्थः-सर्वशिक्तिकस्य भगवतो महापुरुषस्य साकेतगमनप्रसङ्गे योऽर्थः प्रकाशितस्तद्विषये एवेदं विष्णुपुराणवनम् । हे नृप ! हे राजन् ! समस्ताः सर्वाः शक्तयः चेतनशक्तिरचेतनशक्तिः कर्मशक्तिचेतित्रिप्रकारिका इमाः शक्तयोयत्र परमेश्वरे सन्ति अर्थात् यस्य भगवतो विग्रहे अस्त्रभूषणादिवद विद्यन्ते । एतादृशं भगवतोरूपमर्थात् श्रीविग्रहो लौकिकसर्वरूपापेक्षया विलक्षणं विद्यतेऽप्राकृतमित्यर्थः । तादृशं भगवतः सर्वविलक्षणं महत् सर्वापेक्षया परममहदिति । तत्साकाररूपं भगवतः श्रीसीतानाथस्यैव, स हरिः परमेश्वरः परिशुद्धजीवस्याप्यात्मा सर्वान्तर्यामित्वात्सर्वशेपित्वाच्च । उपर्युक्तविष्णुपुरा-

---

को प्राप्त करते हैं जिसका दर्शन नित्य सूरियों को सर्वदा होता रहता है । इस बचन से दिव्य स्थान तथा नित्य सूरिगण का सद्भाव सिद्ध होता है । किञ्च-

कलामुहूर्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः ।

अर्थात्- प्रत्येक पदार्थों के उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेवाला काल है । कहा है कि-'**कालः सृजतिभूतानि कालः संहरते प्रजाः । कालःसुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥**' इत्यादि महात्म्ययुक्त तथा कला निमेष मुहूर्त क्षण होरा प्रहर दिन रात्रि पक्ष ऋतु अयन वर्ष कल्पमन्वन्तरादि रूप से परिणत होनेवाला काल है वह इतर पदार्थों के परिणाम का कारण बनता हुआ भी काल भगवान् की जो नित्यविभूति हैं उसकेपरिणाम कारण नहीं बनता है । क्योंकि भगवान् के सर्व शारीरिक होने से काल परिछिन्न नहीं है और काल परिछिन्न जो पदार्थ होते हैं उन्हीं के परिणाम का कारण काल वनता हैं । उपर्युक्त इन वचनों से भगवान् का दिव्य लोकोत्तर स्थान तथा नित्य सूरियों का सद्भाव एवं इन सव का नित्यत्त्व सिद्ध होता है । नित्य विभूति तथा तदीय

श्रुहिरण्यकेश आप्रणखात् सर्वएव सुवर्णः ।'(छा. १।१।६।') 'तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवाक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ।' (छा.

णादिवचनैर्भगवतो दिव्यविग्रहस्याकृतिकशरीरस्य च सिद्धिर्जायते । अर्थाम् साकारो भगवान् यश्च वेदान्तप्रतिपाद्यो न तु निराकारो निर्विग्रहश्च । तदुक्तं श्रीमघुसूदनेनाद्वैताबलम्बिनापि 'ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा तन्निर्गुणं निष्क्रियं ज्योतिः किञ्चनयोगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते । अस्माकंतु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरम्, कालिन्दी पुलिनेषु यत्किमपि तन्नीलं महोधावति ।' अत्र नीलमहो विशेषणेन तथा 'नीलतोयदमध्यस्था विद्युल्लेखेव भास्वराः' इत्यादिवचनप्रमाणेन भगवतो नीलमेघवत् श्यामलामूर्तिरप्राकृतिकी विद्यते इति सिद्ध्यति । ततश्च 'सत्यं ज्ञानमानन्तं ब्रह्म' इत्यादिश्रुत्यादिप्रतिपादितं

नित्यता में अन्य वचन भी उपलब्ध होते हैं-

'दिव्यं स्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम् ।

गच्छ प्रभो ! रक्ष चास्मान् प्रपन्नान् काले काले जाय मानः स्वमूर्त्या ॥'

अस्यार्थः हे प्रभो हे सर्वश्रेष्ठ ! जरा वृद्धावस्था से रहित अप्रमेय तथा असमाहित मन से जानने के अयोग्य केवल शास्त्र से जानने लायक आप उस आद्य स्थान अर्थात् स्वकीय देवलोक में जाने के लिये कृपा कीजिये । हे प्रभो ! प्रतिकल्प में स्वकीय रूप प्रकट अवतरित होकर के भवदीय शरणागत भक्त लोगों का रक्षण करते रहें । एवं '**कालं स पचते तत्र न कालस्तत्र वै प्रभुः ।**' अर्थात् भगवान् की जो नित्यविभूति है उसमें स्वेतर सब को पचानेवाला काल भी स्वयं पचित हो जाता है । अर्थात् काल उस नित्य स्थान का परिणाम में हेतु नहीं बन सकता है स्वयं मृदित हो जाता है काल वहां कुछ भी नहीं कर सकता है । जिस तरह पत्थर को तोडने के लिये मिट्टी के ढेलों को पत्थर पर मारें तो पत्थर का तो कुछ भी महीं होता है किन्तु मिट्टी का ढेला स्वयं विनष्ट हो जाता है इसी तरह प्रकृत में काल नित्य स्थान को परिणत नहीं कर सकता हैं किन्तु स्वयमेव विनष्ट हो जाता हैं । इस वचन से दिव्य स्थान तथा उसका नित्यत्व सिद्ध होता है । इस प्रकार से आचार्यजी ने इतिहासादि प्रमाण से नित्य स्थानादि पदार्थ

१।६।७) 'तस्यक्र्चं साम च गेष्णौ इति अधिदैवतम्' 'अथाध्यात्मम्' 'य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते' (छा. १।७।५) इत्यादिकं समाम्नायते । अत्र 'हिरणमयोज्योतिर्मयः' अत्रत्यं हिरण्यपदं

निराकारमेव ब्रह्मेति यस्य मतं तन्निरस्तं वेदितव्यम्, बहुतरप्रमाणविरोधात् ।

उपर्युक्तप्रमाणेन भगवतो विग्रहमायुधादिकं च प्रसाध्य परिजनविषये सर्वप्रथमं कलत्रसद्भावं दर्शयति-

नित्यैवैषाजगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी । यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ! देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी । विष्णोर्देहानुरूपेयं करोत्येषात्मनस्तनूम् ॥इति॥

अयमर्थः-हे द्विजोत्तम ! एषा प्रत्यक्षपरिच्छेद्या (इदमेतदोः प्रत्यक्षविषये शक्तत्वात् यावान् प्रत्यक्षविषयस्तत्रैवेदमेतदोः शक्तत्वात् ।) महालक्ष्मी

...त प्रकरण में वेदार्थ का प्रकाशन करने वाले इतिहास पुराणादिक को सिद्ध किया । ...क दिव्य स्थान है जिसका त्रिपाद विभूति भोग विभूति और ग्रन्थों से भगवान् को ... दिव्य लोकादिक स्थान् भगवान् का परिजन नित्यसूरिगण वैकुण्ठ प्रभृति नाम हैं । यह ...भौतिक पदार्थ सिद्ध होते हैं ऐसा कहा गया है । अब तथा भगवान् का दिव्य स्वरूप ...ने है कि इतिहासादिक द्वारा जो अर्थ होता है उसी इसके आगे आचार्यजी यह सिद्ध कर... किया है । इन सब वातों का स्पष्ट रूप से अर्थ को सूत्रकार ने भी सूत्र द्वारा सिद्ध ...वलं परस्य ब्रह्मणः श्रीसीतानाथस्य' प्रतिपादन करने के लिये उपक्रम करते हैं के... इत्यादि ।

परब्रह्म श्रीसीतानाथ का दिव्य स्वरूप साक...रूप केवल श्रुत्यादिक तथा इतिहासादि प्रमाण से ही सिद्ध होता है इतना ही नहीं किन्तु ...ह्म सूत्र के निर्माता भगवान् वेद व्यास जी ने भी स्वकीय ब्रह्म सूत्र से भगवान् के दिव्य ...रूप को सिद्ध किया है अन्तरधिकरण के '**अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्**' इस सूत्र से-

उस अधिकरण का '**य एषोऽन्तरादित्ये हिरणमयः पुरुषो दृश्यते**' इत्यादि ...ही विषय वाक्य है, अर्थात् अत्रत्य विषय ही विचारणीय है सू...र्य मण्डल में ...गवान् के उपासन ही अन्तरादित्य विद्या है । यहां यह संशय हो...ता है कि

सुवर्णपदञ्च विलक्षणज्योतिः परम् । दृश्यतेऽवहितमनस्कैरुपासकैरितिशेषः । प्रणखोनखाग्रं तेन सहेत्यभिविधावाङ् ।

जगतां जायमानानां सर्वेषां माता, मातेव परिपालिका पोषयित्री च 'श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी । उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् सा सीता भगवति ज्ञेया' (श्रीरामतापिनी) इतिश्रुत्युक्तेः । सा च नित्या नत्वनित्या तथा विष्णोर्महापुरुषस्यानवरतसंबद्धा, कदाचिदपि तदीयं संबन्धं न परित्यजति । यथाछायास्थाणुपुरुषसंबन्धं न त्यज्जति, गच्छति पुरुषे तदीयछायापि गच्छति स्थिते च पुरुषे स्थितैव भवति वक्रादिभावमासादयति छायापि तथैव वक्रादिभावमाप्नोति न ततो वियुज्यते तथैव महालक्ष्मीः सर्वेश्वरी श्रीसीता

अक्षि तथा सूर्यमण्डल में जो हिरण्यकेशादिमाण पुरुष देखने में आता है वह कोई अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त किया हुआ जीव विशेष है अथवा स्वयं परमात्मा है । इसमें पूर्वपक्ष होता है कि आदित्यमण्डल के मध्य में परिदृश्यमान जो पुरुष वह जीव है क्योंकि उसमें रूपवत्व कहा गया है कर्मपराधीन जीव को ही रूपादिमत्व होता है परमात्मा तो '**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्**' इत्यादि श्रुतियों से अरूप सिद्ध होते हैं । ऐसी शङ्का करके उसके उत्तर में सूत्रकार ने कहा है कि '**अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्**' अक्षि आदित्य मण्डल में परिदृश्यमान जो पुरुष है वह तो जीव नहीं हो सकता है क्योंकि जीव का जो धर्म गुण हैं वे उपलभ्यमान नहीं हैं अपितु आदित्यमण्डल में परिदृश्यमान जो पुरुष है वह परमात्मा श्रीसीतानाथ हैं क्योंकि ईश्वर के जो धर्म शास्त्र में उपदिष्ट हैं वे धर्म उसमें उपलभ्यमान हैं । अपहतपाप्मत्वादिक सत्य सङ्कल्पान्त जो श्रुति में परमेश्वर का धर्म कथित हैं वे सब आदित्य पुरुष में भी कहा है एवम् 'वे परमात्मा सब लोगों के उपर शासन करने वाले है तथा सर्वकमनीय गुणों को प्राप्त किये हुए हैं' ऐसा श्रुति में प्रतिपादन किया है ।

श्रुन्यन्तर में भी कहा है 'सब इस परमेश्वर के वश आधीन में रहते हैं सभी के ये ईश्वर हैं ये परमेश्वर सभी पापों से रहित हैं जरा रहित हैं' इत्यादि । 'सर्व काम को प्राप्त किये हैं इत्यादि श्रुतियों में जो परमात्मा का धर्म उपदिश्यमान हैं वे सब धर्म आदित्य मण्डलस्थ पुरुष में भी उपलब्ध होते हैं' यह परमात्मा विश्व संपूर्ण जगत् से श्रेष्ठ हैं नित्य हैं विश्व शरीरक हैं तथा वे ही श्रीसीतानाथ हैं तथा हरि विष्णु नारायणादि पदों से वाच्य

चक्षुषोर्विशेषमाह तस्येति । कंजलं पिवतीति कपिः सूर्यस्तेनास्यते विकास्यते इति कप्यासं पुण्डरीकं रक्ताम्भोजम् कैश्चिदस्य वाक्यस्य मर्कटपश्चाद्भागवद् यल्लोहितं पुण्डरीकमिति विवरणं कृतं

विष्णोः श्रीरामस्य संबन्धं न त्यजति 'अनन्या च मया सीता भास्करेण यथा प्रभा' 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा' इतिमहर्ष्युक्तेः । हे द्विजोत्तम ! यथा विष्णुः स्वयं सर्वगतः सर्वव्यापकः सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगी भवति नहि तादृशवस्तुलीलाविभूतौ त्रिपाद् विभूतौ वा विद्यते यत्र विष्णोः सद्भावो न भवेत् । 'विष्लृ व्याप्तौ' इत्यतो विष्णुपदसिद्धिर्भवति, अथवा सर्वस्य शरीरीतया वर्तमानत्वेन सर्वव्यापको विष्णुस्तथैवेयं तत्पत्नी महालक्ष्मीः सर्वेश्वरीश्रीसीतापिसर्वव्याप्तैवेति । सर्वव्याप्तिमेव विष्णुकलत्रस्य दर्शयति ।

हैं परमात्मा संपूर्ण जगत् के शासक हैं सबके ईश्वर हैं । इत्यादि श्रुति प्रतिपादित जितने धर्म हैं जो कि परमेश्वर के हैं वे सब आदित्यमण्डल पुरुष में हैं इसलिये सूर्यमण्डलस्थ पुरुष परमात्मा हैं जीव नहीं हैं ।

भाष्यकार ने '**अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्**' इस सूत्र का विशेष रूप से व्याख्यान किया है उस व्याख्यानात्मक भाष्य का मैं यहां अनुवाद लिखता हूं पाठकों को सौलभ्य हो इसलिये । तथाहि '**एवं षड्भिभरधिकरणैः**' इत्यादि भाष्य ग्रन्थ-

इन उपर्युक्त जिज्ञासाधिकरण प्रभृतिकछ अधिकरणों से सिद्ध किया गया कि अखिल कल्याण गुणों के आकर के समान आकर सर्वज्ञ समस्त जगत् चराचर के अभिन्न निमित्तोपादान कारण रूप चिदचिद्विशिष्ट परम पुरुष परमात्मा श्रीसीतानाथ हैं । इसके बाद उपासक जो भक्त हैं उनके मनोरथ की पूर्ती के लिये उसी परम पुरुष श्रीसीतानाथ के स्वरूप का विवेचन किया जाता हैं । उसमें अल्प पुण्यवाले जो जीव गण हैं उनको अपनी इच्छा के अनुकूल यद्यपि जगतसर्जन सामर्थ्य तथा आनन्द का सम्बन्ध नहीं हो सकती है तथापि विलक्षण अत्यधिक समुपार्जित पुण्यवान् जो इन्द्र प्रजापति आदि जो जीव समुदाय हैं उनको तो सामर्थ्य तथा आनन्द योग हो सकता है ? इस आशङ्का का समाधान करने के लिये सूत्रकार कहते हैं-

'**अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्**' १।१।२१। छान्दोग्योपनिषत् में '**य एषोऽन्तरादित्ये**

तदश्लीलत्वदोषदुष्टतयाऽनादरणीयम् तादृशपुण्डरीकवदस्य देवस्याक्षिणी नेत्रे । तस्य नाम ह उदिति नाम निर्वक्ति स इति उदित

'देवत्वेदेवदेहेयमित्यादि' 'देवत्वेदेवदेहेयम्' यदा भगवान् देवमनुष्यादीनां दुर्जनैः कदर्थितानामुद्धाराय देवरूपेणावतरति, तदेयमपि महालक्ष्मी र्देवदेहमायया वतरति । 'मनुष्यत्वे च मानुषी' इति । यदा खलु भगवान् प्रपन्नजनानामुद्धाराय मनुष्यदेहमासाद्यावतरति तदा तदीया महालक्ष्मी स्तद्रूपमादायावतरत्येव, शक्तिशक्तिमतो स्तादात्म्यात्, शक्तं परित्यज्य केवलायाः शक्तेरन्यत्राधिकरणे स्थातुमशक्यत्वात् । इयं महालक्ष्मी स्वकीयां तनुं भागवतशरीरानुरूपामेव करोति । एभिर्वचनैः परमेश्वरपरिजनान्तर्गततत्कलत्ररूपमहालक्ष्म्याः स्वरूपं भगवता सह तस्यानित्यसंबन्धः,

हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः' (छा.१।१।६। '**तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवाक्षिणीतस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो यो य एवं वेद**' (छा.।१।६।७) ''तस्यर्क्चसाम च गेष्णौ इत्यधिदैवततम् । अथाध्यात्मम्'' ''य एषोन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते इत्यादिकं समाम्नायते । (जो यह आदित्यमण्डल के मध्य में हिरण्यमय पुरुष देखने में जो सुवर्ण सदृश दाढी मूंछवाला है हिरण्यकेश है नख से लेकर शिखा पर्यन्त सब सुवर्ण ही है । उसकी सूर्य प्रकाशित कमल के समान आंखें हैं उत् ऐसा उस पुरुष का नाम है वह सभी पापों से विमुक्त है इस प्रकार जो इस पुरुष का उपासन करता है वह सब प्रकार के पापों से विमुक्त हो जाता है उसका ऋक् और साम ये दोनों गेय हैं इस प्रकार देवता को अधिकृत करके परमात्मा के रूप का कथन किया है । अब परमात्मा का अध्यात्मरूप को बतलाते हैं 'जो यह नेत्र के अन्दर में पुरुष देखने में आता है' इत्यादिक छान्दोग्य में बतलाया है ।) यहां हिरण्यमय शब्द का अर्थ है ज्योतिर्मय । इस मन्त्रस्थ '**हिरण्यमयः ज्योतिर्मयः**' इन दोनों जगह जो सुवर्ण वोधक हिरण्यमय पद हैं वे विलक्षण ज्योति अर्थात् प्रकाश के बोधक हैं अर्थात् आदित्यमण्डलस्थ पुरुष के नख केशादिक सुवर्णमय हैं अर्तात् विलक्षण प्रकाशशील है यादृश प्रकाश अन्यत्र नहीं होता है । यद्यपि एतादृश पुरुष को सकल साधारण व्यक्ति स्वकीय चक्षु

उद्गतः सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः सर्वपापास्पृष्ट इत्यर्थः । अधिदैवतम् देवतामधिकृत्योपास्तिवाक्यमित्यर्थः । अत्रादित्यान्तःस्थमक्ष्यन्तः

सर्वव्यापकत्वादिरूपा अनेकेऽर्थाः प्रसिद्धिपथमासादयन्ति, तथा परमेश्वरेण सहावतारग्रहणादिरूपा वहवोऽर्थाः प्रसिद्धा भवन्ति 'सर्वेषामवताराणामावामेवावतारिणौ । सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ' इत्याद्यागमोक्तेः (वशिष्ठसंहिता) ।

भगवतः परिजनान्तर्गतकलत्रात्मकपरिजनसद्भावे प्रमाणमुपन्यस्य परिजनान्तर्गतनित्यसूरीणां दिव्यलोकस्य त सद्भावप्रमाणं दर्शयितुं विष्णुपुराणान्तर्गतवचनं दर्शयति-

---

एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनोयोगिनो हि ये । तेषां तत्परमं स्थानं यद्वै पश्यन्ति सूरयः ।।इति।।

से नहीं देखता है तथापि यहां '**अवहित मनस्कैरुपासकै :**' इतना जोड देना चाहिये । तब यह अर्थ होता है कि निग्रहित मन वाले उपासक लोग उपासना काल में यथोक्त वर्णित रूप वाले पुरुष को देखते हैं और उसकी उपासना करते हैं '**आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः**' यहां '**प्रणख**' शब्द का अर्थ है नखाग्र नख के अग्रभाग क नखाग्र कहते हैं । '**आप्रणखात्**' यहां जो '**आ**' है वह अभिविधि अर्थ में हैं तब नखाग्र के साथ यह अर्थ होता है । आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का जो नेत्र है उसकी विशेषता बतलाती है श्रुति '**तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवाक्षिणी**' का नाम होता है जल पानी का उस जल का जो पान करे अर्थात् स्वकीय किरण के द्वारा स्वात्मसात् करे उसको कहते हैं कपि अर्थात् सूर्य एतादृश सूर्य से विकाशित हो उसको कहते है कप्यास और पुण्डरीक शब्द का अर्थ है लाल कमल अर्थात् सूर्य के द्वारा विकासित रक्त कमल के समान जिनका नेत्र हैं एतादृशादित्य मण्डलस्थ पुरुष हैं । किसी टीकाकार ने '**कप्यास**' शब्द का अर्थ किया है कपि मर्कट का पश्चाद् भाग तादृश मर्कट के पश्चाद् भाग की तरह लाल जो कमल तादृश रक्त कमल के समान भगवान् की आखें हैं । ऐसा अर्थ किसी ने किया है परन्तु इस अर्थ में अश्लीलादिक दोष होने के कारण यह अर्थ अनादरणीय है । सूर्य प्रकाशित रक्त कमल वत् भगवान् के नेत्र हैं । यही अर्थ ठीक हैं-

स्थं च पुरुषमधिकृत्यशरीरवत्वश्रुत्यासर्वपापस्पर्शवत्वश्रुत्या च संशयः । किमयं पुरुषः पूर्वकृततप आदिप्रभावादीदृशमौत्कृष्ट्यं प्राप्तः कश्चिज्जीव उत परमात्मा सर्वान्तर्गत इति । किमत्रयुक्तम् ? जीवः कुतः ? शरीरवत्वाद्रूपवत्वाच्च । अक्षिपुरुषस्यापि तदेवरूपम् यदमुष्यरूपमिति यन्नामतन्नामेति । तादृश रूपवत्वतादृशनामव-

---

अयमर्थः-ये योगिनो योगक्रियासु यमनियमप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधिप्रभृतिकक्रियासुकुशलाः, एकान्तिनः एकान्ते 'समेशुचौ शर्करवह्निवालुका विवर्जिते गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेदिति नियमेन सर्वदा एकाकिनो भूत्वा अथवा एकान्तिनोऽनन्यमनसोभूत्वा 'अनन्याश्चिन्तयन्तोमां ये जनाः पर्युपासते' इति स्मृतेः । ब्रह्मणः साकेताधिपतेर्ध्यानमनुचिन्तनं कुर्वन्ति, तेषामित्थं ध्यानं कुर्वतामुपासकानां तत् प्रसिद्धं लोकवेदौ सार्वलौकिकविलक्षणमप्राकृतिकभगवतो निवासभूतं दिव्यलोकमावागमनविवर्जितं स्थानं प्राप्तं भवति, यद्विलक्षणं स्थानं सूरयो नित्यमुक्ता जीवाः

उस आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का नाम बतलाते हैं '**तस्योदितिनाम**' उस आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का '**उत्**' ऐसा नाम है । उत् इस नाम का निर्वचन करते है '**स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः**' वह उदित है अर्थात् सर्व पाप उदगत है सभी पापों से सर्वथा अस्पृष्ट हैं ये अधिदैवतरूप हैं अर्थात् देवता को अधिकृत करके उपासना वाक्य हैं । अब यहां आदित्य मण्डलान्तर्गत तथा नेत्र के अन्तर्गत पुरुष शरीरवान् है ऐसा सुनने में आता है तथा सर्व पाप से अस्पृष्ट है यह भी श्रुति होने से संशय होता है कि पूर्व जन्मों में कृत जो पुण्य कर्म तपः प्रभृति के करने से एतादृश उत्कृष्टता वैलक्ष्यण्य को प्राप्त किया हुआ आदित्यादिक के अन्तर्गत पुरुष कोई जीव विशेष हैं ? अथवा सर्वान्तर्गत सर्वान्तर्यामी परमेश्वर हैं ? इसमें किस पक्ष का स्वीकार करना युक्त हैं तो इसमें पूर्वपक्षवादी कहते है कि जिसमें तप के प्रभाव से अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त कर लिया है ऐसा कोई जीव विशेष आदित्य मण्डल में देखने को आता हैं । क्यों ऐसा मानते हैं ? तो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का रूप है तथा शरीर है ऐसा श्रुत हैं । रूप एवं शरीर तो

त्वश्रवणाच्च, शरीरसंयोगोरूपसम्बन्धश्चादृष्टवशाज्जीवस्यैव तादृशादृष्टजन्यपुण्यपापरूपफलभोगाय न तु परमेश्वरस्य, तस्य

सर्वदा पश्यन्ति। अर्थात् अनन्यध्यानतोषितो भगवान् तेभ्यस्तादृशं स्थानं प्रयच्छति, यत् स्थानं सदा आवागमनविवर्जितं वर्तते, यमधिकृत्य भगवती गीताप्यनुवदति 'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन !। मामुपेत्य तु कौन्तेय ! पुनर्जन्म न विद्यते ॥ इति ॥ एतादृशं विलक्षणं स्थानं सदानित्यसूरिदर्शनीयं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः। तथा कलामुहूर्तादिमयश्च कालोनयद्विभूतेः परिणामहेतुः ॥ इति ॥

अयमर्थः-तत्रातीतादिव्यवहारहेतुः कालो भवति भविष्यत्यभूदित्यादिप्रत्यय-यसाक्षिको जायमानसर्वजगतोऽसाधारणकारणलक्षणः। कालबलेनैव सर्वस्य जडचेतनजगतो विपरिणापो भवति। तदुक्तम्-'कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः। कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥'इति॥ अयं च कालनिमेषक्षणहोरादिनरात्रिपक्षमासायनर्तुवर्षकल्पमहाकालादिभेदभिन्नः, यद्विभूतेः, यस्य सर्वनियामकमहापुरुषस्य या नित्या विभूतिः, त्रिपादात्मिका

जीव को ही कर्माधीन होने से होता है ईश्वर तो कर्म के अधीन नहीं हैं तो उन ईश्वर का सद्भाव यहां सिद्ध नहीं होता हैं। एवं अक्षि पुरुष को अधिकृत करके कहा है कि अक्षिपुरुष में भी वही रूप है जो आदित्य मण्डलान्तवर्ती पुरुष में है और वही नाम है जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का नाम है अर्थात् आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का 'उत्' ऐसा नाम है वही उत्" यह नाम अक्षि पुरुष का भी है। इस प्रकार अक्षि पुरुष में भी तादृशरूपवत्व तथा तादृश नामवत्व का श्रवण है तो नाम रूप से शरीरवत्व आक्षिप्त होता है तो यह शरीर का संयोग और रूप का संयोग तो शुभाशुभ कर्माख्य अदृष्ट के वल से तो जीव का ही होता है तादृश अदृष्ट से जायमान शुभाशुभ कर्म का फल सुख दुःखानुभव करने के लिये। किन्तु परमेश्वर को तो नहीं होता है क्योंकि ईश्वर में कर्म नहीं होता है। ईश्वर में तो शरीर तथा रूप का निषेध किया गया है। **'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न चत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते' 'अस्थूलमनणवह्रस्वम्'** (वह परमेश्वर शब्द स्पर्श और रूपादिकों से रहित हैं। परमेश्वर का कार्य अर्थात् शरीर

चाशरीरत्वारूपवत्वश्रवणादित्येवं प्राप्त आह 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशादिति।'

आदित्यान्तर्गतश्च श्रूयमाणः पुरुषः परमात्मैव कुतः ? 'स

तस्या परिणामे नव पुराणादिकरणे समर्थो न भवति। यथा प्राकृतिकपदार्थान् प्रतिक्षणं परिणामयन् कालस्तान् पदार्थान् अन्तिमभावविकारं प्रापयति, न तथा भगवतो नित्यविभूतेः परिणमनेकालः समर्थो भवतीति श्लोकार्थः। उपर्युक्तैर्वचनप्रमाणैर्दिव्यस्थानस्यनित्यसूरीणां च सद्भावः प्रसिद्ध्यति। तथैतेषां नित्यतापि सिद्धाभवति।

भगवतो नित्यत्वं नित्यविभूतेः सत्वं नित्यत्वं च प्रमाणान्तरेणापि सिद्ध्यतीति दर्शयितुंमहाभारतवचनमभ्युदाहरति-

दिव्यंस्थानमजरं चाप्रमेयं दुर्विज्ञेयं चागमैर्गम्यमाद्यम्। गच्छ प्रभो ! रक्ष चास्मान्प्रपन्नान्काले काले जायमानः। **अयमर्थः-हे प्रपन्नपारिजात ! यत् श्रीमत्कं दिव्यं सर्वलोकातिशायि, जरारहितम्, यत्र स्थाने स्थितस्य जरा न**

नहीं है तथा करण इन्द्रिय वर्ग नहीं परमेश्वर के समान तथा ईश्वर से अधिक कोई नहीं है। वह परमेश्वर स्थूलत्व अणुत्व और ह्रस्वत्व से रहित हैं।) इत्यादि श्रुतियों से ईश्वर में शरीर तथा रूपादिकों का अभाव सुनने में आता है। इसलिये आदित्य मण्डलान्तर्गत पुरुष में ईश्वर नहीं हैं किन्तु प्राप्त अणिमादिक कोई जीव विशेष है यह पूर्व पक्ष हुआ।

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् सूत्रकार कहते हैं। **'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्'** इति। आदित्यमण्डल के अन्तर्गत तथा अक्षि के अन्तर्गत जो श्रूयमाण पुरुष है वह परमात्मा ही हैं। क्यों ? 'वे सर्व पाप कर्मों से रहित हैं' इत्यादि श्रुति में परमात्मा का जो असाधारण धर्म है अपहत पाप्मत्वादिक उन धर्मो का उपदेश है परमात्मा में अपहत पाप्मत्व अपहत तत्कर्मक होने से उपपन्न होता है अर्थात् परमेश्वर कर्म पराधीन कर्म पराधीन नहीं हैं इसलिये अपहत पाप्मा कहलाते हैं यह स्पष्टार्थ है। कर्माधीन सुख दुःख का अनुभव करने वाले जीव ही कर्म पराधीन होते हैं। इसलिये अपहत पाप्मत्व बद्ध जीव का धर्म नहीं हो सकता है। एवं मुक्तात्मा का भी अपहत धर्म नहीं है क्योंकि मुक्तात्मा भी संसार काल में कर्म पराधीन रहते हैं इसलिये निरुपाधिक अपहत

एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उद्गतो निर्गत इत्यादिना तदसाधारणधर्माणामपहतपाप्मत्वादीनामुपदेशात् । अपहतपाप्मत्वं हि अपहतकर्मतया संपद्यते, कर्मवश्यताराहित्येनेति स्पष्टोऽर्थः ।

जरयति, यं स्थानं वा जरा न प्रविशति । अप्रमेयं प्रमातुम् इयद्वायद्वेति प्रमातुमयोग्यम्, दुर्विज्ञेयम् असंस्कृतेन मनसा सर्वथैव ज्ञातुमशक्तम् । न तु तदेतादृशस्य वस्तुनो नरसिंहवत्सर्वथैवाभाव एव स्यान्नतु कदाचिदपि सद्भावस्तत्राह 'आगमैर्गम्यम् आगमप्रमाणमात्रेणैवज्ञातुं शक्यम् । प्रत्यक्षादिप्रमाणान्यतमप्रमाणस्य यत्र न प्रसरः तस्यैव सर्वथाऽसद्भावो भवति न तु प्रत्यक्षाजिलौकिकप्रमाणनिवृत्त्या निवृत्तिर्भवतीति न भागवतस्थानाभावशङ्का जागर्तीति । तद्भवदीयं स्थानम् आद्यं सर्वापेक्षया प्रथमम्, अत्युत्कृष्टत्वात् । हे प्रभो ! एतादृशस्थानाय गच्छ, प्रप्रन्नकार्यसपांदनाय तत आगतोसि तत्कार्यसंपत्तौ तत्रैव गच्छ इत्यास्माकीनी प्रार्थना । ननु मद्गमनानन्तरं

पाप्मत्वधर्म मुक्त जीव में भी अनुपपन्न है । अतः अपहत पाप्मात्वादिक धर्म परमात्मा का ही होने से आदित्य तथा अक्षि नेत्र के अन्तर्गत पुरुष परमात्मा ही है जीव नहीं है । किसी ने पूर्व में कहा था कि रूपवत्व का श्रवण होने से आदित्य तथा अक्षि के अभ्यन्तर में जो पुरुष है वह जीव ही है यह कोई दोष नहीं है । क्यों दोष नहीं है क्योंकि यह जो शरीरवत्व है वह जीवत्व तथा कर्मवश्यत्व का साधक नहीं हैं क्योंकि जीवत्वाभाव तथा कर्मवश्यत्वाभाववत् विपक्ष में परमेश्वर में शरीरवत्व विद्यमान होने से यह शरीर वत्व हेतु व्यभिचारी है । अर्थात् जिस तरह धूमाभाव के अधिकरण अयोगोलकरूप विपक्ष में वह्नि की वृत्ति होने से वह्नि हेतु धूम का साधक नही होता है उसी तरह प्रकृत में शरीरवत्व जो हेतु है वह जीवत्व तथा कर्मवश्यत्वरूप साध्य के अभावाधिकरण परमेश्वर में विद्यमान होने से व्यभिचार दोष दुष्ट होने से धूम साधक वह्नि हेतु की तरह साध्य का जीवत्व तथा कर्मवश्यत्व का साधक नहीं हो सकता है अर्थात् शरीरवत्व हेतु से जीवत्व तथा कर्मवश्यत्व की सिद्धि नहीं हो सकती हैं अतः शरीरवान् होने पर आदित्य तथा अक्षि में परिदृश्यमान पुरुष परमात्मा ही हैं जीव नहीं हैं यँह सिद्ध हुआ । नहीं कहो कि जिस तरह परमेश्वर में जीवत्वादिक साध्य नहीं है उसी तरह तो परमेश्वर

कर्माधीनसुखदुःखभागिनः कर्मवश्या हि जीवा एव सन्ति । अतोऽपहतपाप्मत्वस्य बद्धजीवधर्मत्वानुपपत्तेर्मुक्तानामपि संसारदशायां कर्मवश्यत्वेन निरुपाधिकापहतपाप्मत्वाद्यनुपपत्तेः । तस्मात्

भवन्तं यदि पीडयेत्तत्राह 'काले काले' इति । काले काले प्रतिकल्पं स्वमूर्त्या स्वकीयलीलामूर्त्या प्रतिकल्पे स्वकीयलीलामूर्त्या प्रपन्नानस्मान् पालयेति भावः । तथा कालं स पचते तत्र न कालस्तत्रवै प्रभुः । इति यद्यस्मानपि ते प्रपीडयेयुस्ततः किमित्यत्राह 'कालं स पचते' इत्यादि । हे भगवन् ! भवतः नित्यविभूतौ कालः स्वयमेव परिणतो भवति न तु स कालस्तत्र किमपि

में शरीर संबन्धरूप हेतु भी तो नहीं है तब तो हेत्वनुपपत्तिरूप दोष होता है ? इसके उत्तर में कहते हैं '**सत्यसङ्कल्पस्य**' इत्यादि । अरे ! परमात्मा तो सत्यसङ्कल्पवान् हैं तो परमात्मा को स्वेच्छा से शरीर संबन्ध बन सकता है अर्थात् सत्य सङ्कल्पवान् होने से जब परमात्मा जो चाहते हैं वह पदार्थ उसी समय में उनको प्राप्त होता है जैसे प्रह्लाद के कथन मात्र से भगवान् ने नृसिंह शरीर को धारण करके भक्त का संरक्षण किया इयास्तु भेदः जीव को भी शरीर संबन्ध होता है तथा परमेश्वर में-ईश्वर को भी शरीर संयोग होता है । इन दोनों का भेद अर्थात् विशेषता यही हैं कि जीव को तो कर्म पराधीन होने से कर्म के अनुकूल अर्थात् कर्म प्रयोज्य जो प्राकृत शरीर है तादृश लौकिक शरीर के साथ संबन्ध होता है कर्मफल सुखदुःखादिकों का अनुभव करने के लिये । और परमेश्वर का तो कर्मानधीन होने से स्वाभिप्रेत अप्राकृतिक लोकोत्तर दिव्य विलक्षण शरीर का संबन्ध होता है । (शरीरवत्व को जीववत्व का साधक कहा गया था वह प्राकृत शरीर को जीववत्व के साथ व्याप्ति है नतु सामान्यत ? शरीर को तत् जीवत्व साधकता है ।) अतएव परमेश्वर को शरीरोपाधिक दुःखादिकों का अनुभव नहीं होता है । दुःखाद्यनुभव तो कर्म जनित प्राकृत शरीर को धारण करने वाले जीव को ही होता है ऐसा दार्शनिक विद्वानों का मन्तव्य हैं । इस बात को श्रुतियां भी पुष्ट करती हैं '**यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्**' (मु. ३।१।३) जब यह उपासक जीव सुवर्ण सदृश वर्ण विशिष्ट जड चेतन साधारण सकल जगत् के कर्त्ता सबके ऊपर शासन करने वाले ब्रह्म अर्थात् हिरण्यगर्भ का भी उत्पादक पुरुषाकार परम पुरुष को

परमात्मन एव तादृशधर्मवत्वादादित्याद्यन्तःस्थः पुरुषः परमात्मैव न जीवः ।

यत्तूक्तं रूपवत्वशरीरवत्वश्रवणादयं जीव एवेति । नैष दोषः

कर्तुं शक्नोतीति । एतादृशदिव्यस्थानस्य कालापरिच्छेद्यत्वात् तादृश-दिव्यस्थानस्य नित्यतापि सिद्धाभवतीति तदत्र स्वपूर्वाचार्यदिव्यप्रवन्ध-मप्युदाहरत्याचार्यः तथैवेत्यादि अतिरोहितार्थकाः श्लोका इति न तन्यते ।

इतः पूर्वप्रकरणे इतिहासपुराणादिवचनैः परमपुरुषस्यरूपवत्वादिकं साधितं तथा नित्यसूरिदिव्यलोकादिकस्यापि वर्णनं कृतम् । अतः परं भगवतो दिव्यरूपस्य सिद्धिर्वेदान्तसूत्रकारमहर्षिर्व्यासोऽपि स्वसूत्रेण प्रतिपादितवानिति दर्शयितुं प्रक्रमते केवलं परब्रह्मणः श्रीसीतानाथस्य इत्यादि । 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः' इत्यादिविषयवाक्यावगतः पुरुषो हिरण्यकेशादिमान् श्रूयते तत्र संशयः । तत्रादित्यमण्डलान्तर्वर्त्ती पुरुषो जीव एव कुतः ? जीव एव कर्मबलेन हस्तपादादिघटितशरीरवान् रूपवांश्च न तु परमात्मा संभवति,

प्रत्यक्ष समानाकार ध्यानापरापर्याय ज्ञान के द्वारा जानता है तब वह साधक प्राकृतिक संसार का साधारण कारण पुण्यः पाप का विनाश करके परम पद को प्राप्त कर जाता है **'रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तु पुरुषं परम्'** स्वाप्निक ज्ञान सदृश ध्यान से सुवर्ण सदृश कान्तिमान परम पुरुष परमात्मा को जानों । **'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः'** (य,रु.११) इस परम पुरुष परमात्मा के मुख से ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई बाहू से क्षत्रिय सर्व शासक जातीयक लोक पैदा हुए इत्यादिक श्रुति प्रमाण है । यहां **'यदापश्यः पश्यते रुक्मवर्णम्'** इत्यादि श्रुति से जीव को परम पुरुष के दर्शन के बाद में शुभाशुभ रूप पुण्य पाप का विनाशपूर्वक ब्रह्म परमपुरुष परमात्मा श्रीसीतानाथ को प्राप्ति हो जाती है ऐसा बतलाया गया इसमें ब्रह्मयोनि तथा रुक्मवर्ण पद से स्वकीय नाभिकमल के द्वारा कार्य ब्रह्म हिरण्यगर्भ का कारण हैं । इस मुक्त पुरुष से प्राप्य जो पर ब्रह्म महापुरुष हैं वे शरीरवान् तथा रूपवान् हैं अन्यथा परम पुरुष के नाभिकमल से जो हिरण्य गर्भ की उत्पत्ति कही गई है उसकी उत्पत्ति नहीं होगी । अतः

नहि शरीरवत्वं जीवत्वं कर्मवश्यतां च साधयितुमीष्टे । तस्य जीवत्वाभाववति कर्मवश्यत्वाभाववति च विपक्षेपि सत्वात् । सत्य सङ्कल्पस्य परमात्मनः स्वेच्छयैव शरीरसम्बन्धसंभवात् । इयांस्तुभेदः । जीवानाङ्कर्मपारवश्यात्तदनुगुणप्राकृतस्यैव शरीरस्य

तस्य शरीरादिकारणीभूतशुभाशुभकर्मसंबन्धाभावेन परमेश्वरस्य श्रुतिघटक-पुरुषपदेन ग्रहणासंभवादिति पूर्वपक्षः ।

एतादृशपूर्वपक्षं निराकृत्य श्रुतिघटकपुरुषः परमात्मैव न तु जीव इति साधयितुं सिद्धान्तसूत्रमाह सूत्रकारः-**'अन्तस्तद्धर्मोपदेशादिति ।'** आजित्य-मण्डमण्डलवर्त्ती पुरुषो दृश्यते स परमात्मा श्रीसीतानाथ एव नान्यः । यतः यो हि समस्तस्य जगत उत्पत्तिस्थितिप्रलयहेतुर्नित्यनिर्दोषः समस्तकल्याण-गुणाकरश्च स एव भगवान् सूर्यमण्डलेऽवस्थितः । श्रुतिरेवमेव वदति 'स सर्वेषां लोकानामीष्टे सर्वेषां कामानाम्' 'स एव सर्वेभ्यः पापेभ्य उदितः'

हिरण्यगर्भ का नाभिकमल से उत्पत्ति श्रवण अनुपपद्यमान होकर के परम पुरुष में शरीरवत्व तथा रूपवत्व की सिद्धि होती है । ऐसा उपर्युक्त श्रुति घटक तत्तत्पदों से अभिव्यक्त होता है । अतएव ब्रह्मयोनि तथा रुक्मवर्ण ये दोनों विशेषण सार्थक होते है ।

एवम्-**'स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च'** इस श्वेताश्वतरीय श्रुति से यह सिद्ध होता है कि स्वाभाविक स्वतः सिद्ध ज्ञान बल क्रिया से युक्त जो परम पुरुष का दिव्य शरीर है तथा तादृश शरीर विशिष्ठ जो रूपादिक है उनमें स्वाभाविकत्व अर्थात् साहजिकत्व की उपपत्ति होने से नित्यत्व भी सिद्ध होता है । अर्थात् परमपुरुष जो शरीर तथा तादृश वृत्तिक रूपादिक वह नित्य है । क्योंकि शरीर को उद्देश्य करके उसमें स्वाभाविक ज्ञान बल क्रिया का कथन किया गया है ।

इसलिये उपर्युक्त श्रुतियों से परम पुरुष के शरीर में नित्यत्व की सिद्धि होती है । अतएव श्रुत्यर्थ प्रकाशन परक जो इतिहास तथा पुराण स्मृत्यादिक ग्रन्थ हैं उनमें जगह

सम्बन्धः। परमेश्वरस्य तु कर्मानधीनत्वेन स्वाभिमताप्राकृतदिव्य-शरीरग्रहणमिति। अतएव न तस्य शरीरकृतदुःखाद्यनुभवः। स च कर्माधीनप्राकृतशरीरग्रहीतुर्जीवस्यैवेति दर्शनविन्मतम्। तथा च श्रुतयः 'यदा पश्यः पश्यतेरुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्' (मुण्ड ३।१।३) 'रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तु पुरुषं परम्'

अर्थात् सूर्यमण्डले परिदृश्यमानः पुरुषः सर्वलोकानां शासको नियन्ता तथा सर्वकामानां सर्वफलानां नियामकः। अयं सर्वपापेभ्यो रहितः इत्यादिकाः स्वासाधारणाः स्वेतरविलक्षणाः शास्त्रे प्रतिपादितास्ते आदित्य-मण्डलान्तर्वर्त्तिपुरुषे उपदिश्यमानः स पुरुषः परमात्मैवेति साधयन्ति। उपर्युक्ताः धर्माः परमेश्वरस्यैवेति श्रुत्यन्तरेभ्योऽपिज्ञाताः भवन्ति। 'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः' अयं परमात्मा सर्वान् स्ववशेस्वाधिकारे स्थापयति सर्वं शास्ति च। 'अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघित्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः' अयमर्थः योयंसर्वनियामकः परमात्मा स स्वरूपतः सर्वपा-परहितो जरारहितो मृत्युविवर्जितः सर्वथा सर्वप्रकारकशोकरहितो बुभुक्षापि-पासाभ्यामस्पृष्टस्तत्कारणप्राकृतदेहरहितत्वादित्येवं प्राकृतशरीरमूलक-धर्मराहित्यं दर्शयित्वा परमात्मनः स्वरूपनिरूपकधर्मान् दर्शयति 'सत्यकामः

जगह पर भगवान् के दिव्यमङ्गलमय विग्रह शरीर का जो वर्णन किया गया है वह भी संगत होता है। (अर्थात् यदि भगवान् साकार न हों तो श्रुति स्मृति इतिहासादिक में जो भगवान् के शरीर का वर्णन मिलता है वह सब अनर्थक हो जायगा अथवा तत् तत् श्रुत्यादिक वचनों का अर्थान्तर परकत्वमानना पडेगा यह तो ठीक नहीं हैं क्योंकि वाल्मीकि महर्षि ने कहा है **'वाचमर्थान्तरेगताम्'** इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि शब्दों का अर्थान्तरपरकत्व दोष है। ऐसा होने से अर्थात् परम पुरुष को नित्य दिव्य विग्रह है ऐसा सिद्ध होने पर यह सिद्ध होता है कि आदित्य के अभ्यन्तर में पूर्व वर्णित विग्रहवान् जो पुरुष परिदृश्यमान होते हैं वे परमात्मा ही हैं, यहां तक भाष्यानुवाद हैं।

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः' (यजुः रु ११। इत्याद्याः। यदा पश्येति श्रुत्या जीवस्य तद्दर्शनानन्तरं पुण्यपापविनाशपूर्वकब्रह्मप्राप्तिर्बोधिता। तत्र ब्रह्मयोनिरुक्म-वर्णपदाभ्यां स्वनाभिजपद्मद्वारा कार्यब्रह्मणोहिरण्यगर्भस्य

सत्यसङ्कल्पः सर्वकामसंपन्नः सर्वकमनीयनित्यभोग्यभोगपदार्थैरनवरतं संपन्नस्तथा सत्यसङ्कल्पवांश्चेति। एवम्-'विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं (दाशरथिम्) हरिम्' अयमर्थः-अयं परमात्मा श्रीरामः सर्वेभ्यः श्रेष्ठा गुणस्वरूपाभ्यां नित्यश्च सर्वभावविकाररहित इत्यर्थः। तथा जडचेतनसाधारणविश्वशरीरकः सर्वशेषी, तथा स एव परमात्मा श्रीसीतानाथो नारायणहरिपदवाच्यः। 'पतिं विश्वस्यात्मेश्वरम्' अर्थात् परमात्मा श्रीरामसर्वस्य स्वामी अधिपतिः सर्वात्मन

इस प्रकार से सूत्रकार ने कहा कि आदित्यादिमण्डल के मध्य में जो पुरुष दृष्ट होता है वह परमात्मा ही है क्योंकि सर्वलोक दर्शितृत्वादि परमात्मा का धर्म उसमें उपलब्ध है। तथा यह अर्थ एतदन्य प्रमाण से भी सिद्ध होता है **'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः'** परमात्मा पदार्थ मात्र को अपने वश में रखनेवाले हैं। तथा सवके ऊपर शासन करने वाले हैं। **'अपहतपाप्मा'** इत्यादि अर्थात् परमात्मा श्रीसीतानाथ पाप जरा मृत्युशोक बुभुक्षा तथा पिपासादिक दोषो से रहित हैं नित्य भोग्य पदार्थों से संपन्न रहते हैं और सत्य सङ्कल्प वाले हैं। **'विश्वतः परमं नित्यं विश्वं नारायणं हरिम्'** अर्थात् परमपुरुष श्रीसीतानाथ जगत् से सब से श्रेष्ठ हैं नित्य हैं विश्व शरीरक हैं सब के चेतनाचेतनों के शेषी हैं एवं नारायण श्रीहरि प्रभृतिक शब्दों से वाच्य होते हैं। एवम् **'पति विश्वस्यात्मेश्वरम्'** अर्थात् ये परमपुरुष श्रीसीतानाथ समस्त जगत् के स्वामी हैं सब आत्मा के ईश्वर नियामक हैं। पूर्वप्रदर्शित अनेक श्रुति तथा तदर्थ प्रकाशक इतिहासादिक प्रामाणिक बाक्यों से सिद्ध होता है कि 'अपहत पाप्मत्वादिक परमेश्वर का असाधारणधर्म है। और आदित्यमण्डलस्थ पुरुष में रहनेवाले पुरुष में इन सब गुणों का वर्णन किया गया है अतः आदित्य मण्डलस्थ पुरुष परमात्मा ही हैं। पूर्वोक्त प्रकार से सूत्रकार श्रीब्रह्म सूत्रकार ने सूर्यमण्डल में रहनेवाले दिव्य मङ्गलमय विग्रह

कारणत्वेनमुक्तप्राप्यस्य ब्रह्मणः शरीरवत्वं रूपवत्वं च बोध्यते । एवम्-'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' (श्वे. ६।८।) इतिश्रुत्या स्वाभाविकज्ञानबलक्रिया शालिनस्तच्छरीरस्य तच्छरीरनिष्ठरूपस्य

ईश्वरः । इतिप्रदर्शितानेकवाक्येन सत्यकामत्वादिका ये धर्मास्ते परमेश्वरस्य स्वरूपनिरूपका असाधारणधर्माः । आदित्यमध्यान्तर्वर्त्तिपुरुषे प्रयुज्यमाना धर्माः । आदित्यमण्जलवर्त्तिपुरुषः परमेश्वरः सीतानाथ एवेति गमयन्ति ।

उपर्युक्तप्रकारेण सूर्यमध्यवर्त्तिदिव्यमङ्गलमयविग्रहवान् परमात्मैवेति परमेश्वरस्याकारवत्वं व्यवस्थापितवान् । एतेन वेदान्तवेद्योनिराकारपरमात्मेति यन्मतंतन्निरस्तम् । पूर्वप्रदर्शितश्रुतियुक्तिसूत्रादिभिर्विग्रहवत्वस्य साधनादितिदिक्

येन वेदेन परमपुरुषस्य स्वरूपपरिजनादिकं साधितं स वेदः पौरुषेयोऽपौरुषेयोवा ? पौरुषेयत्वेऽस्मदादिवाक्यवत् तत्राप्यनाश्वास एव । एवमनित्योनित्यो वा ? आद्ये कालत्रयातीतवस्तुवोधकत्वं न स्यात् । एवमप्रमाणभूतः प्रमाणो वा ? आद्येरथ्या पुरुषवाक्यवत् तत्राप्यनाश्वास एव । इत्यादिशङ्कामपनीय वेदस्यापौरुषेयत्वं नित्यत्वं परमप्रामाण्यं च व्यवस्थापयितुं प्रक्रमते शक्तिद्वाराऽर्थोपस्थापकपद इत्यादि । अयंभावः-यद् वृत्त्याऽर्थबोधकं तत्पदं वर्णसमुदायात्मकम् । वृत्तिश्च द्विधा शक्ति लक्षणान्यरूपा तत्र घटादिपदं

वाले पुरुष को परमात्मा सिद्ध किया है । वेद जो कि अपौरुषेय तथा स्वतः प्रमाण है एतादृश वेद के द्वारा परमतत्वरूप भगवान् श्रीसीतानाथ की सिद्धि होती है; ऐसा कहा गया हैं । इसमें जिज्ञासा होती है कि वेद पौरुषेय है अथवा अपौरुषेय है ? यदि अपौरूषेय है तो अपौरुषेयत्व किस प्रकार से सिद्ध होता है तथा वेद में प्रामाण्य किस प्रकार से सिद्ध होता है ? इन प्रश्नों का समाधान करने के लिये उपक्रम करते हैं '**शक्ति द्वाराऽर्थोपस्थापकः**' इत्यादि । शक्ति वा लक्षणा से अर्थविशेष स्थापक जो वर्ण समुदाय है उसे पद कहते हैं, इन पदों का जो समुदाय है वह पदार्थों का जो पारस्परिक संबन्ध तादृश संबन्ध का बोधक को वाक्य कहते हैं । इन पदों का उच्चारण क्रम जहां उच्चारयिता पुरुष की इच्छा के अधीन होता है, एतादृश पद समुदाय वाक्यात्मक शब्द

च स्वाभाविकत्वोपपत्त्यानित्यत्वसिद्धेः । अतएव श्रुत्युपवृहणी-भूतेतिहासपुराणादिषु बहुशस्तत्र तत्र भगवतो दिव्यमङ्गल-

शक्त्याकम्बुग्रीवादिमत्वरूपमर्थं बोधयति । लक्षणया च गङ्गापदं तीरमुपस्थापयति । ततश्च शाब्दबोधः । एतादृशपदसमुह एव वाक्यप-दव्यपदेश्यः, वेदोऽपि वाक्यसमूह एव । तत्र यस्य वाक्यस्यानुपूर्वी पुरुषेच्छाधीना तद्वाक्यं पौरुषेयवाक्यम् । यत्र तु आनुपूर्वीनोच्चारयितुरिच्छा-धीनातद्वाक्यमपौरुषेयम् । अर्थात् सजातीयोच्चारणसापेक्षोच्चारण-विषयत्वमपौरुषेयत्वम् । तथा सजातीयोच्चारणनिरपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वम् । तत्र वेदवाक्यं नोच्चारयितुरिच्छाधीनोत्पत्तिकम्, किन्तु यादृशानुपूर्वीविशिष्टं वेदमवदत् प्रथमकल्पे तादृशानुपूर्वीविशिष्टमेव कल्पान्तेपि वदति । किं वहुनाऽद्यापि तादृशानुपूर्वीविशिष्टमेव वेदं परंपरयाऽध्यापकोपि

को पौरुषेय कहते हैं और जिन शब्दों का उच्चारण क्रम वक्ता के इच्छा मूलक नहीं होता है तो वे शब्द अपौरुषेय कहलाते हैं । अर्थात् स्वकीय अर्थों का बोधक पदात्मक शब्दों का जो समुदाय है वे वाक्य कहलाते हैं वाक्य में कम से कम दो पद तो अवश्य रहते हैं, तीन चार और अनेक भी रहते हैं, इनको वाक्य कहते हैं । वाक्यघटक प्रत्येक पद का अर्थ शक्ति लक्षणादि द्वारा वाक्यार्थ बोध के पहले से ही ज्ञात रहता है अन्यथा पदार्थोपस्थिति के अभाव में शब्द बोध ही नहीं होगा । '**पदज्ञानतु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः । शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी ।**' ऐसा नियम हैं । वाक्य उन पदार्थों के पारस्परिक संबन्ध को बतलाता है, यह संबन्ध पूर्व से विदित नहीं रहता है यह संबन्ध ही वाक्यार्थ कहलाता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि पदार्थों का जा पापस्परिक संबन्ध विशेष है उनको बतलानेवाला पद समुदाय ही वाक्य है वाक्य घटक इन पदों का उच्चारण क्रमिक होता है । जिन पदों का उच्चारणक्र वक्ता के इच्छानुसार होता है वह वाक्य पौरुषेय कहलाता है, और जहां पदों का उच्चारणक्रम उच्चारयिता के अधीन नहीं होता है वे वाक्य अपौरुषेय कहलाते हैं । यथा कालिदासादिक वाक्य कवि के अधीन होने से पौरुषेय है और वेद वाक्य का उच्चारण वक्ता के अधीन

विग्रहस्योपवर्णनं संगच्छते । तथा चादित्याद्यन्तर्गतः पुरुषः परमात्मैवेति । (आनन्दभाष्यम् १।१।२१)

वदति । वेदे पुरुषस्वातन्त्र्यं नास्ति । पौरुषेये तु पुरुषाणां स्वतन्त्रता, यथा कालिदासादिवाक्ये अतस्ते पौरुषेयाः यथा रघुवंशादिकाः । लौकिकवाक्यस्य पुरुषगतदोषसंपृक्तत्वादप्रामाणिकत्वशङ्का भवति, वेदे तु पुरुषाभावान्न तस्य तथात्वमिति । तत्र शब्दनित्यतावादिनः शब्दनित्यत्वस्वीकारेण शब्दसमुदायरूपस्य वेदस्य नित्यत्वमेवाङ्गीकुर्वन्ति । शब्दो जातो विपन्नश्चेति प्रतीतिराविर्भावतिरोभावेन भवति । 'यो ब्रह्माणमित्यादि । यः परमेश्वरः कल्पादौ ब्रह्माणं हिरण्यगर्भमुत्पाद्य तस्मै वेदं ददाति, तथा 'वेदस्त्वनित्यया वाचास्तुतिंकुरु' इत्यादिवचनेन च वेदस्य नित्यत्वं सिद्ध्यतीति । एवं

नहीं है क्योंकि आज तक निश्चित नहीं हो सका कि वेद का प्रथम वक्ता कौन है ? जिनका उच्चारण क्रम पुरुष की इच्छा से नहीं होता है किन्तु पूर्व के उच्चारण को जानकर तज्जनित संस्कार के अनुसार होता है क्रम में परिवर्तन नहीं होता है ऐसा शब्द अपौरुषेय है वह वेद है इसमें पुरुष की स्वतन्त्रता नहीं है । ऐसा '**यत्नतः प्रतिषेध्या नः पुरुषाणां स्वतन्त्रता**' कहा है । सिद्धान्त में वेद को अपौरुषेय तथा नित्य माना गया है । वेद में पुरुष का अभाव होने से वक्तृगत कोई दोष नहीं होने से निर्दोष वेद है तथा नित्य है । सदा से विलक्षण आनुपूर्वी में विद्यमान अपौरुषेय पद समुदायरूप वेद हैं । ये वेद ऋक् साम यजु तथा अथर्व इस प्रकार से चार हैं । इन वेदों में प्रत्येक वेदों की शाखा अनेक हैं । ये वेद विधि अर्थवाद तथा मन्त्ररूप में विभाजित हैं । ये अपौरुषेय निर्दोष वेद जिन अर्थों का प्रतिपादन करते हैं वे मिथ्या नहीं हैं क्योंकि यहा वक्ता में किसी प्रकार का दोष नहीं हैं । यदि वक्ता में किसी प्रकार का दोष रहे तव ही मिथ्यार्थ प्रतिपादित होने की संभावना रहती है अन्यथा नहीं । ये वेद समुदाय परम पुरुष श्रीसीतानाथ के स्वरूप तथा उनके उपासनादिकों का प्रकार तथा आराधित परम पुरुष से प्राप्तव्य फलों का प्रतिपादन करते हैं । जिस तरह भगवान् नित्य हैं उसी तरह भगवान् का स्वरूप तदाराधन तथा उपासित देव से प्राप्तव्य फल प्रभृति पदार्थों का प्रतिपादक वेद भी नित्य हैं ।

卐 वेदस्यापौरुषेयत्वेन स्वतःप्रामाण्यसमर्थनम् 卐

शक्तिद्वाराऽर्थोपस्थापकपदसमुदायानां संसर्गविशेषज्ञापक-

प्रमाणान्तरेणासिद्ध्यतोऽर्थस्य प्रतिपादनात्, तथा प्रत्यक्षादिप्रमाणान्तरेणाबाधितार्थस्य, अपूर्वस्यार्थस्य प्रतिपादनेन स्वतः प्रमाणभूता इति व्यपदिश्यन्ते । प्रमाणान्तरप्राप्तार्थस्य प्रतिपादनेऽनुवादकत्वं स्यादग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादिवाक्यवत् । तथा प्रमाणान्तरबाधितार्थस्यार्थस्य प्रतिपादने 'अग्निनासिञ्चति' इति वाक्यवद्बाधितार्थबोधकत्वेन तद्वदेवाप्रामाणिकत्वं स्याल्लक्षणानुसरणं वा कर्तव्यं स्यात् । यथा 'आदित्यो यूपः' इत्यत्रादित्ययूपयोस्तादात्म्यस्य प्रत्यक्षप्रमाणापहृतविषयतया तत्रादित्यपदस्य लक्षणामाश्रित्य आदित्यवदुज्वलो यूप इत्यर्थकरणे जघन्या वृत्तेराश्रयणीयता भवति । तथैव

वेद अनेक हैं तथा अति कठिन हैं तो इनके अर्थों का सरलता से साधरण मनुष्य को भी ज्ञान प्राप्त हो इसलिये वेदार्थ का सरलता पूर्वक ज्ञान कराने के लिये भगवान् की प्रेरणा को प्राप्त कर के महर्षि लोगों ने प्रत्येक कल्प में लोकोपकार के लिये वेदार्थ का स्मरण करके वेदार्थ को स्पष्ट करने के लिये इतिहासादिक उपबृंहण (अर्थ प्रकाशक) ग्रन्थका निर्माण किया । इसमें वेद का जो बिधिभाग है उसके अर्थ को स्मरण करके धर्म शास्त्रों का निर्माण हुआ । तथा वेद का जो अर्थवाद तथा विधि भाग है उसका जो अर्थ उसको स्मरण करके इतिहास तथा पुराणों का निर्माण किया गया है ।

लौकिक प्रयोग में प्रयुज्जमान लौकिक जो रामादिक शब्द हैं वे वैदिक शब्दों से बिल्कुल भिन्न नहीं हैं । वैदिक जो शब्द है उनको वेद से निकाल कर के तत्तदर्थ विशेष के वाचक रामादि नाम के रूप में लौकिक प्रयोग के लिये व्यवस्थित कर दिया गया है । यह वात भी पूर्ववत् परमेश्वर की प्रेरणा से प्राचीन महर्षि जो कि वेदार्थ के द्रष्टा हैं उन ने तदर्थ का स्मरण करके ऐसा किया है । इस तरह अनादि परंपरा से वैदिक शब्द का ही संस्कृत लोक में तत्तत् अर्थ के अर्थात् राम कृष्ण देवादिक अर्थों के वाचक रूप से प्रयोग होता आ रहा है मूल कारण तो सबका वैदिक शब्द ही है । अर्थात् इन लौकिक शब्दों का मूल स्वरूप तो वौदिक ही शब्द है ! (अपभ्रंश भाषा के शब्द भी संस्कृत भाषा के शब्दों से ही कुछ विकारयुक्त होकर के प्रयुज्यमान होते हैं ।) यद्यपि लौकिक

त्वेन वाक्यशब्दवाच्यत्वम्, तेषां वाक्यानामुच्चारणक्रमो यत्रो
च्चारयितृपुरुषेच्छापूर्वको भवति तादृशाः शब्दविशेषाः पौरुषेयाः ।
येषां तु शब्दानां स उच्चारणक्रमो न पुरुषेच्छामूलकोऽपि तु
पूर्वपूर्वोच्चारणक्रमजनितसंस्कारपूर्वकस्ते शब्दा अपौरुषेयास्ते एव

विध्यादिवेदानां प्रामाणान्तरबाधितार्थप्रकाशनपरत्वे लक्षणावृत्तेराश्रयणीयता
स्यादित्यतः प्रमाणान्तराबाधितार्थमेव बोधयन् वेदः स्वतः प्रमाणमेवेति ।

इत्थमानुपूर्वीविशेषरूपेण व्यवस्थिताक्षरसमुदायरूपा वेदाः
सामादिभेदेन चतुर्धाभिद्यन्ते, तेषां प्रत्येकमपरिसङ्ख्येयाः शाखा भवन्ति ।
तदिमे विध्यर्थवादमन्त्रात्मका वेदाः परब्रह्मस्वरूपश्रीसीताकान्तस्य स्वरूपं
तस्याराधनादिप्रकारादिकमुपासनादिकंतथा समाराधितपरमपुरुषात् यत्प्राप्तव्यं
फलविशेषं तदपि ते वेदाः प्रकाशयन्ति । तथा वेदानामपरिसङ्ख्येयत्वात्
कठिनत्वाच्चपरमेश्वराज्ञप्तमहापुरुषायोगिनः परमेश्वरकृपया सर्वकल्पेसा-

संस्कृत शब्दों में तथा वैदिक शब्दों में भेद देखने में आता हैं । यथा लोक में अकारान्त
पुलिङ्ग देवादिक शब्दों में प्रथम बहुवचन में **'देवाः रामाः'** इत्यादि रूप होता है और
इसी अकारान्त देव शब्द का प्रथमा वहुचनहु में जस प्रत्यय को **'आज्जसेरसुक्'** इस
वैदिक प्रक्रियोक्त सूत्र से असुक् आगम करके **'देवासोब्राह्मणासोविप्रासः'** इस तरह
वेद में प्रयोग होता है । तब किस तरह कहते हैं कि वैदिक शब्द तथा लौकिक शब्द में
भेद नहीं हैं । तथापि उभयत्र शब्द तो एक ही है जो वेद में है वहीं लोक में भी है । वैदिक
आनुपूर्वी की अपेक्षा लौकिक शब्दों की आनुपूर्वी में किंचिद् भेद हो जाता है जिसका
निरूपण निरुक्त तथा पाणिनीय व्याकरणादिक में किया गया है । यह अल्पभेदस्वरूप
में क्षतिकारक नहीं होता है । इस तरह आचार्यजी ने वेद में अपौरुषेयत्व तथा प्रामाण्य
को सिद्ध कर के सूचित किया कि वेद प्रतिपादित परम पुरुष तथा उनका उपासनादि
प्रकार एवं उससे होने वाले फलादिक सब पदार्थ पारमार्थिक सत्य है मिथ्या नहीं ।
इतिहास पुराणादिक जो वेदार्थ के प्रकाशक हैं इनकी सहायता नहीं लेकर वेद का स्वकपोल
कल्पित अर्थ कर के किसी पदार्थ को सत्य वा मिथ्या कह देना अनुचित है । **अलमधिकेनेति ।**

वेदाः । तादृशानुपूर्वीविशेषेणव्यवस्थिताः पदसमुदायरूपा वेदा
ऋग् यजुः सामाथर्वणभेदाः प्रत्येकं तेऽनन्तशाखाः । ते इमे
विध्यर्थवादमन्त्रादिलक्षणाभगवतो ब्रह्मरूपस्य श्रीसीतानाथस्य
स्वरूपं तथा तदाराधनादिप्रकारमपि प्रतिपादयन्ति । ते सर्वेऽपि वेदा

धारणजनानामुपकाराय पूर्वधीतवेदार्थं स्मृत्वा विध्यर्थवादादिमूलकध-
र्मशास्त्रेतिहासपुराणादिकं निर्मितवन्तः । तत्र वेदस्य विधिभागीयार्थं
स्मृत्वाधर्मशास्त्रस्य निर्माणमकरोत् तथा वेदान्तर्गतार्थवादमन्त्रभागयोरर्थं
स्मृत्वा इतिहासपुराणयोर्निर्माणमभवदिति । येऽपि लौकिकाः शब्दास्तेऽपि
वैदिकशब्देभ्यो नात्यन्तं भिन्नाः किन्तु वैदिकान् शब्दान् वेदेभ्य उद्धृत्यत-
त्तदर्थविशेषवाचकनाम्ना लोके नियतीकृताः । एतदपि पूर्वानुसारेणैव सर्वं
कृतमिति । अनेन क्रमेण वैदिका एव शब्दा लोके तत्तदर्थवाचकरूपेण
प्रयुक्ता भवन्ति, लौकिकशब्दस्यमूलभूता वैदिका एव शब्दा इति । यद्यपि

गत प्रकरण पर्यन्त प्रकरणों में जिन अर्थों का प्रतिपादन किया हैं वे सब पदार्थ
प्रायः अतिविस्तृत रूप से प्रतिपादित होने के कारण सकल साधारण को जानने में
क्लिष्ट प्राय हैं तो अल्पमति को भी सरलता से ज्ञान हो इसलिये आचार्यजी उन सब
अर्थों का सङ्ग्रह करके उपसंहार करने के लिये कहते हैं **'तदेवम्'** इत्यादि । इस प्रकार
वेद के अर्थ का प्रकाशित करने वाला जो धर्मशास्त्र इतिहास पुराण इनसे युक्त जो
साङ्गवेद है उससे भगवान् श्रीसीतानाथ ही मुख्य रूप से प्रतिपादित होते हैं जो कि
सकल जगत् के कारण हैं तथा जड चेतन साधारण सब पदार्थ के शेषी होने से सर्व
शरीरक कहलाते हैं ऐसा पूर्व प्रकरणों में बतलाया गया है । अर्थात् उपबृंहणेतिहासादि
से उपबृंहित सांग वेदों ने परब्रह्म श्रीसीतानाथ को इस तरह बतलाया है कि भगवान्
सर्वदोष से रहित हैं एवं सर्वदोष के विनाशक हैं परमेश्वरेतर जितने जड चेतन जागतिक
पदार्थ हैं उनसे भगवान् सर्वथा विलक्षण भिन्न हैं । तथा सर्व परिच्छेद रहित जो ज्ञानानन्द
उसके स्वरूप हैं अति उत्कृष्ट असङ्ख्येय कल्याण गुणों के सागर हैं त्रिपाद विभूतिमान
हैं । लीला विभूति में वर्तमान चेतनाचेतन पदार्थ उनकी लीला के उपकरण है एतादृश

नित्या एव । 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै' 'वाचाविरूपनित्यया' इत्यादिश्रुतेः । 'लेभिरेतपसा-पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा' इत्यादिस्मृतेश्च । स्वार्थबोधने प्रमाणा-न्तरानपेक्षत्वप्रमाणान्तरावाधाच्च स्वतः प्रमाणभूतास्ते वेदाः । एतेषामसंख्येयत्वादतिकाठिन्याच्च तेन परमपुरुषेण नियुक्ता

लौकिकवैदिकशब्दयोः स्वल्पो भेदस्तथापि न स क्षतिकारक इति ।

वेदार्थचन्द्रिकाग्रन्थे प्रतिपादितपदार्थसमाहृत्यैकत्रैव दर्शयितुं येन लोकानां स्वल्पधियां सुखेनावबोधोभवत्वितीच्छया प्रकरणार्थमुपसंहर्तुकाम उपक्रमते तदेवं वेदार्थेत्यादि इतिहासो हि अर्थवादभागीयार्थप्रकाशनपरकः सङ्ग्रहग्रन्थो महाभारतादिः पुराणं मन्त्रभागीयार्थप्रकाशनपरकम्, विधिभा-गीयार्थप्रकाशनपरंकधर्मशास्त्रं च सर्वंचैतद्वेदार्थस्य प्रकाशनाय प्रवृत्तम् । एतेषां साहाय्येन यदर्थं प्रतिपादयति समग्रो वेदः स चार्थः 'सर्वफलप्रदौ चावां नित्यौ च सर्वशेषिणौ । नित्यलीला विभूत्योस्तच्चावां नाथौ श्रुतौ श्रुतौ' (वशिष्ठसंहिता) इथ्याद्यागमोक्तदिशा सर्वेश्वरश्रीसीताकान्त एव । स च

भगवान् मुख्यत्व रूप में वेद प्रतिपाद्य हैं ।

अभेद निर्देशक जो वाक्य हैं उनसे एतादृश महामहिम भगवान् प्रतिपादित होते हैं । तथाहि '**सर्वंखल्विदंब्रह्म**' यहां जितने अचेतन पदार्थ विद्यमान हैं वे सब ब्रह्म ही हैं अर्थात् ब्रह्म के शरीर होने से शरीर शरीरी भाव संबन्ध हैं । '**ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्**' ये सब पदार्थ ब्रह्मात्मक ही हैं । अर्थात् ब्रह्म के शरीर हैं । '**तत्त्वमसि श्वेतकेतो !**' हे सोमपानार्ह श्वेतकेतु ! तुम तदात्म्यक ब्रह्म ही हो अर्थात् ब्रह्म के साथ तुम्हारा शरीर भाव संबन्ध होने से तुम ब्रह्म ही हो । '**एनमेकेबदत्यग्निं मरुतोऽन्ये प्रजापतिम् । इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥**'

अर्थात् इस परमात्मा श्रीसीतानाथ को कोई कोई वेदभाग तो अग्नि कहते हैं अर्थात् अग्नि रूप से परमात्मा का उपासन करो ऐसा कहते हैं । उससे अन्य कईक वेद भाग इस परमात्मा को प्रजापति कहते हैं और तदन्य कईक वेदभाग परमात्मा को

महात्रऋषयः-प्रतिकल्पं लोकोपकाराय तपः प्रभावेण वेदस्यार्थं यथापूर्वं स्मृत्वा विध्यर्थवादमूलकधर्मशास्त्रमितिहासपुराणादिकं च व्यातेनुः । लौकिका अपि शब्दा वेदमूलका एवेतिदिक् ।

प्रकृतप्रकरणोपसंहारः

तदेवं वेदार्थप्रकाशनपरकेतिहासपुराणादिसहकृतवेदप्रतिपाद्यः सर्वेश्वरश्रीसीतानाथ एव । यश्च सकलजगतः कारणं सर्व

सकलहेयप्रत्यनीकः अर्थात् स च स्वयं सर्वदोषरहितः सर्वदोषविनाशकश्च अत एव स्वेतरसर्वभिन्नो विलक्षणस्तत्स्थितधर्माणामनुपलंभात् तत्रैवसद्भा-वादिति । तथा वेदान्तवेद्यो भगवान् 'सत्यंज्ञानमानन्दं' ब्रह्म इतिश्रुत्या ज्ञानानन्दस्वभावकः । साहजिकनिरतिशयानन्तमाङ्गलिकगुणसागरः स्वकीय-सत्यसङ्कल्पसाधितस्वरूपस्थितिप्रभृतिकचराचरोऽपरिच्छिन्नस्वभावकः ' स्वकीयलीलायां जडप्रपञ्चात्मकसर्गकः । एतादृशोभगवान् वक्ष्यमाणश्रुतिभिः प्रतिपादितः । तथाहि 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म' सर्वं परिदृश्यमानं स्थूलसूक्ष्म-साधारणजडचेतनात्मकंजगत् ब्रह्मैव ब्रह्मणः परमपुरुषस्य शरीरम् तेषांशरी-

बलाधिपति इन्द्र देवराज कहते हैं एतदन्य वेद भाग इस ब्रह्म को प्राण कहते हैं । कोई वेद भाग ब्रह्म परमात्मा को मरुत् वायु कहते हैं और कई एक वेदभाग अर्थात् उपनिषद वेदभाग इस परमात्मा को शाश्वत ब्रह्म कहते हैं ।

'ज्योतींषि शुक्लानि च यानि लोके त्रयो लोका लोकपालास्त्रयी च ।' त्रयोग्नयश्चाहुतयश्च पञ्च सर्वे देवा देवकी पुत्र एव । अर्थात् इस लोक में जो सूर्यचन्द्र अग्नि रूप तीन ज्योति हैं तथा भूरादिक जो तीन लोक हैं तीन लोकपाल हैं ऋग यजुः सामरूप जो तीन वेद हैं एवं आहवनीयादिक तीन अग्नि हैं और पांच प्रकार की जो आहुतियां हैं तथा सभी देव वर्ग हैं ये सब देवकी पुत्र भगवान् ही हैं । अर्थात् उपर्युक्त ये सब पदार्थ परमात्म स्वरूप ही हैं ।

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानिविष्णुर्गिरयोदिशश्च ।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदत्र यत्रास्ति च विप्रवर्य !

स्यशेषितया सर्वसशरीरक इति पूर्वप्रदर्शितम् 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' 'तत्त्वमसिश्वेतकेतो' 'एनमेकेवदत्यग्निमरुतोऽन्ये प्रजापतिम्' 'इन्द्रमेकेपरेप्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्' 'ज्योतींषि शुक्लानि च यानि लोके त्रयोलोका लोकपालास्त्रयी च। त्रयोग्नयश्चाहुतयश्चपञ्चसर्वेदेवा देवकीपुत्र एव' 'त्वं यज्ञस्त्वं

रीप्रकारी च भगवान् न तु तदुभययोः स्वरूपतोऽभेदोपितु शरीरशरीरिभावरूपेणाभेद इत्यर्थः।

'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' सर्वमिदं चेतनात्मकंवस्तुब्रह्मात्मकमेव न ततो व्यतिरिक्तम्, इत्यर्थः। 'तत्त्वमसिश्वेतकेतो !' हे श्वेतकेतो ! त्वं परमेश्वर-श्रीरामशरीररूपोऽसि न तद्भिन्नोसीत्यर्थः। 'तद्वाच्योऽत्रपरं ब्रह्म श्रीयुतो राघवः श्रुतौ। त्वद्वाच्यस्त्वच्छरीरी हि श्रीरामोऽत्रमतो बुधैः॥ देहाभिधायिशब्दा हि पर्यवस्यन्ति देहिनि।' (श्रीरामानन्दसिद्धान्तसारः ४५।४६।) इत्युक्तेः।

'त्वंयज्ञस्त्वं वषट्कार स्त्वमोंकारः परन्तपः !
ऋतधामा वसुः पूर्वोवसुनां त्वं प्रजापतिः॥
जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्।
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः॥

अयमर्थः हे परंतप मधुसुदन ! यह जो अग्निष्टोम वाजपेयादिक श्रौतयाग है तादृश यागस्वरूप आप ही हैं। यज्ञ में प्रयुज्यमान वषट्कार भी आप ही हैं तथा वेद शिरोभाग ओंकार स्वरूप भी आप ही हैं। प्रजा के पति तथा आठ वसुओं में सर्वप्रथम ऋतु धामा नामक वसु आप ही हैं। (देव विशेष में वसुओं की गिनती हैं) संपूर्ण चराचर स्थूल सूक्ष्म साधारण यह जगत् आपका शरीर अर्थात् आपके विशेषण रूप हैं आप सबके शेषी प्रकारी हैं। भूतल में जो स्थित जो स्थिरता सहनशीलता है वह आपकी ही स्थिरता है अर्थात् परमात्मा की जो स्थिरता है उसी स्थिरता का प्रतिभास पृथिवी में देखने को आता है। अग्निदेव आपका कोप है एवं श्री वत्स के समान चिह्न चन्द्रमा

वषट् कारस्त्वमोंकारः परन्तपः। ऋतधामावसुः पूर्वोवसूनां त्वं प्रजापतिः' 'जगत्सर्वंशरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्। अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः॥' 'ज्योतींषिविष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानिविष्णुर्गिरयोदिशश्च। नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं

'एनमेके वदत्यग्निं मरुतोऽन्ये प्रजापतिम्। इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्मशास्वतम्' अयमर्थः-एके कियन्तोवेदभागा ऋषयो वा एनम् वेदान्तप्रतिपाद्यम् परमपुरुषम् अग्निमितिवदन्ति, तदन्ये वेदभागा यत्र वायुदेवस्याधिक्येन प्रतिपादनेन तदनुयायिन एनं परमात्मानं वायुरूपेणैवोपासते। तदन्ये केचन वेदभागा एनमेव परमपुरुषं प्रजापतिरूपेणैव पूजनादिकंकुर्वन्ति। तथा तदन्ये केचन वेदभागा एनं परमात्मानमिन्द्रनाम्नैव ध्यानादिकं प्रतिपादयन्ति। तदन्ये केचन वेदभागाः प्राण इति भगवत एवोपासनं विदधति। तदन्ये औपनिषदास्तु तं परमात्मानं शाश्वतं ब्रह्मेति कथयन्तीत्यर्थः। 'ज्योतींषि शुक्लानि च यानि लोके त्रयो लोका

आपका प्रसाद हैं। 'ज्योतिंषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च। नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं यदस्ति यत्रास्ति च विप्रवर्य !॥

अर्थात् ज्योति अर्थात् प्रकाशमान जितने सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रादिक और वह्नि प्रभृतिक भौम अचित् पदार्थ हैं वे सब भगवान् विष्णु हैं। भुवन अर्थात् भूलोक से लेकर के ऊपर ऊपर पिद्यमान सत्यलोकान्त सात लोक अतल वितल से लेकर के पाताल पर्यन्त नीचे नीचे वर्तमान सात लोक सब मिला कर के चौदह लोक रूप जो भूवन हैं वे सब के सब विष्णु हैं अर्थात् एतत् सर्वस्वरूप विष्णु है तथा दण्डकादिक जो पुराणोक्त वन महावन हैं वे विष्णु ही हैं। हिमालयादिक पर्वत तथा पूर्व पश्चिमादिक जो दश दिशायें हैं ये सब भगवान् विष्णु हैं। नदी नद तथा लवणादिक सातों समुद्र भी विष्णु ही हैं। एवं स्वस्वरूप से विकार को प्राप्त नहीं करने वाला चेतन जीव समुदाय तथा सर्वदा विकारात्मक कार्य कारणोभय साधारण सर्वथा अचेतन जड़ पदार्थ ये सब

यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य !' इत्यादिचिदचिद्वस्तुनोः परमपुरुषेण सहाभेदनिर्देशपरकप्रकरणेषु सर्वशरीरतया सर्वप्रकारकः परमपुरुषः श्रीसीताकान्त एव सर्वैश्चिदचिदादिवस्तुवाचकशब्दैः प्रतिपादितो भवतीति प्रतिपादितम् ।

लोकपालास्त्रयी च । त्रयोग्नयश्चाहुतयश्चपञ्च सर्वेदेवा देवकीपुत्र एव ॥ इति॥

अस्मिन् लोके शुक्लानि भास्वररूपवन्ति ज्योतींषि सूर्यादिरूपाणि भूर्भुव इत्यादिकास्त्रयो लोका वरुणकुवेरादिकास्त्रयो लोकपालाः त्रयी सामादिकास्त्रयो वेदाः त्रय आवसथादिकास्त्रयोऽग्नयः पञ्चाहुतयस्तथा सर्वे इन्द्रप्रमुखा देवाः एतत्सर्वं भगवान् देवकीपुत्र एव अर्थात् श्रीकृष्णास्य शरीरभूतमेवेत्यर्थः ।

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोकारः परन्तप ! ।
ऋतधामावसुः पूर्वो वसूनां त्वं प्रजापतिः ॥

के सब विष्णु ही हैं अर्थात् विष्णु भगवान् सर्व स्वरूप हैं । '**वनानि विष्णुः**' इत्यादि अभेद निर्देश परक जो प्रयोग है उनमें सभी शब्दों से अर्थात् ज्योति भुवन वनादिक पदों से वर्तमान प्रत्येक शब्दों से सर्व शरीरक वे सर्वेश्वर परब्रह्म श्रीराम ही प्रतिपादित होते है । क्योंकि सर्वशरीरक होने से स्वकीय प्रकार रूप पदार्थों में सर्वदा विद्यमान रहते हैं। तो '**भुवनानि विष्णुः**' इत्यादि अभेद निर्देशों का प्रतिपादक विश्वरूप धारी भगवान् ही हैं।

उपर्युक्त तत्वों में से जो जड प्रपञ्च है वह प्रलयकाल में नाम तथा रूपात्मक विभाग को छोडकर स्वकीय मूलकारण जो त्रिगुंणात्मक प्रकृति रूप बनकर परम कारण परमात्मा में प्रलीयमान हो जाते हैं एवं भोक्तृ वर्ग चेतन समूह भी परमात्मा में प्रलीयमान हो जाते हैं नाम रूप विभाग को छोडकर के । और जब पदार्थों का सर्गकाल उपस्थित होता है तब परम कृपालु परमात्मा सत्य सङ्कल्पवान् स्व शरीर में प्रलीन इन जड चेतन पदार्थों को ये जड हैं ये चेतन हैं इस तरह उनका विभाग करके जड पदार्थों का मूलकारण अर्थात् सजातीयोपादान कारण जो प्रकृति है उस प्रकृति से पृथिव्यादिक आकाशान्त तत्व तथा भौतिकों को बनाकर के सर्जित इन जड प्रपञ्च में फल भोक्ता

'राम एव परंब्रह्म रामएव परन्तपः ।
राम एव परंतत्त्वं श्रीरामोब्रह्मतारकम्' इतिश्रुत्युक्तेः ।

एवं सत्यसङ्कल्पो भगवान् 'एकोऽहं बहुस्यामिति सङ्कल्प्य स्वस्मिन् विलीनसूक्ष्माचिद्वस्तुभोक्तृवर्गञ्चाविर्भाव्यभूतसूक्ष्मादा

जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं च वसुधातलम् ।
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ॥

हे परन्तप ! शत्रुसंतापकारक ! त्वमेव यज्ञो यज्ञस्वरूपस्त्वमेव तथा वषट्काररूपोऽपि अर्थात् भवद्व्यतिरिक्तं यज्ञादिकं वस्तु नास्ति । अपितु भवतः शरीररूपा एव । ओंकारोपि त्वमेव । वसुषु प्रथमं जातो ऋतधामानाभको वसुरपि त्वमेव एवं दक्षादिप्रजापतिरपि त्वमेवासि । किं बहुना सर्वमप्येतज्जगत् जायमानं तत्ते शरीरमवयवरूपमेव, वसुधातलं ते स्थैर्यम् अर्थात् येयं स्थिरताभूतले सा तावकीनैव । अयमग्निज्वालाजटालजटिलः स भवतः कोपस्थानीयः, श्रीवत्ससदृशचिह्नचिह्नितश्चन्द्रस्तव प्रसादस्थानीयः इत्यर्थः ।

चेतन वर्ग को आत्मा अधिष्ठाता के रूपमें प्रवेश करके तब जड चेतन को परस्पर मिश्रित करके परिदृश्यमान सकल जगत् को बनाते हैं । तब सृष्ट चेतनाचेतन सकल पदार्थों में स्वयं प्रविष्ट होकर के सर्व शरीरक बन जाते हैं इसलिये परमात्मा को विश्वरूपी (बहुरूपिया) ऐसा लोग कहते हैं । और जिस तरह जड अजड का आत्मा भगवान् हैं उसी तरह भगवान् की कोई अन्य आत्मा नहीं होने से भगवान् परमात्मा कहलाते हैं । इसमें महाभूतों का जो सजातीय उपादान कारण है उसको प्रकृति कहते हैं भोक्ता चेतन पुरुष पदवाक्य कहलाते हैं प्रकृति और पुरुष ये दोनों परमात्मा के शरीर होने से ये दोनों परमात्मा के विशेषण कहे जाते हैं । उभय विशिष्ट परमात्मा प्रकृति वाचक तथा पुरुष वाचक जो शब्द हैं वे शब्द वाच्य होते हैं । इसलिये स्थल विशेषों में प्रकृत्यादिवाचक शब्दों का वाच्य परमात्मा भी कहें जाते हैं ।

उपर्युक्त इन सब वस्तुओं का प्रतिपादन करने वाले अधोलिखित उपनिषत् वाक्य होते हैं । तथाहि '**सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेयेति**' '**तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्**

काशादिकमहाभूतानि संसृज्यतेषु जीवात्मतयाप्रवेश्य भोक्तृ वर्गाधिष्ठिताकाशादिभिः सर्वं जगद्विधाय स्वयमपि जगत्सु विवेश 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशदितिश्रुतेः। तत्र यदिदं सूक्ष्मभूतं तदेवप्रकृति शब्दवाच्यम्। भोक्तृवर्गश्च पुरुषपदाभिधेयः। इमौद्वावपि

अयमर्थः-ज्योतिःस्वभावकंयद् यद् वस्तुचन्द्रतारकादिकं ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानिविष्णुर्गिरयोदिशश्च। नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वं पदत्र पत्रास्ति च विप्रवर्य!॥ तत्सर्वं विष्णुरेव चतुर्दशभुवनानि भूरादयोलोकसप्तकमुपर्युपरि अतलादारभ्यपातालान्तं सप्तनीचैरिति एतानि चतुर्दशभुवनानि विष्णुरेव अर्थात् विष्णोरवयवरूपाणीति। वनं नैमिषारण्यकादिकं विष्णुरेव, हिमालयप्रभृतिकाः पर्वता अपिविष्णुरेव। दिशः

तदनुप्रविश्यसच्चात्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तं च निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्' इति।

तदयमर्थः सर्व जगत् के कारण आनन्दमय सर्व शेषी परमात्मा श्रीसीतानाथ ने कामना अर्तात् सङ्कल्प किया कि सर्व शरीर रूप से अवस्थित एक ही मैं देव मनुष्य तथा तिर्यगादि रूप से अनेक बन जाऊं अर्थात् आकाशादिक रूप से अनेकाकार से उत्पन्न होऊं। (एतादृश सङ्कल्प करके परमात्मा अनेक बन गये, आकाशादि जड प्रपञ्च रूप अनेक प्रकारक सर्ग को उत्पन्न किया) तब वह परमात्मा चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च को उत्पन्न करके उनके अन्दर में प्रविष्ट हो गये। (जिस तरह रेशम का कीडा रेशम का कोश बनाकर के उसमें प्रविष्ट हो जाता है उसी तरह यह परमात्मा इस चेतनाचेतन जगत् को बनाकर के उसमें प्रविष्ट हो गये।) तब वे परब्रह्म इस जगत् में प्रवेश करके सत् तथा त्यत् रूप बन गये। चेतन तथा अचेतन रूप बन गये अर्थात् सर्वप्रकारक विकार रहित तथा एक रूप से सर्वदा अवस्थित होने से चेतन पदार्थ का नाम हैं सत्, एतादृश सत् रूप से परमेश्वर अवस्थित हो गये। एवं सर्व विकार का स्थान भूत जड पदार्थ त्यत् कहलाता है। और वही निरुक्त तथा अनिरुक्त रूप से परिणत हो गये। अर्थात् घटत्वादिक जाति रूप रसादिक गुण तथा चलति गच्छति इत्यादि क्रिया के

परमात्मशरीरतयापरमात्मप्रकारौ। ततः प्रकृतिपुरुषशब्दप्रतिपाद्यः सर्वेश्वरश्रीरामपदवाच्यो भगवानेवेति। तदेतत्सर्वं श्रुतिराह- 'सोऽकामयत एकोहं बहुस्यां प्रजायेय' तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्चात्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तं च निलयनं

प्राचीप्रभृतिका दशदिशः काष्ठा विष्णुरेव। नद्यः पूर्वसमुद्रवाहिन्यो गङ्गायमुनाप्रभृतिकास्तथा पश्चिमोदधिवाहिन्यः सिन्धुकावेरीकृष्णाप्रभृतिकाः। अत्र नदीपदं नदस्याप्युपलक्षकम्, तेन ब्रह्मपुत्रपूर्वसागरगामिनो महीसादिप्रभृतिपश्चिममुद्रगामिनश्च नदाः संगृहीता भवन्ति याः काश्चन नद्यो ये केचननदास्ते सर्वेपि भगवतः स्वरूपा एव अर्थात् एतत्सर्वं भगवतः शरीररूपमेव। अत्र विष्णुना सह योऽभेदः प्रदर्शितः न स स्वरूपाभेदमूलकोऽपितु शरीरशरीरीभावसंबन्धमूलक एव। तेन न भगवतो जडत्वं जडानां चैतेषां चेतनत्वमिति। तथा समुद्रश्च ये ते जलराजिरूपा अचेतनादयस्ते सर्वेऽपि विष्णुरेव। एवं सर्वथा विकाररहिता बद्धा मुक्ता नित्यमुक्ताश्चेतनाः सर्वे तथा प्रतिक्षणं

आश्रय होने से अचेतन पृथिव्यादिक पदार्थ जाति गुण तथा क्रिया के वाचक जो शब्द होते हैं उन शब्दों से वाच्य होते हैं इस कारण से पृथिव्यादिक अचेतन पदार्थ निरुक्त कहलाते हैं, यह एक प्रकार से निरुक्त पद पारिभाषित कहलाते हैं। और जो चेतन पदार्थ हैं वे स्वभावतः जाति और गुणादि पदार्थों से रहित है इस कारण से जाति वाचक तथा गुणादि वाचक शब्दों से वाच्य नहीं होने के कारण ये चेतन पदार्थ अनिरुक्त कहलाते हैं।

चेतन पदार्थ अचेतन पदार्थों का आधार अर्थात् अधिकरण होता है इसलिये चेतन निलयन पद बोध्य होता है। तथा सर्वदा आश्रित अर्थात् आधेय बना रहता है इसलिये अचेतन पदार्थ अनिलयन कहलाता है। **'विज्ञानं चाविज्ञानं च'** विज्ञान का अधिकरण होने से चेतन जीव विज्ञान कहलाता है और ज्ञान का अधिकरण नहीं होने से पृथिव्यादिक जड पदार्थ अविज्ञान कहलाता है।

'सत्यं चानृतं चेति' वे परमात्मा सत्य स्वरूप तथा अनृत स्वरूप हो गये सर्वदा

चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चा नृतं च सत्यमभव' दिति ।

卐 ब्रह्मप्राप्तिसाधनवर्णनम् 卐

विचारितशास्त्रजनिततत्वज्ञानसंबलितवर्णाश्रमोचितकर्मानुष्ठानसहकृतभक्तिजनितोऽतिशयितप्रियवस्तुविषयकप्रत्यक्षज्ञानस

विकारमासादयन्तोऽचेतनाः पदार्थाः प्रतिक्षणपरिणामस्वभावाः सर्वेभावा ऋतेचितिशक्तेरिति नियमात् । एते उपरिनिर्दिष्टा जडचेतनाः सर्वेऽपि भावा विष्णुरेव । विष्णुतादात्म्यापन्ना एव । अर्थात् विष्णुना भगवता परमपुरुषेण तादात्म्यापन्ना एव । नतु कोपि विष्णुव्यतिरिक्तः । यद्विद्यते तत्सर्वं विष्णुरूपमेव यद्विष्णुरूपं नास्ति तन्नास्त्येव अर्थात् यस्मिन् विष्णुसत्ता विद्यते तदेवतत्. यत्र विष्णुसत्ता नास्ति तस्य त्रिलाकेप्यभावो वन्ध्यापुत्रादीनामिव । अन्यत्रापि कथितम् ''जलेविष्णुः स्थलेविष्णुर्विष्णुपर्वतमस्तके । ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वंविष्णुमयं जगदिति । अत्र वनादिकं विष्णुरिति विष्णुपदादीनां पदार्थानां समानविभक्तिकतया नीलो घट इतिसामानाधिकरण्याभेदनिर्देशदर्शनेन

निर्विजार होने के कारण चेतन पदार्थ सत्य कहलाता है । तता विकारी होने से पृथिव्यादिक जड पदार्थ अनृत पद वाच्य होता है । एतादृश जड चेतन जगत् में अन्तर्यामी के रूप से प्रविष्ट होकर के भगवान् इन चेतनाचेतन पदार्थों का जो प्रतिनियत वाचक शब्द हैं उन शब्दों के वाच्य भगवान् होतें हैं ! अतः परमात्मा को कहते हैं कि परमात्मा चेतन अचेतन रूप बन गये । परन्तु यथोक्त प्रकार से चेतनाचेतन रूप बनने पर भी इन चेतनाचेतन पदार्थो के साथ ब्रह्म को स्वरूपैक्य नहीं होता है । इशसे परब्रह्म सत्य हैं सर्वथा निर्विकार ही रहते हैं यह फलित हुआ ।

इसके पूर्व प्रकरणों में उपेय अर्थात् प्राप्य परमात्मा के विषय में स्वकीय वक्तव्यों का प्रदर्शन किया । अर्थात् परमात्मा के स्वरूप विषयक विचार किया । अब इसके बाद वह परमात्मा किस उपाय अर्थात् साधन से प्राप्त होते हैं इस बात को बतलाने के लिये आचार्यजी उपक्रम करते है **'विचारित शास्त्र जनित'** इत्यादि । ब्रह्म

मानाकारकानुध्यानरूपा येयं पराभक्तिः सैवभगवत्प्राप्तौ साधनम् मुक्तौहेतुस्तु भक्त्यपरपर्यायं तैलधारावदविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तञ्च साधनदीपिकायामाचार्यवर्यैर्जगद्गुरुश्री गङ्गाधराचार्यैः 'रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैवमुक्तिराप्यते ।

सर्वैरेव वनसमुद्रादिपदैः सर्वशरीरको भवन् सर्वत्र प्रकारभूते वनादिके वस्तुनिवर्तमान स एव भगवान् प्रतिपादितो भवति । शरीरवाचकपदानां शरीरिपर्यवसानस्य देवमनुष्यादिषु दर्शनात् । योयमत्र- 'ज्योतिषि विष्णुरित्यादि' स्थलेज्योतिरादिविष्णुपदयोः समानाधिकरणतया अभेदो दर्शितस्तादृशाभेदस्य प्रतिपाद्यो विषयो विश्वरूपधारी भगवान् परमात्मैवेति ।

योऽयं पृथिव्यादिप्रमुखो जडप्रपञ्चः स सृष्टिपूर्वकाल अर्थात् प्रलयसमये नामरूपविभागं परित्यज्य प्रपञ्चमूलकारणं जडप्रकृतिस्वरूपोभूत्वा सर्वाधाररूपे परमात्मनि लीनो भवति रात्रौ स्वनीडे वयांसीव । 'जगत्प्रतिष्ठा-

प्राप्ति में उपाय अर्थात् साधन प्रत्यक्ष समानाकारक अनुध्यान रूप जो पराभक्ति हैं अर्थात् परमभक्ति अनन्या भक्ति के द्वारा भगवान् प्राप्त होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है **'भक्त्यात्वनन्यया लभ्योऽहमेवं विधोऽर्जुन'** इति । पराभक्ति किस प्रकार से होती हैं इस बात को बतलाने के लिये कहते हैं **'विचारित शास्त्र'** इत्यादि । विचार किया हुआ शास्त्र से जायमान जो तत्वज्ञान उससे युक्त कर्मानुष्ठान सहकृत भक्ति से जायमान निरतिशय वस्तु विषयक प्रत्यक्ष समानाकार अनुध्यान रूपा परम भक्ति है वही परमभक्ति भगवान् की प्राप्ति में साधन है । अर्थात् सर्वप्रथम इतिहास पुराणादि से उपबृंहित वेद शास्त्र द्वारा तत्वज्ञान को साधक प्राप्त करे । तदनन्तर तत्वज्ञान के साथ वर्णाश्रमोचित नित्य नैमित्तिक कर्मो का अनुष्ठान करने से अन्तः करण के पवित्र हो जाने से भक्ति योग का अभ्यास करे । इस भक्ति योग का सतत अभ्यास करते करते परम तत्व परमात्मा में प्रेम उत्पन्न होता है जो कि अत्यन्त प्रिय लगता है तथा वही अति विशद बनकर प्रत्यक्ष ज्ञान के समान हो जाता है । इस प्रकार का विलक्षण प्रेम युक्त जो ध्यान है वही ध्यान पराभक्ति है एतादृश पराभक्ति ही भगवत् प्राप्ति का साधन अर्थात्

भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसमकात्' इति । ऊचुश्च तथैव भगवन्तः श्रीदेवानन्दाचार्यचरणा अपि 'त्वदीयास्मृतिस्तारिका मृत्युसिन्धोस्तथाविस्मृतिः पातिका तत्र चैव । परं योगिनां हार्दमालम्बनं त्वां श्रये राघवं सच्चिदानन्दरूपम्' (गीतानन्दभाष्यम्

देवर्षेपृथिव्यप्सु प्रलीयते । आपस्तेजसि लीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते । वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चाव्यक्ते प्रलीयते । अव्यक्तंच परे देवे निष्कले संप्रलीयते ।' इत्यादिवचनेन प्रकृतिसहितप्राकृतपदार्थानां परमात्मनि लयस्य श्रवणात् । यथा गङ्गादिका नद्यः समुद्राभिमुखागच्छन्त्यः समुद्रं गच्छन्ति नामरूपे विहाय समुद्रगमनानन्तरं तासां नामरूपादि न पृथङ्निर्दिष्टं भवति । तथैव प्रकृते जडप्रपञ्चः स्वकीयनामरूपं विहाय प्रलयकाले परमात्मनि प्रकृतिद्वारेण प्रलीयते इति । यथा प्रलये जडप्रपञ्चो भगवति लीयते तथा भोक्तृबद्धजीवोऽपि स्वकीयनामरूपे विहाय परमात्मन्येव विलीनो भवति ।

पुनश्च बद्धजीवीयशुभाशुभकर्मवशात्सृष्टिकालः समुपस्थितो भवति तदैव सर्वज्ञसर्वशक्तिसमन्वितसर्वस्वतन्त्रसत्यसंकल्पः श्रीसीताकान्तः स्वस्मिन् विलीनं जडचेतनात्मकप्रपञ्चं नामरूपाभ्यां विभज्य जडमूलकारणसूक्ष्मप्रकृतितः पञ्चमहाभूतानि सृजति । तदुक्तम्-' आविर्भावयतिस्वस्मिन्

उपाय है ।

यहां भक्ति शब्द का अर्थ है प्रीति-प्रेमविशेष । अर्थात् भक्ति शब्द प्रीति विशेष का वाचक है । जिस तरह भृत्य स्वामी स्थल में यथा वा पत्नी प्रियस्थल में स्वामी के विषय में जो भृत्य का अनुराग होता है उस प्रीति विशेष को ही भक्ति कहते हैं । परन्तु एतादृश उपर्युक्त जो प्रीति है वह ज्ञान विशेष रूप ही है । अर्थात् ज्ञान तथा भक्ति एकरूप हैं । एतादृश भक्ति लक्षण ज्ञान को लेकर के **'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' 'तरति शोकमात्मवित्'** इत्यादि शास्त्र में ज्ञान को मोक्ष साधनता का प्रतिपादन किया गया है । वस्तुतः पराभक्ति मोक्ष का साधन है जो कि एक प्रकार से ज्ञान विशेष रूप

२।१२।) इत्याचार्योक्तेः । भक्तिशब्दः साधारणतया प्रीतिविशेषेरूढः । प्रीतिः पुनर्ज्ञानरूपैवेति ज्ञानरूपापरमभक्तिरेवभगवत्प्राप्तावुपाय इति कथ्यते । यद्यपि प्रीतिरेवसुखम्, सुखं च ज्ञानप्रयोज्यं तदुभयं विभिन्नं नैकं प्रयोज्यप्रयोजकयोर्भेदात्

विलीनं सकलं जगत् । प्राणिकर्मवशादेषः सत्यसङ्कल्पको विभुरिति श्रीटीलाचार्येण । तथा प्रकृतिसृष्टजडवस्तुनि तदुपभोक्तारं जीवमात्मरूपेण प्रवेश्य जीवात्माधिष्ठितानि भूतानि परस्परमिश्रितानीव कृत्वा संपूर्णप्रपञ्चं सृजति स भगवान् । तथा महते कथमेषामवस्थितिरिति कृत्वा स्वयं सत्यसङ्कल्पो भगवान् जडचेतनपदार्थेषु तेषामन्तरात्मरूपेण प्रविश्यविश्वरूपो भवति 'तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशदिति श्रुतेः । अस्य परात्मनः सर्वोपिप्रपञ्चो जडचेतनसाधारणः शरीरम् । अयं च सर्वजगतः शरीरी आत्मा नास्त्येतस्य आत्मान्तरं तस्मादयं परमात्मेति शब्दव्यपदिष्यो भवतीति । इत्थं सर्वमेववस्तु शरीरं कृत्वापरमपुरुषो विराट् रूपमास्थाय नानारूपेणावतिष्ठते । यदिदं सर्वस्य जडप्रपञ्चस्यमूलकारणं सूक्ष्मवस्तु तस्यैव प्रकृतिरिति नाम, तथा भोक्ता सुकृतयोर्जीवसङ्घात एव पुरुषपदेनोपदिश्यते । इमावपिपरमात्मनः शरीररूपौ तद्विशेषणत्वात् । आभ्यां विशेषणाभ्यां युक्तः परमात्मा प्रकृतिपुरुषवाचकशब्देनापि वाच्योभवति शरीरवाचकपदस्य शरीरिपर्यन्तबोधकतया

ही है नतु सामान्यतः ज्ञान मोक्ष का कारण है सामान्यतः ज्ञान को मोक्ष कारण मानकर के प्रमाद वश केवलाद्वैती सन्मार्ग से विमुख हो गये ।

प्रीति तथा सुख पर्यायवाची हैं और सुख ज्ञान जन्य होता है (अनुकुल वेदनीयं सुखम्, ऐसा सुख का लक्षण होता है) तो जन्यजनक स्थल में अर्थात् कार्य कारण भवस्थल में भेद होता है ऐसा नियम है तो प्रकृत में सुख के ज्ञानजन्य होने से प्रीति तथा ज्ञान में एकत्व का संपादन करना अयुक्त हैं ? इस प्रकार से जो नैयायिक का मत है उस मत को लेकर के विशदरूप से प्रश्न का आशय वर्णन करने के लिये आचार्यजी

इतिन्यायविदः। तथापि येन खलुज्ञानेन सुखं ज्ञानसाध्यमिति कथ्यते स ज्ञानविशेष एव सुखं न तु ज्ञानभिन्नं सुखमिति। अयमर्थः विषयविषयकं ज्ञानं त्रिविधं भवति, सुखदुःखमध्यस्थभेदात्। इमानि ज्ञानानि विषयाधीनविशेषाणि, ततश्च येन खलुविषयविशेषेण विशेषितं (सम्बद्धं) सुखमुत्पादकं भवतीतिलौकिकाः कथयन्ति तादृशविषयविषयकं ज्ञानमेव सुखं नतु ज्ञानादतिरिक्तं

देवमनुष्यादिस्थलेदृष्टत्वादिति।

एतत्सर्वं श्रुतिसमूहोऽपि दर्शयति सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्चत्यच्चाभवन् निरुक्तं चानिरुक्तं च निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्।

अयमर्थः-सः सकलजगत्कारणोज्ञानानन्दमयः परमात्मा सर्गाव्यवहितपूर्वकाले अकामयत कामनां कृतवान् अर्थात् सत्यममोघं सर्गविषयकमकरोम्। यद्यपि सर्वशरीरितयैकोपि बहुदेवमनुष्यतिर्यगादिरूपेण बहुरनेकरूपेण स्याम् भवेयम् तदर्थमाकाशादिक्रमेण समुत्पन्नः स्यामिति। एवं सङ्कल्प्य सङ्कल्पानुसारेण स परमेश्वरोऽस्य जडचेतनसाधारणप्रपञ्चस्य सर्गमकरोत्, सृष्ट्वा च तेषु प्रविश्य सत् रूपेण तथा त्यत् रूपेणाभवत्, अर्थात् निर्विकारस्तथा सर्वदैकरूपेणावस्थानात् चेतनपदार्थो जीवःसत्पदेन व्यपदिश्यते, तथाविकारि

कहते हैं '**यद्यपि प्रीतिरेव सुखम्**' इत्यादि। यद्यपि प्रीति ही सुख है और सुख तो ज्ञान से जन्य होता है तो प्रयोज्य प्रयोजक दोनों परस्पर भिन्न होते हैं। ये दोनों अर्थात् ज्ञान सुख ये दोनों एक नही हो सकते हैं क्योंकि प्रयोज्य प्रयोजक में भेद होता है ऐसा पूर्वपक्ष नैयायिक का है, यह मूल का अक्षरार्थ है। अर्थात् सुख पर्याय प्रीति का जो आप अर्थात् वेदान्ती लोग एक मानते हैं सो तो ठीक नहीं हैं क्योंकि लोक में तो सुख तथा प्रीति को एक ही मानते हैं अर्थात् साधारण लोक तथा नैयायिक मानते हैं कि सुख तो ज्ञान विशेष से उत्पन्न होनेवाला एक पदार्थ है जो ज्ञान किसी विषय विशेष स्त्रक्चन्दन वनितादिकों को अनुकुल रूप से ग्रहण करता है तादृश ज्ञान विशेष से सुख जन्य होता

किञ्चित्पदार्थान्तरमुपलभ्यते, एतावतैव तत्रसुखित्वव्यवहारस्योपपादनात्। एतादृशसुखरूपज्ञानस्य विशेषकं निरूपकं यदि ब्रह्मभिन्नं तदा तत्सातिशयमनित्यमस्थिरम्। यदि ब्रह्मविशेषकं तदानिरतिशयंनित्य इति ब्रह्मैव परमात्मैवकथ्यते। ज्ञानस्य

अचेतनं पृथिव्यादिकंभूतं भौतिकंच त्यत्पदेन निर्दिष्टं भवतीति। 'निरुक्तं चानिरुक्तं चेति' तत्र जातिगुणक्रियाद्याधारतया जात्यादिवाचकशब्दबोध्यो भवत्यचेतनपदार्थ इति स निरुक्तपदेन व्यपदिश्यते यश्च चेतनपदार्थो जीवो न स्वभावतो जातिगुणक्रियादिमान्, किन्तु स्वभावतो जात्यादिविशेषण इति न जात्यादिना निर्वाच्यो भवतीत्यतो अनिरुक्तंपदवाच्यो भवन् अनिरुक्तं भवतीति। 'निलयनं चानिलयनं चेति' तत्र निलीयन्ते आश्रितो भवति यस्मिन्निति व्युत्पत्या अचेतनपदार्थस्याश्रयो भवंश्चेतनोनिलयनमिति पदबोध्यो भवति। तथायत्र तत्राश्रितो भवन् अचेतनोऽनिलयनमिति व्यपदिश्यते। 'अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य आश्रितत्वमिहोच्यते' इतिन्यायविदः। (अत्र नित्यद्रव्याणिपरमाण्वाकाशादिकानि तान् परित्यज्यान्यत्रा नित्यद्रव्यगुणकर्मसु नित्येष्वपिजात्यादिषु सर्वदाऽऽश्रितत्वं कथ्यते इत्यर्थः। अत्राश्रितत्वं समवायादिसम्बन्धेन अन्यथा कालिकविशेषणता सम्बन्धेननित्यानामपि काले वर्तमानतया लक्षणस्यातिव्याप्तेः। न च यथाऽचेतनस्याधारो जीवस्तथा जीवस्यापि आधारः परमात्मेति तत्रापि आश्रित्वमिति निलयत्वं न स्यादिति

है तो इस स्थल में ज्ञान जनक कारण है उस ज्ञान का कार्य अर्थात् ज्ञान से जन्य सुख हैं। न्यायमत के अनुसार ज्ञान तथा सुख ये दोनों परस्पर विभिन्न गुण हैं। सुख तथा प्रीति ये दोनों एक ही पदार्थ हैं तो इससे विदित होता है कि प्रीति ज्ञान से भिन्न है तब प्रीति को ज्ञान रूप किस तरह से कह सकते हैं। यह प्रश्न हुआ।

इस प्रश्न का समाधान करने के लिये कहते हैं-'**तथापि**' इत्यादि। अर्थात् आपका कहना ठीक है कि सुख तथा ज्ञान में जन्य जनक भाव होने से जब भेद है तब सुखात्मक प्रीति को भी ज्ञान स्वरूप नहीं होता है तब परभक्ति का स्वरूप ही बनता है

विषयाधीननिरूपणत्वेन विषयस्तु प्रकृते ब्रह्मैवेति ब्रह्मैव सुखम् । तथा च श्रुतिः 'रसोः वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दीभवति' 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' 'आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि भूतानि

वाच्यम्, वृत्तिनियामकसंबन्धेनाश्रिततत्वस्य कथनात् परमात्मासर्वाधारोपि वृत्तिनियामकसंबन्धेनाधारो न भवति किन्तु शरीरशरीरीभावसंबन्धेन सर्वाधारो भवति प्रकृतसंबन्धश्च न वृत्तिनियामकः पतनप्रतिबन्धकसंबन्धस्यैव तथात्वात् अतो न कोऽपि दोषः । विशेषविवरणमन्यत्रद्रष्टव्यमिति संक्षेपः।)

'सत्यं चानृतं च' इति । तत्र चेतनं सत्यं स्वतः सर्वविकाररहितत्वात् । न तु केवलाद्वैतमतवत् ब्रह्मात्मना सर्वस्य जडचेतनादेः सत्यत्वात् जडचेतनप्रपञ्चेषु तदन्तर्यामिरूपेण तेषु प्रविश्य सोयं परमात्मा जडादिपदवाच्यो भवति । अत एव परमात्मा चेतनाचेतनरूपोऽभवदिति कथ्यते । परन्तु परमेश्वरस्य जडचेतनाभ्यां न स्वरूपैक्यं भवति परस्येति निर्विकारत्वात् परं ब्रह्मसर्वथा सत्यमेवेति संक्षेपः ।

यश्च भगवान् गतप्रकरणेनोपेयतया प्रतिपादितस्तत्प्राप्तेरुपायः कः ? इति जिज्ञासायां तत्प्राप्तेरुपायस्वरूपं संक्षेपेण प्रदर्शयितुं प्रक्रमते 'विचारित-शास्त्रजनित' **इत्यादि । इदमत्र सम्प्रदायरहस्यम् योयमुपासनाविषयतया शास्त्रप्रतिपादितः परमात्मा तस्य प्राप्त्युपायो भक्तिरेव । 'रामो ब्रह्म परात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसम्' इति जगद्गुरुश्रीसदानन्दाचार्योक्ते : । तदर्थं प्रथमतः शास्त्रविचारेण तत्वज्ञानं संपादनीयम् तदनु तत्वज्ञानेन**

किन्तु जिस ज्ञान से सुख को ज्ञानजन्य कहते हैं आपलोग तादृश ज्ञान विशेष ही सुख है परन्तु ज्ञान से भिन्न तथा ज्ञान जन्य सुख नहीं हैं । सुख ज्ञान स्वरूप ही है ज्ञान जन्य नहीं हैं, इसका स्पष्टीकरण करने के लिये कहते हैं-'अयमर्थः विषय विषयकं ज्ञानं त्रिविधं भवतीत्यादि (ज्ञान जन्य सुख नहीं हैं किन्तु ज्ञानस्वरूप ही सुख है इसको स्पष्ट करते हैं 'अयमर्थः' इस प्रकरण का भावार्थ ऐसा है कि विषय विषयक ज्ञान तीन प्रकार का होता है । अर्थात् घट पटादि विषयों को ग्रहण करनेवाला जो ज्ञान होता है वह तीन

जायन्ते' इत्यादि । तदेवं यथोक्तं ज्ञानरूपपरमभक्त्या तोषितो भगवान् सकलगुणाद्याकरो भक्ताय नित्यनिरतिशयसुखात्मकं

सहवर्णाश्रमोचितनित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानं कर्तव्यम् । तेन विशुद्धान्तःकरणस्य भक्तियोगमभ्यसतो भगवति प्रेमोत्पद्यते यदत्यन्तं भवति तथाऽभ्यासातिप्रत्यक्षसमानाकारको भवति । एतादृशप्रेमसंमिलितं ध्यानमेव पराभक्तिरिनि गीयते । इयमेव पराभक्तिर्भगवतः प्राप्तौ साधनं भवति । अत्र भक्तिशब्दः प्रीतिविशेषस्य बोधक इति प्रीतिविशेषरूपैव भक्तिः प्रीतिश्चज्ञानविशेषरूपैव । एतादृशभक्तिलक्षणज्ञानमादायैव 'तमेव विदित्वा' इत्यादिस्थले ज्ञाने मोक्षजनकत्वं कथितं तदपि सङ्गच्छते तदाहुराचार्याः 'सा च भक्तिः परमप्रेयोभगवदितरवैतृष्ण्यपूर्वकपरमपुरुवानुरागरूपो ज्ञानविशेष एव (ब्रह्मसूत्रानन्दभाष्यम् १।१।१) 'मुक्तौहेतुस्तुभक्त्यपरपर्यायंतैलधारावदविच्छिन्नभगवत्स्मृतिसन्तानमेव । उक्तञ्चसाधनदीपिकामायामाचार्यवर्यैर्जगद्गुरुश्रीगङ्गाधराचार्यैः 'रामस्य ब्रह्मणोऽनन्यभक्त्यैव मुक्तिराप्यते । भक्तिर्ध्रुवास्मृतिः सा च विवेकादिकसप्तकात्' इति ऊचुश्चतथैव भगवन्तः श्रीदेवानन्दाचार्यचरणा अपि 'त्वदीयास्मृतिस्तारिका मृत्युसिन्धोस्तथाविस्मृतिः पातिका तत्र चैव । परं योगिनां हार्दमालंवनं त्वां श्रये राघवं

प्रकार का होता है । जो कोईज्ञान अर्थात् माला चन्दनादिक अनुकूल विषयक ज्ञान मालादिक अनुकूल विषय को ग्रहण करता है तो तादृश वह ज्ञान ही सुख कहलाता है । जो कोई ज्ञान सर्पादिरूप प्रतिकूल विषय को ग्रहण करता है तो वह ज्ञान प्रतिकूल होने से दुःख कहलाता है । और मध्यस्थ अर्थात् जो न अनुकूल हो न वा प्रतिकूल हो एतादृश विषय को ग्रहण करनेवाला ज्ञान मध्यस्थ कहलाता है । एतादृश ज्ञान से ही सुख दुःखो की उत्पत्ति नैयायिक लोग मानते है यदि ज्ञान मात्र से सुखादि की उत्पत्ति मानें तब तो इष्ट मालादिक पदार्थ के ज्ञान से दुःख तथा अनिष्ट सर्पादिकों के ज्ञान से सुख की उत्पत्ति हो जायगी । इस स्थिति में यहां यही सिद्धान्त वैदिकों ने किया है कि अनुकूल विषयक ग्राहक जिस ज्ञान से सुख की उत्पत्ति होती है तादृश ज्ञान ही सुख नामक पदार्थ नहीं हैं

परमपदं प्रयच्छति तदाहुर्जगद्गुरवः श्रीरामेश्वरानन्दाचार्यदेशिकेन्द्राः सत्प्रबोधामृते 'श्रीरामस्यार्चया भक्त्या नमस्कृत्या तथैव च । रामे

सच्चिदानन्दरूपम्' इति (गीतानन्दभाष्यम् २।१२) इति ।

अत्र शङ्कते 'यद्यपि प्रीतिरेव सुखम्' इत्यादि । प्रीतिसुखयोः समानार्थकत्वमेव न तु प्रीतिरन्या सुखं चान्यत् सुखं च ज्ञानविशेषजन्यम् जन्यजनकयोर्भेदोऽवश्यं भवति घटकपालवत् । ततश्च ज्ञानसुखयोर्जन्यजनकत्वेन परस्परं भेदात्कथं सुखज्ञानयोरेकत्वमपितु परस्परं विभेद एवेति पूर्वपक्षाशयः।

उत्तरयति 'तथापि येन खलुज्ञानेन' इत्यादि' अयमाशयः अत्र विषयग्राहकं ज्ञानं त्रिप्रकारकं भवति । तत्र यज्ज्ञानमनुकूलविषयं गृह्णाति-तज्ज्ञानमनुकूलत्वात् सुखमिति व्यवह्रियते । यद् ज्ञानं प्रतिकूलं विषयं सर्पादिकं गृह्णाति तत् प्रतिकूलमिति यत्तु नानुकूलं नवा प्रतिकूलं विषयं गृह्णाति तन्मध्यस्थमिति भवति । ज्ञाने यद्वैलक्षण्यं तद्विषयाधीनं ज्ञानस्य निराकारत्वात् । तदुक्तं बौद्धं प्रत्युदयनाचार्येण 'अर्थेनैवविशेषो हि निराकारतयामतम्' अर्थेनेत्यत्र तृतीयोऽभेदः तथा च धियां ज्ञातानां परस्परम् अर्थेनैव विशेषोभेदः अर्थादभिन्न

किन्तु अनुकूल विषय को ग्रहण करनेवाला ज्ञान ही सुख है । एतादृश ज्ञान को लेकर के ही 'मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं' ऐसा व्यवहार का भी उपपादन हो जाता है । इससे यह सिद्ध होता है कि अनुकूल विषय का ग्राहक ज्ञान ही सुख स्वरूप है किन्तु सुख ज्ञान से अतिरिक्त नहीं है और सुख तथा प्रीति को तो सभी लोग एक ही मानते हैं तो प्रीति भी ज्ञान विशेष है अर्थात् ज्ञान से अभिन्न है सुख और सुख से अभिन्न है प्रीति तो **'तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वम्'** इस नियम के बल से ज्ञान से अभिन्न जो सुख है तथा सुख से अभिन्न प्रीति है तो प्रीति तथा ज्ञान में भी अभेद सिद्ध होता है । और ज्ञान को सुखरूप होने का कारण यही है कि ज्ञान अनुकूल विषय का ग्रहण होता है ।

ब्रह्माभिन्न प्राकृतिक जड पदार्थों में जो अनुकूलता रहती है वह सातिशय तथा अस्थिर होती है क्योंकि जड पदार्थ सातिशय तथा अस्थिर बिनश्वर है, और ब्रह्म परमात्मा में जो अनुकूलता है वह निरतिशय तथा स्थिर है क्योंकि ब्रह्म निरतिशय तथा

चेतोनिवेशेन रामप्राप्तिर्भवेद्ध्रुवम्' ॥१२॥ इति ।

卐 सर्वेश्वरश्रीरामपारतन्त्र्यत्वयोः सुखरूपत्वप्रतिपादनम् 卐

अथैवमपि पराधीनत्वदास्यत्वयोर्दुःखजनकतया चेतनस्य तदर्थं कथं प्रवृत्तिः ? तदुक्तम्-'सर्वंपरवशं दुःखं सर्वमात्मवशं

एव अर्थादर्थरूप एव भेदविषयेणैव ज्ञानं विभिद्यते कुतः ? ज्ञानस्य निराकारत्वात् विषयव्यतिरिक्तस्य ज्ञानभेदनियामकत्वे ज्ञानं साकारतामियात् । तथा चानुकूलविषयग्राहकंज्ञानमनुकूलम् । प्रतिकूलविषयग्राहकं प्रतिकूलम् मध्यस्थविषयग्राहकं मध्यस्थमिति । उपर्युक्तज्ञानादेव सुखादीनामुत्पत्तिर्भवति नान्यादृशज्ञानात् । अन्यथा सर्पादिज्ञानादपि सुखं चन्दनमालादिज्ञानाद दुःखमुत्पद्येत नत्वेवं विपरीतं भवति । तस्माज्ज्ञानस्य सुखदुःखादिजनकत्वं यथोक्तव्यवस्थैव साधीयसीवैशेषिकस्येति । तत्र वयं ब्रूमः अनुकूलविषयग्राहकेण येन ज्ञानेन सुखमुत्पद्यते तादृशं ज्ञानमेवसुखं नतु तत्र ज्ञानादतिरिक्तः

एकान्त नित्य पदार्थ है विषय के नित्य निरतिशय होने से अनुकूलता में भी तादृश व्यवहार होता है । अतएव श्रुति में भी कहा है **'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्' 'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म'** आनन्दस्वरूप ब्रह्म को जाना भृगु ने, ब्रह्म सत्य ज्ञान तथा आनन्द स्वरूप है । अर्थात् ज्ञान विषयाधीन निरूपण स्वभावक होता है, विषय जैसा रहता है वैसा ही ज्ञान भी होता है तो ज्ञान में जो सुखरूपत्व है वह विषय के अधीन होता हैं । अतः अनुकूलरूप से प्रतीयमान होनेवाला ब्रह्म परमात्मा सुखस्वरूप तथा आनन्दस्वरूप कहे जाते हैं ।

इतर श्रुतियों से भी यह अर्थ जाना जाता हैं **'रसो वै सः' 'रसोह्येव लब्ध्वा आनन्दी भवति' 'रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते' 'यं लब्ध्वा चापरं लाभ मन्यते नाधिक ततः ।'** अर्थात् परब्रह्म श्रीसीतानाथ ही रस स्वरूप हैं तथा सुख स्वरूप हैं । यह साधक जीव रस स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर के सुखी कृतार्थ हो जाता हैं ।

लौकिक तथा ब्रह्म में यह विलक्षणत्व है कि लौकिक भोग्य पदार्थ है वह भोक्ता

सुखम्' 'सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मात् तां परिवर्जयेत्' 'सेवायाधनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्य यत्कृतम् । स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य

सुखात्मकः पदार्थोऽनुभूतो भवति । एवं यादृशप्रतिकूलविषयग्राहकेण ज्ञानेन दुःखमुत्पद्यते तादृशं ज्ञानमेव तत्र दुःखम् । किन्तु ज्ञानादतिरिक्तं सुखं वा दुःखं वा किञ्चिद्विलक्षणमुत्पद्यते तत्र प्रमाणाभावोऽनुभवविरोधश्चाप्यापद्यते । तस्मादनुकूलादिविषयग्राहकं ज्ञानमेव सुखम् नतुज्ञानाद्भिन्नं सुखदुःखादिकम् । सुखप्रीत्योरेकत्वात्प्रीतिरपि ज्ञानविशेषरूपैव । ज्ञानं यस्मादनुकूलं विषयं गृह्णाति तस्मात् ज्ञानं सुखरूपमिति ब्रह्मव्यतिरिक्तजडे वस्तुनि येयमनुकूलता सातिशया अस्थिरा च । ब्रह्मात्मकपरमेश्वरे याऽनुकूलता सा निरतिशयास्थिरा च ।

अत्रार्थे श्रुतिं प्रमाणयितुमाह 'तथा च श्रुतिरिति' श्रुतिमुदाहरति 'रसोवै सः' इत्यादि 'आनन्दो ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म परमेश्वर आनन्दः । ज्ञाननिष्ठानुकूलताया विषयाधीनत्वात् अनुकूतया प्रतीयमानं ब्रह्मात्मकं वस्तु ज्ञानं चेति । श्रुतिरित्थमाह 'रसो वै सः' ब्रह्मात्मकंसुखरूपं च । अत एव सुखरूपं ब्रह्मप्राप्योपासकसर्वदा सुखीभवतीति । लौकिकपदार्थापेक्षया ब्रह्मणि इयान् विशेषो यदत्रलौकिकभोग्यपदार्थो जडः भोक्तृणामेवानुकूलः अतोभोक्तरि सुखं भवति । नतु स्वार्थम् जडतया भोक्तृत्वासंभवात् ब्रह्म तु चेतनमतः स्वस्य परस्य च अनुकूलो भवति । तद् ब्रह्म स्वकीयमनुकूलस्वरूपं

के लिये अनुकूल लगता है स्व के लिये नहीं क्योंकि जड है और अनुभव चेतन का धर्म है। और परब्रह्म चेतन हैं तो वह अपने लिये तदन्य को भी अनुकूल लगते हैं। स्वकीय अनुकूल स्वरूप का प्रत्यक्ष करते हुए मरमात्मा सदा सुखी बन करके रहते हैं तथा भक्त तथा मुक्त के द्वारा साक्षात् क्रियमाण होते हुए भक्तों के लिये अत्यन्त अनुकूल प्रतीत होते हुए भक्त को सुखी बना देते हैं। ये भगवान् अनन्तकल्याण गुण के समुद्र हैं दया सागर हैं तथा चेतन अचेतन सकल पदार्थों के स्वामी हैं। हम भगवान् के दास हैं भगवान् हमारे स्वामी तथा स्वतन्त्र हैं। ऐसा जान कर के साधक को भगवान् में अत्यन्त

मूढैस्तदपिहारितम् ।' इत्यादिना पराधीनत्वसेवकत्वयोर्निषेधात् । अत्रोच्यतेसर्वोहि संसारीभ्रमवशाद्देहमेवात्मेति विजानाति स्वस्मिंश्च देहे संसारिणामहमिति प्रतीतिर्भवति देहानुगुणं च स्वातन्त्र्यादिकप्रतीतिर्जायते । परन्तु वस्तुतोनैवम् । जीवस्वरूपं च देहादिविलक्षणं

साक्षात्कुर्वन् सर्वदा सुखीभवति । तथोपासकमुक्तादिद्वारा साक्षात् क्रियमाणो भक्ताय मुक्ताय चानुकूलतया प्रतीयमानस्तमुपासकादिमत्यन्तं सुखयतीति । अयमेव परमेश्वरः श्रीसीतानाथः सर्वश्रेष्ठतत्वं शास्त्रप्रतिपाद्यो मुख्योऽर्थः 'राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्' इति श्रुत्युक्तेः । 'रामोब्रह्मपरात्परं श्रुतिमतं भक्त्यैव निःश्रेयसम्' इत्याचार्योक्तेश्च । अयं च भगवान् अनन्तकल्याणगुणानामाकरः सर्वदोषरहितश्च । तथा लीलाविभूतित्रिपाद्विभूतिप्रभृतिकविभूतीनामीश्वरः स्वामी, एतावता तादृशविभूतिस्वामिनः सर्वतः परत्त्वं सुव्यक्तं भवति तदुक्तमागमे-

'परान्नारायणाच्चापिकृष्णात्परतरादपियोवैपरतमः श्रीमान् रामोदा शरथिः

प्रीति उत्पन्न होती है। दिन प्रतिदिन वर्धिष्णु तादृश प्रीति का विषय होते हुए परब्रह्म सीतानाथ प्रसन्न हो करके साधक को स्वपद की प्राप्ति करा देते हैं। प्रकरण का साराशं यह हैं कि जीव भगवान् को स्वतन्त्र तथा स्वामी जानकर तथा अपने को भगवान् का दास परतन्त्र समझकर भगवान् में प्रीति करता है। वह प्रीति जब पराकाष्ठा को प्राप्त कर जाती है तब उसी का नाम होता है पराभक्ति यही पराभक्ति भगवत् प्राप्ति में उपाय अर्थात् साधन है।

पूर्व में कहा गया है कि ये जो जीव वर्ग हैं वे अपने को परमेश्वर का परतन्त्र तथा दास समझ कर के सेवा करें यही उन जीवों के सुख का कारण है परन्तु यह कहना तो ठीक नहीं है क्योंकि यह वात लोक विरुद्ध है। इत्यादि शंकाका निराकरण करने के लिये उपकम करते है-'**अथैवमपीत्यादि**' भगवत् परतन्त्रत्व तथा दासत्व को सुखकारण होने पर भी पराधीनता तथा दास भाव को दुःख जनक होने से चेतन व्यक्ति को उसमें

ज्ञानरूपं परमात्मशेषरूपम् 'आत्माज्ञानमयोऽमलः' इत्यादिना ज्ञानाकारत्वमात्मनः। तथा 'पतिं विश्वस्य' इत्यादिना परमात्मशेषता

स्वराट्' इति।

सर्वेभ्य उत्कृष्टेपि सर्वेषां प्राप्तयेऽतीव सुलभः। सौन्दर्यवात्सल्यादिसौलभ्योपयोगिसमस्तकल्याणगुणानां महोदधिरिव महासमुद्रः तथा जडचेतनानां स्वामी। अहं भगवतो दासस्तदधीनश्च तथा भगवान् मम स्वामी स्वतन्त्रश्चेति जानतो भक्तस्य मनसि महती प्रीतिर्भगवद्विषयिणीसमुत्पद्यते, प्रतिदिनं वर्द्धते च तादृशप्रीतिर्विषयो भवन् परमात्मा साधकं स्वपदं प्रापयतीति। जीवोपि भगवतो

प्रवृत्ति किस तरह से होगी अर्थात् लोक इसमें प्रवृत्त नहीं हो सकता है। मनु ने भी कहा है 'पराधीनत्व सब दुःखदायक और स्वाधीनत्व सब सुख जनक है' 'सेवा कुत्सित वस्तु है।' लोक में भी कहा है 'उत्तम खेती मध्यम वान (बाणिज्य) निघृर्ण सेवा भीख निदान' सेवा कर के धन (अभिलषित वस्तु) को चाहनेवाले मूर्ख सेवकों ने क्या किया देखो 'उसने अपने शरीर की जो स्वतन्त्रता थी उसको भी छोड दिया।' इत्यादि वचनों से पराधीनत्व तथा सेवकत्व का सर्वथा निषेध किया गया है। उत्तर में कहते हैं **'अत्रोच्यते'** सभी संसारी भ्रम अर्थात् कर्म के बल से देह को ही आत्मा समझता है। उस देह में संसारी व्यक्ति की **'अहम्'** एतादृश ज्ञान होता है और देह के अनुकूल स्वातन्त्र्यादि विषयक प्रतीति होती है। परन्तु वस्तुतः तो ऐसा नहीं है, जीव स्वरूप तो देहादी से विलक्षण है ज्ञानाकार तथा भगवान् का शेष अर्थात् भगवान् के अधीन हैं 'आत्मा तो ज्ञानमय है तथा निर्मल है' इत्यादि वचन से ज्ञानाकारता ही जीव में सिद्धि होती हैं और 'विश्व के मालिक अर्थात् समस्त जगत् जिसके अधीन हैं।' इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि जीव परमात्मा का शेष है। इससे यह ज्ञात होता है कि देहाभिमान की तरह स्वातन्त्र्याभिमान भी शुभाशुभ कर्मजन्य ही है। इसलिये सर्वेश्वर से अतिरिक्त जितने पदार्थ हैं उसमें सुखत्व कर्म के अधीन हैं। अतः इनमें अल्पत्व एवं अस्थिरता है। और स्वाभाविक सुखरूपता तो परमेश्वर में ही है इसलिये वह नित्य निरतिशय है। श्रुति भी कहती है 'ब्रह्म सुख स्वरूप है आकाश की तरह अपरिच्छिन्न है' 'ब्रह्म आनन्द

च विदिता भवति। ततश्च देहाभिमानवत् स्वातन्त्र्याभिमानोऽपि कर्मकृत एव। तस्मात् सर्वेश्वरातिरिक्तविषयाणां सुखत्वं कर्माधीनमेव।

दासोहं तदधीनश्च तथा भगवान् स्वतन्त्रो मम स्वामी चेति सदासुप्रसन्नमनाः प्रतिदिनं भगवन्तं ध्यानादिना पूजयन् अन्ते परमपदं भगवतः कृपया प्राप्य श्रीसाकेते वसन् कैङ्कर्य्यं कुर्वाणः कृतार्थो भवतीति सम्प्रदायः। अधिकमत्र सांप्रदायिकमहापुरुषेभ्य एवावगन्तव्यमिति संक्षेपः।

इतः पूर्वप्रकरणे कथितं यत् जीवो हि सर्वेश्वरपरतन्त्रोहं दासश्चेति ज्ञात्वा परमेश्वरस्य सेवा कर्तव्या। भगवतः कैङ्कर्यमेव सुखकारणमिति। परन्तु तन्न युक्तम् यतः 'सर्वपरवशं दुःखम्' इत्यादि तथा 'सेवा श्ववृत्तिराख्याता' इत्यादिपारतन्त्र्यसेवयोर्निषेधात्। इत्यादिप्रश्नं समाधातुं प्रक्रमते 'अथैवमपीत्यादि' उत्तरयति अत्रोच्यते' इत्यादि। अयमाशयः 'जीवो हि कर्मबलेन देहादिरूपमभिमन्यमानो देहानुगुणं कार्यं स्वस्मिन् अभिमन्यते। वस्तुतस्तु जीवोदेहादिभिन्नो ज्ञानाकारो निर्मलश्च। ततश्च यावत् कर्मणोऽवस्थानं तावदेव सर्वकर्मावसाने तु ज्ञानरूपपराभक्त्या भगवन्तं संसेव्य भगवतः प्रीतिपात्रो भवन् सर्वेश्वरश्रीरामः कृपया तस्मै परमपदं प्रयच्छति ततश्च जीवः कृतकृत्यो भवतीति ग्रन्थकाराशयः प्रकृतविषयेऽधिकार्थिभिर्मत्कृता श्रीवैष्णवमताब्जभास्करटीका प्रभाकिरणाख्यानुसन्धेयाविस्मयतेऽधिकप्रपञ्चादितिशम्।

स्वरूप हैं' 'ब्रह्म सत्य ज्ञान तथा आनन्दरूप है।' अतः ब्रह्म मात्र सुखात्मक हैं। जड में जो सुखादिक का प्रतिभास होता है वह कर्म प्रयोज्य हैं। कर्म का अवसान होने पर जड में सुखाद्यात्मकत्व निवृत्त हो जाता है। **'सर्वं परवशं दुःखम्'** यह जो कहा है वह परमेश्वरातिरिक्त विषयक हैं। **'सेवाश्ववृत्तिः'** यह वचन असेव्य सेवापरक है। समस्त आश्रमों से परमेश्वर ही सर्वदा उपासनीय है। इत्यादि वचनों से सिद्ध होता है कि परमात्मा की यथार्थता को जाननेवाले सभी आश्रम वासियों से सर्वदा सर्वेश्वर श्रीराम ही उपासनीय हैं अन्य कोई नहीं। भगवान् कृष्ण ने भी कहा है कि 'मुझ परमेश्वर को जो अव्यभिचरित भक्ति योग से सेवा करता है' इत्यादि। यह जो भक्तिरूप सेवा है वह

ततस्तेषामल्पत्वमास्थिरत्वं च स्वाभाविकसुखरूपं तु परमेश्वरस्यैव । अतस्तदेवनित्यं निरतिशयं च । 'कं ब्रह्म खं ब्रह्म' 'आनन्दो ब्रह्म' 'सत्ययंज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इतिश्रुतेः । तस्माद् ब्रह्ममात्रं सुखात्मकम्,

वेदार्थचन्द्रिकाटीका प्रकाशाख्यातिनिर्मला । वेदार्थबोधिकाभूयाद्रामेश्वरार्यनिर्मिता॥

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

सततपरिणामशीलस्य देहात्मकस्य सतो द्रव्यस्यावर्जनीयावेवोत्पत्तिविनाशावित्यर्थः । तस्माद्धेतोरपरिहार्ये परिहर्त्तुमशक्ये । अर्थे जन्ममरणरूपेऽर्थे । त्वम् । शोचितुं नार्हसि शोकंकर्त्तुमयोग्योऽसि ।

ज्ञान रूप ही है इस बात को 'ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म को प्राप्त कर जाता है' इत्यादि स्थल में वेदन पद से कहा है। प्रकृत विषय में विस्तृत विचार मैंने श्रीवैष्णवमताब्जभास्कार की टीका में किया है अतः विशेषार्थियों को वहीं देखना चाहिये विस्तार भय से लेखनी व्यापार से विरत होते हैं। शं भवतु सर्वजगतः

ψ श्रीसीतारामार्पणमस्तु ψ

वेदार्थचन्द्रिकाटीका किरणाख्याति शोभना ।
विद्वज्जनविमोदाय भूयाद्रामप्रसादतः ॥१॥
रामप्रपन्नसच्छिष्यरामेश्वरार्यनिर्मिते ।
प्रकाशकिरणे टीके भूयास्तां ज्ञानवृद्धये ॥२॥

इतिजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्राशिष्यपश्चिमाम्नायविश्रामद्वारिकास्थ श्रीरामानन्दाचार्यपीठाधीशस्वामीरामेश्वरानन्दाचार्यप्रणीता-
वेदार्थचन्द्रिकायाः प्रकाशकिरणाख्याटीका ।

॥ श्रीरामः शरणं मम ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

देहात्मवादे देहोत्पत्तिविनाशाभ्यां कुतो न शोच्यतेति शंकां समाधत्ते- जातस्यति । जातस्योत्पन्नस्य । मृत्युर्विनाशः । ध्रुवो ऽवर्ज्यः । निश्चित इत्यर्थः । मृतस्य विनाशमुपयातस्य । च । जन्मोत्पादः । ध्रुवमवर्जनीयम् । हि ।

जडे सुखदुःखात्मकत्वं कर्मकृतं न स्वरूपत इतिकर्मणामभावे वस्तुनो जडस्य सुखाद्यात्मकत्वमपि निवर्तते एवेति । यद्यपि 'सर्वं परवशमित्यादि' तत्तु परमेश्वरव्यतिरिक्तप्रतीतिज्ञातव्यम् । सेवायाः

अत्रासत्कार्यवादिनो वदन्ति नायं सत्कार्यवादः समीचीनः, सतो द्रव्यस्योत्पत्तिविनाशयोरुपपादयितुमशक्यत्वात् । तथाहि-'घटादिस्त्पद्यत' इत्यादिप्रतीतिसिद्धाघटादिद्रव्यस्योत्पत्तिर्नाम तदधिकरणक्षणक्षणध्वंसानधिकरणक्षणसम्बन्ध एव । स चोत्पद्यमानस्य घटादेः प्रागपि सत्वेऽङ्गीकृते तस्य तदधिकरणध्वंसाधिकरणक्षणवृत्तित्वात् कुतः स्यादित्यसत

देहात्मवादपक्ष में देह की उत्पत्ति तथा देह के विनाश से शोक क्यों नहीं करना चाहिये अर्थात् देह का उत्पाद होता है एतावता उस के विषय में शोक क्यों नहीं करना चाहिये ? इस शंका से समाधान में कहते हैं **'जातस्य'** इत्यादि । जात अर्थात् जो पदार्थ उत्पन्न होता है उसकी मृत्यु अर्थात् विनाश होना ध्रुव है अर्थात् अवश्यंभावी है जो कारण कलाप से जन्य होगा वह अवश्य ही नष्ट होगा तथा जो मरता है उसका जन्म भी अवश्यं भावी है। अर्थात् सतत् परिणामशील जो देहात्मक द्रव्य है उसका उत्पत्ति विनाश अवश्य होने का है। इस हेतु से परिहरण करने में अवश्य जो अर्थ है जन्म तथा मरण उस जन्म मरणमूलक जो शोक है उसके लिये आपका शोक करना अयोग्य है ।

यहां असत्कार्यवादी कहते हैं कि यह जो सत्कार्यवाद है वह ठीक नहीं है क्योंकि सत् जो द्रव्य है उसका उत्पाद तथा विनाश है उसका आप उपपादन नहीं कर सकते हैं तथाहि घटपटादि उत्पन्न होता है इत्याकारक प्रतीतिसिद्धा उत्पत्ति क्या हो तो घट के अधिकरणीभूत जो क्षण उसका जो ध्वंस विनाश उस विनाश का अनधिकरणक्षण उत्तर क्षण तो तादृश क्षण ध्वंस का अधिकरण है किन्तु तत्पूर्व है किन्तु तत्पूर्व कालिक क्षण जो होगा तादृश क्षण के सम्बन्ध को ही उत्पत्ति कहते हैं अब स्वोत्पत्ति के पूर्व में भी यदि उत्पद्यमान वस्तु की सत्ता को मान लिया जाय तब तो तदधिकरण क्षण का ध्वंसाधिकरण क्षण के उसमें वृत्ति होने से किस प्रकार से उत्पत्ति होगी अतः परिशेषात् अर्थतः सिद्ध होता है कि असत् पदार्थ की ही उत्पत्ति होती है ऐसा ही मानना चाहिये ।

श्ववृत्तित्वकथनन्त्वसेव्यसेवाविषयकमेवेति । 'सद्भाश्रमैः सदोपास्यः समस्तैरेक एव च' इति । परमात्मयाथात्म्यज्ञातृभिः सर्वैरपि सर्वदा सर्वेश्वरश्रीराम एवोपास्यो नान्यः इति । भगवता

एवोत्पत्तिरङ्गीकर्त्तव्या । एवं 'नश्यति' 'नष्ट' इत्यादि प्रतीतिसिद्धः प्रतियोगिसत्ताविरोध्यभावविशेषात्मको विनाशोऽपि पश्चादसत एव घटादि-द्रव्यस्य स्वीकर्त्तव्योऽन्यथा घटादिनाशानन्तरं 'घटादिरस्ती' ति प्रत्ययप्रसङ्गः स्यात् । किञ्च कार्यस्य प्राक् सत्तायां कार्यकारणपरयोरनन्यत्व उभयोर्नामार्थसंख्याबुद्धिकालकारणाकारभेदानामनुपपन्नत्वं कारकव्यापारस्य नैष्फल्यञ्च भवेदिति,

तन्न युक्तम्, तदधिकरणक्षणध्वसानधिकरणक्षणावच्छिन्नाया कपालद्वयादिसंयोगात्मिकायाघटत्वावस्थाया एवोत्पत्तितया कपालद्वयादिवि-

इसी तरह से घट नष्ट होता है घट नष्ट हो गया इत्यादि प्रतीति से सिद्ध जो प्रतियोगी घटादि उसकी जो सत्ता उस सत्ता के विरोधी अभाव विशेष रूप विनाश वह भी पश्चात् असत् जो घटादिक द्रव्य उसी का होता है ऐसा मानना चाहिये अन्यथा घटादि द्रव्य के नाशानन्तर काल में भी घट है ऐसी प्रतीति हो जायगी। और भी देखिये यदि कार्योत्पत्ति के पूर्व में भी कार्य की सत्ता का स्वीकार किया जाय तब तो कार्य कारण के अभेद होने से इन दोनों कार्य कारण का जो नाम है अर्थ (प्रयोजन) है संख्याबुद्धि काल कारण आकार (स्वरूप) में जो भेद है वह अनुपपन्न हो जायगा अर्थात् यदि पटरूप कार्य और तन्तुरूप कारण अभिन्न है तब यह पट है यह तन्तु है यह जो नामभेद है वह नहीं होगा दोनों के एकरूप होने से एवं पट का प्रयोजन है आवरण तथा तन्तु का है बन्धन पट की संख्या है एक और तन्तु की संख्या है अनेक एवं पटः यह बुद्धि और शब्द भिन्न है तथा तन्तु यह बुद्धि तथा शब्द भिन्न हैं एवं पट का कारण है तन्तु वेमा प्रभृति और तन्तु का कारण है अंशु एवम् आकार दोनों का भिन्न है तो यह नियम कार्यकारण की एकता में बाधक है। एवं यदि कार्य कारण का स्वरूप ही है तब तो पट को उत्पन्न करने के लिये कारक व्यापार भी निरर्थक होता है इस लिये सत्कार्यवाद ठीक नहीं है।

कृष्णेनापि कथितम् 'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते' इत्यादि । इयं च भक्तिस्त्वा सेवाज्ञानरूपैवेति' 'ब्रह्मविदाप्नोति परम्' इत्यादिस्थले वेदनपदेन कथितम् ।

रामाद्धियमनुप्राप्तं रामोपासनया मया ।
प्रपन्नान्तेन रामेण तद्रामचरणेऽर्पितम् ॥

भागात्मिकाया घटत्वाद्यवस्थाविरोधिकपालत्वाद्यवस्थाया एव च विनाशतयाङ्गीकृतत्वेनोक्तदोषाप्रसङ्गात् । घटत्वादिविशिष्ट एव सत्ताया 'घटादिरस्ती'ति व्यवहारान्न घटादिनाशानन्तरं तादृशव्यवहारापत्तिः ।

ननूत्पन्नस्य घटादेर्नाशस्य प्रत्यक्षतया 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' रिति भगवदुक्तस्योपपत्तिमत्वेऽपि नष्टस्य घटादेः पुनरुत्पादस्यानवलोकनाद् 'ध्रुवं जन्म मृतस्य चे' तिवचनं त्वनुपपन्नमेवेति तेन्न, पूर्वावस्थस्य द्रव्यस्य विनाशरूपा

समाधान '**तन्नयुक्तमित्यादि**' घट के अधिकरणीभूत जो क्षण उसका जो ध्वंस उस ध्वंस का जो अनधिकरणीभूत क्षण घटाव्यवहित पूर्व क्षण तादृश क्षण से युक्त जो कपाल द्वय उसका जो संयोग क्षण तद्रूप जो घट की घटावस्था उसी अवस्था का नाम है घटोत्पत्ति एवं कपालद्वय का विभागरूप जो घटत्वावस्था के विरोधीकपालत्वावस्था उसी का नाम है घट का विनाश ऐसा मानने से कोई भी दोष नहीं होता हैं। एवं घटत्वादि विशिष्ट जो सत्ता तादृश सत्ता के बल से ही घटादिक है ऐसा व्यवहार होता है इसलिये घटनाश के समय में घट है ऐसा व्यवहार नहीं होता है।

शंका–कारण के व्यापार से जायमान जो घटादि कार्य उसका विनाश प्रत्यक्षसिद्ध है इसलिये '**जातस्यहिध्रूवोमृत्युः**' यह भगवत्कथन युक्ति युक्त है भी परन्तु विनष्ट जो घट है उसका उत्पाद तो पुनः नहीं देखने में आता है इसलिये '**ध्रूवं जन्म मृतस्य**' यह भगवद्वचन तो युक्ति सिद्ध नहीं मालूम पडता है।

समाधान–पूर्वावस्था से युक्त जो घटादिद्रव्य है उस द्रव्य का विनाशरूप जो पूर्वावस्था का विरोधी उत्तरावस्था तादृश उत्तरावस्था से अचित द्रव्य की ही पुनः उत्पत्ति होती है न तु पूर्वावस्थायुक्त की उत्पत्ति होती है जैसे घटावस्था से युक्त द्रव्य का

इत्यानन्दभाष्यकारजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यप्रधानपीठाचार्यजगद्गुरुश्रीरामानन्दाचार्यश्रीरामप्रपन्नाचार्ययोगीन्द्रविरचिता वेदार्थचन्द्रिका ।

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

पूर्वावस्थाविरोध्युत्तरावस्थोत्तरावस्थस्यैव तस्य द्रव्यस्योत्पत्तिर्न तु पूर्वावस्थस्यापि तस्य । यथा घटावस्थस्य द्रव्यस्य नाशरूपा कपालत्वावस्था कपालावस्थस्यैव तस्य द्रव्यस्योत्पत्तिर्न तु घटावस्थस्यापि तस्य । तथा च सूपपन्नैव नष्टस्योत्पत्तिरिति । उत्तरावस्थायाः पूर्वावस्थाविरोधित्वात् कपालनाशे घटनाशस्यैव नष्टत्वेन चूर्णावस्थायां घटोन्मज्जनप्रसङ्गोऽपि न । ननु शोकानिमित्तत्वेन भगवता नष्टोत्पादस्य ध्रुवत्वप्रतिपादनमयुक्तमिति चेन्न, नष्टोत्पादध्रुवत्वप्रतिपादनस्य नाशध्रुवत्वप्रतिपादनात्मकत्वात् ॥२७॥

नाशरूप जो कपालत्वावस्था है उस कपालावस्था से युक्त द्रव्य की उत्पत्ति होती है न कि घटावस्था से युक्त द्रव्य की उन्पत्ति होती है। ऐसा मानने से नष्ट पदार्थ की उत्पत्ति होती है यह भगवत् कथन युक्ति युक्त ही है। उत्तरावस्था के पूर्वावस्था का बिरोधी होने से कपाल के नाश हो जाने पर घटनाश का नाश हो जाता है इस चूर्णावस्था में घट पुनः उत्पन्न नहीं होता है ।

शंका शोकाभाव का कारणरूप से भगवान् ने जो नष्ठोत्पाद में ध्रुवत्व का प्रतिपादन किया है वह तो ठीक नहीं है ।

उत्तर नष्ठोत्पाद में जो ध्रुवत्व का प्रतिपादन भगवान् ने किया है वह नाश में ध्रुवत्व प्रतिपादन स्वरूप ही है ॥२७॥

श्रीसीतारामाभ्यां नमः